मतादर्श

सामाजिक विज्ञान, मानविकी एवं वाणिज्य की शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ० प्रसून दत्त सिंह

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

संपादक

डॉ० रितेश भारद्वाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मेखला प्रकाशन

एफ-3/139, सेक्टर-16, रोहिणी

दिल्ली-110089

वर्ष : 15 **अंक :** 4 ❑ अक्टूबर–दिसम्बर, 2023

मतादर्श

मतादर्श भारत में समाचार पत्रों के निबंधक (आर.एन.आई.) द्वारा अनुमोदित है।

संपादक मंडल

डॉ॰ आर. एन. कुंअर

डॉ॰ बामेश्वर सिंह

डॉ॰ विद्या भूषण श्रीवास्तव

डॉ॰ रवीन्द्रनाथ राय

डॉ॰ अमरकान्त सिंह

डॉ॰ लक्ष्मेश्वर ठाकुर

फोन : 011–35522994, 40564514, 22753916

e-mail : matadarsh.journal@gmail.com

मुद्रक एवं प्रकाशक अलका सिंह द्वारा एफ–3/139, सेक्टर–16, रोहिणी दिल्ली–110089 से प्रकाशित तथा बी. के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा दिल्ली–32 से मुद्रित

नोटः पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

Editorial

For the past few years, the craze for people from India to go abroad to gain admission to foreign colleges and settle there has been on the increase. According to the government, between 2016 and 2021, 26.44 lakh Indian students went abroad to study. The Associated Chambers of Commerce and Industry of India (ASSOCHAM) estimates show that in the year 2020, 4.5 lakh Indian students went abroad for education and they spent $ 13.5 billion in this process. In the year 2022, this expenditure was 24 billion dollars that is, about 2 lakh crore rupees. According to the report of Redseer Strategy Consultant, by 2024 this expenditure may reach US$ 80 billion, that is, 7 lakh crore rupees, when an estimated 20 lakh Indian students will go abroad to study.

If we make a state-wise analysis, till the year 2021, among the students going to study abroad, 12 per cent were from Punjab and Andhra Pradesh each; and 8 per cent were from Gujarat. If seen in proportion to the total number of youth, then 7 out of every thousand youth from Punjab, 4 out of every thousand youth from Andhra Pradesh and at least 2 out of every thousand youth from Gujarat are going to study abroad every year. If we take the cumulative numbers from 2016 to 2022, the situation looks quite alarming. This number is 50 per thousand in Punjab, 30 per thousand in Andhra Pradesh and 14 per thousand in Gujarat. The exponential increase in the number of students going abroad to study is a matter of concern for many reasons. The biggest concern is that these youth are migrating to foreign countries in search of education and employment and this migration is causing a shortage of labour for the economic activities in the country. There has been huge progress in the field of education in the country. If we look at the admission of students in higher education, then in 1990-91, only 49.2 lakh students took admission in higher educational institutions; but this number reached 414 lakh in the year 2020-21. Broadly speaking, the number of students taking admission to higher education has increased more than 10 times in the last 30 years. If we talk about higher education institutions, we see that in the year 2021, there were 1113 universities and equivalent institutions, 43796 colleges and 11296 standalone educational institutions in the country. As far as the fee for admission into educational institutions is concerned, in most of the Indian educational institutions it's much lower than the fees in foreign institutions and most of the foreign institutions in which Indian youth are taking admission are of very low standard. So, the question arises why do Indian youth spend huge amounts of money and get admission to foreign educational institutions? The simple answer is that most of the students who go abroad to pursue higher education, actually don't go to get a higher degree. The real intent of Indian students going to other countries including Australia, Canada, and European countries including the United Kingdom, is not too keen to get an education. Their real objective is to get employment there. But Indian youth fail to realise that there is a huge shortage of employment in these countries also. In many countries, incidents of violence by local people, against Indians and youth coming from other countries, generally from South Asia, are also being witnessed. Most of the young students leaving the country fail to get employment there and have to return home, due to which they are also facing frustration.

The students are not able to realise that today in Canada, Australia and European countries, where they are taking admission to educational institutions, those educational institutions are giving easy admission to Indian students in their institutions, for profit.

—Editor

इस अंक में

विश्व स्तर पर कोविड-19 के राजनीतिक प्रभाव: एक अध्ययन–जुली कुमारी 7
भारतीय राजनीति की बदलती दशा और दिशा: एक अध्ययन–डॉ० पुष्पांजली कुमारी 11
समग्र तथा बहु-विषयक शिक्षा–उमेश कुमार 15
हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की अवधारणा: एक विमर्श–राजेश रंजन कुमार 18
राजनैतिक सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति–डॉ० जुही सिंह 23
महादेवी वर्मा का काव्यात्मक परिचय–उमाकांत पासवान 27
महासमुन्द जिले में बीएड प्रशिक्षार्थियों का व्यक्तित्व प्रकार, राजनैतिक आकांक्षा एक अध्ययन –श्रीमती रेणुका त्रिपाठी; डॉ० सिद्धाधेश्वर मिश्रा 32
महासमुन्द जिले के हायर सेकेण्डरी स्कुल स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध–डॉ० हेमन्त कुमार खटकर 35
धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर नैतिक मूल्यों व सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध–श्रीमती डॉ० मोहनी सिन्हा 40
प्रेमचन्द युग में बदलते सामाजिक परिवेश: एक साहित्यिक समीक्षा–डॉ० दशरथ राम 43
एक देश एक चुनाव: संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ–डॉ० प्रदीप कुमार 46
परिवार कल्याण कार्यक्रम एक अध्ययन–डॉ० ब्यूटी कुमारी 49
भारतीय समाज में महिलाओं की पारिवारिक स्थिति–प्रियंका राय 51
वेदों में पर्यावरण संरक्षण–डॉ० राजीव कुमार 54
राजकमल चौधरी की रचनाओं में समय और समाज से संवाद–विजय कुमार साव; डॉ० सुनील कुमार दुबे 58
वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा की की स्थिति: एक ऐतिहासिक समीक्षा–पूनम भाटिया 62
बिहार के क्षेत्रीय इतिहास लेखन की अवधारणा: एक अध्ययन–कुंदन कुमार पासवान 67
आदिवासी समाज जीवन–डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे 71
साहित्य की सामाजिकता और उसके शुक्ल पक्ष का अनुशीलन–जितेन्द्र कुमार गिरि 73
वर्तमान परिदृश्य में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता–डॉ० हिमांशु यादव 76
भारतीय लोकतंत्र एवं सोशल मीडिया की अवधारणा–राकेश कुमार; डॉ० विभु कुमार 79
देवभूमि हिमाचल के लोकगीतों में 'राम'–डॉ० रविंद्र सिंह 84
हिन्दी साहित्य: प्राचीन संस्कृति की अवधारणा–पूजा 90
"जॉन डीवी के शैक्षिक दर्शन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"–डॉ० मारकण्डेय दीक्षित 92
स्वतंत्रता संघर्ष और विभिन्न शैक्षिक सिद्धांत–अरुण कुमार 96
भारत में वृद्धावस्था: जनसांख्यिकी, कमजोरियाँ, और स्वास्थ्य देखभाल चुनौतियाँ–डॉ० तबस्सुम आरा 101
"महासमुन्द जिले में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अनुसार उच्च शिक्षा में शैक्षिक उपलब्धि पर गुणवत्ता सुधार हेतु अशासकीय व शासकीय महाविद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन"–डॉ० किरण बाला पटेल; श्री राजेन्द्र कुमार चौधरी 106
भक्ति आन्दोलन का उदय और विकास: एक पुनरवलोकन–पुँज प्रकाश शरण 110
शिक्षा का अधिकार एवं बिहार में महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति: फुलवारीशरीफ प्रखंड के विशेष संदर्भ में (2010-2020) –कन्हैया जी; डॉ० विनोद कुमार 113
कैमूर जिले का प्राचीन इतिहास एवं स्थापत्य: एक अवलोकन–राजा अम्बेदकर; डॉ० उदय नारायण तिवारी 117
जैन धर्म में कला संस्कृति एवं कर्म सिद्धांत: एक अवलोकन–नवीन नवनीत; डॉ० उदय नारायण तिवारी 120
हिन्दी साहित्य और सिनेमा–प्रा० डॉ० पी० एम० भुमरे 123
गोपालगंज जनपद में साक्षरता आधारित जनसंख्या की गुणवत्ता–प्रियंका प्रियदर्शिनी 125
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को वैश्विक रूप देने में सुभाष चंद्र बोस के योगदानों का विवेचनात्मक अध्ययन–विभा कुमारी 127
18वीं शताब्दी में पटना की सामाजिक संरचना: एक अध्ययन–ज्ञान प्रकाश 129
प्राकृतिक आपदाओं का प्राणी जगत पर प्रभाव–डॉ० अखलेश कुमार 132
डॉ० जगन्नाथ मिश्र का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान: एक अध्ययन–अर्जुन कुमार 135
युवाओं में नए प्रकार की नशे की लत: एक अवलोकन–ज्योति 138
2020 के बिहार विधानसभा के चुनाव के जरिए सामाजिक न्याय का मूल्यांकन–शशि रंजन 143
भारत में स्त्रीओं उत्थान व सशक्तीकरण के नीतिगत प्रावधान–डौली प्रवीण 147
जैन कला शैली में नारी-अभिव्यक्ति–मिथुन कुमार 150
भारतीय वास्तु कला का उद्भव एवं विकास–मुस्कान कुमारी 153
मौर्य काल में धर्म–पूनम देवी 156
नारी जीवन-दुर्दशाक ज्वलन्त चित्र: विलाप–डॉ० अरुण कुमार ठाकुर 158
मैथिलीक प्रथम स्वातन्त्र्य स्वर: मिथिला गीतांजलि–डॉ० अरविन्द कुमार सिंह झा 160
नाटककार महेन्द्र मलंगिया–संजीत कुमार राम 164
अनुसूचित जनजाति और भारतीय शिक्षा व्यवस्था–डॉ० जयनाथ यादव 166
लोकतांत्रिक शासन में विकेंद्रीकरण: एक अध्ययन–डॉ० आलोक आनन्द 170
मिथिला में भारत छोड़ो आंदोलन: एक संक्षिप्त अध्ययन–विवेक कुमार अमर 173
समकालीन हिन्दी रंगमंच और मोहन राकेश के नाटक–रंजीत कुमार 175
प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० तुषार रंजन 179
चौधरी छोटूराम की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में भूमिका–सरोज रानी 182
निराला के साहित्य में मानवतावाद व युगीन परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० जैस्मिन करुना 187

रामायण कालीन भारतीय समाज–नवीन 193
महात्मा गाँधी के सामाजिक और राजनीतिक विचार- एक अध्ययन–दिव्य प्रकाश सिंह; डॉ० प्रियंका सिंह 195
शहीद-ए-आजम भगत सिंह: धर्मनिरपेक्षता के संबंध में विचार वर्तमान संदर्भ में
–ममता कुमारी; डॉ० शर्मिला लोचब; डॉ० रामजीलाल 198
परमाणु अप्रसार के प्रयास और उस पर भारतीय प्रतिक्रिया: एक विशद विवेचन–डॉ० रजवन्त सिंह 200
हिन्दी वेब पत्रकारिता: एक दृष्टि–दुर्गेश कुमार मिश्र 205
अलवर जिले में स्थित पर्यटन स्थलों का भौगोलिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन–ऋषि प्रकाश शर्मा; डॉ० विजय कुमार गुप्ता 208
राजस्थान में पर्यटन उद्योग में बाघ संरक्षित क्षेत्रों की भूमिका–मनोज कुमार शर्मा; डॉ० के०सी० शर्मा 211
शिक्षा का अधिकार और मूल अधिकार : मधेपुरा जिले के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन–डॉ० धनंजय कुमार 215
छत्तीसगढ़ का कंकाली मठ और नागा साधुओं की परंपरा–डॉ० अलका यतीन्द्र यादव 222
शिक्षित वर्ग तथा निर्धन वर्ग पर विश्व बैंक के कल्याण योजना का समाजशास्त्रीय प्रभाव–अंशु प्रिया 225
जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की श्रवण बोध एवं पठान बोध क्षमता पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव
–डॉ० हिमानी उपाध्याय 228
बिहार में अति पिछड़ी जातियों का राजनीतिक उभार: एक अध्ययन–प्रिंस कुमार 232
डार से बिछुड़ी: पाशो की कारूणिक गाथा–डॉ० प्रभात रंजन; डॉ० नम्रता 236
कृषि विकास और पर्यावरणीय प्रभाव–मनोज पटेल; डॉ० करूणानिधान उपाध्याय 239
हिन्द महासागर की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत–राकेश कुमार 242
बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के मध्य सह-सम्बन्ध का अध्ययन–जय सिंह; डॉ० प्रमिला 245
समकालीन दलित आलोचना में हिंदी दलित आलोचकों की भूमिका–डॉ० मुकेश कुमार कन्नौजिया 248
राम मनोहर लोहिया के सामाजिक-राजनीतिक विचारधारा: एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० श्याम शंकर प्रसाद 252
भारत में ई-कॉमर्स के मुद्दे और चुनौतियाँ- एक अध्ययन–डॉ० मो० कमाल अकबर 255
बाढ़ की विभीषिका पूर्नवास एवं विस्थापन: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण (कोषी क्षेत्र के संबंध में)–डॉ० मो० रफत परवेज 261
बालश्रम समाज के लिए एक चुनौती–डॉ० अरूण प्रसाद अमन 266
ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक रूप से सशक्तिकरण - एक अध्ययन–डॉ० किरण कुमारी 269
स्वयं सहायता समूह से महिला सशक्तिकरण–डॉ० नीतू कुमारी 272
मार्टिन लूथर किंग और आंबेडकर का मुक्ति आन्दोलन–डॉ० योगेन्द्र प्रसाद शर्मा 275
हिन्दी कथा साहित्य में महिला सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा–डॉ० कुसुम टेपण 278
अनुसूचित जनजातियों में आधुनिक कृषि भूमि से परिवर्तन (मध्यप्रदेश के धार जिले के संदर्भ में)–मडिया डावर; डॉ० देवेन्द्र मुझाल्दा 284
महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन–प्रवीण कुमारी 288
नेपाली कविता में लोकलय का प्रयोग एवं महाकवि देवकोटा का अवदान–डॉ० दिलकुमार प्रधान 292
'मैला आंचल'- वैध-अवैध संबंधों का दस्तावेज–डॉ० शुभ्रा ज्योति 297
वैवाहिक कर्मकांडों में होने वाले परिवर्तन में आधुनिक संचार साधनों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० अखिलेश कुमार सिंह 301
भारत में दलित आन्दोलन: एक विवेचन–मनोज कुमार; प्रो० अनुराधा अग्रवाल 304
स्वतंत्र भारत के बिहार में सत्रहवीं विधानसभा चुनाव में पिछड़ी जातियों में राजनीतिक चेतना के विकास का समाजिक-राजनीतिक अनुशीलन
–महेश कुमार पिन्टू; डॉ० शशांक मिश्र 307
स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय व व्यक्तित्व: एक अध्ययन–डॉ० योगेश्वर नाथ पाण्डेय 311
दलितो के उत्थान में डॉ० भीमराव अम्बेडकर का योगदान–डॉ० अर्चना सिंन्हा; धनराज 314
महिला सशक्तीकरण: हस्तकौशल के सन्दर्भ में–डॉ० मंजु कुमारी; रीना गौतम 318
भोज्य पदार्थों का क्रमिक विकास एवं पोषण संबंधी अवधारणाएँ–डॉ० रेनू कुमारी; महिमा पाण्डेय 321
नक्सल समस्या के समाधान में आने वाली चुनौतियाँ: एक अध्ययन–सत्यम चौधरी 324
प्राकृतिक आपदा एक विश्लेषण–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; सुनील कुमार वर्मा 327
भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से नेपाल का सामरिक महत्त्व–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; मोहम्मद जुनैद बक्श 330
सोशल मिडिया की उत्पत्ति एवं प्रकार–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; किशन कुमार गुप्ता 333
राम भक्ति का प्रादुर्भाव–डॉ० दुर्गावति सल्लाम 336
कबन्ध युद्ध की ऐतिहासिकता का विश्लेष्णात्मक अध्ययन–डॉ० भगवान सिंह शेखावत 339
एन.डी.ए. शासनकाल में भारत-बांग्लादेश संबंध–डॉ० पुष्कर पाण्डेय 341
वर्तमान में जीवन कौशलों का महत्व–सरोज शर्मा; डॉ० मंजू शर्मा 345
भारत में ई कॉमर्स बिजनेस का विकास–डॉ० रश्मि पाण्डेय 349
उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन–प्रो० बिहारी सिंह; सोनल चतुर्वेदी 351
1857 की क्रांति-विद्रोह का प्रभाव एवं प्रतिक्रिया–अर्चना यादव 356
''सार्थकता की समस्या: लुडविग विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा-दर्शन"–डॉ० अखिलेश कुमार मौर्य 360
मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति एवं दशाओं का अध्ययन: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में–डॉ० माया रानी 365
मैथिलीशरण गुप्त कृत भारत-भारती में राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम–डॉ० अखिलेश कुमार 369
मुर्दहिया: दलित जीवन का दस्तावेज–रामजीत प्रसाद 373
आषाढ़ का एक दिन नाटक में मल्लिका का चरित्रगत विश्लेषण–डॉ० सविता 376
साइबर सुरक्षा और राजनीति–डॉ० श्याम लाल निराला 379
प्राचीन भारत मे नारी शिक्षा एक अध्ययन–रीना कुमारी; डॉ० पूनम कुमारी 385
मीडिया: सूचना, जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम–प्रोफ़ेसर इफ़्फत असगर 389
New Generation Private Sector Banks In India : An Overview—Dr. Chunna Hussain 1
Yoga And Human Immune System—Dr. Yudhveer 6
A Comparative Study Of In-service Teachers 'Attitude Towards The Use Of Computers—Dr. Suman Devi 10
Russo-Ukrain War Violates Geneva Convention—Dr. Rakesh Kumar 14
Conceptual Framework of Consumer Behaviour : An analytical Study—Dr. Abhishek Chandra 23
Gandhian Idea of Education—Dr. Priya Ranjan 28
The Future of Money: Current Perspectives—Dr. Amitava Basu 32

The Impact of Technology on Language Use—Dr. (Mrs) Jatinder Kohli 35
Essential Requirements for Design and Development of Moocs for Swayam—Dr. Bhavna Singh 38
Natural Environment and Relief Pattern of Gairsain Valley Uttarakhand—Dr. Mohan Lal; Babita Negi; Kamlesh Kumar 42
Cooperative Learning: As an Effective Method on Achievement of B.Ed. Students —Seema Nigam (Seema Srivastav); Dr. P. N. Mishra 46
Effect of Classroom Environment on Achievement of Secondary Students —Shib Sunder Saha; Dr. Pavin Kumar Singh 49
Trends, Patterns, and Problems of Urbanization in India: A Spatio-Temporal Analysis—Deepak Hooda 54
Variations in the Cropping Intensity Pattern in Haryana: A Comparative Analysis—Priyanka 60
A Study of Climate Change and its Impact on Indian Vulnerable Sections—Anand; Dr. Dilip Kumar 66
'Death' in John Keats' 'Ode to a Nightingale' and 'St. Agnes's Eve': A Critical Analysis —Meenakshi Bhardwaj 72
The socio- cultural development in Tharu tribe of Udhamsingh Nagar, Uttarakhand —Dr. Tanu Mittal; Himani 75
The Effect of Menstrual Hygiene Educational Program: An Interventional Approach on the Knowledge, Attitudes, and Practices of Adolescent Girls—Geeta 80
Recent Trend of Alcohol Consumption in Uttarakhand and its Social Impact —Prashant Kumar Singh; Suvarna Nautiyal; Neeraj kumar Dangwal 88
Rampur City: A Study in Social Geography—Dr. Navneet Shukla 92
Breaking Chains: A Sociocultural Exploration of Masculinities and Altered Paternal Dynamics in Indian Patriarchy"—Prof. Prashant Kumar Singh; Himani 97
The Impact of Privatization on India's Economic Growth: A Sustainability Analysis—Pummy Dahiya 103
Size of E-commerce Business in India—Tarun Manjhi; Saakshi Mundhra 110
A study of Hamlet as a Tragedy and His Madness—Vicky Vishal 117
Impact of Service Sector on Economic Growth of Bihar: An Econometric Study—Shayna Anjum 120
Performance Assessment of Development Administration: The Case of Bodhgaya Nagar Panchayat —Shailendra Kumar 124
Need to Revisit India's Nuclear Doctrine—Monika; Dr. Priyanka Singh 133
The Historical and Cultural Significance of India's Soft Power in Global Politics—Nandan kumar 137
Theoretical Aspects and trends of Medieval India—Ashok Kumar 149
Impact of Water Conservation Project in Rural Areas of Kachchh District of Gujarat - A Project Undertaken Under CSR Initiative of Corporate Houses—Dr. Chirag Patel 155
Understanding Rural Markets (FMCG) – A Study of Potential Opportunities and Challenges —Vaibhav Prakash; Nausherwan Raunaque 160
Visual Impairment in Punjab: A Socio-Historical Analysis; Gurpreet Singh 166
An Observation of P. B. Shelley's Symbolism—Dr. Md. Shadab Alam 169
Development of Mathematics in Economic Analysis: A Critical Study—Dr. Nawal Kishor Baitha 173
Cybercrime and Security: An Analytical Review—Dr. Seema Singh 177
A Study on "The Role of Communication Skills in Home Science Extension Education"—Dr. Neelima Dubey 183
The Rise of Loitering Munitions: A Study of Development, Capabilities, and Implications Concerning India —Prof. Arun Kumar Dixit; Akhilesh Dwivedi 190
OBCs Identity in Chhattisgarh, 1947-2023—Dr. Triveni Patel 194
The Theory of Fiction by E.M. Forster—Dr. Rohit Kumar Pandey 203
Weather Forecast Prediction: An Integrated Approach to the Analysis and Measurement of Weather Data —Surenra Pratap Singh 212
Knowledge Philosophy of Naturalism—Vishwamitra Pandey 218
Effect Of Gst On Special Economic Zones- A Study—Mrs. Kalpana Soni; Dr. Rajesh Shroff 231
Part and Development of Monetary Subsidiaries in Indian Capital Markets—Dr. Sarfaraz Ahmad 236
Role of Subhash Chandra Bose in Indian Freedom Struggle—Ravinder Singh; Dr. Ram Singh Gurna 240
Sambhar-lake : A Study in Environmental Hazard—Dr. J.K. Sharma 243
Microfinance and Its Impact on Rural Entrepreneurship in India—Shubham Prakash 249
Alexander Pope's The Rape of the Lock: Redemption of an Unheroic Man in an Unheroic Age —Dr Harsh Vardhan S Khimta 253
Deterring Hybrid Threats: The Need for a Rational Debate—Dr. Sangeeta Chaudhary 256
Potential For Development Tourism Inchhattisgarh—Dr. Chouleshwar Chandrakar 261
Socio-Economic Development Dynamics in Eastern Uttar Pradesh: A Focus on Kaushambi District—Dr. Sangeeta Shukla 264
A Comparative Analysis of Customer Relationship Management (CRM) Practices in Public And Private Sector Banks in Bihar—Dr. Garima Mishra 267
Banking Sector Reforms In India—Rajan Kumar Singh 271
An Examination of the Narasimhan Committee 1 Report Concerning the Challenges Faced by Banks and Financial Institutions in India—Sanish Kumar 276
The Impact of Globalization on Labour Welfare And Social Security Policies In India —Prof. (Dr.) Md. Israr Hassan khan; Ms. Shreya Kumari 281
Analytical Study of Eco-Friendliness and Environmental Values of Secondary School Students—Shivangi Raghuvanshi 283
Geographical Examination Of Urbanization Trends In India: Patterns, Issues, And Future Outlook—Vikash Kumar 288
Methods of Virtual Banking - Utilizing Technology for Banking in India—Anurag Harsh 294
Symbolism in Emily Dickinson's Poetry—Maheshwar Prasad Tripathi 299
Digital Banking Units: Progress & Challenges—Dr. Niraj Kumar 301
Impact of Demography on Economic Development of India—Dr. Bipul Vikash 305
Entrepreneurship and Economic Growth in India: An Analysis–Dr. Ajay Kumar 312
Liberalization, Privatization, Globalization (LPG) on the Indian Economy: An Analysis–Dr. Sharda Nand Sahani 316

विश्व स्तर पर कोविड-19 के राजनीतिक प्रभाव: एक अध्ययन

जुली कुमारी

शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वानगर, दरभंगा

सर्वप्रथम कोरोना वायरस संक्रमण के कुछ इक्के-दुक्के मामले सबसे पहले चीन में सामने आए और उसके कुछ माह बाद ही देखते-देखते इसने वैश्विक महामारी का रूप धारण कर लिया। इस महामारी के कारण वैश्वीकृत दुनिया की एक-दूसरे के साथ मजबूती से जुड़ी हुई प्रणालियां पूरी तरह से बदल गई है। इस वायरस के प्रकोप पर काबू करने के प्रयास के तौर पर अलग-अलग देशों की सरकारों ने आने-जाने तथा सामाजिक मेल-जोल पर बंदिशें लगा दी जिसके कारण दुनिया की 7.8 बिलियन की आबादी में से एक तिहाई से अधिक आबादी इस समय इस महामारी के कारण एक तरह से अपने घरों में बंद रहने को मजबूर है। कोरोना वायरस की महामारी के कारण वैश्विक स्वास्थ्य संकट गहराता जा रहा है और अनेक लोगों के लिए लॉकडाउन नया 'नियम' बन गया है और अब यह धारणा तेजी से बन रही है कि आने वाले समय में जब तक कोरोना वायरस खत्म होगा तब तक दुनिया की सूरत हमेशा-हमेशा के लिए बदल जाएगी।

आज इस बात को लेकर आम सहमति है कि अगले डेढ़ से दो साल तक पूरी दुनिया किसी न किसी रूप से संभवत: कोविड-19 के तात्कालिक खतरे से ही जूझती रहेगी और उसके बाद भी पुनर्निर्माण और इसके स्थाई प्रभाव नि:संदेह कई वर्षों तक महसूस किए जाते रहेंगे। दुनिया के कई हिस्सों में, सीमाएं बंद हैं, हवाई अड्डे, होटल और व्यवसाय प्रभावित हैं, साथ ही शैक्षणिक संस्थान प्रभावित हुए। ये अभूतपूर्व उपाय कुछ समाजों के सामाजिक ताने-बाने को तोड़ रहे हैं और कई अर्थव्यवस्थाओं को बाधित कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर लोगों की नौकरियां छूट रही है और व्यापक पैमाने पर भूख की छाया बढ़ रही है।

वर्तमान में, कई लोगों को यह पता नहीं है कि यह संकट किस रूप में सामने आएगा। आज की सर्वोच्च प्राथमिकता जीवन बचाना है (जान है तो जहान है) और जीवन बचाने का यह उद्देश्य भविष्य की सफलता है। लेकिन भविष्य में सफल होने के लिए, दुनिया भर के देशों को इसके लिए योजना बनानी चाहिए। हमें आज द्वितीय विश्व युद्ध के संदर्भ समझ में आते हैं, लेकिन अगर कोरोना वायरस एक युद्ध है तो उस वायरस से लड़ा नहीं जा सकता और न ही उसे मारा जा सकता है। युद्धकाल के दौरान शत्रु अक्सर अप्रत्याशित होते हैं, लेकिन वे शायद ही कभी अदृश्य होते हैं। फिर भी, किसी युद्ध में अगर विजय हासिल करना हो तो विवेकपूर्ण योजना बनाना जरूरी है।

अत: जैसे-जैसे यह महामारी दुनिया में बंद की स्थिति पैदा कर रही है वैसे-वैसे दो समान पहलू उभर रहे हैं।

(1) पहला तो यह कि सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल है जिसके दो साल तक जारी रहने की संभावना है। जब तक इसकी वैक्सीन विकसित नहीं होगी तब तक यह वायरस एक खतरा बना रहेगा क्योंकि अलग-अलग देश इस वायरस के नए संक्रमणों के चक्र पर काबू पाने के लिए संघर्ष करते रहेंगे और इस तरह से उनकी स्वास्थ्य प्रणालियों पर दवाब बना रहेगा। वैक्सीन के विकास, इसके उत्पादन और न्यायसंगत वितरण की बाधाओं को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास की भी आवश्यकता है। गहन चिकित्सा की आवश्यकता वाले तेजी से बढ़ रहे रोगियों का इलाज करने के लिए मास्क से लेकर वेंटिलेटर तक की जरूरी सामानों के उत्पादन एवं उनकी आपूर्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखलाओं को युद्ध स्तर पर तैयार रखा जाना चाहिए।

(2) चीन को निर्यात बाजारों के लुप्त होने और आपूर्ति श्रृंखलाओं से बाहर होने के खतरे का सामना करना पड़ रहा है और वैसे में इस संक्रामक बीमारी के कारण उत्पन्न दूसरे क्रम के प्रभाव वैश्विक वित्तीय बाजारों को तेजी से तबाह कर सकते हैं। कोविड-19 ने न केवल संपत्ति की कीमतों और शेयर बाजारों को ध्वस्त कर दिया है, बल्कि वास्तविक जीवन और वास्तविक गतिविधियों को भी बुरी तरह से प्रभावित किया है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि दुनिया मंदी की स्थिति में जा चुकी है, आने वाले साल इस मंदी के पूरा स्वरूप ग्रहण कर लेने की संभावना है। वैश्विक जीडीपी 2021 के लिए अनुमान 2.5 प्रतिशत से नीचे आ गए हैं। जब उत्पादन रुक जाता है, तो यही अपेक्षित परिणाम होता है। व्यवसायिक संचालन को बंद करने के लिए विवश होना पड़ा है जिसके कारण हर जगह उत्पादन में गिरावट हुई है।

कोविड-19 सार्वजनिक सेवाओं सहित सभी सेवाओं की चौथी औद्योगिक क्रांति और डिजिटलाइजेशन को तेजी से आगे बढ़ाएगा। समुदाय और राज्य के बीच संबंधों में पहले की तुलना में अधिक दूरी आएगी और जिसके कारण राज्य सिविल सोसायटी और निजी जीवन पर अपने रिमोट कंट्रोल का विस्तार करेंगे।

विश्व की अर्थव्यवस्थाओं पर कोरोना वायरस का प्रौद्योगिकी आधारित प्रभाव निम्न हैं-

1. डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर में मजबूती

कोविड-19 के कारण लोगों को घर से काम करने के लिए अपने आप को ढालना पड़ा है। घर में रहते हुए बैठकें करने, शिक्षा हासिल करने, वर्कआउट करने और अन्य काम करने के लिए डिजिटल समाधान खोजने के लिए हम सबको सामूहिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित होना पड़ा है। इस कारण से कोविड-19 के बाद की दुनिया में इन तौर-तरीकों में से कुछ तौर-तरीकों के जारी रहने की संभावनाएं दिख रही है।

2. आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) आधारित औषधि विकास

जितनी जल्दी हम कोविड-19 के इलाज के लिए प्रभावी और सुरक्षित दवाई तथा कोविड-19 से बचाने वाले टीका का विकास कर लेंगे उतना ही जल्दी इस महामारी पर काबू पाया जा सकेगा। दवाई के विकास में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक आदर्श सहयोगी साबित होगा। यह मानवीय प्रयासों का पूरक बन सकेगा तथा उन प्रयासों को तेज कर सकेगा। हमारी वर्तमान परिस्थिति ही औषधि विकास में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मदद लेने के भावी प्रयासों के बारे में अवगत कराएगी।

3. टेलीमेडिसिन

अस्पतालों और स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के कार्यालयों में भीड़भाड़ तथा लोगों की आवाजाही को कम करने के लिए कई हॉस्पीटल एवं चिकित्सक मरीजों को यह सलाह दे रहे हैं कि वे वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए ही परामर्श लें। कई तो इसे लागू भी कर रहे हैं। किसी डॉक्टर के यहां या किसी हेल्थकेयर सेंटर जाने के बजाय रिमोट केयर की मदद से मरीज को क्लिनिकल सेवा प्रदान की जा सकती है। कोविड-19 के पहले कई हेल्थकेयर प्रदाता रिमोट केयर को लेकर दुविधा में थे लेकिन अब जब कई क्षेत्रों में सोशल डिस्टेंसिंग को अनिवार्य बना दिया गया है तब चिकित्सकों में भी इसके प्रति यह दिलचस्पी बढ़ गई है।

4. रोबोटों पर बढ़ी निर्भरता

रोबोट को वायरस का संक्रमण होने का खतरा नहीं होता है। रोबोट का उपयोग किराने का सामान पहुंचाने से लेकर हेल्थकेयर प्रणाली में महत्वपूर्ण कार्यों को अंजाम देने तथा किसी फैक्टरी को चलाने जैसे कामों में हो सकता है। कंपनियां अब इस बात को स्वीकार करने लगी है कि वर्तमान समय में रोबोट हमारी मदद कर सकते हैं तथा कोविड-19 के बाद की दुनिया में तथा किसी भावी महामारी के दौरान रोबोट महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भविष्य में ज्यादा से ज्यादा सरकारें सर्विलेंस (निगरानी) का उपयोग करेंगी। यह वायरस से लड़ने के लिए एक उपयोगी हथियार है - उदाहरण के लिए, भारत और इजराइल जैसे देश वायरसों के समूहों का पता लगाने के लिए और जानने के लिए स्मार्टफोन का उपयोग कर रहे हैं कि किसे और कहां वायरस का संक्रमण है। साथ ही साथ ऐसे कदमों से व्यक्ति की निजी आजादी एवं गोपनीयता में कमी आने का भी खतरा है।

चीन इस महामारी का सामना करने वाला पहला देश था और इसलिए उसे इस संकट से काफी लाभ होने का अनुमान है लेकिन इस बात की भी अटकलें चल रही है कि चीन को इस वायरस के प्रकोप की कई लहरों का भी सामना करना पड़ सकता है। खुदरा खरीददारी अधिक से अधिक ऑनलाइन होगी और ग्राहक सेवा संबंधी संवाद आभासी होगा। सामाजिक दूरी का मतलब कर्मचारियों, ग्राहकों और भागीदारों के बीच आमने-सामने की बातचीत में कमी आना है और ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक संवाद बढ़ेगा। जैसा कि घर से काम करने की प्रवृति बढ़ रही है वैसे में जब यह संकट खत्म हो जाएगा तब नई आदतें विकसित होगी और महामारी के बाद की दुनिया महामारी के पहले की दुनिया से अलग होगी। आमने-सामने की महंगी लागत वाली बातचीत कम होगी लेकिन अपेक्षाकृत कम खर्चीले इलेक्ट्रॉनिक इंटरैक्शन की प्रवृति बढ़ जाएगी।

इसके अलावे सोशल मीडिया कंपनियों और समाचार संगठनों की भूमिका इस संबंध में विशेष रूप से काफी महत्वपूर्ण होगी कि हम इस प्रकोप के बारे में कैसे सोचते हैं, खासकर प्लेटफार्मों पर आने वाली गलत सूचनाएं और 'षड्यंत्र के सिद्धांत' संबंधी बातों का सामना करने के बारे में।

शिक्षा पर आधारित क्षेत्र पर कोरोना वायरस का वैश्विक प्रभाव

1. कोरोना वायरस महामारी ने दुनिया भर में लाखों लोगों के शिक्षित होने के तरीके में भी परिवर्तन कर दिया है। 39 देशों में घोषित या लागू किए गए लॉकडाउन के कारण स्कूल बंद हो गए जिसके कारण 421 मिलियन से अधिक बच्चे प्रभावित हुए हैं। इसके अलावा, अन्य 22 देशों ने आंशिक ''स्थानीयकृत'' बंदी की भी घोषणा की है।

(क) एशिया, यूरोप, मध्य पूर्व और संयुक्त राज्य अमेरिका में कोरोना वायरस तेजी से फैल रहा है, इन देशों ने पूरी तरह से विकसित हो चुकी महामारी के विकास को कम करने के लिए तेजी से और निर्णायक कार्रवाई की है। पिछले दो हफ्तों में, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में छात्रों की हाजिरी को निलंबित करने के लिए कई घोषणाएँ हुई हैं।

(ख) संकट पर काबू पाने के उद्देश्य से लिए गए इन फैसलों के कारण लाखों छात्रों के लिए अस्थायी तौर पर 'होम स्कूलिंग' की परिस्थितियां उत्पन्न हो गई, खास तौर पर चीन, दक्षिण कोरिया, इटली और ईरान जैसे देशों में जो कोरोना वायरस के कारण सबसे अधिक प्रभावित देशों में शामिल हैं। इन परिवर्तनों से निश्चित रूप से असुविधा हुई है, लेकिन उन्होंने शैक्षिक नवाचार के नए उदाहरण भी पेश किए हैं।

(ग) वायरस के प्रसार को धीमा करने में मदद करने के लिए, भारत सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में छात्रों ने इंटरैक्टिव

ऐप के माध्यम से घर पर रहकर ही पढ़ना और सीखना शुरू कर दिया। अधिकांश को लाइव टेलीविजन प्रसारण के माध्यम से शिक्षण सामग्रियां सुलभ हुई हैं।

(घ) 5 जी तकनीक के चीन, अमेरिका और जापान जैसे देशों में अधिक प्रचलित हो जाने के बाद, शिक्षार्थी और समाधान प्रदाता "कहीं भी, कभी भी, किसी भी समय सीखने'' की डिजिटल शिक्षा की अवधारणा के खास स्वरूपों को अपनाने की दिशा में बढ़ जाएंगे। पारंपरिक इन-पर्सन क्लासरूम लर्निंग के स्थान पर सीखने की नई विधियां स्थान लेंगी - लाइव प्रसारणों से लेकर ''शैक्षिक प्रभावकों'' तक और वर्चुअल रियलिटी अनुभवों तक। शिक्षण एक ऐसी आदत बन जाएगी जो रोजमर्रे की दिनचर्या- सही जीवनशैली के साथ समायोजित हो जाएगी।

2. शिक्षण संघ एवं गठबंधन विविध हितधारकों के साथ आकार ले सकते हैं - जिसमें सरकार, प्रकाशक, शिक्षा पेशेवर, प्रौद्योगिकी प्रदाता और दूरसंचार नेटवर्क ऑपरेटर शामिल हैं - जो संकट के अस्थायी समाधान के रूप में डिजिटल प्लेटफार्मों का उपयोग करने के लिए एक साथ आ रहे हैं। उभरते देशों में जहां शिक्षा मुख्य रूप से सरकार द्वारा प्रदान की गई है, यह भविष्य की शिक्षा के लिए एक प्रचलित और परिणामी प्रवृत्ति बन सकती है।
3. यह महामारी इस अप्रत्याशित दुनिया में छात्रों को सूचित निर्णय लेने, किसी समस्या को रचनात्मक तरीके से हल करने और सबसे महत्वपूर्ण अनुकूलनशीलता जैसे कौशल सीखने की आवश्यकता के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करने के एक मौके के तौर पर भी आई है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ये कौशल सभी छात्रों के लिए प्राथमिक बने, हमारी शैक्षिक प्रणालियों में लचीलेपन को विकसित किया जाना चाहिए।

भारत की शिक्षा प्रणाली में काफी गड़बड़ियां हैं और छात्र अपने नियमित शैक्षणिक दिनचर्या का पालन करने में असमर्थ रहते हैं। इस आपात स्थिति के मद्देनजर और छात्रों की सुरक्षा और उनकी अकादमिक चिंता को ध्यान में रखते हुए, अधिकांश संस्थानों ने दूरसंचार, स्काइप कॉल, जूम कॉल और अन्य वर्चुअल विकल्पों को सुलभ कराने की पहल की है ताकि शिक्षण के अंतर को पाटा जा सके। यह आभासी कक्षाओं और सूचनाओं के आदान-प्रदान की सुविधा के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए छात्रों और शिक्षकों को प्रशिक्षण दे रहा है। निस्संदेह, छात्रों के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण समय है। इसलिए, इस कदम का उद्देश्य छात्रों पर दबाव को कम करना और गुणवत्ता के साथ किसी तरह का समझौता किए बिना अपने समय का लाभकारी तरीके से उपयोग करने में मदद करना है।

विश्व अर्थव्यवस्था और व्यवहार्य उपायों पर कोरोना वायरस का आर्थिक प्रभाव

1. व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीटीएडी) के अनुसार गत वर्ष वैश्विक विकास 2.9 प्रतिशत था जो वैसे ही बहुत कम था लेकिन इस साल यह 2 प्रतिशत से नीचे गिर सकता है। वैश्विक मंदी अब निश्चित है।

कोविड-19 कोरोना वायरस महामारी के कारण त्रासद मानवीय परिणामों के अलावा, इसने आर्थिक अनिश्चितता को भी बढ़ा दिया है और इसके कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था को 2020 में एक ट्रिलियन डॉलर का झटका लगेगा। यूएनसीटीएडी का मानना है कि भारत को कोरोना वायरस के प्रकोप के कारण 348 मिलियन डॉलर का व्यापार घाटा होगा।

कोरोना वायरस महामारी के कारण दुनिया भर में लगभग 25 मिलियन नौकरियों पर गाज गिरेगी लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समन्वित नीति की मदद से इस वैश्विक बेरोजगारी के असर को कम करने में मदद मिलेगी।

2. संयुक्त राज्य अमेरिका अविश्वसनीय रूप से चीन पर निर्भर है। बहुत से लोग यह नहीं समझते हैं कि अभी हमारी दुनिया और अर्थव्यवस्था के साथ क्या हो रहा है। अक्सर कंपनियों में, सभी सामानों में से 90 प्रतिशत सामान चीन में तेल से उत्पन्न पदार्थों जैसे प्लास्टिक और पॉलिएस्टर से बनाए जाते हैं। हम जल्द ही देखेंगे कि जूते की अलमारियां खाली हैं, फोन, कपड़े और यहां तक कि टूथपेस्ट नहीं मिलेंगे। हमें चिकित्सकीय सामानों की आपूर्ति में कमी से भी जूझना पड़ सकता है और स्मृति चिन्हों और बेकार गुडी बैग के अंतहीन उत्पादन में रोक लगेगी।

कोरोना वायरस की महामारी स्थायी तरीकों से समाज को नयी आकृति प्रदान करेगी और लोगों के यात्रा करने, घर खरीदने, सुरक्षा एवं निगरानी तथा यहां तक कि भाषा के प्रयोग के तौर-तरीकों के बारे में बदलाव आएगा।

हम सबको अपने-अपने घरों में बंद रखने वाला यह वायरस जो सरकार के साथ, बाहर की दुनिया के साथ और यहां तक कि एक दूसरे के साथ हमारे संबंधों को बदल रहा है। आने वाले महीनों और सालों के दौरान हम जो परिवर्तन महसूस करेंगे उनसे हम अपरिचित हो सकते हैं और ये परिवर्तन हमारे लिए मुश्किल हो सकते हैं।

हम जानते हैं कि विभिन्न चीजों को छूना, अन्य लोगों से मिलना-जुलना और बंद जगह की हवा में सांस लेना खतरनाक हो सकता है। हाथ मिलाने या हमारे चेहरे को छूने से हम परहेज

करने लग सकते हैं और बार-बार हाथ धोने की प्रवृति विकसित हो सकती है। अन्य लोगों की उपस्थिति के कारण हमें जो राहत या आनंद का अहसास होता था अब हो सकता है कि लोगों के आसपास नहीं होने से हमें अधिक राहत मिले, खास कर वैसे लोगों से जिन्हें हम नहीं जानते हैं। लोग भीड़ पर अविश्वास करेंगे। सामाजिक मेल-मिलाप सीमित होंगे और आने वाले समय में हम कार्यस्थल पर, स्कूलों में और सार्वजनिक जगहों पर किस तरह व्यवहार करेंगे और यहां तक कि बच्चे मिलकर कैसे खेलेंगे यह आने वाले समय में अलग होगा। इस प्रकार कोरोना वायरस के कारण सामाजिक तानेबाने में जो दरारें आएगी उन्हें दूर नहीं किया जा सकेगा। ऐसे कई सवाल होंगे, जैसे कि आने वाले समय में हमें क्या हाथ मिलाने चाहिए, क्या हम कहीं सुरक्षित यात्रा कर सकेंगे या क्या हम छुट्टियां मनाने जा सकेंगे और क्या महामारी के खत्म होने के बाद घर में बनाए गए ऑफिस सेटअप को खत्म कर देंगे।

3. बहुत से लोग जब पीछे मुड़कर देखेंगे तो पाएंगे कि उनके जीवन की कई चीजें बदल गई। हमारे जीवन में बहुत कुछ आदतन है और हमारी ये आदतें हमें काम करने में, हमारे परिवार की देखभाल करने में और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी प्रभावी तरीके से मदद करती हैं। इस व्यवस्था को जब झटका लगता है तो हमारी आदतें बदलती हैं। लोगों के काम करने एवं आने-जाने के तौर-तरीके बदल जाते हैं, उनकी रोजमर्रे की दिनचर्या और उनके जीवन की लय बदल जाती है। उनके खाने-पीने और अपने परिवार के साथ संवाद करने के तरीके बदल जाते हैं। जब लोग चीजों को अलग तरीके से करने को मजबूर होते हैं तो नई आदतें जन्म लेने लगती हैं।
4. जीवन का एक और पहलू जो इस प्रकोप से बुरी तरह प्रभावित हुआ है वह है संस्कृति, खास तौर पर धर्म। महामारी ने विभिन्न तरीकों से धर्म को प्रभावित किया है और मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे और चर्च जैसे विभिन्न धर्मों से जुड़े पूजा स्थल बंद हो गए तथा विभिन्न त्योहारों एवं पर्वो से जुड़ी तीर्थयात्राओं पर रोक लग गई। दक्षिण कोरिया, ईरान और मलेशिया जैसे कुछ देशों में, कोविड-19 मामलों की वृद्धि को धार्मिक स्थलों के साथ जोड़ा गया जबकि भारत में इसके लिए धार्मिक जमावड़े को जिम्मेदार ठहराया गया।

यद्यपि यह महामारी किसी युद्ध से अलग है लेकिन इस पर विजय के लिए मिलकर काम करने की जरूरत है। जब लोगों को अहसास होगा कि सामूहिक कार्रवाई से क्या हासिल हो सकता है तब इस बात में बदलाव आ सकता है कि हम कैसे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और इसका परिणाम यह होगा कि समुदाय की एक व्यापक भावना पैदा होगी। हमें यह सुनिश्चित करना है कि इस महामारी के लिए जो बदलाव हो वह बेहतरी के लिए हो न कि बदतर हालात के लिए। वस्तुतः कोविड-19 महामारी ने दुनिया को काफी हद तक बदल दिया है। हर दिन जैसे-जैसे इसका प्रसार बढ़ रहा है वैसे-वैसे यह अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि इसने कैसे दुनिया को प्रभावित किया है।

संदर्भ स्रोत

1. Cheng, C., Barcelo, J., Hartnett, A. Kubinec, R. & Messerschmidt, L. (2020). CoronaNet: A dyadic dataset of government responses to the COVID 19 pandemic. Working Paper, Preprint, arXiv: https://osf.io/preprints/socarxiv/dkvxy/ (last accessed: May 22, 2020).
2. Claassen, C. (2020). Does public support help democracy survive? American Journal of Political Science 64(1): 118– 134.
3. Bechtel, M.M. & Hainmueller, J. (2011). How lasting is voter gratitude? An analysis of the short and long term electoral returns to beneficial policy. American Journal of Political Science 55(4): 852–868.Depetris Chauvin, E., Durante, R. & Campante, F. (2020). Building nations through shared experiences: Evidence from African football. American Economic Review 110(5): 1572–1602.
4. Easton, D. (1975). A re assessment of the concept of political support. British Journal of Political Science 5(4): 435– 457.
5. Balcells, L. & Torrats Espinosa, G. (2018). The electoral consequences of terrorism: Evidence from a natural experiment. Proceedings of the National Academy of Sciences 115(42): 10624– 10629.
6. Campbell, A.L. (2012). Policy makes mass politics. Annual Review of Political Science 15(1): 333– 351.
7. Evans, G., Heath, A. & Lalljee, M. (1996). Measuring left right and libertarian authoritarian values in the British electorate. British Journal of Sociology 47(1): 93– 112.

भारतीय राजनीति की बदलती दशा और दिशा: एक अध्ययन

डॉ० पुष्पांजली कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, डी.बी.के.एन. कॉलेज, नरहन, समस्तीपुर (बिहार)

लोकतंत्र में जनाकांक्षा की प्रधानता होती है, सैद्धान्तिक रूप में जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से नीति नियम निर्धारण तथा इस व्यवस्था के अन्तर्गत नियुक्त कर्मियों द्वारा व्यवस्था का प्रबंधन किया जाता है। जनता समष्टि की अभिव्यक्ति है। वह विभिन्न जाति, वर्ग, क्षेत्र, सम्प्रदाय में बंटी हुई दिखाई पड़ती है जिससे उनमें सापेक्ष वृहत्तर हित के चिन्तन का अभाव हो रहा है तथा संकीर्णता की भावना बलवती होती जा रही है। स्वतंत्रता के पूर्व देश में संकीर्णता को छोड़कर स्वतंत्रता के व्यापक लक्ष्य के प्रति सभी का समर्पण था। अपनी तमाम विकृतियों के पश्चात्भी भारतीय लोकतंत्र की विश्व के सफलतम देशों में गिनती की जाती है क्योंकि जब भारत में लोकतंत्र स्थापित किया था तो तत्कालिक परिस्थितियां बहुत ही विषम थी। आज भारतीय लोकतंत्र दिशाहीन प्रतीत हो रहा है। जैसा कि लोकतंत्र का तात्पर्य, जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन माना जाता है। लेकिन आज शासन अमीरों, बाहुबलियों एवं अपराधियों के चंगुल में फंस गया है और जनता की स्थिति दास या सेवक की हो गई है। राजनीतिक दल भी दिशाहीन, विचारधारा रहित प्रतीत हो रहे हैं। आज राजनीतिक दल आम जन को भेड़-बकरियों की तरह हांकने की कोशिश करते हैं, इसके लिए कहीं धर्म, तो कहीं जाति, बिरादरी का, कहीं प्रलोभन, तो कहीं डंडे का भय।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में राजनीतिक स्थिरता के प्रयास शीर्षोन्मुखी है। जनसंख्या का दबाव, बढ़ती हुई जनकथाएं, वैज्ञानिक प्रगति, उदारीकरण, निजीकरण एवं भूण्डलीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक सम्बन्धों का प्रसार, राष्ट्रीय सम्प्रभुता के बदलते आयाम और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश इन सभी ने भारतीय राजनीति के स्थापित मानकों को कदाचित विचलित किया है तथा नए मानकों के लिए पथ प्रशस्त किया है। राष्ट्र की प्रगति में सभी की गरिमा सुनिश्चित होती है। राजनीतिक दलों के माध्यम से राजनीतिक सहभागिता की स्थितियां निर्मित होती हैं। देश के नागरिकों द्वारा मताधिकार के प्रयोग द्वारा सत्ता का परिवर्तन हमेशा शान्तिपूर्ण ढंग से आम निर्वाचन के द्वारा होता है। भारतीय राजनीति सभी वर्गों के लिए देश की आत्मा एवं आवाज है। महिलाएं तथा ग्रामीण जनता को हम सभी स्वशासन का अधिकार देकर भारतीय लोकतंत्र ने जता दिया है कि वह प्रगतिशील एवं जीवन्त है। कल्याणकारी राज्य की अवधरणा के अन्तर्गत बच्चों, वृद्धों, विकलांगों को लगातार सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करायी जा रही है।

वर्तमान में नेतृत्व के लिए मानक चारित्रिक व्यवस्था का निर्धारण नहीं है तथा निर्धारित मानकों में भी तमाम छिद्र हैं। राजनीति में अपराधियों का प्रवेश रोकने का कारगार उपाय नहीं हो सका है। कहने को राजनीतिक दलों के कुछ सिद्धान्त है, परन्तु व्यावहारिक धरातल पर उनकी हकीकत में पर्याप्त अन्तर है। जिसे किसी प्रकार सत्ता हथियाना आदर्श तथा लक्ष्य हो गया है। दलीय सिद्धान्त सामूहिक न होकर विशिष्ट व्यक्तियों के कथोपकथन इच्छा की परिक्रमा करने वाला रह गया है। ऐसी स्थिति में शास्त्रवर्णित गुणों से युक्त नेतृत्व के हाथों में सत्ता की बागडोर सौंपने के लिए मानक नियम निर्धारण तथा उसे कार्यान्वित कराने की आवश्यकता है। भारतीय लोकतंत्र की कल्पना करते हुए महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू आदि राजनेताओं ने कभी नहीं चाहा था कि देश का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथों में चला जाए जो कि सच्चरित्रता, सदाचार, संयम, नैतिकता आदि गुणों के खिलाफ जीवन शैली रखते हैं। जब अपराधी प्रवृत्ति के लोग संसद में जायेंगे तो लोकतंत्र और राजनीति निश्चित रूप से प्रभावित होगी। संसद लोकतंत्र का मंदिर है। हम सभी भारतीयों की आस्था और भरोसे का प्रतीक है लेकिन जबसे गठबंधन की राजनीति शुरू हुई है, तभी से संसदीय प्रक्रिया प्रभावित होनी शुरू हुई और अपराधी प्रवृति के लोगों का महत्व और बढ़ता गया है। चुनाव क्षेत्रों में अपनी अपराधिक प्रवृति एवं धनबल के आधार पर संसद एवं विधानमंडल में पहुँचकर संसदीय गरिमा को बेचते हैं। आज संसद के संचालन में यही घटक गतिरोध ला रहे हैं जिसकी कल्पना हमारे संविधान निर्माताओं ने भी नहीं की होगी कि इस तरह संसद की गरिमा को क्षति पहुँचेगी।

आज राजनीति में जाना एक तरह से व्यवसायीकरण सुनी जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। राजनीति में जातिवाद हो गया है। ये सदस्य संसद और विधानमंडल में जाने के पश्चात् समाज और देशहित को दरकिनार करके औद्योगिक का नया जोश पिछड़ावाद और सामने आया है। अतिपिछड़ावाद के रूप में घरानों का हित साध रहे हैं। साथ ही साथ सत्ता प्राप्त करने की लालसा के लिए झुण्ड राजनीति करने से गुरेज नहीं कर रहे हैं बल्कि राष्ट्रीय हित की जगह क्षेत्रीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा अन्य ऐसे तत्त्वों को उठा रहे हैं जो संसदीय प्रक्रिया में अवरोध पैदा कर रहे हैं। यहां तक कि संसद सदस्यों में आत्म चेतना की कमी है। आज के समय में यह हर किसी के द्वारा गौर किया जा रहा है कि अब

संसदीय राजनीति में भाषा की कोई मर्यादा शेष नहीं रह गयी। सामाजिक अवमूल्यन के इस दौर में किसी भी पार्टी का कोई भी नेता किसी भी दूसरी पार्टी के नेता के विरूद्ध किसी भी स्तर तक जाकर भाषा का प्रयोग कर रहा है। वह सारी हदें पार कर रहा है। साथ ही अधिकांश सांसद अपनी स्थानीय विकास निधि को भी उचित प्रकार एवं सही समय पर खर्च नहीं करते हैं जो यह दर्शाता है कि उनकी अपने क्षेत्र के विकास में कोई दिलचस्पी नहीं है।

भारतीय राजनीति में भौतिक संसाधनों की प्राप्ति के लिए असीमित लोभ के वशीभूत अधिकाधिक धनसंग्रह की प्रवृति का नग्ननृत्य सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है, सामाजिक स्थिति ऐसी बनती जा रही है कि अनैतिक रूप से धनार्जन करने वाले व्यक्ति का क्षणिक, स्वार्थवश लोग यशोगान की स्थिति में आ गए हैं। अनैतिक मूल्यों की निन्दा अथवा उसे हतोत्साहित करने की प्रवृति नगण्य हो गई है। प्राचीन काल के ग्रंथों, संदर्भों में सम्पति संग्रह के अधिकार के साथ यह दिशा निर्देश है कि जिसके घर में तीन वर्ष के लिए या उससे अधिक भरण-पोषण के लिए पर्याप्त धन हो उसे ज्योतिष्टोम कर सोमपान करना चाहिए।

वर्तमान समय में राजनीतिक दल क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, हिंसा, वित्त की आवश्यकता, लोकतंत्र का अभाव, महिलाओं की भागीदारी, पार्टी सदस्यों का प्रशिक्षण, सिद्धान्तों और राजनीतिक मूल्यों का अभाव, प्रचार अभियान का तरीका, विघटन एवं गठबंधन की राजनीति, लम्बा-चौड़ा मंत्रिमंडल, जातिवाद, अपराधीकरण, प्रशासन, नेतृत्व क्षमता जैसी समस्याओं के दलदल में बुरी तरह से फँसे हुए हैं। क्षेत्रीय दलों की जातिवादी राजनीति का जहर अब राष्ट्रीय दलों में भी फैला दिख रहा है। जातिवाद सामाजिक सच्चाई है लेकिन हमारे नेताओं ने उसका राजनीतिक उपयोग करते-करते उसे विघटनवाद के कगार तक पहुँचा दिया है, जैसे लोकपाल में आरक्षण होना, लोकसभा में न्यायपालिका में आरक्षण की बात करना आदि। भविष्य में यदि सेना, खेलों में भी आरक्षण की माँग सुनी जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। राजनीति में जातिवाद का नया जोश पिछड़ावाद और अतिपिछड़ावाद और सामने आया है।

आज महात्मा गाँधी का कथन 'संसदीय शासन व्यवस्था में संसद की स्थिति वेश्या और बांझ की है', पूरी तरह चरितार्थ हो रही है। फिर भी अगर संसदीय लोकतंत्र की साख को बचाना है तो इसके लिए जनता को जागरूक होना पड़ेगा और राजनीति में इनकी भागीदारी के साथ ही साथ इनके नैतिक मूल्यों का संचय जरूरी है। अरस्तू ने ठीक कहा कि एक आदर्श राज्य की स्थापना उस राज्य के नागरिकों के चरित्र से हो सकती है। आज जरूरी है आम जनता की भागीदारी बढ़े और अपने नेता का चुनाव ईमानदारी से देश हित के लिए करें, जिससे कि संसदीय प्रक्रिया प्रभावित न हो। वहीं राजनीतिक दलों को भी अपने टिकट बंटवारे से लेकर चुनाव प्रबंध्न और प्रचार में ईमानदारी बरतनी चाहिए, अच्छे उम्मीदवार को टिकट देना चाहिए, अपनी आंतरिक कार्यप्रणाली में आनुवंशिक आधार पर नहीं बल्कि लोकतांत्रिक ढंग से ही चुनाव करना चाहिए जिससे कि संसदीय गरिमा को बचाया जा सके।

भारत जैसे दुनिया के विशालतम लोकतांत्रिक देश में राजनीतिक, कार्यकारी एवं न्यायिक सत्ता कुर्सी पर बैठे लोगों को प्रचुर शक्तियां प्रदान करती है। भ्रष्टाचार का जन्म कहीं न कहीं सत्ता लोलुप्ता का ही परिणाम होता है। सत्ता की भूख जब-जब हदें पार करती है तो वह अकूत ताकत, बेशुमार सम्पति तथा वह सब कुछ जिसे हमारी परम्परा त्याज्य समझती थी, को समेट लेना चाहती है। भारत में भ्रष्टाचार का प्रसार सरकारी महकमे में निर्वाचित राजनीतिज्ञों से लेकर उच्च नौकरशाही और निम्न नौकरशाही के विभिन्न स्तरों पर लम्बवत रूप में अर्थात् ऊपर से नीच तक फैला है। भ्रष्टाचार का सर्वाधिक दुष्प्रभाव देश की गरीब जनता पर पड़ता है। यदि घोटाले और काले धन के रूप में जमा रकम को जब्त कर गरीब बच्चों की स्कूली शिक्षा, मुफ्त भोजन, किताब, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा पर खर्च किये जायें, तो हम भारत को शीघ्र ही विकसित देश की श्रेणी में पहुँचा सकते हैं। अतः इन नेताओं को चुनने वाली जनता अपने आंख, कान को खुले रखकर इस प्रदूषण को कम करने के लिए संकल्पित होकर कठोर निर्णय लेना होगा कि वे अपना कोई भी काम करवाने के लिए रिश्वत कभी नहीं देंगे, थोड़ी परेशानी सहेंगे, थोड़ा नुकसान भरेंगे, थोड़ी लड़ाई लड़ेंगे लेकिन भ्रष्टाचार के आगे घुटने नहीं टेकेंगे। वर्तमान में देश की सबसे बड़ी चुनौतियां राजनीतिक स्तर पर मौजूद है। स्थिरता, परिपक्वता के बावजूद हमारी राजनीतिक प्रणाली में गहरी विसंगतियां पैदा हो गई हैं। राजनीति धर्म, जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय, भ्रष्टाचार, अलगाववाद, पृथकतावाद जैसे संकीर्ण मुद्दों पर आधरित हो गई है। चुनावों की निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है पर आज भी महिलाएं कन्याभ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, बलात्कार, बाल विवाह, बहुविवाह जैसी तमाम समस्याओं से ग्रसित है। क्षेत्रीयता, आर्थिक क्षेत्रीयता, आर्थिक असमानता, अपर्याप्त शिक्षा, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, व्याधि, प्रदूषण, आतंकवाद, नक्सलवाद, अवसरहीनता जैसी समस्याओं का समाधान सुशासन एवं सुनियोजित विकास से ही संभव है। राजनेताओं की दृष्टि व्यापक होनी चाहिए, सामाजिक संरचना की जटिलता शिथिल करने तथा राष्ट्रीय उपलब्धियों को जनमानस तक पहुँचाने में बुद्धिजीवियों की महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। भारतीय लोकतंत्र की गतिशीलता का लाभ तभी है जब इसके सफल संचालन में देश के सभी नागरिक योगदान दें।

हाल ही में देश के इतिहास में एक ऐतिहासिक निर्णय लेते हुए यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 8 नवम्बर, 2016 से 500 और 1000 के नोट बंद करके उसके स्थान पर 500 एवं 2000 का नया नोट शुरू किया, जिससे देश की 86 प्रतिशत मुद्रा चलन से बाहर हो गई। मोदी जी द्वारा ऐसा कठोर कदम उठाने का मुख्य उद्देश्य काला धन, जाली मुद्रा, आतंकवाद, नक्सलवाद, तस्करी एवं ड्रग्स के लिए फंडिंग तथा अन्य देश विरोधी गतिविधियों में इनके इस्तेमाल पर नकेल कसने के लिए ऐसा किया गया, जिसका विरोध केवल विपक्षी राजनेता अपनी राजनीति चमकाने के लिए कर रहे हैं जबकि इसके समर्थन में देश की अधिकांश जनता

खड़ी है। इतना बड़ा कदम देश में पहली बार उठाया गया जिसमें सीधे तौर पर ईमानदारों की बले-बले हो रही है जबकि बेईमानों को कठोर से कठोर सजा का अहसास हो रहा है। इस देश हितैषी मुद्दे पर भी सभी राजनीतिक दल एकमत नहीं हैं पूरा विपक्ष इसके खिलाफ अपने निजी राजनैतिक स्वार्थ के लिए खड़ा है जो भविष्य में देश के लिए एक अच्छा संकेत नहीं है और देश की राजनीति किस दिशा में जा रही है इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वर्तमान भारतीय राजनीति में डकैत, लठैत, सामन्त, आलाकमान जैसे शब्दों का राजनैतिक विमर्श में बाहुल्य बेहद चिन्ताजनक है।

वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में नक्सलवाद भारतीय लोकतंत्र के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में विद्यमान है। स्वतंत्रता के बाद भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की यथास्थिति को जिन आन्दोलनों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, उनमें नक्सलवादी आन्दोलन प्रमुख है। अकारण हिंसा, अपराध एवं उग्रवाद अपनाने के कारण यह आन्दोलन भारतीय लोकतंत्र के लिए एक गम्भीर समस्या के रूप में उभरा ह ै। आतंकवाद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए नासूर है। आतंकवाद का जो स्वरूप भारत में दिखाई पड़ता है वह स्थूल तौर पर 'जिहादी' है। आतंकवाद ने भारत में राजनीतिक संवाद एवं चेतना के धरातल पर एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। आतंकवाद ने वर्गीय विभाजन को धर प्रदान की हैं इससे धर्मिक कट्टरता बढ़ी है। एक वर्ग विशेष के लोगों से घृणा की जा रही है। यह भारतीय समाज की एक नियति बन गई है। हाल ही में संसद भवन पर आतंकी हमले के दोषी अफजल गुरू, ताज होटल पर आतंकी हमले के जीवित आरोपी अजमल कसाब तथा जम्मू कश्मीर में सुरक्षा बलों के साथ मुठभेड़ में मारा गया आतंकवादी बुरहान वानि के जनाजा में लाखों की भीड़ इकट्ठी होना और देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, जादवपुर विश्वविद्यालय, पं. बंगाल में देश विरोधी नारे लगाने वाले कुछ भ्रमित विद्यार्थियों के साथ देश के नामचीन राजनेताओं, मीडिया हाऊसों, फिल्मी हस्तियों का खड़ा होना, देश की सेना के शौर्य और पराक्रम पर अँगुली उठाना आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो हमें सोचनें को मजबूर कर देते हैं। आखिरकार ऐसे लोग देश को किस दिशा में लेकर जाना चाहते हैं। इस देश का भविष्य इनकी वजह से धूमिल हो रहा है।

इसी प्रकार अनुचित प्रकार से अर्जित धन देश की अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक तथा राष्ट्र की सामाजिक समरसता, आदर्शों को नष्ट करने वाला प्रमुख कारक है। भारतीय राजनीति की चिन्तनीय वर्तमान दशा में नेतृत्व के लिए योग्यता हेतु मानक का प्रयोग तथा अन्यायार्जित धन सम्पदा का राष्ट्र के प्रति हरण कर राजनीति की वर्तमान दशा को सुधारा जा सकता है। देश के भींतर और बाहर खतरे लगातार बढ़ रहे हैं, इससे निपटने के लिए जनता के दिलों को जीता जाये, वह भी राजनीति के माध्यम से, आर्थिक विकास, त्वरित न्याय और जन-शिकायतों की तीव्र सुनवाई हो, ये सब बेहतर प्रशासन की कुंजी है। अहिंसक जन आन्दोलनों की प्रकृ ति जटिल होने के कारण इनसे निपटने के लिए धैर्य से काम लेना होगा। देश में लोकतंत्र की सफलता और उसे जीवन्त रखने के लिए एक बार फिर धरती पुत्रों के निकट जाना होगा, उनकी कठिनाइयों को जानना होगा। अब इस जनतंत्रीय व्यवस्था में 'तन्त्र' तो विभिन्न प्रकार के मिल जायेंगे किन्तु 'जन' तो दूर तक नजर नहीं आता है। जन को इसे पाने के लिए संघर्ष करना होगा।

वस्तुतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष कई तरह की नवीन प्रवृत्तियां उभर कर सामने आई हैं, इनमें प्रमुख हैं- क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, पर्यावरण संकट, भुखमरी, बेरोजगारी, गरीबी, दूरस्थ नियंत्रित प्रधनमंत्री, गठबंधन राजनीति, नौकरशाहों का दलों की तरफ आकर्षण, न्यूनतम साझा कार्यक्रम। इनमें से क्षेत्रवाद, भाषावाद और जातिवाद भारतीय राजनीति के ऐसे मुद्दे है जो कभी समाप्त नहीं हो सकते। गठबन्धन की राजनीति परिस्थितियों के गर्भ से उत्पन्न होती है। राजनीतिक गठबन्धन बेशक सत्ता सुख सुलभ कराते हैं लेकिन इसमें शामिल घटक दलों की बार-बार की दोस्ती, धोखाधड़ी एवं सौदेबाजी ही गठबन्धन राजनीति की कड़वी सच्चाई बन गई है। यह राष्ट्रीय और राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर जिम्मेदार और गैर जवाबदेह होता है। वर्तमान में राष्ट्र हित में बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था की बनती संस्कृति को रोकना होगा और उनकी भूमिका को भी सीमित करना होगा जिससे राष्ट्रीय एकता बनी रहे और केन्द्र शक्तिशाली स्थिति में रह सके, जिसे क्षेत्रीय पार्टी अपनी संकीर्ण माँगों के लिए झुका न सके। महिला आरक्षण विधेयक भी भारतीय राजनीति का ज्वलन्त विषय बन गया है। महिलाएँ अपने इस अधिकार की प्राप्ति हेतु एकजुट होकर संघर्ष करें तभी उनके सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। पंचायतों में महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण उनके सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास की संभावनाओं के दरवाजे खोल देगा। स्वतंत्रता के उपरान्त जाति भारतीय राजनीति का निर्धारक तत्व रहा है। आज राजनीतिक पार्टियों द्वारा सत्ता प्राप्ति के लिए जातिवाद के आधार पर राजनीतिक ध्रुवीकरण एवं सामाजिक विखण्डन लोकतंत्र एवं राष्ट्रीय एकता के लिए हितकर नहीं माना जा सकता है।

इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ एवं सफल बनाने में संसद, न्यायिक प्रक्रिया, सतर्क मीडिया, जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग, चुनाव आयोग और संगठित कार्यकारी वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय राजनीति की दशा पर विचार किया जाए तो राजनीति का अपराधीकरण एवं अपराध का राजनीतिकरण, उत्तरदायित्व का अभाव, धनशक्ति और भुजबल का प्रभुत्व, धर्मवाद, जातिवाद, गरीबी, बेरोजगारी, महिलाओं का शोषण, निर्धनों एवं अल्पसंख्यक समूहों का दमन, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं लिंगभेद का कुप्रभाव जैसी त्रुटियां सामने प्रमुख रूप से आती हैं। वर्तमान समय में

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की दशा को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले कारकों में आतंकवाद एवं व्यापक भ्रष्टाचार है जिसने देश को अपने गिरफ्त में ले रखा है। जिसका उपचार गाँधीवादी मूल्यों के द्वारा किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. गोस्वामी, भालचन्द 2012: विधि और सामाजिक न्याय अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़, 2013
2. विप्लव, नरेश: लोकतत्र के प्रमुख स्तम्भ, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2012
3. सेंगर शैलेन्द्र: भारतीय प्रशासन बदलते आयाम, कविता बुकसैंटर, दिल्ली, 2015
4. सक्सेना, हरिशरण: संसदीय प्रजातंत्र में विपक्ष की भूमिका, पल्लवी पब्लिकेशन्स, हरियाणा, 2009
5. दुबे, एम.पी.: धर्मनिरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातंत्र, नेशनल पब्लिकेशिन हाउस, नई दिल्ली, 2016
6. टंडन, बिशन: जनतंत्र और प्रशासन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
7. गजराज, पदम सिंह: चेतना गुजरात: भारतीय राजनीति राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे और चुनौतियां, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014

समग्र तथा बहु-विषयक शिक्षा

Holistic and Multi-Disciplinary Education

उमेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (बी.एड. विभाग) श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया (उ.प्र.)

सारांश

प्रत्येक देश चाहता है कि हमारे देश मे शिक्षा की अच्छी व्यवस्था हो, जिसके माध्यम से देश का विकास सही दिशा में हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश की शिक्षा नीति उच्च गुणवत्ता वाली हो। इसलिए भारत में भी समय-समय पर विभिन्न शिक्षा नीति लागू की गयी लेकिन उसके वांछित परिणाम अभी तक प्राप्त नहीं हुई, इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के नाम से नई शिक्षा नीति लायी गई जिसमें उच्च शिक्षा के लिए समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा (Holistic and Multi-Disciplinary Education) पर जोर दिया गया। यह व्यवस्था प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय से लेकर अन्य व्यवस्था में भी रहा है किन्तु इस व्यवस्था से हम कुछ दूर हो गये थे लेकिन अब लगा कि हमें समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा पर जोर देना चाहिए, इसको ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में प्रावधान किया गया है। समग्र तथा बहु विषयक शिक्षा पर लोग सवाल उठाते है कि किसी व्यक्ति की लिए प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञ होना व्यवहारिक रूप से कैसे संभव है। उन्हें डर है कि इससे कई विषयों का ओवर लैप हो सकता है तो यहाँ यह स्पष्ट करना उचित है कि समग्र तथा बहु विषयक शिक्षा हर किसी को हर चीज में विशेषज्ञ बनाने की परिकल्पना नहीं करती बल्कि इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को हर चीज के बारे में कुछ, किसी चीज के बारे में कई चीजें और एक चीज के बारे में सब कुछ समझना और जानना है।

मुख्य शब्द- शिक्षा नीति, बहुविषयक, अन्तर्विषयक, विश्वविद्यालय, स्पर्धा, अनुकूलनशीलता, हरफनमौला प्रवेश, निकास इत्यादि।

प्राचीन काल से प्रत्येक समाज तथा देश अपने नागरिको को शिक्षा प्रदान करके स्वयं को विवेक समाज (wisdom Socity) बनाने का प्रयास करता है। वस्तुत व्यैक्तिक सामाजिक व राष्ट्रीय 'विकास में शिक्षा के योगदान की भूमिका व महत्व को देखते हुए शिक्षा को व्यवस्था करता है। भारत में भी समय के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में शिक्षा जगत की गरिमा को पुन:स्थापित करने के लिए अनेक शैक्षिक आयोगों एवं विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये है और इन्ही के आधार पर भारत की शिक्षा नीति बनती रही। किन्तु वांछित परिवर्तन और दिशा अभी तक प्राप्त नहीं हो पाये है। भारत सरकार द्वारा 1968 में स्वतंत्र भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गयी थी एवं सन् 1986 में पुन: भारत सरकार द्वारा नवीन शिक्षा नीति घोषणा की गयी जिसमें सन् 1992 में कुछ परिवर्तन किये गये थे। सन् 2017 में इसरों के पूर्व निदेशक डा0 के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय नीति की ड्राफ्ट समिति' का गठन किया गया था। जिसने सन् 2019 में अपना मसौदा प्रस्तुत किया जिसमें वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने पाँच मुख्य चुनौतिया- (1) पहुँच (Access), (2) समानता (Equity), (3) गुणवत्ता (Quality), (4) वहनीयता (ffAordability), तथा (5) जवाबदेही (Accountability) के साथ राष्ट्र के भावी नागरिको के लिये समग्र तथा बहु-विषयक शिक्षा (Holistic and multi Disciplinary Education) पर जोर दिया था। इनको शामिल करते हुये 34 वर्षो के पश्चात् 29 जुलाई 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्रमोदी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 (National Eduacation Policy 2020) का अनुमोदन करके राष्ट्र को नई शिक्षा नीति प्रदान की गयी।

भारत में समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा (Holistic and multi-Disciplinary Education) की बात की जाय तो प्राचीन समय से उच्च शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न रूपो में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शामिल रहा है। यदि हम वैदिक काल के शिक्षा व्यवस्था को समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा के रूप में देखे तो उच्च शिक्षा के अन्तर्गत संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण तथा धर्म एवं नीतिशास्त्र, कर्मकाण्ड, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान, सैनिक शिक्षा कृषि, पशुपालन, कला कौशल, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, प्राणीशास्त्र, इतिहास, पुराण, नक्षत्र विद्या, न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विद्या अध्ययन किया जाता था। इसी प्रकार तक्षशिला व नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों से लेकर व्यापक भारतीय साहित्य में विभिन्न विषयों के संयोजन की चर्चा मिलती है। प्राचीन भारतीय साहित्य, बाणभट्ट की कादम्बरी की 64 कलाओं की शिक्षा बताती है। इन 64 कलाओं में ललित कलाओं के अलावा वैज्ञानिक व व्यावसायिक क्षेत्रों के अनेक विषयों के साथ अनेक व्यावहारिक कौशल भी सम्मिलित है। इस विचार को भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पुन: शामिल करना होगा क्योकि यह 21वीं शताब्दी की एक जरूरत है। इसलिए स्नातक शिक्षा में विज्ञान, तकनीकी, अभियांत्रिकी व गणित (STEM) के साथ मानवीकि व कला शिक्षा को एकीकृत करने पर सकारात्मक शैक्षणिक परिणाम प्राप्त हुए है एवं समग्र व बहु-विषयक दृष्टिकोण से अनुसंधान में भी सुधार व बढोत्तरी हुई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रारूप में भाग-।। के अन्तर्गत अध्याय-11 में समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा की चर्चा की गयी है जिसके प्रमुख बिन्दू कुछ निम्न प्रकार है:-

- इसमें समग्र और बहुविषयक शिक्षा के अन्तर्गत मनुष्य के सभी क्षमताओं यथा बौद्धिक, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, भावात्मक, तथा नैतिक शक्तियों को एकीकृत तरीके से विकसित करने की बात कही गयी है और इसी के माध्यम से 21वीं शताब्दी की दृष्टि से व्यक्ति का सर्वागीण विकास करने की बात कही गयी है।
- 21वीं शताब्दी और आज के इस औद्योगिक क्रांति का नेतृत्व करने के लिए समग्र और बहु-विषयक शिक्षा की आज जरूरत है तकनीकी संस्थान भी कला व मानविकी के साथ समग्र व बहुविषयक शिक्षा की ओर बढ़ेगे तथा कला व मानविकी के छात्र भी विज्ञान व साफ्ट स्किल्स सीख सकेगे अर्थात कोई भी व्यक्ति अपने मनपसन्द का विषय पढ़ सकता है।
- इसमें पाठ्यक्रम में लचीलापन होगा, रचनात्मक और कल्पनाशक्ति के क्षमता को बढ़ाने पर जोर होगा तथा प्रवेश तथा निकास की प्रक्रिया लचीली होगी अर्थात Multiple Entry and Exit option की व्यवस्था होगा। कठोर अनुशासनात्मक सीमाओं को घटा कर आजीवन सिखने की सम्भावना को बढ़ावा दिया जायेगा।
- बड़े बहुविषयक विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के द्वारा उच्च गुणवत्ता की शिक्षा सामग्री उपलब्ध कराया जायेगा। अर्थात किसी विश्वविद्यालय में कोई उच्च गुणवत्ता ज्ञान वाला प्राध्यापक है तो उसके व्याख्यान शिक्षण सामग्री अन्य विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को भी उपलबध कराया जायेगा। पाठ्यक्रम में लचीलापन होगा तथा रूचि वाले विषयों को पढ़ने का विकल्प होगा। शिक्षणशास्त्र अर्थात पढ़ाने में वार्ता, चर्चा, बहस, शोध तथा क्रास-डिसिप्लनरी व अन्तर्विषयक सोच के अवसर पर अधिक बल दिया जायेगा।
- देश के सभी उच्च शिक्षा संस्थानों में बहु-विषयक भारतीय शिक्षा तथा वातावरण को प्रोत्साहित करने के लिए जरूरी सभी विषयों के विभागों को स्थापित तथा मजबूत किया जायेगा। इन सभी विषयों में स्नातक कार्यक्रमों को विभागों से अथवा विभागों में उपलब्ध न होने पर ODL (Open and Distance Learning) प्रणाली से करने पर क्रेडिट दिया जायेगा। अर्थात विद्यार्थी ऑन-लाईन मोड से MOOCs के माध्यम से भी कोर्स कर सकता है।
- समग्र तथा बहु-विषयक शिक्षा के विचार को साकार करने के लिए लचीले व नवीन पाठ्यक्रम में सामुदायिक जुड़ाव व सेवा, पर्यावरण शिक्षा तथा मूल्य आधारित शिक्षा के क्रेडिट आधारित कोर्स सम्मिलित रहेंगे। तेजी से जुड़ती जा रही दुनिया में वैश्विक समझ को बढ़ाने के लिए वैश्विक नागरिक शिक्षा दी जायेगी एवं सीखने की व्यवहारिक पक्ष के साथ जुड़ने के लिए इन्टर्नशीप के अवसर दिये जायेंगे।

उच्चतर शिक्षा

(Higher Education)

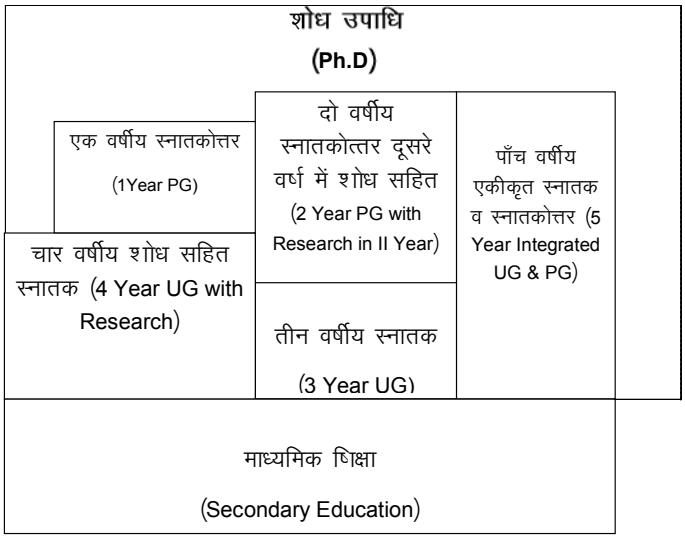

- उच्च शिक्षा में डिग्री कार्यक्रमों की अवधि व संरचना में तद्नुसार बदलाव किया जायेगा। स्नातक उपाधि 3 या 4 वर्ष की होगी जिसमें उपयुक्त प्रमाणन के साथ निकास (Exit) के कई विकल्प होंगे। जैसे एक वर्ष में प्रमाण पत्र, दो वर्ष में डिप्लोमा तथा 3 वर्ष में डिग्री दी जा सकती है। 4 वर्षीय स्नातक कार्यक्रम में बहु-विषयक शिक्षा पर जोर दिया गया है तथा शोध परियोजना पूरी करने पर 'शोध सहित उपाधि' दी जा सकती है एक अकादमिक क्रेडिट बैंक (Acadmic Bank of Credits-ABC) बनाया जायेगा जो विभिन्न संस्थानों से अर्जित क्रेडिटों को डिजिटल रूप में संकलित करेगा जिससे तद्नुसार डिग्री दी जा सके।
- उच्चतर शिक्षा संस्थाओं को विभिन्न प्रारूपों में स्नातकोत्तर कार्यक्रम चलाने की छूट होगी- (I) तीन वर्ष का स्नातक पूरा करने वालों के लिए दो वर्षीय कार्यक्रम, (II) शोध सहित चार वर्ष का स्नातक पूरा करने वालो के लिए एकवर्षीय कार्यक्रम तथा (III) पाँच-वर्षीय एकीकृत स्नातक/स्नातकोत्तर कार्यक्रम हो सकता है। पी0-एच0डी0 के लिए स्नातकोत्तर डिग्री या शोध सहित चार-वर्षीय स्नातक डिग्री अनिवार्य होगी। जबकि एम0फिल कार्यक्रम को बन्द कर दिया जायेगा।

- समग्र तथा बहु-विषयक शिक्षा के लिए प्ज्ए् प्ड आदि के तर्ज पर बहु-विषयक शिक्षा तथा शोध विश्वविद्यालयों (Multidisciplinary Education and Research Universities-MERU"s) की स्थापना की जायेगी। इनका उद्देश्य शिक्षा के गुणवत्ता के उच्चतम् वैश्विक मानकों को प्राप्त करना होगा। ये देश भर में बहु-विषयक शिक्षा के उच्चतम मानक बनाने में सहायता करेंगे।
- स्टार्ट अप इन्क्यूबेशन सेन्टर, प्रौद्योगिकी विकास तथा प्रमुख क्षेत्रों में अनुसंधान केन्द्र खोलने एवं उद्योग अकादमिक जुड़ाव तथा अन्तर्विषयी अनुसंधान पर जोर देकर उच्चतर शिक्षा संस्थानों के द्वारा अनुसंधान व नवाचार पर ध्यान दिया जायेगा एवं संक्रामक रोगों, महामारी, वायरोलॉजी, निदान, टीका जैसे प्रासंगिक क्षेत्रों में अनुसंधान की अगुवाई करेंगे। छात्रों में नवाचार को बढ़ावा देने के लिए विशिष्ट सहज तंत्र (Hand Holding Mechanism) तथा स्पर्धा (Competition) विकसित करेंगे। राष्ट्रीय अनुसंधान प्रतिष्ठान (Natinal Research Foundation-NRF) जीवन्त अनुसंधान व नवाचार संस्कृति को समझ व समर्थन करने में मदद करेगा।
- वर्ष 2040 तक सभी उच्च शिक्षा संस्स्थान बहु-विषयक बनने का प्रयास करेगे, जिनमें से प्रत्येक में 3000 या अधिक छात्र होगे तथा 2030 तक देश के प्रत्येक जिले में कम से कम एक बड़ा बहु-विषयक शिक्षा और अनुसंधान विश्वविद्यालय (MERU) होगा।

उपरोक्त मुख्य बिन्दुओं से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में पहुँच, गुणवत्ता, समावेशन, लचीलापन, समग्रता पर जोर देने के साथ ही समग्र तथा बहुविषयक शिक्षा पर जोर दिया गया है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य जीवन, लोगों, स्थानों, कलाओं, विज्ञानों, भाषाओं और सभी प्रकार के ज्ञान, कौशल दक्षताओं का निर्माण करना है जिससे ऐसे हरफनमौला लोगों का निर्माण हो सके जो जीवन के हर क्षेत्र में चौंम्पियन की तरफ काम करें यह भी बहुविषयक और समग्र शिक्षा का उद्देश्य है। कुछ लोग सवाल उठाते है कि किसी व्यक्ति के लिए प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञ होना व्यवहारिक रूप से कैसे संभव है, उन्हें डर है कि इससे कई विषयों का ओवरलैप हो सकता है तो यहॉ यह स्पष्ट करना उचित है कि समग्र और बहु-विषयक शिक्षा हर किसी को हर चीज में विशेषज्ञ बनाने की परिकल्पना नहीं करती है बल्कि इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को हर चीज के बारे में कुछ, किसी चीज के बारे में कई चीजें और एक चीज के बारे में सबकुछ समझना और जानना है। यह शिक्षा उन व्यक्तियों के लिए अत्यधिक फायदेमंद है जो विभिन्न विषयों के बारे में सीखने का आनन्द लेते है। बहु-विषयक शिक्षा प्राप्त करने से विविध प्रकार के कौशल विकसित होते है। अनुकूलनशीलता को बढ़ावा मिलता है, समस्या समाधान को प्रोत्साहित किया जाता है, रचनात्मक बढ़ती है और कैरियर के अवसरों की दुनिया खुलती है। परन्तु कुछ आलोचनाओं के बावजूद इस शिक्षा नीति के अनेक सकारात्मक पक्ष है। इस प्रकार बहु-विषयक शिक्षा विद्यार्थियों के आत्म जागरूकता आत्म खोज और आत्मबोध की आजीवन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ायेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. लाल, रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएं, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
2. गुप्ता, एस0पी0, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
3. मोहम्मद गीर, कश्मीर विश्वविद्यालय
4. संसद टी0वी0, भारत सरकार
5. बी0बी0सी0 न्यूज, दैनिक हिन्दुस्तान, जागरण, अमर उजाला

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की अवधारणाः एक विमर्श

राजेश रंजन कुमार

नेट-2020 (दिसम्बर)

जहां तक दलित साहित्य की अवधारणा का सवाल है तो इस संबंध में आज भी दलित साहित्यकारों एवं गैरदलित साहित्यकारों में कशमकश जारी है। दरअसल, दलित साहित्यकार आज भी मानते है कि दलितों की पीड़ा का आख्यान दलित ही कर सकता है क्योंकि 'जाके पांव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई', लेकिन गैरदलित लेखकां का मानना है कि बिना बिवाई फटे भी उसके दु:ख-दर्द और पीड़ा को महसूस किया जा सकता है और सहानुभूतिपूर्वक उसका वर्णन भी किया जा सकता है। यानी स्वानुभूति और सहानुभूति का द्वंद्व आज भी जारी है। मशहूर मार्क्सवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने लोकतंत्र की परिभाषा 'ऑफद पीपुल' बाई द पीपुल एण्ड फॉर द पीपुल' की तर्ज पर स्वीकार किया है कि दलित साहित्य वह है जो दलितों द्वारा, दलितों के बारे में और दलितों के लिए लिखा गया है जो केवल अंबेडकरवाद से प्रभावित है, उसमें न गांधीवाद की मिलावट है और न ही मार्क्सवाद की। लेकिन दूसरे मार्क्सवादी आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय नामवर सिंह से कुछ भिन्न मत रखते हैं।

उनकी नजर में दलित साहित्य को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो दलितों के द्वारा, दलितों के बारे में, दलितों के लिए लिखा गया साहित्य और दूसरा दलितों के बारे में गैरदलित लेखकों का साहित्य। बकौल मैनेजर पाण्डेय करूणा और सहानुभूति के सहारे गैरदलित लेखक भी दलितों के बारें मं अच्छा साहित्य लिख सकते है, लेकिन सच्चा दलित साहित्य वहीं है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है, क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति और करूणा से नहीं, बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है। शायद इदसीलिए मशहूर दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय का मानना है कि दलित साहित्य दलितों का ही हो सकता है, क्योंकि उन्होंने जो नारकीय उपेक्षापूर्ण जीवन जिया है, वह कल्पना की चीज नहीं है। दलित साहित्य में गुस्सा और नफरत अनुभूति प्रेरित है। उसे कला के छल की जरूरत नहीं है आज भी वर्चस्ववादी ताकतें हमें वंचितों की कोटि में रखना चाहती है। दलित साहित्य की पहचान है- चेतना का उगता हुआ सूरज। वहीं हमारी मुक्ति का संदेश होगा। दलित साहित्य जख्मी लोगां का दस्तावेज है। बकौल ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य उन लोगों की व्यथा का साहित्य है जिन्होंने अस्पृश्यता का दंश झेला है और झेल रहे हैं। वाल्मीकि के मुताबिक जो दलित बस्ती में चार दिन गुजार ले, वह वर्ण-व्यवस्था के माने समझ जाएगा। उसकी दृष्टि बदल जाएगी, उसके सारे मूल्य बदल जाएंगे। कुछ ऐसी ही बात कँवल भारती भी करते हैं, क्योंकि वे भी मानते हैं कि दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है जिन्हें गांव के बाहर हाशिर पर रखा गया है और उनकी जीवन-शैली के 'कोड' निर्धारित है कि उन्हें क्या-क्या नहीं करना है। बाबासाहेब अंबेडकर के दर्शन से नई दृष्टि प्राप्त कर लिखा जा रहा है दलित साहित्य जिसमें निषेध, नकार और विद्रोह की भावना भरी हुई है। बकौल ताराचंद खांडेकर दलित साहित्य अंधश्रद्धा, शब्दप्रामाण्य, ग्रंथ प्रामाण्य, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता एवं धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है।

हिन्दीं दलित साहित्य की जड़ें मराठी में हैं या हिन्दीं में हैं, इसको भी लेकर बहुत दिनों तक ऊहापोह बना रहा है। कंवल भारती जैसे लेखक तो उसे हिन्दीं साहित्य के आदिकाल से जोड़ते हैं और कहते है कि सिद्ध कवि सरहपाद को हिंदी काप्रथम कवि माना जाता है। इन्हें से हिंदी साहित्यच का आदिकाल आरंभ होता है। लेकिन यह वास्तव में दलित साहित्य का आदिकाल है। इसके बाद जो धारा हिंदी में प्रवाहित हुई वह प्रतिक्रांति की धारा है। वर्ण-व्यवस्था के विरोध और सामाजिक परिवर्तन की जो क्रांति बुद्ध ने की थी, आदिकाल के सिद्ध कवि इसी क्रांति के वाहक थे। इनमें 37 सिद्ध शूद्र थे। कंवल भारती की बातों को यदि रामचन्द्र शुक्ल के कथन से मिलाकर देखें तो इसमें सत्यता नजर आती है। शुक्लजी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है, ''84 सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दरजी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अत: जाति-पांति के खंडन तो वे आप ही थे'' राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य धारा ' में जिन 84 सिद्धों की जीवनियां दी हैं, उनसे भी उनकी जातियों और पेशों का पता चलता है। उनमें 18 शूद्र, 1 मछुआ, 2 तँतवा, 1 धोबी, 1 लकड़हारा, 1 लोहार, 1 डोम, 1 चिड़ीमार, 1 कहार, 1 दर्जी, 1 चमार और 4 स्त्रियां शामिल है। लेकिन इनके अलावा शेष अगड़ी जातियों के सिद्ध हैं जिनमें कुछ वर्ण-व्यवस्था के विरोधी हैं। बकौल कँवल भारती सरहपाद ब्राम्हण थे, पर वर्ण व्यवस्था के खिलाफ उन्होंने जबर्दस्त विद्रोह किया था। उन्होंने वर्ण के बाहर नीची जाति की शर (तीर) बनाने वाली कन्या से विवाह किया था। इसलिए वह सरह कहलाये। वर्ण-व्यवस्था का विनाश और समता की स्थापना ही दलित साहित्य का लक्ष्य है और आदिकाल के सिद्ध कवि इसी चेतना के संवाहक है।

सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की इसी प्राचीन धारा के समानांतर ब्राम्हण साहित्य की परंपरा अस्तित्व में आयी जिसकी मुख्य प्रवृत्तियां वर्ण-व्यवस्था के समर्थन की रहीं। यद्यपि आदिकाल में प्रतिक्रांति की धारा को गति नहीं मिली, क्योंकि इसके बाद कबीर आदि दलित संत कवियों का युग आया जिन्होंने वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता के खिलाफ अपने विद्रोह को और तेज किया, परंतु इसी युग में ब्राम्हाणों द्वारा प्रतिक्रांति की धारा सिापित करने के प्रयास आरंभ हो गये थे। इनमें रामानंद अग्रगण्य थे। रामानंद को लेकर भी साहित्येतिहास में एक तरह का भ्रम है कि वे जात-पांत में यकीन नहीं करते थे, जबकि यह सच नहीं है 'जात-पांत पूछे नहिं कोई हरि को भजै सो हरि का होई' का संबंध भक्ति भावना तक सीमित है लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था के मामले में नहीं। शुक्ल जी ने 'हिन्दीं साहित्य का इतिहास' में लिखा है, ''भक्ति मार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है- जैसा कि कुछ लोग समझा करते हैं कि रामानंद जी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न-भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया।'' शायद यही कारण है कि दलित साहित्यकार रामानंद को कबीर और रैदास का गुरू मानने से इनकार करते है, क्योंकि जब दोनों के बीच कोई वैचारिक समता ही नहीं थी, तब गुरू-शिष्य संबंध कैसे स्थापित हो सकता था। दलित साहित्यकार यह मानते हैं कि कबीर और रैदास जैसे कवियों की जाति और वर्ण-व्यवस्था के विरोध की धारा के समानांतर तुलसी दास जैसे ब्राम्हण कवियों की काव्यधारा प्रतिष्ठित होती है जिसे प्रकारांतर से वर्ण-व्यवस्था के समर्थन और ब्राम्हणवाद के उत्थान की धारा भी कहा जा सकता है। शायद यही कारण है कि शिवकुमार मिश्र जैसे प्रगतिशील लेखकों को भी सगुणोपासक धारा का सामाजिक प्रदेय नहीं के बराबर दिखता है। क्योंकि रूढ़ सामाजिक व्यवस्था से टकराने का प्रयास कोई भी निचली जाति का कवि नहीं करता, यहीं पूरे सगुण धारा में एक भी निचली जाति का कवि नहीं है, क्योंकि राम और कृष्ण के दरबार में कोई अछूत प्रवेश भी कैसे कर सकता था।

करीब-करीब रीतिकाल तक यही सिलसिला चलता है क्योंकि भोग-विलास में डूबे राजाओं- महाराजाओं को खुश करना ही कवियों का उद्देश्य था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जून 1901 की 'सरस्वती' में रीतिकालीन सामंती कविता के विरूद्ध 'नायिका भेद' शीर्षक लेख में लिखा- ''राज्याश्रय मिलने की देरी, राजाओं को सब प्रकार की नायिकाओं के रसास्वादन का आनंद चखाने के लिए कविजी की देरी नहीं। 10 वर्ष की अज्ञात यौवना से लेकर 50 वर्ष की प्रौढ़ा तक का सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बतलाकर और उनक हाव-भाव, विलास आदि की सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविगण संतोश नहीं करते थे। दुराचार में सुघरता होने के लिए दूती कैसी होनी चाहिए, मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि में से इस काम के लिए कौन सबसे अधिक प्रवीण होती है, इन बातों का भी वे निर्णय करते थे।'' जाहिर है कवियों का उद्देश्य सामाजिक भेदभाव, जात-पांत, छुआछूत, ऊँच-नीच की समस्या को केन्द्र में रखना था ही नहीं। कहने को तो भारतेन्दु युग को हिन्दी में पुनर्जागरण, नवजागरण जेसे नामों से संबोधित किया गया, लेकिन वीरभारत तलवार की 'रस्साकशी' की माने तो हिन्दी पट्टी में नवजागरण आया ही नहीं। उन्होंने तो पूरे युग को हिन्दी बनाम उर्दू, हिन्दू बनाम मुस्लिम और गोरक्षा तक सीमित कर दिया है। फिर दलित लेखन का सवाल ही कहां उठता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी कालीन 'सरस्वती' में 1914 में हीरा डोम की भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' जरूर छपी। लकिन उसके बाद दलित चेतना की कोई रचना उसमें दिखाई नहीं देता। 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण करने के कई साल बाद द्विवेदीजी ने पं. श्रीराम शर्मा को 21.09.33 को लिखा था- ''खूब लिखिए- कोरियों, चमारों आदि गरीबों के चरित लिखकर आत्मा को उन्नत कीजिए। बड़े-बड़े चरित लिखने वाले तो बहुत है, दीन-दुखियों के जीवन का खाका खींचने वाले कोई भी नहीं। अंग्रेजों के मुल्क में तो कीटपतंगों और पशु पक्षियों तक के जीवन चरित निकलते है।'' पता नहीं द्विवेदी जी और शर्माजी दोनों ने किसी कोरी या चमार की जीवनी लिखी या नहीं?

छायावादी कवियों में भी किसी कवि को दलित अपना कवि नहीं मान पाते क्योंकि उनमें वर्ण-व्यवस्था और सामाजिक भेदभाव से टकराने की क्षमता नहीं। वे सदियों से चली आ रही सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था में ही भेदभाव दूर करने की बात करते हैं, लेकिन सामाजिक परिवर्तन की नहीं। प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला में निराला को प्रगतिशील कवि माना जाता है, लकिन दलित लेखक उन्हें दलित कवि नहीं मानते। वे मानते हैं कि निराला वेदांती थे, शंकर के अद्वैत दर्शन से प्रभावित थे और तुलसीदास उनके प्रिय कवि थे जो वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक थे रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद में उनकी घारे आस्था थी। इसे भी दलित लेखकों ने वेदांत से ही जोड़कर देखा है। दलित लेखकों का आरोप है कि वे ब्राम्हण न होते तो उनको महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जाता।

कँवल भारती ने तो निराला के समकालीन कवि निरंकार देव सेवक का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने सर्वाधिक क्रांतिकारी और प्रगतिशील कविताएं लिखी थीं पर उनका नाम न तो हिंदी साहित्य के इतिहास में मिलता है और न हिंदी के नामवर आलोचक उनकी चर्चा करते हैं। सेवक जी की अपनी मान्यता थी कि उनमें दो दोष थे जिनके कारण इतिहास लेखकों ने उनकी उपेक्षा की। एक, वह ब्राम्हण नहीं थे और दो वह कम्युनिस्ट नहीं थे। कम्युनिस्ट निराला भी नहीं थे, परंतु वह ब्राम्हण अवश्य थे। निराला पर यह भी आरोप है कि 1922 में पंजाब में लाला संतराम ने एक 'जात-पांत तोड़क मंडल' बनाया और उसके माध्यम से उन्होंने वर्णाश्रम पर करारा हमला किया, लेकिन निराला ने बजाय उनका समर्थन करने के उस मंडल का विरोध किया और शंकराचार्य की निंदा करने के लिए संतराम की कड़ी भर्त्सना की।

यही नहीं, निराला ने वर्ण-व्यवस्था का जबरदस्त पक्ष लेते हुए 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' पर लंबा लेख लिखा। दलितों का यह भी कहना है कि निराला की सर्वाधिक प्रशंसनीय कविताएं 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' हैं जिनका दलित चेतना की दृष्टि से काई महत्व नहीं ये दोनों की कविताएं ब्राम्हणवाद एवं वर्णाश्रम धर्म की प्रबल समर्थक हैं। निराला की 'तोड़ती पत्थर', 'जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाओं', 'चतुरी चमार' और 'कुल्ली भाट' को जरूर दलित चेतना का कवित मानने को तैयार नहीं, क्योंकि उन्हें लगता है कि जो वर्णाश्रम का पक्षधर हो, ब्राम्हणवाद का हिमायती हो, वह दलित चेतना का वाहक कैसे हो सकता है? निराला की तरह प्रेमचंद को भी दलित लेखक अपना नहीं मानते। बस इतना वे जरूर मानते हैं कि दलित जीवन पर लिखने वाले वे पहले कहानीकार थे जिन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक भेदभाव और अस्पृश्यता के सवाल जरूर उठाये हैं, लेकिन उनका संबंध अंबेडकर की दलित चेतना से न होकर गांधीवादी हरिजनोत्थान से है क्योंकि उन्होंने दलित होने की पीड़ा नहीं झेली थी, यानी उनका साहित्य सहानुभूति पर आधारित है, स्वानुभूति परक नहीं। अब तो प्रेमचन्द की कुछ कहानियों यथा, 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति' और 'कफन' एवं उनके उपन्यास 'रंगभूमि' पर दलित लेखकों ने अनेक सवाल उठा दिये हैं। उनके हिसाब से दलित पात्रों में जो आक्रोश होना चाहिए, वह प्रेमचंद के दिलत पात्रों में नहीं है। बहरहाल, जो थोड़ी बहुत कसर रह गयी थी, उसे डॉ. धर्मवीर की नयी पुस्तक 'सामंत का मुंशी: प्रेमचंद' ने पूरी कर दी। धर्मवीर ने लिखा है, ''असल में, चमारों के बारे में लिखी गई प्रेमचंद की बहुचर्चित कहानी 'कफन' में सच का 'एक बटा नौ भाग' ही कहा गया है। कफन का 'आठ बटा नौ भाग' अनकहा रह गया है जो प्रेमचंद के पेट में है। केवल साहित्य की दलित समीक्षा ही उस पूरे आइसबर्ग को बाहर लाएगी। सारी कहानी नये सिरे से स्पष्ट हो जाती यदि प्रेमचंद इस कहानी की आखिरी लाइन में दलित जीवन का यह सच लिख देते कि बुधिया गांव के जमींदार के लौंडे से गर्भवती थी। उसने बुधिया से खेत में बलात्कार किया था। तब, शब्द दीपक की तरह जल उठते और सब कुछ समझ में आ जाता।'' (पृष्ठ 17) धर्मवीर ने जो कुछ कहा है, संभव है यही हो, लेकिन जो पाठ (Text) में नहीं है, क्या उसे उसमें अपनी तरफ से जोड़ने का अधिकार उन्हें है, क्या उसे उसमें अपनी तरफ से जोड़ने का अधिकार उन्हें है भी? यदि है तब तो उसकी समीक्षा ठीक है, लेकिन नहीं है, तब यह उनका अतिरिक्त उत्साह ही माना जाएगा। लेकिन धर्मवरी का कहना है कि 'कफन' पर कफन से बाहर जाने की जरूरत के दो कारण हैं, पहला प्रेमचंद ने इस कहानी में 'चमार' शब्द का प्रयोग किया है और दूसरा प्रेमचंद ने घीसू और माधव के व्यवहार की व्याख्या की है। यदि वे व्याख्या न करते तो समीक्षा में कहानी से बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती। इसके अलावा धर्मवीर ने सारे हिन्दुओं को जारकर्म में यकीन रखने वाला बताने के साथ-साथ ही प्रेमचंद को अपनी पत्नी के अलावा रखैल रखने को सेक्स का चोर कहा है और अंबेडकर की कसौटी में उन्हें बुरी तरह फेल बताकर जमींदार सिद्ध करने की कोशिश की है। इस पुस्तक में ऐसे ही कई अंश हैं जिनसे नाराज होकर डॉ. नामवर सिंह ने इस पुस्तक का लोकार्पण करने से मना कर दिया था और अब धर्मवीर पर चारों तरफ से हमले जारी हैं, हों भी क्यों न हिंदी के सबसे लोकप्रिय लेखक पर उंगली जो उठी है।

यानि पूरे हिंदी साहित्य के इतिहास पर सरसरी नजर दौड़ाने के बाद सिद्ध साहित्य के अलावा निर्गुण संतों में कबीर और रैदास के बाद सिद्ध सीधे आधुनिक काल में निराला और प्रेमचंद में ही दलित चेतना दिखाई देती है। यह और बात है कि दलित लेखकों की दृष्टि में वे दलित लेखक नहीं हैं क्योंकि वह यह मानने को तैयार ही नहीं हैं कि कोई गैरदलित लेखक भी दलित लखेन कर सकता है।

समकालीन हिन्दी दलित विमर्श- हिंदी में बीसवीं सदी की अंतिम दहाई में जब हिंदी दलित साहित्य एवं साथ-साथ चिंतन की चर्चा शुरू हुई तो अगड़े वर्ग के लेखकों ने उसका विरोध करना शुरू किया। श्री काशीनाथ सिंह ने अगड़ों का मोर्चा संभालते हुए कहा ''दलितों पर लिखने के लिए दलित होना आवश्यक नहीं। हिंदी में दलित लेखक हैं, दलित साहित्य नहीं है।'' इसके जवाब में ओम प्रकाश वाल्मीकि ने कहा- ''दलित के नाम पर वाल्मीकि और व्यास ने ब्राम्हणवाद की बात की है। कोई दलित होकर ब्राम्हणवाद की बात करता है तो वह दलित साहित्य का रचयिता कैसे हो सकता है? इसके बाद अगड़े लेखकों ने यह सवाल तो उठाया ही कि दलित साहित्य केवल दलित ही नहीं लिख सकता, बल्कि सवर्ण साहित्यकार भी लिख सकते हैं, यह भी आरोप लगाया कि दलित साहित्य को फोर्ड फाउंडेशन संचालित कर रहा है। डॉ. अंबेडकर तो देशद्रोही और 'अंग्रेजों के पिट्ठू' थे। डॉ. रामदरश मिश्र जैसे लेखकों ने यहां तक कहा कि ''साहित्य में आरक्षण नहीं चल सकता। दलित साहित्यकारों में साधना का अभाव है जिसके कारण दलित साहित्य कलात्मक नहीं है।'' डॉ. नामवर सिंह ने यह कहा कि ''मूल पौधा तो मराठी का है।'' अब हिन्दीं में इसकी कलम लगायी जा रही है।'' इसके बाद स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का मामला उठाया गया और कहा गया कि 'स्वानुभूति और सहानुभूति' की बात करना दलित साहित्य के संदर्भ में व्यर्थ है। दलित साहित्य कोई भी लिख सकता है। इसको पुष्ट करने के लिए दूधनाथ सिंह और अखिलेश ने 'निष्कासन' और 'ग्रहण' लिखकर यह साबित करने की कोशश की कि वे भी दलित कहानियां लिख सकते हैं, लेकिन डॉ. एन. सिंह ने दोनों कहानियों का विश्लेषण करके बताया कि दलित साहित्य की कसौटी पर ये दोनों कहानियां खरी नहीं उतरतीं।

बहरहाल इस लंबी कशमकश के बाद हिंदी में दलित साहित्य को स्वीकृति मिली, लेकिन अभी भी दलित साहित्यकार स्वानुभूति पर आधारित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। बकौल युवा दलित साहित्यकार रामचन्द्र दलित चिंतक और दलित साहित्यकार

उसे माना गया है जो बुद्ध के शील, समाधि और प्रज्ञा का पालन करता हो तथा बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आधार मानता हो। लेखन, विचार और चिंतन का प्रयोजन एवं सरोकार समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व हो। ये कसौटियां फतवे के तरत नहीं हैं, बल्कि परिवर्तनकामी दृष्टि के लिए अपेक्षित हैं। हिंदी पट्टी में दलित चेतना फैलने का विश्लेषण करते हुए रामचंद्र ने अपने लेख 'समकालीन हिन्दी दलित विमर्श' में लिखा है कि समकालीन संदर्भों में यहां के कुछ मुस्लिम और दलित वर्ग (पिछड़ा वर्ग भी) के कर्मचारियों-अधिकारियों की काफी बड़ी संख्या को संगठित करके बी.एस.पी. ने आम जनता को 20वीं सदी के आखिरी दशकों में गौतम बुद्ध, ज्योतिबा फुले, डॉ. अंबेडकर तथा अन्य परिवर्तनकामी शक्तियों के मुक्ति के संघर्ष से परिचित कराया। हिंदी के दलित रचनाकार और चिंतक इस बात को स्वीकार करें या न करें, परंतु यह सच है कि हिंदी में बी.एस.पी. की धौंसभरी दस्तक ने यहां पहले से मौजूद चेतना की चिनगारी को हवा दी। इस परिस्थिति ने दलित विमर्श को विस्तार दिया है, संवाद की सक्रियता को बढ़ाया है। डॉ. अंबेडकर का परिवर्तनकामी मुक्ति आंदोलन और चेतना की लहर अवसर पाकर गतिशील हुई है। यद्यपि हिंदी में राजनीतिक दस्तक को दलित विमर्श का एकमात्र आधार नहीं माना जा सकता, उत्तर भारत में बीएसपी के उदय से पूर्व बुद्ध और डॉ. अंबेडकर का साहित्य पढ़े-लिखे दलितों के बीच पहुंच चुका था। चेतना की लहर पहले से गतिमान थी और रचनाकर्मी भी मौजूद थे। लेकिन गैरदलित चिंतक और मीडियाकर्मी चेतनाशील दलित रचनाकारों को कोई खास तवज्जों नहीं दे रहे थे। किंतु अब स्थिति बदली है। 'पावर पॉलिटिक्स' ने संवाद की स्थिति को मजबूत किया है। विगत डेढ़-दो दशकों में बड़ी संख्या में दलित साहित्यकार सामने आये है और उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वैचारिक पुस्तकों में दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (शरण कुमार लिम्बाले), दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (ओम प्रकाश वाल्मीकि), दलित डायरी (चन्द्रभान प्रसाद), कबीर के आलोचक, कबीर के कुछ और आलोचक, सूत न कपास, कबीर और रामानंद: किंवदंतियां, कबीर: बाज भी कपोत भी पपीहा भे, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन और संत रैदास का निवर्ण संप्रदाय, सामंत का मुंशी प्रेमचंद, प्रेमचंद की नीली आंखे, खसम खुशी क्यों होय (डॉ. धर्मवीर), संत रैदास एक विश्लेषण (कंवल भारती), लोकतंत्र में भागीदारी का सवाल दलित विमर्श की भूमिका (जयप्रकाश कर्दम), दलित साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, हिंदी दलित पत्रकारिता पर अंबेडकर का प्रभाव (डॉ. श्योराज सिंह 'बेचौन'), हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग (कुसुम मेघवाल), इक्कीसवीं सदी में अम्बेडकर (डॉ. रघुवीर सिंह), दलित कहां जायें (जियालाल आर्य), अंबेडकर विरोधियों के चक्रव्यूह में (मोहनदास नैमिशराय), दलित साहित्य सृजन के संदर्भ में (डॉ. चमन लाल), स्वतंत्रता संग्राम के दलित क्रांतिकारी (मोहनदास नैमिश राय), निम्नवर्गीय मेरा दलित चिंतन (डॉ. एन. सिंह), दलित साहित्य: सृजन के संदर्भ, दलित साहित्य रचना और विचार (पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी), आज का दलित साहित्य (डॉ. तेज सिंह), चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य (डॉ. श्योराज सिंह 'बेचौन' एवं डॉ. देवेन्द्र चौबे), दलित दखल (सं. डॉ. श्योराज सिंह बेचौन, डॉ. रजत रानी 'मीनू'), धर्मांतरण और दलित (सं. जयप्रकाश कर्दम), दलित विमर्श: संदर्भ गांधी (गिरिराज किशार), दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद (सं. सदानंद शाही) आदि प्रमुख है।

वैचारिक पुस्तकों की भांति कहानी संग्रहों में पुनर्वास (विपिन बिहारी), समकालीन दलित कहानियां (सं. कुसुम वियोगी), चर्चित दलित कहानियां (सं. कुसुम वियोगी), आवाजें (मोहनदास नैमिश राय), देवता आदमी (शरण कुमार लिंबाले), हिस्से की रोटी (शत्रुघ्न कुमार), दलित अंतर्द्वंद्व (स्वरूप चंद बौद्ध), दलित जीवन की कहानियां (गिरिराज शरण), सलाम एवं घुसपैठिए (ओमप्रकाश वाल्मीकि), सुरंग (दयानंद बटरोही), हैरी कब आएगा (सूरजपाल चौहान), चार इंच की कलम (कुसुम नियोगी), तीन महाप्राणी (बुद्धशरण हंस), अपना मकान (विपिन बिहारी), आधे पर अंत (विपिन बिहारी), द्रोणाचार्य एक नहीं (कावेरी), साग और अन्य कहानियां (ठाकुर प्रसाद राही), चन्द्रमौलि का रक्तबीज (सत्यप्रकाश), दलित कहानी संचयन (सं. रमणिका गुप्ता), अनुभूति के घेरे (सुशीला टाकभौरे), टूटता बहम (सुशीला टाकभौरे), दूसरी दुनिया का यथार्थ (सं. रमणिका गुप्ता), हाशिये के बारह (सं. रजतरानी 'मीनू'), काले हासिए पर (सं. डॉ. एन. सिंह), यातना की परछाइयां (सं. डॉ. एन. सिंह), आदि प्रमुख है।

दलित कहानियों की तरह उपन्यासों में छप्पर (जयप्रकाश कर्दम), पहला खत (डॉ. धर्मवीर), अमर ज्योति (डी.पी. वरूण), बंधन मुक्त (रामजीलाल सहायक), जस तस भई सबेर (सत्यप्रकाश), मुक्ति वर्ग (मोहन दास नैमिशराय), मिट्टी की सौगंध (प्रेम कपाड़िया), प्रस्थान (परदेशीराम वर्मा), डूब जाती है नदी (गुरूचरण सिंह), भूमिपुत्र (राणा प्रताप), नरवानर (शरण कुमार लिम्बाले) आदि प्रमुख है। दलित आत्मकथाएं भी कम मशहूर नहीं है। मराठी में अछूत (दया पवार), अक्करमाशी (शरण कुमार लिम्बाले), जीवन हमारा (बेबी कांबले), उचक्का (लक्ष्मण गायकवाड़), उठाईगीर (लक्ष्मण गायकवाड़), छोरा कोल्हारी का (किशोर शांताबाई काले), पराया (लक्ष्मण माने), डेराडंगर (दादा साहब मोरे), भूले बिसरे दिन (अरूण खोरे), नरक सफाई (अरूण ठाकुरध्मुहम्मदर खडस), तराल-अंतराल (शंकर राव खरात,) यादों के पंछी (प्र.ई. सोन कांबले) आदि प्रमुख हैं तो हिंदी में अपने-अपने पिंजरे, दो भाग (मोहनदास नैमिशराय), जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि), तिरस्कृत (सूरजपाल चौहान,) तिरस्कार (के. नाथ), दोहरा अभिशाप (कौसल्या बैसंत्री), मेरा सफर-मेरी मंजिल (डी.आर. जाटव), झोपड़ी से राजभवन (माता प्रसाद), छाग्या रूक्ख (बलवीर माधोपुरी), पगडंडियां (बंचित कौर), और अंग्रेजी में आई वाज एन आउट कास्ट इंडियन (हजारी), अनटोल्ड स्टोरी ऑफ ए भंगी वाइस चांसलर (प्रो. श्याम लाल) आदि प्रमुख है।

आत्मकथाओं की तरह कविताओं के मामले में भी हिंदी का दलित साहित्य काफी समृद्ध हो चुका है। तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती (कंवल भारती) गूंगा नहीं था मैं, तिनका-तिनका आग (जय प्रकाश कर्दम), सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका (ओम प्रकाश वाल्मीकि), एकलव्य (माता प्रसाद), आग और आंदोलन (मोहन दास नैमिश राय), सतह से उठते हुए चेतना के स्तर (डॉ. एन.सिंह), यातना की आंखें (दयानंद बटरोही), सुनों ब्राम्हण (मलखान सिंह), हार नहीं मानूंगा (ईश कुमार गंगानिया),टुकड़े टुकड़े दंस (कुसुम वियोगी), हीरामन, किनारे भी मंझधार भी, कंपिला (डॉ. धर्मवीर), क्रौंच हूं मैं, नयी फसल (श्योराज सिंह बेचौन), नियति नहीं यह मेरी (सुदेश तनवर), शब्द थके जरूर हैं (चिरंगी लाल कटारिया), सवालों का सूरज, दखल देती कविता (पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी), अनुभूति से अभिव्यक्ति तक (विपिन बिहारी), पदचाप (रजनी तिलक), बिरसा (जिया लाल आर्य), पुश्तैनी पीड़ा (तेजपाल सिंह तेज), दलित पचासा (एस.आर. विद्रोही), अंबेडकर शतक (सोहनपाल सुमनाक्षर) आदि प्रमुख है।

वैचारिक एवं सृजनात्मक साहित्य के अलावा दलित विमर्श से संबंधित निम्न पत्रिकाएं भी प्रकाशित हो रही है: हंस (राजेन्द्र यादव), युद्धरत आम आदमी (रमणिका गुप्ता) दलित साहित्य (जय प्रकाश कर्दम), अपेक्षा (तेज सिंह), अंबेडकर इन इंडिया (दयानाथ निगम), दलित टुडे, मूक नायक, आश्वस्त (डॉ. तारा परमार), सामाजिक न्याय संदेश (मोहन दास नैमिश राय), पूर्व देवा (अवन्तिका प्रसाद मर्मट) आदि।

संदर्भ गृन्थ सूची:

01. ओमप्रकाश वाल्मीक, ''दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र" पृ. क्र. 142
02. डॉ. पूरणमल ''दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय" पृ. क्र. 105
03. सेहन लाल सुमनाक्षर ''दलित साहित्य" पृ. क्र. 90
04. हिन्दी दलित साहित्य: संपादक- यज्ञ प्रसाद तिवारी पृ. क्र. 18
05. हिन्दी समकालीन साहित्य मे दलित चेतना निबंध: डॉ. उमाशंकर तिवारी पृ. क्र. 54
06. धरती धन न अपना: जगदीशचन्द्र पृ. क्र. 1

राजनैतिक सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति

डॉ० जुही सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि संकाय) पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से हैं जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले नए विकल्प तैयार हों। महिलाएँ समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है। वर्तमान पंचायती राज सामाजिक समता और न्याय, आर्थिक विकास और व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित ग्रामीण जीवन को नया रूप देने का एक सामूहिक प्रयास है। इसी क्रम में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तिकरण के लिये हो रहे प्रयासों का प्रमुख घटक हैं। महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण की व्यवस्था से समाज के विभिन्न वर्गों की महिलाओं को पंचायत राज संस्थाओं में स्थान प्राप्त हुआ है। महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका स्वतंत्रता के पश्चात से नगण्य रहने के कारण इन्हें पिछड़ें वर्गों में रखकर आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है संपूर्ण महिला वर्ग में भी वर्गों के आधार पर महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में अंतर है। राजनीति का क्षेत्र भी महिलाओं के प्रभाव से अछूता नहीं है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें जनता के द्वारा देश की संचालन व्यवस्था हेतु अपने मत में जनप्रतिनिधियों को चुना जाता है और इन्हीं जनप्रतिनिधियों के द्वारा सत्ता में पहुँच कर देश की नीतियों एवं दिशा निर्देशों को बनाया एवम् क्रियान्वित किया जाता है। देश की राजनीति में महिलाओं की भूमिका शुरूआत के दिनों में अशिक्षा, पर्दाप्रथा के कारण कम भी लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक कुरीतियॉ खत्म हो रही है महिलाओं की भूमिका राजनीति में मजबूत होती जा रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेलकूद, कानून, अभियांत्रिकी, प्रबंधन के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाए आगे आ रही है और अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयास में लगी हुई है।

संकेत शब्द- महिला सशक्तिकरण, राजनैतिक सशक्तिकरण, सामाजिक एवं आर्थिक विकास।

प्रस्तावना:-

यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाऐं हैं। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरूष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए है। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती हैं जितना कि पुरूष। अत: देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नहीं है। भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। आज महिलाऐं बेहतर रोजगार के लिए दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिए तैयार है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नही जहां महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नही वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया है यह सब अथक प्रयासों के द्वारा धीरे-धीरे संभव हो पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। वह शोषण तथा कुप्रथा जैसी विसंगतियों का शिकार थी। समाज में कई प्रकार की रूढ़िया, अंधविश्वास व्याप्त थे। महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी एवं परम्परागत सोच स्त्री को पिता, पति या पुत्र का आश्रित मानते हुए उसे मुख्य रूप से घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया। जिसका मुख्य कारण तात्कालिक सामाजिक विचार का पिछड़ापन तथा स्त्रियों का अज्ञानता के बंधन में जकड़ा होना था। स्वतंत्रता के बाद से ही नारी के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। जिस देश में नारी को घर की दहलीज से बाहर निकलने की आज्ञा नही थी, उसी देश में आज नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। वह घर की चारदीवारी से निकलकर अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। जिस देश की नारी जागृत, शिक्षित तथा गुणवत्ती होती है वही देश संसार में सबसे अधिक उन्नति करता है इसी विचार धारा को ध्यान में रखकर हमारे यहां स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गये और इनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी, तब किसी ने सोचा भी न था कि वह पिछड़ा हुआ नारी वर्ग पुरूषों से भी आगे निकल जायेगा। शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा महिलाओं की रोजगार तथा स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारा जा सकता है।

हमारा समाज मूल रूप से पुरूष प्रधान रहा है। पहले महिलाओं के पास किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता न होने के कारण उसकी सामाजिक व पारिवारिक स्थिति एक पराश्रित से अधिक नहीं थी। जिसे हर कदम पर एक पुरूष के सहारे की जरूरत होती थी। वैसे तो आजादी के बाद से ही महिला उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न प्रयास किये जाते रहें है। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में महिला सशक्तिकरण की कार्य में तेजी आयी है। इन्हीं प्रयासों के परिणाम

स्वरूप महिलाओं के आत्म विश्वास में बढ़ोत्तरी हुयी है। वे किसी भी चुनौती को स्वीकार करने के लिए खुद को तैयार करने लगी है। एक ओर जहॉ केन्द्र व राज्यों की सरकारें महिला उत्थान की नई-नई योजनायें बनाने लगीं है। वहीं कई गैर सरकारी संगठन भी उनके अधिकारों के लिये उनकी आवाज बुलन्द करने लगें है। महिला में ऐसी प्रबल भावना को उजागर करने का प्रयास भी किया जा रहा है। कि वह अपने अन्दर छिपी की ताकत को सामने लाकर बिना किसी सहारे के आने वाली हर चुनौती का सामना कर सकें।

सृष्टि की उत्पत्ति एवं सभ्यता के विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। पुराणों के अनुसार चाहे धर्म की रक्षा हो या उसकी पुर्नस्थापना इन सभी कार्यो को आदि शक्ति मॉ जगदम्बा ने ही पूर्ण किया है। सीता, सावित्री के धर्मपालन को आज भी आदर्श के रूप में समाज में माना जाता है। रानी लक्ष्मीबाई, मदरटेरेसा के वीरता बलिदान तथा सेवा की मिशालें आज भी हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करती है।

महिलाए कई रूपों में जीवन व्यतीत करते हुए एक सभ्य एवम् सुसंस्कृत समाज की निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह कभी बेटी के रूप में कभी बहन के रूप में तो कभी पत्नी एवम् प्रेमिका के रूप में कभी मॉ के रूप में समाज को विकसित एवं परिमार्जित करने का अथक प्रयास करती रहती है।

समाज की प्रत्येक आवश्यकताओं को पूरा करने में महिलाएॅ पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलती है। समाज में विकास में सहभागिता का जो सम्मान उन्हें प्राप्त होना चाहिए या वह नही मिल पाया है। क्योंकि इस सभ्य समाज में पुरूषवर्ग का वर्चस्व विद्यमान है। पुरूष वर्ग हर क्षेत्र में महिलाओं के सहयोग से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते है लेकिन जब सम्मान एवं अधिकार की बात आती है तो महिलाएॅ पुरूषों से कहीं पीछे छूट जाती है। महिलाओं को अपने अस्तित्व की बार-बार लड़ाई लड़नी पड़ती है लेकिन यह प्रकृति गवाह है कि जब भी समाज में कोई परिवर्तन या क्रांति हुई है महिलाओं ने उस पर अपना सर्वस्व अर्पण किया है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य तथा दिशा-निर्देशक सिद्धांतों में लैंगिक समानता के सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। संविधान न केवल महिलाओं की समानता को सुनिश्चित करता है, बल्कि राज्यों को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का निर्देश देता है।

लोकतांत्रिक राजनीति के ढांचे में हमारे कानून, विकास नीतियां, योजनाएं तथा कार्यक्रम को विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान की ओर उन्मुख रखा गया है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-78) से महिला कल्याण से लेकर विकास तक के मुद्दे को उठाया जा रहा है। हाल के वर्षों में महिला सशक्तीकरण को महिला की दशा का एक केंद्रीय मुद्दा माना गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई है, जिसके तहत महिला के अधिकारों तथा कानूनी अशिकारों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। संविधान का 73वां तथा 74वां संशोधन (1993) में पंचायत तथा नगर निकाय के चुनावों में महिला को आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है, जिससे स्थानीय स्तरों पर उनकी भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होता है।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका विषय पर पूर्व में काफी लेखन कार्य किया गया है जिसमें कई राजनीतिज्ञों एवं समाजशात्रियों ने विवेचनाए की है। जिसमें डॉ. लक्ष्मीराजी कुलश्रेष्ठ (2001) ने अपने लेख में ''पंचायती राज और महिलाएं में लिखती है कि पंचायतीराज व्यवस्था महिला आरक्षण के परिणामस्वरूप अब महिलाओं की मन: स्थिति बदल रही है। वे अब अपना पक्ष पूरी निर्भीकता तथा निष्पक्षता से बैठक में रखने लगी है। बहरहाल पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से उन्हें जो नया परिवेश मिल रहा है। वह उनके लिये प्रगति और विकास के द्वार तो खोल रहा है। पुरूष तथा स्त्री के बीच समाज में जो सामाजिक विषमता है, उसमें भी कमी हो रही है। भारतडोगरा (2001) अपने लेख ''सार्थक है महिलाओं का आरक्षण'' में निर्वाचित महिलाओं पर पारिवारिक दबाव से उत्पन्न तनावों के बारे में लिखते हैं कि राजनीतिक महत्वकांक्षा वाले पुरूष अपने परिवार की महिलाओं को अपनी निजी महत्वकांक्षा की दौड़ का साधन या मुखौटा मात्र बनाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि आरक्षण का लाभ उठाकर उनके परिवार की महिला निर्वाचित हो, पर इसके आगे वे यह भी चाहते हैं निर्वाचित होने के बाद वे उनके दबदबे में उनके कहे अनुसार काम करें। सुधापिल्लै (2002) ने ''पंचायतीराज द्वारा अधिकार संपन्नता'' में लिखती हैं कि संविधान के 73वें संशोधन से लगभग 10 लाख महिलायें त्रि-स्तरीय ढ़ांचे में सदस्य और अध्यक्ष पदों पर कार्यरत है। निश्चित ही इससे हाल तक ठहरें ग्रामीण समाज में बदलाव आया है। महिला आरक्षण की राजनीति शीर्षक में राजनाथ सिंह सूर्य ने स्पष्ट किया कि सभी राजनीति दल महिला आरक्षण पर राजनीति कर रहे हैं। पंचायतों की तरह विधानसभा तथा लोकसभा में पिछड़े वर्ग की महिला तथा मुस्लिम महिलाओं के लिए भी मुस्लिम सांसदों ने पहली बार आरक्षण की मांग की।

भारत में सैद्धान्तिक रूप से आज, आदि और हमेशा से ही नारी की मर्यादा है कहा जाता है कि समाज में नारी का स्थान पुरूष के समान ही है न कम और न अधिक प्राचीन काल से आज तक महिलाओं की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति में काफी उतार चढ़ाव आए हैं आधी दुनिया को प्रतिष्ठा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। तो कभी उन्हे दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता था। आजादी से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नही थी। ब्रिटिश शासकों के जाने के पश्चात जब भारतवासियों को आजादी मिली तो हमारे नीति को आजादी मिली तो हमारे नीति निर्धारकों ने महिलाओ की सामाजिक, राज नीतिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास करने प्रारम्भ कर दिए, क्योंकि

आधी दुनिया के विकास की दौड़ में पीछे रह जाने पर कोई भी राष्ट्र अपने समग्र विकास का दावा नहीं कर सकता फलस्वरूप आजादी के बाद शुरू हुआ महिला सशक्तिकरण का आन्दोलन आज भी जारी है। इस दौरान इसे कुछ असफलताए मिलीं तो इसके खाते में बहुत सी सफलताए भी दर्ज हैं सरकार ने वर्ष 2001 में महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया है। जिसका उद्देश्य महिला अधिकारों और उससे संबंधित मुद्दो के बारे में व्यापक जागरूकता लाना है। आज भी नारी सशक्तिकरण का नारा चारो ओर ध्वनित हो रहा है इसके पीछे यह भावना निहित है कि नारी को शक्ति सम्पन्न बनाना उसको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना है। आज उसकी सोच का दायरा विस्तृत होता जा रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में वह सफलता चाहती है। महिला सशक्तिकरण के इस दौर में महिला, पुरूष जाति की सोच में परिवर्तन को रह ढूढ रही है। सशक्तिकरण एवं शिक्षा के बीच संबंध महिला का विकास शिक्षित होने में ही निहित है। तभी वह आर्थिक तौर पर सशक्त बन सकेगी।

आधुनिकता की ओर अग्रसर करने में भी शिक्षा सहयोगी है। शिक्षा के द्वारा ही महिलाएँ प्राचीन समय की अच्छाइयों बुराइयों से लेकर नये समाज से संबंधित कुरीतियों, अंधविश्वास से हट कर नये समाज के निर्माण में सहयोग दे रही है, यही कारण है कि आज की नारी पुरानी परंपराओं से दूर होती जा रही है। आज गांवों में भी आधुनिकता दिखाई पड़ रही है। जिसके प्रभाव के कारण आज महिलाएँ स्कूल, कॉलेज, बैंक, अस्पताल, आफिस में स्वयं जाकर अपना कार्य कर रही है और आत्मनिर्भर होती जा रही है।

महिलाओं की राजनीतिक स्थिति को आज समाज की स्थिति के विकास के एक निर्धारक के रूप में स्वीकार किया जाता है। क्योंकि महिलाएं प्रत्यक्षत: तथा अप्रत्यक्षत: राजनीतिक क्रियाओं में योगदान देती है। वह समस्त पारिवारिक दायित्वों को बोझ उठाकर पुरूषों को केवल राजनीतिक क्रियाएं सम्पादित करने का पूरा समय व अवसर प्रदान करती हैं अथवा स्वय: भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के साथ-साथ पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राजनीतिक क्रियाओं में संलग्न होती है। आज भागीदारी की दृष्टि से कृषि, पशु व्यवसाय, हैण्डलूम आदि में महिलाओं के अनुपात में काफी सीमा तक वृद्धि हुई है। पिछले दशक में महिलाओं की क्रियाओं से सम्बन्धित नये आयाम उभरकर सामने आये है। अब महिलायें इलेक्ट्रानिक्स, टेली कम्यूनिकेशन, उपभोक्ता उत्पादन, संगठित क्षेत्र के उद्योग, विधि, चिकित्सा, प्रशासनिक तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यवसायी में भाग ले रही है। महिलाओं के लिए कार्य शब्द का कोई अर्थ, परिभाषा व सीमा निर्धारित नहीं है। यद्यपि महिलाएँ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में 60-80 प्रतिशत तक योगदान देती हैं तथापि उनकी बहुत सारी क्रियाओं को सकल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्मलित नही किया जाता है। अनुमानों के आधार पर महिलाओं की अभुगतानिक श्रम की नकद वार्षिक कीमत लगभग 4 ट्रिलियन डॉलर होती है जो विश्व के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का एक तिहाई भाग है। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की आर्थिक क्रियाओं में संलग्नता विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण परिणाम

समाज का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सामाजिक परिवर्तन की गति निरन्तर है, जिसके कारण महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण क्या परिणाम होते हैं। समाज की किन-किन परिस्थितियां विभिन्न सामाजिक परिणामों को प्रोत्साहित करती है। फिर भी महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण कुछ सामान्य परिणाम होते हैं जो सभी समाजो में पाये जाते हैं।

सुझाव:-

भारत के संदर्भ में यदि देखें तो महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है उनकी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

- सर्वप्रथम महिलाओं के राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करने होगे। महिला संगठनों, स्वयं सेवी संस्थाओं को इस दिशा में प्रयास करने होगे।
- महिलाओं को इनके कानूनी अधिकारी की जानकारी, महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने के लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिये गये निर्देशों का सख्ती से पालन, शोषण, उत्पीड़न सम्बन्धी मामलों का जल्दी निराकरण, महिला मामलों में पुलिस की पूरी सजगता एवं सक्रियता महिलाओं के लिए पृथक महिला थानों की स्थापना आदि महिलाओं का शोषण रोकने के लिए आवश्यक है।
- वर्तमान समय में लागू महिला सम्बन्धी कानूनों में व्याप्त विसंगतियों को दूर करना जिससे महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कानूनी और व्यावहारिक रूप में सभी मानवाधिकार हासिल हों।
- महिलाओं को अपनी मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन लाना होगा जिससे उनमें आत्म विश्वास में वृद्धि होगी।

महिला समाज की धुरी है अगर धुरी टूट गई तो समाज भी टूट जायेगा। इतिहास गवाह है कि जिन समाजों ने महिलाओ को गुलाम बनाया वे खुद गुलाम बन गये, जिन समाजों ने महिलाओं को प्रगति का मौका दिया उन्हें सभ्यता के शिखर पर पहुंचने से कोई नही रोक सका। यद्यपि महिलाएँ तेजी से राजनीति के क्षेत्र में आ रही है, तथापि उन्हें राजनीति में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अशिक्षा, भ्रष्टाचार, शोषण, आर्थिकपराधीनता, राजनीतिक सोच का आभाव आदि ऐसी प्रमुख बाधाएं है जो राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने में रूकावट लाती है।

महिलाओं को राजनीति में आगे लाने के लिये उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना होगा। अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा और अंधविश्वास को दूर कर उनके आत्मविश्वास

को बढ़ाने का दायित्व है। भ्रष्टाचार औश्र शोषण से महिलाओं को मुक्त करके उन्हें राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ाया जा सकता है।

महिलाओं में राजनीतिक जागरण की आवश्यकता है। राजनीति जागरण से मेरा तात्पर्य उनका शिक्षित और संस्कारित होना आवश्यक है अत: भारतीय परिवार में नारी का सर्वप्रथम दायित्व पत्नीत्व और मातृत्व के साथ राजनैतिक कार्यकलाप का समन्वय होना अतिआवश्यक है। एक सफल माँ और पत्नी की समाज और देश को सफल नेतृत्व दे सकती है।

आज पश्चिमी अपसंस्कृति के बहाव में भारतीय नारी अपनी अस्मिता को खोती जा रही है, जो हमारे देश के राजनीति का एक घातक तत्व साबित हो रहा है। अत: भारतीय प्राचीन संस्कृति की अवधारणाओं में नारीत्व का परिवेश आज की नारियों को समझना होगा तभी उनका राजनीति में नेतृत्व का पैमाना सफल साबित होगा।

निष्कर्षत: महिलाएं समाज का अनिवार्य अंग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में उनकी अहम भूमिका है। जैसे-जैसे शहरों के साथ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में राजनीति जागरूकता आ रही है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और बदलते सामाजिक परिवेश में राजनीति में महिलाएँ आगे आ रही है और केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय शासन में अपनी भागीदारी निभा रही है। इसलिये महिलाओ को सशक्त और सुदृढ़ बनाने पर ही समाज सुदृढ़ होगा। महिलाओं को सुदृढ़ करने के लिये उनका शिक्षित होना आवश्यक है ताकि अपने अधिकारों को समझ कर समाज एवं राष्ट्र का विकास कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सत्येन्द्र नाथ मजुमदार, विवेकानंद चरित्र, प्रकाशित 1971.
2. शरदचन्द्र चक्रवती, विवेकानंद जी के संग में, प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली।
3. आर.सी. मजुमदार, द हिस्ट्र एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, प्रकाशित Vol x~ 2nd edition 1981-P-31
4. ओम प्रकाश, हिंदू विवाह, चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 182-2001
5. प्रेम सहाय, हिंदू विवाह संस्कार, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995
6. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त, स्वामी विवेकानंद, व्यक्ति और विचार, प्रकाशक, दिल्ली 1971.
7. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य।
8. एम.के. गॉधी, मेरे सपनो का भारत।
9. डॉ. रानी, आशु (1999) महिला विकास कार्यक्रम, ईनाश्री पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ सं. 19
10. डॉ. कुलश्रेष्ठ, लक्ष्मी रानी, कुरूक्षेत्र, अक्टूबर-नवम्बर 1997, पृष्ठ सं. 82

महादेवी वर्मा का काव्यात्मक परिचय

उमाकांत पासवान

शोधार्थी (हिन्दी) भूपेन्द्र नारायण मंडल विष्वविद्यालय, मधेपुरा

सार

महादेवी वर्मा छायावाद की एक प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। छायावाद का युग उथल-पुथल का युग था। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि सभी स्तरों पर विभ्रम, द्वंद्व, संघर्ष और आंदोलन इस युग की विशेषता थी। इस पृष्ठभूमि में, अन्य संवेदनशील कवियों के समान ही, महादेवी ने भी अपनी रचनाशीलता का उपयोग किया। महादेवी अपनी काव्य रचनाओं में प्रायः अंतर्मुखी रही है। अपनी व्यथा, वेदना और रहस्य भावना को ही इन्होंने मुखरित किया है। उनकी कविता का मुख्य स्वर आध्यात्मिकता ही अधिक दिखाई देता है यद्यपि उनकी गद्य रचनाओं में उनका उदार और सामाजिक व्यक्तित्व काफी मुखर है। हम यह कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा का काव्य प्रासाद इन चार स्तम्भों पर अवस्थित है- वेदनानुभूति, रहस्य भावना, प्रणयभावना और सौंदर्यानुभूति यदि हम यह कहे कि महादेवी वर्मा के काव्य का मूल भाव प्रणय है तो यह अतिश्योक्ति नही होगी, उनकी कविताओं में उदात प्रोम का व्यापक चित्रण मिलता है। अलौकिक प्रिय के प्रति प्रणय की भावना, नारी सुलभ संकोच और व्यक्तिगत तथा आध्यात्मिक विरह की अनुभूति उनके प्रणय के विविध आयाम हैं। महादेवी के काव्य में सौंदर्य के विविध रूपों का मनोहर चित्रण हुआ है। उनकी सौंदर्यानुभूति विलक्षण है। महादेवी वर्मा सौंदर्य को सत्य की प्राप्ति का साधन मानती है। छायावादी कवि चतुष्ठय में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। आगामी अंशों में हम महादेवी वर्मा की काव्यात्मक विशेषताओं पर विस्तार से अध्ययन करेंगे

भूमिकाः-

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई . में उत्तर प्रदेश के जनपद फर्रूखाबाद में एक सुशिक्षित मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। पिता श्री गोविन्द प्रसाद एम. ए. एल. एल. बी. की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद मुख्याध्यापक के रूप में कार्यरत थे और माता हेमरानी देवी भी शिक्षित और धार्मिक विचारों वाली कुशल गृहिणी थी। अपनी आरंभिक शिक्षा इन्होंने घर पर ही पूरी की। अध्ययन के साथ ही संगीत और चित्रकला में भी इनकी प्रारंभ में ही रुचि रही है। नौ वर्ष की अल्पायु में ही इनका विवाह भी रूपनारायण वर्मा से हुआ। फलस्वरूप इंदौर से वे अपने ससुराल प्रयाग में आ गई। वहीं पर इन्होंने मिडिल से लेकर एम. ए. संस्कृत तक की औपचारिक शिक्षा प्राप्त की। अपनी शैक्षणिक योग्यता के कारण एम. ए. पास करते ही प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्राचार्य का पद मिला। इन्होंने अपने दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। असमय वैधव्य जीवन ने महादेवी को आत्मलीन, शांत और एकांकी अवश्य बनाया लेकिन इनका बहिर्मुखी व्यक्तित्व अत्यंत उदार, मिलनसार और परहित विशेष रूप से दीन- दुखियों की सेवा-सहायता की भावना से ओतप्रोत था। 'श्रृंखला की कड़िया' शीर्षक निबंध संग्रह 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएं' जैसे संस्मरणों और रेखाचित्रों में इनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व की अत्यंत जीवंत अभिव्यक्ति हुअ है। लेकिन इनकी कविताओं में वेदना, करूणा और अकेलेपन की आत्मशीलता ही अधिक व्यक्त हुई है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही महादेवी के काव्य का मूल्यांकन करना उचित होगा।

महादेवी की कुल रचनाएं-

काव्य-नीहार, रश्मि, नीरजा, संध्यागीत, गीतपर्व, दीपशीखा, रघिनी, परिक्रमा, नीलांबरा, आत्मिक और दीपगीत आदि।

रेखाचित्र और संस्करण- श्रृंखला की कड़िया तथा अतीत के चलचित्र आदि।

अनुवाद - सप्तपर्णा (वेदों से लेकर गीत गोविन्द तक के महत्वपूर्ण और सुंदर अंशों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद)

महादेवी की कविता में वेदना भाव-

महादेवी के काव्य में दुःख और करूणा का भाव प्रधान है। वेदना के विभिन्न रूपों की उपस्थिति उनके काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। वह यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करती कि वह 'नीर भरी दुख की बदली है।' वस्तुतः समूचा छायावादी काव्य ही व्यक्तिवाद का प्रभाव लेकर चला और वहां आत्माभिव्यक्ति को सहज ही स्थान मिला। 1900 से 1920 ई. की खड़ी बोली की कविता में कवि में अपने राग-विराग की प्रधानता हो गई। विषय अपने आप में कैसा है यह मुख्य बात नही थी बल्कि मुख्य बात यह रह गई थी कि कवि के चित के राग-विराग में अनुरंजित होने के बाद वह कैसा दिखता है। विषय इसमें गौण हो गया विषयी प्रधान। जहां तक महादेवी वर्मा का प्रश्न है। उनकी वेदना के उद्‌गम के बारे में निश्चित तौर पर कुछ कहना संभव नहीं है।

उनके एक गीत की पंक्ति है-

शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठूर हूँ

उनके पूरे काव्य पटल पर इस तरह के असंख्य बिम्ब बिखरे पड़े हैं। एक विचित्र-सा सूनापन, एक विलक्षण एकांकीपन बार-बार उनकी कविताओं में उमड़ता दिखाई देता है। अल्पायु में ही विवाहित होने के बाद, उन्होंने स्वेच्छा से एकांत जीवन का चयन

किया। उनके जीवन में जो एकांकीपन था वह किसी अभाव की देन था। पीड़ा का साम्राज्य ही उनके काव्य संसार की सौगात है- साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।

यह पीड़ा की कवयित्री का प्रारंभ है-

''मेरी मदिरा मधुवाली
आकर सारी ढुलका दी
हंस कर पीड़ा से भर दी
छोटी जीवन की प्याली

किंतु महादेवी की वेदना नितांत वैयक्तिक भी नही है। स्वयं उन्होंने अपने जीवन में दुख और अभाव की बात से इंकार किया। वस्तुत: उनके वेदना-भाव का प्रासाद दो आधार-भूमियों पर टिका है- आध्यात्मिक भावभूमि तथा मानवतावादी भावभूमि। बौद्ध धर्म के अध्ययन और उनके प्रति उनके रूझान ने भी महादेवी के वेदना-भाव के लिए आध्यात्मिक भावभूमि तैयार की। जब व्यक्ति वेदना के अनुभव से गुजरता है और उसकी तीव्रता के दंश सहता है तो वह पराई पीर को उसी धरातल पर खड़े होकर समझ सकता है। यहीं से उनमें समग्र मानव जाति के दुखों के प्रति सहानुभूति और करूणा के भाव जन्म लेते हैं। मानव मात्र के प्रति करूणा का प्रत्यक्षीकरण महादेवी के गद्य लेखन में देखा जा सकता है। पद्य के क्षेत्र में सांध्यगीत और 'दीपशिखा' तक आते-आते उनकी वेदना का मानव मात्र के प्रति करूणा का रूप लेते देखा जा सकता है। इस दृष्टि से दीपशिखा महादेवी की अनुपम कृति है। कवयित्री की चिंता केवल मनुष्य नहीं वरन पक्षियों के प्रति भी प्रकट होती है।

पथ न भूले एक पग भी
घर न खोए लघु विहंग भी
स्निग्ध लों की तूलिका से
आंक सबकी छाह उज्ज्वल

यह एक विलक्षण बात है कि महादेवी के काव्य लोग में, वेदना की परिणति आनंद में होती है। कवयित्री दुख और पीड़ा के बोझ तले घुट-घुटकर सिसकती नहीं अपितु निरंतर बढ़ते हुए आनंद भाव की ओर उन्मुख होती है। वह आनंद की ऐसी अवस्था में पहुंच जाती है जहां 'नयन त्रवणमय श्रवण नयनमय हो जाता है। वेदना की धारा प्रवाहित होकर अंतत: आनंद के सागर में ही जा मिलती है। यहां तक कि मृत्यु को भी महादेवी वर्मा अंत अथवा दुखद नहीं मानती उनकी दृष्टि में हो ''अमरत है जीवन का हास''

मृत्यु जीवन का चरम विकास

मृत्यु तो नियति है जो आनंद के ही सौ द्वार
खोल दे।

महादेवी की कविता में रहस्य भावना-

जब छायावादी कवियों की और उनमें भी विशेषकर महादेवी वर्मा की बात आती है तो रहस्यवाद की चर्चा अनिवार्य हो जाती है। हम ऊपर यह निवेदन कर चुके हैं कि छायावाद का युग उथल-पुथल संक्रमण और लगभग प्रत्येक स्तर का संघर्ष और विभ्रम का युग था। एक अर्थ में द्वंद्व इस काल का प्रधान गुण था और मिथ का द्वंद्व भी, वर्तमान और अतीत का द्वंद्व था तो वास्तिवकता और अध्यात्म का द्वंद्व था। इस अंतिम द्वंद्व ने विशेष रूप से छायावादी रचनाकार को रहस्यवाद की ओर मोड़ दिया। महादेवी के संदर्भ में कुछ आलोचक व्यक्तिगत एकांकीपन और अभाव को भी रहस्यानुभूति का कारण मानते हैं जो भी, हो महादेवी और रहस्यवाद एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं।

महादेवी वर्मा की रहस्य भावना की विवेचना में रहस्यवाद के पारंपरिक अर्थ को समझने का प्रयास करें।

चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

व्यष्टि सौंदर्य - दृष्टि छायावाद है और समष्टि सौंदर्य दृष्टि रहस्यवाद।

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कोई अंतर नही रह जाता।

काव्य में आत्मा की मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।

महादेवी वर्मा की कविताओं में रहस्यानुभूति की उपस्थिति का आंकलन करें तो भी यही प्रमाणित होता है कि वह सर्वत्र और प्रत्येक उपादान तथा प्रकृति-व्यापार में एक विराट सत्ता के दर्शन होते हैं वह उसके साथ तादात्म्य, साक्षात्कार को व्याकुल दिखाई देती है। यहीं से उनके काव्य में रहस्य की सृष्टि होती है। वह स्वयं को प्रकृति का ही अंग मानकर उस दिव्य सत्ता से मिलन को तत्पर रहती है। महादेवी का मूर्त और अमूर्त जगत एक-दूसरे से इस प्रकार मिले हुए हैं कि एक यथार्थवादी दूसरे को रहस्यदृष्टा बनकर ही पूर्णता पाता है उनका नारी होना इस रहस्यवाद को और भी गहन करता है वे एक रागात्मक संबंध स्थापित करती है। उस परम पुरुष के साथ जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल यही आत्म समर्पण उनका पावन लक्ष्य है। महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति पर यदि हम सतर्क दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि उनके काव्य में रहस्यवाद के सभी चरणों की अभिव्यंजना हुई है। उनमें कौतुहल और जिज्ञासा रहस्यानुभूति का सबसे पहला चरण होता है। मानव किसी चकित शिशु-सा जब ब्रहाण्ड के विराट लीला व्यापार को देखता है तो वह बस चकित होकर रह जाता है और जब उसकी बुद्धि कोई भी व्याखय प्रस्तुत नही कर पाती तो वह रहस्य में डूब जाता है किस शिल्पी ने अनजान/विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण' महादेवी भी चकित हो सोचती है और प्रश्न करती है-

प्रथम प्रणय की सुषमा सा। यह कलियों की चितवन में कौन? चकित मानव को हर ओर एक परम सत्ता के ही दर्शन होते हैं और

वह उनकी एक झलक पाने को आतुर रहता है। महादेवी वर्मा ने भी प्रकृति के विविध उपादानों में इस औकिक प्रियतम को ही देखा है और इन्हीं को देखकर उसके अपार सौंदर्य की कल्पना की। चितवन तन श्याम रंग। इन्द्रधनुष भृकुटि भग, विद्युत का अंग रांग दीपित मृदु-मृदु अंग-अंग। उड़ता नभ में अछोर। तेरा नव नील चीर महादेवी वर्मा एक रहस्यवादी कवि के रूप में केवल अद्वैतवाद से बंध कर नहीं चलती। वह प्रियतम के साथ एकाकार तो हो जाना चाहती है- तुम मुझमें प्रिय। फिर परिचय क्या। चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम। जब छायावादी रहस्यवाद की बात करते है तो हम उसकी युगीन विशेषताओं को अनदेखा नही कर सकते। विभिन्न स्तरो पर पराधीनता की बेडियों में जकड़े समाज के लिए यह मोटे तौर पर मुक्ति- संघर्ष का युग था दो विश्वयुद्धों के मध्यांतर का यह काल राष्ट्रीय चेतना के उत्कर्ष का काल है। छायावाद का युग महात्मा गांधी की सक्रियता, किसान, आंदोलन, प्रथम विश्व युद्धोत्तर स्थितियों, विश्व व्यापी आर्थिक संकट, श्रमिक हड़तालों, विद्रोही तेवर आदि का काल था।

महादेवी की कविता में प्रणय की अनुभूति-

प्रणय की अनुभूति में छायावादी कविता को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। छायावाद का काव्य भारतीय नारी के नवोत्थान का काव्य था, जब वह समाज में बराबरी का दर्जा पाने के लिए संघर्ष कर रही थी, अपने पारम्परिक रूढ़िगत बंधनों को तोड़ने का यत्न कर रही थी और पुरुष की व्यावहारिक सहचरी बनने की दिशा में अग्रसर हो रही थी। उधर पुरुष को भी यह लगने लगा था कि स्त्री को उसके विशुद्ध रूप में समझा जाना चाहिए। स्त्री-पुरुष संबंध इस यंग में अपने लिए नए आयामों की खोज करता दिखाई देता है। महादेवी वर्मा के काव्य में प्रेम एक मूल भाव के रूप में प्रकट हुआ है उनका प्रेम अशरीरी है। यह करूणा से आप्लावित प्रेम है अलौकिक दिव्य सता के प्रति उनकी इस प्रणयानुभूति में दाम्पत्य प्रेम की झलक भी मिलत है और लौकिक स्पर्श का आभास भी। महादेवी की कविता में व्यक्त प्रेम इसलिए भी विशिष्ट है क्योंकि वह एक स्त्री की लेखनी से किया गया स्त्री-मनोभावों का चित्रण है। उनमें स्त्रयोचित्त लाज-संकोच है तो अपने युग की नवजागृत नारी का अहं भी है वह विरह की भाग में तपती है तो संयोग की छांह से भी स्वयं को दूर नहीं रखना चाहती। इस प्रकार उन्होंने प्रणय की विविध स्थितियों का भरपूर आनंद लेते हुए अपनी कविताओं में इनका गहन चित्रण किया है।

महादेवी वर्मा सहज प्रेम

उनकी कविता का मूल भाव है। उन्होंने प्रेम के मधुर रूप का चयन किया क्योंकि माधुर्य को वह प्रेम को महत्वपूर्ण गुण मानती है। हृदय के अनेक रागात्मक संबंधों में माधुर्यमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुंच सकता है जो सब रेखाओं में रंग भर सके य सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्म निवेदन को इष्ट के साथ समता के धरात पर खड़ा कर सके। यहां छायावादी साहचर्य का भाव द्रष्टव्य है।

महादेवी ने प्रकृति के उपकरणों में जिस सौंदर्य के दर्शन किए , उसी से उनका प्रणयानुभूति का उदभव हुआ और इसी विराट सौंदर्य के प्रति वह अपने प्रणयोद्गार व्यक्त करती रही। सौंदर्य तो प्रेम का प्रेरक होता है। फिर अपार, अथाह, असीम सौंदर्य किससे हृदय का प्रणय से उद्वेलित नहीं कर देगा। महादेवी में अपने इस आलौकिक प्रिय से मिलने की तीव्र इच्छा है वह कहती है-

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करूणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते वन पराग
गाता प्राणों का तार - 2
अनुराग भरा उन्माद राग
आंसू लेते वे पद पखार

इस प्रकार प्रणय के अनेकानेक मनोभावों के चित्रण उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं वहां स्त्री सुलभ लाज संकोच के भी दर्शन होते हैं- सरल तेरा मृदु हास अकारण यह शैशव का हास। बन गया कब कैसे चुपचाप लाज-भीनी सी मृदु मुस्कान। नारी के छायावाद युगीन अभिमानी रूप की अभिव्यंजना भी मिलती है।

''कब दिवस की अग्निशर
मेरी सजलता बंध पाया
तारकों ने मुकुट बन
दिग्भ्रान्त कब मुझको बनाया
ले गगन का दर्प रज में उतार सहज निखर चली
मैं

महादेवी ने दिव्य विराट पुरुष को अपना ईष्ट मान कर उसके साथ माधुर्यमूलक रागात्मक संबंध की स्थापना की। इसलिए उनकी प्रेमानुभूति और रहस्यानुभूति दोनों एक दूसरे में रच-बस गई। यह रागात्मक संबंध इतनी गहनता और प्रगाढ़ता लेकर उपस्थित होता है कि उसमें दाम्पत्य प्रेम का संकेत मिलता है जो स्वयं में प्रणय की पूर्णता का ही द्योतक है।

महादेवी की कविता में सौंदर्य चित्रण-

सौंदर्य भावना छायावाद की एक महत्वपूर्ण प्रवृति है। महादेवी ने न केवल इसे अंगीकार किया अपितु अपने काव्य में इसे महत्वपूर्ण चिताकर्षक रूपाकार देकर समाहित भी किया। उन्होंने सौंदर्य के सूक्ष्म रूप को प्रतिष्ठित और चित्रित किया। उनकी सौंदर्य दृष्टि प्रकृति और मानव दोनों की ओर आकृष्ट होती है।

'सौंदर्य की उदभाविका' महादेवी वर्मा सौंदर्य की अदभूत चितेरी है। उन्होंने अखिल ब्रहाण्ड में सौंदर्य के दर्शन किए हैं और इस अनुभूति से गुजरते हुए उन्होंने इसके विविध रूपों का चित्रांकन अपनी लेखनी से किया। उनका काव्य सौंदर्य की खान है और उनके गीतों में सौंदर्य के विविध रूपों की छवियां बिखरी

पड़ी हैं। महादेवी वर्मा के काव्य में प्राप्त उस विराट सत्ता, प्रकृति और नारी के सौंदर्य पर ही दृष्टिपात करेंगे।

महादेवी ने सर्वत्र एक विराट सत्त के दर्शन किए हैं। इसी अरूप पुरुष का दिव्य सौंदर्य उन्हें आकृष्ट करता है और वे उसी के चिर-सौंदर्य से प्रभावित होकर उसका गुणगान करती है। यह सौंदर्य उन्हें प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक उपादान में दिखाई देता है। इसलिए प्रकृति की सुषमा का वर्णन उनके संदर्भ में एक परम प्रिय के सौंदर्य का वर्णन है। महादेवी की सौंदर्यानुभूति में रहस्यात्मकता की उपस्थिति दिखाई पड़ती ही है। छायावाद का जन्म जिन कारणों से हुआ उनमें एक प्रमुख कारण यह था कि छायावादी दृष्टि ने मनुष्य और प्रकृति के बीच औद्योगिक-व्यावसायिक प्रगति को छायावाद ने प्रकृति पर मनुष्य की विजय घोषित करने का विरोध किया। प्रकृति के प्रति छायावादी दृष्टि 'कौतुहल और रागात्मकता' से भरी रही। स्वयं महादेवी कहती है- छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियां और कठोर शिलाएं अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड अंधकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता- विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। महादेवी क्योंकि प्रकृति के समस्त उपकरणों समस्त व्यापारों में उस दिव्य सौंदर्य के ही दर्शन करती है, इसलिए उन्होने प्रकृति के सभी उपादानों, सभी रूपों का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। यहां हम कुछ उदाहरण देंगे-

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से। आ वसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी-बंधन।
शीशफूल कर शशि का नूतन रश्मि वलय, सित
धन अवगुठन।
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी .
.....

महादेवी क्योंकि प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक रूप में उस दिव्य पुरुष के सौंदर्य के ही दर्शन करती है। इसलिए प्रकृति का कोई भी रूप उन्हे विचलित नही करता। उन्ही के अनुसार प्रकृति का शांत रूप जैसे मेरे हृदय में एक चंचल लय सी भर देता है। उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशासंत स्थिरता देता है। अस्थिरता रौद्रता की प्रतिक्रिया ही संभवत: मेरी एकाग्रता का कारण रहती है। निकट आंधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके चित्र अनायास बनते हैं और बना लेने पर स्थायी आनंद प्राप्त होता है। महादेवी ने अपनी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति और वेदनाभूति की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति का सहारा लिया। जो कुछ वह सीधे-सीधे अप्रत्यक्ष रूप में नही कह सकती थी, प्रकृति का अवरण ले लेने पर वही सब कुछ वह अतयंत सहज सरल ढंग से कह जाती है।

महादेवी वर्मा तथा छायावादी कवियों के प्रकृति चित्रण की एक अनूठी विशेषता यह रही कि उन्होंने प्रकृति पर नारी रूप का आरोप किया। वह चाहे प्रसाद हो, सुमित्रानंदन पंत का आरोपण किया। वह चाहे प्रसाद हो, सुमित्रानंदन पंत या फिर निराला-सभी प्रकृति की सुंदरता में किसी स्त्री स्वरूप की कल्पना से बढ़कर और कौन सी कल्पना होगी। महादेवी वर्मा भी इसका अपवाद नही है। बल्कि छायावाद युग में स्त्री की नव प्राप्त छवि और स्वतंत्रता से प्रेरित होकर, स्वयं स्त्री होने के नाते महादेवी ने नारी मुक्ति की चेतना को कही अधिक सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। महादेवी सौंदर्य की उदभाविता है। उनके काव्य में दिव्य पुरुष, प्रकृति, नारी के माध्यम से सौंदर्य को अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी कविताओं में चित्रित सौंदर्य स्थूल न होकर सूक्ष्म और आंतरिक सौंदर्य है।

महादेवी के काव्य में विभिन्न प्रतीक-

शब्द दो प्रकार के होते हैं वाचक शब्द और प्रतीकात्मक। वाचक शब्दों का संबंध केवल अभिधा शक्ति से होता है। जबकि प्रतीकात्मक शब्दों का संबंध लक्षणा और व्यंजना से होता है। साहित्य मनीषी वैदिक साहित्य और उपनिषद् काल की रचनाओं में प्रतीकों की उपस्थिति बताते हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत, पुराण, नागपंथी हठयोगियों की बानियों, अमीर खुसरों की मुकेरियों तथा विद्यापति सूर, कबीर, निराला और प्रसाद तक में प्रतीकों का प्रयोग देखने को मिलता है।

महादेवी के आकार प्रतीक को एक सिद्ध शिल्पी मिला। महादेवी ने माया के लिए दर्पण और आत्मा के लिए दीपक जैसे प्रकृति प्रेमी होने के कारण अपने प्रतीक भी प्रकृति से उठाती है। उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक उपादान, प्रत्येक व्यापार में उस विराट सत्ता के दर्शन किए हैं रहस्य तथा प्रणय के संकेतों से भरकर प्रकृति उनके समक्ष प्रस्तुत होती है।

महादेवी के प्रतीकों के विभिन्न प्रकार-

महादेवी ने मोटे तौर पर दो प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। एक, आत्मिक प्रतीक, जो उनके आध्यात्मिक सौंदर्य बोध को स्पष्ट करते हैं और इनसे महादेवी के दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है और दो प्रेमपरक प्रतीक जो कवयित्री के मानसिक सौंदर्य बोध को प्रकट करते हैं।

प्रकृति से उठाए गए प्रतीक-

छायावादी कवियों के समान महादेवी वर्मा प्रकृति की अनन्य प्रेमी है। इस विषय पर यह कहना प्रासंगिक होता है कि प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के माध्यम से महादेवी ने विविध मनोभावों,

राग-विराग को पूर्ण अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति में वह उस विराट सत्ता के दर्शन करती है।

आध्यात्मिक प्रतीक- यहां परम पुरुष के आगमन का सहारा लेकर कवयित्री ने आध्यात्मिक प्रतीक की रचना की।

करूणामय को भाता है।
तम के परदों में आना।

साधनात्मक प्रतीक- महादेवी का संपूर्ण जीवन एक सतत साधना के रूप में उनके काव्य पटल पर चित्रित हुआ है। इन्होंने ऐसे प्रतीकों का अत्यंत सुन्दर प्रयोग किया है तथा साधना व श्रद्धा को।

परम्परागत प्रतीक- महादेवी वर्मा ने अपनी कविताओं में परम्परागत और सांस्कृतिक प्रतीकों का भी खूब प्रयोग किया है।

सौंदर्यपरक प्रतीक- महादेवी वर्मा सौंदर्य की उदभाविका है। छायावादी कवियों के समान महादेवी ने भी सौंदर्य को अपने काव्य में प्रधानता दी है। उन्होंने सर्वत्र उस चीर सौंदर्य के दर्शन किए हैं। प्रकृति के नारी रूप का अत्यधिक प्रयोग उनके काव्य में मिलता है।

वेदना प्रधान प्रतीक- महादेवी वर्मा की कविता का मूल स्वर वेदना होने के कारण उसमें वेदना प्रधान प्रतीकों की कोई कमी नही है। अपनी वेदना को व्यक्त करने के लिए वह विभिन्न प्रतीकों को माध्यम बनाती है। कभी वह कहती है- विरह का जलजात जीवन, कभी नीर भरी दुख की बदली।

भावनात्मक प्रतीक- भावनात्मक सौंदर्य के लिए कवयित्री भावनात्मक प्रतीकों का प्रयोग करती है। गीत की विशेषता यही होती है कि उसमें किसी एक अनुभूति को लेकर ही चला जाता है।

आलोचनात्मक प्रतीक- प्रकृति के अंदर एक चेतन सत्ता की उपस्थिति का ज्ञान महादेवी को इस क्षेत्र के लिए अधिक मुखर करता है। एक उदाहरण-

सिंधु को क्या परिचय दें देव
क्षुद्र है मेरे बुंद बुंद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।

संदर्भ-

1. छायावादी काव्य तथा छायावादोत्तर काव्य, पृष्ठ 5
2. आधुनिक काव्य विवेचन मानविकी विद्यापीठ, पृष्ठ 117
3. छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, सुषमा पॉल
4. महादेवी का काव्य में लालित्य विधान, डॉ. मनोरमा शर्मा साहित्य संस्थान, कानपुर, प्र 0 सं 0 1976
5. छायावाद का काव्य शिल्प, प्रतिमा कृष्ण बल राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1971
6. आधुनिक हिन्दी कविता, डॉ. नंद किशोर नवल

महासमुन्द जिले में बीएड प्रशिक्षार्थियों का व्यक्तित्व प्रकार, राजनैतिक आकांक्षा एक अध्ययन

श्रीमती रेणुका त्रिपाठी

आई एस बी एम विश्वविद्यालय नावापारा(कोसमी) छुरा गरियाबन्द (छ.ग.)

डॉ० सिद्धाधेश्वर मिश्रा

निर्देशक, आई एस बी एम विश्वविद्यालय नावापारा(कोसमी) छुरा गरियाबन्द (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

शिक्षा मनुष्य की शक्ति का विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है। जिससे कि वह परम सत्य शिव और सुन्दरम का चिंतन करने के योग्य बन सके। शिक्षा एक व्यापक प्रत्यय है। यह जीवन पर्यन्त तक चलती है, और जीवन के प्रत्येक क्षेघ्त्र को प्रभावित करती है। शिक्षा में प्रत्येक अनुभव आता है, अत: इसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता और न ही काई निश्चित स्थान होता है। वह प्रत्येक स्थान पर प्राप्त की जा सकती है।

शिक्षा का उद्देश्य बालक के कुशल नागरिक बनाना है कि जिसमें बालक में सामाजिक कुशलता का विकास किया जा सके, समाज की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके अत: शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है समाज अपनी संस्कृति एवं मूल्यों को शिक्षण द्वारा संचित करता है।

जन्म के समय शिशु न सामाजिक होता है और न असामाजिक बल्कि व समाज के प्रति उदासीन होता है आयु बढ़ने के साथ-साथ वह सामाजिक गुणों से सुशोभित होता जाता है और कुछ ही वर्षो के बाद वह सामाजिक प्राणी कहलाने लगता है बालक सामाजिक गुणों को सामाजिक विकास की अवस्थाओं के अनुसार ग्रहण करता है।

रस्क के शब्दों में - अध्ययन ज्ञान या ग्रहण शक्ति को सुरक्षित रखने योग्यताओं को प्राप्त करने या समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाने वाला नियोजित प्रयास है। स्पष्ट है कि अध्ययन शक्ति अपनी स्वेच्छा से अपना ज्ञान ग्रहण शक्ति बढाने के लिए करता है,जो अभ्यास के साथ आदत का रूप् ग्रहण कर लेती है।

मार्गन एवं गिलीलैण्ड के मतानुसार:-

हम जो भी हैं, उन सब का योग व्यक्तित्व के नाम से पुकारा जाता है।

डेशिल के तानुसार:-

व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता हें

व्यक्तित्व:- व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष से मानसिक तथा शारीरिक दोनों की पहलू प्राप्त होता है। यह तंत्र में ऐसे तत्वोां गणन होता है जो आपस में अंतक्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण,संवेग, आदत,ज्ञानशक्ति ,चित्र,प्रकृति ,चरित्र अभिप्रेरक आदि है जो सभी मानसिक गुण है,परन्तु इन सबका आधार शारीरिक अर्थात व्यक्तित्व की ग्रंथीय क्रियाएँ एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएँ हैं।

राजनैतिक आकांक्षा:- शैक्षिक क्ष्त्र में जब कोई अनुसंधान कार्य किया जाता है तो उस अध्ययन की उपयोगिता महत्व प्रकृति आदि का औचित्य स्पष्ट करना इसलिए आवश्यक है कि इसके द्वारा यह सिघ्द्ध किया जा सके कि इस अनुसंधान के परिणाम व निष्कर्ष शैक्षिक जगत को किस प्रकार प्रभावित करेंगे। लोकतांत्रिक देश व राज्य में प्रत्येक व्यक्ति या नागरिक को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण के लिए आवश्यक है कि राजनैतिक अभिरूचि लोगों को सजग बनाती है एवं राजनैतिक समाज के खतरे को पहचान कर उसे दुर कर सकता है,बी.एड. प्रशिक्षार्थियों को विद्यार्थियों को पढाने हेतु प्रशिक्षित किया जाता है, अत: उन्हें विद्यार्थियों के व्यवहार, रूचि व इच्छा का ज्ञन होना आवश्यक है।

ग्रीण लीक के अनुसार:- अभिरूचि कुछ विशिष्ट कार्य कर सकने की अपनी स्वभाविक योग्यता है।

शिक्षा मानव के विकास की सर्वागीण आधार है जो मनुष्य को जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त इच्छा शक्तियों पर सार्थक नियंत्रण ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा समृद्धि शक्तियों के मार्ग दर्शन में व्यक्तित्व के व्यवहार व आचरण में मूल प्रवृत्यिों से प्रेरित होकर सभ्य संस्कारिता एवं उत्कृष्ट नागारिक बनाती है। शिक्षा मानव जीवन में उदारता, उच्चता, उत्कृष्ठता और पवित्रता लाती है जो बनाती है, वही सही कार्य में शिक्षा है।

भारत में महिलाओं के सम्मान की गौरवशाली परंपरा रही है जहां एक आरे सीता, सावित्री, जैसी महिलाये पौराणिक काल में हुई समाज में आज भी स्त्रियां आज भी विभिन्न प्रकार की विपदाओं से घिरी हुई है इनमें मुक्ति पाये बिना वह समाज में सही अर्थो में स्वतंत्रता व समानता का अधिकार नही प्राप्त कर सकती है। स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये कई प्रयास किये जा रहे है। जैसे महिला शिक्षा, बाल विवाह संबंधी बुराइयां, दहेज प्रथा आदि में कई प्र्यास किये।

उद्देश्य:-

1. बीएड प्रशिक्षार्थियों के शैक्षणिक विकास कहॉ तक हुआ है उसे जानना।

2. बीएड प्रशिक्षाथियों के व्यक्तित्व विकास में निर्माण हुई नई समस्या को खोजना।
3. विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व प्रकार वाले बीएड प्रशिक्षार्थियों के राजनैतिक अभिरूचि का अध्ययन करना।
4. महासमुंद जिले में प्रशिक्षण ले रहे बीएड छात्रों के व्यक्तित्व प्रकार का पता लगाना।
5. बीएड छात्रों के शैक्षणिक विकास को बढाना।
6. बीएड छात्रों के व्यक्तित्व से जुडी समस्याओं का अध्ययन करना।
7. बीएड प्रशिक्षाथियों के सामाजिक व्यावसायिक आचरण का पता लगाना।

सहाय युक्त (2005) महाविद्यालयीन लडकियों में राजनैतिक विज्ञान में रूचि का अध्ययन। अध्ययन से निष्कर्ष निकाला ि कइस अध्ययन का उद्देश्य आदिवाशी और गैरआदिवाशी तथा अनुसुचित जनजातियों के महाविद्यालयीन लडकियों में राजनैतिक विज्ञान में रूचि का अध्ययन करना है। इस उपकरण का प्रशासन 20 आदिवासी क्षेत्र 20 गैर आदिवासी क्षेत्र तथा 20 अनुसूचित जनजातिय वर्ग के 20 से 25 उम्र के लडकियों को लिया गया है। इस मापनी में 15 क्षेत्र हैं। आदिवासी, गैर आदिवासी तथा अनुसूचित जनजाति के लडकियों के अलग अलग राजनैतिक विज्ञान में रूचि के मापन के लिए माध्यिका एवं आकृत की गणना की गई। अंत में यह निष्कर्ष पाया कि मीाविद्यालयीन लडकियों के राजनैतिक विज्ञान सें रूचि का सार्थक अंतर नहीं पाया गया है।

खटकर हेमंत कुमार (2022-23) कक्षा ग्यारहवी के छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि पर अध्ययन निष्कर्ष निकाला गया कि छात्रों के बहिर्मुखी व्यक्तित्व पर ग्रामीण एवं शहरी शासकिय विद्यालयों का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया इस शोध में 100 छात्राओं को न्यायदर्श में शामिल कर अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी मापनी तथा अध्ययन आदत अविष्कारिका का उपयोग कर छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालयों एवं व्यक्तित्व के अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी का कोठ सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया ।

नोट किए गए कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदान -

- बीएड प्रशिक्षार्थियों का व्यक्तित्व किस प्रकार अध्ययन आदत को प्रभावित करता है,यह स्पष्ट करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी।
- शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का नैसर्गिक क्षमताओं का पूर्ण विकास निर्धारण हो सकता है
- छात्राओं में उत्तम अध्ययन आदतों के विकास से उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढाया जा सकेगी।

परिकल्पना:- अनुसंधान के प्रक्रम में समस्या का कथन के तुरंत पश्चात हमें उपयुक्त परिकल्पना की आवश्यक होता है परिकल्पना के लिए हमें विशिष्ट जानकारी होना आवश्यक है अन्यथा अनुसंधान कर्ता इधर-उधर भटकता है।परिकल्पना के अभाव में वैज्ञानिक अध्ययन प्राय: सम्भव नहीं हो सकता इसका मुख्य कारण यह है कि समस्या का स्वरूप् अत्यधिक विषम ,विस्तृत तथा विसरित रहता है। ऐसी समय में उनके व्यापक क्षेत्र को घटाया तथा न्यून करना आवश्यक होता है। अनुसंधान में परिकल्पना करना अत्यधिक महत्वपुर्ण होता है। ऐसा करने से अनुसंधानकर्ता को तर्क संगत आकडों के संकलन में ठीक -ठीक दिशा मिलती है तथा उपयुक्त वैध व शुद्ध निष्कर्षो के अनुमान में सुविधा व सरलता रहती है।

Ho_1:- बीएड प्रशिक्षार्थियों के विषय चयन हेतु शैक्षिक गतिविधियों में कोई सार्थक सम्बंध नहीं हो सकता।

Ho_2:- विभिन्न व्यक्तित्व प्रकार के बीएड प्रशिक्षार्थियों के राजनितिक अभिरूचि में कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_3:- बीएड प्रशिक्षार्थियों के व्यक्तित्व प्रकार में कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_4:- महासमुंद जिले में प्रशिक्षण ले रहे बीएड छात्रों के व्यक्तित्व प्रकार में कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_5:- बीएड छात्रों के व्यक्तित्व से जुडी समस्याओं का अध्ययन करने कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_6:- शैक्षिक उपलब्धि पर बीएड छात्रों का आदतों और व्यक्तित्व के आधार पर कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_7:- बीएड प्रशिक्षार्थियों के सामाजिक व्यावसायिक के आधार पर कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

अनुसंधान विधि:- संक्षेपों में सर्वेक्षण किसी समाजिक स्थिति अथवा समस्या अथवा जीवसंख्या के परिभाषित उद्देश्यों हेतु वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में विश्लेषण की एक विधि है- एच.एन मोर्स

प्रस्तुत अध्ययन में शोध उपकरणें का अनुप्रयोग करके सर्वेक्षण विधि का प्रयोग केया गया है।

न्यादर्श:- किसी जनसंख्या या समष्टि से प्रतिनिधि के रूप में किसी मांग या संख्या का योजनानुसार चयन न्यादर्श कहलाता है- करलिंगर प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ राज्य के महासमुन्द जिले के विकास खण्ड क्रमश: सराईपाली, बसना पिथौरा, बागबाहरा, महासमुन्द में कितने शिक्षा महाविद्यालय संचालित हैं उनमें से 330 प्रशिक्षाथियों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्शन अधार पर किया गया है

कमांक	शिक्षा महाविद्यालय	प्रशिक्षार्थी	कुल
1	प्रतिभा शिक्षा महाविद्यालय	50	200
2	रामचंडी शिक्षा महाविद्यालय	40	100
3	इण्डियन शिक्षा महाविद्यालय	50	200
4	जय हिन्द शिक्षा महाविद्यालय	50	200
5	भयाम बाला जी शिक्षा महाविद्यालय	50	200
6	भांति बाई वाणिज्य एवं कला शिक्षा महा.वि.	50	200
8	रामदर्शन इंस्टीट्यूट एजूकेशन जंघोरा पिथौरा	40	100
	योग	330	1200

6.4 उपकरण:-

मात्रात्मक शोध में आकडों/प्रदत्तों के संकलन के लिए विभिन्न विधियों प्रक्रियाओं और उपकरणों का विकास किया गया है। किसी भी समस्या के अध्ययन हेतु नवीन तथ्यों तथा अज्ञात तथ्यों का संकलन करने हेतु कई साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन्हे उपकरण कहते हैं। उपकरण वह ठोस साधन है जिन्हें शोध या सर्वेक्षण कार्यमें सहायक पाया जाता है। प्र स्त ु त अध्ययन में प्रदत्त संकलन के लिये दो प्रमापीकृत और एक स्वनिर्मित उपकरणों का उपयोग किया गया है। जिसका विवरण इस प्रकार है-

कमांक	मापित कर	निर्माणकर्ता	उपकरण का नाम
1	व्यक्तित्व	पी.एफ अजीज और डॉ. रेखा गुप्ता (2015)	अंतर्मुखी बहिर्मुखीता अविष्कारिक (IEI)
2	राजनैतिक अभिरूचि	सुरेष कुमार सिंह एव बी.बी.पण्डेय (2012)	राजनैतिक अभिरूचि अविष्कारिक (IPS)

सांख्यिकी प्रविधियों का चयन:-

प्रस्तुत अध्ययन में एकत्रित प्रदत्तों के व्यवस्थापन प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय प्रक्रियाओं के साथ आलेखों का निर्माण किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रदत्तों का विश्लेषण दो प्रकार से किया जा सकता है -

(1) वर्णात्मक सांख्यिकी विश्लेषण

प्रेक्षित व्यक्तियों के विशेष समुह या वर्ग में प्रदत्तों के विवरण प्रकृति के विश्लेषण के लिए मध्यमान ,माध्यिका,मध्यमान ,मानक विचलन की गणना की जाती है और सामान्यीकरण को उस समूह या वर्ग के लिए सीमत किया जा सकता है-

प्रस्तुत अध्ययन में अंग्राकित सूत्रों का उपयोग किया जा सकता है -

(II) मानक विचलन

आनुमानिक सांख्यिकीय विश्लेषण:- प्रतिदर्श आंकडों के आधार पर समष्टि या जीव संख्या के सी विशेषता या गुण के मध्यमान, मध्यिका, मानक विचलन (प्राचलों) का अनुमान जिन सांख्यिकीय प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है, आनुमानिक सांख्यिकी कहा जा सकता है।

चर

चर वे परिस्थितयां या विशेषताएँ हैं जिन्हें प्रयोगकर्ता नियंत्रित करता है जोड तोड करता है या अवलोकन करता है। किसी प्राणी या वस्तु के मापने योग्य गुणों को चर कहा जाता है- डी.ऐमेटो आश्रित चर वह है जिसका प्रयोगकर्ता घ्द्वारा निरीक्षण किया जाता है तथा रिकार्ड किया जाता है-केन्टोविज एवं रोडिष्टार

प्रस्तुत अध्ययन के निम्न लिखित चर है-

स्वतंत्र चर- बीएड प्रशिक्षार्थी, महाविद्यालय

आश्रित चर- व्यक्तित्व, राजनैतिक अभिरूची

अपेक्षित निष्कर्ष -

बीएड प्रशिक्षार्थियों में गुणात्मक एवं प्रभावी शिक्षा माता, पिता अध्ययापक, महाविद्यालय, समुदाय एवं समूह आदि शामिल हैं। बीएड प्रशिक्षार्थियों के व्यक्तित्व राजनैतिक अभिरूचि एवं शैक्षिक उपलब्धि में भिन्नता हो सकता है। चूंकि प्रशिक्षार्थियों के व्यक्तित्व राजनैतिक अभिरूचि एवं शैक्षिक उपलब्धि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल एवं प्रभावी बना सकती है तथा सिर्फ अनुसंधान क्रियाविधि उपकरण एवं सांख्यिकीय सिद्धांत का उपयोग करके निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं।

- बीएड प्रशिक्षार्थियों के राजनैतिक अभिरूची में भी अंतर मिल सकता है।
- छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धियों में भी अंतर मिल कता है।
- प्रशिक्षार्थियों में व्यक्तित्व आदत विषय चयन आत्मविश्वास पर भी अंतर प्राप्त हो सकता है।
- छात्राएं उनके व्यक्तित्व के अनुसार शैक्षिक निर्देशन करने में सहायता हो सकता है।
- अंतर्मुखी प्रशिक्षार्थियों का व्यक्तित्व बहिर्मुखी प्रशिक्षार्थियों से बेहतर हो सकता है।
- उभयमुखी प्रशिक्षार्थी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी प्रशिक्षार्थियों से बेहतर हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- अहलुवालिया पी.एस. (2007)दी स्टडी ऑफ इफेक्ट ऑफ स्ट्रेस आन पर्सनालिटी फैक्टर्स एंड प्रोफेशनल वैल्यू ऑफ टीचर्स इन केंद्रिय विद्यालय संगठन, सृजन शोध विशेशांक शोध एवं प्रकाशन विभाग सी. टी.ई. जामडोली जयपुर, राजस्थान पृ.50,51।
- खटकर एच.के. (2022-23) महासमुन्द जिले में कक्षा ग्यारहवीं के छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि पर अध्ययन आदतों एवं उनके व्यक्तित्व प्रकार के परिपेक्ष्य में अध्ययन शोध श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ।
- विदही एम.के. (1989-90) अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी छात्राओं शैक्षिक सामाजिक एवं कलात्मक अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन।

महासमुन्द जिले के हायर सेकेण्डरी स्कुल स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध

डॉ० हेमन्त कुमार खटकर

गांव- सुखापाली, पोस्ट -बिछिया, वि.ख.-बसना, जिला -महासमुन्द (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम जी कहे थे "भगवान ने हमें मस्तिष्क और क्षमताएं दी है। ईश्वर की प्रार्थना हमें इन शक्तियों को विकसित करने में मदद करती है।" शिक्षा एक ऐसा मशाल है जिससे अंधकार से उजाले की ओर जा सकते है एवं हम प्रकाशवान हो सकते है अर्थात यह कह सकते हैं कि शिक्षा प्रकाश हैं जो सभी का विकास करती है और हमे तेजस्वी बनाने मे सहायता प्रदान करती है। अर्न्तनिहित शक्तियों को प्रस्फुटित कर हमें विकास की ओर अग्रसर करती है, जिससे संपूर्ण मानव को पतन नही हमेशा उत्थान की ओर ले जाता हैं साथ ही साथ शिक्षा हमारे व्यवहार को उत्तम बनाने मे मुख्य रूप से सहायक सिध्द होती है और हमे संपूर्णता की ओर अग्रसर करती है। ज्ञान का संचय हमें संग्रहण करती है जिसके फलस्वरूप अच्छे कार्यो को करने मे तथा अच्छा व्यक्तित्व निर्माण में सहायता प्रदान करती है। सत्यम, शिवम, सुन्दरम के गुणों का आत्मसात कराती है कर्तव्य की भावना से हमारे ज्ञान चक्षु खोलती है। पालन पोषण करती है साथ ही साथ 'कल्पवृक्ष' के समान हमारे सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करती है।

शिक्षा मनुष्य की शक्ति का विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है। जिससे कि वह परम सत्य शिव और सुन्दरम का चिंतन करने के योग्य बन सके। शिक्षा एक व्यापक प्रत्यय है। यह जीवन पर्यन्त तक चलती है, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। शिक्षा में प्रत्येक अनुभव आता है,अत: इसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता और न ही काई निश्चित स्थान होता है। वह प्रत्येक स्थान पर प्राप्त की जा सकती है। बी० एड० प्रशिक्षार्थी भावी शिक्षक हैं जो राष्ट्र निर्माता तथा शिक्षा व्यवस्था के आधार स्तंभ माने जाते हैं। राष्ट्र के निर्माण के लिए मानव संसाधन का विकास इन पर निर्भर करता है। शिक्षक, मित्र, दार्शनिक, पथ-प्रदर्शक की भूमिका भी निभाते है। शैक्षिक सेवा में इनका योगदान विशेषकर उत्तम, कुशल और गुणवान बालकों के विकास में महत्वपूर्ण और निर्णायक है। शिक्षक हमारे समाज के दर्पण माने गये है। शिक्षण अभिरुचि का संबंध शालेय जीवन के अतिरिक्त अध्यापन में सुधार करने, शैक्षिक तथा व्यवसायिक कार्य क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। सही समय, सही विषय, और उचित परिस्थिति में शैक्षिक तथा व्यवसायिक कार्य क्षेत्र का चयन न हो तो यह सामाज के लिये भी हानिकारक है और व्यक्ति विशेष के लिये भी। प्रशिक्षार्थियों में यदि राजनैतिक अभिरुचि है तो उनमें कुशल नेतृत्व क्षमता विकसित किया जा सकता है, अत: यह आवश्यक है कि बी० एड० प्रशिक्षार्थियों के राजनैतिक अभिरुचि का अध्ययन किया जावे।

तकनीकी पदों की सक्रियात्मक परिभाषा:-

सामाजिक-आर्थिक स्तर- सामाजिक-आर्थिक स्तर से तात्पर्य सामाजिकव आर्थिकस्तर के जटिल संमिश्रण से है। यह व्यक्ति को जिस समाज में वह रहता है, में एक विशेष संस्थिति, उसके भौतिक सम्पत्ति व संसाधनों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिष्ठा, शक्ति व प्रभाव के आधार पर प्रदान करता है। इसमें उसकी प्रस्थिति यथा जाति, पारिवारिक प्रतिष्ठा, शिक्षा का स्तर, व्यवसाय, वार्षिक आय व कुल सम्पत्ति आदि आते हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तर- उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा-11 तथा कक्षा-12 को संदर्भित करता है तथा यह प्राथमिक या हाईस्कूल तथा स्नातक का मध्यवर्ती स्तर होता है। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा केवल 2 वर्ष की होती है।

जिला महासमुन्द की राजधानी रायपुर से 50 किलोमीटर पूर्व दिशा में राष्ट्रीय राजमार्ग 06 बम्बई से कोलकाता राजमार्ग से 10 किलोमीटर अंदर बसा हुआ है।यहां पहुंचने के लिए बसे रेल एवं निजी टेक्सियां आसानी पूर्वक मिल जाती है। महासमुन्द जिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यहां अनेकों महाविद्यालय, स्वामी आत्मानंद उत्कृष्ट अंग्रेजी, हिन्दी माध्यम एवं अनेकों शासकिय एवं निजी विद्यालय तथा डाटा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हैं। दार्शनिक स्थल के रूप में जिले के महासमुन्द विकास खण्ड में राष्ट्रीय स्तर के दार्शनिक स्थल के रूप में सिरपुर का लक्ष्मणमंदिर है। जिसे देखने देश विदेश से लोग आते हैं, तथा दार्शनिक स्थल के लिए बम्हनी में प्रसिद्ध मंदिर है जहॉ प्रत्येक वर्ष मेला लगता है तथा सिंचाई के लिए शहीद वीरनारायण जलासय है जो हजारों हेक्टेयर जमीन मे सिंचाई हो रहा है। बागबाहराविकास खण्ड में खल्लारी मॉ तथा घुंचापाली के चण्डी

मंदिर में जंगली भालू प्रसाद ग्रहण करने तथा एवं पुजा करने आते हैं यह एक देखने वाली बात होती हैं। विकासखण्ड पिथौरा में बनदुर्गा मंदिर प्रसिद्ध है जहॉ दर्शन करने वाले गेरवा ले कर आते हैं। एवं मनोकामना मॉग कर उसे मंदिर में चढाते हैं तथा जोंकनदी अनवरत बह रही है। विकास खण्ड बसना में पूर्व राजा महाराजाओं का निवास गढफुलझर रहा है। जहां एक ऐतिहासिक मंदिर भी है, जहॉ श्रद्धालु पुजा करने जाते हैं साथ ही साथ वहॉ मिट्टी से अनेकों कलाकृतियां किया जा रहा है।जिससे लोग आत्मनिर्भर बन रहे हैं। विकास खण्ड सराईपाली ओडिसा राज्य से लगा हुआ महासमुन्द जिले का अंतिम छोर है, यहां का कुछ-कुछ नक्सली क्षेत्र में आता है। शिशुपाल पर्वत एवं सिंघोडा मंदिर देखते ही मन मोह लेता है क्योंकि यहां औद्योगिक क्षेत्र में बिरकोनी का नाम राष्ट्रीय स्तर में गिना जाता है।

- जॉन डी0वी0 के अनुसार गृह वातावरण में रहने वाले बालक का दृष्टिकोण संकुचित व उनमें सामाजिकता व त्याग की भावना विकसित नहीं हो पाती लेकिन विद्यालय वातावरण के सम्पर्क में आने पर बालक का दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है।
- विद्यालय वातावरण से हमारा तात्पर्य विद्यालय वातावरण की उन परिस्थितियों से है जो अध्यापक, शिक्षण अधिगम सामग्री तथा शिक्षण विधि के संयोग से उत्पन्न होती है
- विद्यालयी वातावरण विद्यार्थियों के भविष्य की दिशा प्रदान करते हैं।

अध्ययन का आवश्कता:-

- किशोरों को विद्यालयी वातावरण में अन्य सहपाठियों के साथ अपने व्यवहार का समायोजन कर शैक्षिक क्षेत्र में आगे बढ़ना होता है।
- विद्यार्थियों में सामाजिक-आर्थिक समानता उनके नैतिक मूल्यों को किस प्रकार से प्रभावित करता है।
- विद्यालय का वातावरण उनमें कहाँ तक संवर्धन करता है इस अंतर्सम्बन्ध के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों के आदर्श नैतिक मूल्यों का विकास कर सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में उनके योगदान को विस्तारित कर आर्दश समाज व आर्दश राष्ट्र का निर्माण पर मानवता को गति एवं संबल प्रदान किया जा सकता है।
- विद्यालय वातावरण जितना अच्छा होगा नैतिक मूल्यों का भी उतना ही उत्कृष्ट विकास होगा। मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रभावित करने वाले कारकों में सामाजिक-आर्थिक स्तर के महत्वपूर्ण कारक है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन:-

त्रिपाठी, संजीव कुमार (2014) ''माध्यमिक विद्यालयों के विद्यालय वातावरण का विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों एवं शैक्षिक तनाव के सन्दर्भ में अध्ययन'' का अध्ययन किया व निष्कर्ष निकाला।

- माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश के माध्यमिक विद्यालयों के बौद्धिक उत्साहवर्धन वातावरण एवं विद्यार्थियों की अध्ययन के मध्य रेखीय सहसम्बन्ध सार्थक है बौद्धिक उत्साहवर्धक वातावरण की अध्ययन की आदतों को बढ़ाता है।
- माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के माध्यमिक विद्यालयों के स्वच्छन्दतापूर्ण, अस्वीकृतपूर्ण तथा नियंत्रित वातावरण एवं विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों में कोई सम्बन्ध नहीं है।
- इन्डियन सर्टिफिकेट ऑफ सेकेन्डरी एजूकेशन (आई0सी0एस0ई0) बोर्ड के माध्यमिक विद्यालयों के नियंत्रित वातावरण एवं विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है।
- सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेन्डरी एजुकेशन (सी0बी0एस0सी0) बोर्ड के माध्यमिक विद्यालयों के बौद्धिक उत्साहवर्धक तथा स्वीकृतिपूर्ण वातावरण एवं विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों में कोई सम्बन्ध नहीं है।

शर्मा, वी0 (1989) अपने अध्ययन- ए स्टडी ऑफ लर्निंग इनवायरमेंट अमंग सर्टेन टाइप ऑफ स्कूल में निष्कर्ष दिया कि कक्षा-कक्ष में सीखने का वातावरण विद्यालय के प्रकार बदलने के साथ-साथ नहीं बदलता है। प्राइवेट तथा सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का वातावरण भिन्न-भिन्न होता है।

त्रिपाठी, संजीव कुमार (2014) ''माध्यमिक विद्यालयों के विद्यालय वातावरण का विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों एवं शैक्षिक तनाव के सन्दर्भ में अध्ययन'' का अध्ययन किया। शर्मा, वी0 (1989) ने अपने अध्ययन में सीखने का वातावरण विद्यालय के प्रकार बदलने के साथ-साथ नहीं बदलता है। प्राइवेट तथा सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का वातावरण भिन्न-भिन्न होता है। शर्मा, (2012) ने नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सफलता के मध्य सह-सम्बन्धों का तुलनात्मक अध्ययन किया और सीरीन, (2005) ने सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति पर विश्लेषणात्मक समीक्षा की। इन सम्बन्धित साहित्य के द्वारा शोध समस्या परिभाषीकरण, उद्देश्य, शोध परिकल्पना एवं उनका सीमांकन करने में सहायक हुआ है। जिससे शोध समस्या कथन महासमुंद जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर नैतिक मूल्यों व सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध तैयार किया गया है।

अनुसंधान अंतराल:-

- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के द्वारा उस शोध क्षेत्र में हो चुके शोध की जानकारी अनुसंधानकर्ता को प्राप्त हो जाती है।

- अनुसंधानकर्ता शोध के लिए अपनायी जाने वाली विधि, प्रयोग से उपयोग लाये जाने वाले उपकरणों एवं आँकड़ो के विश्लेषण में प्रयुक्त की गयी प्रविधि की जानकारी भी मिल जाती है।
- सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से शोध समस्या के निराकरण के लिए शोध कार्य की सफलता तथा उसकी उपयोगिता के विषय में पूर्वानुमान हो जाता है।
- सम्बन्धित साहित्य के द्वारा शोध समस्या परिभाषीकरण, उद्देश्य, शोध परिकल्पना एवं उनका सीमांकन करने में सहायक होता है।

अनुसंधान अंतराल निम्नलिखित है:-

1. प्रस्तुत अनुसंधान में कार्य क्षेर्त में छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिलें को लिया गया है।
2. महासमुंद जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 12वी के विद्यार्थियों को लिया गया है।
3. तीन चर नैतिक मूल्यों व सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध किया गया है। प्रस्तुत अनुसंधान में अनुसंधान अंतराल समय का है, यह अनुसंधान वर्तमान समय में किया गया हैं।

अध्ययन का उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों पर विद्यालयी वातावरण के विभिन्न आयामों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना:-

HO_1 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_2 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में उनकी सामाजिक-आर्थिक स्तर के विभिन्न स्तरों में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_3 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में उनके विद्यालयी वातावरण के विभिन्न स्तरों के सम्बन्ध में सार्थक अन्तर नहीं है।

सीमांकन:-

शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिले तक सीमित रखा गया है।

धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 12वी के विद्यार्थियों को लिया गया है।

12वी के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर अनुसंधान है।

शोध अध्ययन हेतु प्रयुक्त विधि:-

वर्णनात्मक सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है।

वि.ख.	विद्यालय का नाम	बोर्ड का नाम	बालक	बालिकाएं	कुल बालक, बालिकाएं
महासमुंद	1.उच्च.माध्य. विद्यालय महासमुंद	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	2.उच्च.माध्य. विद्यालय बेमचा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय कन्या महासमुंद	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
बागबाहरा	1.उच्च.माध्य. विद्यालय बागबाहरा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	2.उच्च.माध्य. विद्यालय कन्या बागबाहरा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय खल्लारी	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
पिथौरा	1.उच्च.माध्य. विद्यालय पथरला	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	2.स्वामी आत्मानंद उच्च.माध्य. विद्यालय पिथौरा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय बम्हनी	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
बसना	1.उच्च.माध्य. विद्यालय बसना	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	2. स्वामी आत्मानंद उच्च.माध्य. विद्यालय बसना	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय बिछिया(सा)	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
सरायपाली	1. स्वामी आत्मानंद उच्च.माध्य. विद्यालय सरायपाली	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	2. उच्च.माध्य. विद्यालय अमरकोट	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय केंदुवा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	11	14	25
कुल			165	210	375

प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर के अध्ययनरत् छात्रों को महासमुंद जिले के छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल से सम्बद्ध शासकीय विद्यालयों का "यादृच्छिक" विधि से चयन किया जाएगा। महासमुंद जिले के 375 छात्रों का चयन "यादृच्छिक" विधि से चयन किया जाएगा।

शोध चयन विधि:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जायेगा ।

चर:-

स्वतंत्र चर - सामाजिक-आर्थिक स्तर, आश्रित चर - विद्यालयी वातावरण

प्रयुक्त उपकरण:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन - उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिकस्तर एवं विद्यालयी वातावरण के सन्दर्भ में अध्ययन के अन्तर्गत अनुसंधान कार्य में आँकड़ों के संकलन के लिए निम्न शोध उपकरणों का प्रयोग किया गया-

1. सामाजिक-आर्थिकस्तर स्केल- डॉ0 आभ्या आर0 जोग्लेकर एवं रूपा सल्होत्रा (SESS - JASR)

2. विद्यालय वातावरण परिसूची- डॉ0 के0एस0 मिश्रा प्रयुक्त

सख्यिकी:-

1. मध्यमान (Mean)- वर्गीकृत प्रदत्तों का मध्यमान ज्ञात करने के लिए लघु विधि या कल्पित मध्यमान विधि का प्रयोग किया हैं।

2. प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

निष्कर्ष:-

- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में माध्यम के आधार पर हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तिगत, शिक्षा, आय, घर पर सुविधा एवं घर पर अन्य सुविधाओं में अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक स्तर के आँकड़ों में अन्तर पाया गया।
- ग्रामीण तथा शहरी परिवेश में छात्र-छात्राओं पर नैतिक मूल्यों के आयाम सत्यता का उनमें प्रभाव पाया जाता है तथा शेष अन्य निष्ठा, मानवता व शिष्टता इन पर अप्रभावी रहते हैं अत: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में क्षेत्रियता के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तिगत, शिक्षा, आय, पर सुविधायें एवं घर पर अन्य सुविधायें से अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक स्तर के आँकड़ों में अन्तर पाया गया। विद्यालय वातावरण के सन्दर्भ में निष्कर्ष स्थापन -
- विद्यालय वातावरण के आयाम अनुमोदन का छात्र एवं छात्राओं पर प्रभाव पड़ता है तथा यह छात्राओं की अपेक्षा छात्रों पर अधिक प्रभाव डालता है। निष्कर्ष में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लिंग के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण के अनुमोदन प्रत्यय में अन्तर पाया गया।
- विद्यालय वातावरण के आयाम रचनात्मक प्रोत्साहन, स्वीकृति एवं अस्वीकृति माध्यम के आधार पर विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव डालते है तथा ये तीनों आयाम अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों को अधिक प्रभावित करते हैं। अत: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में माध्यम के आधार पर हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों पर विद्यालय वातावरण के रचनात्मकप्रोत्साहन, स्वीकृति एवं अस्वीकृति में अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण में अन्तर पाया गया।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में माध्यम के आधार पर हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तिगत, शिक्षा, आय, घर पर सुविधा एवं घर पर अन्य सुविधाओं में अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक स्तर के आँकड़ों में अन्तर पाया गया।
- ग्रामीण तथा शहरी परिवेश में छात्र-छात्राओं पर नैतिक मूल्यों के आयाम सत्यता का उनमें प्रभाव पाया जाता है तथा शेष अन्य निष्ठा, मानवता व शिष्टता इन पर अप्रभावी रहते हैं अत: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में क्षेत्रियता के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तिगत, शिक्षा, आय, पर सुविधायें एवं घर पर अन्य सुविधायें से अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक स्तर के आँकड़ों में अन्तर पाया गया। विद्यालय वातावरण के सन्दर्भ में निष्कर्ष स्थापन -
- विद्यालय वातावरण के आयाम अनुमोदन का छात्र एवं छात्राओं पर प्रभाव पड़ता है तथा यह छात्राओं की अपेक्षा छात्रों पर अधिक प्रभाव डालता है। निष्कर्ष में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लिंग के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण के अनुमोदन प्रत्यय में अन्तर पाया गया।
- विद्यालय वातावरण के आयाम रचनात्मक प्रोत्साहन, स्वीकृति एवं अस्वीकृति माध्यम के आधार पर विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव डालते है तथा ये तीनों आयाम अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों को अधिक प्रभावित करते हैं। अत: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में माध्यम के आधार पर हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों पर विद्यालय वातावरण के रचनात्मकप्रोत्साहन, स्वीकृति एवं अस्वीकृति में अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण में अन्तर पाया गया।

अग्रिम अध्ययन हेतु सुझाव:-

1. यह अध्ययन व्यावसायिक कार्यो पर भी संचालित किया जा सकता है।
2. इस शोध अध्ययन को विभिन्न शैक्षिक अभिकरणों द्वारा संचालित विद्यालयों के कक्षा वातावरण पर भी संचालित किया जा सकता है जिससे कि विभिन्न मूल्यों के विकास में योगदान किया जा सके।
3. यह अध्ययन पूर्व किशोरावस्था तथा पश्च किशोरावस्था पर भी संचालित की जा सकती है।
4. विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक कारकों जैसे कि अधिगम प्रक्रिया, मानसिक योग्यता, सजृनता तथा स्मृति स्मरण पर विद्यालय वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।
5. विद्यालयों के प्राकृतिक, संगठनात्मक और विद्यालयी वातावरण का अध्ययन किया जा सकता है।
6. इस अध्ययन को गृह वातावरण भी संचालित किया जा सकता है क्योंकि कभी-कभी पारिवारिक वातावरण विद्यालय वातावरण द्वारा प्रदर्शित शैक्षिक गतिविधियों के सकारात्मक प्रभाव को विफल कर देता है।

संदर्भित ग्रंथ सूची:-

बैरी जेनीकर (2005) द्वारा - द इफेक्टर ऑफ शोसियो इकोनॉमिक स्टेयस ऑन एकेडमिक अचीवमेंट विषय पर शोध।

भाम्बरी, निशी एवं तिवारी, प्रीति (2005) में सी.बी.एस.ई एवं राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड संचालित उ.मा.वि. में अध्ययनरत छात्रों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धियों का तुल्याात्मक अध्यनन।

व्यक्तित्व का विकास -स्वामी विवेकानंद प्रकाशक स्वामी ब्रम्हास्थानंद अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर पृ.5

आनंद एस (2009)परसेप्सन आफ स्कुल क्लाइमेट ए सोसल साइकोलाजिकल एंड एजुकेशन स्टडी आफ सेकेण्डरी स्टुडेंट्स पी.एच.डी (शिक्षाशास्त्र) लखनउ वि.विश्वविद्यालय।

आस्टलिन आर (2009) इकोनोमिक इन्फ्यूयन्स आफ मोरल वेल्यूस द बी ई जर्नल आफ इकोनोमिक -अनालिसिस।

त्रिपाठी के (2009) ए स्टडी इन इफैक्ट एजूकेशन आफ स्कुल आन स्टुडेन्स साइन्टिफिक एटिट।

सारस्वत मालती (2013) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा लखनउ आलोक प्रकाशन।

धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर नैतिक मूल्यों व सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर शोध

श्रीमती डॉ० मोहनी सिन्हा

W/O राजेद्र सिन्हा, श्रीनगर, वार्ड क्र.01, रूद्री, जिला- धमतरी (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

शिक्षा मानव के विकास की सर्वागीण आधार है जो मनुष्य को जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त इच्छा शक्तियों पर सार्थक नियंत्रण ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा समृद्धि शक्तियों के मार्ग दर्शन में व्यक्तित्व के व्यवहार व आचरण में मूल प्रवृत्यिों से प्रेरित होकर सभ्य संस्कारिता एवं उत्कृष्ट नागारिक बनाती है। शिक्षा मानव जीवन में उदारता, उच्चता, उत्कृष्ठता और पवित्रता लाती है जो बनाती है, वही सही कार्य में शिक्षा है।भारत में महिलाओं के सम्मान की गौरवशाली परंपरा रही है जहां एक आरे सीता, सावित्री, जैसी महिलाये पौराणिक काल में हुई समाज में आज भी स्त्रियां आज भी विभिन्न प्रकार की विपदाओं से घिरी हुई है इनमें मुक्ति पाये बिना वह समाज में सही अर्थो में स्वतंत्रता व समानता का अधिकार नही प्राप्त कर सकती है। स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये कई प्रयास किये जा रहे है। जैसे महिला शिक्षा, बाल विवाह संबंधी बुराइयां, दहेज प्रथा आदि में कई र्प्रयास किये।शिक्षा का उद्देश्य बालक के कुशल नागरिक बनाना है कि जिसमें बालक में सामाजिक कुशलता का विकास किया जा सके, समाज की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके अत: शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है समाज अपनी संस्कृति एवं मूल्यों को शिक्षण द्वारा संचित करता है।जन्म के समय शिशु न सामाजिक होता है और न असामाजिक बल्कि व समाज के प्रति उदासीन होता है आयु बढ़ने के साथ-साथ वह सामाजिक गुणों से सुशोभित होता जाता है और कुछ ही वर्षो के बाद वह सामाजिक प्राणी कहलाने लगता है बालक सामाजिक गुणों को सामाजिक विकास की अवस्थाओं के अनुसार ग्रहण करता है।

तकनिकी शब्दों की परिभाषा:-

उच्चतर माध्यमिक स्तर:- उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा-11 तथा कक्षा-12 को संदर्भित करता है तथा यह प्राथमिक या हाईस्कूल तथा स्नातक का मध्यवर्ती स्तर होता है। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा केवल 2 वर्ष की होती है।

नैतिक मूल्य:- उचित अनुचित व्यवहार को बताने वाले मूल्यों को नैतिक मूल्य कहते है। नैतिक मूल्य नियमों का एक समूह है जो व्यक्ति को निर्देशित करता है सही व गलत तथा अच्छे व बुरे में मूल्यांकन के लिए। नैतिक मूल्य व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों को भी परिभाषित करते है। प्रस्तुत शोध में नैतिक मूल्य से आशय सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय जबलपुर द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य परीक्षण के नैतिक मूल्यों सत्यता, निष्ठा, शिष्टता के सम्बन्ध में प्राप्त प्राप्तांकों से है।

- आजकल सभी अपने बच्चो को शिक्षित बनाना चाहता है।
- अत: शिक्षा में ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी का अधिकाधिक समावेश हो गया है।
- उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थी निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों से अच्छी शिक्षा प्राप्त करने से सक्षम होते है।
- विद्यालय वातावरण से हमारा तात्पर्य विद्यालय वातावरण की उन परिस्थितियों से है जो अध्यापक, शिक्षण अधिगम सामग्री तथा शिक्षण विधि के संयोग से उत्पन्न होती है

उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध परिकल्पनाएँ निम्नलिखित् है: -

HO_1 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_2 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक-आर्थिक स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_3 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

शर्मा, वी0 (1989) ने अपने अध्ययनः- ए स्टडी ऑफ लर्निंग इनवायरमेंट अमंग सर्टेन टाइप ऑफ स्कूल में निष्कर्ष दिया कि कक्षा-कक्ष में सीखने का वातावरण विद्यालय के प्रकार बदलने के साथ-साथ नहीं बदलता है। प्राइवेट तथा सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का वातावरण भिन्न-भिन्न होता है।

शर्मा, (2012) ने नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सफलता के मध्य सह-सम्बन्धों का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर की उपेक्षा उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का स्तर सार्थक रूप से उच्च है, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक सफलता का स्तर साथर्क रूप से उच्च है।

अनुसंधान अंतरालः-

- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के द्वारा उस शोध क्षेत्र में हो चुके शोध की जानकारी अनुसंधानकर्ता को प्राप्त हो जाती है।
- अनुसंधानकर्ता शोध के लिए अपनायी जाने वाली विधि, प्रयोग से उपयोग लाये जाने वाले उपकरणों एवं आँकड़ो के विश्लेषण में प्रयुक्त की गयी प्रविधि की जानकारी भी मिल जाती है।
- सम्बन्धित साहित्य के द्वारा शोध समस्या परिभाषीकरण, उद्देश्य, शोध परिकल्पना एवं उनका सीमांकन करने में सहायक होता है।

अनुसंधान अंतराल निम्नलिखित हैः-

1. प्रस्तुत अनुसंधान में कार्य क्षेत ंमें छत्तीसगढ़ के धमतरी जिलें को लिया गया है।
2. धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 12वी के विद्यार्थियों को लिया गया है।

सीमांकनः-

- शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले तक सीमित रखा गया है।
- धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 12वी के विद्यार्थियों को लिया गया है।

शोध अध्ययन हेतु प्रयुक्त विधिः-

वर्णनात्मक सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है।

वि.ख.	विद्यालय का नाम	बोर्ड का नाम	बालक	बालिकाएं	कुल बालक,बालिकाए
धमतरी	1.उच्च.माध्य. विद्यालय आमदी	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	2.उच्च.माध्य. विद्यालय देमार	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय कंडेल	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
कुरूद	1. उच्च.माध्य. विद्यालय सेमरा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	2. एन.ए. उच्च.माध्य. विद्यालय कुरुद	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	3. उच्च.माध्य. विद्यालय रामपुर	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
मगरलोड	1. उच्च.माध्य. विद्यालय मगरलोड	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	2.उच्च.माध्य. विद्यालय बोर्सी	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	3.उच्च.माध्य. विद्यालय मेघा	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
नगरी	1. उच्च.माध्य. विद्यालय घटसीला	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	2. उच्च.माध्य. विद्यालय सलौनी	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
	3. उच्च.माध्य. विद्यालय नगरी–ब	छ.ग. माध्य. शिक्षा बोर्ड	13	15	28
		कुल	156	180	336

शोध जनसंख्या से न्यादर्श का चयन करने के लिए धमतरी जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से बहुस्तरीय सरल संयोगिक विधि (Multiple Simple Random Method) द्वारा 336 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

चरः-

स्वतंत्र चर - सामाजिक-आर्थिक स्तर, विद्यालयी वातावरण आश्रित चर - नैतिक मूल्य

शोध चयन विधिः-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में बहुस्तरीय सरल यादृच्छिक न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के न्यादर्श में चुनाव अनियमितता विधि द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की चयन विधि में जनसंख्या अथवा समष्टि से प्रत्येक ईकाई या व्यक्ति को न्यादर्श में चुने जाने के लिए समान अवसर प्राप्त होता है। इस न्यादर्श में व्यक्तियों के चयन एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः-

प्रस्तुत शोध अध्ययन - उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का उनके सामाजिक-आर्थिकस्तर एवं विद्यालयी वातावरण के सन्दर्भ में अध्ययन के अन्तर्गत अनुसंधान कार्य में आँकड़ों के संकलन के लिए निम्न शोध उपकरणों का प्रयोग किया गया-

1. नैतिक मूल्य परीक्षण- विद्या भारती प्रकाशन, जबलपुर

2. सामाजिक-आर्थिकस्तर स्केल- डॉ0 आभ्या आर0 जोग्लेकर एवं रूपा सल्होत्रा (SESS - JASR)

3. विद्यालय वातावरण परिसूची- डॉ0 के0एस0 मिश्रा प्रयुक्त

सांख्यिकी:-

1. मध्यमान (Mean) दृ वर्गीकृत प्रदत्तों का मध्यमान ज्ञात करने के लिए लघु विधि या कल्पित मध्यमान विधि का प्रयोग किया है।

2. प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

निष्कर्ष:-

- छात्र तथा छात्राओं में नैतिक गुणों का समान रूप से समावेशन होता है तथा दोनों में ही नैतिक मूल्य के आयाम विद्यमान रहते हैं। परिकल्पना के विश्लेषण में पाया गया कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लिंग के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्यों के सत्यता, निष्ठा, मानवता एवं शिष्टता में अन्तर न होने के कारण सम्पूर्ण नैतिक मूल्यों में भी अन्तर नहीं पाया गया।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में माध्यम के आधार पर हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों पर केवल सत्यता में अन्तर पाया गया।
- ग्रामीण तथा शहरी परिवेश में छात्र-छात्राओं पर नैतिक मूल्यों के आयाम सत्यता का उनमें प्रभाव पाया जाता है तथा शेष अन्य निष्ठा, मानवता व शिष्टता इन पर अप्रभावी रहते हैं अत: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में क्षेत्रियता के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तिगत, शिक्षा, आय, पर सुविधायें एवं घर पर अन्य सुविधायें से अन्तर होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक स्तर के आँकड़ों में अन्तर पाया गया। विद्यालय वातावरण के सन्दर्भ में निष्कर्ष स्थापन -
- विद्यालय वातावरण के आयाम अनुमोदन का छात्र एवं छात्राओं पर प्रभाव पड़ता है तथा यह छात्राओं की अपेक्षा छात्रों पर अधिक प्रभाव डालता है। निष्कर्ष में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लिंग के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण के अनुमोदन प्रत्यय में अन्तर पाया गया।

संदर्भित ग्रंथ सूची:-

- आनंद एस (2009)परसेप्सन आफ स्कुल क्लाइमेट ए सोसल साइकोलाजिकल एंड एजुकेशन स्टडी आफ सेकेण्डरी स्टुडेंट्स पी.एच. डी (शिक्षाशास्त्र) लखनउ वि.विश्वविद्यालय।
- आस्टलिन आर (2009)इकोनोमिक इन्फ्यूयन्स आफ मोरल वेल्यूस द बी ई जर्नल आफ इकोनोमिक -अनालिसिस ।
- त्रिपाठी के (2009) ए स्टडी इन इफैक्ट एजूकेशन आफ स्कुल आन स्टुडेन्स साइन्टिफिक एटिट।
- सारस्वत मालती (2013) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा लखनउ आलोक प्रकाशन।

प्रेमचन्द युग में बदलते सामाजिक परिवेशः एक साहित्यिक समीक्षा

डॉ० दशरथ राम

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, टी.पी.वर्मा कॉलेज, नरकटियागंज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रेमचन्द के समय भारतीय समाज संक्रमण-काल से गुजर रहा था। तत्कालीन भारतीय समाज में कतिपय कुरीतियाँ एव बुराईयाँ व्याप्त थी, परंतु विभिन्न धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों एवं शिक्षा, संचार और औद्योगिकीकरण के प्रसार के फलस्वरूप समाज की बुराईयाँ एवं कुरीतियाँ कमजोर पड़ रही थी। प्रेमचन्द ने अपनी कथा-साहित्य में इन तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों एवं समस्याओं को चित्रित किया था। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में अस्पृश्यता, विधवा-विवा, अनमेल-विवाह, दहेज प्रथा, नारी-पराधीनता, धर्म का भय, हिंदू-मुस्लिम संबंध आर्थिक-शोषण आदि समस्या बखूबी चित्रित हुई है। प्रेमचन्द ने अपने समय में जैसा समाज देखा व महसूसा था; वैसा ही अपने साहित्य में चित्रित करने की कोशिश की थी। प्रेमचन्द के समय में अछूतों (दलितों) की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी। प्रेमचन्द के समय अछूतों की समस्या को लेकर विभिन्न संघर्ष एवं आंदोलन चल रहे थे। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में अछूतों की समस्या पर पर्याप्त लेखनी चलायी है। प्रेमचन्द ने अपने समय में अछूतों की जो स्थिति एवं संघर्ष देख था; उसको उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित करने की कोशिश की थी। प्रस्तुत शोध का विषय भी कमाबेश यही हैं।''

प्रेमचन्द के समय दलित (अछूत) अपने सामाजिक-अधिकार एवं सम्मान की लड़ाई लड़ रहे थे। प्रेमचन्द के समय भारतीय हिन्दू समाज में जाति-प्रथा एवं छूआ-छूत की भावना प्रबल थी। जाति-प्रथा प्राचीन वर्णन-व्यवस्था का विकृत रूप थी। इस प्रथा ने हिन्दू समाज के अछूत वर्ग को समाज से लगभग अलग-थलग कर दिया था। इनपर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबंध लाद दिये गये थे। उनके स्पर्श का कौन कहे यहाँ तक कि उनकी छाया भी सवर्णों के लिए वर्जित थी। उनके खान-पान, रहन-सहन के तौर-तरीके और निवास के अलग-अलग नियम बने हुए थे। वे सवर्णों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कुँओं ओर जलाशयों से पानी नहीं ले सकते थे और मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। शास्त्रों का अध्ययन, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन आदि भी उनके लिए वर्जित थे। इन्हें उच्च एवं सम्मानजनक नौकरी में प्रवेश नहीं मिलता था। उन्हें भूमि के स्वमित्व संबंधी अधिकार भी नहीं थे। उनका कार्य सवर्णों के सेवा एवं अन्य अपवित्र कार्यों को करना था। प्रेमचन्द के समय जाति व्यवस्था अपने भीषण रूप में व्याप्त थी, ''जाति प्रथा ने हिंदूओ को जन्म पर आधारित परस्पर पृथ्क पदानुक्रमित सुधार आंदोलनों ने इसके उन्मूलन को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। जाति प्रथा 'हिंदू धर्म का लौह ढांचा थी। .....शुरू में हिंदू समाज में तीन या चार वर्ण थे। लेकिन बाद में प्रजातीय सम्मिश्रण, भौगोलिक विस्तार, हस्तशिल्प के विकास और तज्जन्य नए व्यवसाय के उद्भव आरि कारणों से प्रारंभिक वर्ण विविध जातियों-उपजातियों में विभक्त हो गए। .....जाति प्रथा ने उन्हें विभिन्न दलों और उपदलों में अलग-अलग बोट दिया। शादी, खानपान और रोजगार जैसे सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक मामलों में ये दल एकांतिक और विशिष्ट थे। जाति प्रथा सतावादी और अनजनतांत्रिक थी। इस पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला में प्रत्येक जाति अपने नीचे की जाति से श्रेष्ठ और ऊपर की जाति से निकृष्ट थी। इस शृंखला में जाति विशेष की स्थिति से ही उस जाति में पैदा हुए व्यक्ति का सामाजिक स्थान निर्धारित होता था। व्यक्ति विशेष के जन्म से ही उसकी अपरिवर्तनशील स्थिति पूर्वनिर्धारित हो जाती थी। ....जाति ने व्यक्तिगत क्षमता नहीं, वरन् जन्म पर आधारित आभिजात्य की सृष्टि की। व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रतिभा और क्षमता का मुक्त उपयोग इसके कारण असंभव हो रहा था, और साथ ही उसकी उपक्रमण शक्ति, आत्मविश्वास और उद्यमशीलता का हनन भी हो रहा था। छुआछूत की इस समस्या जाति व्यवस्था का ही परिणाम है।''[1]

डॉ0 ए0आर0 देशाई तत्कालीन जाति-प्रथा एवं उसके बुराईयों के बारे में लिखते हैं कि, ''जाति व्यवस्था पदानुक्रमित श्रेणी शृंखला आबद्ध थी और इसलिए सामाजिक और न्यायिक विषमता पर आधारित थी। सामाजिक पिरामिड में शीर्षस्थ ब्राह्मण जाति के ही लोग धार्मिक और सामाजिक क्रियाकलाप में पुरोहित का कार्य कर सकते थे और उच्च धार्मिक या धर्मनिरपेक्ष शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के एकमात्र अधिकारी भी वे ही थे। इस पिरामिड के निम्नतम धरातल पर शूद्रों, अछूतों की जगह नियत थी, जिन्हें धर्म द्वारा पुनीत घोषित और राज्य की अबपीड़क सत्ता द्वारा समर्थित हिदू समाज ने अन्य जातियों की सेवा करने और हलखोर, चमार आदि पेशों जैसा निम्न कार्य करने के लिए बाध्य कर रखा था। . ..पदानुक्रमित श्रेणी शृंखला आबद्ध होने के कारण जाति व्यवस्था ने जातियों के बीच परस्पर असमानता की सृष्टि की नीची और ऊंची जातियों के आधार भी अलग होते थे। नीची जातियों को

शहर या गांव में अलग जमीन पर बसाया जाता था। अछूत और अपवित्र जातियों के लोगों को सर्वसाधारण के कुओं और तालाबों से पानी भी नहीं मिल सकता था। वे मंदिरों में भी प्रवेश नहीं पा सकते थे। जाति प्रथा के कारण सामाजिक प्रपीड़न इतना अमानवीय हो गया था कि निम्नतम स्तर के कुछ लोगों को अछूत और निकृष्ट मान लिया गया। उन पर दृष्टिपात होने भर से लोग अपवित्र हो जाते थे और जो अछूत जाने-अनजाने किसी ब्राह्मण को दिखाई पड़ जाता था, उसे बड़ी कठोर सजा मिलती थी। .... पदानुक्रमित श्रेणी शृंखला, सामाजिक असमानता, सजातीय विवाह, भोजन-पान पर प्रतिबंध, पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता का अभाव, वे जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण थे।''[2]

प्रेमचन्द के समय में जाति-प्रथा के बुराईयों के खिलाफ आंदोलन एवं प्रयास चल रहे थे। जाति प्रथ की बुराईयों को समाप्त करने में अंग्रेजी सरकार की नीतियों एवं भारतीय समाज-सुधारकों दोनों का योगदान है। ''अंग्रेजों के शासन के फलस्वरूप आर्थिक शक्तियों का जन्म हुआ। उन्होंने जाति का आर्थिक आधार ही खत्म कर दिया। गाँवों के स्वशासन का हनन, भूमिगत वैयक्तिक संपत्ति का सृजन, देश का अनवरत उधोगीकरण जिसके कारण पेशों का जन्म हुआ और आधुनिक शहर बसे, जिन्होंने जातिगत विधिनिषेधों पर कुठाराघात किया, रेलवे और बसों का यंत्रजाल का विस्तार जिसके कारण भारतीय इतिहास में पहली बार बड़े पैमाने पर लोग यात्रा करने लगे और इस तरह चाहे अनचाहे एक दूसरे के संपर्क में आए, इन कुछ प्रमुख कारणों से जातियों का पेशागत आधार और इसके सदस्यों के आचार-विचार समाप्त हुए। ....ब्रिटिश सरकार ने जाति की पंचायतों से दंड देने का अधिकार ले लिया। इस तरह जाति के पास वह अस्त्र नहीं रह गया जिसके माध्यम से वह जाति के उदंड, उजड्ड सदस्यों पर काबू रख सके। जाति अब स्वैच्छिक संगठन भर रह गया और अगर जाति के नियमों के उल्लंघन के लिए पंचायत ने जुर्माना लगाया या अन्य सजा दी तो इसके लिए उसे कानून की सहमति नहीं प्राप्त थ। इसे चलते जाति की शक्ति काफी कम हो गई। कास्ट डिजेबिलिटीज रिमूबल ऐक्ट ऑफ 1850 दि स्पेशल मैरिज ऐक्ट ऑफ 1872 और स्पेशल मैरिज अमेंडमेंट ऐक्ट ऑफ 1923 ने जाति के भव्य प्रासाद को ध्वस्त करने में मदद दी।''[3]

तत्कालीन भारतीय समाज मं आवागमन के आधुनिक साधनों (रेल, बस आदि) के विकास औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया, कानून के समझ सामानता की नीति, आधुनिक शिक्षा के प्रसार आदि ने जाति-प्रथा के बंधन को खोलन का काम किया। एक अकेले जाति के प्रति श्रद्धा की भावना समाप्त करने में आधुनिक शिक्षा की भूमिका भी कम नहीं है। .....ब्रिटिश शासन ने शिक्षा पद्धति को धर्मनिरपेक्ष बनाया। अब यह सबको सहज सुलभ थी। अपनी सीमाओं और विकृतियों के बावजूद यह शिक्षा पद्धति सारत: उदारवादी थी। न्याय के समक्ष व्यक्तियों की समानता, राज्य के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार, मनमाफिक पेशा अख्तियार करने की आजादी, नई शिक्षा पद्धति ने इन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। .....भारतीय समाज के शिक्षित वर्ग के एक अंश ने पाश्चात्य देशों के उदारवादी दर्शन और प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अध्ययन किया और उन्होंने जाति विरोधी विद्रोह की पताका फहराई। राममोहन राय, देवेंद्रनाथ टैग्गोर, केशवचंद्र सेन जैसे प्रबुद्ध भारतीयों ने जाति सुधार को अपने कार्यक्रम का मूलभूत तत्व बनाया। .....शिक्षित भारतीयों ने ही जाति-व्यवस्था पर आघात किया क्योंकि उन्होंने नए भारत के संदर्भ में इसकी असंगति को पहचाना। राष्ट्रीय स्वतंत्रता औश्र देश की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए जाति संरचना का सुधार या उन्मूलन आवश्यक था। .....जाति के शिकंजों से व्यक्ति मुक्ति राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक थी। जातिगत विशेषाधिकार और अपंगता की समाप्ति के बाद ही सामाजिक न्याय संभव था।''[4]

जाति प्रथा के खिलाफ समाजसुधारकों एवं संस्थाओं ने निरंतर संघर्ष और आंदोलन किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी समाज सुधारक संस्थाओं ने जाति-प्रथा के विरूद्ध आवाज उठायी। लगभग सभी समाज सुधारकों ने ''सामाजिक वैषम्य और पार्थक्य पर चोट की और समानता (उदारवादी बुर्जुआजी अर्थों में) और सहयोग का समर्थन किया। उन्होंने जन्म और उत्तराधिकार को विभेद का आधार मानने से इनकार कर दिया, और कर्म के सिद्धांत का विरोध किया। ..... विभिन्न समाज सुधार दलों ने विभिन्न दृष्टियों से जाति व्यवस्था पर आघात किया। ब्रह्म समाज के संथापक राजा राममोहन राय ने हिंदुओं के प्राचीन समाजशास्त्रीय धर्मग्रंथ 'महानिर्वाण तंत्र' की मदद से यह सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था की अब कोई आवश्यकता नहीं। .....देवेंद्रनाथ टैगोर और केशवचंद्र सेन, जो राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्म समाज ने नेता हुए, हिंदू धर्मग्रंथों के उनसे भी बड़े आलोचक थे। केशवचंद्र सेन ने धर्मग्रंथों की मदद के बिना, बड़े साफ शब्दों में जाति व्यवस्था की घोरतम निंदा की। .....ब्रह्म समाज ने जाति विरोधी आंदोलनों की जोर शुरूआत की, उसके बाद के संगठनों ने उन्हें जारी रखा। बांबे प्रार्थना समाज ने जाति विरोधी आंदोलन लगभग उसी तौर पर चलाया जिस तौर पर ब्रह्म समाज ने चलाया था। इसके विपरीत स्वामी दयानंद के आर्य समाज ने जाति व्यवस्था का विरोध नहीं किया, वरन चार वर्णों पर आधारित वैदिक काल के हिंदू समाज को पुनरूज्जीवित करना चाहा। आर्य समाज ने हिंदू समाज के अनगिनत उपविभाजनों के विरूद्ध संघर्ष तो किया।''[5] स्वामी विवेकानंद ने भी छूआ-छूत के विरूद्ध आवाज उठायी ''1897 में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जो एक सक्षम परोपकारी संस्था सिद्ध हुई हालांकि वह समाज में परिवर्तन लाने का कोई दावा नहीं करती। फिर भी स्वयं विवेकानंद के यहाँ (विशेषकर पाश्चात्य श्रोताओं के सम्मुख) प्राचीन आर्य गौरव एवं हिंदू धर्म के आवेगपूर्ण आह्वान के साथ-साथ वर्तमान अधोगति पर एक तीव्र प्रहार भी देखा जाता है:

''हमारा धर्म तो चौके में है। हमारा ईश्वर है देगची।'' ..... दरिद्रनारायण अर्थात् अछूतों एवं शूद्रों के प्रति विवेकानंद की चिंता भी ध्यान देने योग्य है। अनेक छिटपुट भविष्यवाणियों में उन्होंने कहा था कि एक दिन ये लोग ''प्रत्येक समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेंगे...।'' ....साथ ही उनकी यह अपील भी स्मरणीय है कि ''निम्न वर्गों को मत भूलो, उन्हें मत भूलो जो अज्ञानी, दरिद्र और अनपढ़ हैं - मोची और मेहतर हैं वे भी तुम्हारे ही रक्त मांस हैं, तुम्हारे ही बंधु हैं। किंतु इस शब्दावली के साथ ठोस सामाजिक आर्थिक कार्यक्रमों की स्पष्ट रूपरेखा, जनसंपर्क के तरीकों या राजनीतिक लक्ष्यों की स्पष्टता का भी अभाव था। किंतु इस सर्वसंग्रहवाद में भी विवेकानंद की अपील की शक्ति थी।''[6] वही आर्य समाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं के बारे में सुमित सरकार लिखते हैं ''एक सुधार आंदोलन था आर्यसमाज जिसने 1880 और 1890 के दशकों में अद्‌भूत प्रगति की,जिसके संस्थापक थे घुमंतू संन्यासी दयानंद सरस्वती (1824-83)। दयानंद काठियावाड़ के थे किंतु उनके आंदोलन का मुख्य आधार (उत्तर भारत पंजाब एवं पश्चिमी संयुक्त प्रांत) में बन रहा था। दयानंद के संदेश की अस्पष्टता ही कदाचित् उसकी सफलात का रहस्य थी क्योंकि इसमें हिंदू धर्म में विद्यमान अनेक रीतियों (मूर्तिपूजा और बहुदेववाद, बाल-विवाह, विधवा-पुनर्विवाह एवं विदेश यात्रा का निषेध, ब्राह्मणों के प्रभुत्व एवं केवल जन्म पर अधारित जातियों की विविधता) की कड़ी आलोचना के साथ ही अन्य सभी धर्मों (ईसाई, इस्लाम या सिख) पर वेदों की अमोघता पर आधारित शुरू हिंदू धर्म की श्रेष्ठता का दावा भी था।''[7]

वस्तुतः प्रेमचन्द के समय में दलितों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षाकृत काफी परिवर्तन हुआ और वे अपनी अस्मिता एवं सम्मान की लड़ाई लड़ने को तैयार हो सकें।

संदर्भ-सूचीः-

1. ए0आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन पब्लिशर इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, पृ0 193-194।
2. वही, पृ0 194-195-196।
3. वही, पृ0 196-197, 198।
4. वही, पृ0 199-200-201।
5. वही, पृ0 202।
6. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 91।
7. वही, पृ0 92।

एक देश एक चुनाव: संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ

डॉ० प्रदीप कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सरदार भगत सिंह राजकीय स्नाटकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर, उधम सिंह नगर, उत्तराखंड

लोकतांत्रिक प्रणाली में निष्पक्ष चुनावों का होना लोकतंत्र की एक अनिवार्य संकल्पना है। निष्पक्ष चुनाव सरकार को वैधता प्रदान करते हैं जिस पर लोकतांत्रिक प्रणाली कार्य करती है। स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली पर आधारित संसदीय प्रक्रिया को अपनाया गया। जिसमें जनप्रतिनिधियों के माध्यम से जन-सहभागिता सुनिश्चित हो सके। इस हेतु चुनाव की व्यवस्था की गयी।

संविधान लागू होने के बाद 1967 तक लोक सभा और विधानसभा चुनाव साथ हुए। लेकिन 1967 में आठ राज्यों विहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, पं० बंगाल, ओडिसा (उड़ीसा), तमिलनाडु (मद्रास) और केरल में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनने से देश में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था पर कायम कांग्रेस के एक छत्र वर्चस्व को धक्का लगा। इस समय कांग्रेस से असन्तोष के कारण देश के स्तर पर तथा राज्यों में विरोधी नेताओं और क्षेत्रीय दलों के उदय के कारण एकल चुनाव के प्रति असंतोष पैदा हुआ। 1968-69 में कुछ राज्यों की विधानसभाएं समय से पहले ही भंग हो गयी तथा 1970 में जब चौथी लोक सभा समय से पूर्व विघटित हो गयी तो एक साथ चुनाव आयोजित होने वाली यह व्यवस्था बाधित हो गयी। कांग्रेस को राजनीतिक लिहाज से इसका सबसे सरल समाधान यह दिखा कि केन्द्र और राज्य के चुनाव अलग-अलग कर दिये जाय। यह राजनीतिक रणनीति काम कर गयी। श्रीमती इंदिरा गांधी ने इसी राजनीतिक रणनीति से कांग्रेस के मजबूत नेताओं के पर कतर दिये और दबदबे के साथ सामने आयीं। 1970 के बाद बनी अधिकांश सरकारों की चारित्रिक विशेषता गठबंधन वाली हो गयी. सरकारें अपना पूर्ण कार्यकाल पूरा करने में असफल रहने लगीं। इसलिए चुनावों के आयोजन की अवधि पाँच वर्षों के बजाय प्रत्येक वर्ष बदलने लगी। भारत का चुनाव आयोग हर वर्ष लगभग 5-7 राज्यों के चुनाव करवाने में व्यस्त रहने लगा। तब से आज (17वीं लोकसभा) तक देश में एकल चुनाव की अवधारणा पुनः वापस नहीं आ सकी। पिछले कुछ वर्षों से एक बार पुनः यह मांग जोर पकड़ रही है कि देश में लोकसभा और विधानसभाओं का चुनाव एक साथ हो। क्योंकि बार-बार चुनाव होने से हमारा लोकतंत्र चुनावों के ऐसे चक्रव्यूह में फंस गया है जहाँ से उसे निकालने की चाह बढ़ती जा रही है। इसका कारण भी स्पष्ट है चाहे विधान सभा का चुनाव ही क्यों न हो उससे देश की राजनीति प्रभावित होती है। राष्ट्रीय पार्टियां भी उसमें भागीदारी करती हैं इसलिए सरकार और विपक्ष की भूमिका में चुनाव के अनुरूप परिवर्तन आ जाता है। अक्सर राज्य विधान सभाओं के चुनाव स्थानीय मुद्दे, जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय और आरोप प्रत्यारोप पर ही लड़े जा रहे हैं। इसलिए राष्ट्रीय ध् प्रादेशिक हित विधान सभा चुनावों में गौड़ हो जाते हैं। भारत में चुनाव कराने में भारी धनराशि खर्च होती है। खुद उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों के भी काफी पैसे व्यय होते हैं। इस व्यय में चुनाव आयोग की ओर से परोक्ष रूप से सरकार से मिले पैसे शामिल होते हैं। राष्ट्रीय आय का एक बड़ा हिस्सा चुनाव में खर्च होने से देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही है। इसलिए भी केन्द्र और राज्यों का चुनाव साथ-साथ कराया जाना आवश्यक है।

वर्ष 1990 से 2000 के दशक में गठबंधन सरकारों के बार-बार गिरने से देश को चुनावों का देश झेलना पड़ रहा था। दशक के अन्त में भी जीवन रेड्डी की अध्यक्षता वाले विधि आयोग ने चुनाव कानून सम्बंधी सुधार को लेकर अपनी 170वीं रिपोर्ट में चुनाव प्रणाली की विसंगतियों और बुराइयों को इंगित किया है। मई 1999 में पेश इस रिपोर्ट में जोर देकर कहा गया है कि लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने की प्रणाली की ओर लौटना जरूरी है। चुनाव का जो लगातार चक्र बन जाता है, उससे निजात पाने की जरूरत है। ब्रिटेन जिसकी संसदीय प्रणाली हमने अंगीकार किया था, ने श्फिक्स्ड टर्म पार्लियामेन्ट एक्ट पारित किया है जिसमें स्थिरता बनाये रखने की गरज से एक निर्धारित तिथि को ही संसद के चुनाव कराने की बात कही गयी है। अनेक उन्नत लोकतांत्रिक देशों में राष्ट्रीय और प्रांतीय विधायी संस्थाओं के चुनाव हर पाँच या छः साल के अन्तराल पर कराये जाते हैं।

भारत में लगातार हो रहे चुनावों के सन्दर्भ में वर्ष 2015 में कार्मिक, जन शिकायत, कानून एवं न्याय सम्बन्धी संसद की स्थायी समिति की 79वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। जो लोक सभा और राज्यों की विधान सभा चुनाव संचालन सम्बंधी समस्याओं पर केन्द्रित थी। कांग्रेस के श्री ई० एम० नवियशन की अध्यक्षला वाली समिति ने अपनी रिपोर्ट में कई सुझाव दिये है।

1. साथ-साथ चुनाव होने से खर्च में भारी कमी आयेगी। वर्तमान में लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में चुनाव कराना काफी महंगा है। चुनाव आयोग को इन पर 4500 से 10 हजार करोण रुपये लगभग खर्च करने पड़ते हैं। हालांकि वर्ष 2019 के चुनाव में वास्तविक खर्च लगभग 60 हजार करोण रुपये बताया गया।

इसमें पार्टियों और उम्मीदवारों के खर्चे भी शामिल हैं। इस खर्च में साथ-साथ चुनाव कराने से कटौती की जा सकती है तथा राष्ट्रीय विकास को गति भी दी जा सकती है।

2. चुनाव सम्भावित राज्य/क्षेत्रों में आदर्श आचार संहिता लागू करनी पड़ती है ऐसा होने से केन्द्र और राज्य सरकारों के सामान्य शासन के कार्य प्रभावित होते हैं। नीति बनाने, निर्णय-निर्माण और शासन संचालन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
3. आये दिन चुनाव होने से सामान्य जन-जीवन पर बुरा असर पड़ता है और आवश्यक सेवाओं का संचालन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। राजनीतिक रैलिया सड़क यातायात को प्रभावित करती है। सामान्य जनजीवन बेपटरी हो जाता है तथा अनेक प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न होते है अर्थात् कुछ समय के लिए ही सही लगभग सभी सार्वजनिक क्षेत्रों पर प्रतिकूल असर पड़ता है।
4. आये दिन चुनाव होने से सैन्य बल का भी अत्यधिक प्रयोग होता है। 2014 के लोक सभा चुनाव में 1077 सुरक्षा कम्पनी चुनाव कार्य में जुटी रही साथ ही C.R.P.F. की 1349 सचल कम्पनियां भी चुनाव सम्पन्न कराने में लगी थी। ऐसे में उस समय सीमा सुरक्षा व आन्तरिक शांति स्थापित करना कठिन हो जाता है जो देश के लिए हितकर नहीं है।

साथ-साथ चुनाव कराये जाने से समय की बचत होना अवश्यम्भावी है। क्योंकि लगभग छः माह तो राजनेता चुनावों की रणनीति बनाने और प्रतिद्वन्दियों की रणनीति समझने में लगा देते हैं। जो समय उत्पादक कार्यों में खर्च होना है वह चुनावी प्रबंधन में लगता है। इससे नीति निर्माण प्रभावित होती है। हालांकि चुनाव के कुछ दिन पूर्व सत्ताधारी दलों के प्रत्याशियों द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों के खूब कार्य कराये जाते हैं। मतदाताओं को रिझाने के लिए सत्ताधारी दल अनेक भर्तियों के विज्ञापन प्रकाशित करते हैं, सड़कों की मरम्मत व वर्षों से अधूरे पड़े कार्यों को तेजी से आगे बढ़ाते हैं। एक साथ चुनाव की स्थिति में राजनेता ऐसी नीति बनाएंगे जिस पर तत्काल अमल हो सके। लोगों/मतदाताओं को लुभाने के लिए राजनेताओं द्वारा विकास कार्य को तहरीज दी जाएगी साथ ही जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार और भेद-भाव की भावनाएं जो लगभग प्रत्येक चुनाव में भड़कायी जाती हैं. इससे छुटकारा मिल सकेगा। इससे सरकार के प्रति जबाबदेही बढ़ेगी, सरकारी जवाबदेही से कर्तव्यनिष्ठता भी आयेगी जो निश्चित रूप से राष्ट्रीय हित के लिए श्रेयस्कर होगा।

हालांकि एक देश एक चुनाव को लेकर तकनीकी व्यवधान यह है कि संविधान में लोकसभा और राज्यसभा चुनाव एक साथ कराये जाने को लेकर कोई निश्चित प्राविधान नहीं है। संविधान में इसके लिए पाँच वर्षों की अवधि निर्धारित है। संविधान के अनुच्छेद 85 (2) (ख) के अनुसार राष्ट्रपति समय-समय पर लोकसभा का और अनुच्छेद 174 (2) (ख) के अन्तर्गत राज्यपाल समय-समय पर विधानसभा का विघटन कर सकता है। उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग करके राष्ट्रपति/राज्यपाल क्रमशः लोकसभा या राज्य विधानसभा का पाँच वर्ष से पूर्व विघटन कर सकते हैं। ऐसी स्थिति होने पर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही संविधान के संघीय ढांचे को भी आघात पहुँचता है। जबकि अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रीय आपात के कारण लोक सभा के कार्य काल में वृद्धि हो सकती है। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में सम्वैधानिक तन्त्र की विफलता के कारण राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है। इन स्थितियों में एकदेश एक चुनाव होने से कार्यकाल सम्बंधी कठिनाई उत्पन्न होगी जो कि भारतीय लोकतंत्र के लिए श्रेयस्कर नहीं होगा। किसी राज्य के विधान मण्डल के लिए निर्वाचन सम्बंधी संशोधन हेतु अनुच्छेद 368 (2) के अनुसार संविधान संशोधन करना होगा। सामान्यतः संविधान संशोधन हेतु आधे राज्यों की विधानसभाओं का अनुमोदन आवश्यक है। परन्तु एक देश एक चुनाव से सभी राज्यों के अधिकार और कार्यक्षेत्र प्रभावित होंगे। यह भी एक तकनीकी समस्या होगी। केन्द्र-राज्य के अलग-अलग चुनाव होने से राष्ट्रीय और स्थानीय मुद्दे मिश्रित नहीं होते। इसका लाभ क्षेत्रीय दलों को मिलता है जिससे उनकी विशिष्ट राजनीतिक पहचान होती है। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय मुद्दों की भिन्नता शक्तियों के विकेन्द्रीकरण व लोकतंत्र की आवश्यक शर्तों में आते हैं। फिर अगर लोकसभा और राज्यसभा चुनाव एक साथ कराये जाय तो सम्भव है कि राष्ट्रीय मुद्दों के समझ क्षेत्रीय मुद्दे या कही कही क्षेत्रीय मुद्दों के समक्ष राष्ट्रीय मुद्दे गौड़ हो जाये। दोनों स्थितिया लोकतांत्रिक पद्धति के उद्देश्यों को पूर्ण करने में बाधक है। एक और संवैधानिक समस्या यह कि इसे कार्यान्वित करने हेतु जनप्रतिनिधि अधिनियम 1951 में भी संशोधन करके संविधान संशोधन करना अनिवार्य होगा। ऐसी स्थिति में एक साथ चुनाव कराने की प्रासंगिता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। किन्तु फिर भी भारत जैसे देश की वर्तमान परिस्थिति में लम्बी और चरणबद्ध चुनाव प्रक्रिया के चलते प्रशासनिक कार्यों को मद्धिम नहीं पड़ने देने के लिए चुनाव सुधार लाये जाने आवश्यक है।

अपने द्वितीय कार्यकाल के प्रारम्भ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक देश एक चुनाव के मुद्दे पर 19 जून 2019 को एक सर्वदलीय बैठक बुलायी और तर्क रखा कि जब चुनाव आयोग, नीति आयोग, विधि आयोग और संविधान समीक्षा आयोग लगभग सभी ने एक देश एक चुनाव पर सहमति भरी रिपोर्ट दी है तो फिर इसका कार्यान्वयन राजनीतिक दलों की सहमति से किया जायेगा। नीति आयोग के अनुसार 2024 से लोकसभा और विधानसभा चुनाव साथ-साथ कराये जाय। इस क्रम में पहले चरण में 2019 में आन्ध्रप्रदेश, सिक्किम, अरुणांचल प्रदेश और ओडिशा विधानसभा चुनाव लोकसभा चुनाव के साथ ही सम्पन्न हुए। ओडिशा में जहाँ केन्द्र में भाजपा के पक्ष में भारी मतदान हुआ वहीं राज्य विधान

सभा में बीजद ने बहुमत प्राप्त किया। साथ-साथ चुनाव होने के बाद भी केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रति मतदाताओं का रुझान अलग-अलग रहा। यही स्थिति दिल्ली विधानसभा चुनाव में भी देखने को मिली। तमाम राष्ट्रीय मुद्दों को दरकिनार कर बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसे मुद्दे पर दिल्ली की जनता ने श्री अरविन्द केजरीवाल को तीसरी बार मुख्यमंत्री चुना। जबकि लोकसभा चुनाव में दिल्ली में भाजपा को सभी सातों सीटों पर जीत हासिल हुई। इससे यह स्पष्ट है कि एक साथ चुनाव होने के बाद भी जनता राष्ट्रीय और क्षेत्रीय मुद्दों को अलग-अलग तरीके से आंकते हुए केन्द्र व राज्य विधान सभा के लिए मतदान करती है।

जहाँ तक लोकसभा और राज्य विधानसभा चुनाव साथ-साथ होने पर राज्य विधानसभा में सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा विश्वासमत खो देने पर सदन के भंग हो जाने की आशंका है तो जिस प्रकार सत्तारूढ़ दल के ऊपर अविश्वास प्रस्ताव पास किया जाता है उसी प्रकार अविश्वास प्रस्ताव के बाद विश्वास प्रस्ताव भी लाये जाने की अनुमति संविधान संशोधन के तहत यदि राजनीतिक दल प्राप्त कर ले तो अल्प कार्यकाल या बीच में विधानसभा भंग होने के चलते संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर राष्ट्रपति शासन की स्थिति कम ही आयेगी और बार-बार चुनाव का दंश देश को नहीं झेलना पडेगा। इस दिशा में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का सभी दलों को साथ लेकर प्रयास करना और पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी की वन नेशन वन इलेक्शन पर सहमति/समर्थन एक चुनाव की अवधारणा को प्रासंगिक कर सकता है। इस दिशा में पूरे देश के लिए एक ही मतदाता सूची होना भी सार्थक कदम होगा। अब जबकि दल बदल कानून के अस्तित्व में आ जाने के उपरान्त समय पूर्व किसी सदन को भंग किये जाने की समस्या ज्यादा गम्भीर नहीं है। बोम्मई मामले में सुप्रीम कोर्ट का ऐतिहासिक फैसला किसी सदन के भंग किये जाने की प्रक्रिया को आसान बना देता है। ऐसे में क्रमशः विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं को भंग करके या कार्यकाल बढ़ाकर जैसी आवश्यकता हो एक साथ चुनाव कराया जा सकता है। इससे चुनाव प्रक्रिया आसान हो सकेगी। निर्वाचन आयोग को अधिक केन्द्रिय पुलिस बल उपलब्ध कराकर शांतिपूर्ण एकल चुनाव कराना देश हित में प्रासंगिक होगा। देश की मौजूदा हालात और अर्थव्यवस्था को देखते हुए नीति आयोग का यह निर्णय कि वर्ष 2024 से लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव साथ-साथ करायें जांय, उचित प्रतीत होता है।

एक अन्य वांछनीय उपाय यह है कि चुनाव में पैसे की भूमिका को कम से कम कर दिया जाय। राजनीतिक दलों के चुनाव खर्च की सीमा तय की जाय और चुनाव में निजी कारपोरेट से धन लेने पर प्रतिबंध लगा दिया जाय। साथ ही चुनाव आयोग द्वारा दलों/ प्रत्याशियों को चुनाव सामग्री मुहैया करायी जाय जिससे अपव्यय पर रोक लग सके और उन्ही सीमित संसाधनों में चुनाव सम्पन्न कराये जाय। आनलाइन मतदान की व्यवस्था भी शुरु किया जाय जिससे ऐसे मतदाता जो बूथ तक नहीं पहुँच सकते हैं उन्हें भी मतदान में भागीदारी का अवसर मिल सकेगा तो बूथ कैप्चरिंग, साम्प्रदायिकता जैसी घटनाएं नहीं होंगी, मतदान प्रतिशत बढ़ेगा और एकल चुनाव की दिशा में आगे बढ़ा जा सकेगा। भारत जो लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के साथ आगे बढ़ रहा है, उसे सार्वजनिक हित में एक साथ चुनाव का समवेत स्वर में स्वागत और समर्थन करने की आवश्यकता है। लोक सभा, राज्य विधान सभा स्थानीय निकाय और पंचायतों के चुनाव एक माह के भीतर निपटा लेने से आर्थिक विकास और नीतियों के क्रियान्वयन को गति मिलेगी। राष्ट्रीय सुरक्षा और आपदा जैसी असामान्य परिस्थिति को छोड़कर किसी को भी चुनाव टालने का अधिकार न दिया जाय, कानून में इस प्रकार का संशोधन आवश्यक है। जमीनी स्तर की संस्थाओं के चुनाव राज्य सरकारों के जिम्मे नहीं छोड़े जाने चाहिए। अनेक ऐसे मामले आये हैं जब कभी एक- कभी दूसरा कारण बताकर राज्यों ने स्थानीय निकायों और पंचायतों के चुनावों को अनेक वर्षों तक टाल रखा। भारतीय लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठता, सर्वस्वीकार्यता को कायम रखने के लिए आम जनमानस और समय की मांग के अनुसार समूचे देश में लोकसभा और राज्य विधानसभा के चुनाव एक साथ कराये जाने की आवश्यकता है, जो संसदीय लोकतंत्र के लिए प्रासंगिक भी है।

सन्दर्भ-सूचीः-

1. नारायण, इकबाल, 'भारतीय सरकार एवं राजनीति' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. जैन, पुखराज, 'भारतीय सरकार एवं राजनीति' साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2001
3. एव लम्बीकान्त, 'भारत की राजव्यवस्था' मैकग्राहिल एजूकेशन प्रा० लिमिटेड, नई दिल्ली, 2017
4. नरुला, बी० सी०, 'भारतीय राजनीति' अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली. 2016
5. कोठारी, रजनी, 'भारत में राजनीति कल और आज', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. कोठारी, रजनी, 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' ओरिएण्ट लांगमैन पब्लिकेशन, नई दिल्ली
7. बनर्जी, मुकुलिका 2104, 'हवाइ इण्डिया बोट्स' रूटलेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली
8. जोन्स मोरिस, 'भारतीय शासन और राजनीति' हचसन एण्ड कम्पनी पब्लिसिंग, 1967
9. ठुकराल, आर०के० (सम्पादित) 2017, इलेक्शन एटलस ऑफ इण्डियारू पार्लियामेन्ट्री इलेक्शन, 1952-2014: फर्स्ट लोकसभा टू सिक्सटीन्थ लोकसभा, डाटानेर पब्लिकेशन, नई दिल्ली

परिवार कल्याण कार्यक्रम एक अध्ययन

डॉ० ब्यूटी कुमारी
गृहविज्ञान

भारत को आजादी मिलने के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में देश की जनसंख्या वृद्धि की समस्या को हल करने के लिए परिवार को नियोजित करने के प्रयास किया जा रहे हैं। जून 1977 से पूर्व तक इन प्रयासों को सीमित रखने को परिवार नियोजन कार्यक्रमों के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता था लेकिन जून 1977 में देश में भारतीय जनता पार्टी का शासन होने पर परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम बदलकर परिवार कल्याण कार्यक्रम कर दिया गया है।

परिवार कल्याण परिवार को नियोजित करना या सीमित रखना परिवार से अभिप्राय पति-पत्नी और उनके बच्चे। परिवार कल्याण का आशय है कि विवाह के बाद पति-पत्नी आपस में मिलकर सलाह मशविरा करके यह तय करें कि घर में कितने बच्चे होंगे कब-कब होंगे तथा परिवार में कब और बच्चे नहीं चाहिए। बच्चों की संख्या को 2 तक सीमित रखा जाए तो अच्छा है ऐसे परिवारों को नियोजित परिवार कहा जाएगा। वर्तमान में भारत की जनसंख्या की बहुलता और उससे उत्पन्न समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए परिवारों को एक बच्चे तक सीमित रखने की आवश्यकता है परिवार नियोजन मूल रूप से प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक परिवार तथा देश की बेहतरीन और खुशहाली की कुंजी है।

भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम समय की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गया है। वर्तमान में राजकीय प्रयासों और लोगों की जागरूकता के कारण परिवार कल्याण कार्यक्रम को बढ़ावा मिला है और यह लोगों का जाना पहचाना कार्यक्रम बन गया। भारत में परिवार नियोजन का प्रतीक लाल त्रिकोण सर्वाधिक चर्चित है साथ ही छोटे परिवार के बारे में आम लोगों के मन में चेतना जागृत हुई है यह अलग बात है कि आज भी लोगों की मनोवृत्ति अधिक बच्ची की है।

परिवार कल्याण कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य

परिवार नियोजन कार्यक्रम एक परिवार कल्याण कार्यक्रम है जिसे अपनाकर व्यक्ति परिवार को सीमित और विवेकपूर्ण मातृत्व घर रोक तथा संतानों का समुचित पालन पोषण कर सकता है। परिवार नियोजन या परिवार कल्याण का उद्देश्य बच्चों का जन्म अच्छा से हो चूक से नहीं सोच समझकर हो संयोग से नहीं।

1 परिवार कल्याण का उद्देश्य सीमित परिवार के लिए इच्छा शक्ति जागृत करना है एक परिवार में संतानों की सदस्य संख्या दो तक सीमित हो ताकि उनका भली भांति पालन पोषण किया जा सके।

2 सन्तानोत्पत्ति के बीच अंतराल हो जिसमें मां के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव न पड़े और बच्चे की देखभाल भी उचित रूप से हो सके।

3 सन्तानोत्पत्ति नियंत्रण के तरीकों की जानकारी देना तथा संतान उत्पत्ति नियंत्रण के सस्ते साधन को मुफ्त करना।

4 परिवार नियोजन के तरीकों की खोज व अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन देना।

5 जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति को नियंत्रित करना।

6 जनसंख्या में गुणात्मक सुधार करना।

7 परिवार कल्याण कार्यक्रम से परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करना।

परिवार कल्याण कार्यक्रम की गतिविधियां

- परिवार कल्याण नसबंदी ऑपरेशन पुरुष एवं महिला या सेवा जिला अस्पताल एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केदो में निर्धारित दिवसों में निशुल्क उपलब्ध कराई जाती है।
- IUCD/PPIUCD इसके लिए पर प्रशिक्षित सेवा प्रदाता प्रत्येक जिले के जिला अस्पताल/सिविल अस्पताल/सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र व चिन्हित प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र उप स्वास्थ्य केंद्र पर यह सेवा प्रशिक्षित प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। साथ ही परिवार कल्याण परामर्शदाताओं द्वारा परामर्श की सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही है।
- गर्भनिरोधक गोलियां महिलाओं के लिए उपलब्ध कराना।
- निरोध पुरुषों के लिए।
- आशा- घर-घर पहुंच गर्भनिरोधक साधन योजना द्वारा गर्भनिरोधक साधनों की उपलब्धता ग्राम स्तर पर आशा कार्यकर्ताओं के पास की गई है। इस योजना द्वारा जन्म में अंतर सुनिश्चित किया जा रहा है जिस वजह से माता मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर कम होने में मदद हो रही है। इसके लिए आशाजन में अंतर सुनिश्चित योजना चालू है जिसमें शादी के बाद पहले बच्चे में 2 वर्ष का अंतर पहले एवं दूसरे बच्चे में 3 वर्ष का अंतर और दूसरे बच्चे बदस्थाई

साधन अपनाने हेतु आशा कार्यकर्ता द्वारा प्रेषित करने उसे प्रोत्साहित राशि का भुगतान किया जाएगा।

कार्यानवन रणनीति एवं लक्ष्य

इसके तहत मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य नीति(National Health Policy)2017 भी आवश्यक सहयोग प्रदान करना है जिस पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी शामिल है। मीडिया संपर्क के जरिए किए जाने वाले प्रयास का उद्देश्य बीमार लोगों की देखभाल से भी कहीं आगे बढ़कर आरोग्य की अवधारणा की ओर अग्रसर होना है जिसके लिए पारंपरिक एवं सोशल मीडिया से जुड़े समाज साधनों का उपयोग किया जाएगा। गर्भनिरोधकों के निशुल्क वितरण एवं सामाजिक विपणन का लक्ष्य आधुनिक गर्भनिरोधक प्रसार दर को बेहतर करना परिवार नियोजन में मदद करना और आबादी स्थिरता सुनिश्चित करना है।

इसके प्रभाव

प्रस्ताव में पांच योजना राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति और सतत विकास लक्षण के रूप में व्यक्त की गई है अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं में निहित लक्षण और उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। योजना में जागरूकता बढ़ाने के साथ-साथ मांग संबंधी लोगों के व्यवहार में बेहतरीन लाने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा गया है और इसके जरिए भारत सरकार द्वारा संचालित किया जा रहे हैं समस्त स्वास्थ्य कार्यक्रमों/योजनाओं की प्रगति पर करीबी नजर रखने में मदद मिलेगी। इससे समय पर इनमें आवश्यक सुधार करने में सहायता मिलेगी गर्भनिरोधकों के निशुल्क वितरण एवं सामाजिक विपणन से आबादी में स्थिरता लाने के अलावा शिशुओं एवं माता को बेहतर स्वास्थ्य सुनिश्चित करना भी संभव हो पाएगा।

इस तरह परिवार कल्याण में न केवल जन्म की योजना बनाना शामिल है बल्कि संपूर्ण पारिवारिक स्वास्थ्य देखभाल के माध्यम से पूरे परिवार का कल्याण भी शामिल है। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि इसकी सफलता सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता पर निर्भर करती है स्वस्थ प्रजनन के लिए महिलाओं को परिवार नियोजन की जानकारी परामर्श और सेवाएं माता एवं शिशु के सुरक्षित पर सब और प्रसव के बाद में शिक्षा रोकथाम योग बीमारियों के खिलाफ शिशुओं के टीकाकरण के लिए स्वास्थ्य देखभाल। उन बातों के अलावा गर्भनिरोधक के उपयोग को प्रोत्साहित करने और राज्यों केंद्र शासित प्रदेशों में उनके वितरण के लिए राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि इसकी सफलता सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

संदर्भ सूची-

1 डॉ आर एल शर्मा, सामुदायिक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण।
2 डॉ कृष्णा पांडे, परिवार कल्याण कार्यक्रम।
3 बीना अग्रवाल एवं अल्पना अग्रवाल, परिवार एवं बाल कल्याण, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल।
4 डॉ सुनील दत्त लखेरा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा।
5 डॉ वीके शर्मा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा।
6 https://kmain.mohfw.gov.in
7 https://patna.nic.in

भारतीय समाज में महिलाओं की पारिवारिक स्थिति

प्रियंका राय

शोधार्थिनी (समाजशास्त्र)

समाज और परिवार के दबाव से घर-बाहर महिला की जिन्दगी बड़ी दयनीय हो उठती है। परिवार में सेवा, त्याग, करूणा एवं सहनशील पत्नी और माता की भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है। महिला को परिवार में दी गयी भूमिका का निर्वहन पति व परिवार के प्रति समर्पण भाव है। एक स्त्री के लिए उसका परिवार ही सब कुछ होता है। पति की मर्जी पर हसने रोने वाली इन औरतों की दुनियाँ सिर्फ और सिर्फ अपने पति के करीब जिन्दगी सिमटी होती है। घर से बाहर कार्यस्थल पर कार्यरत महिलाओं को दो भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। घर को प्रमुखता देना पड़ता है। परिवार में पति की हुकूमत चलती है और स्त्री चाहे कितनी भी पढ़ी लिखी क्यों न हो अपने परिवार का विघटन नहीं होने देना चाहती है ''घर जहाँ एक बुनियादी संरचना है वही परिवार एक इकाई है। व्यावहारिक रूप से भारतीय समाज में घर और परिवार को एक दूसरे का समानार्थी समझा जाता है और दोनों इकाइयां के बीच जो आर्थिक और सामाजिक भेदभाव है उसकी मात्रा लगभग एक समान ही दिखती है चाहे घर तथा उसके भीतर के भौतिक संसाधनों की मालिकी की बात हो अथवा समाज में प्रतिष्ठा की जगह पारम्परिक रूप में पुरूष का स्थान पहले आता है महिला बाद में। पुरूषों का कार्यक्षेत्र विविधतापूर्ण और विशद था वहीं महिलाओं का कार्य स्थान घर व परिवार की चहारदीवारी में बंद होकर उबाऊ और थका देने वाला था। घर व परिवार का भार संभालने पर भी महिला को पुरूष की तुलना कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था।

अनामिका का उपन्यास 'तिनका-तिनके पास' में तारा की माँ एक सेक्स वर्कर है। वह अपना जिस्म बेचकर बेटी को पढ़ाती है। उपन्यास में एक जगह गृहस्थिन की विवशता के बारे में बेटी से वह कहती है- ''बेटी एक तरह की काल गर्ल हर औरत होती है। ब्याहता गृहस्थितन भी। काल गर्ल को तो यह छूट भी होती होगी कि हर काल पर वह प्रस्तुत न हो पर गृहस्थिन की क्या मजाल। अजब होता है वह पल जब पिटी हुई पत्नी को समझा बुझाकर या पकड़-जकड़कर माएँ या सासें वापस पति परमेष्वर के कमरे भेजती है, पति को बिन माफी ही माफ करे, काम से थका हारा चिड़चिड़ा प्राणी है- 'मर्द बच्चा'-औरत की छाँह चाहिए उसको। 'दिल से बुरा नहीं बेचारा' यह कहकर यह सुनकर क्या बीतती है पत्नी के मन पर? और कभी किसी क्षण अपनी तरंग पर पति-परमेश्वर के गाल पर हाथ रख दिया तो ऐसी विकट झाड़ सुननी पड़ती है कि पूछो मत। अपना सा मुँह लेकर रह जाने की पीड़ा अभी तुमने नहीं झेली होगी तारा क्योंकि अभी तुम ब्याहता नहीं हो। यानि की वैवाहिक जीवन में महिला को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसमें से एक है अपनी इच्छा न होने पर भी पत्नी को पति के मन को बहलाना पड़ता है। इस प्रकार पुरूष-स्त्री का शारीरिक शोषण करता है।

परिवार का प्रभाव महिला-पुरूष के जीवन पर सर्वाधिक पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक मनुष्य किसी न परिवार का सदस्य रहता है। परिवार में स्त्री-पुरूष का सहयोग होना जरूरी होता है। ऐसा न होने पर पति-पत्नी में टकराव, वैमनस्य और आपसी संघर्ष के कारण पारिवारिक विघटन हो जाता है और जिसका प्रभाव परिवार में सबसे ज्यादा बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। बच्चों की प्राथमिक पाठशाला माता-पिता ही होते हैं इसलिए ज्यादा प्रभाव बच्चों पर ही पड़ता है। अत: माता-पिता की भूमिका परिवार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। हर परिवार के अपने रीति-रिवाज आचरण संस्कार एवं मान्यताएं होती है और यदि बड़े ही उसका पालन न करे तो बच्चों से उनके पालन की अपेक्षा रखना व्यर्थ है। बच्चों की हर प्रकार की समस्या का समाधान माता-पिता को ही करना पड़ता है। माता-पिता ही बच्चों के सच्च मित्र हो सकते हैं। यदि एकाकी परिवारों में रहने वाले बच्चों को माता-पिता का पर्याप्त साथ नहीं मिलता तो या तो बच्चे बीमार हो जाते है। उनमें मानसिक रोग या उलझने आती है या फिर बड़े हुए तो अपने सुख और मनोरंजन का साधन घर के बाहर ढूँढ़ लेते हैं और अनेक बच्चे ड्रग्स या अन्य नशों की चपेट में आ जाते है। और वे बाल अपराध की प्रवृत्ति की ओर बढ़ने लगते हैं। बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक है कि जीवन के 20 वर्षों तक बच्चों का पूरा ध्यान रखा जाये। बचपन से बच्चों में अच्छे स्वभाव के निर्माण में परिवार के सदस्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अच्छे संस्कार का निर्माण बच्चों में परिवार से होता है।

पारिवारिक विघटन आज के भौतिकवादी सूचना प्रधान समाज में आम बात है। पारिवारिक विघटन के कई कारण हो सकते हैं जैसे कि शराबी पति, शंकालु पति-पत्नी, सास-बहू टकराव, ननद और भाभी में मनमुटाव संयुक्त परिवारों में विघटन और एकाकी परिवारों के निर्माण होना पारिवारिक विघटन का कारण है।

वैवाहिक सम्बन्धों की समाप्ति पारिवारिक अखण्डता में भृंश इसी प्रकार के विघटन की सूचना देते हैं। पति-पत्नी का आधे से अधि क पारस्परिक विश्वास आधे से अधिक समस्याओं का समाधान कर देते हैं। अत: पारस्परिक विश्वास का अभाव हुआ तो एक दूसरे के चरित्र पर सन्देह उत्पन्न करने लगते है। यदि पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति विश्वास बनाये रखे निष्ठा रखे सम्मान आद करे एक-दूसरे के दु:ख कष्ट और मानसिक संवेदनाओं को आत्मसात कर सहभागी बने। व्यक्ति सामाजिकता को ध्यान में रखते हुए शांत भले हो जाये पर मन से यह बात कभी निकाल नहीं सकता कि जीवन साथी ने विश्वासघात किया है और उसी अस्मिता और सम्मान को ठेस पहुंचाई है। यदि व्यक्ति वापस पारिवारिक जीवन में आ भी जाता है तो भी इसकी परछाइयाँ लम्बे समय तक उसका पीछा नहीं छोड़ती है। साथ ही उसे हमेशा शंका की नजर से देखा जाता है जिससे वह हर पल खीझता रहता है साथ ही परिवार के लोगों के द्वारा उसके हर कार्यकलाप पर नजर रखी जाती है।

परिवार में यदि पति-पत्नी दोनों ही बाहर कार्य करते हैं तो परिवार में नेक समस्याएं उत्पन्न होने लगती है। पति यदि समझदार है तो पत्नी के कार्यों में सहयोग देता है तब तो पत्नी दोहरे उत्तरदायित्व को झेल जाती है लेकिन ऐसा नहीं होता। ज्यादातर पति परमेश्वर घर के सभी कार्य पत्नी से ही करवाते हैं। कार्यालय के काम के साथ-साथ उसे घर के भी काम करने पड़ते हैं। इससे पत्नी में तनाव बढ़ता है और अत्यधिक कार्य के बोझ से वह टूटने लगती है। घर का सारा काम बच्चों और परिवार वालो का भी ध्यान देना है और गालियाँ भी सुनना है मारपीट भी मिलती है। ऐसे अवसरों पर परिवार वालो में भूल जाते है कि स्त्री भी परिवार का सदस्य है यह इंसान है दिल और दिमाग है जैसी बाते भुला देते है। इतना सब करने के बाद भी उसके स्वास्थ्य और पीड़ा के बारे में कोई उससे पूछता तक भी नहीं और न ही उसका कोई अपना घर होता है। औरतों का कोई अपना घर होता तो क्या ऐसा ही बसा देते। स्त्री का तो मायका होता है या ससुराल। घर कहाँ है उसका। एक चिड़िया का भी घोंसला होता है जानवरों की खोह या पेड़ का घनी छाह। पर स्त्री का घर? अब बना रही है स्त्री अपना घर वह कमाती है। अपने नाम की जमीन खरीद रही है- आओ मेरे घर में रहो, मेरे शर्तों पर। ये पंक्तियाँ लिखते वक्त कई स्त्रियाँ मेरे जेहन में है, पर उनका प्रतिशत बहुत कम है। कुछ पंक्तियाँ बहुत कमाती है और अपनी कमाई पुरूष के नाम पर बनाए जाने वाले घर में झोंक देती है। जिस घर पर उसके सास-ससुर, नाते-रिश्तेदार गाहे-बगाहे दावे ठोकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि महिला का कोई घर नहीं है। अगर वह घर उसके पैसे से बना है तो भी हुकूमत उसका पति करता है। यानि महिला का मायका उसके पिता का होता है तो ससुराल ससुर का। आज भी परिवार में पति का ही वर्चस्व है। परिवार में स्त्री की स्थिति बहुत ही निम्न है। स्त्री के लिए पितृसत्तात्मक समाज एक अभिशाप की तरह हमेशा से व्याप्त रहे है।

गृहणी का जीवन उम्र के साथ-साथ बेहद नीरस एवं दु:खपूर्ण होता है। सम्पूर्ण आयु भर वह घर में ऐसे फँस जाती है कि उसको पता ही नहीं चलता कि उसका जीवन उसकी पकड़ से छूट गया है। महिला को सिर्फ चूल्हा चक्की करने, बच्चा पैदा करने, पालन पोषण करने अपने पति और उनके परिवार वालों की सेवा करने, सुबह से शाम तक गृहस्थी के काम करने के लिए मात्र उपयोग किया जाता है। इस तरह घर की चहारदीवारी में कैद हो जाती है। शादी के बाद लड़कियों की जिन्दगी बिल्कुल बदल जाती है। उसे अपने पति के अनुसार ही जीवन जीना पड़ता है। शादी से पहले लड़कियों को यह सीख दी जाती है कि वह ससुराल में सुख-दुख सहकर भी चुप रहे। कहानी में अपनी द्वारा नायिका को यह सीख दी जाती है कि- ''लड़कियों का दबा सकुचा रहना ही शोभता है, बेटी? कोई ऐसी हरकत जो सब की आंखों में तुम्हें गड़ा दे, कभी अच्छी नहीं होती तो जोर से हसना-बोलना भी अपराध हुआ करता है, लड़कियों के लिए। यानि शादी के बाद लड़की की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है आजादी पूरी तरह से छिन जाती है। पुरूष प्रध ान समाज महिलाओं की स्वतन्त्रता अधिकार आदि का हनन करते हैं।

गृहस्थी कहानी पति और पत्नी और बेटी सनु है। पति-पत्नी के बीच छोटी-छोटी बातों पर अनबन होती है। घर में पति की हुकूमत चलती रहती है। एक दिन उसका पति किसी गाड़ी के नीचे आ जाता है पत्नी दिन रात मेहनत करके सेवा करती है। इलाज के लिए पैसे खत्म हो जाते हैं पर उसकी माँ अपने गहने बेच देती है। इतना कुछ अपने पति के लिए करने पर भी पति की सोच बहुत घटिया है। वह सोचता है कि ''इन दिनों सहता इतनी चपल क्यों चली है? इधर मैं पड़ा हूँ और यह फुर्ती में रहती है। मुझे चिढ़ाने को डॉक्टर को प्रभावित करने के लिए या फिर नैहर के गुमान में दाम्पत्य जीवन के असफलता के पीछे पति-पत्नी के अहं की टकराहट और आर्थिक स्थितियां है तो वहीं आपसी अविष्वास और सन्देह है। पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में सुख को शक नष्ट कर देता है।

उसका पति फिर से काम पर जाने लगता है। पर उसका जीवन सहज नहीं होता। पति ऑफिस के कामों में उलझता रहता है, पत्नी पर ज्यादा ध्यान नहीं देता। घर में पुरूष अपने को घर का मालिक समझता है और पत्नी को नौकरानी। इस तरह के व्यवहार रखने पर दाम्पत्य कभी सन्तुष्ट नहीं बन सकता। लेखिका इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती है।

अलका सारावगी की कहानी संग्रह के दूसरी कहानी 'ये रहगुजर न होती' में भी परिवार में दिखने वाले पुरूष की प्रबुद्ध दृष्टि को ही दिखाया गया है। कहानी में एक ऐसे पति का चित्रण है जो अपनी पत्नी और बच्चों पर अपना रोब बनाये रखना चाहता है। बरसों बाद अपने बच्चे के साथ नायिका अपने दादा से मिलने आती है लेकिन उसके बाबा उससे और उसके बच्चे इस तरह का व्यवहार करते हैं कि जैसे वे लोग उसकी पोती और बच्चा न

होकर कोई और हो। बाबा के इस तरह के व्यवहार से वह बचपन से ही वाकिफ थी। उसकी माँ और दादी गुजर गये थे वे दोनों ही बाबा से डरते थे। बाबा के सामने वह कुछ नहीं कहती थी। उनकी दादी अन्तिम दिनों में पगली सी हो गयी थी लेकिन बाबा डाटते तो चुप हो जाती थी। बाबा अपने बच्चों को माँ को मरते वक्त उसके चिता को हाथ तक लगाने नहीं दिये थे। बाबा कहते हैं कि जिन लोगों ने जीते जी माँ से पानी के लिए तक नहीं पूछा। वे लोग माँ को फूँककर दुनिया को दिखाना चाहते थे कि वे माँ के लायक बेटे है। बेटी का मन किया कि वे चिल्ला-चिल कर अपने बाबा से पूछे कि- ''अपनी माँ को उन लोगों ने जीते जी पानी तक नहीं पिलाया था या आपने पिलाने नहीं दिया? उसने बदला लेने के लिए आपने उनकी माँ को अपनी औरत को तीन साल इस कमरे में कैद कर रखा, ताकि वह किसी से न मिल सके वह तीन साल तक ऊपर अपने कमरे में ले जाने के लिए कहती रही पर आपने उसकी एक नहीं सुनी। पुरूष प्रधान समाज में औरत का स्थान गुलाम जैसा है वैवाहिक जीवन में पुरूष ही फैसला करता है। पत्नी पर पति का पूर्ण अधिकार रहता है। घर की चारदीवारी में अपनी पत्नी को कैद कर रखने की पुरूष की विकृति मानिसकता पर लेखिका यहां व्यंग्य करती है।

रोल मॉडल कहानी में महुआ माजी ने स्त्री के पहनावे के बहाने वर्तमान समाज में लड़के-लड़कियों की स्वतन्त्र चिन्तन धारा पर विशेष रूप से बल दिया है। महिलाओं के कपड़े पहनने के तौर तरीके के सम्बन्ध में महुआ माँजी कहती है। आज की लड़कियाँ साड़ी से भी ज्यादा सलवार कमीज चूड़ीदार कमीज या नाइटी पहनना पसन्द करती है और एक बात यह है कि साड़ी में खासकर पेट, पीठ, कमर आदि दिखने की परेशानियां है। यहाँ तक की साड़ी का पल्लू भी संभालना पड़ता है। जबकि अन्य पोशाकों में महिलाओं को इतनी दिक्कत नहीं होती।'' मुहल्ले के लगभग सभी संयुक्त परिवारों में जहां अभी भी सास-ससुर और ननद का दबदबा है बहुए साड़ी में ही रहकर अपनी शालीनता प्रदर्शित कर रही है। यह बात और है कि आमने-सामने वाली क्रांतिकारी औरतों को क्रांतिकारी कपड़ों में देख वे अन्दर ही अन्दर छटपटाती रही और लुका-छिपाकर अपने लिए एकाध सिलवाकर रख लिया जिसे मायके या पति के साथ बाहर छुट्टियों में घूमने गयी और साथ लेकर गयी। उन कई दिनों तक ही सही उन कपड़ों में उन्होंने खूब तस्वीरें खिंचवाई और माडर्न, कमासिन, स्वाधीन, क्रान्तिकारी वगैरह-वगैरह होने के अहसास से भरपूर रही। इससे यह प्रतीत होता है कि ज्यादातर महिलाएं वे कपड़े पहनना ही सही मानती है जो उन्हें आरामदायक हो। शादी के बाद लड़कियों से कहा जाता है वे यह न पहने, वह पहनने जो कि उसका पति चाहता हो। लड़कियों को शादी के बाद अपने मनपसन्द कपड़े पहनने की छूट नहीं होती। ये पुरूष का वर्चस्व है परिवार में इस पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को अपने व्यक्तित्व को समुचित निखारने का अवसर नहीं मिलता।

आज के वर्तमान आधुनिक युग में विवाह नामक संस्था बहुत प्रभावी हुई। शादी के पहले भी और बाद में भी अक्सर देखा जाता है। उसका पति किसी अन्य महिला से आँखे चार कर रहा है, संबंध बना रहा है। काफी हल्ला, हंगामा, रोना धोना करने के बाद भी उसमें परिवर्तन नहीं आया। कभी करीबी दोस्त की पत्नी, कभी दफ्तर की स्टोनो, कभी पड़ोस की नवयुवती या या विवाहिता के प्रति हीनभावना से ग्रसित होती रही। क्या कमी है उसमें? क्या वह सुन्दर नहीं? आकर्षक नहीं? आइने के सामने खड़ी होकर अपनी देह के हर कटाव, हर उभार को निहारती वह। लम्बी छरहरी देह। आज के भारतीय समाज में महिलाओं की दिशा एवं दशा में सुधार हो रहे है। वैधानिक प्रयास किया जा रहे हैं फिर भी परम्परात्मक भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति नाम मात्र का सुधार हुआ है। पुरूष की ओछी मानसिकता ही आज महिलाओं के शोषण का कारण बनी हुई है। महिलाएँ शिक्षा ग्रहण करके अपने जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मृणाल पाण्डेय -स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीतिक तक, पृ0 86
2. अनामिका- तिनका तिनके पास, पृ0 64
3. अंजली भारती - घर परिवार और रिश्ते, पृ0 43
4. वही, पृ0 148
5. गीता श्री- स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, पृ0 126
6. अनामिका - प्रति नायक (कहानी संग्रह), पृ0 27
7. वही, पृ0 29
8. अलका सरावगी, दूसरी कहानी, पृ0 11
9. महुआ माजी-रोल मॉडल, पृ0 49
10. महुआ माजी- चंद्र बिन्दु (कहानी), पृ0 22
11. वही, पृ0 22

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

डॉ० राजीव कुमार

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

"वेदोऽखिलोधर्ममूलम्" समस्त चेतन अचेतन प्राणीमात्र का मूल ज्ञान का भंडारण वेद ही है। वेद समस्त धर्मो का मूल है। वेदों के द्वारा ही हमें भारतीय संस्कृति का ज्ञान होता है। मनु के कथनानुसार वेद, पितृगण, देवता तथा मनुष्यों में सनातन व सर्वदा रहने वाला ज्ञानचक्षु है, जो हमें अलौकिक वस्तु का ज्ञान उसी प्रकार कराते है, जिस प्रकार लौकिक वस्तु के साक्षात्कार में नेत्र अपनी भूमिका निभाते हैं। वेद इष्ट प्राप्ति अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाले है। वर्तमान पर्यावरण संकट की समस्या का समाधान भी वेदों मे दृष्टव्य है सम्पूर्ण वैदिक साहित्य पर्यावरण चिन्तन से ओतप्रोत है।

मुख्य शब्दः पर्यावरण, उल्ब (महत् परत), संरक्षण, मेघमण्डल, वेद।

पर्यावरण अत्यंत व्यापक संप्रत्यय है, जो दो शब्दों के मेल परि + आवरण से बना हैं। जिसका अर्थ है "चारों ओर ढका हुआ" प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनिवार्य रूप से उपभोग किए जाने वाला पर्यावरण की श्रेणी है। जिसे सामान्यतः हरी-भरी प्रकृति से सम्बोधित किया जा सकता है। हरी का अर्थ "सुजला सुफला मलयजशीतला शस्यश्यामला पृथ्वी" व भरी से तात्पर्य "पशु - पक्षी - जीव - जंतुओं की समृद्धि" से जान सकते हैं। पर्यावरण से मानव का सम्बन्ध अविभाज्य व सह- सम्बन्ध रहा है। प्रकृति का अनुशासन आदिकाल से अनवरत चला आ रहा है, परंतु इस अनुशासन में अनावश्यक रूप से हुआ परिवर्तन संपूर्ण विश्व के लिए मृत्यु समान हो सकता है। आज वर्तमान में बढ़ते औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई, जनसंख्या वृद्धि, वन्यजीवों का संहार, परमाणु परीक्षणों ने सम्पूर्ण पर्यावरण संतुलन को अस्त-व्यस्त कर भयाक्रांत स्थिति उत्पन्न कर दी है। मानव का शारीरिक व मानसिक विकास के लिए ही नहीं वरन् हमारी संस्कृति व सभ्यता के लिए भी पर्यावरण स्वच्छता अत्यावश्यक है।

आधुनिक युग मैं भौतिक साधनों का विकास तो हुआ है, परंतु मानव मानवता के प्रति अनभिज्ञ सा हो गया है। संपूर्ण विकास भोगवादी संस्कृति पर ही है। हम यह नहीं कहते हैं कि औद्योगिक विकास व भौतिक उन्नति को अवरुद्ध किया जाए अपितु जागरूकता इस बात की है, कि मनुष्य द्वारा नवीन विचारधाराओं और प्राचीन मान्यताओं में समन्वय स्थापित किया जाएघ जिसके लिए पुनः हमें अपने गौरवशाली अतीत व संस्कृति से जुड़ना होगा।

संपूर्ण प्रकृति एवं मनुष्य के पारस्परिक मधुर सम्बन्ध ही पर्यावरण संरक्षण है। विभिन्न आधारों एवं साधनों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। परंतु एक साधन धार्मिक भावना भी है, जो पर्यावरण के प्रति धार्मिक सद्भावना ही प्राचीन अवधारणा का केंद्र बिंदु है। ज्ञान, कर्म एवं उपासना की त्रिवेणी से परिपूर्ण वैदिक साहित्य है, जहाँ कर्म (यज्ञ, यागादि) का संबंध पर्यावरण शुद्धि से है, और विशुद्ध प्राकृतिक उपादानों का सम्बन्ध उपासना से है। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक तत्वों में देवत्व की भावना विकसित कर अपने कल्याण एवं सुख - समृद्धि प्राप्ति हेतु स्तुतियों का विधान किया है। प्राकृतिक शक्तियों की उपासना प्रकृति के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकट करते है। वैदिक काल में पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्या न होने पर भी ऋषियों की भावना पर्यावरण के प्रति चिंतन व्यवहारिक व वैज्ञानिक रही है। दृष्टव्य है-

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवळ रजः। मधु द्यौरस्तु न पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाः अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।

मधुर वायु बहती रहें, नदियाँ मधुर बहें, मधुर औषधियाँ उत्पन्न हों, रात मधुर हों, मधुर प्रभात हो, मधुर द्यौ हो, जो हमारा पिता है। सूर्य मधुर और गायें मधुर हो। यहां कामना की गई है कि सृष्टि का उपकार करने वाले सभी प्रकृति मधुरता लिए हुए बहें। प्रकृति व मनुष्य एक दूसरे के पूरक होने के कारण रूप के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव - जीवन का कोई भी पक्ष पर्यावरण से पृथक नहीं किया जा सकता है। नित्यक्रिया, संस्कार, व्रत-अनुष्ठान, त्यौहार, क्रियाकर्म, पूजा-पद्धति, नित्यकर्म, नृत्य - गीत आदि सभी क्रियाएघ प्राचीन काल में पर्यावरण में समाहित है। प्रातः काल निद्रा निवृत्ति पर श्रद्धावान् व्यक्ति आज भी पृथ्वी माँ की स्तुति करता है :-

"समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल अष्टम अध्याय 113 वे सूक्त में उषा की श्रेष्ठता बताते हुए उषा देव की स्तुति में ऋषि द्वारा कहा है:-

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वां।
यथा प्रसूता सवितुः सवायॅ एवा एत्र्युषसे योनिमारैक।[१]

उषा का प्रकाश हमारे लिए श्रेष्ठ है जो, न शीतल है, न उष्ण न अस्पष्ट और न अत्यंत प्रचंड। यह हमारे निवास योग्य उत्तम है, जो रोगों को दूर करता है। १ अग्नि देव की स्तुति करते हुए अग्नि देव को ब्रह्मचर्य जीवन में ज्ञान प्राप्त कर गृहस्थ जीवन में यज्ञशील होकर वानप्रस्थ में घर से ऊपर उठकर प्रभुस्मरण करते हुए ज्ञानी पुरुष को मोक्ष की ओर अग्रसर करते हैं। १ ऋग्वेद में सूर्य की स्तुति में कहा है :-

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्रेः।
आप्रा द्यावाप्रथिवी अंतरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।१।।

सूर्य मंडल का उदय हुआ है, जो आश्चर्य तेज समूह रश्मियो का समूह है, जो द्युलोक किरणों द्वारा हमारे रोगों का नाश करते हैं। वह स्वयं का ही प्रकाशक नहीं वरन् सूर्य, चंद्र, अग्नि को भी प्रकाशित करता है। वह संपूर्ण अंतरिक्षलोक पृथिवीलोक, द्युलोक को व्याप्त किए हुए है। यह हमारी उन्नति का साधक है। द्युलोक व पृथिवीलोक दोनों स्तुत्य है, क्योंकि यह सृष्टि में मनुष्य का हित करने वाली है। ये उत्तम अन्न ऐश्वर्य प्रदान कर रक्षण करते हैं। द्युलोक पृथिवीलोक की स्तुत्य में कहा है कि हम दातृत्व के लिए खूब धन दे सौम्य धन-अन्न से हम आनंद का अनुभव करें। अनावश्यक व गरिष्ठ भोजन के प्रति आसक्त न हो।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः।१।

द्यावा पृथिवी हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हों। हमें जल, अन्न से रक्षित करें। प्राचीन वेद ऋग्वेद में पर्यावरणीय तत्वों का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है, परंतु ऋषि दीर्घतमा ने मुख्य रूप से चार तत्वों को बताया है।

"सकृद्ध द्यौरजायत सकृद भूमिजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायतेः।"
(ऋ. ६/४८)

सूर्य एक बार उत्पन्न हुआ। भूमि एक बार उत्पन्न हुई, अन्तरिक्ष एक बार उत्पन्न हुआ तथा जल भी एक बार उत्पन्न हुआ। इनके अतिरिक्त अन्य तत्व उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि सृष्टि संचालन में ये पर्याप्त थे, अन्य सब इन्हीं से उत्पन्न माने गए है। यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में "यजमानस्य पशून पाहि।" कहकर पशुओं की रक्षा को संबोधित किया गया है।

मनुष्य को सचेत किया गया है कि उपकार करने वाले पशु पक्षियों को किसी प्रकार की कोई हानि ना पहुंचाएँ। उनकी रक्षा करें और उनसे उपकृत होकर आनंदित हो, हमें उनका पालन - पोषण करना चाहिए। प्रकृति के पदार्थों में संतुलन बनाए रखना एवं प्रकृति के प्रति कृतज्ञता पूर्ण भाव अभिव्यक्त करने की प्रेरणा मिलती है। यजुर्वेद के प्रस्तुत मंत्र में प्रकृति के शान्ति भाव को प्रकट किया है :-

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्ति।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिब्रह्मा शान्तिः
सर्व शान्तिः शान्तिरेवः
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि"

यजुर्वेद में पर्यावरण के प्रति "देहि मे ददामि ते निमे धेहि निते दधे" प्रकृति के संपूर्ण अंगों में साम्यावस्था व संतुलन बनाए रखने की कामना विदित होती है। जिसका भाव है, कि यजमान तुम मुझे विदित हविरात्र भेंट करो तब मैं भी तुम्हारे लिए वर्षा विहित करूगाँ। इससे स्पष्ट होता है, कि प्रकृति भी मानव से कुछ अपेक्षा रखती है (संरक्षण की)। अर्थात् जब हम प्रकृति को संरक्षित करेंगे तभी वह हमारे लिए भविष्य मे भी उपकृत होगी अन्यथा नष्ट हो जाएगी। यजुर्वेद में वृक्षों वनस्पतियों को संरक्षित करने की बात कही है–"पृथिवी देव यजान्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसी" पृथ्वी हमें सभी औषधि प्रदान करती है अतः हमें हिंसक होकर वृक्षों की कटाई नहीं करनी चाहिए।

अथर्ववेद के अन्तर्गत हमें जल, वायु एवं सूर्य की रश्मियों को व्यवहारिक और जीवनपयोगी बनाने का स्पष्ट उपदेश प्राप्त होते हैं। प्रातःकालीन और सायंकालीन सूर्य की कोमल किरणें, शीतल व मंद सुगंधित वायु के सेवन द्वारा शारीरिक व मानसिक रोग नष्ट होकर मन व शरीर हष्ट - पुष्ट होते हैं। उदय और अस्त होते हुए सूर्य के समान मनुष्य अपने बालपन से बुढ़ापे तक अपने दोषों का नाश कर सदा प्रसन्न रहें।

"उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि।"३२

जिस प्रकार उदयाँचल व अस्ताच्चल शिखर पर जाता हुआ सूर्य पृथ्वी पर क्षुद्र कीड़ों को मारनें मे सहायक है। नाना प्रकार के मकड़ी, मक्खी क्षुद्र जन्तु के मारे जाने से आत्मिक शुद्धि मिलती है। उसी प्रकार आत्मिक दोषों का नाश होने से आत्मिक शांति प्राप्त होती है। सर्वव्यापक परमेश्वर से जल की शुद्धि की कामना भी की गई है।

"आप इदं वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेयियात्।"५६

यह परमेश्वर का जल पीड़ानाशक है सबका भय निवारक है यह जल शरीर की रोग दोषों से रक्षा करता है। परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि, नेत्र, हस्तादि, सूर्य, चंद्र व पृथ्वी पर अन्न आदि पदार्थ उपभोग के लिए दिए है। हमें ईश्वर की दी हुई वस्तुओं का ध न्यवाद देकर उसे संरक्षित करते हुए उपभोग करना चाहिए। जिससे खेती में शुद्ध जल के सुप्रयोग से पुरानी व नवदरिद्रता और स्नानादि द्वारा अपने दोषों का नाश करें। वायु शान्ति के विषय में भी कहा है–

शं नो वातां वातु शं नस्तपतु सूर्यः।
अहोनि शं भवन्तु न शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा
नो व्युच्छतु। ९६

सुखकारी वायु हमारे लिए बहें। सुखकारी सूर्य हमारे लिए तपे। दिन-रात हमारे लिए सुखकारी हो। प्रातः कालीन उषा भी विविध ता लिए हुए सुखकारी हो। कामना की गई है, कि मनुष्य ईश्वर व विद्वानों से शिक्षा प्राप्त कर ऐसे कार्य करें जिससे वायु, सूर्य व ईश्वर प्रदत्त वस्तुओं से हमें प्रतिपल सुख मिलता रहे।

सं मा सिञ्चन्तु मरुत स पूषा सं बृहस्पतिः। सं
मायमग्नि :।
सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे।
९६

वायु के झोंके मुझे सीचे, पृथ्वी अनेक प्रकार से व सबका रक्षक सूर्य भी भलि-भाँति सीचे। अग्नि, संतान, भृत्य आदि धन से संपन्न करते हुए मुझे दीर्घायु करें। अर्थात् मनुष्य वायुादि सभी पदार्थों से उपकृत होते हुए अपना शारीरिक मानसिक बल, से अपने यश को बढ़ाएं।

वातावरण में कृत्रिम क्षमता को विकसित करके मानव इस सृष्टि के अंश का स्वयं संचालक अवश्य बन गया है, परंतु वह प्रकृति विरोधी भी बन गया है। हमें ज्ञात होना चाहिए कि प्रकृति के समस्त कार्य नियम निर्धारित है। प्रकृति में परिवर्तन होता है, क्षय नहीं। जबकि मानव उनका उपभोग करते हुए नष्ट करता जा रहा है। उसके पुर्निर्माण के विषय में विचार नहीं करता। प्रकृति में समञ्जस्य है। यथा - सूर्य की रोशनी से पौधे खिलते हैं, पानी वाष्प बनकर उड़ता है और पुनः बरसाता है, और भूमि को तृप्त करता है यही प्रकृति का स्वयं व अद्भुत संचालित समञ्जस्य है। ऋग्वेद में कहां है:-

"इमास्तते इन्द्र प्रश्नयो घृतं दुहत आशिरम्
एनाम्रतस्य पिप्युषोः।"

हे प्रभु! आपके द्वारा उत्पन्न हुई सूर्य की किरणें पृथ्वी पर जल को सिंचती है, तथा यज्ञ को बढ़ाती है। मेघमंडल की रचनाकर वर्षा के द्वारा अन्न को उत्पन्न कर सम्पूर्ण सृष्टि पोषित होती है। अथर्ववेद वेद में भी कहा है:-

"उदीरायत मरुतः समुद्रतस्वेषो अर्को नभ उत
पातयाय।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवी
तर्पयन्तु।"

हे वायुवेग! सूर्य के प्रकाश द्वारा जल को समुद्र से वाष्प रूप में उठा कर ऊपर ले जाओ। आकाश में बड़े गरजते हुए बादल की गड़गड़ाहट जल धाराए पृथ्वी को तृप्त करें। जल, पवन व सूर्य के प्रकाश द्वारा मेघमंडल की रचना होती है। वर्षा द्वारा पृथ्वी को तृप्त कर अन्न, धन से परिपूर्ण करते हैं। इसी प्रकार यह चक्र स्वतः ही व्यवस्थित रूप में चलता रहता है।

आज वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण के कारण पृथ्वी पर स्थित विभिन्न आवश्यक तत्वों का ह्रास होने के कारण जीवो का जीवन संकटग्रस्त होता जा रहा है। वायु, भू-जल, प्रदूषण, वन–विनाश, ऊर्जा संकट आदि विभिन्न प्रदूषणों ने प्राणी जगत को प्रभावित किया है।

पृथ्वी पर होने वाले प्रदूषण को सुधारने में वृक्ष सर्वाधिक भूमिका निर्वाह करते हैं। वर्तमान समय में कल - कारखानों से निकलने वाले वायवीय प्रदूषण रूपी विष को वृक्ष भगवान शिव के समान पी जाते हैं। वृक्षों की पत्तियाँ वायु में व्याप्त प्रदूषण तत्वों को सोख लेती है। वृक्षों को वेदों में सुप्त चेतना वाले सजीव, सुख-दुख का अनुभव करने वाले माने हैं। वृक्षों को देवसम् पूजनीय माना है।

दसकूपसमा वापी दसवापीसामो ह्रदः।
दसह्रदसमः पुत्रो दसपुत्रसमो द्रुमः।३३६

वैदिक साहित्य में पर्यावरण के रक्षक एक मोटी परत का भी वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में इसका वर्णन सुनहरे रंग के रूप में माना गया है। ऋग्वेद के दशम् मंडल में ऋषि अग्निसौचीक द्वारा भी कहा है–

"आपोवत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्र समेरयन्।
तस्योत जायमानस्योल्ब्बं आसीत् हिरण्ययः।"

जिस प्रकार गर्भस्थ बालक की रक्षा कवच एक झिल्ली होती है, जो शिशु की रक्षा करती है। उसी प्रकार यह महान् उल्ब (परत) संसार रूपी शिशु की झिल्ली रूप मे रक्षा करती है जिसका रंग सुनहरा है।

उक्त मंत्र में वर्णित 'महत् उल्व' एक मोटी परत है जो समस्त संसार के ऊपर झिल्ली रूप में व्याप्त होकर संसार रूपी शिशु की रक्षा करती है। यही उल्ब वर्तमान में पारिभाषिक रूप ओजोन परत का सकेत है। इस प्रकार हम जान सकते हैं, कि वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार रक्षा कवच (ओजोन) का वर्णन प्राप्त होता है।

उक्त कथनानुसार संस्कृत वैदिक साहित्य में पर्यावरण संबंधी नैतिक अनुशासन शिक्षा विविध स्थानों में दिखाई देती है। प्रकृति

के प्रति कृतज्ञता पूर्ण भाव व संवर्धन के भाव बहुलता से प्राप्त होते हैं। मानव अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर करता है। अत: प्रकृति की रक्षा करना अति आवश्यक है। विज्ञान और प्रकृति के मध्य सामंजस्य स्थापित कर जीवन की कला विकसित करनी चाहिए, जिससे मनुष्य प्रकृति के सानिध्य में रहकर अपने जीवन को उन्नत व समृद्ध बना सके। अत: प्रत्येक व्यक्ति को भारतीय संस्कृति के शाश्वत सिद्धांत "परस्परोपग्रहो जीवनाम्" "जियो और जीने दो" का पालन करते हुए पर्यावरण संरक्षण में अपना आत्मविश्वास अडिग एवं निष्ठा पूर्ण अपना बहुमूल्य योगदान देना होगा।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुर्ज्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।२६

उपयुक्त मंत्रों में ही पर्यावरण संकट का समाधान व जीवन का सार समाहित है।

संदर्भ सूची

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ३।
2. संस्कृत - साहित्य एवं पर्यावरण, आचार्य प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पृष्ठ ४, ९, २०।
3. ऋग्वेदभाष्यम् (१/८/११३ सूक्त)
4. ऋग्वेद भाष्यम् (९.९९५.९)
5. ऋग्वेद भाष्यम् (९.९/५.९)
6. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, डॉ० विजय एस. सोजीत्रा पृष्ठ २२,२७।
7. यजुर्वेद में पर्यावरण, डॉ० उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, पृष्ठ ३,५,६।
8. संस्कृत-साहित्य में पर्यावरण चेतना, डॉ० दीप्ति वाजपेयी, पृष्ठ १५।
9. संस्कृत-साहित्य एवं पर्यावरण, आचार्य प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पृष्ठ १२३।
10. अथर्ववेदभाष्यम् (२/३२)
11. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, डॉ० विजय एस० सोजीत्रा, पृष्ठ ९३, ९४।
12. अथर्ववेदभाष्यम् (४/५)
13. संस्कृति-साहित्य एवं पर्यावरण, आचार्य प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पृष्ठ १२३।
14. वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, डॉ० विजय एस० सोजीत्रा, पृष्ठ २९
15. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना, डॉ० दीप्ति वाजपेयी, पृष्ठ १२।
16. संस्कृत-साहित्य में पर्यावरण, आचार्य प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पृष्ठ ४३, ४६२।

राजकमल चौधरी की रचनाओं में समय और समाज से संवाद

विजय कुमार साव

शोधप्रज्ञ, हिन्दी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

डॉ० सुनील कुमार दुबे

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

साहित्य समाज के साथ संवाद का कलात्मक लिखित रूप है। इसमें समाज अपनी खूबियों और खामियों के साथ सज-संवर कर उपस्थित होता है। जो साहित्य जितना अधिक मुखरित होता है, उसका समाज के साथ संवाद उतना ही प्रगाढ़ होता है। स्वातंत्र्योत्तर काल के कथा-लेखन में जितनी मुंह उतनी बातें अर्थात् विभिन्न कथा-आंदोलन होने लगी थी। सर्वसाधारण के मन-मिजाज पर अपना नाम और अपनी कहानियों के शीर्षक प्रचारित करने की होड़ मची थी। राजकमल चौधरी अपने पूरे लेखन-कर्म में निष्ठा और ईमानदारी से सृजनरत रहे हैं। एक ईमानदार रचनाकार के लिए साहित्य सृजन का मूल उद्देश्य आम नागरिकों की उनकी स्थितियों की जानकारी देना होता है। आत्मप्रचार अथवा साहित्यिक संगठनों एवं संस्थाओं से मान्यता प्राप्त करना नहीं। रचनाकार जो कहना चाहता है यदि वह अपनी रचना में नहीं कह पाए, उसे अपनी ही रचना के लिए वक्तव्य देना पड़े तो उस रचना और रचनाकार के लिए इससे बड़ी असफलता और कुछ नहीं हो सकती है। इसीलिए आम पाठकों का उनसे विश्वास उठ गया।

राजकमल चौधरी का ध्यान कभी इस तरह के विज्ञापनों की ओर नहीं गया। उन्होंने कहा कि 'युद्ध, अकाल, राजतंत्र, बेकारी, महँगाई, दूसरे देशों से संबंध, गृहकलह, आम चुनाव इस सभी बातों का असर कथा-साहित्य पर पड़ता है, सामान्यत: कथा के विषय और स्वरूप पर पड़ता है। मगर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कथा-साहित्य को जीवन और संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्तियों के क्षेत्र से हटाकर समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में डाल दिया जाए।' किसी रचना की शाश्वतता उसके जनसरोकार की गहनता से तय होती है। इस अर्थ में राजकमल चौधरी का जनसरोकार घनीभूत होकर उनकी कथा-साहित्य में आया है। उन्होंने महानगरों की जीवन शैली को उकेरा, ग्रामीण जीवन-क्रम से मिट्टी उठायी है और जनमानस के पटल पर पूरे अपनेपन के साथ अंकित हुए हैं। राजकमल चौधरी की आधुनिकतावादी लेखनी अपने समय और समाज की रचनाधारा से आगे की बात कह गयी है।

जब समाज औद्योगीकृत हो जाता है, तो उसे आधुनिक समाज माना जाता है। आधुनिक समाज को अक्सर भौतिकवादी समाज भी कहा जाता है। इसी समाज को जब कलात्मक अभिव्यक्ति दी जाती है, तब उसे साहित्य कहते हैं। आधुनिक समाज में साहित्य ने जो अपना एक विशेष स्थान बनाया है, उसे आधुनिक साहित्य कहते हैं।

"आधुनिकतावादी साहित्य एक विशेष प्रकार का साहित्य है। समसामयिकता का संबंध 'काल' से है तो आधुनिकता का संवेदना, शैली और रूप से। यह स्थापित संस्कृति, मूल्य एवं संवेदना को अस्वीकार करती है। यह दुनिया की मान्यताओं को मंजूर नहीं करती, परंपरा को बेड़ी के रूप में लेती है। आधुनिकतावादी अंतर्यात्रा करता है, मूल्यों का मखौल उड़ाता है, वह विद्रोही होता है। भीड़ का विरोध करता है, वह व्यक्ति की मुक्ति का विश्वासी है। वह अपने को अ-मानव की स्थिति में पाता है और स्नेह, कृतज्ञता आदि को निष्कासित कर देता है। संयम की कमी, प्रयोग, साहित्य रूपों की तोड़-फोड़, शॉक देने की मनोवृति, आक्रोश क्षोभ एवं हिंसा की आकांक्षा आदि इसकी विशेषताएं या मोटिव है।"[1]

छठें-सातवें दशक का परिवेश एवं प्रवृत्तियाँ:-

साठोत्तरी हिंदी साहित्य 1960 ई० के बाद मुख्यत: नवलेखन आदि युग से काफी हद तक भिन्नता की प्रतीति कराने वाली ऐसी पीढ़ी के द्वारा रचित साहित्य है, जिसमें विद्रोह एवं अराजकता का स्वर प्रधान था। हालांकि इसके साथ-साथ सहजता एवं जनवादी चेतना की समानान्तर धारा भी साहित्य के क्षेत्र में प्रवाहमान रही, जो बाद में प्रधान हो गयी। कहानियों एवं उपन्यासों पर इसका प्रभाव पर्याप्त रूप से पड़ा और कहानी के क्षेत्र में 'अकहानी' जैसे आंदोलन ने रूप धारण कर लिया।

60-70 के बीच का दशक पराजय, मोहभंग, ऊहापोह और दिशाहीनता का दौर था। 1962 ई० में चीन का हमला और उसमें भारत की हार, 1964 में नेहरू जी का निधन, बेतहाशा महंगाई, अमीरी-गरीबी का तेजी से बढ़ता फासला, राजनीतिक अस्थिरता और बनती-बिगड़ती सरकारें, बढ़ता भ्रष्टाचार, नक्सलवादी आंदोलन का उभार, साम्यवादी दलों में टूट और विभाजन।

बेहतर रोजगार की तलाश के कारण गाँव से शहरों की ओर पलायन और शहर की आपाधापी में गुम होते रिश्तें, शहरी परिवेश एवं मध्यवर्गीय परिवार का ताना-बाना एवं संघर्ष कई रूपों से उभरा है। जिस भ्रष्टाचार ने आज तांडव नृत्य कर रखा है, उसका बीजवपन इसी दशक में हुआ था।

साठोत्तरी कथा मध्यवर्ग के अंतर्विरोधों की कहानी है, उसके तेवर तीखें हैं, वह ज्यादा खुले रूप में बात करती है। परंपरागत संस्कारों और वर्जनाओं को तोड़ने की प्रवृत्ति मिलती है। प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विवाहेत्तर प्रेम, स्त्री-पुरुष संबंध, इस दौर के कथा-साहित्य में उतरा और यौन संबंध, यौन चेतना, यौन उन्मुक्तता का भी अधिक बेबाकी से चित्रण इस दौर में दिखाई पड़ता है।

कोई भी रचना तभी जीवन्त और प्राणवान बन सकती है, जब उसका जुड़ाव जीवन और परिवेश से हो। चूँकि रचनाकार अपने परिवेश के प्रति आबद्ध होता है। अतः यह आवश्यक है कि बदलते मानव मूल्यों के साथ साहित्य की विधाओं का तेवर भी परिवर्तित हो।

साठोत्तरी हिंदी साहित्य में जीवन और जगत से जुड़ी प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति को अत्यन्त यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। भरसक प्रयासों के बाद भी जब स्वराज को रामराज्य में परिवर्तित नहीं किया जा सका तो जनमानस में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गयी। मोहभंग की स्थिति ने भ्रष्ट व्यवस्था, राजनेताओं के झूठे वादे, पूँजीवादी अधिनायकत्व, भूखमरी, बेरोजगारी, कालाबाजारी आदि समस्याओं ने आम आदमी के मन में असंतोष एवं आक्रोश की भावना को ही उपजाया। जीवन के इस कटु यथार्थ का सामना करने में जिन दबावों और तनावों को झेलना पड़ा, जिन आरोहों-अवरोहों से गुजरना पड़ा, उसकी स्पष्ट छाप हमें साठोत्तरी साहित्य में देखने को मिलती है। पारंपरिक मूल्यों, मान्यताओं का विरोध करने वाली इस समय के कथा-साहित्य में प्रतिक्रियात्मक स्वर अधिक प्रबल हैं। इसी साठोत्तरी साहित्य और नयी कहानी के एक प्रमुख कथाकार राजकमल चौधरी हुए हैं।

राजकमल चौधरी के समकालीन कथाकारों ने अपने नये कथ्य एवं शिल्प को आधार बनाते हुए विविध क्षेत्रों का चयन किया। इस काल में संबंध विघटन के विषय को अधिक उठाया गया था। अधिकांश कथ्यों में संबंध जुड़ते नहीं बल्कि टूटते हैं। परिवार टूटने का सीधा संबंध आर्थिक बदलाव से है। तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण लोग गाँवों से शहरों की ओर दौड़े। वहाँ पत्नी और बच्चों के साथ उनका परिवार बसा। माँ और बाप या तो 'अतिथि' माने जाने लगे या 'चीफ की दावत' में कभी मुसीबत तो कभी वरदान। परिवार की बदलती संकल्पना और संबंधों के टूटने की आवाज भीष्म साहनी के 'चीफ की दावत' और रामकुमार के 'सेलर' में स्पष्ट सुनायी देती है। पारिवारिक संबंधों के चटकने और संयुक्त परिवार के विघटन, एकल परिवार बसने और उसकी समस्याओं पर अनेक कहानियाँ लिखी गयी हैं, इनमें- 'एक और जिंदगी' (मोहन राकेश), 'दूध और दवा' (मार्कण्डेय), 'विजेता' (रघुवीर सहाय) इत्यादि प्रमुख हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर इस दौर में ढेरों कहानियाँ लिखी गयी हैं। इन संबंधों की स्थापना के लिए पुरानी मान्यताएँ तोड़ी गयी। प्रेम के अनेक स्तर और रूप सामने आए। 'तीसरी कसम' से 'परिन्दें' तक विधिवत प्रेम का रूप लक्षित होता है। 'तीसरी कसम' का प्यार जिसमें सारी दुनियाँ का 'लोकरस' समाया हुआ है और वहीं 'परिन्दें' का प्रेम एकाकी, एकान्तिक, एकनिष्ठ और मौन है। एक प्रेम समाज के बीच खिलता है दूसरा समाज से दूर। दोनों में प्रेम की परिणति पीड़ा में हुई है। इस प्रकार की कहानियों में 'नन्हों' (शिवप्रसाद सिंह) 'बादलों के घेरे' (कृष्णा सोबती) इसके अलावा व्यक्तिगत संबंधों में 'शबरी' (रमेश बक्षी), 'टूटना' (राजेन्द्र यादव) और स्त्री-पुरुष के बदलते रिश्तों में 'मछलियाँ' (ऊषा प्रियंवदा), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी) में यथार्थ को पूरी प्रबलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस दौर की कहानियों में बोल्डनेस बढ़ी है, खासतौर पर स्त्री-पुरुष संबंधों के चित्रण में। पति-पत्नी, परिवार, समाज आदि से जुड़ी नैतिकताओं और परंपरागत धारणाओं पर वज्रपात हुआ। महानगरीय जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं को खुले रूप में उघाड़ा गया है। 'सेक्स' का चित्रण इस दौर में खूब हुआ और तत्कालीन समाज के मानदण्ड के अनुसार इसे अश्लील भी घोषित किया गया था। राजकमल चौधरी, ममता कालिया, महेन्द्र भल्ला आदि कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष संबंधों को एक नये नजरिए से देखा और अंतरंग प्रकरण को भी कहानी का विषय बनाया। इतना ही नहीं पति-पत्नी के संबंधों में आने वाले बदलाव भी इस समय की कहानियों में तीक्ष्णता से उभरें हैं।

श्रीकांत वर्मा की कहानी 'साथ', 'ट्यूमर', 'प्रेमपत्र' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

राजकमल चौधरी की कहानियाँ सेक्स, सिगरेट और धुआँ के परिवेश में लिखी गयी हैं, जो उस समय के महानगरीय मध्यवर्ग का एक चुटकी सच था। इस एक चुटकी सच को जिस निर्भीकता से उन्होंने उठाया है, वह प्रशंसनीय है।

महेन्द्र भल्ला भी इस समय के कथाकारों में प्रमुख हैं, 'एक पति के नोट्स' उपन्यास में उन्होंने चीजों को बड़ी सूक्ष्म स्तर पर देखा-परखा और यही उनके लेखन में प्रतिबिम्बित हुई है। स्त्री-पुरुष संबंधों को उन्होंने अपनी लेखनी में पूरी सादगी के साथ उतारा है।

ज्ञानरंजन इस काल के प्रतिनिधि कथाकार हैं। इनकी कहानियाँ आधुनिक भावबोध और संवेदना से बुनी गयी है। ज्ञानरंजन ने कुछ नये विषयों की तलाश की, जैसे उनकी कहानी 'छलांग' में किशोरावस्था को प्राप्त होते बच्चे में होने वाले आंतरिक बदलाव और यौन-क्रिया जैसी जिज्ञासा और मानसिकता को चित्रित किया गया है।

दूधनाथ सिंह मध्यवर्गीय संस्कारों के कथाकार हैं। 'रक्तपात' और 'रीक्ष' उनकी प्रमुख कहानियाँ है, जिसमें टूटते परंपरागत

परिवार और फैलते अजनबीपन को दिखाया गया है। पति-पत्नी-माँ और कहीं पति-पत्नी के बीच पसरी अजनबीयत का प्रतीकात्मक चित्रण है। विवाहेत्तर संबंध भी इसी यथार्थ से उभरा सत्य है, जिसे 'शिनाख्त' जैसी कहानी में व्यक्त किया गया है। जिसमें एक स्त्री एक ही दिन-रात में अलग-अलग समय कभी पति के साथ हमबिस्तर होती तो कभी अपने प्रेमी के साथ। इस प्रकार की कहानियाँ नैतिकता-अनैतिकता का भी प्रश्न खड़ा करती है और भारतीय आदर्श संहिता पर अपनी भरपूर चोट करती है।

रवीन्द्र कालिया भी अपनी कहानियों में मुख्य रूप से महानगर में रहने वाले मध्यवर्ग के व्यर्थताबोध और दिशाहीनता को ही लक्ष्य करते हैं। भटका हुआ युवा वर्ग, शराब, सिगरेट और सेक्स को ही जीवन का उद्देश्य मान बैठा है। इसके साथ-साथ पति-पत्नी के परिवर्तित होते संबंधों को नये यथार्थबोध के साथ उठाते हैं और विवाहेत्तर प्रेम को सहज रूप में स्वीकार करते दिखाए गए हैं। 'नौ साल छोटी पत्नी' का पति अपनी पत्नी के विवाह पूर्व संबंध को बड़ी सहजता से लेता है।

प्रेम, परिवार और सेक्स इस समय के कथा-क्षेत्र में खूब उभरा और रमेश बक्षी, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, गंगा प्रसाद विमल ने भी इस प्रामाणिक अनुभव को कथा में ढाला है।

राजकमल चौधरी का रचना-वैशिष्ट्य:-

आजादी के साथ आधुनिकता की चमक भी तेजी से बढ़ी, जहाँ समाज और राजनीति से लेकर साहित्य तक गहन विवाद और द्वन्द्व के कई समानान्तर रूप देखने को मिलते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में राजकमल चौधरी की चर्चा, विवाद की वह गहन आवाज है, जिसकी आँच पाठकों-आलोचकों के बीच आज भी महसूस की जाती है। यह एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य की परंपरा और परिपाटी से हटकर अपनी एक अलग लीक बनायी। इनके साहित्य में ऐसे विषयों का उल्लेख है जिसे साहित्य के ठेकेदारों ने नजर अंदाज किया। उनकी लेखनी को समाज के लिए अस्वीकार्य समझा, लेकिन पाठकों ने उन्हें अपनाया।

राजकमल चौधरी की उपस्थिति हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक बोल्ड लेखक के रूप में हुई। इनके पदार्पण से साहित्य में एक नया मोड़ आया। राजकमल चौधरी ने अपनी कहानियों में बिना किसी छिपाव के महानगरीय जीवन की कुरुपता और विद्रूपता का यथार्थ, नग्न रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में वह संबंध है, जहाँ पुरुष और स्त्री मात्र नर और मादा रह जाते हैं, यानी यौन संबंध। देह खासकर 'स्त्री देह' उनकी कथा-कहानियों के केन्द्र में है, जिसे बेचकर बड़ी-से-बड़ी चीज हासिल की जा सकती है। शराब, सिगरेट और सेक्स में डूबा मध्यवर्गीय समाज ही राजकमल के निशाने पर है। राजकमल चौधरी मनुष्य के भीतर छिपे तमस को उजागर करने वाले कथाकार हैं। इस 'अंधेरे यथार्थ' को उजागर करने में कहीं भी अश्लील दृश्यों, कथनों या प्रसंगों का सहारा नहीं लेते।

राजकलम चौधरी ने अपनी कहानियों में कठिन विषयों का चयन किया है, जो समाज की मर्यादाओं और नैतिकताओं को धूल-धूसरित करते हैं, जैसे ससुर-बहू के बीच देह संबंध। देह संबंध को दिखाते हुए भी कहानी कहीं भी अश्लील नहीं होती और नारी-पुरुष दैहिक संबंध का प्राकृतिक और स्वाभाविक चित्रण बन जाती है। उनकी कहानी 'पत्थर के नीचे दबे हाथ' में दंतकथा के माध्यम से महानगरीय जीवन में व्याप्त देह-कथा को कलात्मक ऊँचाई प्रदान की गई है।

राजकमल चौधरी अपनी कहानी 'बंद कमरे में कब्रगाह' में एक चहारदीवारी की ओट में ब्रह्मदत्त और अमरनाथ जैसे मौकापरस्त व्यक्ति नीलगिरि की भोलेपन का सहारा लेकर उसकी इज्जत और आबरू की कब्र खोद डालते हैं। इसमें स्त्री-पुरुष के संबंधों एवं समाज के दोहरे चरित्र को बड़ी ही बखूबी से उजागर किया गया है।

वे लिखते हैं- "ड्राइंगरूम में एक ओर बड़ा-सा पलंग है। पलंग एक सिंबल है, एक प्रतीक है। नाव की शक्ल का पलंग और फर्श पर रंगीन पत्थरों की लहरें बनाई गयी है। क्या यह नाव डूब जाएगी? पत्थरों में डूब जाएगी?

अमरनाथ की आँखें नीलगिरि से कहती है- 'पूरे पचास हजार की बात है, नीलगिरि! पचास हजार रुपये बहुत होते हैं।'

ब्रह्मदत्त उठा और बड़े तरीके से हैंगर पर अपना कोर्ट, शर्ट, टाई और ट्राउजर डालने लगा। फिर उसने सारी बत्तियाँ बुझा दी। सिर्फ जलता रहा एक नीला बल्ब। नीली रोशनी में नीली आग की तरह जलती रही नीलगिरि।"[2]

राजकमल चौधरी अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई' के संदर्भ में लिखते हैं- 'लेस्बिया' अर्थात् समलैंगिक यौनाचार में डूब गई हुई स्त्रियों के बारे में, खासकर हिंदी में बहुत ही कम लिखा गया है। भारतीय स्त्रियों के निजी चरित्र को नंगी आँखों से देखने का अवसर और संयोग हम लोगों को नहीं मिल पाता है। कहीं पर्दादारी के कारण और कहीं दूसरी जगह बे-पर्दगी' के कारण।"[3]

जुलाई 1965 को उन्होंने लिखा है- 'हमारे देश में जनाना क्लब नहीं है और न ही यहाँ की देसी औरतों को आधुनिक तौर-तरीकों से यह सब करने-सहने की जानकारी ही है।

हमारे देश की औरतें समलैंगिक आचरणों में लिप्त रहकर भी अधिकाशत: समझ नहीं पाती कि वे क्या कर रही है और किस मतलब से कर रही है... करती है अवश्य, लेकिन नींद में, नशे में, अनजाने कर लेती है और अपने कुसंस्कारों और अंधेपन में जकड़ी हुई, अधिक 'धार्मिक' और अधिक 'संत्रास' बनी रहती हैं।"[4]

यह उपन्यास स्त्री समलैंगिक संबंधों पर लिखा एक कथानक भर नहीं वरन् मानव व्यवहार का एक दस्तावेज भी है। वर्ष 2018 में धारा-377 को समाप्त कर भले ही उच्चतम न्यायालय ने समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से हटा दिया है पर आज से पाँच दशक पूर्व भारतीय समाज में ऐसी बातों पर चर्चा करना

भी पाप समझा जाता था। ऐसे समय में ऐसे विषयों पर लेखनी चलाने की हिमाकत करना वाकई चुनौतीपूर्ण कार्य था। यह राजकमल चौधरी के सर्वाधिक चर्चित और उतना ही विवादास्पद उपन्यास है।

डॉ० नगेन्द्र इस संदर्भ में लिखते हैं- "राजकमल चौधरी की 'मछली मरी हुई' तो एक सेक्सगाथा ही है।"[5]

राजकमल चौधरी ने 'ताश के पत्तों का शहर' उपन्यास में भी समलैंगिता की चर्चा की है। 'बोनी उर्फ वंदना एक लेस्बियन है। वह कहती है- "मीरा जैसी खूबसूरत लड़की पूरे कलकत्तें में और नहीं है। मुझे खूबसूरत लड़कियाँ बहुत अच्छी लगती है। उनसे बातें करने में, उनसे हाथापाई करने में, उनके गले में हाथ डालकर घूमने में, उनके साथ रजाई के भीतर लिपटकर सोने में, मुझे मर्दों से ज्यादा मजा आता है। एकदम लगता है, मैं मर्द बन गयी हूँ। एकदम सिर से पाँव तक मर्द। लड़कियाँ मुझे पसंद है, मर्द नहीं।"[6]

राजकमल चौधरी ने जहाँ भी लेस्बियन की चर्चा की है, उसे एक बीमारी के रूप में देखा है। एक तरफ वे स्वतंत्र यौनिक-क्रिया का समर्थन भी करते हैं, वही दूसरी ओर इसे एक मानसिक रोग के रूप में स्वीकारते हैं। इन्हीं कारणों से इनके विचारों में द्वन्द्व प्रदर्शित होता है।

राजकमल चौधरी में आधुनिकता अपनी समग्रता में दिखाई पड़ती है। इस समय की अधिकांश रचनाओं पर इनकी छाप आसानी से देखी जा सकती है।

राजकमल चौधरी के परवर्ती कथाकार:-

राजकमल चौधरी के निधन के पश्चात् कई प्रमुख बोल्ड लेखकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाने का जोखिम उठाया। इनमें कृष्णा सोबती ने 'सूरजमुखी अंधेरे के', गिरिराज किशोर ने 'यात्राएँ', मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा', रमणिका गुप्ता ने 'हादसे और आपहुदरी' (आत्मकथा), वंदना गुप्ता ने 'अंधेरे के मध्य बिंदु' इत्यादि में बोल्ड लेखन को प्रश्रय दिया है।

मृदुला गर्ग हिंदी की सबसे लोकप्रिय लेखिकाओं में से एक हैं। उनके कथा-साहित्य में कथानक की विविधता और विषयों के नयेपन ने उन्हें अलग पहचान दी है।

'चित्तकोबरा' मृदुला गर्ग के द्वारा रचित एक बहुचर्चित एवं विवादास्पद उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा का मूल आधार प्रेम विवाह तथा सेक्स की समस्या है। उपन्यास की नायिका 'मनु' दाम्पत्य संबंध के कारण निरंतर तनाव तथा द्वन्द्व की स्थिति महसूस करती है। उपन्यास में सेक्स संबंध को बड़ी बेबाकी से वर्णित किया गया है।

मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा' में स्त्री-पुरुष संबंधों को बोल्ड बिम्बों से उभारा है। "सेक्स वर्णन में उनका मन बड़े चटखारें लेता है।"[7]

कृष्णा सोबती का लेखन विलक्षण रहा है। इन्होंने अपनी हर कृति के साथ एक नया मुद्दा उठाया और समाज की संकीर्ण सोच पर प्रश्न चिह्न लगाया। 'मित्रों मरजानी' की 'मित्रों' हो या 'सूरजमुखी अंधेरे' के 'रत्ती', दोनों में क्रमश: यौन संबंधों और शोषण की दासता को चित्रित करती हैं।

वंदना गुप्ता वर्तमान समय की जानी-मानी बोल्ड लेखिका के रूप में उभरी हैं। इनका उपन्यास 'अंधेरे का मध्य बिंदु' में इन्होंने 'लिव इन रिलेशनशिप' का विषय उठाया है।

हिंदी-कथा संसार में कुछ चुनिंदा स्त्री लेखिकाएँ ही हैं, जिन्होंने अपनी कलम से समाज को चुनौती देने का साहस किया है। बहरहाल हिंदी में इस तरह के बोल्ड लेखकों की भारी कमी है, जो समाज के साथ प्रत्यक्ष संवाद स्थापित कर उसकी समस्याओं को अपने साहित्य में रेखांकित करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, डॉ० बच्चन. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2021, पृ० 38.
2. नवीन, देवशंकर. राजकमल चौधरी रचनावली खण्ड-3. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, संस्करण-2015, पृ० 253-255.
3. नवीन, देवशंकर. राजकमल चौधरी रचनावली खण्ड-6. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, संस्करण-2015, पृ० 87.
4. नवीन, देवशंकर. राजकमल चौधरी रचनावली खण्ड-6. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, संस्करण-2015, पृ० 88.
5. नगेन्द्र (संपा). हिंदी साहित्य का इतिहास. इंदिरापुरम: मयूर पेपरबैक, संस्करण-2016, पृ० 704.
6. चौधरी, राजकमल. ताश के पत्तों का शहर. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, संस्करण- 2001, पृ० 112.
7. नगेन्द्र (संपा). हिंदी साहित्य का इतिहास. इंदिरापुरम: मयूर पेपरबैक, संस्करण-2016, पृ० 704.
8. यादव, सुभाषचंद्र. राजकमल चौधरी का सफर. उत्तर प्रदेश: अंतिका प्रकाशन प्रा० लि०, संस्करण-2022.
9. यादव, राजेन्द्र (संपा०). एक दुनिया: समानान्तर. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2021.
10. मधुरेश. हिंदी कहानी का विकास. इलाहाबाद: सुमित प्रकाशन, संस्करण-2011.
11. मदान, इन्द्रनाथ (संपा०). हिंदी कहानी: पहचान और परख. दिल्ली: लिपि प्रकाशन, संस्करण-1975.
12. मधुरेश. हिंदी उपन्यास: सार्थक की पहचान. दिल्ली: स्वराज प्रकाशन, संस्करण-2002.
13. अग्रवाल, विपिन. आधुनिक के पहलू. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-1962.
14. मदान, इन्द्रनाथ. आधुनिकता और हिंदी साहित्य. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2000.
15. https://egyankosh.ac.in
16. https://streekaal.com/2017/02researchpaper-rajkamalchoudhary

वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा की की स्थितिः एक ऐतिहासिक समीक्षा

पूनम भाटिया

उच्च प्राथमिक विद्यालय, बम्बाला, सांगानेर, जयपुर (राजस्थान)

सारांश

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ ईसाई मिश्नरियों के आगमन से माना जाता है। यूरोप के व्यापारियों के कुछ समय पश्चात् वहाँ की ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया। इस मिशनरियों में प्रमुखतः पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, डेनमार्की तथा अंग्रेज हैं। इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य यहाँ के निवासियों में अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार करना था। इसके लिए सबसे बड़ा हथियार या साधन शिक्षा था। अपने पाँव जमाने के लिए इन मिशनरियों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों को चुना तथा वहाँ अपना पड़ाव डाला। "मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रवर्त्तक होने का सम्मान प्राप्त है।" मिशनरियों का विशाल संख्या में भारत आना और अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना करना, भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन का दौड़ माना जा सकता है। फिर इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रानी एलिजाबेथ प्रथम से 31 दिसम्बर सन् 1600 ई॰ को पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए 'आज्ञापत्र' (बेंतजमतद्ध प्राप्त करना तथा 150 वर्शो तक व्यापार के साथ-साथ कम्पनी ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा धर्म के प्रचार के लिए भी सक्रिय प्रयास किया। स्कूल कॉलेजों की स्थापना के साथ-साथ कम्पनी ने आज्ञा-पत्र का नवीनीकरण करवाया जिसमें भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उत्पाद के लिए आर्थिक (फंड) की स्वीकृति तथा प्रावधान किया गया। हाँलाकि प्राच्य एवं पाश्चात्य विवाद की उत्पति हुई। इस कड़ी में मैकाले का विवरण पत्र जिसने भारतीय शिक्षा व्यवस्था की दिशा हीं बदल दी। पश्चिम के धर्म एवं संस्कृति से युक्त एक समाज के निर्माण की परिकल्पना के साथ यह निरंतर प्रयास चलता रहा कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो। एक ऐसा वर्ग जो शक्ल से भारतीय एवं अक्ल से ब्रिटिश हो। 1854 ई॰ का वुड का घोशणा पत्र जिसे भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा (Magna Charta of Education in India) कहा गया। यह आदेश पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास का चरम बिन्दु है जो कुछ उससे पहले हुआ; वह उसकी ओर संकेत करता है; और जो कुछ उसके बाद हुआ, वह उससे निकला है। इस आदेश पत्र के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित हुए। सन् 1855 के अंत तक प्रत्येक प्रांत में 'लोक शिक्षा विभाग' की स्थापना हो गई। 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी के शासन को समाप्त करके इंग्लैंड की रानी बिक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोशित किया। 1880 ई॰ में लार्ड रिपन ने 1882 ई॰ में 'भारतीय शिक्षा आयोग' (Indian Education Commission) की नियुक्ति की। इस आयोग का अध्यक्ष विलियम हण्टर थे। इस आयोग ने खासकर प्राथमिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण के लिए तमाम सुझाव दिये साथ हीं शिक्षा के अन्य स्तरों के लिए भी सरकार ने पहल किया।

ब्रिटिश हुकूमत में शिक्षा की प्रगति की समीक्षा करते समय लार्ड कर्जन के सार्थक प्रयास, सुधार सम्बन्धी पहल को भी उद्धृत करना होगा। चाहे सेडलर आयोग की नियुक्ति हो या राष्ट्रीय आंदोलन (स्वतंत्रता के लिए आंदोलन) के दौर में श्रीमति एनी बेसेंट का साकारात्मक विचार भारतीय शिक्षा की प्रगति एवं परिवर्तित स्वरूप की व्यवस्था करता है। स्वतंत्रता के पूर्व कई कमिटियों का गठन जैसे - हर्टाग समिति, वुड-एक्ट रिपोर्ट, वर्धा शिक्षा योजना, जाकिर हुसैन समिति और सार्जेण्ट-रिपोर्ट (1944 ई॰) ने शिक्षा के सम्पूर्ण तस्वीर को बदलने के दिशा में एक धनात्मक प्रयास दिखता है। ऐतिहासिक अवलोकन एवं विश्लेशण करते वक्त इन सभी शिक्षा आयोगों या शिक्षा समितियों के अनुशंसाओं एवं विचारों का तटस्थ मूल्यांकन करना होगा तभी आधुनिक भारत में शिक्षा की स्थिति एवं प्रगति का आकलन किया जा सकेगा। प्रस्तुत आलेख में उपरोक्त तथ्यों का विश्लेशण किया गया है ताकि शिक्षा की वास्तविक प्रगति एवं स्थिति को उद्घृत किया जा सके।

प्रारंभिक स्थिति

पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्कों की दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप की विजय के कारण भारत और यूरोप के मध्य प्राचीन स्थल मार्ग अवरूद्ध हो गए। इससे यूरोप के व्यापारियों को चिंतित देखकर वहाँ के नाविकों ने भारत के लिए जलमार्ग खोजने का बीड़ा उठाया। इस कार्य का श्रेय पुर्तगाल नाविक वास्कोडिगामा (टेंबव.क्म.ळंउ) को प्राप्त हुआ। उसने 27 मई 1498 को भारत के पूर्वी तट पर पहुँचकर कालीकट के प्रसिद्ध बंदरगाह में अपने जहाज का लंगर डालकर खड़ा किया।

इस नवीन जल मार्ग की खोज के फलस्वरूप यूरोप के व्यापारियों का भारत में आगमन हुआ। आरंभ में उनकी रूचि केवल व्यापार में थीं। किन्तु बाद में शिक्षा व्यवस्था को अपने नियंत्रण में कर लिया। डा॰ डी॰ ओ॰ ऐलेन के शब्दों में- "शिक्षा संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें अपने धार्मिक सिद्धांतों से अवगत कराने का अवसर प्रदान किया।"

मिशनरियों ने भारत के विभिन्न स्थानों में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की और उनमें पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरंभ किया। इसलिए मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है। जहाँ डच मिशनरियों ने चिनसुरा, नागापटम और विमलीपटम में कुछ स्कूलों का निर्माण किया। वहीं डेन मिशनरियों ने तंजौर, सीरामपुर, त्रिचरापल्ली, और फोर्ट सेण्ट डेविड में प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण किया। इसी तरह फांसीसी मिशनरियों ने माही, यनाम, कारीकल, पांडिचेरी और चन्द्र नगर में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किये। पुर्तगालियों ने गोवा, डामन, ड्यू, बेसीन, हुगली, कोचीन और चटगाँव में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किये। अंग्रेज मिशनरियों की बात करें तो इनका केन्द्र बंगाल था जहाँ इनलोगों ने काफी स्कूल तथा अन्य शिक्षण संस्थान स्थापित किये। यह वह दौर था जहाँ से औपचारिक शिक्षा के स्वरूप तथा प्रकृति में काफी परिवर्तन आया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को रानी एलिजाबेथ प्रथम से व्यापार करने हेतु आज्ञापत्र प्राप्त हुआ था। कम्पनी ने शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करना प्रारंभ किया। सन् 1765 ई॰ में कुछ धर्मार्थ विद्यालयों (Charity School) की स्थापना फिर 1781 ई॰ में जब वारेन हेस्टिंग्स; प्रथम गर्वनर जनरल ने कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना 1791 ई॰ में जोनाथन डंकन (Jonathan Duncan) ने किया। एक तरह से ब्रिटिश हुकुमत ने हिन्दूओं एवं मुसलमानों को संतुष्ट करने हेतु इस तरह की पहल की ताकि उनके विश्वास को जीता जा सके।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना लार्ड डलहौजी द्वारा सन् 1800 में तथा पूना संस्कृत कॉलेज की स्थापना सन् 1818 ई॰ में एल्फिन्स्टन ने किया। इन संस्थानों की स्थापना जन समूह का ध्यान भटकाने के लिए भी किया गया था।

1813 का आज्ञा पत्र

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 'आज्ञा-पत्र' का प्रत्येक 20 वर्ष के पश्चात् ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पुनरावर्तन किया जाता था। सन् 1813 के 'आज्ञा पत्र' में अंग्रांकित धारा को जोड़कर भारत में शिक्षा-प्रसार का उत्तरदायित्व कम्पनी के उपर रखा गया - साहित्य के पुनरूद्धार और समून्नति के लिए भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए और भारत के ब्रिटिश प्रदेशों के निवासियों में विद्वानों के ज्ञान का प्रसार एवं विकास करने के लिए प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रूपये की धनराशि पृथक् रखी जायेगी और व्यय की जायेगी।

"1813 के आज्ञा पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।" इस आज्ञा पत्र की 43 वीं धारा ने भारतीयों की शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी पर रखा और उसे उनकी शिक्षा पर प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रूपये की धनराशि व्यय करने का आदेश दिया। लेकिन इस आज्ञा पत्र में एक लाख रूपये का प्रावधान तथा इस दिशा में कम्पनी के रवैये ने प्राच्य पाश्चात्य विवाद (Oriental-Occidental-Controversy) को जन्म दिया। प्राच्यवादियों में कम्पनी के पुराने और अनुभवी कर्मचारी थे। इसमें सर्वप्रथम स्थान वारेन हेस्टिंग्स और जानेपन डंकन का था जिन्होंने कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज की सृष्टि करके प्राच्यवादी नीति के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। पाश्चात्यवादियों में कम्पनी के नवयुवक कर्मचारी तथा मिशनरी थे। पाश्चात्यवादी भारतभूमि पर यूरोपीय ज्ञान और विज्ञानों का समर्थन कर रहे थे। यह प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी विवाद 1934 ई॰ तक चलता रहा।

मेकाले का विवरण पत्र 1835 (MACAULAY's MINUTE 1835)

10 जून 1834 को लार्ड मेकाले गर्वनर जनरल के कौंसिल के 'कानूनी सदस्य' के रूप में भारत आया। उस समय 'प्राच्य-पाश्चात्य' विवाद उग्रतम रूप धारण कर चुका था। तत्कालीन गर्वनर जनरल बेंटिक ने मेकाले को बंगाल की 'लोक-शिक्षा समिति' का सभापति नियुक्त किया तथा प्राच्यवादी एवं पाश्चात्यवादी विवाद को सुलझाने की जिम्मेवारी भी सौंपी। मेकाले ने सर्वप्रथम आज्ञापत्र 1813 की धारा 43 वीं का सूक्ष्म अध्ययन किया। तत्पश्चात् उसने अपना विवरण पत्र दिया। मेकाले ने भारतीय भाषाओं के अध्ययन को पूर्णतया निरर्थक बताते हुए लिखा - "भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान कोष का अभाव है और वे इतनी अविकसित तथा गँवारू हैं कि जब तक उनको बाह्य भण्डार से सम्पन्न नहीं किया जायेगा, तब तक उनसे किसी भी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का सरलता से अनुवाद न हो सकेगा।"

मेकाले ने अरबी फारसी और संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी को कहीं अधिक उच्च स्थान देते हुए लिखा - "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी का भारत और अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्त्व नहीं है।"

उपरोक्त तर्कों के आधार पर मेकाले ने यह मत व्यक्त किया कि प्राच्य शिक्षा की संस्थाओं पर धन व्यय करना मूर्खता है और इनको बंद कर देना चाहिए। इनके स्थान पर अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। मेकाले ने अंग्रेजी साहित्य को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उसके अध्ययन की अनिवार्यता पर बल दिया। उसका विवरण पत्र भारत में अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था की स्थापना का सूत्रधार था। लार्ड विलियम बेंटिक ने मेकाले के विवरण-पत्र में वर्णित सभी विचारों का स्वागत एवं अनुमोदन किया।

मेकाले का निस्यंदन सिद्धांत (Filteration Theory of Macaulay)

मेकाले का निस्यंदन सिद्धांत इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का नियोजन केवल उच्च वर्गों के लिए किया जाय क्योंकि शिक्षा इन वर्गों के व्यक्तियों से छन-छन कर स्वयं हीं निम्न वर्गों तक पहुँचेगी। यानी शिक्षा उपर सक प्रवेश करके, जन साधारण तक पहुँचेगी। ज्ञान समाज के उच्च वर्ग से बूँद-बूँद करके नीचे तक जायेगी।

निस्यंदन सिद्धांत के समर्थकों में ईसाई-मिशनरी, बम्बई के गर्वनर की कौंसिल का सदस्य फांसिस वार्डेन, कम्पनी के संचालक और मेकाले। ईसाई मिशनरियाँ ये चाहती थी कि मेकाले के निस्यंदन सिद्धांत का प्रयोग करके भारत के उच्च वर्ग के हिन्दूओं को अंग्रेजी शिक्षा देकर ईसाई धर्म का अवलम्बी बना लिया जाय तथा उच्च वर्ग से निम्न वर्ग तक जानेवाली शिक्षा उसे धर्मपरिवर्तन के लिए अभिप्रेरित करेगी। कम्पनी के संचालकों ने 29 सितम्बर 1830 के अपने 'आदेश पत्र' में मद्रास के गर्वनर को यह परामर्श दिया था कि शिक्षा समाज के प्रभावी वर्ग को पहले दिया जाय। मेकाले के इस सिद्धांत से इस दृष्टिकोण को बल मिला।

भारत के तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड ऑकलैण्ड ने 'निस्यंदन सिद्धांत' को शिक्षा की सरकारी नीति के रूप में स्वीकार किया और 1839 के अपने विवरण पत्र में घोषणा की कि सरकार के प्रयास, समाज के उन उच्च वर्गों में उच्च शिक्षा का प्रसार करने तक सीमित रहने चाहिए, जिनके पास अध्ययन के लिए अवकाश है और जिनकी संस्कृति छन-छन कर जनसाधारण तक पहुँचेगी। भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1833 से 1853 की अवधि को शिक्षा के अंग्रेजीकरण की अवधि कहा जाता है। बेंटिक के विज्ञप्ति ने अंग्रेजी माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार को सरकार की शिक्षा नीति बताया।

शिक्षा निस्यंदन सिद्धांत का बोल वाला रहा, जन शिक्षा असंभव गिनी गई एवं देशी शिक्षा कुचल दी गई, पाश्चात्य शिक्षा का आदर बढ़ा, प्राच्य विद्या निरर्थक मानी गई, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हुआ, सांस्कृतिक एवं लोकभाषाएँ निकम्मी ठहराई गई। कुछ इसी तरह का शैक्षिक माहौल 1853 ई॰ तक रहा।

वुड का आदेश पत्र 1854 (Wood's Despatch, 1854)

सन् 1853 ई॰ में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 'आज्ञा पत्र' के पुनः नवीनीकरण का अवसर आया। कम्पनी के संचालकों ने 19 जुलाई 1854 को एक आदेश पत्र में अपनी भारतीय शिक्षा की नीति का प्रकाशन किया। उस समय सर चार्ल्स वुड कम्पनी के बोर्ड ऑफ कंट्रोल का सभापति था। उन्हीं के नाम पर आदेश पत्र का नाम वुड का आदेश पत्र (Wood's Despatch) कहा गया। इस आदेश पत्र की कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार थीं -

1. शिक्षा का उतरदायित्व - शिक्षा का उतरदायित्व कंपनी पर होगा।
2. शिक्षा का उद्देश्य -
   (i) भारतीयों में शिक्षा का प्रसार करके उनकी मानसिक तथा चारित्रिक उन्नति करना
   (ii) भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान से अवगत कराके उनकी भौतिक समृद्धि करना
   (iii) भारतीयों को राजपदों के लिए सुयोग्य वयक्ति बनाना और
   (iv) भारतीयों को अपने देश को समृद्धशाली बनाने में सहायता देना।
3. पाठ्यक्रम - के सन्दर्भ में कहा कि हम बलपूर्वक घोषित करते हैं कि हम भारत में जिस शिक्षा का प्रसार देखना चाहते हैं, वह है - यूरोपीय ज्ञान।
4. शिक्षा का माध्यम - इस सन्दर्भ में आदेश पत्र में कहा गया कि हम यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा और भारत की देशी भाषाओं की शिक्षा के माध्यम के रूप में साथ-साथ देखने ही आया करते हैं।

इसके साथ-साथ अन्य अनुशंसाओं में शिक्षा विभाग की स्थापना, विश्वविद्यालयों की स्थापन, क्रमबद्ध संस्थाओं की स्थापना, जन शिक्षा का विस्तार, सहायता अनुदान प्रणाली, अध्यापकों का प्रशिक्षण, स्त्री शिक्षा, मुस्लिम वर्ग की शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा इत्यादि के द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को एक नवीन स्वरूप प्रदान करने करने का प्रयास किया गया।

भारतीय शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन)

सन् 1858 ई॰ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कम्पनी के शासन को समाप्त करके इंग्लैण्ड की रानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। भारत में शिक्षा की प्रक्रिया वुड के आदेश पत्र से निर्देशित होती रही तथा 1880 ई॰ तक उन्हीं अनुशंसाओं के अनुसार संचालित होती रही। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने सन् 1880 ई॰ लार्ड रिपन को भारत के गर्वनर जेनरल के रूप में मनोनीत किया। लार्ड रिपन ने सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में 1882 ई॰ में 'भारतीय शिक्षा आयोग' की नियुक्ति की। इसे हंटर कमीशन भी कहा जाता है। इस शिक्षा आयोग ने खासकर प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु क्रांतिकारी सुझाव दिये। इस आयोग ने भारत में तत्कालीन शिक्षा की स्थिति पर चिंता वयक्त करते हुए प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य, उसका प्रशासन, वित्तीय स्थिति, पाठ्यक्रम, शिक्षा स्तर के उन्नयन पर प्रकाश डालते हुए सुधारात्मक अनुशंसायें की साथ हीं सरकार की नीति के सन्दर्भ में कहा कि - देश की वर्तमान परिस्थितियों में यह वांछनीय है कि जनसाधारण की प्राथमिक शिक्षा और उसकी व्यवस्था, प्रसार एवं उन्नति को शिक्षा प्रणाली का वह अंग घोषित किया जाय, जिसके प्रति अब राज्य की सतत् चेष्टाएँ पहले से अधिक मात्रा में केन्द्रित की जानी चाहिए। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालयी शिक्षा,

विशिष्ट शिक्षा इत्यादि के सन्दर्भ में भी महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग की जाँच के फलस्वरूप भारत में महान शैक्षिक जागृति हुई और उसके मुख्य निर्णयों का 1902 तक भारत की शिक्षा नीति पर प्रभुत्व रहा।

कर्जन की शिक्षा सम्बन्धी नीति

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक शिक्षा के लिए अप्रगतिशील काल था। सन् 1898 ई॰ में लार्ड कर्जन गर्वनर जेनरल का कार्यभार संभाला। वह प्रतिभाषाली व्यक्ति, कुशल राजनीतिन और कर्त्तव्यपरायण शासक था। नुरूल्ला व नायक की टिप्पणी थी कि "कर्जन से श्रेष्ठतर मानसिक क्षमता का कोई वाइसराय भारत में उस समय तक कभी नहीं आया था।"

कर्जन ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन किया तो 1897 ई॰ से 1902 तक का समय प्रगतिशील शिक्षा के इतिहास में सबसे अधिक अप्रगतिशील था। विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम थी और विद्यालयों की संख्या भी बहुत कम हो गई थी। कर्जन ने यह उद्घोषित कया कि शिक्षा सुधार मेरी प्राथमिकता होगी। इस कार्य को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिलए कर्जन नं 1901 में 'शिमला शिक्षा सम्मेलन' का आयोजन किया। कर्जन के सभापतित्व में शिमला सम्मेलन 15 दिन हुआ औ उसमें शिक्षा सम्बन्धी 150 प्रस्तावों को सर्वसम्मति से पारित किया गया। कर्जन ने 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' 1902 तथा 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' 1904 का लागू कर शिक्षा के क्षेत्र में खासकर विश्वविद्यालय शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन लाने का संकल्प लिया। शिक्षा में संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार की वृद्धि का आभाव दिख रहा था। वह उच्च शिक्षा के उन्नयन के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया। हालाँकि उसकी भी मंशा अंग्रजी शिक्षा को हीं मजबूत करना था परन्तु भारतीय भाषाओं को भी सम्मानित स्थान देकर भारतीयों के असंताष को कम करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कर्जन का प्रयास सराहनीय था।

राष्ट्रीय आंदोलन का शिक्षा पर प्रभाव (1905-1921)

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व हीं भारतवासियों के हृदय में स्वतंत्रता का अंकुर प्रस्पुटित हो गया था। सन् 1885 ई॰ में 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना ने उसे राष्ट्रीयता के जल से सींचकर परिपल्लवित करना आरंभ किया।

1905 में बंगाल के विभाजन ने राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग को गति प्रदान की। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन की गति तीव्र होती गई, वैसे-वैसे शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की माँग बढ़ती गई और भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण के विरूद्ध देशप्रेमियों की आवाज भारत के कोने-कोने में गूँजने लगी। इस शिक्षा के जबरदस्त निंदक थे - महात्मा गाँधी और एनी बेसेन्ट। श्रीमति एनी बेसेन्ट ने भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण की निंदा और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग करते हुए कहा - "राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय चरित्र को अधिक शीघ्रता और अधिक निश्चित रूप में निर्बल बनाने के लिए इससे अधिक उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता है कि बालकों की शिक्षा पर विदेशी प्रभावों और विदेशी आदर्शों का प्रभुत्व हो।" उनका कहना था कि - "भारतीय शिक्षा - भारतवासियों द्वारा, नियंत्रित, भारतवासियों द्वारा निर्मित और भारतवासियों द्वारा संचालित की जानी चाहिए।" राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों को स्पष्ट करते हुए श्रीमति बेसेन्ट का कहना था कि भारतीय शिक्षा को भक्ति, ज्ञान एवं नैतिकता के भारतीय आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए और उसमें भारतीय धार्मिक भावना का समावेश होना चाहिए।

शिक्षा के महत्वपूर्ण अभिलेख (Important Documents of Education) 1905-1929

1904 के शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में लार्ड कर्जन ने प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना सरकार का प्रमुख कर्तव्य बताया था। सम्राट जार्ज पंचम ने 1911 ई॰ मे अपने भारत भ्रमण के क्रम में 50 लाख रूपये की अतिरिक्त राशि प्राथमिक शिक्षा के समृद्धि के लिए व्यय करने का आदेश देकर, इस देश की जनसाधारण की शिक्षा में अपनी रूचि व्यक्त की तथा जनता को संतुष्ट करने का प्रयास किया। इससे भी अधिक रूचि सम्राट जार्ज पंचम ने 6 फरवरी सन् 1912 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रागण में भारत की जनता को अपना संदेश देकर व्यक्त की - "मेरी इच्छा है कि सम्पूर्ण देश में स्कूलों और कॉलेजों का जाल बिछ जाय, जहाँ से उद्योगों, कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायों में कुछ करके दिखाने वाले राजभक्त, निर्भीक और उपयोगी नागरिक, शिक्षा प्राप्त करके निकलें।"

शैक्षिक प्रगति के क्रम में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917-1919) की नियुक्ति डा॰ माइकल सैडलर की अध्यक्षता में हुई जिसमें कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर विभाग (Post-graduate Department) की स्थापना की अनुशंसा की गई। आगे चलकर यहाँ स्नातकोत्तर की पढ़ाई प्रारंभ हुई।

सन् 1919 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारत के शासन स्वरूप को रूपांतरित करने के विचार से "भारत सरकार अधिनियम के अनुसार द्वैध शासन पद्धति (Dyarchy)" का सूत्रपात किया। भारतीयों ने इस नीति का घोर विरोध किया। इस विरोध के कारणों की जाँच के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 8 नवम्बर सन् 1927 को साइमन कमीशन की नियुक्ति की। इधर भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के लिए आंदोलन चल रहा था और देश पर अंग्रेजों द्वारा थोपी जाने वाली विदेशी शिक्षा पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना की जा रही थी। इसकी जाँच के लिए फिलिप हर्टाग (Sir Philip Hartag) की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गई। 'हर्टाग समिति' ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करके सन् 1929 में अपने प्रतिवेदन को 'कमीशन' के समक्ष प्रस्तुत किया। इस समिति ने प्राथमिक शिक्षा की उन्नति-तरक्की

तथा इसमें हो रहे 'अपव्यय' व अवरोधन पर विशेष प्रकाश डाला। हर्टाग समिति के प्रतिवेदन ने इस देश में अपने जीवन के अंतीम दो दशकों में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति का बहुत कुछ निर्माण किया। हर्टाग समिति के सिफारिश के फलस्वरूप भारत सरकार ने सन् 1935 में केन्द्रीय-शिक्षा सलाहकार बोर्ड (CABE) की पुन: स्थापना की। इसके पश्चात् इंग्लैण्ड के दो प्रमुख शिक्षाशास्त्री एस॰ एच॰ वुड तथा ए॰ एबट भारत आये। इनदोनों ने भारत के कुछ इलाकों जैसे दिल्ली, पंजाब, और संयुक्त प्रांत का भ्रमण करके भारतीय शिक्षा का अध्ययन किया तथा 1937 में अपनी रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रेषित किया। इस रिपोर्ट का शीर्षक – **"Vocational Education in India with a Section on General Education and Administration.'** दिया। इस रिपोर्ट को वुड-एबट रिपोर्ट के नाम से जानते हैं। इसमें खासकर व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया। इस प्रतिवेदन की सिफारिशों के फलस्वरूप भारत में कुछ औद्योगिक एवं व्यावसायिक विद्यालय खोले गए। इनके साथ-साथ; देश में सर्वप्रथम बहुउद्देशीय विद्यालय अस्तित्व में आया। यह संस्था है – दिल्ली पॉलीटेक्नीक।

वर्धा शिक्षा योजना (Wardha Scheme of Education)

1937 में गाँधी जी वर्धा में थे। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन गाँधी जी के सभापतित्व में किया गया। सम्मेलन को ही वर्धा शिक्षा सम्मेलन भी कहा जाता है। इस सम्मेलन में राष्ट्रपिता ने बुनियादी शिक्षा यानी नई तालीम की बात की। शिक्षा रोजगार सृजन करे, प्रत्येक हाथ को काम मिले। इस संदर्भ में देश की तत्कालीन शिक्षा पद्धति से गाँधी जी असंतुष्ट दिखे तथा उन्होंने सम्मेलन में राष्ट्र के सभी बच्चों को 7 वर्ष तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही। पाठ्यक्रम में हस्त शिल्प एवं उद्योग आधारित शिक्षा का समावेश किया जाय। इसे उन्होंने नई तालीम की संज्ञा दी। उन्होंने शिक्षा को क्रिया प्रधान बनाने की वकालत की। गाँधी जी के शब्दों में – बालक के शरीर के अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग उसके मस्तिश्क को विकसित करने की सर्वोतम और शीघ्रतम विधि है। गाँधी जी ने बालक प्रधान शिक्षा (बैपसक ब्मदजतमक म्कनबंजपवद) की भी बात की थी। हस्त शिल्प की शिक्षा के सन्दर्भ में गाँधी जी ने कहा – "साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अत: मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा आरंभ करना चाहता हूँ।" एक तरह से गाँधी जी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या का समाधान चाहते थे। वर्धा योजना को भारत की निरक्षरता की महान समस्या का समाधान करने के लिए अब तक किए जाने वाले प्रयासों में सबसे साहसी और सम्पूर्ण माना जा सकता है। बुनियादी शिक्षा के माध्यम से गाँधी जी ने सामाजिक शिक्षा के लिए आधार प्रदान किया जहाँ बच्चों का शारीरिक प्रशिक्षण के साथ-साथ मानसिक विकास भी होगा। बच्चे श्रम का सम्मान करना सिखेंगे। बेसिक शिक्षा की योजना-शिक्षा के क्षेत्र में गाँधी जी की अंतिम मन: सृष्टि है।

ब्रिटिश हुकुमत में शिक्षा विकास का अंतीम प्रयास सन् 1944 ई॰ में हुआ जब सार्जेण्ट-रिपोर्ट देश के समक्ष आया। सार्जेण्ट-रिपोर्ट 12 भागों में विभाजित था। इस रिपोर्ट में पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक को बेहतर बनाने हेतु इसमें सुझाव प्रस्तुत किया गया है। इस योजना का उद्देश्य कम से कम 40 वर्ष की अवधि में भारत में शैक्षिक योग्यताओं के उसी स्तर का निर्माण करना है, जिस पर इंग्लैण्ड पहुँच चुका था।

इस प्रकार आधुनिक भारत में ईसाई मिशनरियों के आगमन के पश्चात् भारत की शैक्षिक व्यवस्था जो परिवर्तन प्रारंभ हुआ वह निरंतर कम्पनी के शासन तथा ब्रिटिश हुकुमत में स्वतंत्रता की प्राप्ति तक चलती रही। ईसाई मिशनरी या ब्रिटिश फरमान का यहीं उद्देश्य रहा कि भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया जाय। यहाँ के जनमानस को अंग्रेजी संस्कार से संस्कारित किया जाय ताकि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जाय जो ब्रिटिश हुकुमत की तरफदारी करें। अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करना, अंग्रेजी साहित्य को समृद्ध बनाना तथा भारतीय भाषा एवं साहित्य को उपेक्षित रखना। शिक्षा के प्रचार प्रसार के कम में अपने छुपे हुए उद्देश्य धर्म का प्रचार करना इस कार्य में बहुत हद तक सफल रहे। परिणाम देश को गुलामी के दौर से गुजरना पड़ा। अंतत: हम यह जरूर कहेंगे कि विदेशियों द्वारा भारत में विदेशी शिक्षा (अंग्रेजी शिक्षा) का बीजारोपण किया गया जिसके कुछ सार्थक परिणाम भी आये लेकिन शैक्षिक रूप से समृद्ध भारत ने अपने गौरवशाली अतीत को खोया जिसका परिणाम हमलोग आज तक भुगत रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार डा॰ आनंद, आधुनिक भारत का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, **ISBN- 9789383091895**
2. आधुनिक भारत का इतिहास, एन॰ सी॰ ई॰ आर॰ टी॰ द्वारा प्रकाशित
3. पाण्डेय धनपति, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, **ISBN- 9788120828834**
4. पाठक, पी॰ डी॰, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, **ISBN- 81-7457-047-0**
5. ग्रोवर बी॰ एस॰, मेहता अलका, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस॰ चन्द
6. चन्द्र विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरीयंट ब्लैकस्वॉन
7. गुप्ता डा॰ मोहन लाल, आधुनिक भारत का इतिहास, सुभदा प्रकाशन जोधपुर]**ASIN- BO88ZSGY94**
8. गौतम पी॰ एल॰, आधुनिक भारत का इतिहास एवं विरासत (1757-1964 ई॰), एटलांटिक प्रकाशन
9. खत्री, हरीश कुमार, आधुनिक भारत का इतिहास (आर्थिक एवं राजनीतिक), कैलाश पुस्तक सदन भोपाल
10. रावत प्यारे लाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास, भारत पब्लिकेशन, आगरा
11. सिंह डा॰ नीलिमा, भारतीय शिक्षा का इतिहास, बुक ओशियन पब्लिकेशन, वाराणसी

बिहार के क्षेत्रीय इतिहास लेखन की अवधारणा: एक अध्ययन

कुंदन कुमार पासवान

शोधार्थी, इतिहास विभाग, यूजीसी नेट- 2019, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

बिहार में इतिहास-लेखन की अपनी परम्परा रही है। बिहार की धरती हमेशा गौरवशाली एवं साधन संपन्न रही है। बिहार की धरती हमेशा गौरवशाली एवं साधन संपन्न रही है। बिहार अपनी साधन सम्पन्नता के कारण भारत में ही नहीं विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व के देशों में खासकर एशियाई देश बिहार की धरती पर आकर इसकी प्रचुर साधन सम्पन्नता से फायदा उठाने का प्रयास करते रहे हैं। जहाँ प्राचीनकाल में अनेक देश यहाँ के बौद्धिक आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान हुए वहीं मध्यकाल में राजनीतिक-धार्मिक कारणों की पूर्ति हेतु विदेशियों को बिहार की धरती पर आने के लिए प्रेरित किया।

प्रस्तावना

बिहार यद्यपि बंगाल और उत्तर प्रदेश के बीच दबा रहा, परन्तु बिहार हमेशा से अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखने में सफल रहा है। मुसलमानों के शासनकाल में भी बिहार का अपना एक अलग अस्तित्व रहा और यह पूर्वी हिन्दुस्तान की कुंजी माना जाता था। बंगाल और बिहार प्रान्त चूंकि मुगल काल तथा उसके बाद भी भारतीय राजनीति में अपना सक्रिया भूमिका अदा करते रहे हैं। इसलिए बंगाल और बिहार के ऐतिहासिक साहित्य की काफी आवश्यकता है। लेकिन बंगाल क्रमिक इतिहास पर्सिअन में रियाज उस सलातीन के पहले नहीं था। यहाँ तक कि हम लोगों के पास कुछ ही ऐतिहासिक जीवनियाँ या स्मारक है। जहांगीर के शासनकाल के दौरान बंगाल का इतिहास बहारिस्तान-ए-गाइबी में मिलता है जो शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान लिखा गया। जदुनाथ सरकार ने भी इस ऐतिहासिक उपेक्षा का वर्णन किया है।

भारत एक ऐसा देश है जो युगों तक विकसित होता रहा है और जिसने एक सुदीर्घ सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखी है। इसके इतिहास के हर युग ने आज तक अपनी विरासत छोड़ी है। '8वीं सदी तक भारत का इतिहास' नामक प्रस्तुत पाठ्य-विषय के अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि भारत में जन-समुदायों ने प्राचीनतम संस्कृतियां कैसे, कब और कहां विकसित कीं, किस प्रकार उन्होंने कृषि और पशु-पालन संबंधी कार्य आरंभ किए जिसके फलस्वरूप जीवन सुरक्षित और व्यवस्थित बन पाया। जैसा कि एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार का कहना है, ''प्राचीन इतिहास का अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीयों ने प्राकृतिक संसाधनों का अन्वेषण और उपयोग किया और किस प्रकार उन्होंने अपनी जीविका के साधनों का निर्माण किया, कैसे उन्होंने भोजन, आश्रय और परिवहन के प्रबंध किए। कैसे उन्होंने कृषि, कताई, बुनाई, धतु-निर्माण तथा इस प्रकार के अन्य कार्य प्रारंभ किए और किस प्रकार उन्होंने जंगलों को सापफ किया, ग्रामों, नगरों और अंततः विशाल राज्यों की स्थापना की।

चार्ल्स ग्रांट के नेतृत्व वाले ईसाई धर्म-प्रचारक और जेम्स मिल जैसे उपयोगितावादी भारत के संबंध में आरंभिक प्राच्यविदों से सहमत नहीं थे। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने भारतीयों को बर्बर, विवेकहीन और राजनीतिक मूल्यों से सर्वथा असंबद्ध चित्रित करते हुए एक प्रकार की ''भारत-भीति'' (Indophobia) को जन्म दिया। उनके अनुसार भारतीय समाज अप्रगतिशील और अवरुद्ध था। विंसेंट ए. स्मिथ ब्रिटिश प्रशासक इतिहासकारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहासकार हुआ है। उसने भारतीय इतिहास का सुव्यवस्थित सर्वेक्षण किया। उसका विश्वास था कि भारत में निरंकुश शासकों की लंबी परंपरा रही है और उसने प्राचीन भारतीय राजाओं की निष्ठुरता का वर्णन अतिरंजना में किया है। वह कौटिल्य की दंड-संहिता को 'अतिशय कठोर' मानता था।

इस प्रकार आरंभिक भारत के संबंध में ब्रिटिश विद्वानों का नजरिया एक जैसा नहीं था। उन्होंने जो भी लिखा, औपनिवेशिक शासन और उसके द्वारा भारतीय संसाध्नों के दोहन के उद्देश्य से लिखा और इस प्रक्रिया में ऐतिहासिक साक्ष्यों को विकृत कर दिया।

आर्य-प्रजाति के मिथक ने अनिवार्य रूप से राष्ट्रवादी नेताओं के साथ-साथ इतिहासकारों की कल्पनाशक्ति को भी झकझोरा। यद्यपि आरंभिक प्राच्यविदों ने संस्कृत और कुछ पूर्वी यूरोपीय भाषाओं में संबंध् स्थापित किया था। किंतु अब के भारतीय विद्वान भारत को इंडो-आर्यन का पलना (हिंडोला) मानते थे और उनके अनुसार इंडो-आर्य मानव-सभ्यता की आद्यतम स्थितियां थे। हड़प्पा सभ्यता की खोज ने ऐसे विद्वानों के दावे के समक्ष भारी चुनौती प्रस्तुत की। लेकिन आर. एल. मित्रा, आर. जी. भंडारकर और वी. के. राजवाड़े ने आमतौर पर एक विवेकसम्मत रुख अपनाया। वे मूलतः समाज-सुधारक थे और इस समाज-सुधार तथा प्राचीन भारतीय मूलग्रंथों के अध्ययन की पृष्ठभूमि में उनके अंशदान काफी महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ, भंडारकर ने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन और जातिप्रथा एवं बाल-विवाह जैसी बुराइयों की भर्त्सना की।

परन्तु, भारतीय ऐतिहासिक विद्वान जो आरंभ में समाज-सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित हुए थे, धीरे-धीरे साम्राज्यवादी-विरोधी हो गए। 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में आई परिवर्तन की लहर और उग्र लड़ाकू क्रांतिकारी राष्ट्रवाद (आतंकवादी-राष्ट्रवाद) के अभ्युदय ने ऐतिहासिक लेखन पर गहरी छाप छोड़ी। ऐतिहासिक लेखन में क्रमिक परिवर्त्तन अंशत: इतिहास के अतीत के संबंध में साम्राज्यवादी विचारों के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम था और अंशत: राष्ट्रीय सम्मान के निर्माण के प्रयत्नों का परिणाम। हिन्दू संस्कृति को अन्य एशियाई संस्कृतियों के अग्रदूत के रूप में देखा गया। भारतीय इतिहास के प्राचीनकाल को सामाजिक शांति, सामंजस्य और समृद्धि का प्रतीक माना गया। गुप्तकाल को 'स्वर्णयुग' के नाम से विभूषित किया गया।

राष्ट्रीय इतिहासकार राजनीतिक सिद्धांत और व्यवहार के क्षेत्रा में भी हिन्दुओं को सर्वोच्च उपलब्धियों से सम्पन्न मानने लगे। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की खोज और आगे चलकर 1909 में उसके प्रकाशन के बाद विस्मार्क के सामाजिक विधयन तथा कौटिल्य की सामाजिक-आर्थिक नीतियों में तुलना की जाने लगी। प्राचीन भारत के जनजातीय कुलीन तंत्र को एथेंस के प्रजातंत्र के समकक्ष माना गया। इसी तरह ब्रिटेन के सांविधनिक राजतंत्र और कौटिल्य के राजतंत्र में समानताएं बतलाई गई। इन सारे लेखनों से यह प्रमाणित हो गया कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रजातांत्रिक सरकार की परंपरा की जड़ें गहरी थीं। इन ऐतिहासिक रचनाओं ने स्वतंत्राता-संग्राम की धर को और पैना कर दिया। उन्होंने अतीत की विषमताओं और कमजोरियों की बकायदा उपेक्षा कर प्राचीन काल को उजागर किया।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों जिनमें के. पी. जायसवाल प्रमुख हैं, ने एक ओर जहां प्राचीन भारत को महिमा-मंडित किया वहीं दूसरी ओर आरंभिक भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति उनका नजरिया ब्रिटिश इतिहासकारों से कम अनैतिहासिक नहीं रहा। उन्होंने अपने ज्ञान को प्राचीन मूलग्रंथों के छिटपुट अनुकूल संदर्भो पर आधरित किया और उसी पर संपूर्ण प्राचीन काल का सामान्यीकरण कर दिया। एक अर्थ में उनकी रचनाएं विवेकानंद, दयानंद और अन्य पुनरुत्थानवादियों से प्रभावित थी। हिन्दू पुनरुत्थानवाद का एक अर्थ मिल के काल-निर्धरण की स्वीकृति भी था जो इस गलत आधार-वाक्य पर आधरित था कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों का आशय उन सबको महिमामंडित करना था जो उन्हें हिन्दू भारत प्रतीत होता था। लेकिन इन रचनाओं ने इस तथ्य की अनदेखी कर दी कि इंडो-ग्रीक, शक, कुषाण, मौर्य हिन्दू नहीं थे।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों की रचनाओं ने भारतीय इतिहास का कोई वैज्ञानिक काल-निर्धरण विकसित नहीं किया। वे मिल के कालानुक्रमिक व्यवस्था से बंधे रहे और भारतीय संस्कृति के सामाजिक स्वरूप को अनदेखा कर दिया। इसके फलस्वरूप एक ऐसे साम्प्रदायिक एकांगीद्ध इतिहास-लेखन का जन्म हुआ जिसमें काल-निर्धारण के बौद्धिक आधर की संभावना ही मिट गई।

हाल के विद्वानों ने अपना ध्यान पारंपरिक, राजनीतिक, राजवंशीय इतिहास से हटाकर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन पर केन्द्रित किया है और इस तरह किसी काल के राजनीतिक घटनाक्रम पर सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के प्रभाव को मान्यता प्रदान की है। उन्होंने अपने अध्ययन-विश्लेषण को पुरातात्विक और मानव शास्त्रीय साक्ष्यों से सम्पृक्त कर आरंभिक भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन और निरंतरता के तत्त्व देखने की चेष्टा की है। इस दिशा में डी. डी. कौशांबी ने अपने 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' (भारतीय इतिहास के अध्ययन की प्रस्तावना) तथा 'दि कल्चर ऐंड सिविलाइज़ेशन ऑफ एनशेंट इंडिया': ए हिस्टॉरिकल आउटलाइन' (प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता: एक ऐतिहासिक रूपरेखा) में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आरंभिक भारतीय इतिहास के काल-निर्धारण के सर्वेक्षण के प्रयास में कौशांबी मानते हैं कि समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति उत्पादन की शक्तियों और संबंधों के विकास क अभिन्न अंग हैं। अपने मत को इस सिद्धांत पर आधरित करते हुए यह तर्क दिया जा सकता है कि मध्य युग का प्रवेश इस्लाम के आगमन के साथ नहीं हुआ है बल्कि यह ईसा की छठी सदी में गुप्तवंश के शासन के अवसान के बाद भारत में कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम का प्रारंभ है। शाही गुप्तवंश के पतन का परिणाम था सामंती (राज्यों) का अभ्युदय। व्यापार की मात्रा में कमी आई और अपेक्षाकृत सीमित ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जिसने क्रमश: सामंती कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और दासप्रथा को जन्म दिया। किसी केन्द्रीय नियंत्रण के अभाव में क्षेत्रीय सांस्कृतिक इकाइयां छोटी-छोटी रियासतों के रूप में उभरीं। इससे क्षेत्रीय भाषाओं, कला और वास्तुशिल्प को बढ़ावा दिया गया।

बिहार के क्षेत्रीय इतिहासलेखन की अवधारणा: एक अध्ययन हेतु हमें भारतीय इतिहास के विभिन्न स्रोतों पर निर्भर करना पड़ता है। यद्यपि हमारे पास किसी ऐतिहासिक इतिवृत्त (घटनाओं का क्रमानुसार ब्योरा, तारीख) तो नहीं है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीयों में इतिहास-बोध का अभाव था। साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त और पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा संपुष्ट सूचना से हमें प्राचीन काल की संपूर्ण तस्वीर बनाने में मदद मिलती है। प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निमाण के स्रोतों का अध्ययन तीन विस्तृत शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(1) साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोतों को मोटे तौर पर तीन मुख्य हिस्सों में बांटा जा सकता है:

(1) सामाजिक-आर्थिक धर्मग्रन्थ (2) धर्म-निरपेक्ष साहित्य और (3) ऐतिहासिक रचनाएं।

(1) सामाजिक-आर्थिक धर्मग्रन्थ: सामाजिक-आर्थिक धर्मग्रन्थ भी तीन वर्गों में बांटे जा सकते हैं (i) हिन्दू (ii) बौद्ध और (iii) जैन।

(i) हिन्दू धर्मग्रन्थ: कभी-कभी धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष साहित्य के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन हो जाता है। फिर भी प्रस्तुत विवेचन के क्रम में इन अपवादों की चर्चा की जाएगी। ऋग्वेद-कालीन आर्यों के इतिहास के पुनर्निर्माण का एकमात्र स्रोत है ऋग्वेद। परवर्त्ती वैदिक सभ्यता के इतिहास की खोज जिन धर्मग्रंथों में की जा सकती है उनमें मुख्य अग्रलिखित हैं: बाद के तीन वेद अर्थात् सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, ब्राह्मण जो सारे वेदों पर की गई टीकाएं हैं। आरण्यक और उपनिषद, जो रहस्यवादी और दार्शनिक साहित्य हैं सूत्र साहित्य, जो मुख्य रूप से हिंदू समाज के सामाजिक-आर्थिक नियमों, रिवाजों और लोकाचारों का वर्णन करते हैं। रामायण और महाभारत महाकाव्य (अंशत: धर्मिक और अंशत: धर्म-निरपेक्ष), जो ईसा की छठी शताब्दी पूर्व के हिन्दू समाज के विभिन्न पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं पुराण अंशत: धार्मिक और अंशत: धर्म-निरपेक्ष और स्मृति साहित्य, जो ईसा की छठी शताब्दी पूर्व के बाद के हैं और हिन्दू सामाजिक धार्मिक आचारों के वृत्तान्त होने के साथ-साथ कतिपय हिन्दू राजवंशों, मुख्यत: कुरु, नंद और मौर्य की वंश-तालिका प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में ईसा पूर्व छठी सदी के पहले के उत्तरी भारत और दक्कन का अपुष्ट कालक्रमिक राजनीतिक इतिहास भी मिलता है।

(ii) बाद्ध धर्मग्रंथ: बौद्ध और जैन साहित्य अधिक प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करते हैं जिनके आधर पर ईसा पूर्व छठी सदी से प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास का पता कुछ अपवादों को छोड़कर कमोबेश कालक्रमिक अध्ययन के प्रस्तुत विषय हेतु साक्ष्य के रूप में बौद्ध धर्म की महत्त्वपूर्ण रचनाएं निम्नलिखित हैं: 'त्रिपिटक' बौद्ध सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के सारे महत्त्वपूर्ण पक्षों को उजागर करते हैं। 'जातक', 'दिव्यवदान', 'ललितविस्तार', 'महावस्तु', 'महापरिनिब्बानसुत्त' श्रीलंका के पालिइतिवृत्त 'दीपवंश' और 'महावंश' इत्यादि मौर्य वंश के प्रथम शासक चंद्रगुप्त मौर्य के आरंभिक जीवनवृत्त और राज्यारोहण की सर्वाधिक प्रामाणिक रचनाएं है। अश्वघोष की महायान कृतियां जैसे 'बुद्धचरित', 'सौंदरनंद काव्य' (अंशत: धर्मिक और अंशत: धर्म-निरपेक्ष), 'व्रजसूची' इत्यादि कुषाणकालीन प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर मूल्यवान सामग्रियां प्रस्तुत करती है, एक अन्य महायानकृति 'मंजु-श्री मूलकल्प' (अंशत: धर्मिक और अंशत: धर्म-निरपेक्ष) गुप्त साम्राज्य के प्रथम निर्माता समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत गुणों पर पर्याप्त रोशनी डालती है।

(iii) जैन: निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण जैन रचनाएं जैसे 'द्वादश-अंग', 'कल्पसूत्रा', 'भगवती सूत्रा', 'मारुतुंगा', 'परिशिष्ट पर्वन', 'उत्तराध्ययन आंध्र-मागधी', 'स्थविरवली' इत्यादि न सिर्फ जैन धर्म और संस्कृति पर अपितु बिंबिसार अजातशत्रु, महापदमानंद, चन्द्रगुप्तमौर्य इत्यादि प्रभावशाली राजाओं पर भी महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ प्रस्तुत करती हैं।

2. धर्म-निरपेक्ष साहित्य: उपर्युक्त सामाजिक धर्मिक धर्मग्रंथों के अतिरिक्त प्राचीन भारत पर महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले धर्म-निरपेक्ष साहित्य का विपुल भंडार उपलब्ध है। इन्हें मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-(i) राजनीतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित रचनाएं (ii) नाटक और (iii) जीवनचरित। इनमें केवल महत्त्वपूर्ण कृतियों का ही उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

(i) राजनीतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित रचनाएं: कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' मौर्य साम्राज्य के सारे मूलभूत पक्षों-यथा, आर्थिक व्यवस्था, प्रशासन जिसमें चारकर्म (गुप्तचरी) की विस्तृत प्रणाली शामिल है, राजनय (कूटनीति) की कला और सामरिक रणनीति दाँव-पेच-पर बहुत ही प्रामाणिक जानकारियां प्रदान करता है। लेकिन इसमें क्रमबद्ध राजनीतिक घटनाओं और वंश सूची का स्पष्ट अभाव है, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य मौर्यकाल के राजनीतिक-आर्थिक एवं धर्मिक जीवन की जानकारी देना है।

(ii) नाटक: प्राचीन भारत के संबंध में जानकारी के एक अन्यस्रोत हैं नाट्य-ग्रंथ। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', जो एक सुलिखितनाट्य ग्रंथ है, नन्दों और मौर्यों के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है, उसका एक अन्य नाट्य-ग्रंथ 'देवीचन्द्रगुप्तम् (इसका एक अंश ही अब उपलब्ध है) गुप्तों की वंशावली पर महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है। कालिदास की प्रसिद्ध कृति 'मालविकाग्निमित्रा' शुंग राजवंश पर पर्याप्त रोशनी डालता है।

(iii) जीवनचरित: जीवनचरित पर अनेक ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ अध्कि महत्त्वपूर्ण हैं जो गौतम बुद्ध और बाद के हिन्दूकाल के कुछ प्रभावशाली राजाओं के निजी जीवन और कार्य की झांकी प्रस्तुत करते हैं: हर्षवर्द्धन पर बाणभट्ट्ट की रचना 'हर्षचरित', गौड़ नृपति शशांक पर पद्मगुप्तरचित 'नव शाहशांक-चरित', राजाविक्रमादित्य और बाद के चाणक्यों पर विल्हण रचित 'विक्रमांकदेव चरित' प्रतिहार राजा भोज पर बल्लालकृत 'भोजप्रबंध', पृथ्वीराज चौहान पर चंदबरदाई रचित 'पृथ्वीराज-चरित' इत्यादि मुख्य राजकीय जीवन चरित हैं।

(iv) संगम साहित्य: सुदूर दक्षिण में काव्य-शैली में लिखा गया तमिलों का संगम साहित्य आरंभिक ईसाई काल में दक्षिण के धर्म-निरपेक्ष साहित्य का सर्वाधिक प्रतिनिधि मूलक साहित्य है। इनमें निम्नलिखित ग्रंथ तीन सुदूर दक्षिण के आरंभिक इतिहास के अध्ययन के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक हैं:

(i) 'पत्थुपट्टू' अथवा 'टेन आइडिल्ज' (सौम्य काव्य अथवा ग्रामकाव्य)

(ii) 'एहुथो काई' अथवा 'अष्टसंग्रह' और

(iii) 'पंडिनें किल्कनक्कु' अथवा अठारह लघु शिक्षाप्रद कविताएं। ये सभी रचनाएं ईसा की प्रथम से तृतीय शताब्दियों के दौरान तमिल प्रदेश के लोगों के जीवन का सर्वपक्षीय विवरण प्रस्तुत करती हैं।

(v) धर्म-निरपेक्ष दर्शनशास्त्र: प्राचीन भारतीय दर्शन मुख्यत: धार्मिक आधार पर पल्लिवत पुष्पित हुआ है। लेकिन इसके कुछ अपवाद भी हैं। धर्म-निरपेक्ष दर्शनशास्त्र के निम्नलिखित सिद्धांत उल्लेख्य हैं:

(i) गौतमबुद्ध के द्वारा उपदिष्ट डायलेक्टिक्स का सिद्धांत (द्वन्द्वात्मक तर्क विद्या)

(ii) महान महायान बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रज्ञा-परिमिति-सूत्र -शास्त्र' में प्रतिपादित सापेक्षता का दर्शन। उन्होंने अपने सापेक्षता-दर्शन को 'माध्यमिक' की संज्ञा दी है।

उपर्युक्त धर्म-निरपेक्ष साहित्य में कहीं कहीं धर्मिक तत्त्व भी उपलब्ध हैं

3. ऐतिहासिक रचनाएं: प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक रचनाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है-(i) व्यक्तिगत इतिहासकारों द्वारा लिखा गया इतिहास और (2) विभिन्न स्थानीय राजवंशों द्वारा संरक्षित ऐतिहासिक इतिवृत्त (क्रॉनिकल्ज)।

(1) व्यक्तिगत इतिहासकार: व्यक्तिगत इतिहासकारों की रचनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 1149-50 ईस्वी में कल्हण द्वारा लिखित 'राजतरंगिणी' है। कल्हणा ने इसे मुख्यत: कश्मीर पर लिखित प्रलेखों के आधार पर लिखा है।

(2) स्थानीय राजवंशीय इतिवृत्त: ऐसे इतिवृत्त उत्तर भारत के विभिन्न भागों में पाए गए हैं। इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण इतिवृत्त निम्नलिखित हैं: सोमेश्वर की 'रस-माला' और 'कीर्ति-कौमुदी', राजशेखर का 'प्रबंधकोष', बालचन्द्र का 'वसंत विलास' इत्यादि। इन रचनाओं में गल्प और तथ्य दोनों का समावेश हुआ है।

सिंध में 13वीं सदी के आरंभ में अरबों की पहल पर स्थानीय ऐतिहासिक इतिवृत्त 'चाचनामा' की रचना शुरू की गई। इस रचना में अरबों द्वारा सिंघ विजय की गाथा विस्तार से दी गई है। 'चाचनामा' का सिर्फ फारसी अनुवाद ही हम तक पहुंच पाया है। उनमें अरबों द्वारा सिंध-विजय के पूर्व की सदी अर्थात् 7वीं सदी के आरंभ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चित्रित की गई है।

नेपाल के स्थानीय इतिवृत्त 'वंशावली' के नाम से जाने जाते हैं। इन रंचनाओं के आरंभिक भाग ''पूर्णत: मिथकीय'' (कल्पित) हैं, जबकि इनमें ईसा की प्रथम शताब्दी से वर्णित सामग्री किसी अंश में नेपाल के इतिहास की झलक दिखलाती है, क्योंकि उनमें वहां के राजाओं की नाम-तालिका और उनके राज्य-काल का वर्णन मिलता है।

असम में कामरूप सासनावली के स्थानीय इतिवृत्त असम में कामरूप के उत्तरकालीन हिन्दूकाल के इतिहास के पुन: निर्माण के मुख्य स्रोतों में एक हैं। उपर्युक्त ऐतिहासिक रचनाओं की चर्चा से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य विभिन्न क्षेत्रों में भी ऐतिहासिक इतिवृत्तों के परिरक्षण की प्रणाली प्रचलित थी, लेकिन वह आगे चलकर पूर्वोक्त कारणों से नष्ट कर दी गई।

साहित्यिक स्रोतों की सीमा-

यदि हमें सिर्फ साहित्यिक स्रोतों पर ही निर्भर रहना पड़ता तो हमारी जानकारी अधूरी रह जाती। प्राचीन भारत के इतिहास के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा है किसी निश्चित काल-निरूपण का अभाव। ईसा की तीसरी सदी में आंध्र के पतन के बाद प्राचीन भारत के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। सौभाग्य से सिक्कों, अभिलेखों और स्मारकों के रूप में इस काल के विद्यमान अवशेषों से इस कमी की भरपाई हो गई है।

पाटलिपुत्रा के पुराने स्थलों की खुदाई से हमें मौर्यों की प्राचीन राजधानी की जानकारी मिलती है। कंबोडिया में अंकोरवाट और जावा में बोरोबुदूर प्राचीन काल के भारतीयों की औपनिवेशिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष:

क्षेत्रीय इतिहास लेखन के विभिन्न आयामों का ऐतिहासिक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है, कि भारत का इतिहास प्रत्येक छोटे-बड़े प्रांत के स्थानीय इतिहास के समंवय से ही पूर्ण हुआ ह। उपर्युक्त विवरण में हमने बिहार राज्य का संदर्भ लिया और जाना कि भारत व बिहार का इतिहास परस्पर अंत:सम्बद्ध है। इसी प्रकार देश के हर राज्य, हर प्रांत का अपना इतिहास है और सभी इतिहास एक-दूसरे से परस्पर सम्बंधित हैं। अत: इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि विभिन्न क्षेत्रीय इतिहासों का अवलोकन एवम् विश्लेषण करने के पश्चात् ही भारत के वास्तविक इतिहास का निरूपण हुआ है।

संदर्भ-सूची

1. बालगंगाधर, एसएन (2012)। भारत के अध्ययनों को फिर से समझना। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. भट्टाचार्जी, जेबी हिस्टोरियंस एंड हिस्टोरियोग्राफी ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया (2012)
3. बोस, मिहिर। ''इंडियाज मिसिंग हिस्टोरियंस: मिहिर बोस ने पैराडॉक्स दैट इंडिया, ए लैंड ऑफ हिस्ट्री, हिस्ट्री ऑफ अ सप्रिनिंगली वीक ट्रेडिशन ऑफ हिस्टोरियोग्राफी", हिस्ट्री टुडे 57 रु 9 (2007) पीपी 34। ऑनलाइन
4. चक्रवर्ती, दिलीप के।: औपनिवेशिक विज्ञान, 1997, मुंशीराम मनोहरलाल: नई दिल्ली।
5. पालित, चित्ताब्रत, इंडियन हिस्टोरियोग्राफी (2008)।
6. इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर सोसायटी, देवहुति, डी। (2012)। भारतीय इतिहासलेखन में पूर्वाग्रह।

आदिवासी समाज जीवन

डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे

हिंदी विभागाध्यक्ष, सरस्वती विद्या मंदिर कला महाविद्यालय, किनवट, जि. नांदेड़ू (महाराष्ट्र)

सारांश

आदिवासी समाज की यदि बात की जाए तो हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में यह समाज मूलत: जंगलों एवं वनों में रहकर पूर्णत: प्रकृति पर आश्रित अपना जीवन यापन करता था। आदिवासी जनसमूह अपनी ही दुनिया में व्यस्त एक विशिष्ट जीवन व्यतीत करता था परंतु बाद में बाहरी घुसपैठ के चलते इनके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलते हैं। बाहरी घुसपैठ तथा अन्य लोगों ने उनके जीवन में हस्तक्षेप करके उनकी जीवन शैली को नानाविध रूप में प्रभावित किया। आदिवासी विमर्श के द्वारा आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व तथा उसके जीवन के संकटों पर ध्यान केंद्रित किया गया। आदिवासी साहित्य के द्वारा आदिवासियों के जल, जंगल तथा जमीन और जीवन की समस्या पर विचार विमर्श किया जाने लगा। भारत में उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासियों की संपदा की लूट का मार्ग खोल दिया। आज के मशीनीकरण के युग ने आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल तथा जमीन से वंचित कर दिया। इस प्रकार एकांत एवं शांतिप्रिय जीवन यापन करने वाले आदिवासियों के जीवन में औद्योगीकरण ने अत्याधिक उथल पुथल उत्पन्न कर दी। विकास के नाम पर उनके साथ छल किया गया तथा उन्हें अपनी जमीनों से बेदखल कर पलायन करने को मजबूर कर दिया जिसके कारण उनके समक्ष रोजगार व काम धंधों की एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई। सभ्य समाज द्वारा आदिवासियों को समान अधिकार प्रदान न किया जाना उनके जीवन की कठिनाइयों को बढ़ाने का एक प्रमुख कारण बना। सभ्यता समाज के द्वारा प्रकृति की गोद में पलने वाले आदिवासी समाज को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा जिसके कारण आदिवासी समाज की अस्मिता व अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया। आदिवासी समाज में विस्थापन, पलायन, रोजगार, अशिक्षा, पलायन व स्त्री अस्मिता मुख्य समस्याओं के रूप में उभर कर आयी।

बीज शब्द- आदिवासी, पलायन, अस्तित्व, प्रकृति, विद्रोह आदि।

भूमिका-

आदिवासी संस्कृति भारत की सबसे पुरानी संस्कृति है। आदिवासी संस्कृति का मूल दर्शन हमें इसके लोक साहित्य से प्राप्त होता है। आदिवासी पूर्णरूपेण प्रकृति के पूजारी हैं। आदिवासी प्रकृति की आदिकाल से रक्षा करते आ रहे हैं। प्रकृति के रक्षक होने के कारण आदिवासी दर्शन प्रकृतिवादी है। ये प्रकृति की गोद में पलकर प्रकृति को पूर्ण आधार बनाते हुए अपना जीवन यापन करते हैं।

"आदिवासी समाज धरती, प्रकृति और सृष्टि के ज्ञात-अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान देता है। उसके दर्शन में सत्य-असत्य, सुदंर-असुंदर, मनुष्य-अमनुष्य जैसी कोई अवधारणा नहीं हैं न ही वह मनुष्य को उसके बुद्धि विवेक अथवा 'मनुष्यता' के कारण श्महानश मानता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि में जो कुछ भी सजीव और निर्जीव हैं, सब समान है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा है। न कोई दलित हैं न कोई ब्राह्मण। सब अर्थवान हैं एवं सबका अस्तित्व एक समान है। चाहे वह एक कीड़ा हो, पौधा हो, पत्थर हो या कि मनुष्य हो।"[1]

आदिवासी दिल के अति भोले होते हैं। वे नैतिकता, न्याय व सामूहिकता में विश्वास रखते हैं। वर्तमान समय में आदिवासी समाज एवं संस्कृति एक ज्वलंत विषय के रूप में उभर रहा है तथा विमर्श का एक प्रमुख विषय बना हुआ है। आदिकाल से ही आदिवासी समाज पिछड़े समाज के रूप जाना जाता रहा है परंतु आधुनिक शिक्षा एवं साहित्यिक आंदोलनों के कारण आदिवासी समाज के अंदर भी जागृति उत्पन्न हुई है। यदि आदिवासी साहित्य की बात की जाये तो यह साहित्य मुख्य रूप से आदिवासी एवं गैर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखित है। आज आदिवासी लोगों के प्रति समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा है तथा आदिवासी जीवन एवं उनकी संस्कृति को आधार बनाकर लेखन कार्य किया जा रहा है।

आदिवासी को समाज द्वारा भोला की संज्ञा प्रदान की जाती थी। इस समाज ने प्राचीन काल से चली आ रही अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की धरोहरों को संजोकर रखा है। जिसके कारण ये सभ्यता और संस्कृति के असली वारिस माने जाते हैं। इस दृष्टि से विनायक तुकाराम के द्वारा प्रस्तुत विचार उल्लेखनीय है- "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं में सजे और सदियों से जंगल, पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दु:ख तथा नष्ट हुए संसार पर दु:ख प्रकट किया जाता है। उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोड़कर बोला जाता है।"[2] इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि 'आदिवासी' विषय पर विचार-विमर्श एवं संगोष्ठियाँ बहुतायत से आयोजित की जाती रही है।

आदिवासी साहित्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए उनकी जीवन शैली, रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि का व्यवस्थित ज्ञान अत्यावश्यक है। यह समाज किसी प्रकार के शास्त्रीय बंधन को नहीं स्वीकारता। इनकी स्थिति, समस्याओं, संघर्ष व शोषण को समझने के लिए हमें इनके स्वरूप तथा अंतर्वस्तु को समझना होगा। यह साहित्य आदिवासी संस्कृति, जीवनशैली, दर्शन, प्रकृति एवं इस समाज की समस्याओं का लेखाजोखा प्रस्तुत करता है। जिस कारण इस विषय के संदर्भ में कहा गया है कि- "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। यह प्रकृति का सहयोगी, सह अस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेदभाव वह छल-कपट से दूर है। वे जमाखोरी या संपत्ती जुटाने से मुक्त है। यह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सब की अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।"[3]

आदिवासी विमर्श एक्कीसवीं सदी के विमर्शों में मुख्य विमर्श है। इस विमर्श पर साहित्य रचना कार्य हेतु लेखकों में प्रतिस्पर्धा है। यह साहित्य आदिवासी एवं गैर आदिवासी लेखकों के द्वारा लिखा जा रहा है। गैर आदिवासी रचनाकारों द्वारा लिखे गये आदिवासी साहित्य पर समय-समय पर आपत्ति जताते हुए लिखा गया है कि- "अगर आदिवासी विषय, दर्शन, संस्कृति के अनुकूल साहित्य गैर-अदिवासी लेखक भी लिखते हैं तो उसे आदिवासी साहित्य मानना चाहिए। हमारी वाचिक परंपरा में जो समिद्ध साहित्य है उससे बाहरी समाज के लेखक परिचित नही है। उन्हें लिखित रूप में सामने लाने की जरूरत है। इसी प्रकार आदिवासी लेखिका वंदना टेटे का विचार है कि- "गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासियों पर रिसर्च करके लिखी जा रहीं रचनाएँ शोध साहित्य है, आदिवासी साहित्य नहीं। आदिवासियत को नहीं समझने वाले हिंदी-अंग्रेजी के लेखक आदिवासी साहित्य लिख भी नहीं सकते। सुनी-सुनाई बातों से आदिवासी जीवन का सच प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।"[4]

आदिवासी साहित्य के विषय में कहा जा सकता है कि यह एक व्यापक विषय है इस साहित्य के अंतर्गत वेदना है, विद्रोह है, अभिव्यक्ति है। यह साहित्य आदिवासियों को सम्मानपूर्वक जीवन यापन करने, स्वयं के लिए संघर्ष करने, अपनी पहचान बनाने तथा एकजुट होकर रहने के लिए प्रेरित करता है। आदिवासी के लिए प्रयुक्त होने वाले संज्ञा शब्द- भोला, उन्हें हीन भावना से ग्रसित करते हैं। इस हीन ग्रंथि से मुक्त कराने के लिए आदिवासी साहित्य एक अहम भूमिका निभाता है जिससे उनके अंदर आत्मविश्वास के साथ चेतना उत्पन्न होती है।

प्राचीन काल से आदिवासियों के द्वारा कोई भी इतिहास प्राप्त नहीं बल्कि उनका संपूर्ण साहित्य सदैव उनकी ही बोलियों में कविता, कहानी एवं किस्सों के साथ-साथ नृत्य-संगीत के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित हुई है। अधिकांशत: यह साहित्य गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे जाने के कारण समय-समय पर सुविधानुसार इसे तोड़ा-मरोड़ा गया है। इस साहित्य लेखन से आदिवासी समाज में जागृति उत्पन्न हुई तथा गैर आदिवासी रचनाकारों के सहयोग से आदिवासी साहित्यकार भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर पाठक एवं बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान आकर्षित करने को सक्षम हुए। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण उनमें चेतना आयी जिसके फलस्वरूप ९० के दशक के बाद इस साहित्य में लेखकों ने उल्लेखनीय कार्य किया। जैसे इन रचनाकारों में विशिष्टत: मंजू ज्योत्सना, राम दयाल मुंडा, मंगल सिंह मुंडा, निर्मला पुतुल, शिशिर टुडु, वंदना टेटे, विनायक तुकाराम, महादेव हंसदा, सुनील मिंज, शंकरलाल मीणा, हरीराम मीणा तथा हलधर नाग आदि आदिवासी रचनाकारों के नाम प्रमुख हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं में आदिवासी जीवन संबंधी समस्याओं, संघर्ष एवं विद्रोह को स्वर प्रदान किया।

निष्कर्ष

आदिवासी साहित्य के अंतर्गत आदिवासी समाज का वास्तविक चित्रण है। जिसके अंतर्गत उनके जीवन की समस्या, अंतर्द्वंद्व एवं तनाव के साथ-साथ उनकी संस्कृति का उद्घाटन किया गया है। आदिवासी साहित्य भले ही किसी भी भाषा में लिखा गया हो यह इस समाज के विश्वसनीय एवं वास्तविक चित्रण को दर्शाता है। यह साहित्य प्रकृति को पूर्ण रूप से अपना ईष्ट मानता है तथा प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध को गरिमा प्रदान करता है। यह समाज प्रकृति के लय-ताल एवं संगीत का अनुसरण करता है। यह समाज संपूर्ण जीव जगत को नकारता नहीं है बल्कि समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव रखता है। धन-लोलुपता तथा बाजारवादी हिंसा से दूर यह समाज धरती को संसाधन के स्थान पर माता स्वरूपा मानता है एवं प्रकृति के बचाव हेतु सदैव तत्पर रहता है। इस समाज में स्वानुभूति के स्थान पर सामुहिक अनुभूति को स्थान दिया जाता है जो समाज को नई दिशा एवं दशा प्रदान करता है। आज आदिवासी चेतना से संपन्न आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य जगत में अपनी अहम स्थिति दर्ज करा चुका है। जिसके कारण दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के बाद सबसे नवीन विमर्श के रूप आदिवासी विमर्श को स्थान दिया गया है। अत: कहा जा सकता है कि आदिवासी साहित्य वह साहित्य है जो आदिवासी जीवन से प्रेरित होकर लिखा गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. टेटे, वंदना- (२०१६), आदिवासी दर्शन और साहित्य विकल्प,
२. (संपा.) उमा शंकर चौधरी- (२००८), हासिये की वैचारिकी, विनायक तुकाराम, आदिवासी कौन, अनामिका पब्लिशर, नई दिल्ली,
३. शर्मा, विशाल एवं कोल्हारे, दत्ता- (२०१५), आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली.
४. (संपा.) टेटे, वंदना- (२०१६), आदिवासी दर्शन और साहित्य,

साहित्य की सामाजिकता और उसके शुक्ल पक्ष का अनुशीलन

जितेन्द्र कुमार गिरि

कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड

साहित्य के संदर्भ में सामाजिकता का सीधा सा अर्थ है कि संदर्भित साहित्य में प्रतिपादित सिद्धांतों, भावों, विचारों, प्रतिमानों आदि की एतद्विषयक सामाजिक परिस्थितियों, चित्तवृत्तियों या घटना-व्यापारों से कितनी संगति बैठ रही है या फिर वे समाज से कितने परिमाण एवं किस प्रकृति में संबंध रखते हैं। अत: इसे इस प्रकार से वर्णित किया जा सकता है कि कोई साहित्य अपने समाज (व्यापक अर्थों में राष्ट्र) से जैसी और जितनी संपृक्तता रखता है वही उस साहित्य की सामाजिकता कहलाती है। दरअसल साहित्य के संदर्भ में समाज का आयाम अत्यधिक विस्तीर्ण एवं विविध विषयी होता है। दरअसल साहित्यिक समाज में किसी एक समुदाय या सम्प्रदाय की अपेक्षा एक विशाल भूखण्ड की प्राकृतिक और मानवीय परिस्थितियाँ सम्मिलित होती हैं, इस तरह से साहित्य का समाज स्वरूपगत विविधता एवं आयामिक विस्तीर्णता में लगभग एक राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुत: समाज का निर्माण विभिन्न व्यक्तियों के सम्मिलन से होता है जबकि मनुष्य का जीवन स्वयं विविध-विषयी व बहुक्षेत्रीय, कारकीय प्रवृत्तियों का समाहर्ता होता है इसलिए सामाजिकों के जीवन से अंतर्संबंधित सभी आयामगत मानवीय अंगो-उपांगों, दृष्टांतत:-आर्थिक, राजनैतिक, प्राकृतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक आदि को भी सामाजिक क्षेत्र में ही अंतर्भुक्त मानना चाहिए। इस दृष्टि से साहित्य की सामाजिकता मनुष्य के सामाजिक पक्ष तक ही सीमित न रहकर उसके समस्त जीवनगत भावभूमियों, भौतिक पर्यावरणीय घटकों एवं दैनंदनीय क्रिया-व्यापारों तक विचरण करने की स्वत: अधिकारणी बन जाती है। अत: अब साहित्य की सामाजिकता से अभिप्राय साहित्य में मानव-जीवन का यथार्थपरक अंकन, अवतरण, संचालन व निर्देशन होगा। सर्वज्ञात है कि साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित संबंध होता है तथा एक की अनुपस्थिति में दूसरा कल्पनातीत नहीं तो पंगु, अपूर्ण एवं निरर्थक अवश्य हो जाता है अत: स्वाभाविक है कि साहित्य का सृजन भी समाज को बगैर तिरस्कृत किये होता हो। ऐसी परिस्थिति में साहित्य कभी भी सामाजिकता से असंपृक्त हो ही नहीं सकता है। दरअसल साहित्य विभिन्न स्वरूपों में मानवीय मूल्यों के संरक्षण के साथ-साथ समाज को उसकी वास्तविकताओं का दिग्दर्शन कराकर मानव-समूहों के लिए लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त तो करता ही है, साथ ही उसे भूतकालीन परिस्थितियों, घटनाओं का तथ्यात्मक ज्ञान कराकर उसे वर्तमान एवं भविष्य के प्रति सजग भी बनाए रखता है। इस तरह से साहित्य मुकुर की प्रकृति में समाज को केवल उसका प्रतिबिम्ब मात्र ही नहीं दिखाता अपितु उसके लिए एक विश्लेषक, सुधारक, मार्गदर्शक, शोधक एवं यथार्थवादी चित्रकार की भी भूमिका निभाता है। इतने अधिक सामाजिक और मानवीय कार्यों का कर्त्ता तथा व्यापक सर्जकीय उद्देश्यों का संरक्षक साहित्य, जिसके अस्तित्व और अस्मिता की बुनियाद ही समाज रूपी आधारशिला पर निर्मित होती है, उसे सामाजिकता विहीन कहना शक्कर को मिष्ट रहित तथा वैश्वानर को उष्णताविहीन घोषित करना होगा। डॉ० श्याम सुंदर दास ने अपने अत्यधिक ख्यातिलब्ध समालोचना ग्रंथ 'साहित्यालोचन' में साहित्य का जो उद्देश्य बतलाया है उससे भी यही भावार्थ प्रकट होता है- ''साहित्य का उद्देश्य केवल मनुष्य के मस्तिष्क को संतुष्ट करना नहीं है, वह तो मनुष्य जीवन को, अधिक सुखी और सुन्दर बनाने की चेष्टा करता है। साहित्य सारे मनुष्य-जीवन के दु:ख और संकट को क्षणभर के लिए भूल सकता है, वह आपदाओं से भरे हुए वास्तविक संसार को छोड़कर कल्पना और भावना के सुन्दर लोक में भ्रमण कर सकता है।''[१] कारण यह कि साहित्य की सामाजिकता विविध स्वरूपी होती है इसलिए यह अवधारणा निर्मित कर लेना कि उसमें मानव-जीवन के केवल सामाजिक पक्ष का ही अंतर्वेशन होगा अतार्किक, अवैज्ञानिक, असंगत एवं नितांत संकीर्ण वैचारिकी का ही परिचायक होगा। सचमुच में साहित्य मानव की चित्तवृत्तियों के साथ-साथ उसकी समग्र जीवन दृष्टियों का संवाहक, संरक्षक एवं कुछ संदर्भों में विस्तारक भी होता है इसलिए डॉ० नलिनविलोचन शर्मा के शब्दों में- ''साहित्यकार से इस बात की मांग करना कि उसकी रचनाओं में ऐसे परिवर्तनों का चित्रण रहे ही, यानी यह कि उसके पाठकों पर ऐसा प्रभाव पड़े कि उसके साहित्य को किसी सामाजिक परिवर्तन में ही प्रेरणा मिली है-साहित्यकार को नियंत्रित उत्पादन का माध्यम बनाने की चेष्टा है।''[२]

दरअसल समाज की परिस्थितियाँ-प्रवृत्तियाँ ही साहित्य-सृजन की प्रेरणात्मक वैचारिकी का गर्भगृह होती हैं और साहित्यिक समाज विस्तृत भौगोलिक भू-खण्ड की प्रकृति में एक राष्ट्र की जन चेतना, उसकी विचारशीलता, उसके प्राकृतिक पर्यावरण,

उसकी राजनीतिक आर्थिक परिस्थिति, इतिवृत्तात्मक अवस्थिति, धार्मिक अवस्था या स्थिति, सांस्कृतिक मूल्य रीतिशास्त्र की समृद्धि तथा शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक उत्थान आदि सभी का प्रतिनिधि अर्थात् द्योतक होता है अतः साहित्य की सामाजिकता इन सभी विविध आयामी विषयों से स्वतः ही सम्बद्ध हो जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य सदैव सामाजिक परिवर्तन की ही ईप्सा रखता हो या फिर वह सदैव यथास्थिति में बदलाव की मांग करता हो। दरअसल वह लोक लोकल्याण के विधायक सामाजिक कारकों का समर्थन एवं संरक्षण करते हुए उनकी समाज में चिरकालीन सुस्थिरता पर भी बल देता है। वस्तुतः समाज की समृद्धि और विकास के लिए जो सामाजिक घटक उपयोगी हैं, जिनसे एक व्यापक मानव समुदाय का हित सिद्ध होता हो, वैसे कार्यकलापों, विचार-सरणियों एवं मूल्यों को अवांछनीय कारकों द्वारा विनष्ट होने से बचाने के लिए जब साहित्य हर संभव प्रयत्न करता है तब ऐसी अवस्था में वह यथास्थिति में परिवर्तन की हठधर्मिता का परित्याग कर परम्परावाद का दामन थाम लेता है। प्रख्यात समालोचक डॉ० नलिनविलोचन शर्मा ने अपने निबंध 'साहित्यकार की सामाजिक चेतना' में एतद्विषयक परिस्थितियों के संदर्भ में कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य सर्जकों का नामोल्लेख करते हुए साहित्य एवं सर्जक की इन्हीं प्रवृत्तियों की ओर ध्यानाकर्षित करने प्रयत्न किया है- ''सूरदास या कीट्स की कृतियों का तथ्य प्रतिमान या मत-प्रतिमान की दृष्टियों से क्या महत्व है? और कालिदास या शेक्सपियर यदि सामाजिक प्रवृत्ति का परिचय देते भी हैं, तो अधिकतर इसी रूप में कि वे प्रमुख सामाजिक मूल्यों और संस्थाओं को या तो स्वीकार करते हैं या उनके प्रति उदासीन बने रहते हैं, उनके परिवर्तन से इनकी तनिक भी दिलचस्पी नहीं है।''[३]

साहित्य की सामाजिकता का स्वरूप उसकी परिमाणात्मकता एवं मात्रात्मकता मानवीय-जीवन के विविध सरोकारों पर ही आश्रित होती है। साहित्य जितनी अधिक विविधतापूर्ण एवं अतलस्पर्शी प्रकृति में जीवन से सम्बद्ध होगा, उसकी सामाजिकता उतनी ही है चिरस्थायी एवं सार्वभौमिक स्वरूप तथा उपादेयता की होगी। इन्हीं साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा मानवीय चित्तवृत्तियों के पारस्परिक संबंध को दृष्टिगत रखते हुए कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन की आलोचना कहा है। इस संदर्भ में अपने सुप्रसिद्ध निबंध 'साहित्य का उद्देश्य' में वे लिखते हैं- ''साहित्य की बहुत सी परिभाषाएँ की गयी हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो चाहे कहानियों के या काव्य के उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।''[४] अपनी इसी अवधारणा के अनुरूप वे कुछ भी लिख देने को साहित्य नहीं मानते हैं बल्कि उनकी वैचारिक दृष्टि में- ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।''[५] अपने एक दूसरे निबंध 'जीवन में साहित्य का स्थान' में इसी विचारशीलता को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं- ''साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को भी जी नहीं चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनन्त है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है।''[६] मुंशी प्रेमचंद की भाँति ही समसामयिक मार्क्सवादी साहित्य-सर्जक एवं समालोचक मैनेजर पाण्डेय भी साहित्य को तभी सार्थक एवं उद्देश्पूर्ण मानते हैं जब उसमें जन हो, जन तक उसका प्रसार हो और उसमें इन सभी का अनुशीलन-विवेचन करने वाली आलोचना हो-''साहित्य में तभी पूरा सच्चा जनतंत्र होगा जब उसमें जन हो और जन तक उसकी पहुँच भी हो। इसके लिए साहित्य के स्वरूप, उसके सिद्धांत, उसके लक्ष्य और उसकी आलोचना पर विचार करना आवश्यक होगा।''[७] इस तरह से यदि साहित्य की सामाजिकता को केवल मनुष्य के सामाजिक पक्ष से संदर्भित किया जाय तो ''समाजशास्त्र की ही तरह, साहित्य का मुख्य सरोकार होता है- मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा।''[८] लेकिन अभिज्ञात है कि साहित्य की सामाजिकता मानव-जीवन के मात्र सामाजिक पक्ष से ही सम्बद्ध नहीं होती अपितु वह उससे किसी भी तरह का सरोकार रखने वाले सजीवों-निर्जीवों, प्राकृतिक घटनाओं- परिवर्तनों, मानवीय चित्तवृत्तियों, मूल्यों, विचारों, सामाजिक-सांस्कृतिक उपादानों, धार्मिक-दार्शनिक, परिस्थितियों, वैज्ञानिक अनुप्रयोगों तथा एक विस्तृत भौगोलिक भू-खण्ड के भौतिक पर्यावरण जिसमें वन, नदी, पर्वत, पहाड़, मैदान, वायु, पशु-पक्षी, घास-फूस, सूर्योदय, अंधकार, वर्षा, धूप, कुहासा, हरे-भरे खेत, चिड़ियों का चहकना, कुत्तों का भौंकना, घोड़े का हिनाहिनाना, सड़कों पर चलती गाड़ियाँ, उन गाड़ियों से नित्य-प्रति होती दुर्घटनाएँ, धुआँ उगलती हुई सरपट भागती रेल, आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ते जहाज, अस्पताल, विद्यालय आदि जैविक-अजैविक विविधताओं की भी अनुवाहक होती है। यही कारण है कि साहित्य में हमें इन प्राकृतिक परिस्थितियों और मनुष्य जीवन से परोक्षतः अंतर्संबंधित घटकों की दीर्घकाय प्रसारता वर्तमान दिखाई देती है। साहित्य में इसी नैसर्गिक समुपस्थिति को डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने ललित निबंध 'अशोक का फूल' में अधोलिखित कारकीय स्वरूपों में विद्यमान होना बतलाया है- ''एक-एक फूल, एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परम्परा है। आपकी भी है, बकुल की भी है। चम्पे की भी है।''[९]

साहित्य की सामाजिकता के संदर्भ में दूसरे विचारकों की सापेक्षता में आचार्य शुक्ल का वैचारिक दृष्टिकोण सर्वांगीण प्रकृति एवं लोकमंगलकारी अथवा जन-समाज हितैषी अर्थवत्ता वाला था। वे सृजन-व्यापार को केवल मनुष्यों या मात्र सजीवों तक ही संकुचित मानने के नितांत विरोधी थे। जिस तरह से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कविता की आयामिक प्रकीर्णता को चींटी

से लेकर हाथी पर्यन्त तक विस्तीर्ण करने का मशविरा दिया था उसी तरह समालोचना सम्राट ने भी साहित्य का डायमेंशन अत्यधिक व्यापक बतलाते हुए इसमें मूर्त और अमूर्त सभी का समाभूत माना था। उनकी दृष्टि में यदि इसमें सर्जकों एवं सामान्य मनुष्यों के भाव, विचार, कल्पना, सृजन, विवेचन, मूल्यांकन सहित समग्र मनोजगत् व्यापार सम्मिलित हैं, तो उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक धार्मिक क्रियाएँ, मान्याताएँ, घटनाएँ एवं अवस्थाएँ भी अंतर्भुक्त हैं, उनकी व्यक्तिगत जीवनानुभूतियाँ, परम्पराएँ, भाषाएँ तथा सभ्यताएँ भी शामिल होती हैं। साहित्य की सामाजिकता के शुक्ल पक्ष के अनुसार- ''साहित्य किसी जाति की रक्षित वाणी की वह अखण्ड परम्परा है जो उसके जीवन के स्वतंत्र स्वरूप की रक्षा करती हुई जगत् की गति के अनुरूप उत्तरोत्तर उसका अंतर्विकास करती चलती है। उसके भीतर प्राचीन के साथ नवीन का इस मात्रा में और इस सफाई के साथ मेल होता चलता है कि उसके दीर्घ इतिहास में कालगत विभिन्नताओं के रहते हुए भी यहाँ से वहाँ तक एक ही वस्तु के प्रसार की प्रतीति होती है।''[१०] साहित्य की परम्परा को मानवीय सभ्यताओं के प्रवर्तन से सम्बद्ध बताते हुए वे आगे लिखते हैं- ''साहित्य की अखण्ड दीर्घ परम्परा सभ्यता का लक्षण है। यह परंपरा शब्द की भी होती है और अर्थ की भी। शब्द-परम्परा भाषा को स्वरूप देती है और अर्थ-परंपरा साहित्य का स्वरूप निर्दिष्ट करती है। यह दोनों परम्पराएँ अभिन्न होती हैं। इन्हें एक ही परम्परा के दो पक्ष समझिए।''[११] स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल की साहित्यिक सामाजिकता प्रत्येक तरह की संकीर्णताओं से सर्वथा परे सभी जागतिक क्रियाओं, प्रवृत्तियों, घटनाओं, उद्भावनाओं, परिवर्तनों तथा मनोव्यापारों आदि तक विस्तृत रही है। जिस प्रकृति की उनकी लोक मंगल विषयक अवधारणा है, उसी स्वरूप का उनका साहित्य संबंधी दृष्टिकोण भी। केवल सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं के शाब्दिक अवतरण को ही साहित्य का केन्द्रीय ध्येय मानना उनके आधारिक साहित्यिक प्रतिमान 'लोकमंगल' से व्यावहारिक संगति ही नहीं रखता तो वे इस सिद्धांत का समर्थन कैसे कर सकते थे? वस्तुतः उनका लोकमंगल भी विविध स्वरूपी था जो कि समाज की परिस्थितियों के चित्रांकन तक सीमित न होकर उसका विकासात्मक परिवर्तन करने, उसे अधिकाधिक मानव हितैषी तथा देशकाल और वतावरण के अनुरूप बनाने तक प्रसरित था, तब ऐसे में स्वतः ही उसमें किसी तरह के प्रतिबंध अथवा संकुचन का अस्वीकार हो जाता है। दरअसल कोई भी साहित्य स्रष्टा अपने देश-काल एवं वातावरण की तद्युगीन या पूर्वकालीन परिस्थितियों से ही सर्जकीय उत्प्रेरणा तथ विषय-वस्तु का आयात करता है। स्थान, समय और परिवेश की ये परिस्थितियाँ जितनी अधिक जटिल व पारस्परिक संश्लिष्ट होती हैं, उतनी ही अधिक उनकी व्यापकता और सामाजिक महत्ता भी होती है। तब स्वाभाविक है कि साहित्यिक-सर्जनाओं में इन सामाजिक प्रवृत्तियों-परिस्थितियों की उपेक्षा भी असंभव हो और होता भी यही है। हालाँकि ऐसी स्थिति में यह पूर्णतः सर्जक के स्वविवेक के मातहत होता है कि उसे अपनी रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों के उत्कीर्णन के साथ-साथ राजनीतिक सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, धार्मिक या आर्थिक क्रांतियों को भी सम्मिलित करना है या इनकी समूची अवहेलना करनी है। इसी सम्मिलन एवं उपेक्षा के परिमाणात्मक व मात्रात्मक प्रतिमान पर उस रचना की सामाजिकता का भी मूल्यांकन किया जायेगा। यदि सर्जक समाज की असंगतियों पर ही अधिक बल देते हुए जीवन के दूसरे क्षेत्रों से संबंधित ज्ञान-विज्ञान, विचारों, मनोवृत्तियों एवं क्रांतियों आदि की उपस्थिति का अनादर करता है तो उसकी ऐसी कृति साहित्यिक न होकर समाजशास्त्रीय होगी। वहीं जिस सर्जना में इन दोनों का समुचित समन्वय होने के साथ-साथ मानवीय जीवटता एवं उन्नति का उद्देश्यगत भावार्थ सन्निहित होगा, वह शुद्ध साहित्य की श्रेणी में परिगणित की जायेगी। इसीलिए साहित्य-सर्जकों, विचारकों एवं मीमांसकों ने मनुष्य की लेखनी से निःसृत सभी शब्द संचयनों अथवा भाषा-संग्रहों को साहित्य की श्रेणी में शामिल करने के विचार को सर्वथा हिमाकती व्यवहार बताते हुए इसका विरोध किया है। इन विद्वतजनों की दृष्टि में मनुष्य का वही तूलिका-कर्म साहित्य की परिपाटी में सम्मिलित किए जाने का दावेदार हो सकता है जिसकी सामाजिकता बहुआयामी, सर्वव्यापी तथा प्रचंड मानवतावादी हो। ऐसी ही रचनाओं की सामाजिकता का विवेचन-विश्लेषण और मूल्यांकन साहित्य की प्राचीन काव्यशास्त्रीय आलोचना प्रणाली से लेकर उत्तर आधुनिकतावादी साहित्य मीमांसा प्रणाली करती रही है और इन्हीं के लिए विशिष्ट आलोचनात्मक प्रतिमान भी निर्धारित किए गये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

१. साहित्यालोचन, डॉ० श्यामसुन्दरदास, पृ० सं०-३१, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-२०१०

२. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता - डॉ० बिजेन्द्र सिंघल पृ० सं०-१४८, कला मंदिर, नई दिल्ली- नवीनतम संस्करण

३. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता - डॉ० बिजेन्द्र सिंघल पृ० सं०-१४६-१४७, कला मंदिर, नई दिल्ली- नवीनतम संस्करण

४. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता - डॉ० बिजेन्द्र सिंघल पृ० सं०-२१८, कला मंदिर, नई दिल्ली- नवीनतम संस्करण

५. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता - डॉ० बिजेन्द्र सिंघल पृ० सं०-२१७-२१८, कला मंदिर, नई दिल्ली- नवीनतम संस्करण

६. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता - डॉ० बिजेन्द्र सिंघल पृ० सं०-२३०, कला मंदिर, नई दिल्ली- नवीनतम संस्करण

७. आलोचना में सहमति-असहमति, मैनेजर पाण्डेय, पृ० सं०-३६, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-२०१३

८. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन, संपादक-निर्मला जैन, पृ० सं०-२६, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय संस्करण-२००९

९. दूसरी परम्परा की खोज, नामवर सिंह पृ०सं०-८६, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-१९८३

१०. चिंतामणि (भाग-३), संपादक-डॉ० नामवर सिंह पृ०सं०-२८७-२८८, मनीष पब्लिकेशन, दिल्ली संस्करण-२०१३

११. चिंतामणि (भाग-३), संपादक-डॉ० नामवर सिंह पृ०सं०-२८८, मनीष पब्लिकेशन, दिल्ली संस्करण-२०१३

वर्तमान परिदृश्य में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता

डॉ० हिमांशु यादव

राजनीति विज्ञान विभाग, एस०पी०एम० डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

महात्मा गांधी, जिन्हें राष्ट्रपिता और बापू के नाम से भी संबोधित किया जाता है, वे २०वी सदी में विश्व की सबसे महान राजनेताओं में से एक थे। जिन्होंने पूरे दुनिया को सत्य अहिंसा की पाठ पढ़ाई और सत्य अहिंसा के रास्तों पर चलते हुए भारत को औपनिवेशिक दासता से मुक्त कराया। ऐसे व्यक्ति किसी परिचय का मोहताज नहीं है। सारी दुनिया उन्हें अहिंसा की पुजारी के रूप में जानती है। महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने तो यहाँ तक कह डाला की आने वाली वंश शायद ही विश्वास करें कि गाँधी नाम के कोई व्यक्ति इस धरती पर पैदा हुआ था।

मोहनदास करमचन्द गाँधी: जीवन परिचय

उनका जन्म एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। गांधी जी की मां पुतलीबाई एक साध्वी चरित्र, कोमल और भक्त महिला थी और उनके मन पर एक गहरी छाप छोड़ी थी। मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता करमचंद गांधी राजकोट के प्रसिद्ध दीवान थे तथा माता पुतलीबाई एक गृहणी थी। गाँधी जी के जीवन पर उनके माता और पिता का गंभीर प्रभाव पड़ा। उनकी प्राथमिक शिक्षा राजकोट में हुई और बाद में उनका दाखिला हाई स्कूल में हुआ। हाई स्कूल से मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद गांधी जी नें समलदास कॉलेज, भावनगर में दाखिला लिया। इसी बीच १८८५ में उनके पिता की मृत्यु हो गयी। जब गांधी जी इंग्लैंड जाने हेतु नाव लेने के लिए मुंबई गए, तब उनकी अपनी जाति के लोगों नें जो समुद्र पार करने को संदूषण के रूप देखते थे, उनके विदेश जाने पर अडिग रहने पर उन्हें समाज से बहिष्कृत करने की धमकी दी। लेकिन गांधी जी अड़े हुए थे और इस तरह औपचारिक रूप से उन्हें अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। बिना विचलित हुए अठारह साल की उम्र में ४ सितम्बर, १८८८ को वो साउथेम्प्टन के लिए रवाना हुए। सन् १८९३ में गांधी जी ने एक मुकदमा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका गए। दक्षिण अफ्रीका के धरती पर ही सबसे पहले सत्य अहिंसा और निष्क्रिय प्रतिरोध जैसे सिद्धांतों से गांधी जी परचित हुए और इन सिद्धांतों का सफल प्रयोग भी वही किया।

सन् १९१५ में वे दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आयें और सन् १९१७ में पहला सत्याग्रह किया। १९१९ से १९४८ में उनकी मृत्यु तक, वे भारत के केंद्र में रहे और उस महान ऐतिहासिक नाटक के मुख्य नायक रहे जिसकी परिणति उनके देश की आजादी के रुप में हुई। उन्होंने भारत के राजनैतिक परिदृश्य का पूरा चरित्र बदल दिया।

अपने सिद्धांतों की सफलता को देखते हुए जब गांधी जी भारत लौटे तो भारत में ब्रिटिश सता की समाप्ति के लिए इन्हीं सिद्धांतों का प्रयोग करने का निश्चय किया और वे ऐसा करने में सफल भी रहे, भारत को औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त कराया। इन्हीं सफलता के कारण गांधी जी दुनिया भर में एक साधारण व्यक्ति से महात्मा गांधी के रूप में विख्यात हुए। मगर दुर्भाग्यवश ३० जनवरी सन् १९४८ को गांधी जी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। गांधी जी तो चले गए मगर उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।

(१) सत्य अहिंसा की प्रासंगिकता:

अहिंसा से तात्पर्य किसी के प्रति हिंसा या हत्या न करने से है। मगर गाँधी जी ने अहिंसा का अर्थ इससे भी व्यापक बताया है। उनके अनुसार मन, वचन और कर्म तीनों तरह से अहिंसात्मक होना ही अहिंसा है। उन्होने कहा कि अहिंसा शक्तिशाली व्यक्ति का हथियार है, कायरों का नहीं। महात्मा गाँधी ने सत्य अहिंसा की अधारणा बौद्ध और जैन धर्म से ग्रहण किया और उसे अपने जीवन में बखूबी उतारा। सत्य अहिंसा के रास्ते पर चलते हुए उन्होंने भारत को स्वतंत्र भी कराया। इसी रास्ते पर आगे चलकर विश्व के अनेक देश अपनी स्वतंत्रता सुनिश्चित किया।

आज भी गांधी जी की सत्य अहिंसा के सिद्धांत की प्रासंगिकता पहले से बढ़ी ही है, पूरी दुनिया सत्य अहिंसा को अपना रही है। हाल ही में यूक्रेन-रूस युद्ध और इजराइल संघर्ष के दौरान शांति स्थापित करने के लिए अहिंसा की अवधारणा पर बाल दिया गया। अहिंसा के महत्व को देखते हुए यू० एन० ओ० ने सन् २००७ में २ अक्टूबर को 'अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप में घोषित किया और इसके साथ ही आगे चलकर यू० एन० ओ० ने अपनी मूल एजेण्डा में अहिंसा, शांति एवं सहयोग को शामिल किया।

(२) स्वदेशी की प्रासंगिकता:

स्वदेशी से तात्पर्य अपनी देश में उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग से है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय गाँधी जी ने भारत को आर्थिक शोषण से बचाने तथा भारतीय को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वदेशी की संकल्पना पर जोर दिया। गांधी जी ने कि अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में बताया है कि सभी भारतवासियों को दो कार्य करना चाहिए- पहला खाने के लिए अन्न का उत्पादन और

दूसरा पहनने के लिए कपड़े का उत्पादन करना चाहिए। गांधी जी कपड़ा उत्पादन के लिए खुद चरखा चलाया और अपने हाथों से बुने कपड़े का इस्तमाल करना प्रारंभ किया। ऐसा करने के लिए उन्होंने लोगों को भी प्रेरित किया और खादी ग्रामोद्योग की अवधारणा दी। गांधी जी की स्वदेशी की यह संकल्पना वर्तमान परिदृश्य में बहुत ही प्रासंगिक है। कोविड महामारी के दौरान सरकार ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया, विदेशी वस्तुओं की आयात पर रोक लगाया और चीन द्वारा निर्मित वस्तुओं पर प्रतिबंध भी आरोपित किया। इस तरह से सरकार द्वारा उठाए गए कदम गांधी जी की स्वदेशी सिद्धांतों पर आधारित है।

(३) शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता:

शिक्षा में आमूलचूल परिपर्तन के उद्देश्य हेतु गाँधी जी ने आधुनिक भारत के लिए शिक्षा की 'वर्धा योजना' प्रस्तुत किया। जिसे हम बेसिक या बुनियादी शिक्षा योजना के नाम से भी जानते है। बुनियादी शिक्षा पद्धति मुख्य रूप से मातृभाषा, अनिवार्य शिक्षा,व्यवसायिक शिक्षा,कौशल आधारित शिक्षा, स्वरोजगार आधारित शिक्षा तथा नैतिकमूल पर आधारित शिक्षा के समर्थन में था। इस तरह की शिक्षा पद्धति के माध्यम से गांधी जी ने आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली की आधारशीला रखी जो मैकाले शिक्षा पद्धति के विरोध में था।

वर्तमान नई शिक्षा नीति २०२० गांधी जी की शिक्षा दर्शन के पदचिन्हों पर ही आधारित है जिसमें गांधी जी की प्रमुख विचारों जैसे कौशल आधारित शिक्षा, व्यसायिक शिक्षा और अनिवार्य शिक्षा को समाहित करने के साथ साथ शिक्षा मातृभाषा में हो इसके लिए विशेष कदम उठाए गए है। साथ ही प्रधानमंत्री जी का स्वरोजगार और आत्मनिर्भर भारत के लिए आह्वान निश्चित ही गांधी जी के विचारों का प्रतिध्वनि है।

(४) सर्वोदय की प्रासंगिकता:

सर्वोदय जनकल्याण को प्रोत्साहित करने वाली एक सामाजिक व्यवस्था है, इससे तात्पर्य सभी जन के उत्थान से है। गांधी जी ने यह अवधारणा जॉन रस्किन की पुस्तक 'unto the last' से लिया और इसे एक आंदोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया। आगे चलकर विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं ने भी गांधी जी के इस आंदोलन से जुड़ गए।

गांधी जी के विचार में सर्वोदय ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिले। वर्तमान में समूचा विश्व इस प्रकार के समाज स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। मगर जाति, धर्म, नस्ल और क्षेत्र के आधार पर शोषण और हिंसा सर्वोदय समाज के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती है। अगर गांधी जी के सर्वोदय की अवधारणा विश्व में लागू किया जाता है तो विश्व में एक समता मूलक समाज का निर्माण होगा।

(५) न्यासिता की प्रासंगिकता:

महात्मा गांधी की न्यासिता का अवधारणा समाजवाद पर आधारित है। गांधी जी ने समाज से गरीबी दूर करने के लिए इस संकल्पना का प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार समाज में गरीब और असहाय लोगों के उत्थान के लिए धनिक वर्ग के लोगों को आगे आना चाहिए और अपने संपत्ति के कुछ हिस्सा सामाजिक कल्याण हेतु प्रयोग करना चाहिए। इसके फलस्वरूप समाज से गरीबी दूर होगी और आर्थिक समानता बढ़ेगी। वर्तमान में चारों तरफ आर्थिक असमानता फैली हुई है, बेरोजगारी और गरीबी की दर काफी ऊंचा है, तब इसके समाधान हेतु गांधी जी की न्यासिता के सिद्धांत काफी महत्व रखता है।

(६) सत्याग्रह की प्रासंगिकता:

महात्मा गांधी जी के शब्दों में सत्य की आग्रह करते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना ही सत्याग्रह है। गांधी जी ने स्वयं सत्याग्रह को सत्य की शक्ति, प्रेम की शक्ति एवं आत्म शक्ति के रूप में परिभाषित किया है। सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग गांधी जी द्वारा अफ्रीका में किया गया था, भारत में इसका प्रथम प्रयोग चंपारण आंदोलन के दौरान हुआ। उसके बाद भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सत्याग्रह गांधी जी के लिए एक प्रमुख हथियार बन गया।

वर्तमान समय में भी सत्याग्रह उतना ही प्रासंगिक है जितना महात्मा गांधी के समय में था। आज भी सरकार, शासन और प्रशासन से मतभेद की स्थिति में अपनी बात मनवाने के लिए सत्याग्रह को ही बेहतर साधन माना जाता है।

(७) गांधी जी की आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता:

महात्मा गांधी विकेंद्रीकृत आर्थिक व्यवस्था के समर्थक थे। उन्होंने भारी उद्योग, भारी मशीन और औद्योगिकरण का विरोध किया। उनके अनुसार भारी उद्योग शोषण और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देता है। यदि समाज को समतामूलक और शोषणविहीन बनाना है तो सबसे पहले सूक्ष्म , लघु और कुटीर उद्योग को बढ़ावा देना होगा और इसके माध्यम से व्यक्ति और गांव दोनों को आत्मनिर्भर करना होगा। आज भी वैश्विक अर्थव्यवस्था जब आर्थिक मंदी से गुजर रही है तब पूरे विश्व इस मंदी से निकलने के लिए अपने देश के अंदर सूक्ष्म, लघु व कुटीर उद्योग को बढ़ावा दे रहे हैं। कोविड महामारी के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति जब बहुत दैनीय थी, तब सूक्ष्म, लघु व कुटीर उद्योग ही भारतीय अर्थव्यवस्था को संभाल रखा था। सरकार ने इस संकट के दौरान सूक्ष्म, लघु व कुटीर उद्योग को सशक्त बनाने के लिए पाइपलाइन योजना प्रस्तुत किया था तथा आत्मनिर्भर भारत मिशन की शुरुआत भी की थी।

(८) नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता:

महात्मा गांधी नैतिकता की बहुत बड़ा समर्थक थे, उन्होंने धर्म ईश्वर एवं नैतिकता को पर्याय माना है। अत: नैतिकता उनके लिए प्राथमिक चीज थी यही कारण है कि महात्मा गांधी जी ऐसी

राजनीति की कल्पना करते थे जो नैतिकता से संचालित हो। इसके साथ ही उन्होंने राजनीति में साध्य और साधन की नैतिकता को भी स्वीकार किया उनके अनुसार जितना पवित्र हमारा साध्य है उतना पवित्र और नैतिक साधन को भी होना चाहिए। अनैतिक साधनों के माध्यम से अपने साध्य की प्राप्ति करना एक पाप की श्रेणी में आता है।

वर्तमान में गांधी जी की नैतिक मूल्य के विरोध में प्रश्न उठाए जाते हैं कि अब राजनीति में नैतिकता की कोई जगह ही नहीं बची है सभी नेता अनैतिक साधनों की राजनीति कर रहे हैं मगर यह बात पूरी तरह सच नहीं है। हमारा कानून, संविधान और राजनीतिक व्यवस्था अभी भी लोगों के अंदर नैतिक मूल्यों स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। जो लोग इन मूल्यों के विरुद्ध जाते है उनके प्रति कानूनी कार्रवाई सुनिश्चित किया जाता है। साथ ही गांधी जी के बाद नैतिक मूल्यों की राजनीति करने वाले राजनेताओं पं० जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर तथा अटल बिहारी वाजपेई जैसे महान राजनेताओं ने भारतीय राजनीति में मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया। इस तरह से राजनीति में गांधी जी के नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

(९) पर्यावरण संबंधी विचार की प्रासंगिकता:

महात्मा गांधी का दृष्टिकोण पर्यावरण के प्रति व्यापक था। उन्होंने देशवासियों से तकनीक के अंधानुकरण और भारी औद्योगिकरण के विरुद्ध जागरूक होने के लिए आह्वान किया था। उनका मानना था कि तकनीक और भारी उद्योग लोगों के जीवन में सुविधा से ज्यादा समस्या को जन्म देगी। इससे नदी, वायु और भूमि प्रदूषित होगा जिसके फलस्वरुप अनेक प्रकार की बीमारियां जन्म लेंगी। इसलिए उन्होंने अपनी पुस्तक हिंद स्वराज में पश्चिमी देशों के अनुकरण न करने की आग्रह किया था। इसके साथ ही नदी जल संरक्षण और स्वच्छता का समर्थन किया था। महात्मा गांधी सतत विकास के भी बहुत बड़े समर्थक थे उनका मानना था कि संसाधन पुरुषों से प्राप्त संपत्ति नहीं है वह हमारे बच्चों की धरोहर है। वे जैसी हमें मिली है वैसे ही उन्हें भावी पीढ़ियों को सौंपना होगा। इसके साथ उन्होंने भी कहा कि पृथ्वी पर मानव आवश्यकता पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन है मगर किसी की पेटी भरने के लिए प्राप्त नहीं है।

आज जब हमारा वैश्विक समुदाय पर्यावरण समस्या से जूझ रहीं हैं तब महात्मा गांधी की विचारों महत्व का पता चलता है। यूएनओ के सतत विकास कार्यक्रम गांधी के विचारों से प्रेरित है, पूरा विश्व गांधी के पर्यावरण संरक्षण और स्वच्छता तत्परता से लागू कर रही है। भारत सरकार भी गांधी जी की विचारों पर चलते हुए पर्यावरण समस्या से निजात पाने की कोशिश कर रही है। इसके लिए स्वच्छता दिवस, स्वच्छता पखवाड़ा, जल संरक्षण अभियान, गंगा सफाई अभियान तथा ग्रामीण शौचालय आदि जैसे अभियानों और नीतियों को चला रहीं है।

निष्कर्ष:

इस तरह से वैश्विक स्तर पर महात्मा गांधी का अवतार एक महान घटना है। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ किया और जो रास्ता दुनिया को दिखाया उसका महत्व कभी भी काम नहीं हो सकता है। लेकिन फिर भी गांधी जी की विरोध करने वालों का कमी नहीं है। गांधी जी के समय भी अहिंसा, वर्णव्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता आदि के आधार पर गांधी जी की आलोचना की जाती थी और आज भी कुछ मुद्दों पर गांधी की आलोचना की जाती है और वह सब गांधीवाद के प्रासंगिकता पर सवाल खड़ा करते हैं। मगर गांधी जी की आलोचना करने से उनकी विचारों की प्रासंगिकता खत्म नहीं हो जाती। यह तब तक प्रासंगिक है जब तक समाज में बुराई, हिंसा, गरीबी, बेरोजगारी, आदि जैसे गंभीर समस्या बना हुआ है। गांधी जी इन्हीं समस्याओं को दूर करने के लिए अपने विभिन्न विचारों का प्रतिपादन किया था। अत: वर्तमान परिदृश्य ने गांधी जी की प्रासंगिकता पहले से ज्यादा प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. अम्बेडकर, भीमराव: अछूत कौन और कैसे, अनुवादक मदन्त आनन्द, लखनऊ, बहुजन कल्याण प्रकाशन, १९९४।
२. काश्यप, डॉ० सुभाष, विश्व प्रकाश गुप्त- राजनीति कोष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), अगस्त, २०१५
३. कोठारी, रजनी- भारत में राजनीति: कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००७.
४. चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी व आदित्य मुखर्जी: आजादी के बाद भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), फरवरी २०१५.
५. द हिन्दू
६. पाण्डेय, तेजस्कर, संगीता पाण्डेय- भारत में सामाजिक समस्याएं, नयी दिल्ली, टाटा मैक्ग्रा हिल एजूकेशन प्रा० लि०, २०१२
७. सईद, एस० एम०: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, २०१५.
८. सिंह, प्रो० एम० पी०- भारतीय शासन एवं राजनीति, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, २०११.
९. सिन्हा, मनोज: समकालीन भारत एक परिचय, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, २०१४.
१०. गाँधी, एम०के०: सर्वोदय, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९४९.
११. गुर्जर, लीलाराम, बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, १९९७
१२. चांदगुडे, विनायक: पंचायत राज व नगरी स्वराज संस्था, सकल प्रकाशन, पुणे, जनवरी, २०१७
१३. चौबे, कमल नयन, (अनु०), समकालीन राजनीति-दर्शन: एक परिचय, दिल्ली, पियर्सन, २०१३
१४. जोशी, डॉ० आर०पी० एवं मंगलानी, डॉ० रूपा: भारत में पंचायती राज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २०१०, पृष्ट सं०-१४३
१५. तिवारी, अरूण: पंचायतों के समक्ष सपनों का गाँव बनने की चुनौती, कुरुक्षेत्र, अंक-६, अप्रैल, २०१६।

भारतीय लोकतंत्र एवं सोशल मीडिया की अवधारणा

राकेश कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ० विभु कुमार

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

भारतीय लोकतंत्र की जटिल संरचना में, मीडिया पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक सशक्तिकरण के सिद्धांतों को कायम रखते हुए एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में खड़ा है। भारत में पत्रकारिता चौथे स्तंभ के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, एक प्रहरी के रूप में कार्य करती है, आवाजों को बढ़ाती है, और देश के लोकतांत्रिक ताने-बाने के माध्यम से बुनने वाली कथा को आकार देती है

कुंजी शब्द- पत्रकारिता, जटिल संरचना, पारदर्शिता, रिपोर्टिंग, मीडिया, संस्कृतियाँ।

प्रस्तावना

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में, जहां भाशाएं, धर्म और संस्कृतियां आपस में मिलती हैं, मीडिया एकता और साझा उद्देश्य की भावना को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में पत्रकारिता में लोगों को एक साथ लाने, विभाजन को पाटने और सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देने की शक्ति है। यह विभिन्न समुदायों, क्षेत्रों और विचारधाराओं को अपनी आवाज सुनने के लिए एक मंच प्रदान करता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि लोकतांत्रिक चर्चा में कोई भी पीछे न रहे।

हालाँकि, लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका चुनौतियों से रहित नहीं है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जटिलताओं से जूझ रहे समाज में जिम्मेदार पत्रकारिता और सनसनीखेज के बीच की रेखा धुंधली हो सकती है। मीडिया आउटलेट्स को रेटिंग, प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिक हितों के दबाव का सामना करना पड़ता है, जो कभी-कभी सच्चाई, निष्पक्षता और सटीकता के सिद्धांतों पर हावी हो सकता है। ऐसे परिदृश्य में, पत्रकारों के लिए सूचना प्रदान करने और पत्रकारिता की अखंडता बनाए रखने के बीच बारीक रेखा को पार करना अनिवार्य है।

भारत में मीडिया के सामने एक और चुनौती प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रकारों की सुरक्षा पर खतरा है। लोकतंत्र में, सत्ता को जवाबदेह बनाए रखने के लिए एक स्वतंत्र और स्वतंत्र प्रेस आवश्यक है, लेकिन पत्रकारों को अपने कर्तव्यों का पालन करते समय अक्सर धमकी, धमकियों और हिंसा का सामना करना पड़ता है। पत्रकारों के निडर होकर रिपोर्ट करने के अधिकारों को बरकरार रखना और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना पत्रकारिता की अखंडता और स्वस्थ लोकतंत्र के कामकाज को बनाए रखने के लिए सर्वोपरि है।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ रहे हैं, डिजिटल युग भारत में पत्रकारिता के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों लाता है। इसने लोकतांत्रिक विमर्श का विस्तार करते हुए विविध प्रकार की आवाजों और विचारों को सुनने के रास्ते खोल दिए हैं।

हालाँकि, डिजिटल युग गलत सूचना और फर्जी खबरों के प्रसार के बारे में भी चिंताएँ लाता है। ऐसे समाज में जहां सूचना एक क्लिक की गति से फैलती है, विश्वसनीय स्रोतों और झूठ के बीच अंतर करना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारत में मीडिया और पत्रकारिता एक मजबूत लोकतंत्र के कामकाज के लिए अपरिहार्य हैं। एक प्रहरी, एजेंडा-निर्धारक और विविध आवाजों के लिए मंच के रूप में मीडिया की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताया जा सकता। प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रकार सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए सत्य, निष्पक्षता और जवाबदेही के सिद्धांतों को कायम रखना एक संपन्न लोकतंत्र के लिए आवश्यक है।

भारत में पत्रकारिता के समक्ष चुनौतियाँ

जबकि भारत में पत्रकारिता लोकतंत्र को बनाए रखने और नागरिकों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह कई चुनौतियों का भी सामना करती है जो इसके लचीलेपन और अखंडता का परीक्षण करती हैं। भारत के विविध और जटिल परिदृश्य में, पत्रकार अपने महत्वपूर्ण जनादेश को पूरा करने का प्रयास करते हुए, राजनीतिक हस्तक्षेप से लेकर गलत सूचना के बढ़ते ज्वार तक, असंख्य बाधाओं को पार करते हैं।

भारत में पत्रकारिता के सामने एक महत्वपूर्ण चुनौती राजनीतिक हस्तक्षेप है। मीडिया आउटलेट्स पर राजनेताओं और राजनीतिक दलों का प्रभाव पत्रकारिता की स्वतंत्रता और निष्पक्षता से समझौता कर सकता है। पत्रकारों को अक्सर अपनी रिपोर्टिंग को विशिष्ट एजेंडे के साथ जोड़ने के दबाव का सामना करना पड़ता है, जिससे निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ कवरेज प्रदान करने की उनकी क्षमता में बाधा आती है। पत्रकारिता की स्वायत्तता का क्षरण सत्ता पर नियंत्रण और लोगों की आवाज के रूप में पत्रकारिता की आवश्यक भूमिका को कमजोर करता है।

एक और गंभीर चुनौती मीडिया आउटलेट्स का स्वामित्व है। कुछ शक्तिशाली संस्थाओं के हाथों में मीडिया स्वामित्व की एकाग्रता के परिणामस्वरूप विविध आवाजों और दृष्टिकोणों की कमी हो सकती है। इससे स्व-सेंसरशिप हो सकती है, जहां पत्रकार संवेदनशील मुद्दों पर रिपोर्टिंग करने या नतीजों के डर से महत्वपूर्ण जांच में शामिल होने से बचते हैं। मीडिया स्वामित्व में निहित स्वार्थों का प्रभुत्व स्वतंत्र प्रेस के लोकतांत्रिक आदर्श को कमजोर करता है और जनता के लिए उपलब्ध विचारों की बहुलता को सीमित करता है।

भारत में पत्रकारों को अपने काम के दौरान शारीरिक खतरों और सुरक्षा चिंताओं का सामना करना पड़ता है। संवेदनशील मुद्दों पर रिपोर्टिंग करना, भ्रष्टाचार को उजागर करना और सत्ता में बैठे लोगों से सवाल करना पत्रकारों को धमकी, हिंसा या उत्पीड़न के खतरे में डाल सकता है। इस तरह के शत्रुतापूर्ण वातावरण एक डरावना प्रभाव पैदा करते हैं, पत्रकारों को उन कहानियों को आगे बढ़ाने से हतोत्साहित करते हैं जो सार्वजनिक हित में हैं और नागरिकों को महत्वपूर्ण जानकारी से वंचित करते हैं। पत्रकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना पत्रकारिता की अखंडता को बनाए रखने और एक जीवंत लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

डिजिटल युग भारत में पत्रकारिता के लिए अपनी तरह की चुनौतियाँ लेकर आया है। सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के प्रसार ने सूचना तक पहुंच को लोकतांत्रिक बना दिया है, नागरिक पत्रकारिता को सक्षम किया है और समाचारों के तेजी से प्रसार की सुविधा प्रदान की है। हालाँकि, इसने गलत सूचना, फर्जी समाचार और सनसनीखेजता के बड़े पैमाने पर प्रसार को भी बढ़ावा दिया है। डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र की तेज गति वाली प्रकृति, सूचना की वायरल प्रकृति के साथ मिलकर, पत्रकारों के लिए झूठी कहानियों का मुकाबला करना और सटीक और सत्यापित समाचार प्रदान करना कठिन बना देती है। इस परिदृश्य को समझने के लिए जनता के बीच मीडिया साक्षरता और जिम्मेदार रिपोर्टिंग पर नए सिरे से जोर देने की आवश्यकता है।

भारत में पत्रकारिता का भविष्य

भारत में पत्रकारिता का भविष्य उभरती प्रौद्योगिकियों को अपनाने में निहित है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई), मशीन लर्निंग और ऑटोमेशन समाचार एकत्र करने, विश्लेशण और वितरण प्रक्रियाओं में क्रांति ला सकते हैं। एआई-संचालित एल्गोरिदम बड़ी मात्रा में जानकारी को छांटने, पैटर्न की पहचान करने और पाठकों के लिए सामग्री को वैयक्तिकृत करने में सहायता कर सकते हैं। हालाँकि, पत्रकारिता में एआई के जिम्मेदार उपयोग को सुनिश्चित करने, पूर्वाग्रहों से बचाने और कहानी कहने के मानवीय तत्व को संरक्षित करने के लिए नैतिक विचार और सुरक्षा उपाय होने चाहिए।

मीडिया साक्षरता भविष्य में एक महत्वपूर्ण कौशल बनकर उभरेगी। जैसे-जैसे सूचना परिदृश्य तेजी से जटिल होता जा रहा है, नागरिकों को समाचार स्रोतों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने, गलत सूचना से विश्वसनीय जानकारी की पहचान करने और सार्थक संवाद में संलग्न होने के लिए उपकरणों से लैस होना चाहिए। पत्रकारों को मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देने, शैक्षिक संस्थानों और नागरिक समाज के साथ मिलकर एक अच्छी तरह से सूचित और समझदार दर्शकों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

भारत में पत्रकारिता के भविष्य को आकार देने में पत्रकारिता की अखंडता और नैतिक मानकों का संरक्षण सर्वोपरि है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी आगे बढ़ रही है और गति और क्लिक की मांग तेज हो गई है, पत्रकारों को सनसनीखेजता के आकर्शण का विरोध करना चाहिए, सटीकता को प्राथमिकता देनी चाहिए और कठोर तथ्य-जांच का पालन करना चाहिए। सार्वजनिक विश्वास और विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए सत्य, निष्पक्षता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को कायम रखना आवश्यक है।

दर्शकों के साथ सहयोग और जुड़ाव पत्रकारिता के भविष्य को आकार देगा। पत्रकार इंटरैक्टिव कहानी कहने, टिप्पणियों और फीडबैक के साथ जुड़ने और पत्रकारिता प्रक्रिया में जनता को शामिल करने के माध्यम से पाठकों के साथ गहरे संबंध बना सकते हैं। पारदर्शिता अपनाकर, विविध दृष्टिकोणों को शामिल करके और संवाद के लिए जगह बनाकर, पत्रकार समाचार में साझा स्वामित्व और भागीदारी की भावना को बढ़ावा दे सकते हैं।

भारत में पत्रकारिता के भविष्य के लिए टिकाऊ बिजनेस मॉडल महत्वपूर्ण हैं। जैसे-जैसे पारंपरिक राजस्व धाराएँ कम हो रही हैं, पत्रकारों और मीडिया संगठनों को अपने काम का मुद्रीकरण करने के लिए नए तरीके तलाशने चाहिए। डिजिटल सब्सक्रिप्शन, क्राउडफंडिंग और परोपकारी संगठनों के साथ साझेदारी को अपनाने से स्थायी पत्रकारिता के लिए मार्ग उपलब्ध हो सकते हैं जो स्वतंत्र और अनुचित प्रभाव से मुक्त है।

भारतीय समाज की जटिल रूपरेखा में, पत्रकारिता का भविष्य वादे और जिम्मेदारी दोनों के साथ चमकता है। पत्रकारों को उभरते तकनीकी परिदृश्य के अनुरूप ढलना होगा, डेटा की शक्ति का उपयोग करना होगा, उभरती प्रौद्योगिकियों को अपनाना होगा और कहानी कहने के नवीन तरीकों की खोज करनी होगी।

मीडिया साक्षरता भविष्य में एक महत्वपूर्ण कौशल के रूप में उभरेगी, जो नागरिकों को समाचारों के साथ गंभीर रूप से जुड़ने, विश्वसनीय स्रोतों को समझने और लोकतांत्रिक चर्चा में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए सशक्त बनाएगी।

भारतीय मीडिया की विशेषताएं:

भारतीय मीडिया की विश्वसनीयता तेजी से मिट रही है, क्योंकि राष्ट्र के मीडिया द्वारा समय-समय पर विश्व दर्शकों द्वारा सनसनी फैलाने वाली खबर की आलोचना की जाती है। जिस तरह से भारतीय मीडिया खबरों का इस्तेमाल करता है और जिस तरह से वह सूचनाओं को घुमाता है, दूसरी ओर, भारतीय मीडिया ने कारगिल युद्ध (1999) और 26/11 बॉम्बे (मुंबई) आतंकवादी हमलों के कवरेज में एक साहसिक भूमिका निभाई है। क्योंकि शहर में कई आतंकवादी हमलों ने पूरे देश को हिला दिया था। निश्चित रूप से, राजनीतिक दलों के बढ़ते प्रभाव के कारण दर्शकों तक पहुँचने वाली खबरों की गुणवत्ता में कमी आई है क्योंकि मीडिया ने सरकार के काम को बढ़ावा देने के लिए पार्टियों के लिए एक मंच के रूप में कार्य किया।

मीडिया को मजबूत करने में सरकार की भूमिका:

भारत जैसे जीवंत लोकतंत्र में, स्वतंत्र और नियंत्रण मुक्त प्रेस की आवश्यकता वास्तव में आवश्यक है। जब से हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान का निर्माण शुरू किया है, तब से मीडिया की भूमिका भारत सरकार के दृष्टिकोण पर गर्म हो गई है। संविधान निर्धारण के दौरान, भारत में मीडिया की स्थिति या भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के तहत एक अलग लेख या प्रेस की स्वतंत्रता के बारे में एक भ्रम था, जैसा कि अमेरिकी संविधान के मामले में था। प्रावधान करने की जरूरत थी। मसौदा (संविधान मसौदा) समिति के अध्यक्ष डॉ० अंबेडकर ने महसूस किया कि स्वतंत्र प्रेस के लिए अलग से प्रावधान करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन तर्क दिया कि "प्रेस किसी व्यक्ति या नागरिक का वर्णन करने का एक और तरीका है। "इस प्रकार प्रेस का अधिकार अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा बन गया। हाल ही में रिपोर्टर्स द्वारा बॉर्डर्स के साथ प्रकाशित वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में 180 देशों में से भारत को 136वाँ स्थान दिया गया था। देश में पत्रकारों के लिए उपलब्ध स्वतंत्रता का स्तर। भारत की रैंकिंग में गिरावट बढ़ती 'हिंदू राष्ट्रवादियों' से जुड़ी है, जो राष्ट्रीय मीडिया के "राष्ट्र-विरोधी'' विचारों को खारिज करने की कोशिश कर रही है, जो मीडिया को एक नकारात्मक भूमिका के रूप में दर्शाता है।

भारत जैसे विविधता वाले देश में, लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका पर विस्तृत कानून होना मुश्किल है, जैसा कि डॉ० भीमराव अंबेडकर ने बताया था। न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए) एक सरकारी निकाय है जिसने दर्शकों के बीच सूचना प्रसारित करने के लिए मीडिया हाउसों द्वारा पालन किए जाने के लिए दिशानिर्देश तैयार किए हैं। दिशानिर्देश निष्पक्षता और निष्पक्षता के साथ जनता के लिए विश्वसनीय समाचार सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

वर्तमान मीडिया स्थिति:

मीडिया पूरी तरह से बाजार के चंगुल में है, इसे वर्तमान पत्रों की भाषा से समझा जा सकता है। अस्सी के दशक में जब राजीव गांधी और उनकी दून मण्डली सत्ता में आई, तो देश में अंग्रेजी प्रभुत्व बढ़ने लगा। धीरे-धीरे हिंदी माध्यम के स्कूलों ने भी अपने बोर्ड बदल दिए और उन पर अंग्रेजी माध्यम लिख दिया। आज उस बात को 25 साल हो गए हैं और एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में आई है, जो न तो ठीक से हिंदी जानती है और न ही अंग्रेजी। हिंदी अंकावली लगभग पूरी तरह से गायब हो गई है।

इस पीढ़ी तक पहुंचने के लिए, कई हिंदी पत्रों ने अपनी भाषा में जबरन अंग्रेजी शब्दों और रोमन लिपि में घुसपैठ की है। कई पत्रों ने अंग्रेजी में शीर्षक रखना शुरू कर दिया है। एक समय था जब लोग इन पत्रों के माध्यम से अपनी भाषा में सुधार करते थे। लेकिन अब वही मीडिया भाषा को खराब करने की कोशिश कर रहा है। दूरदर्शन के समाचारों और नीचे दिए गए पाठ में हिंदी के दुर्व्यवहार को देखकर, उसके मन में एक इच्छा जागी। यह स्पष्ट है कि मीडिया का उद्देश्य केवल इस समय पैसा कमाना है।

लेखकों और साहित्यकारों को पत्रिकाओं से एक पहचान मिलती है। पहले कई पत्रों में नए और युवा लेखकों को प्रोत्साहित करने की कोशिश की गई लेकिन अब ज्यादातर पत्र किसी न किसी गुट से बंधे हैं। वे केवल उस समूह के लेखकों को रखते हैं। विरोध या तटस्थ लेखकों की रचनाएँ अच्छी होने पर भी फेंक दी जाती हैं। यहां तक कि उन्हें जवाब भी नहीं दिया जाता। कई पत्र अंग्रेजी लेखकों की अनुवाद सेवा में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखने वाले कम नहीं हैं लेकिन जब उद्देश्य केवल पैसा है, तो हम उस पर कैसे ध्यान दे सकते हैं?

उनके दृष्टिकोण के अलावा, इस मानसिकता के कारण संस्थानों के कार्यक्रमों का बहिष्कार करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। 27 फरवरी को, दिल्ली के रामलीला मैदान में एक लाख लोग बाबा रामदेव और अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं को सुनने आए। न केवल सरकारी दूरदर्शन ने इसकी रिपोर्ट की, बल्कि दिल्ली के अधिकांश पत्रों ने इसे दूसरे-तीसरे पृष्ठ पर भी स्थान दिया। यह एक उदाहरण है कि कैसे लालची मीडिया विज्ञापन से डरता है।

इस बाजारवाद ने पेड न्यूज का चलन बढ़ा दिया है। चुनाव के समय यह प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। 100 लोगों की एक सभा को एक विशाल सभा के रूप में वर्णित करना और एक विशाल सभा की खबर को गायब करना इस दुर्भावना का हिस्सा है। दुर्भाग्य से, केवल वे ही अखबार इस प्रतियोगिता में लगे हुए हैं,

जिनके मालिकों के पास अकूत संपत्ति है। उनके लापरवाह छोटे अक्षर भी इसकी नकल कर रहे हैं। हालांकि कुछ पत्रकारों और संगठनों ने इसके खिलाफ आवाज उठाई है, जो एक अच्छा संकेत है।

मीडिया में समाचार और राय दो अलग-अलग धारणाएं हैं। यदि कोई रिपोर्टर या संपादक किसी समाचार के पक्ष या विपक्ष में विचार देना चाहता है, तो उसके लिए संपादकीय पृष्ठ का उपयोग किया जाता है। कुछ पत्र इस नीति का पालन करते हैं लेकिन ज्यादातर में इसकी कमी है। रिपोर्टर अपने विचारों के अनुसार समाचार को ट्विस्ट करता है। इससे पत्र की विश्वसनीयता कम हो जाती है।

जब समाज में नीचे की ओर रुझान होता है, तो मीडिया पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। शासन अखबारों को पूरा विज्ञापन देता है। इस लालच में हजारों रजिस्टर्ड कागजात केवल सौ प्रतियाँ छापकर खुद को जीवित रखते हैं। यह उस पार्टी की नीति है जिसके शासन की प्रशंसा की जानी है, और विज्ञापन देना है। पति संपादक, पत्नी प्रबंधक, पुत्र मुख्य संवाददाता और बेटी विज्ञापन प्रबंधक। इस तरह के पत्र मीडिया की प्रतिष्ठा को नीचा दिखाते हैं लेकिन कोई सख्त कानून नहीं होने के कारण ऐसे दलाल लगातार बढ़ रहे हैं। ये पत्र लोकतंत्र और सार्वजनिक प्रवचन दोनों के लिए हानिकारक हैं।

नए मीडिया की एक नई लहर भी इन दिनों गति पकड़ रही है। बड़ी संख्या में लेखक और पत्रकार ठस1ळ लिख रहे हैं। यह अपने विचारों को फैलाने का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इसलिए, सभी समाचार पत्र उन्हें जगह दे रहे हैं, लेकिन एक ओर, नियंत्रण न होने के कारण, जहाँ इसकी विश्वसनीयता संदेह के दायरे में है, भाषा की गरिमा का उल्लंघन भी अत्यधिक हो रहा है। चूंकि यह अपनी प्रारंभिक अवस्था में है, इसलिए यह कहना मुश्किल है कि इसका भविष्य क्या होगा।

इंटरनेट और मोबाइल मेल ने ट्विटर और फेसबुक को एक मजबूत सामाजिक मंच बना दिया है जहां लोग अपने विचार साझा कर सकते हैं। यह एक दोधारी तलवार है, जो दूसरों से टकराती है। भारत में पूर्व विदेश राज्य मंत्री शशि थरूर और क्रिकेट व्यापारी ललित मोदी को ट्विटर पर की गई टिप्पणियों के कारण पद छोड़ना पड़ा। मीडिया एक निरंतर बहने वाली संस्था है। इसने कई बार अपना रंग और रूप बदला है। एक समय था जब उत्तर से दक्षिण तक की खबरें पहुंचने में छह महीने लगते थे, लेकिन आज छह सेकंड में यह शब्द पूरी दुनिया में फैल गया। इस उछाल के कारण, लोकतंत्र और जन जागरूकता के प्रति इसकी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है, लेकिन इसे ठीक से पूरा नहीं किया जा रहा है। अपराधी केवल मीडिया प्रणाली नहीं है, बल्कि संपूर्ण समाज और राजनीतिक वातावरण है।

चुनावों में हर बार लाखों नए मतदाता बनते हैं। नया होने के नाते, उनका प्रशिक्षण आवश्यक है। युवा पीढ़ी नई और सोच वाली है। इसलिए मीडिया इस क्षेत्र में एक बड़ी भूमिका निभा सकता है। यह नए लोगों को जाति, क्षेत्र, भाषा और प्रांत की राजनीति से मुक्त करने और वंशवादी, भ्रष्ट और आपराधिक उम्मीदवारों का विरोध करने के लिए प्रेरित कर सकता है, लेकिन अक्सर मीडिया इस बारे में चुप रहता है। कहीं विज्ञापन उनके मुंह बंद कर देते हैं, कहीं उम्मीदवार के डर से। परिणामस्वरूप, वह भी प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के जाति और धार्मिक समीकरणों को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य पूरा करता है। यह आम अच्छे के बजाय जाति और धार्मिक राजनीति को मजबूत करता है। यही वजह है कि 60 साल के होने के बाद भी भारतीय लोकतंत्र लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहा है।

किसी भी वस्तु के निर्माण में कच्चे माल और मशीनों की गुणवत्ता बहुत महत्वपूर्ण है। यह मीडिया की स्थिति है। इस समाज से पत्रकार भी आ रहे हैं। वे भौतिकता की प्रतिस्पर्धा और राजनीति की चमक से भी प्रभावित हैं। उन्हें अपने परिवार के लिए कार, घर, मनोरंजन और बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा और अन्य सुविधाओं की भी आवश्यकता है। खाली पेट साइकिल पर चलना अब पत्रकारिता नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में वे मिट जाएंगे। हाल ही में राडिया-राजा प्रकरण से यह पता चला कि पत्रकार जगत के कितने बड़े लोग कीचड़ में फंसे हैं।

जिस तरह से समाज में भ्रष्टाचार सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और स्वीकार्य हो गया है वह आश्चर्यजनक है। राजनीति काली थी, लेकिन अब सेना और न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की कहानियां भी खुल रही हैं। ऐसे में किसी को मीडियाकर्मियों से ज्यादा उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। यद्यपि मीडिया द्वारा न्यायपालिका और सेना के भ्रष्टाचार को भी उजागर किया गया है। इसलिए, उनकी सर्वोच्च जिम्मेदारी है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया भी समाज का एक हिस्सा है। समाज और उसके नेताओं को लोकतंत्र और लोकतंत्र की कसौटी पर खरा उतरने से पहले खुद को परखना होगा। भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, पैसे कमाने की मशीन बनाने वाली अनैतिक शिक्षा और ईमानदार पत्रकारों के लिए अनुशासनहीन समाज की खोज निरर्थक है।

भारतीय मीडिया में फर्जी खबरों की समस्या मौजूद है, जिसके कारण लोग गलत सूचना प्राप्त करते हैं और बड़े पैमाने पर अफवाह और भ्रम फैलाते हैं।

कभी-कभी यह गैर-जिम्मेदार रिपोर्टिंग में भी लिप्त हो जाता है और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संवेदनशील जानकारी लीक कर देता है। उदाहरण के लिए, मुंबई में 26/11 के आतंकवादी हमले के मामले में, गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग करना और कभी-कभी भीड़ की भावनाओं को भड़काकर कानून-व्यवस्था की समस्या पैदा करना।

मीडिया उच्च टीआरपी प्रतियोगिता में सनसनीखेज समाचार दिखाता है जो सार्वजनिक मुद्दों से संबंधित समाचारों के महत्व को कम करता है।

मीडिया में पेड न्यूज की भी समस्या है जो लोगों को भ्रमित करती है। भारत में बढ़ते मीडिया ट्रायल की घटनाओं ने न्याय का उपहास उड़ाया है।

भारत में मीडिया की विविधता और गुणवत्ता मीडिया समावेश और लाभ-संचालित हितों जैसी समस्याओं से प्रभावित हो रही है। इस पृष्ठभूमि के खिलाफ, भारत में मीडिया को सशक्त बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय करना समय की आवश्यकता है। पेड न्यूज को मोटे तौर पर कानून द्वारा परिभाषित किया जाना चाहिए और इस संबंध में दंडात्मक उपाय किए जाने चाहिए। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में टर्फ युद्ध से बचने के लिए, उनके पास एक एकल नियामक होना चाहिए।

भारतीय प्रेस परिषद को कानून द्वारा दंडात्मक शक्तियाँ दी जानी चाहिए। समाचार प्रसारण मानक प्राधिकरण जैसे स्व-नियामक निकायों को सशक्त बनाया जाना चाहिए। पत्रकारों पर हमलों के मामलों में तेजी लाई जानी चाहिए।

मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ हो सकता है, लेकिन नियमन के बिना यह भारत में लोकतंत्र के लिए अपमानजनक भी हो सकता है। इसे संवैधानिक सीमाओं और नियमों के भीतर उचित स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। मीडिया भी समाज का एक हिस्सा है। समाज और उसके नेताओं को लोकतंत्र और लोकतंत्र की कसौटी पर खरा उतरने से पहले खुद को परखना होगा। ईमानदार पत्रकारों की खोज एक भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, अनैतिक शिक्षा जो पैसा बनाने की मशीन और एक अनुशासनहीन समाज है, से निरर्थक है। वर्तमान युवाओं को दुनिया में तेजी से बढ़ती प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया में अधिक रुचि है। इस प्रकार, मीडिया के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि टीआरपी चौनलों को बढ़ावा देने के लिए प्रसारित की जा रही सूचना को पक्षपाती या हेरफेर न किया जाए।

निष्कर्षतः भारत में पत्रकारिता की भूमिका जनमत को आकार देने और एक जीवंत लोकतंत्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे हम 2023 और उससे आगे बढ़ रहे हैं, मीडिया की शक्ति और समाज पर इसके प्रभाव को पहचानना अनिवार्य है। भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र के विकास के लिए स्वतंत्र, जिम्मेदार पत्रकारिता का समर्थन करना और स्वतंत्र और नैतिक प्रेस की वकालत करना आवश्यक है।

आज भारत में पत्रकारिता के दायरे की सही मायने में सराहना करने के लिए, हमें समय में पीछे की यात्रा करनी चाहिए और इसकी ऐतिहासिक जड़ों का पता लगाना चाहिए। भारत में पत्रकारिता की एक मनोरम कहानी है, जो देश की आजादी के संघर्ष और आत्म-अभिव्यक्ति की खोज से गहराई से जुड़ी हुई है।

निष्कर्ष

जैसे ही 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में तेजी आई, पत्रकारिता क्रांतिकारियों और सुधारकों के हाथों में एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरी। ''बंगाल गजट" और ''अमृत बाजार पत्रिका" जैसे समाचार पत्रों ने राष्ट्रवाद की लौ जलाई, औपनिवेशिक उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई और भारतीय लोगों के अधिकारों की वकालत की। इन प्रकाशनों ने जनता की राय जुटाने और स्वतंत्रता की तलाश में जनता को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ सूची:

1. अंसारी एमए, महिला और मानव अधिकार
2. पांडे डॉ. जयनारायण, भारत का संविधान
3. नवभारत टाइम्स अखबार, 2013
4. रोजगार एजेंसी 2014
5. विजय कुमार, निदेशक, विश्व संवाद केंद्र, सुदर्शन कुंज, सुमन नगर, धर्मपुर, देहरादून।
6. प्रभासक्षी न्यूज नेटवर्क, 2014
7. प्रारूप और शिल्प, डॉ. मनोहर प्रभाकर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
8. समाचार पत्र प्रबंधन, गुलाब कोठारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

देवभूमि हिमाचल के लोकगीतों में 'राम'

डॉ० रविंद्र सिंह

पूर्व विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, आईईसी विश्वविद्यालय, सोलन

सारांश

सरलता, सहजता एवं सरसता के कारण लोकगीतों का आम जनमानस पर गहरा प्रभाव रहा है। इन लोकगीतों में संस्कृति और परम्परा से जुड़े विषयों को अमरत्व प्रदान करने की अनूठी क्षमता रही है। सनातन भारतीय समाज ने अपने आराध्य भगवान श्रीराम के प्रति अपनी आस्था और श्रद्धा को अभिव्यक्त करने हेतु भी लोकगीतों को एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में चुना है। लोकगीतों के माध्यम से सनातन समाज भगवान श्रीराम के व्यक्तित्व एवं उनके जीवन मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त करता रहा है। देवभूमि हिमाचल में भी प्रभु श्रीराम के प्रति भक्ति को अभिव्यक्त करते लोकगीतों की एक लम्बी परम्परा रही है। अब अयोध्या में रामजन्म स्थान पर भव्य मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा समारोह को लेकर पूरे देश राममय हुआ है। लोकगीतों और भजनों के माध्यम से रामभक्त अपनी आस्था और श्रद्धा को व्यक्त कर रहे हैं। ऐसे में देवभूमि हिमाचल में भगवान श्रीराम को समर्पित लोकगीतों का अध्ययन एवं मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। आज देवभूमि सहित समूचे भारतवर्ष में आयोजित होने वाले सार्वजनिक आयोजनों से लेकर सोशल मीडिया पर भगवान श्रीराम से जुड़े लोकगीत की धूम है। देवभूमि हिमाचल के लोक की सामूहिक अनुभूतियों के माध्यम से भगवान श्रीराम के व्यक्तित्व एवं चरित्र को अभिव्यक्त करते अनेक लोकगीतों का सृजन हुआ है। भगवान श्रीराम के जीवन-मूल्यों की शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन लोकगीतों के माध्यम से मिलती रही है। यहां भगवान श्रीराम को समर्पित कुछ ऐसे लोकीगीतों को संकलित करने का प्रयास किया गया है, जिनका सृजन और प्रसार देवभूमि हिमाचल में हुआ है।

कुंजी शब्दः श्रीराम, लोकगीत, भजन, अभिव्यक्ति, संचार, साहित्य, अयोध्या, रामलीला, लोकगाथा इत्यादि।

भूमिका

पीढ़ियों का बलिदान अन्ततः फलीभूत हो रहा है। भगवान श्रीराम की नगरी अयोध्या में भव्य श्रीराम मंदिर बन रहा है। 22 जनवरी को श्रीराम मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा के पावन एवं ऐतिहासिक क्षणों से पूर्व न केवल भारत, बल्कि पूरे विश्व भर के सनातन ध र्म के अनुयायियों में हर्ष एवं उल्लास का वातावरण है। प्रफुल्लित मन से आनन्द की ये अनुभूतियां भिन्न-भिन्न माध्यमों से बारम्बार अभिव्यक्त हो रही हैं। गीत एवं लोकगीत भी इस अभिव्यक्ति का एक सशक्त एवं भावपूर्ण माध्यम बने हैं। हिन्दी सिनेमा से लेकर लोकगीतों में भगवान श्रीराम की महिमा का आस्थामय और भावनात्मक वर्णन होता रहा है। भगवान श्रीराम पर बनी फिल्मों, धारावाहिकों, भजनों और लोकगीतों का अध्ययन करें तो महसूस होता है कि भगवान श्रीराम का व्यक्तित्व एवं चरित्र सृजन और रचना का एक पसंदीदा विषय रहा है। अमर उजाला में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, 'हिंदी सिनेमा के उदय से लेकर अब तक रामायण पर 50 से अधिक फिल्में बनी हैं। वहीं 20 से अधिक टीवी धारावाहिक का भी निर्माण किया गया, लेकिन साल 1987 में रामानंद सागर द्वारा निर्देशित टीवी धारावाहिक 'रामायण' अब तक की सबसे लोकप्रिय रामायण धारावाहिक है, जिसके भजन लोगों को आज भी मंत्रमुग्ध कर देते हैं। इस धारावाहिक में 'सीता राम दरस रस बरसे जैसे सावन की झड़ी' भजन को आज भी भक्त सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।'[1] इस प्रकार सिनेमा और लोक साहित्य में भगवान श्रीराम की स्तुति का एक विशाल एवं गौरवपूर्ण अध्याय रहा है।

अयोध्या राम मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा से पूर्व भगवान श्रीराम के भजनों की एक बड़ी श्रृंखला सोशल मीडिया पर प्रसारित हो रही है। पुराने लोकगीतों को नई धुन और सुर के साथ लोग गाना और सुनना पसंद कर रहे हैं। दि प्रिंट में प्रकाशित एक रिपोर्ट में लिखा है, 'जैसे-जैसे अयोध्या राम मंदिर उद्घाटन का समय नजदीक आता जा रहा है, वैसे-वैसे राम आगमन और रामायण से जुड़े भक्ति गीतों की लिस्ट लम्बी होती जा रही हैं। विभिन्न कलाकार लगातार राम पर भक्ति गीत बना रहे हैं, जिसकी सराहना पीएम नरेंद्र मोदी भी समय समय पर कर गायकों की हौसला अफजाई कर रहे हैं।'[2] प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और कई अन्य प्रतिष्ठित हस्तियां सार्वजनिक मंचों पर आकर निरन्तर इन भजनों को अधि क से अधिक प्रसारित करने का आग्रह कर रहे हैं। ' पीएम मोदी ने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म एक्स (पूर्व में ट्विटर) पर एक और गाना शेयर करते हुए लिखा, "स्वस्ति जी का ये भजन एक बार सुन लें तो लंबे समय तक कानों में गूंजता रहता है। आंखों को आंसुओं से, मन को भावों से भर देता है।" दरअसल पीएम मोदी ने कुछ दिनों पहले लोगों से आग्रह किया था कि राम पर बने गाने, भजनों या काव्य किसी भी प्रकार की सामग्री को श्रीराम भजन हैश टैग के साथ शेयर करें।'[3] इन सभी प्रयासों का ही परिणाम है कि सोशल मीडिया पर पिछले कुछ समय में मधुर और भाव-विभोर कर देने वाले राम भजनों की बाढ़ सी आ गई है।

सिनेमा और सोशल मीडिया के अतिरिक्त लोक-साहित्य में भगवान श्रीराम की महिमा का वर्णन सरल, सहज एवं सरस ढंग से होता रहा है। अपनी कोई अलग लिपि न होने के कारण

देवभूमि हिमाचल का साहित्य लोकगीतों, स्मृतियों और लोकगाथाओं के माध्यम से ही संरक्षित है। पारम्परिक रूप से रामलीला मंचन के माध्यम से शारदीय नवरात्र के समय पहाड़ का पूरा वातावरण राममय हो जाता है। पहाड़ी रामायण अपने आप में भगवान श्रीराम की लीला के बखान की एक अनूठी परम्परा है। इसके अतिरिक्त हिमाचली लोकगीतों में भगवान श्रीराम की स्तुति का एक सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन लोक साहित्य में मिलता है। आज जब पूरा भारतवर्ष भक्ति गीतों के माध्यम से राममय हुआ है, देवभूमि हिमाचल में लोकगीतों के माध्यम से भगवान श्रीराम की स्तुति को समर्पित विभिन्न अध्यायों का संकलित करना आवश्यक हो जाता है।

लोकगीत-भाव की सरल, सहज एवं सरस अभिव्यक्ति

भारतीय परम्परा में लोकगीत अभिव्यक्ति के सहज, सरल एवं सरस माध्यम रहे हैं। सरलता, सहजता और सरसता ही इनकी सबसे बड़ी प्रभाव शक्ति है। मकरध्वज श्रीवास्तव ने लोकगीतों के इसी महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है, 'लोकगीत का महत्व व्यक्ति के नैतिक मूल्यों द्वारा स्थापित समाज में प्रचलित धुनों एवं मूल्यों पर आधारित होता है। भारतीय समाज में लोक गीतों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः लोकगीत जीवन के गीत हैं, गावों के गीत हैं, उल्लास एवं उमंग गीत है भावनाओं और आशाओं के गीत हैं। इन गीतों में लोक संस्कृति की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।'[4] डॉ. कुमार विश्वास ने लोक को राष्ट्र की आत्मा घोषित करते हुए लोक साहित्य का महिमामंडन किया है। वह लिखते हैं, 'लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूतात्मा पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म-शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और हमारे निर्माण का नवीन रूप हैं।'[5] वह आगे लिखते हैं, 'समाज में रहते हुए जब मनुष्य की सामूहिक भावनाएँ आन्दोलित होती हैं, तब उसकी सहज व अकृत्रिम, लयबद्ध, रागात्मक अभिव्यक्ति ही लोकगीत कहलाती है।ष आडम्बर एवं यान्त्रिकता के लिए इन गीतों में कोई स्थान नहीं होता। वस्तुतः सरल हृदय की सरल अभिव्यक्ति ही 'लोकगीत' की आत्मा है।'[6] इस प्रकार से लोक साहित्य, विशेषकर लोकगीत सनातन भारतीय संस्कृति को समझने के मूल एवं विश्वस्त सूत्र रहे हैं।

'लोक' में व्याप्त 'श्रीराम' की महिमा

भगवान श्रीराम ने पिता दशरथ की आज्ञा पाकर 14 वर्ष का वनवास झेला। इस कालखण्ड में लोक, विशेषकर वनवासी समाज के साथ उनका गहरा अन्तर्संबंध हुआ। इस दौरान उन्होंने लोक समाज के कष्टों का निवारण किया। यही कारण है कि आज भी लोक समाज अन्य सभी देवात्माओं की अपेक्षा भगवान श्रीराम से स्वयं का ज्यादा जुड़ाव महसूस करता रहा है। उनके जीवन, रीति-रिवाज, पूजा-अर्चना, पर्व-त्योहार से लेकर लोकगीतों तक पर भगवान श्रीराम के चरित्र एवं व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है।

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।

इन पंक्तियों में उनके लोक-जुड़ाव को सहज समझा जा सकता है। वहीं, भगवान श्रीराम का जीवन तमाम चुनौतियों और संघर्षों के एक लम्बे दौर से गुजरा। उनके संघर्ष भी एक सामान्य मनुष्य के संघर्षों के सामान प्रतीत होते हैं और भगवान श्रीराम के जीवन से ही उसे अपनी समस्याओं का समाधान भी दिखता है। अपने जीवन की चुनौतियों-संघर्षों के दौरान भी मानवीय मूल्यों की मान-मर्यादा में बंधे रहने का साहस मिलता है। सम्भवतः इसी कारण सामान्य मनुष्य भगवान श्रीराम को सहज रूप से अपना आदर्श स्वीकार करता रहा है। लोकमानस के साथ प्रभु श्रीराम के जुड़ाव को समझाते हुए कमलेश्वर शरण ने लिखा है, ''राम' शब्द कहते ही वाल्मीकि के राम, तुलसी के राम का आध्यात्मिक रूप उभरकर सामने आता है, लेकिन लोक में जब 'राम' आते हैं तब वे जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। कभी दुख में कही जाने वाली भाषा के साथ, कभी खुशी में उजास भाव के साथ। दरअसल, लोक के राम भाषा के माध्यम से लोगों की दिनचर्या का हिस्सा हैं। ये हिस्सा ऐसा भाग है जो लोकमानस के भीतर पानी की धार की तरह बह रहा है।'[7] प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी ने इस सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए लिखा है, 'राम तो इतना सबके हैं कि हर व्यक्ति की अपनी राम कहानी है। राम सत्य हैं, अन्तिम सत्य हैं, शाश्वत सत्य हैं, सत्य नारायण हैं। राम आस्था हैं, अवलम्ब हैं। वह अदेह भी हैं, सदेह भी हैं। वन में राम हैं, भवन में राम हैं। मन मन्दिर में राम हैं, तन मन्दिर में राम हैं, जन मन्दिर में राम हैं, जग मन्दिर में राम हैं। राम द्रष्टा हैं, स्रष्टा हैं, सृष्टि हैं, साक्षी हैं, साक्ष्य हैं।'[8] इस प्रकार भगवान श्रीराम का लोक के साथ बेहद गहरा भावनात्मक जुड़ाव रहा है।

देवभूमि हिमाचल के लोकगीतों में 'श्रीराम'

राम कथा से लेकर राम लीला मंचन के माध्यम से भगवान श्रीराम के जीवन को समाज में बार-बार पूरी श्रद्धा और आस्था भाव के साथ सुनाया और सुना जाता रहा है। वहीं, लोकगीतों में वर्णित श्रीराम की महिमा का भी समाज पर गहरा प्रभाव रहा है। देवभूमि हिमाचल की श्रुति परम्परा के माध्यम से लोकगीतों का एक विशाल संग्रह आज भी उपलब्ध है। ये लोकगीत आज भी भगवान श्रीराम के जन्म से लेकर जीवन के विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों का सरल, सहज एवं सरस बखान करते हैं। भगवान श्रीराम के जीवन और लोकगीतों पर बहुत से शोध कार्य हुए हैं। इससे भगवान श्रीराम के जीवन से संबंधित बहुत से लोकगीतों का संग्रह आज लिखित साहित्य में संकलित किया जा चुका है, जबकि बहुत से लोकगीत श्रुति परम्परा के माध्यम से परम्परा प्रवाह का हिस्सा बने हुए हैं। हिमाचली साहित्यकार डॉ. गौतम

शर्मा व्यथित ने भगवान श्रीराम के जन्मोत्सव पर आधारित हिमाचली लोकगीत की पंक्तियों को उद्धृत्त करते हुए लिखा है,

'ए आं जुध्या नगरिया, जन्म लेआ नारायणे।
जोध्या नगरिया जन्म लेआ, राजा राम जन्म पाया ऐ।
ढोल नगारे, बजन बाजे, होर रुणझुण कंसियां,
देखी विगसँ कोसल्या तेरी माई, बहुत बंडीयां न दच्छणां।
ताईयां तां चाचियां सारियां भैणां, लोरियाँ देवण आईयां।
ऐ आं जुध्या नगरिया जन्म लेआ नारायणे।।'[9]

इस लोकगीत में भगवान श्रीराम के जन्म के अवसर पर अयोध्या नगरी की धूम का वर्णन किया गया है। पवित्र अयोध्या नगरी में भगवान श्रीराम के रूप में स्वयं नारायण अर्थात् ईश्वर जन्म लेते हैं। हर तरफ हर्ष और उल्लास का वातावरण है। इस अवसर पर समूची अयोध्या नगरी लोक-वाद्य यंत्रों की मधुर गूंज से गुंजायमान हो उठती है। भगवान श्रीराम की माता कौशल्या दक्षिणा बांटती हैं। ताइयां और चाचियां इस शुभ अवसर पर लोरी अर्थात् बधाई गीत गाती हैं।

'मरुए छांवा बेटी खेलदी है
दो बनजारे आए।
लुकजा छिप जा धीए लाडलिए
सोहरिए आए।
मैं कियां लुकां, कियां छिपां
मांए बाबल धर्मी ने सदाए।'[10]

उपरोक्त पंक्तियों में सीता स्वयंवर से पूर्व की व्याख्या की गई है। कुंवारी कन्याओं की तरह माता सीता भी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही होती हैं। जब श्रीराम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र जी सहित मिथिलापुरी में पधारते हैं, तो राज्य की बड़ी महिलाएं माता सीता को सजग करते हुए सम्भलने का आग्रह करती हैं।

'जी राजे जनक जग रचाया, सीता स्वयंवर रचाया रामा।
देस-देस को चिठ्ठियां भेजी, देस के भूप बुलाए
जनकपुरी आए रे राजे।
इन्द्र जैसे जोधा आए , सीता के मन नहीं भाए
जनकपुरी आए रहे राजे।
जब राम ने कस के काठी, सीता देख मस्काए
जनकपुरी आए रहे राजे।
बाई भुजा से घनष उठाया, भूप के मान उतारे
जनकपुरी आए रहे राजे।
जी राजे जनक जग रचाया, सीता स्वयंवर रचाया रामा।' [11]

इस पहाड़ी लोकगीत में माता सीता के स्वयंवर का प्रसंग आता है। इसमें वर्णन किया गया है कि मिथिलापुरी के राजा जनक अपनी बेटी सीता का स्वयंवर रचाते हैं और इसमें संसार के प्रतापी राजाओं को अपने बाहुबल का पराक्रम को दिखाने के लिए निमंत्रण देते हैं। इसमें इंद्र के समान शौर्य रखने वाले वीर राजा उपस्थित होते हैं, मगर उनका शौर्य भी माता सीता को प्रभावित नहीं कर पाया। बड़े-बड़े प्रतापी राजा अपने बल के अहंकार का प्रदर्शन करते हैं, मगर स्वयंवर की शर्त को पूरा नहीं कर पाए। इसी दौरान सभा में प्रभु श्रीराम की उपस्थिति से माता सीता का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। प्रभु श्रीराम ने अपने शौर्य और बल को दिखाते हुए बायें हाथ से ही उस विशाल शिव धनुष को उठा लिया, जिसे अन्य राजा हाथ लगाने से भी कांप रहे थे। इस प्रकार सीता स्वयंवर को जीतकर प्रभु श्रीराम ने माता सीता को अपनाया।

'सिया रामो रे राणी-2
रातो रोयणा वियाणी-2
आया वियाणू वांका, लागा नोबी दे टांका।
दिती कुकड़े बांको, दिता माछियों चाला।
सूतो उवे जोगाओ, सीया मुंओ धुआओ।
सीया ओवरे जाओ, घड़ा गुचो लियाओ।
छोड़ा पूरी बो पाओ, जिन्दे सूरी जो आओ।
पाओ छोड़ां देव थानो, पाओ छोड़ा देव थानो।' [12]

यह लोकगीत किन्नौर में मनाए जाने वाले एक विशेष आयोजन के अवसर पर गाया जाता है। सारी रात चलने वाले इस आयोजन के बाद सुबह जब लोग घरों को लौटते हैं, तो उस समय इस लोकगीत को गाया जाता है। इसमें शादी की उम्र की लड़कियों को माता सीता के समान महत्व देते हुए उनके सम्मान में यह लोकगीत गाया जाता है।

'आगे आगे राम चलत है
पीछे लछमन भाई रे
उनके पीछे सिया चलत है
राजा जनक दी जाई रे।
राणी कैकेयी ने दगा मचाया
राम को दिया बनवास रे
सूनी पड़ी ओ मेरी जुद्धिया नगरी
राम के बिना न रह जाई रे।'[13]

इस लोकगीत में भगवान श्रीराम के वनवास के समय अयोध्या वासियों द्वारा श्रीराम के दूर होने पर उनके विरह-भाव को व्यक्त किया गया है। इन पंक्तियों का भाव है कि भगवान श्रीराम वनवास के लिए निकल पड़े हैं। उनके पीछे उनके अनुज लक्ष्मण और राजा जनक की राजदुलारी सीता जी भी जंगल की राह पर निकल पड़े हैं। उस पूरे दृश्य को देखकर अयोध्यावासी भावुक हो उठते हैं और मन ही मन विचार कर रहे हैं कि राजा दशरथ की रानी कैकेयी ने यह कैसा छल किया है। रामचंद्र, सीता और लक्ष्मण के

जंगल जाते ही सारी अयोध्या नगरी सुनसान सी जान पड़ती है। अब तो अपने आराध्य श्रीराम के बिना अयोध्यावासियों का जीना भी दुभर हो गया है।

'राज होंदे हुए भी हुआ वनवास, ओ रामा मेरे
जोगणुआ।
सूणे भी ता लया यारो गंगा रे ओ तारूओ,
रामा लया लखणा जो तारे ओ जी...!'[14]

इन पंक्तियों में वनवास पर निकले प्रभु श्रीराम की खेवट से भेंट का प्रसंग व्यक्त किया गया है। श्रीराम खेवट से गंगा नदी पार करवाने के लिए खेवट से आग्रह करते हैं।

'बणे-बणे कोयल बोल सुहाई,
किसी ये स्हेतड़ी कुण गोरी आई।
बणे-बणे कोयल बोल सुहाई,
रामचन्दां स्हेतड़ी सीता गोरी आई।'[15]

उपरोक्त लोकगीत में वनवास के समय का वृत्तान्त बतलाया गया है। जब भगवान श्रीराम, माता सीता और लक्ष्मण वनवास को जाते हैं, तो पशु-पक्षी उल्लास से भर जाते हैं। प्रभु श्रीराम और उनकी धर्मपत्नी सीता जी के जंगल आगमन पर कोयल उनके स्वागत में मंगलगान करती है। वह अपने आराध्य के अपने निवास पर पहुंचने का सन्देश पूरे जंगल में सुनाती है।

'शरदा दे नाल कोई बुलान्दा नहीं,
फेर कहंदे राम साड़े आंदा नाहियो,
बिलनी ने बुलाये राम उसे वेले आ गए,
जूठे मीठे बेर राम प्रेम नाल खा गए ,
बिलनी जेहे बेर कोई खवांदा नाहियो,
फेर कहंदे राम साड़े... '

भगवान श्रीराम को समर्पित यह पहाड़ी लोकगीत आज भी रामभक्तों में श्रद्धा का संचार भर जाता है। पहाड़ी लोकगायक शेर सिंह ने इस मनमोहक लोकगीत को आवाज दी है। इस गीत का भाव है कि भगवान श्रीराम का यदि कोई मनुष्य सच्ची श्रद्धा के साथ स्मरण कर ले, तो भगवान उसे दर्शन अवश्य देते हैं। वनवास के समय भीलनी सच्ची श्रद्धा और आस्था के साथ भगवान का अपनी कुटिया में इंतजार करती हैं। उनकी भक्ति से आसक्त भगवान श्रीराम न केवल उन्हें दर्शन देने हेतु स्वयं उनकी कुटिया में आते हैं, बल्कि श्रद्धा भाव से एकत्रित जूठे बेर का भोग भी पूरे मन के साथ स्वीकार करते हैं। यह प्रसंग और इस पर आधारित लोकगीत यही संकेत करता है कि मनुष्य अपने सांसारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए यदि सच्ची श्रद्धा के साथ भगवान श्रीराम की भक्ति करे, तो प्रभु उसका उद्धार अवश्य करते हैं।

'राम भज राम भज रे मना, राम का नाम ध्याओ रे।
राम का भजन कर, गुरां को याद कर।
काम जंजाल मिटी जाए रे, राम भज राम भज रे मना।
कुन्हीं सैह पुरुष त्यागया, कुन्हीं सैह स्त्री बिना
रहे प्यारा रे।
सीता बन्तिया पुरस त्यागया, लक्ष्मण बिना नारी
रहे न्यारा।
राम भज राम भज रे मना।
किस दे नाँए पर ध्यान करो मना, किस दे नांए
पर बंडो पैसे।
राम दे नाए पर ध्यान करो मना, कृष्णे दे नांए
पर बंडो पैसे।
राम का नाम ध्याओ रे, राम भज राम भज रे
मना।'[16]

इस लोकगीत के माध्यम से समाज को 'श्रीराम नाम' की महिमा बताई गई है। राम के भजन करते हुए भगवान श्रीराम का ध्यान करना अति कल्याणकारी बतलाया गया है। 'राम नाम' की महिमा को अपरंपरपार बताते हुए कहा गया है कि यह मायावी संसार के झमेलों को मुक्ति दिलवाने वाला है। इसलिए "राम" नाम को कल्याण करने वाला बतलाया गया है।

बूटा तुलसी दा वेहड़े विच लाई रखदी बूटा
तुलसी दा,
मैं ते पलका दी सेज विछाई रखदी बूटा तुलसी दा
बूटा तुलसी दा वेहड़े विच...
जे मेनू पता हुंदा राम जी ने औना ऐ,
राम जी ने औना मेरे राम जी ने औना ऐ,
जे मेनू पता हुंदा राम जी ने औना ऐ,
मैं ते मीठे मीठे बेर मंगाई रखदी बूटा तुलसी दा,
बूटा तुलसी दा...

इस लोकगीत में भगवान श्रीराम और पवित्र तुलसी के सम्बन्धों के महत्व को बताया गया है। सनातन धर्म में तुलसी का विशेष महत्व रहा है। घर में लगाई गई तुलसी को सकारात्मकता और खुशहाली का प्रतीक माना गया है। राम तुलसी का संबंध भगवान श्री रामचंद्र से है। यह तुलसी श्रीराम को अति प्रिय है। इसलिए लोगों का गहरा विश्वास है कि भगवान श्रीराम की आराधना और उन्हें प्रसन्न करने के लिए तुलसी की पूजा-अर्चना जरूरी है।

'राम-भज राम भज मूर्खा माहणुआं,
राम के नाम दरियाओ बेड़ी।
किस के शीश पर सुरग संगारिया, किस के सिर
पर धरत भारी।
भरत के सिर पर सुरग संगारिया, बैल के शीश
पर धरत भारी।
राम का भजन कर, गुरों को याद कर,
हाल जंजाल मिट जाये तेरा। राम-भज, राम-भज
मूर्खा माहणुआं,
सिरे पर घुम्मेया काल भारी...'[17]

इस लोकगीत में मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता को अभिव्यक्त किया गया है। यह लोकगीत बताता है कि सद्कर्मों से मिले इस मनुष्य जीवन पर काल का संकट हर समय मंडराता रहता है। ऐसे में अपनी अज्ञानता को छोड़कर कर्मों की गति से मुक्त होकर जीवन सार्थक करने के लिए भगवान श्रीराम के नाम का स्मरण करना ही लाभकारी है।

मेरे तन में भी राम मेरे मन में भी राम,
रोम-रोम में समाया तेरा नाम रे,
मेरी सांसों में तेरा ही नाम रे।
जैसे चंदा में राम जैसे सूरज में राम,
अम्बर तारों में समाया तेरा नाम रे,
मेरी सांसों में तेरा ही नाम रे।

यह लोकगीत हिमाचल में आज भी बहुत प्रचलित है। राम भक्त अपने जीवन के हर अंश को भगवान श्रीराम को समर्पित करते हुए स्वयं को प्रभु श्रीराम के चरणों में समर्पित करते हैं।

'राम ते लक्ष्छमण दोनों भाई
जी दोनों चले बनवास, जी भगवान बुला रहिया।
इक बण छडेया जी, दूजा बण छडेया,
तीजें बणे लगी ऐ प्यास, जी भगवान बुला रहिया।
न इत खुह आ जी, न इत बौड़ी,
जी न इत गागर डोल, जी भगवान बुला रहिया.
.
राजे का बेटा पाणी भरदा
जी भर-भर ठण्डड़ा नीर जी, भगवान बुला रहिया
पाणी मैं तुसाँ जो तां पिआया
जी दसो माई बाप दी जात जो, भगवान बुला रहिया।
माता दी जाति दा क्या तुसां लैणा?
जी पिता दी जात नसीब, जी भगवाग बुला रहिया।
न्होती-धोती केस न झुड़घ्के
जी खड़ी ऐ बरीच्छ दे हेठ, जी भगवान बुला रहिया।
ढक-ढक माता सरें देआं केसां जी
पास खड़े श्रीराम
जी भगवान बुला रहिया ऐ।
फटी गई धरती छपी गई सीता
जी लव-कुशे दे मन्दे हाल
जी भगवान भुला रहिया।'[18]

इस लोकगीत के माध्यम से भगवान श्रीराम के जीवन के संघर्षों को रेखांकित किया गया है। बतलाया गया है कि उस समय के शक्तिशाली अयोध्या के राज परिवार में जन्म लेने वाले भगवान श्रीराम का जीवन कितने संघर्षों और अभावों से भरा रहा। इसके बावजूद उन्होंने संयम और मर्यादा का दामन सदैव थामे रखा। यही गुण हर मनुष्य को जीवन की कठिनाइयों में भी नैतिकता और मर्यादा का साथ पकड़े रखने की प्रेरणा भी देता है।

निष्कर्ष

लोकगीतों का इतना अधिक प्रभाव है कि इनका एक-एक शब्द सहज रूप से लोक चेतना के गहरे तक उतर जाता है। अपनी मूल संस्कृति, परम्परा और इतिहास से साक्षात्कार करवाने में भी लोकगीतों की क्षमता अद्धितीय है। हालांकि आधुनिकता और तकनीकी विकास के वर्तमान दौर में ऐसे बहुत से लोकगीत विस्मृत होते जा रहे हैं, जिन्हें कई पीढ़ियों ने अपने कंठ के माध्यम से संरक्षित किया। नियति चौधरी इस चिंता को उजागर करते हुए लिखती हैं, 'जब ढाढी अपनी भाव भरी आवाज में गाना गाते हैं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह परंपरा अनेक क्षेत्रों में अलग-अलग नाम से है। इस प्रकार की जानकारी जो हमारे वांग्मय में लोकगीत, लोक कथाओं, लोक श्रुति में है, लेकिन उनका अध्ययन किए जाने की और अभिलेख में लाने की आवश्यकता है। अनेक विश्वविद्यालयों में अनेक विषयों पर शोध होते रहे हैं, परंतु अपनी वास्तविक स्थिति जानने के लिए लोक परंपराओं के अध्ययन के क्षेत्र में कार्य नहीं किया गया है।' अत: संस्कृति और परम्परा के संवाहक लोकगीतों का यदि अकादमिक क्षेत्र गम्भीरता के साथ अध्ययन कर उन्हें लिखित स्वरूप प्रदान करे, तो सकारात्मक मूल्य और संस्कार भी सहज रूप से समाज में रोपित हो सकेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. https://www.amarujala.com/entertainment/ayodhya-ram-mandir-here-are-list-of-hit-bhajans-like-jai-shri-ram-and-ram-siya-ram-of-indian-cinema-movies-2024-01-05?pageId=2
2. https://hindi.theprint.in/india/ram-bhajan-one-after-the-other-appreciation-by-pm-modi-and-increasing-interest-in-devotional-songs-of-singers/648998/
3. https://www.abplive.com/news/india/four-days-and-four-youtubers-songs-pm-modi-shares-social-media-ayodhya-ram-mandir-inauguration-2578610
4. मकरध्वज श्रीवास्तव, मेरी अंतहीन यात्रा, बुक्सक्लिनिक, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, 2024, पृष्ठ-34
5. डॉ. कुमार विश्वास, ब्रज व कौरवी लोकगीतों में लोकचेतना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ-16

6. डॉ. कुमार विश्वास, ब्रज व कौरवी लोकगीतों में लोकचेतना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ-17
7. कमलेश्वर शरण, हिन्दुस्थान समाचार, प्रकाशित-23 दिसंबर, 2023 https://www.hindusthansamachar.in/Encyc/2023/12/23/Ayodhya-Ram-in-Lok-Lok-in-Ram.php
8. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, मन मानस में राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2021, पृष्ठ-19
9. डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, कांगड़ा के लोकगीत: साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृष्ठ-165
10. डॉ. मनोरमा शर्मा, लोकमानस के सुरीले स्वर, साई बुक हाउस, शिमला, 1991, पृष्ठ-55
11. डॉ. मनोरमा शर्मा, लोकमानस के सुरीले स्वर, साई बुक हाउस, शिमला, 1991, पृष्ठ-54, 55
12. डॉ. रूप कुमार शर्मा, सिरमौर दर्पण, गायत्री प्रिंटर्ज, जालंधर शहर, 1991, पृष्ठ-92, 93
13. डॉ. मनोरमा शर्मा, लोकमानस के सुरीले स्वर, साई बुक हाउस, शिमला, 1991, पृष्ठ-108
14. हेमराज ठाकुर, दिल की बातें कलम के साथ, बीएफसी प्रकाशन, लखनऊ, 2021, पृष्ठ-59
15. डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, कांगड़ा के लोकगीत: साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृष्ठ-205
16. डॉ. मनोरमा शर्मा, लोकमानस के सुरीले स्वर, साई बुक हाउस, शिमला, 1991, पृष्ठ-107
17. गौतम व्यथित, महके आंगन झूमे गांव, शीला प्रकाशन, नेरटी, कांगड़ा, 1988, पृष्ठ -41
18. गौतम व्यथित, महके आंगन झूमे गांव, शीला प्रकाशन, नेरटी, कांगड़ा, 1988, पृष्ठ-48, 49
19. https://panchjanya.com/2022/10/06/253039/bharat/vanvasi-community-vanvas-of-shri-ram-and-folk-tradition/

हिन्दी साहित्यः प्राचीन संस्कृति की अवधारणा

पूजा

हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की भाष धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ है अच्छी स्थिति, सुधरी हुई स्थिति। संस्कृति का यह अर्थ तो व्याकरणिक दृष्टि से है किन्तु भावात्मक दृष्टि से इसका अर्थ अधिक व्यापक है। संस्कृति को अगर समाज का दर्पण कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। संस्कृति से अभिप्राय समाज के लोगों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा, त्योहार आदि है। समाज जिस पद्धति से जीवनयापन करता है, जिन परम्पराओं का पालन करता हैं वे तत्व उस समाज की संस्कृति के आधार होते हैं। किसी समाज का ताना बुनने में संस्कृति का बड़ा योगदान होता है। संस्कृति किसी भी मनुष्य को अपने अनुसार ढ़ालने का कार्य करती है। संस्कृति सही अर्थों में मानव की विधायिका है। हम अपनी संस्कृति के अनुसार पलते बढ़ते हैं, उसके अनुसार अपने कार्यो को सम्पन्न करते हैं, उसके अनुरूप आचरण करते हैं और अपने सामाजिक जीवन को जीते हैं, यही संस्कृति है। "संस्कृति ही संस्कार है।"[1]

संस्कृति का अर्थ

"संस्कृति का अर्थ- शुद्धि, सुधार, परिष्कार, पवित्रीकरण या सभ्यता का वह रूप जो आध्यात्मिक एवं मानसिक वैशिष्य का घोतक है।"[2]

"संस्कृति का अर्थ- संशोधन करना, सुधारना, उतम बनाना, सजाना, संवारना, पवित्र करना, संचित करना सुनिर्मित करना है।"[3]

निष्कर्षतः कुछ सकते हैं कि संस्कार, संस्कृत और संस्कृति में पूर्ण-अर्थसाम्य है इन सभी में शारीरिक और मानसिक शुद्धि या परिष्कार का समन्वय निहित है।

संस्कृति की परिभाषा

भारतीय मान्यताएं

डॉ० देवराज "संस्कृति उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त कर सकता है। संस्कृति का संबंध मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृतियों से है।"[4]

डॉ० रांगेय राघव- "संस्कृति सामाजिक देन है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी अग्रसर होती हुई मानव के कार्य-कलापों का मापदण्ड होती है।"[5]

पाश्चात्य मान्यताएँ

संस्कृति को पाश्चात्य साहित्य में 'कल्चर' शब्द के रूप में रूपांतरित किया गया है।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी- "मन का परिष्करण व शिक्षण, जिनमें रूचि तथा व्यवहारिक आचरण का निर्माण होता है।"[6]

बेकन- "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य धर्म, मनोरंजन, आनंद में पाए जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"[7]

संस्कार और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। संस्कारो में ही संस्कृति झलकती है। समाज के मूल्यों को सुरक्षित रखने के लिए उनके प्रति विश्वास और निष्ठा की भावना आवश्यक होती है। इनसे धार्मिक प्रेरणा भी मिलती है और संस्कृति के बीच भी विद्यमान रहते हैं। संस्कार संस्कृति के प्रतिबिंब को प्रतिभाषित करते है, क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप में वे सामाजिक व्यवस्था का पोषण करते हैं।

यदि किसी समाज की व्यवस्था देखनी हो तो उसके प्रचलित संस्कार ही पर्याप्त है। इन संस्कारों से विभिन अवसरों के महत्व का भी पता चलता है। जहाँ तक इन संस्कारो की संख्या का प्रश्न है कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी संख्या सोलह है जिनमें कुछ प्रमुख है- गर्भाधान, जन्म, कुंडल, यज्ञोपवीत, कर्ण-छेदन, विवाह एवं अंत्येष्टित आदि प्रमुख है। संस्कृति में मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास विद्यमान रहता है और उसे विकसित होने का वातावरण प्रदान करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि संस्कार और संस्कृति का सीधा संबंध है। संस्कार ही परम्पराओं में परिणत होकर संस्कृति का रूप बन जाते है।

पारिवारिक जीवन भी संस्कृति का अंग है। मनुस्मृति के अनुसार-चितृऋण सर्वश्रेष्ठ ऋण माना जाता है, कुल तीन ऋण बताए गए हैं। पिता परिवार का मुखिया होता था। परिवार संबंधी सभी अधिकार उसके पास थे। परिवार में माता का स्थान, पिता के स्थान से भी ऊँचा माना जाता था। माता के इसी महत्व को ध्यान में रखकर मनु ने स्त्रियों के संबंध में कहा है- "यत्र नारी पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"[8] पारिवारिक जीवन के विकास में सोलह संस्कारो का भी महत्वपूर्ण स्थान था।

संस्कृति एक ऐसी जीवन पद्धति है जो मानव को चेतना सम्पन्न बनाती है। मनुष्य को उसकी पाशविकता स्वार्थपरायणता, संकीर्णता आदि विकारों से मुक्त करती हुई, परिष्कृत और सभ्य बनाती है। "संस्कृति वह वस्तु है जो स्वभाव, माधुर्य, मानसिक, निरोगत एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।"[9] संस्कृति समाज का संश्लिष्ट गुण है जिनमें जन-जीवन के विविध गुणों का समावेश होता रहता है यथा- जीवन-पद्धति, धर्म, दर्शन, साहित्य, शिल्प कला आदि। वे सभी मूल्य, मान्यताएँ और विश्वास इसके

अंतर्गत आते हैं, जिनके सहारे कोई भी समाज अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन के आदर्शो का निर्माण करता है अथवा जिसके लिए उस समाज के सदस्य जीते हैं।

अतः संस्कृति देश, काल, जाति, धर्म, और सम्प्रदाय तक सीमित न रहकर मानवता के विकास की सारणी है और साहित्य भी मानवता को विकास की ओर अग्रसर करता है।

संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है, जिससे उसका सुधरा हुआ, ऊँचा, सभ्य रूप आदि विशेषणों से आभूषित किया जा सकता है। निसर्ग मनुष्य में बीजरूप में तीन प्रकार की शक्तियां भर दी है, जिनका संबंध शरीर, मन व आत्मा से है। शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है, जिस संस्कृति में इस विकास का जितना आधिक्य है, वह उतनी ही ऊँची संस्कृति मानी जाएगी। इसे संस्कृति की कसौटी भी कहा जा सकता है।

संस्कृति के विकास में पर्व और त्योहारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में आए दिन कोई न कोई पर्व और त्योहार आता ही रहता है। विभिन्न धर्म, जाति और संस्कृति वाला यह देश मेलों के लिए प्रसिद्ध है। धार्मिक त्योहारों के साथ-साथ क्षेत्रीय पर्व भी है जो परस्पर लोगों को समीप लाने में कड़ी का काम करते हैं। तीज-त्यौहार और नवरात्रों के रूप में आने वाले पर्व भी लोगो के सांस्कृतिक प्रेम को दर्शाते हैं। गंगा-स्नान का पर्व तो भारतीय लोगों के दिलों दिमाग पर छाया रहता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की जलवायु यहाँ के निवासियों को अलग-अलग कृषि उपज के अवसर देती है। यही एक कारण भी है कि यहाँ पर फसल पक जाने पर भी कुछ त्यौहार मनाए जाते हैं।

खान-पान एवं वस्त्राभूषण का भी संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। भारत जैसे विशाल देश में तो केवल भौगोलिक वातावरण में ही विविधता नहीं अपितु जाति, धर्म, और वस्त्राभूषणों में भी देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति ने अपना काफी प्रभाव डाला है, लेकिन भारतीय खानपान और लिबास में भारतीय संस्कृति आज भी लोकप्रिय है। नए-नए पहनावे हमारे सामने आ रहे है फिर भी पुरुषो में धोती कुरता और स्त्रियों में साड़ी के साथ धाधरा-चोली और चुनरी के पहनावे में कमी नही आई है। भारतीय महिलाओं के आभूषण व अन्य श्रृंगार प्रसाधन भी विश्व की अन्य महिलाओं से कही अधिक आकर्षक और सुंदर है।

संस्कृति को साहित्य द्वारा ही वाणी मिली है। साहित्य के द्वारा ही उसके सामाजिक मूल्यों को पहचाना जाता है। साहित्य में संस्कृति के भाव सुरक्षित रहते हैं। साहित्य और संस्कृति दोनों ही समाज, देशकाल, धर्म व परिवेश द्वारा प्रेरित और अनुशासित रहते है। साहित्य में संस्कृति की अखण्ड अभिव्यक्ति होती है। साहित्य के अंतर्गत प्राचीन संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, प्रेम व्यवहार तथा दैनिक क्रियाकलापों से संबंध अनेक घटनाएँ देखने को मिलती है। यदि कोई साहित्यकार अपने देश की संस्कृति से कटकर सृजन करेगा तो उसका साहित्य अल्पकाल में ही समाप्त होकर विस्मृति के गर्त में समा जाएगा। वेद, उपनिषद, गीता, पुराण, रामायण, महाभारत जब मूल या अनूदित रूप में विदेश में पहुंचे तो उन्होंने वहाँ के निवासियों को भारतीय संस्कृति की महता से परिचित कराया। अतः संस्कृति किसी देश या समाज के स्थायी तत्वों की अभिव्यक्ति है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम प्राचीन संस्कृति के अंतर्गत धर्म, साहित्य, पारिवारिक जीवन, वस्त्राभूषण और संस्कार की अवधारणा को समझ सकते हैं। पारिवारिक जीवन ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की आधारशिला पर खड़ा था। वे ऐसे आदर्श थे जिनसे मानव जाति का ही नहीं अपितु प्राणिमात्र का कल्याण हो सकता था। संस्कृति भी मनुष्य जाति के अच्छे संस्कारों को सहेज कर रखती है। सोलह संस्कारो ने तो जिनकी वैज्ञानिकता और आवश्यकता किसी से छिपी नही है ये जीवन को ओर भी अधिक व्यवस्थित और सुंदर बना देते हैं। साहित्य संस्कृति का संवाहक भी है और सवर्द्धक भी। "संस्कृति के विभिन्न आयामों को साहित्य प्रकट करता है। साहित्य संस्कृति का प्रधान अंग है। साहित्य में जाति के मनोगत भाव सुरक्षित रहते हैं और उसके द्वारा उनके विकास-क्रम का भी अनुमान लगाया जा रहा है।"[10]

अतः संस्कृति देश, काल, जाति, धर्म और सम्प्रदाय तक सीमित न रहकर मानवता के विकास की सारणी है और साहित्य भी मानवता को विकास की ओर अग्रसर करता है। चूँकि हम मनुष्य एक प्रजाति के रूप में अस्तित्व में है तथा लाखो वर्षो से अपना विकास करते रहे हैं एक खास तरह की जिंदगी जीना हमारी आंतरिक और अदमनीय इच्छा बन गई है। हम अपना जैविक और मानव केन्द्रित दृष्टिकोण छोड़ नही सकते वैसे ही जैसे हम अपने चमड़े से बाहर नही निकल सकते। लाखो वर्षो से विकसित हमारी संस्कृति ने उस सारे रंगमंच को पहले से ही सजा दिया है। जिस पर हम अपनी भूमिका पेश करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सच्चिदानंद सिन्हा, संस्कृति और समाजवाद
2. बृहत हिन्दी कोश सपा० कालिका प्रसाद एवं अन्य, पृ० सं० 1178
3. द प्रेक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, सपा० पी० के० गौड़, सी० जी० कार्पे, पूना प्रसाद प्रकाशन, पृ० सं० 24
4. डॉ० देवराज, भारतीय संस्कृति, पृ० 21
5. डॉ० रांगेय राघव, संस्कृति और समाजशास्त्र, पृ० 6
6. डॉ० मुंशीराम शर्मा, आक्सफोर्ड डिक्शनरी, वाल्यूम- 2, पृ० सं० 1
7. IIt is best understood intensively as humanity's effect to assert its inner Independent being - bacon (अवतरित डॉ० रामसजन पांडेय, संतो की सांस्कृतिक संसकृति, पृ० 27)
8. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता- मनु 3/56
9. भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, पृ० सं० 619
10. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, पृ० सं० 35

"जॉन डीवी के शैक्षिक दर्शन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"

डॉ० मारकण्डेय दीक्षित

Asst. Professor, Regional Institute of Education NCERT, Bhubaneswar

शोधपत्र का सार-

जॉन डीवी बीसवीं शताब्दी के एक ऐसे प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हैं, जिनके शैक्षिक विचारों के सम्बन्ध में विमर्श करने पर शिक्षा को एक नई दिशा मिलती है। डीवी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान अतुलनीय, प्रशंसनीय एवं अद्‌भुत है। यह कहना कि उन्होंने केवल शिक्षा के क्षेत्र में योगदान किया उनके साथ अन्याय होगा उन्होंने अन्य क्षेत्रों राजनीतिशास्त्र, मानववाद, तर्कशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। यह शोध पत्र उनके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये गये योगदान का उल्लेख करने तक सीमित होगा। इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयास होगा कि उन्होंने किस प्रकार शिक्षा, लोकतंत्र, अनुभव तथा समाज को आपस में जोड़ने पर बल दिया। डीवी के मानववादी विचारधारा में लोकतंत्र के प्रति झुकाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। डीवी बच्चों के अनुभव तथा उनकी स्वतंत्रता आदि को मूल्यवान मानते है।

तकनीकी शब्द- डीवी, शैक्षिक दृष्टिकोण, मानववाद, शैक्षणिक मुद्दे।

प्रस्तावना:-

यह शोध पत्र डीवी के द्वारा शिक्षा एवं शैक्षिक दर्शन में किये गये अभूतपुर्व योगदान पर आधारित होगा। जान डीवी 20वीं शताब्दी के एक ऐसे महत्वपूर्ण अमेरीकी दार्शनिक तथा शिक्षाशास्त्री हैं, जिन्होंने शिक्षा एवं शिक्षा दर्शन को एक नई दिशा एवं दशा प्रदान किया। वे समाज तथा शिक्षा के क्षेत्र में लोकतंत्र के हिमायती थे। उन्होंने सत्तावादी संरचना का विरोध करते हुए विद्यालयों में पराम्परागत शिक्षण का विरोध किया। उनका मानना था कि परम्परागत शिक्षण के स्थान पर प्रगतिशील शिक्षण विधि को अपनाना चाहिए। शैक्षिक विधाओं में सुधार की वकालत करते थे। शिक्षक, शिक्षा, शिक्षण एवं पाठ्यक्रम में बदलाव लाना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा के केन्द्र में शिक्षक नहीं बल्कि बालक को होना चाहिए। शिक्षा में जो भी परिवर्तन किया जाय वह बालक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाय। शिक्षा में बालक को केन्द्रीय स्थान दिया जाय। आजा डीवी का दर्शन और शैक्षिक विचार सम्पूर्ण विश्व की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है।

इस शोध पत्र में डीवी के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान के तीन क्षेत्रों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जायेगा-

डीवी का शैक्षिक दर्शन

दो विश्व युद्धों का परिणाम, उपनिवेशवाद की समस्या तथा औद्योगिक समाज की समस्या डीवी के विचारों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, डीवी मुख्य रूप से मार्क्स के मुख्य सिद्धान्त वर्ग संघर्ष से प्रेरित थे। मार्क्स का मानना था कि समाज विभिन्न वर्गो में बॅटा है। समाज का उच्च तथा निम्न वर्ग में बॅटवारा है और इन दोनों वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। मार्क्स चाहता था कि वर्गो की संरचना तथा उनके सम्बन्धों के आधार पर सामाजिक विश्लेषण होना चाहिए। डीवी हेवरमेन के विचारों से भी प्रेरित थे। हेवरमेन कान्ट की परम्परा से आते हैं और उनका विचार था कि शिक्षा ही एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके द्वारा समाज को और मानवीय न्यायपूर्ण तथा समानाधिकारी समाज बनाया जा सकता है।

डीवी अपनी पुस्तक "डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन" में अपना दर्शन देते हुए लिखते हैं शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा सामाजिक सुधार हो सकता है। वे शिक्षा को एक ऐसे शसक्त साधन के रूप में देखते हैं जो समाज में सुधार कर सकती है, लोकतंत्र की स्थापना कर सकती है, आर्थिक सुधार कर सकती है और समाज को विकास के पथ पर अग्रसर कर सकती है। डीवी के लिए राजनीतिक विचारों को लागू करने का साधन शिक्षा ही है। समाज को अच्छा स्वरूप देने के लिए आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान तथा सामाजिक बुद्धि से सम्पन्न किया जाय।

18वीं शताब्दी में विकासशील विद्यालयों (Progressive schools) की स्थापना इसीलिए की गयी थी कि शिक्षा के परम्परागत विद्याओं से अवकाश मिले और बालक के बौद्धिक विकास पर अधिक से अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाय। यद्यपि कि डीवी विकासशील विद्यालयों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि केवल स्वतंत्रता देने से काम नहीं चलेगा, बल्कि सीखने को अनुभव के आधार पर आधारित करना होगा। उसके विकास के लिए प्रयास करना पडेगा। दूसरी तरफ रूसो पेस्टालॉजी तथा फ्रोवेल ऐसे दार्शिनिक हैं जो बच्चों को एक बीज की तरह मानते है। उनका मानना है कि बालक का विकास यदि प्राकृतिक ढंग से होगा तो निश्चित ही वह फूलेगा, फलेगा। डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन (1916) में डीवी स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य को ध्यान में रखकर शिक्षण विधियों को अपनाना चाहिए। शिक्षण तथा अधिगम तभी सफल होगा जब पाठ्यक्रम का निर्माण योजनाबद्ध

तरीके से हो, प्रभावशाली हो। वे स्पष्ट कहते हैं कि केवल पाठ्यक्रम या विषयवस्तु अधिगम की निश्चितता नहीं है बल्कि शिक्षक को यह योजना बनाना पडेगा कि वह किस प्रकार छात्र को विषय वस्तु से जोड़े इसके लिए शिक्षक को छात्र की रूचि आवश्यकता बौद्धिक क्षमता उसकी इच्छा आदि को ध्यान में रखना होगा।

बच्चे के अनुभव तथा विभिन्न प्रकार के थोपे गये ज्ञान को लेकर डीवी महोदय चिन्तित थे। उनका मानना था कि थोपे गए ज्ञान तथा छात्र के अनुभव के बीच की खाई बच्चे की प्राकृतिक क्षमता तथा योग्यता को प्रतिबन्धित करती है तथा उसे बाध्य करती है कि वह औपचारिक शिक्षा के निर्देशों का अक्षरशः पालन करें। डीवी समान रूप से प्रोग्रेसिव स्कूल की भी आलोचना करते थे क्योंकि वह भी बच्चों पर ज्ञान को थोपना चाहता था, जबकि डीवी महोदय ज्ञान थोपना नहीं चाहते थे, वे छात्र ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करना चाहते थे। वे बालक की स्वतंत्रता को सम्मान देना चाहते थे, क्योंकि वे उदारवादी, स्वतंत्र समाज की आवधारणा से प्रेरित थे। उनका मानना था कि एक ऐसे स्वतंत्र तथा समानता वाले समाज की स्थापना होना चाहिए, जिस पर राजसत्ता का किसी भी प्रकार का दबाव रहे, व्यक्ति और समाज सभी प्रकार से स्वतंत्र हों। ऐसे समाज में ही बालक का विकास उचित ढंग से हो पायेगा।

शिक्षा का दर्शन एवं अनुभव

डीवी के शिक्षा दर्शन में हम देखते है कि बच्चे के जीवन और उसके अनुभव में नजदीकी का सम्बन्ध है। अनुभव एक निरन्तर प्रक्रिया है जो शिक्षा के उददे्श्य से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार शिक्षा बच्चे में सामाजिक दक्षता प्रदान करने में समर्थ है, शिक्षा यदि ऐसा नहीं कर पाती तो वह बेकार है। डीवी अनुभव की निरन्तरता तथा परस्पर क्रिया में एक मजबूत सहसम्बन्ध देखते हैं। समाज में परस्पर क्रिया द्वारा बालक चीजों को अपने अनुभव में लाता है। ऐसे निरन्तर घटित होने वाली परस्पर क्रियाओं के द्वारा वातावरण का निर्माण होता है। ऐसे वातावरण में हमारी परिस्थितियों तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं उददे्श्यों में भी परस्पर क्रिया होती है और सम्पूर्ण जीवन के लिए अनुभवों की संरचना होती है। इन अनुभवों को शिक्षक के द्वारा मूल्य प्रदान किया जाता है सही दिशा में मोड़ दिया जाता है, जिससे बालक को एक प्रभावशाली व्यक्तित्व की प्राप्ति होती है। डीवी महोदय खेल का उदाहरण देते हुए कहते है कि बच्चे खेल में स्वेच्छा से सभी बच्चे नियमों का पालन करते है ताकि खेल चल सके। इसी प्रकार बच्चे कक्षा की क्रियाओं में भी जब समूह में भाग लेते है तो स्वेच्छा से नियमों का पालन करते हैं और वह कक्षा क्रिया पूर्ण हो जाती है। यह अधिगम की प्रक्रिया बच्चों को सोचने की स्वतंत्रता, न्याय करना तथा अपने निर्णयों को लागू करने की अनुमति देता है। ऐसे अधिगम अनुभवों का एक निश्चित उददे्श्य होना चाहिए। आस-पास के वातावरण की समझ होनी चाहिए पहले क्या घटित होगा इस बात का ज्ञान होना चाहिए। ऐसी संरचनात्मक परस्पर क्रिया एक कार्य योजना के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

डीवी का मानववादी दृष्टिकोण बालक को सम्पूर्ण अधिगम प्रक्रिया का मुख्य अभिकर्ता स्वीकार करता है। बालक इसलिए नहीं हैं कि उस पर कोई भी सूचना, ज्ञान जबरदस्ती थोप दिया जाए। वह स्वतंत्रत व्यक्ति है जो अपनी निजी अभिवृत्ति एवं अभिरूचि रखता है। अधिगम प्रक्रिया में वह सक्रिय रूप से भाग लेता है, वह समाज का एक अभिन्न सदस्य भी है जो सामाजिक अनुभवों में सक्रिय रूप से भाग लेता है।

अनुभव एक दोहरी प्रक्रिया है, क्योंकि अनुभव के द्वारा समझ भी विकसित होती है और हम अपने आस-पास के वातावरण प्रभावित होते हैं तथा उसको प्रभावित भी करते हैं। इसलिए शिक्षा को बालक के उन सभी अनुभवों से जुड़ा होना चाहिए, जो विद्यालय में प्राप्त हो या विद्यालय के बाहर प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त हो। एक विशेष अनुभव का परीक्षण इस आधार पर होना चाहिए कि इस अनुभव से विकास कितना होता है। विकास से डीवी का तात्पर्य यह है कि इस बात की समझ विकसित हो कि विभिन्न अनुभवों एवं परस्पर क्रियाओं में किस प्रकार का सम्बन्ध है। एक अधिगम अनुभव का दूसरे अधिगम अनुभव से कैसा सम्बन्ध है। डीवी के अनुसार अनुभव निरन्तर घटित होता रहता है क्योंकि जीवित जीवों की आपस में सदैव परस्पर क्रिया होती रहती है और वे वातावरण का निर्माण करते रहते हैं।

डीवी की शिक्षण विधियॉ उनके दर्शन प्रयोजनवाद पर आधारित है और उनका मानना है कि प्रत्यक्ष अनुभव सभी शिक्षण विधियों का आधार है। कोई भी प्रासंगिक ज्ञान या सूचना कुछ न कुछ अनुभव रखती है और इसको व्यक्ति के जीवित अनुभवों से जोड़ा जा सकता है। उनके अनुसार ज्ञान का निर्माण अर्थपूर्ण परिस्थतियों में ही होता है और वह बालक की तत्क्षण क्रियाओं के द्वारा होती है। डीवी की शिक्षण विधि "करके सीखो" पर आधारित है। शिक्षण तथा अधिगम का यह दृष्टिकोण योजना पद्धति समस्या समाधान विधि आदि रणनीतियों का अनुगमन करती है।

डीवी की यह मांग थी कि बच्चो पर पाठ्यक्रम थोपा न जाय, बल्कि पाठयक्रम का निर्माण करते समय बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नता, क्षमता तथा उनके अनुभवों को ध्यान में रखा जाय। डीवी की पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचारधारा मानवशास्त्र, मनोविज्ञान तथा सामाजिक दार्शनिक परिपेक्ष्य मे ंथा। यह बच्चों को एक छोटे से जीव के रूप में देखता है और उनके विकास के लिए उद्दीपकों के बारे में सोचता है।

डीवी अनुभवात्मक अधिगम का समर्थन करते है, सहयोगात्मक एवं अनुभवात्मक अधिगम के लिए प्रेरित करते हैं और ऐसा अनुभवात्मक ज्ञान लेने को कहते है जिसके द्वारा नए कौशलों का विकास हो तथा ज्ञान में वृद्धि हो। अनुभवात्मक ज्ञान बालक की जिज्ञासा को बढ़ा देता है और कक्षा क्रियाओं को करने के लिए उददे्श्य प्रदान करता है या यों कहें कक्षा क्रियाओं को उददे्श्य

बना देता है। विश्व के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण बदल देता है और विद्यालय की क्रियाओं में सहभागिता करने के लिए प्रेरित कर देता है।

डीवी के प्रयोजनवादी दर्शन के अनुसार शिक्षा अनुभवों का घर है जहां प्रत्यक्ष अनुभव होता है जहां व्यक्ति दूसरों के साथ अनुभव के द्वारा सीखता है। अधिगम एक ऐसी विधा है जो सिद्धान्त तथा अनुभव को एक में समाहित करती है। शिक्षा के सिद्धान्त का निर्माण करने में डीवी दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं। वे देखते है कि शिक्षा बच्चों की कल्पना शक्ति को मजबूती प्रदान करती है और वे ऐसा महसूस करते हैं कि यह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उददेश्य भी है। सभी विद्यार्थियों को निर्देशित करना खासकर किशोरावस्था के बालकों का मार्गदर्शन करना शिक्षक की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। यद्यपि कि डीवी के इस विचार को कि "अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए" की कुछ लोग आलोचना करते है, उनके शैक्षिक विचार पर प्रश्न उठाते है। अनुभव के द्वारा अधिगम किस प्रकार संचालित किया जाय यह समझ के परे हो जाता है। डीवी के कार्यो में कही भी उददे्श्यपूर्ण अनुभव या वर्गीकृत अनुभव नहीं दिखता है। इस तथ्य का मूल्यांकन कैसे किया जाय कि किस अनुभव द्वारा बालक का विकास होगा और किसके द्वारा नहीं होगा। यह भी हम कैसे जाने कि अमुक अनुभव के द्वारा बच्चा ज्यादा ज्ञानवान परिपक्व और वुद्धिमान हो रहा है और किसके द्वारा कम। अधिगम का उद्देश्य क्या है? और अधिगमकर्ता अनुभवात्मक अधिगम के द्वारा अन्त में कहां पहुंचेगा? शिक्षक यहां पर अपने को दिशाहीन महसूस करते हैं यदि अधिगम पूर्णत: अनुभव पर आधारित है तो एक टर्म में कितने अनुभवों की योजना बनायी जाय यह भी स्पष्ट नहीं है। समान अनुभवों पर शिक्षकों द्वारा किस प्रकार प्रतिक्रिया दिया जाय, फीडबैक कैसे दिया जाय। ऐसा महसूस होता है कि ऐसी स्थिति में शिक्षक की मानसिक स्थिति जल्दी ही असंतुलित हो जायेगी। इस पर कोई अग्रिम अध्ययन भी नहीं हो सकता है कि बच्चों के किस अनुभव को अधिगम उद्देश्यों में स्थान दिया जाय और किसको न दिया जाय। कोई इस तरह का स्पष्ट मार्गदर्शन भी नहीं मिलता है, जिसके द्वारा यह स्पष्ट हो सके कि परिवर्तन का एजेन्ट प्रबन्धक, शिक्षक, प्रधानाध्यापक या शैक्षिक अधिकारी में से कौन होगा? शिक्षा के लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया में समाज की क्या भूमिका होगी? माता-पिता की क्या भूमिका होगी? इन प्रश्नों पर डीवी के द्वारा कोई स्पष्ट दिशा निर्देश नहीं दिया गया है।

बालक तथा शिक्षक की भूमिका

एक शिक्षाशास्त्री के रूप में डीवी का झुकाव अधिगमकर्ता की आवश्यकताओं तथा व्यक्तिक विभिन्नता की ओर है। डीवी के अनुसार शिक्षकों को यह महसूस करना चाहिए कि सभी प्रकार के शिक्षण व अधिगम के लिए एक व्यक्ति नहीं हो सकता। अधिगम प्रक्रिया योजनाबद्ध होनी चाहिए तथा अधिगमकर्ता के वर्तमान अनुभवों, पूर्व अनुभवों अभिवृत्ति तथा अभिरूचि को ध्याान में रखकर ही शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया की योजना बनाना चाहिए। शिक्षकों को छात्र की अभिवृत्ति तथा अभिरूचि के अनुसार ही समस्या देना चाहिए तथा समस्या का हल करने में उसकी मदद भी करना चाहिए। उसके समस्या समाधान कौशल का विकास करना चाहिए। एक शिक्षक का प्राथमिक उद्देश्य यह है कि वह बच्चों की स्वतंत्रता में अभिवृद्धि करे तथा अपने वातावरण को समझने में सक्षम बनाये।

डीवी बहुविषयक पाठ्यक्रम का समर्थन करते थे या एक ऐसा पाठ्यक्रम चाहते थे जो विभिन्न विषयों को जोड़ने पर ध्यान केन्द्रित करे। जहां छात्रों को कक्षा के अन्दर बाहर जाने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। बालक स्वतंत्रतापूर्वक अपनी अभिरूचि के अनुसार अपने ज्ञान प्राप्ति के मार्ग का निर्माण करे। शिक्षक को अधिगमकर्ताओं के साथ निरन्तर परस्पर अन्त:क्रिया बनाये रखना है। शिक्षक अधिगमकर्ता समूह के सक्रिय सदस्य होते हैं और अनुभवों के चुनाव में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है साथ ही वे शैक्षिक अनुभवों को उचित दिशा भी प्रदान करते हैं।

डीवी अपनी शिक्षा व्यवस्था में अधिगमकर्ता को हमेशा केन्द्र में रखना चाहते है जबकि परम्परागत शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक केन्द्र में होता था। डीवी को छात्र केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। डीवी कहता है बच्चों को यह नहीं बताया जाना चाहिए कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है, उन्हें स्वयं अपने अनुभव के द्वारा अच्छे बुरे की पहचान करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। डीवी मुख्य रूप से बालक के अपने व्यक्तित्व विकास पर बल देना चाहते थे। परम्परागत शिक्षा में बालक की आवाज को दबा दिया जाता था और मनमाने ढंग से उसके उपर पाठ्यक्रम, विषयवस्तु तथा सिद्धान्त थोप दिये जाते थे। डीवी मानते थे कि बच्चा ही समाज का एक ऐसा सदस्य है जिसको हमेशा सताया जाता है, जिसके उपर शिक्षा जगत के लोग अपनी नीतियां प्रत्यक्षत: थोप देते हैं और फिर उसको नियंत्रित करने का प्रयास करते है। डीवी एक व्यक्ति के रूप में बालक के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना चाहते थे। वे चाहते थे कि बच्चों को अपना निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो, अपने निर्णय के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता हो, अधिगम में चुनाव की स्वतंत्रता हो और लोकतंत्रात्मक अधिगम प्रक्रिया में वह सहभागिता कर सके। बालक प्रकृति से जिज्ञासु, सामाजिक तथा सरंचनात्मक होता है। वह एक कच्चे माल की तरह होता है। उनको अनुभव के द्वारा मन चाहा रूप दिया जा सकता है। इसलिए शिक्षकों की यह जिम्मेदारी है कि वे छात्र के लिए एक सकारात्मक एवं संरचनात्मक वातावरण का निर्माण करें, जिससे बालक को सकारात्मक शैक्षिक अनुभव दिया जा सके। ऐसा सकारात्मक वातावरण शिक्षक और छात्र दोनों के सहयोग से ही निर्मित हो सकता है, जहां दोनों साथ-साथ शिक्षण अधिगम की प्रभावशाली विधियों को अपना सके। छात्रों को अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बनाना ही उद्देश्य होना चाहिए। इस प्रकार डीवी विद्यालय को एक ऐसे समाज के रूप में देखते है जहां छात्र सक्रिय रूप से सहभागिता करते है।

निष्कर्ष

यद्यपि कि शिक्षा, राजनीति, मानववाद तर्कशास्त्र तथा सौन्द्रर्यशास्त्र के क्षेत्र में डीवी के असंख्य कार्य तथा योगदान हैं, लेकिन यह शोधपत्र उनके द्वारा शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में किये गये योगदान तक ही सीमित है, जिसमें केवल लोकतंत्र और अनुभव को बालक के विकास के लिए आवश्यक माना गया है। डीवी द्वारा किये गये कार्यो तथा सिद्धातों को एक छोटे से शोध पत्र में समाहित करना चूनौतीपूर्ण कार्य है। डीवी अपने लम्बे कार्यकाल में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत से सुधार किये सबसे महत्वपूर्ण कार्य है शिक्षा को बालकेन्द्रित बनाना। डीवी का दर्शन बालक के चौमुखी विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, बालक को समाज का एक मूल्यवान एवं अभिन्न सदस्य मानता है। बच्चों की स्वतंत्रता एवं समानता की बात करते है और लोकतंत्रात्मक आदर्शो को अपनाने की बात करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में डीवी के द्वारा बताये गये मार्ग को अपनाने वालो को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। डीवी की सबसे महत्वपूर्ण आलोचना यह होती है कि उन्होंने कोई स्पष्ट सिस्टम नहीं बताया कि अनुभव को शिक्षण कार्य में किस तरह शामिल किया जाय, बच्चे के विकास को कैसे मापा जाय तथा पाठ्यक्रम का निर्माण किस प्रकार किया जाय। इन आपत्तियों के बावजूद डीवी का नाम समकालीन शिक्षाशास्त्रियों में पूरे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आज भी डीवी द्वारा किये गये कार्यो पर निरन्तर शोध कार्य चल रहा है। डीवी के कार्यो को समझने का प्रयास हो रहा है। अधिकांश लोग उनके द्वारा शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में दिये गये सिद्धान्तों को विद्यालयों में लागू करने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थः-

1- Dewey J _1934¼ Art as experience new York Capricorn
2- Dewey J _1916¼ Democracy and education, the mac Millan company.
3- Dewey J _1915¼ Schools of tomorrow E.P.k~ Dutfon & company newyork.
4- Dewey J _1910¼ How we think.k~ D.C.k~ Heath & com.k~ Chicago.
5- Dewey J _1897¼ The Psychology of eff~ort the Philosophical review 6_i¼ 43-56

स्वतंत्रता संघर्ष और विभिन्न शैक्षिक सिद्धांत

अरुण कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

समाजवादी: औधोगिक क्रांती से कामगारों एवं मजदूरों की दशा जहां सोचनीय हुई वहीं पूंजीपतियों की दशा में उत्तरोतर वृद्धि होती गई। पूंजीपति अपना मुनाफा और बढ़ाने के लिए श्रमिकों का शोषण करने लगे, फलत: श्रमिकों की दशा और भी ज्यादा गिर गई। कुछ विचारकों ने मजदूरों की दशा सुधारने के लिए एक नवीन विचारधारा का प्रतिपादन किया जिसे समाजवादी विचारधारा कहते है। उनके अनुसार उत्पादनों के साधनों पर एक व्यक्ति का अधिकार नहीं होना चाहिए बल्कि पूरे समाज का अधिकार होना चाहिए। इस संदर्भ में ब्रिटेन के उद्योगपति रॉर्ट ओवेन, सेंट साइमन (कास), लुई ब्लाक जैसे विचारकों का नाम महत्वपूर्ण है. किन्तु 1848 ई० में कालमार्क्स एवं एन्जेलस ने कम्यूनिष्ट घोषणा पत्र जारी कर वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना की।

औद्योगिक श्रमिकों को सर्वहरा की संज्ञा दी जिसके पास खोने के लिए पांव की बेड़ियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था और जीतने के लिए सारा संसार पडा था। भारत के संदर्भ में देखा जाय तो कांग्रेस के अन्दर समाजवादी धारा की अभिव्यक्ति जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, जय प्रकाश नारायण, नरेन्द्र देव जैसे नेताओं के द्वारा हुई। इन लोगों के विचार में भारत की आर्थिक दुर्व्यवस्था के लिए यहां कि दोषपूर्ण उत्पादन प्रणाली जिम्मेदार थी। 1929 में अमेरिका की आर्थिक मंदी का प्रभाव वैश्विक स्तर पर पड़ा।

पूजीवादी देशों में उत्पादन और विदेशी व्यापार में बहुत बड़ी गिरावट आने से जनता की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई और बेरोजगारी में अप्रत्याशित वृद्धि हुई दूसरी ओर सोवियत संघ ने अपने 1929 और 1936 की दो पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता जिससे यहां के औधोगिक उत्पादन में चार गुणा से भी अधिक की वृद्धि हुई। इस प्रकार से विश्व व्यापी मंदी के कारण पूजीवादी प्रणाली बदनाम हो गई और लोगों का ध्यान मार्क्सवाद, समाजवाद और आर्थिक नियोजन के विचारधारा की ओर हुई। परिणाम स्वरूप अधिकाधिक लोग विशेषकर युवक, मजदूर, किसान समाजवादी विचारों की खिचने लगे। काग्रेस ने एक समय उत्तर भारत में वह दिन भी देखा था जब जाट लोग कांग्रेस की बातों को नहीं मान रहे थे। जाटो के लड़के रोज सवेरे प्रभात फेरी करते हुए गाते थे मांग रहा है हिन्दुस्तान, रोटी कपड़ा और मकान। सोशलिस्ट पार्टी का ऐलान, मत देना दस गुणा लगान,[1]।

कांग्रेस के अन्दर समाजवादी प्रवृति के सशक्त होने का सबल प्रमाण यह था कि 1929, 1936, 1937 में जवाहर लाल नेहरू तथा 1938, 1939 में सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए विजयी हुए। नेहरू का तर्क था कि राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ जनता की आर्थिक शक्ति, खासकर मेहनती किसानों की सामन्ती शोषण से मुक्ति होनी चाहिए। 1936 के लखनऊ अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने कहा था कि वह समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाए तथा खुद को किसान और मजदूर वर्गो के और भी पास लाए उन्होंने कहा: मेरा विश्वास है कि विश्व की समस्याओं और भारत की समस्याओं का एकमात्र सामाधान समाजवाद है और जब मैं इस शब्द का उपयोग करता हूँ तो इसे अस्पष्ट मानवतावादी नहीं बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक अर्थ में करता हूँ ..... 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस थे।

इस समय कांग्रेस में आर्थिक योजना का विचार अपनाया और नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति बनाई। 1933 में गांधीजी ने नेहरू से सहमत होकर कहा था कि निहित स्वार्थों में एक बड़े परिवर्तन के बिना जनता की स्थिति को कभी नहीं सुधारा जा सकता। उन्होने 'जमीन जोतने वालों की' का सिद्धांत भी मान लिया और 1942 में घोषणा की कि जमीन उनकी है, जो उसपर मेहनत करते है और किसी की नहीं।

ज्ञात है कि समाजवादी संगठनों व व्यक्तियों द्वारा स्वराजियों और अपरिवर्तनवादियों दोनों की ही आलोचना की जाती थी। यह पूर्ण स्वराज के नारे के रूप में अधिक सुसंगत साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण की मांग कर रहे थे। इनमें अंतरराष्ट्रीय प्रवृतियों की एक असस्पष्ट सी, किन्तु फिर भी महत्वपूर्ण चेतना थी और वे राष्ट्रवाद को सामाजिक न्याय से जोड़े जाने की आवश्यकता अनुभव करते थे। नेहरू ने 1926-27 में यूरोप की यात्रा किया था, जो उनके विचारों में निर्णायक परिवर्तन लाया।

सांप्रदायिक दंगों के अनुभव ने पहले ही उनके मन में इस धारणा को दृढ़ कर दिया था कि यदि भारत में धर्म पर अंकुश नहीं लगाया गया तो यह इस देश और इसके लोगों को बर्बाद कर देगा। एस० गोपाल का दृढ विचार है कि नेहरू के मानसिक विकास में निर्णायक क्षण उस समय आया जब उन्होने ब्रुसेल्स की उस काग्रेस में सक्रिय भाग लिया, जो फरवरी 1927 में औपनिवेशिक दमन और साम्राज्यवाद के विरुद्ध हुई थी। इस कांग्रेस ने नेहरू को समाजवादी तीसरी दुनिया की राष्ट्रवादी शक्तियों के बीच साम्राज्यवाद विरोधी एकजुटता की दृष्टि दी, इस दृष्टि के अनुरूप उन्होने सदैव कार्य तो नहीं किया, किन्तु इसे वे कभी पूरी तरह छोड़ भी नहीं पाए।

नेहरू को साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय स्वाधीनता समर्थक लीग का मानद अध्यक्ष नियुक्ति किया गया, जिसका प्रारंभ

बुसेल्ला में हुआ था। नवंबर 1927 में उन्हें और उनके पिता को सोवियत संघ आमंत्रित किया गया। इस यात्रा के संबंध में द हिन्दू में उन्होंने जो लेख लिखे उसनें यह स्पष्ट रूप से दर्शा दिया कि नेहरू पर सोवियत रूस का कितना गहरा प्रभाव पड़ा था।[2] हंसिये और हथौड़े का देश, जहां मजदूर और किसान शक्तिशाली के सिहासनों पर बैठते है। उनकी पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर विलियम वर्डस्वर्थ की वे पक्तियां उद्घृत थी जो कवि ने फ्रांसीसी क्रांति पर लिखी थी। 'अति आनंद था उस अरूणिम प्रभात में जीना किन्तु युवा होना तो स्वर्गिक ही था। ध्यातव्य है कि कुछ साम्यवादियों यथा ए० के० गोपालन एवं इ० एम० एस नंबूदरीपाद ने कांग्रेस समाजवादी दल की सदस्यता ग्रहण कर ली। किन्तु वैचारिक मतभेद के कारण ये इसमें बहुत दिनों तक टिक नहीं सकें क्योंकि साम्यवादियों ने यह कहा था कि ये समाजवादी मार्वसवाद को तोड़-मरोड़कर पेश कर रहे थे। दूसरी तरफ समाजवादियों ने साम्यवादियों को सोवियत रूस का अंधा समर्थक कहकर उनकी घोर निंदा की। दिसंबर में 1939 बोल्सेविक में जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि इन साम्यवादियों ने कांग्रेस समाजवादी दल को तोड़ने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। अत: ये साम्यवादी समाजवादी दल के कट्टर दुश्मन है।

उक्त विचारों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय आदोलन में समाजवादी आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप ही कांग्रेस में निरपेक्ष असम्प्रदायिक स्तर पर भारतीय जनता की रहनुमाई करते हुए भारतवासियों की मुक्ति के लिए सघर्ष किया और उसे तार्किक परिणति प्रदान किया।

साम्यवाद:- 1917 की बोल्सेविक क्रांति की सफलता ने मार्वसवादी विचारधारा को साकार रूप प्रदान किया। समाजवाद का व्यावहारिक रूप सामने आया। किसान, मजदूरों, दलित वर्गों में यह विचारधारा लोकप्रिय हुई। अत: रूस में सफलता के बाद यह विचारधारा अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित होने लगी। अंतराष्ट्रीय स्तर पर साम्यवादी विचारधारा के प्रचार प्रसार हेतु मार्च 1919 में प्रथम कम्यूनिष्ट इटरनेशनल (कॉमिन्टर्न) की स्थापना की गई। इसकी स्थापना के साथ ही सोवियत साम्यवादी पार्टी ने इस बात को जाहिर कर दिया कि विश्व भर में साम्यवादी पार्टियों के साथ सोवियत सरकार भाईचारा बरतेगी। चीन के माओत्से-तुंग और वियतनाम के हो-ची-मिन्ह के संदर्भ में इसे समझा जा सकता है जो कॉमिन्टने द्वारा प्रोत्साहित हुए।

भारतीय साम्यवाद की जड़े राष्ट्रीय आदोलन के भीतर से ही पनपी थी। ये वो क्रांतिकारी थे जिनका मोहभंग हो चुका थां असहयोग आंदोलनकारी, खिलाफत आंदोलनकारी, श्रमिक और किसान आंदोलनों के सदस्य राजनीतिक एवं सामाजिक उदार के नए मार्ग खोज रहे थे। इसके संस्थापक प्रख्यात युगातर क्रांतिकारी (मानवेंद्रनाथ राय) थे। जिन्होंने 1919 में मेक्सिकों में बोल्शेविक मिखाइल बोरीदीन के संपर्क में आए। यहां उन्होने कम्युनिष्ट पार्टी बनाने में सहायता की और 1920 के ग्रीष्म में कम्युनिष्ट इंटरनेशनल के दूसरे अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए मास्को चले गए।

लेनिन और मानवेद्रनाथ राय के पहल पर मास्को में विवाद हो गया, जिसमें लेनिन का विचार था कि उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों में बुजुर्वा नेतृत्य वाले आदोलनों को मोटे तौर पर समर्थन दिया जाए। मानवेद्रनाथ राय का विचार था कि भारत में जनसामान्य का पहले ही गांधीजी जैसे बुजुर्ग राष्ट्रवादियों से मोहभंग हो चुका है और वह बुजुर्वा राष्ट्रीय आदोलन से स्वतंत्र रहकर ही क्राति की ओर अग्रसर है। राष्ट्रीय बुजुर्वा वर्ग और आमतौर पर राष्ट्रवाद की मुख्यधारा से संबंधित दृष्टिकोण स्वतंत्रता मिलने तक और उसके बाद भी कम्युनिष्ट आंदोलन के अंदरूनी विवादों का मुख्य मुद्दा बना रहा।

अक्टूबर 1920 में एम० एन० राय, अवनी मुखर्जी, गुहम्मद अली, मुहम्मद शफीक जैसे कुछ मुहाजिरों ने मिलकर ताशकंद में 'कम्युनिष्ट पार्टी ऑफ इंडिया' सी० पी० आई० और एक राजनीतिक सैनिक स्कूल की स्थापना की, वर्ष 1921 के आरंभ में जब अफगानिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश की संभावना नहीं रही तब कुछ नये युवा जो कम्युनिष्ट बने भारतीय मारकों की कम्यूनिष्ट यूनिवर्सिटी ऑफ द टॉयलर्स ऑफ दि ईस्ट' में भरती हो गए। स्वयं एम० एन० राय भी 1922 में अपना मुख्यालय बर्लिन ले गए, जहां से वैन्गार्ड ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस' नाम से एक पाक्षिक और अवनी मुखर्जी के सहयोग से 'इंडिया इन ट्राजिशन' प्रकाशित करने लगे, जो भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के मार्बसवादी विश्लेषण का प्रथम प्रयास था।

पुराने बर्लिन समूह में सम्मिलित भूपेन्द्रनाथ दत्त, बरकातुल्लाह, बीरेन्द्रनाथ चष्ट्टोपाध्याय थेद्य जिनकों की रूस का समर्थन प्राप्त करने की सम्भावना थी परंतु एम० एन० राय० के गुटवादियों ने इसे विफल कर दिया। किंतु उन्होंने अगले ही वर्ष बर्लिन में 1922 में 'इंडिया इंडिपेडेस पार्टी' की स्थापना कर ली थी। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 1920 के मध्य दशक तक गदर आंदोलन के महत्वपूर्ण सदस्य रत्नसिह, संतोखसिंह और तेज सिंह के नेतृत्व में कम्युनिष्ट हो चुके थे। कलकता की 'आत्मशक्ति' और घुमकेतू तथा गुटूर की नवयुग' जैसी बामपंथी राष्ट्रवादी पत्रिकाएं लेनिन और रूस की प्रशंसा में लेख और कभी-कभी चौन्गार्ड के उद्धरणों की व्याख्या छपने लगी थी।

अगस्त 1922 में डांगे बबई से सोशलिस्ट नाम का सप्ताहिक निकालने लगे थे, जो निश्चय ही भारत में प्रकाशित होने वाली पहली कम्युनिष्ट पत्रिका थी। सिंगारवेलु ने मई 1923 में लेबर किसान पार्टी के गठन की घोषणा की। कांग्रेस के गया अधिवेशन दिसंबर 1922 में सिंगारवेलू ने थोड़ी सी सनसनी उत्पन्न कर दी। उन्होनें खुले रूप से विश्व के कम्युनिष्टों की महान परंपरा' का हवाला दिया और स्पष्ट कहा कि बारदोली में पीछे हटना भारी भूल थी और बल देकर कहा कि असहयोग आदोलन के साथ राष्ट्रीय हड़ताल करने की भी आवश्यकता है।

वैन्गुअर्द के आरंभिक अकों (मई-जून) में गांधीजी का विश्लेषण आलोचनात्मक तो रहता था किंतु पैसा कदापि नहीं, जैसा 1928 के बाद से होने लगा था जिसमें उन्हें बुर्जुवा वर्ग का ताबीज मात्र कहा जाने लगा था। इनमें अपने देश के कष्ट में पड़े हुए देशवासियों के लिए गांधीजी के गहरे प्रेम को स्वीकार किया गया था और कहा गया था कि उनकी अनेक राजनीति संबंधी दलों के बावजूद यह प्रेम उदात था। इनमें उनकी आंतरिक शक्ति की बड़ी प्रशंसा की गई थी ऐसी शक्ति जिसे न तो युद्धपोत जीत सकते है, न ही मशीनगन पराजित कर सकती है[33]।

शापुरजी सकलतवाला इग्लैण्ड की पार्लियामेंट में कम्युनिष्ट सदस्य के रूप में प्रवेश कर चुके थे। 1927 में उनकी भारत यात्रा ने कम्युनिज्म में आम रूचि जाग्रत कर दी थी। कांग्रेस के वाले आधिपत्यवाले नगर निगमों ने उनका नागरिक अभिनंदन किया, यहाँ तक कि गांधीजी ने उनके सौहार्दपूर्ण विचार-विमर्श किया। बंगाल से प्रकाशित बंगला पत्रिकाएं लांगल और गणवाणी तथा पंजाब से भी 1926 में प्रकाशित 'किरती पत्रिका' ने साम्यवादी विचारधारा का प्रचारित प्रसारित किया था। 1927 में बम्बई में स्थापित मजदूर किसान पार्टी 'क्रांति' नाम से मराठी पत्रिका निकालती थी।

उक्त विचारों के प्रकाश में कहा जा सकता है कि आरंभिक समय में साम्यवादियों के पास कार्यकताओं की कमी के कारण ही गांवों में उनकी पैठ नहीं हो सकी थी। दूसरी ओर चीनी क्रांति के पूर्व शहरी सर्वहारा के बीच ही कार्य करने को प्राथमिकता दी जाती रही थी। साम्ययादियों ने प्रारंभ से जमींदारी की समाप्ति एवं भूमि के पुनर्वितरण की माँग करते रहते थे। कांग्रेस ने इनकी इन उक्त मांगों को 1930 के मध्य दशक में जाकर उठाना शुरू कर दिया था।

सम्प्रदायवाद: उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत में हिंदू-मुसलमानों के बीच पर्याप्त सदभावना थी। वे आपस में एक साथ मिल-जुलकर रहते थे। 1857 ई० के विप्लव के दौरान में कंधा-से-कंधा मिलाकर अग्रेजों से लड़े। बहादुर शाह जफर समस्त भारत के बादशाह माने जाते रहे, परन्तु अनेक कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध से भारत में साम्प्रदायिक भावना का विकास होने लगा। इसने भारतीय राजनीति को भी प्रभावित किया, जिसका परिणाम भारत-विभाजन के रूप में सामने आया। सम्प्रदायवाद मूल रूप से एक विचारधारा है जिसमें साम्प्रदायिक दंगे इस विचारधारा के अनेक परिणामों में से एक परिणाम है। सम्प्रदायवाद में कुछ लोग किसी एक विशेष धर्म को मानते है, इसलिए उनके पार्थिव हित भी समान होते हैं। भारत में हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई अलग-अलग और विशिष्ट समुदाय है। किसी धर्म के मानने वालों के धार्मिक हित ही नहीं बल्कि पार्थिव हित भी समान होते है।

भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई अलग-अलग और विशिष्ट समुदाय है। किसी धर्म के मानने वाले का धार्मिक हित नहीं बल्कि पार्थिव हित भी समान होते हैं भारत राष्ट्र नाम कि कोई बस्तु नहीं है और न हो सकती है बल्कि इसके बजाए ये केवल 'हिन्दू राष्ट्र' और मुस्लिम राष्ट्र हो सकते है। भारत उपरोका कारण से धार्मिक समुदाय का एक महासंघ मात्र है। सम्प्रदायवाद की एक दूसरी अवधारणा यह है कि किसी धर्म के अनुयायियों के सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक हित किसी दूसरे धर्म के मानने वालों के हितों से भिन्न हाते है। सम्प्रदायवाद की एक तीसरी अवधारणा भी है जो यह ज्ञान देता है कि 'जब विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या विभिन्न धार्मिक समुदायों के हितों को परस्पर विरोधी और शत्रुतापूर्ण समझा जाने लगता है जिसमे कि हिंदुओं और मुसलमानों के पार्थिव हित समान नहीं हो सकते और उनके पार्थिव हितों का एक दूसरे से टकराना निश्चित है।

सारत: समझा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद एक आधुनिक प्रवृत्ति है जिसकी जड़े आधुनिक औपनिवेशिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित है। सम्प्रदायवाद का उदय जनता और औपनिवेशिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित है। सम्प्रदायकद का उदय जनता और उसकी भागीदारी पर आधारित एक नई आधुनिक राजनीति का परिणाम है। देश में एकजुट राष्ट्रीय भावना के विकास को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने बाटो और राज करो की नीति पर और भी सक्रियता काम करने और जनता को धार्मिक आधार पर बबाटने का अर्थात भारत की राजनीति में साम्प्रदायिक और अलगाववादी प्रवृतियों को प्रोत्साहित करने का फैसला किया।

औपनिवेशिक सरकार ने हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों को अलग-अलग समुदाय माना। उन्होने साम्प्रदायिक नेताओं की उनके सहकर्मियों के बास्तविक प्रतिनिधि मानने में कोई देर नहीं लगाई। उन्होने प्रेस, पुस्तिकाओं पोस्टरों, साहित्य और सार्वजनिक मंचों से जहरीले साम्प्रदायिक विचार और साम्प्रदायिकता फैलाने की पूरी छूट दी। राष्ट्रवादी समाचारपत्रों और लेखकों आदि को जिस तरह अक्सर उत्पीडित किया जाता था, यह बात उसके ठीक विपरीत थी। धार्मिक अलगाववाद की प्रवृति के विकास में सर सैययद अहमद खान की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वो एक प्रख्यात शिक्षाशास्त्री और समाज सुधारक थे मगर अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे रुढ़िवादी विचारों के हो गये थे। 1880 के दशक में अपने विचारों को छोड़कर उन्होंने घोषणा की कि हिंदुओं और मुसलमानों के राजनीतिक हित समान न होकर भिन्न-भिन्न बल्कि पूर्णत: अलग-अलग है और इस प्रकार उन्होंने मुस्लिम साम्प्रदायिकता की नीव डाली। उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रति पूर्ण भक्ति का उपदेश भी दिया। 1885 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तो उन्होंने उसका विरोध करने का और बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ मिलकर ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी का आंदोलन चलाने का निश्चय किया। उन्होनें यह भी कहा था कि हिंदू भारतीय जनता का बहुमत भाग है इसलिए ब्रिटिश शासन के कमजोर पड़ने या समाप्त होने पर वे मुसलमानों से आग्रह किया

कि वे बदरुद्धीन तैयब जी की कांग्रेस में शामिल होने की अपील पर कोई ध्यान न दें। यह विचार नि:संदेह अवैज्ञानिक और वास्तविकता से दूर थे।

हम देखते है कि बाद में साम्प्रदायिक इतिहासकारों का दावा था कि भारत में हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों का अलग-अलग अस्तित्व है। भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माताओं ने इस बात की समझा कि एक राष्ट्र के रूप में भारतीयों को ढालना एक धीमा और कठिन काम है और इसके लिए जनता को लंबे समय तक राजनीतिक शिक्षा देनी होगी।

राष्ट्रीय कांग्रेस के 15 वे अधिवेशन में अपने अध्याक्षीय भाषण देते हुए दादाभाई नौरोजी ने स्पष्ट आश्वासन दिया कि कांग्रेस केवल राष्ट्रीय प्रश्न उठाएगी और धार्मिक तथा सामाजिक मामलों में दखल नहीं देगी। हम देखते है कि इन वर्षों में हिंदू और मुस्लिम दोनाँ प्रकार के सम्प्रदायवाद में जैसी वृद्धि हुई वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। सितंबर 1924 में पश्चिमोतर सीमाप्रांत में एक हिंसक हिंदू विरोधी उपद्रव हुआं जिसमें 155 लोग मारे गए, 1926 में कलकता के दंगा में 138 लोग मारे गए। इसी वर्ष ढाका, पटना, रावलपिंडी और दिल्ली में भी उपद्रव हुए। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है सम्प्रदायवाद की पुष्टि करते है। नवंबर 1926 की बंगाल सरकार की रिपोर्ट में गैमनसिंह के ग्रामीण क्षेत्र में साम्प्रदायिक तनाव का संबंध इस जिले के हिंदू जगीदारों और मुसलमान ताल्लुकेदारों या जोतदारों की प्रतिस्पर्धा से बताया गया था।

जो बंगाल टेनेसी एण्ड अमेटभेट अमेंडमेंट बिल में मुसलमान मतदाताओं की गहरी रूचि को प्रतिबिम्बित करता है[4]। इसी प्रकार से 1946 व विभाजन के दौरान जो साम्प्रदायिक दंगे उत्तर पश्चिमी प्रांत में हुए जिसमें महिलाए, वृद्ध, बच्चों तक को नहीं छोड़ा गया था उनकी भी निर्मम हिंसा की गयी थी इसकी पुष्टि होती है। इस दंगे में 230 लोगों की मृत्यु हुई थी। सन् 1940 में की गयी पाकिस्तान की माग के संदर्भ में बांग्लादेश के एक इतिहासकार प्रो० ए० एफ० सलाहुद्दीन अहमद ने मुस्लिम लीग की राजनीति के इस पक्ष का सही मूल्यांकन किया है कि मुस्लिम लीग ने अपने राजनीतिक मागों को प्रकट करने के लिए एक सुनियोजित आंदोलन, दंगे, आरंभ किये थे जिसकी 170 नयी शाखाएं स्थापित हो चुकी थी। जिसमे 90 उत्तरप्रदेश में और 40 पंजाब में। अकेले उत्तरप्रदेश में एक लाख सदस्य बनाये गये थे।

स्वतंत्रता- विभाजन-विस्थापन के कारण उस समय के होने वाले दंगों में अधिकांशत: बच्चे व महिलाएं ही शिकार हुयी थी[5]। विदित है कि गुलाम भारत में पत्नी बेटी, बहु, जमीन की सुरक्षा करना एक बेहद कठिन कार्य था। साम्प्रदायिक दंगों के कारण भू-स्वामियो, अर्द्धसामतो, सुदुरवर्ती क्षेत्रों को दुषित कर दिया था और हिंसक अपराधों की संख्या देखे थे मन दुखी होता है। 30 सितम्बर 1947 तक भारत विभाजन के पश्चात जो हिंसात्मक अपराधो में वृद्धि हुई। इस स्त्रोत के अनुसार बंगाल, उत्तरपश्चिमी सीमा प्रात में मर्डर के 116 डकैती के 24 व साम्प्रदायिक दंगों के कुल 186 मामले प्राप्त होते हैं[6]। पश्चिमोतर सीमा प्रांत, पंजाब, सिंध, बंगाल और आसाम के प्रांत थे, जिन्हें मिलाकर पाकिस्तान बनाने की मांग सन् 1935 में की गयी थी। लेकिन चुनावों में इन क्षेत्रों में मुस्लिम लीग को दयनीय सफलता ही मिलीद्य वहीं उसकी विजय उत्तर प्रदेश जैसे प्रांतों में शानदार रही मुसलमान अल्पमत में थे। किन्तु जहाँ मुसलमानों की जनसंख्या कम थी वहां साम्प्रदायिक दंगों की विभिषिका, अत्यन्त में थे। किन्तु मुसलमानों की जनसख्या कम थी वहाँ साम्प्रदायिक दंगों की विभिषिका, बारंबारता अधिक थी[7]। स्पष्ट है कि आजादी के सभी दहशत का माहौल था। इतिहासकारों ने उसे अपने-अपने अनुभव व अध्यनोपरात लिखा है।

गांधी जी ने लिखा था कि जब तक स्कूलों और कोलेजों में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के द्वारा अत्यंत विकृत इतिहास पढ़ाया जाता रहेगा है तब तक साम्प्रदायिक सदभाव स्थायी रूप से स्थापित नहीं हो सकता। ज्ञात है कि गांधी जी के कथन उच्च प्रतिमानों को प्रस्थापित करते है किन्तु पूर्व में घटित घटनाओं को उपेक्षित भी नहीं किया जा सकता है। अंग्रेजों की बाटो और राज करो की नीति ने सम्प्रदायवाद को बढ़ाने में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। कुछ एक उदाहरण है: पूर्वी-बंगाल नोआखली, बिहार के साम्प्रदायिक दंगे इतने हिंसक और व्याभिचारितपूर्ण थे कि हमारा मस्तक शर्म से नीचे झुक जाता है। जिसमें रक्षकों ने भक्षक की भूमिका निभायी थी[8]।

स्पष्ट है कि 1947 में दिल्ली के चांदनी-चौक दंगे जिसमे महिलाओं, बच्चों यहां तक कि दूध पीते बच्चियों को तलवार से दो भागों में काट दिया गया था। धरों से निकाल-निकाल कर प्रात:काल जब पूजा-पाठ, नमाज अदा करने का समय होता है। उस समय हिंसक साम्प्रदायिक व्यक्तियों ने घरों में बलवती प्रवेशकर यौन उत्पीडन लुट, डकैती व हत्या को अंजाम दिया था[9]। वहीं साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार महिलाए, वृद्धों के साथ अबोध बच्चों को भी बंद किया गया था। जो भोजन, स्वास्थ्य, चिकित्सा की समस्याओं के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए थे[10]।

साम्प्रदायिक दंगों ने तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक परिदृश्य को बदलकर रख दिया था। ज्ञात होता है कि विभाजन के समय व पश्चात बच्चों की तस्करी भी होती थी जिसपर रोक लगानें के लिए तत्कालीन बॉम्बे सरकार ने निर्देश जारी किये थे। जिसमें शारीरिक दण्ड व जेल का भी प्रावधान था[11]। विभाजित परिवार नाम के शीर्षक में बेगम इकरामतल लिखती है कि कलकता के दंगे में उन्होने अपने भाई को खोया था तथा अपराधों की श्रृंखला इतनी बड़ी थी कि व्याख्या करना कठिन है[12]। एक मेवाती की नवजवान पत्नी को सिक्ख उठाकर ले जाते हैं। जब उसका पति एक बार अलीगंज से गुजर रहा था तो एक क्वार्टर में उसकी पत्नी खड़ी नजर आई। पति को देखकर वह रो पड़ी। पति दौड़ा की उसको पकड़ लू मगर तलवार लेकर बहुत से लोग दौड़ पड़े। में निहत्था और कमजोर था जान बचाकर भागा[13]।

सारांश में कहा जा सकता है कि असली जीत तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की हुयी थी। इस बात को हमेशा स्मरण नहीं रखा जाता कि भारत में ब्रिटिश राज को सहारा देने में हिंदू सम्प्रदायवादी नेतृत्व का भी उतना ही हाथ रहा है जितना कि मुस्लिम लीग का। 1921 में असहयोग आंदोलन का कड़ा विरोध करनेवाले और हिंद-हिंदी-हिंदू के प्रचारक मदनमाहेन मालवीय से लेकर श्यामाप्रसाद मुखर्जी तक जिन्होने बाद में जनसंघ की स्थापना की और जो अगस्त 1942 में बंगाल में मंत्री थे, तमाम हिंदू सम्प्रदायवादी ऐसे समय में अंग्रेजी शासन को सहारा दे रहे थे, जब अंग्रेज 'भारत छोड़ो आंदोलन को रक्त में डूबों रहे थे। अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' से तथा चित्रकार सतीश गुजराल की पार्टीशन' सीरीज की पेटीग्गस के देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने रेखाओं और रंगों में विभाजन के वक्त की दहशत और उसके अनेक रूपाकरो में साम्प्रदायिक हिंसा से महिलाओं और बच्चों का बिछुडना, हत्याएं, भूख, प्यास आदि का चित्रण किया है। मानवीय तकलीफ के प्रत्येक पहलू को जिस प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है वह अनुपम है।

इसी प्रकार से इंडिया टुडे' भारत की आजादी की पचासवी वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विशेषांक अगस्त 1997 में दययंती सहगल के स्पष्टीकरण से ज्ञात हाता है कि गुजरात में एक नवाब था जो अपने सिंहासन पर बैठता था और उसी के सामने 8-14 आयु वर्ग की लड़कियों की परेड करायी जाती थी। नवाब लड़कियों को स्पर्श करता था और अधिक उम्र वाली हिन्दू और मुस्लिम लड़कियों को दूसरे विपरीत धर्मावालम्बी वाले अपने राजमहल में ही अधिकारियों और कर्मचारियों को बांट देता था लडकियां मृत्यु के डर से उनका विरोध नहीं करती थी।

संदर्भ

1 आर ० पी० पटवर्धन, सं दादाभाई नौरोजी, कॉरेसपांडेस खंड 2, पृष्ठ- 137।

2 पुष्पा, मैत्रेयी, कस्तुरी कुण्डल बरी, राजकमल, पेपरबेक्स, आई एस बी एन, पृष्ठ- 112, 113।

3 सोवियत रूस नाम से 1928 में प्रकाशित।

4 जी अधिकारी, डाक्यूमेंट ऑफ हिस्ट्री, ऑफ सी पी आई खण्ड- 01, पृष्ठ- 498, 438।

5 गवर्नमेन्ट ऑफ बंगाल पोलिटिकल कांफिडेशियल 516 (1-14) ऑफ 1926।

6 गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया डिपार्टमेन्ट ऑफ होम अफेयर्स प्रोसीडिंगस क्राइम स्टेटिक्स पोलिस सेक्शन- 19471

7 डिपाटमेन्ट ऑफ होम अफेयर्स प्रोसिडिंग्स मिनिस्ट्री ऑफ रिहेबिलीटेसन चिल्ड्रेन गूल मो० एण्ड फातिमा बीबी 1955।

8 डिपार्टमेंट ऑफ होम अफेयर्स प्रोसिडिंग्स चिल्ड्रेन किडनैप क्योंचनस फॉर द लोकसभा बाई सेठ गोविंद दास रिगारडिंग इन दिल्ली होम कलकत्ता, बॉम्बे 1955।

9 रिमेम्बरिंग पार्टीशन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय कैम्ब्रिज यूनियर्सस्टी।

10 डिपार्टमेंट ऑफ होम अफेयर्स प्रोसीडिंग्स सिटिजन प्रोटेक्शन लीग ऑफ नेशंस जेलस 19801

11 डिपार्टमेंट ऑफ होम अफेयर्स प्रोसीडिंग्स ऑफिस ऑफ द चीफ कमीश्नर दिल्ली 1947।

12 गर्वनमेंट ऑफ इंडिया चाइल्ड मैरेज जूडिसिएल प्रोसिडिंग्स 1972।

13 गवर्नमेंट ऑफ बॉम्बे प्रोसिडिंग्स चिल्ड्रेन द बॉम्बे बिल 1948।

भारत में वृद्धावस्थाः जनसांख्यिकी, कमजोरियाँ, और स्वास्थ्य देखभाल चुनौतियाँ

डॉ० तबस्सुम आरा

पी.एच.डी., भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सार

कोरोना वायरस बीमारी (कोविड-19) के कारण वैश्विक महामारी ने पूरी दुनिया में वृद्ध आबादी की कमजोरियों को उजागर कर दिया है। भारत अपनी आबादी में बुजुर्गों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा है। ऐसा बढ़ती जीवन प्रत्याशा और घटती मृत्यु दर के साथ हो रहा है। बदलती जनसांख्यिकी के साथ बच्चों की तुलना में बुजुर्गों की आबादी और मौतें बढ़ रही हैं। शिक्षा, सामाजिक आर्थिक स्थिति, लिंग, निवास स्थान आदि के आधार पर बुजुर्ग आबादी की अपनी कमजोरियां होती हैं। वे विभिन्न गैर-संचारी रोगों से प्रभावित होते हैं जो हृदय रोग, स्ट्रोक, कैंसर, श्वसन संबंधी बीमारियों आदि जैसी रुग्णता और मृत्यु दर का प्रमुख कारण बनते हैं। बुजुर्ग विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं जैसे चलने-फिरने, देखने, सुनने और कई मामलों में बहु-विकलांगताओं में भी योगदान करते हैं। वे मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं और संज्ञानात्मक हानि के प्रति भी अधिक संवेदनशील होते हैं। लेख बढ़ती उम्र समूह और उससे जुड़ी समस्याओं से निपटने के लिए आगे बढ़ने का रास्ता भी सुझाता है। इस आबादी का समर्थन करने वाले कार्यक्रम काफी हद तक बिखरे हुए हैं जिन्हें स्वास्थ्य लाभ के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा, पेंशन और खाद्य सुरक्षा को शामिल करने के लिए समेकित करने की आवश्यकता है। बुजुर्गों के स्वास्थ्य देखभाल के दृष्टिकोण को वर्तमान खंडित दृष्टिकोण के बजाय एक व्यापक रणनीति की आवश्यकता है जहां गैर-संचारी रोगों, कैंसर और मानसिक स्वास्थ्य के लिए विभिन्न रोग आधारित कार्यक्रम बुजुर्गों के विशिष्ट स्वास्थ्य मुद्दों को पूरा करते हैं। प्रस्तुत शोध लेख जनसांख्यिकी, स्वास्थ्य देखभाल चुनौतियों और इनके साथ आने वाली कमजोरियों के संदर्भ में देश में बुजुर्गों की वर्तमान स्थिति का सारांश प्रस्तुत करता है।

मूल शब्दः विकलांगता, बुजुर्ग, वृद्धावस्था, मानसिक स्वास्थ्य, गैर संचारी रोग

परिचय

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (National Commission on Population) के अनुसार, भारत की जनसंख्या में वृद्ध जनों की हिस्सेदारी वर्ष 2011 में लगभग 9% थी जो वर्ष 2036 तक 18% तक पहुँच सकती है। यदि भारत निकट भविष्य में वृद्ध जनों के लिये जीवन की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित करना चाहता है तो इसके लिये योजना निर्माण और उसका क्रियान्वन अभी से ही शुरू कर देना चाहिये।

भारत में जीवन प्रत्याशा (Life expectancy) स्वतंत्रता के समय से अभी तक बढ़कर दोगुनी से अधिक हो गई है (1940 के दशक के अंत में लगभग 32 वर्ष से बढ़कर वर्तमान में 70 वर्ष)। दुनिया के कई देशों ने इससे बेहतर प्रदर्शन किया है, लेकिन फिर भी यह भारत की ऐतिहासिक उपलब्धि है।

इसी अवधि में देश की प्रजनन दर (Fertility Rate) प्रति महिला लगभग छह बच्चों से घटकर केवल दो रह गई है, जिससे महिलाओं को बार-बार प्रसव से गुजरने और बच्चे की देखभाल करने की बेड़ियों से कुछ मुक्ति मिली है। ये सब बातें सकारात्मक हैं, लेकिन इसके साथ ही एक नई चुनौती भी उभरी है जो है जनसंख्या की वृद्धावस्था।

बदलती जनसांख्यिकी

भारत उच्च प्रजनन क्षमता, उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर वाली आबादी से कम प्रजनन क्षमता, कम जन्म और मृत्यु दर वाली आबादी में जनसांख्यिकीय संक्रमण के दौर से गुजर रहा है जैसा कि ऐसा होता है, हम भारत में बुजुर्गों की आबादी में लगातार वृद्धि देख रहे हैं, 2011 की जनगणना के अनुसार 60 वर्ष से अधिक उम्र की 8.6% आबादी है, जो 2030 तक 15% से अधिक होने का अनुमान है। दशकीय वृद्धि दर आजादी के बाद पहली बार 2001 से 2011 की जनगणना के बीच बुजुर्गों की आबादी में बढ़ोतरी हुई है। इसके अलावा, पिछले दो दशकों में बुजुर्ग महिलाओं की कुल संख्या बुजुर्ग पुरुषों से अधिक हो गई है।

वृद्ध होती आबादी से संबद्ध समस्याएँ

सामाजिकः

- औद्योगीकरण, शहरीकरण, तकनीकी और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय समाज तीव्र, पांतरण के दौर से गुजर रहा है।
- इसके साथ ही, पारंपरिक मूल्य और संस्थाएँ क्षरण एवं अनुकूलन की एक प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप अंतर-पीढ़ी संबंध (intergenerational ties) कमजोर हुए हैं जो पारंपरिक परिवार की पहचान होते थे।

- औद्योगीकरण ने साधारण पारिवारिक उत्पादन इकाइयों को बड़े पैमाने पर उत्पादन और कारखाने से प्रतिस्थापित कर दिया है।

अन्य समस्याएँ:

- बच्चों द्वारा अपने वृद्ध माता-पिता की अनदेखी।
- सेवानिवृत्ति के कारण निराशा।
- वृद्ध जनों में शक्तिहीनता, अकेलापन, बेकारी और अलगाव की भावना।
- पीढ़ीगत अंतराल।

वित्तीय:

- वृद्धों की सेवानिवृत्ति और बुनियादी आवश्यकताओं के लिये संतान पर निर्भरता।
- रोग/उपचार पर जेबी खर्च में अचानक वृद्धि होना।
- ग्रामीण क्षेत्रों से युवा कामकाजी आयु के व्यक्तियों के प्रवासन का वृद्धों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जहाँ वे अकेले या अपने वृद्ध जीवनसाथी के साथ आमतौर पर अभाव एवं संकट में रहने को विवश होते हैं।
- अपर्याप्त आवास सुविधा।

'हेल्पएज इंडिया' एनजीओ द्वारा किये गए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण से उजागर हुआ कि कम से कम 47% वृद्ध जन आय के लिये अपने परिवारों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं और 34% पेंशन एवं सरकारी नकद हस्तांतरण पर निर्भर हैं, जबकि सर्वेक्षण में शामिल 40% लोगों ने 'जब तक संभव हो' तब तक कार्य करते रहने की इच्छा प्रकट की।

स्वास्थ्य:

- उनमें अंधापन, चलने-फिरने में अक्षमता और बहरापन जैसी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ आम रूप से पाई जाती हैं।
- उनमें सेनिलिटी (senility) और न्यूरोसिस (neurosis) से उत्पन्न होने वाले मानसिक विकार देखे जाते हैं।
- सेनिलिटी वृद्धावस्था के कारण मानसिक क्षमता के कम होने की स्थिति है, जबकि न्यूरोसिस कार्यात्मक मानसिक विकारों का एक वर्ग है जिसमें क्रोनिक डिस्ट्रेस शामिल है, लेकिन भ्रम या मतिभ्रम नहीं होता।
- ग्रामीण क्षेत्रों के अस्पतालों में वृद्धावस्था देखभाल सुविधाओं का अभाव।
- हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार 30% से 50% बुजुर्गों में ऐसे लक्षण मौजूद थे जो उन्हें अवसाद का शिकार बनाते हैं। अकेले रहने को विवश वृद्ध लोगों में एक बड़ी संख्या महिलाओं की है, विशेष रूप से विधवा महिलाएँ।
- अवसाद का गरीबी, खराब स्वास्थ्य और अकेलेपन से गहरा संबंध देखा गया है।
- वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति 1999 में बुजुर्ग या वरिष्ठ नागरिकों को 60 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के रूप में परिभाषित किया गया है। 2011 में भारतीय राष्ट्रीय जनगणना से पता चला है कि बुजुर्गों की आबादी की संख्या लगातार बढ़ रही है और वृद्धि अधिक हुई है। पिछले दशकों की तुलना में पिछला दशक। बुजुर्ग आबादी में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का बोझ बच्चों और गर्भवती महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं से भिन्न है, जो आजादी के बाद से हमारी स्वास्थ्य देखभाल प्राथमिकताओं का केंद्र बिंदु रहे हैं।

भारत की सामाजिक सहायता योजना

- राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (National Social Assistance Programme- NSAP) योजना के तहत भारत में वृद्ध जनों, विधवा महिलाओं और विकलांग व्यक्तियों के लिये गैर-अंशदायी पेंशन की महत्त्वपूर्ण योजनाएँ कार्यान्वित हैं।
- यह ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रशासित है।

योजना से संबद्ध मुद्दे:

- बहिर्वेशन की संभावना:
- NSAP के लिये पात्रता 'गरीबी रेखा से नीचे' (BPL) के परिवारों तक ही सीमित है, जबकि BPL सूचियाँ बेहद पुरानी एवं अविश्वनीय हैं। उनमें से कुछ सूचियाँ तो 20 वर्ष तक पुरानी हैं।
- जहाँ तक वृद्धावस्था पेंशन की बात है, किसी भी मामले में लक्ष्यीकरण एक अच्छा विचार नहीं है क्योंकि BPL सूचियों में बहिर्वेशन की बड़ी त्रुटियाँ मौजूद हैं।
- इसके अलावा, लक्ष्यीकरण व्यक्तिगत संकेतकों के बजाय परिवार पर आधारित होता है।
- हालाँकि, एक विधवा महिला या कोई वृद्ध व्यक्ति अपेक्षाकृत संपन्न घरों में भी वृहत अभाव का शिकार हो सकते हैं।

जटिल औपचारिकताएँ:

- लक्ष्यीकरण BPL प्रमाणपत्र और अन्य दस्तावेज जमा करने जैसी जटिल औपचारिकताओं को संलग्न करने की प्रवृत्ति रखता है। निश्चित रूप से NSAP पेंशन के साथ तो यही अनुभव रहा है।
- ये औपचारिकताएँ विशेष रूप से कम आय या कम शिक्षा वाले वृद्ध व्यक्तियों के लिये वंचनाकारी हो सकती हैं, जबकि उन्हें ही पेंशन की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है।
- इसके अलावा, जब छूट गए संभावित पात्र व्यक्तियों की सूची स्थानीय प्रशासन को प्रस्तुत की गई तो बहुत कम

लोगों को पेंशन के लिये अनुमोदित किया गया, जो पुष्टि करता है कि वृद्ध जनों को वर्तमान योजना में कई प्रत्यास्थी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है।

गतिहीन योगदान:

- NSAP के तहत वृद्धावस्था पेंशन में केंद्रीय योगदान वर्ष 2006 से ही 200 रुपए प्रति माह (विधवाओं के लिये 300 रुपए प्रति माह) की मामूली राशि पर गतिहीन बना रहा है।
- दूसरी ओर, कई राज्यों ने अपने स्वयं के धन और योजनाओं के माध्यम से छै।च मानदंडों से परे सामाजिक सुरक्षा पेंशन की कवरेज और/या राशि में वृद्धि की है।
- कुछ राज्यों ने तो विधवाओं और वृद्ध व्यक्तियों के लिये लगभग सार्वभौमिक (लगभग 75%-80%) कवरेज भी हासिल कर लिया है।

अन्य संबंधित योजनाएँ:

प्रधानमंत्री वय वंदना योजना (PMVVY):

- यह भारत सरकार द्वारा विशेष रूप से 60 वर्ष और उससे अधिक आयु के वरिष्ठ नागरिकों के लिये घोषित एक पेंशन योजना है।
- इस योजना को अब वर्ष 2020 से आगे तीन वर्ष की अवधि के लिये (वर्ष 2023 तक) बढ़ा दिया गया है।

वृद्ध व्यक्तियों के लिये एकीकृत कार्यक्रम (Integrated Program for Older Persons- IPOP):

- इस नीति का मुख्य लक्ष्य वरिष्ठ नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है।
- भोजन, आश्रय, चिकित्सा देखभाल जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ और यहाँ तक कि मनोरंजन के अवसर प्रदान कर इस उद्देश्य की पूर्ति की जाती है।

राष्ट्रीय वयोश्री योजना:

- यह वरिष्ठ नागरिक कल्याण कोष (Senior Citizens' Welfare Fund) से वित्तपोषित केंद्रीय क्षेत्र की योजना है। इस कोष को वर्ष 2016 में अधिसूचित किया गया था।
- लघु बचत खातों, PPF और EPF से सभी दावारहित राशियों को इस कोष में स्थानांतरित कर दिया जाता है।
- यह BPL की श्रेणी के उन वरिष्ठ नागरिकों को सहायता और सहायक उपकरण प्रदान करने का लक्ष्य रखता है जो क्षीण दृष्टि, श्रवण दोष, दाँतों की क्षति और चलने-फिरने में व्यवधान जैसी आयु संबंधी अक्षमताओंसे पीड़ित हैं।

संपन्न परियोजना (SAMPANN Project):

- संपन्न/SAMPANN (सिस्टम फॉर अकाउंटिंग एंड मैनेजमेंट ऑफ पेंशन) परियोजना को वर्ष 2018 में लॉन्च किया गया था। यह दूरसंचार विभाग के पेंशनभोगियों के लिये एक सहज ऑनलाइन पेंशन प्रसंस्करण और भुगतान प्रणाली है।
- यह पेंशनभोगियों के बैंक खातों में पेंशन का सीधा क्रेडिट प्रदान करता है।

बुजुर्गों के लिये 'SACRED' पोर्टल:

- 'सीनियर एबल सिटीजन फॉर रि-एम्प्लॉयमेंट इन डिग्निटी'- SACRED पोर्टल को सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा विकसित किया गया है।
- 60 वर्ष से अधिक आयु के नागरिक इस पोर्टल पर पंजीकरण करा सकते हैं और रोजगार एवं कार्य अवसर की मांग कर सकते हैं।

एडल्ट लाइन- वृद्ध जनों के लिये टोल-फ्री नंबर:

- यह उत्पीड़न के मामलों में तत्काल सहायता करने के अलावा विशेष रूप से पेंशन, चिकित्सा और कानूनी मुद्दों परवृद्ध व्यक्तियों को सूचना, मार्गदर्शन, भावनात्मक समर्थन प्रदान करता है।
- यह सभी वरिष्ठ नागरिकों या उनके शुभचिंतकों को देश भर में एक मंच प्रदान करने के लिये तैयार किया गया है ताकि वे अपनी चिंताओं को समवेत एवं साझा कर सकें और उन समस्याओं के बारे में जानकारी एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें जिनका उन्हें दिन-प्रतिदिन सामना करना पड़ता है।

सीनियर केयर एजिंग ग्रोथ इंजन (SAGE) इनिशिएटिव:

- सेज पोर्टल (SAGE Portal) विश्वसनीय स्टार्ट-अप्स के माध्यम से वृद्ध व्यक्तियों हेतु देखभाल उत्पादों और सेवाओं का 'वन-स्टॉप एक्सेस' है।
- यह ऐसे व्यक्तियों की मदद करने के उद्देश्य से शु, किया गया है जो वृद्ध जनों की देखभाल के लिये सेवाएँ प्रदान करने के क्षेत्र में उद्यमिता करने में में रुचि रखते हैं।

आगे की राह

निराश्रिता और अभाव से सुरक्षा:

- वृद्ध व्यक्तियों के लिये एक सम्मानजनक जीवन की दिशा में पहला कदम यह होगा कि उन्हें निराश्रिता (destitution) और इससे संबंधित अभावों से बचाया जाए।
- पेंशन के रूप में नकद राशि प्रदान करना कई स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने और अकेलेपन से बचने में मदद कर सकता है।

- यही कारण है कि वृद्धावस्था पेंशन दुनिया भर में सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

अग्रणी राज्यों का अनुकरण करना:

- भारत के दक्षिणी राज्यों और ओडिशा एवं राजस्थान जैसे अपेक्षाकृत गरीब राज्यों ने लगभग सार्वभौमिक (near-universal) सामाजिक सुरक्षा पेंशन की स्थिति हासिल कर ली है। उनके ये प्रयास अनुकरणीय हैं।
- यदि केंद्र सरकार NSAP में सुधार करे तो सभी राज्यों के लिये ऐसा करना अत्यंत सरल हो जाएगा।

पेंशन योजनाओं में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना:

- सामाजिक सुरक्षा पेंशन में सुधार लाना एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।
- वृद्ध जनों को स्वास्थ्य देखभाल, विकलांगता सहायता, दैनिक कार्यों में सहायता, मनोरंजन के अवसर और एक अच्छे सामाजिक जीवन जैसी अन्य सहायता एवं सुविधाओं की भी आवश्यकता होती है।

पारदर्शी 'बहिर्वेशन मानदंड':

- एक बेहतर दृष्टिकोण यह होगा कि एक सरल एवं पारदर्शी 'बहिर्वेशन मानदंड' के तहत सभी विधवाओं और वृद्ध या विकलांग व्यक्तियों को पात्र के रूप में देखा जाए।
- पात्रता को स्वघोषणा-आधारित भी बनाया जा सकता है जहाँ स्थानीय प्रशासन या ग्राम पंचायत पर यह उत्तरदायित्व रहे कि वह इसका समयबद्ध सत्यापन करे।
- यद्यपि इस बात की संभावना होगी कि संपन्न परिवार भी इसका गलत लाभ उठा रहे होंगे, लेकिन बड़े पैमाने पर बहिर्वेशन त्रुटियों को बनाए रखने से बेहतर होगा कि कुछ समावेशन त्रुटियों को समायोजित कर लिया जाए।

व्यक्तिगत प्राथमिक देखभाल

बुजुर्गों के स्वास्थ्य देखभाल संबंधी मुद्दों के बारे में अधिक जागरुकता की आवश्यकता है। उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, स्ट्रोक, सामान्य न्यूरोलॉजिकल और मानसिक स्वास्थ्य समस्या जैसी उनकी सामान्य समस्याओं के दृष्टिकोण और प्रबंधन के बारे में प्रशिक्षण और निरंतर शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम और कंप्यूटेड टोमोग्राफी स्कैन (सीटी स्कैन) को पढ़ने और व्याख्या करने, सामान्य कैंसर के लिए कैंसर की जांच, मानसिक स्वास्थ्य मूल्यांकन, न्यूरोलॉजिकल और विकलांगता मूल्यांकन जैसे नैदानिक कौशल बुजुर्गों की जरूरतों को पूरा करने में मदद करेंगे। सामान्य मानसिक विकारों के लिए मनोवैज्ञानिक परामर्श, तंबाकू और शराब के सेवन संबंधी विकारों के लिए व्यवहार संबंधी परामर्श, प्राथमिक देखभाल स्तर पर दर्द और उपशामक देखभाल प्रबंधन, हृदय रोगों के जोखिम आधारित मूल्यांकन और मधुमेह और उच्च रक्तचाप के लिए गैर-औषधीय हस्तक्षेपों के लिए परामर्श जैसे नए कौशल को जोड़ा जा सकता है। प्राथमिक देखभाल चिकित्सक गैर-संचारी रोगों के बढ़ते बोझ का समाधान करते हैं। देखभाल की निरंतरता में सुधार के लिए ट्राइएज और रेफरल तंत्र को मजबूत करने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत रोगी को प्रशिक्षण और परामर्श देने के लिए प्राथमिक देखभाल चिकित्सकों के लिए दूरसंचार और वेब आधारित समर्थन का उपयोग रोगी और प्राथमिक देखभाल प्रदाताओं दोनों को मदद करेगा। यह देश के ग्रामीण और वंचित हिस्सों में विशेष रूप से सच होगा।

निष्कर्ष

आजादी के बाद से हुए जनसांख्यिकीय बदलाव को देखते हुए हमारे देश में बुजुर्गों की आबादी बढ़ रही है। वे एक बड़ा असुरक्षित समूह बनाते हैं जिस पर तत्काल ध्यान और समर्थन की आवश्यकता है। इन समूहों द्वारा सामना की जाने वाली स्वास्थ्य समस्याएं, विशेष रूप से गैर-संचारी रोग, समग्र रूप से हमारी आबादी के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के रूप में पहचानी जाने वाली स्वास्थ्य समस्याएं भी हैं। इस समूह को ध्यान के केंद्र में रखते हुए नीति और कार्यक्रम दोनों स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल में हस्तक्षेप की आवश्यकता है। जनसंख्या के रूप में बुजुर्गों पर ध्यान केंद्रित करते हुए देखभाल के एकीकरण के बड़े स्तर की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. विलियमसन ईजे, वॉकर एजे, भास्करन के, बेकन एस, बेट्स सी, मॉर्टन सीई, एट अल। OpenSAFELY का उपयोग करके COVID-19 से संबंधित मृत्यु से जुड़े कारक। प्रकृति। 2020; 584 :430-6.
2. मिकेलसेन बी, रिले एल, कोवान एम. कोविड-19 और एनसीडी। कौन [इंटरनेट]। 2020;#NextGenNC: 5. यहां उपलब्ध: https://www.who.int/docs/default-source/ncds/ncd-covid-19/for-web—rapid-assessment—29-may- 2020-(साफ)pdf?sfvrsn=6296324c_14&download=true
3. भारत. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय। वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति। नई दिल्ली: 1999. 2020.
4. भारत. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय। भारत में बुजुर्ग-प्रोफाइल और कार्यक्रम। नई दिल्ली: 2016. 2020.
5. संयुक्त राष्ट्र, आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग, जनसंख्या प्रभाग (2019) विश्व जनसंख्या संभावनाएँ 2019, ऑनलाइन संस्करण रेव 1. 2020
6. सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। भारत में सामाजिक उपभोग के प्रमुख संकेतक-स्वास्थ्य। नई दिल्ली: 2015
7. हेल्पेज इंडिया. भारत में बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार-बदलते सांस्कृतिक लोकाचार और प्रौद्योगिकी का प्रभाव। 2018. 2020
8. इंस्टीट्यूट फॉर हेल्थ मेट्रिक्स एंड इवैल्यूएशन (आईएचएमई) जीबीडी तुलना। सिएटल, WA: IHME, वाशिंगटन विश्वविद्यालय; 2015. [अंतिम

बार 2020 अगस्त 18 को एक्सेस किया गया]। यहां उपलब्ध है: http://vizhub.healthdata.org/gbdcompare।

9. भारत की जनगणना. एसआरएस बुलेटिन। 2013. [अंतिम बार 2 सितंबर 2013 को एक्सेस किया गया]। पी। 48. यहां उपलब्ध है: https://censusindia.gov.in/vital_statistics/SRS_Bulletins/SRS_Bulletin. सितंबर_2013-pdf। 2020.
10. लीना ए, अशोक के, पद्मा एम, कामथ वी, कामथ ए। बुजुर्गों का स्वास्थ्य और सामाजिक समस्याएं: उडुपी तालुक, कर्नाटक में एक क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन। इंडियन जे कम्युनिटी मेड. 2009; 34:131-4.
11. पांडवे एचटी, देशमुख पी. पुणे शहर की शहरी झुग्गी बस्ती में रहने वाली बुजुर्ग आबादी के बीच स्वास्थ्य सर्वेक्षण।जे इंडियन एकेड गेरियाट्र। 2010; 6:5-8.
12. पूर्ति ए जे, बजरॉय जे, करमलिनी, वासुदेवन के, वेलियाथ ए, पांडा पी। भारत के तमिलनाडु के ग्रामीण क्षेत्र में बुजुर्ग आबादी के बीच रुग्णता पैटर्न।तुर्क जे मेड विज्ञान. 2006; 36:45-50.
13. भारत. सामाजिक सांख्यिकी प्रभाग. भारत में विकलांग व्यक्ति-एक सांख्यिकीय प्रोफाइल। 2016. 2020
14. मथुरानाथ पीएस, चेरियन पीजे, मैथ्यू आर, कुमार एस, जॉर्ज ए, अलेक्जेंडर ए, एट अल। केरल, दक्षिण भारत में मनोभ्रंश: उम्र, शिक्षा और लिंग का प्रसार और प्रभाव। इंट जे जेरियाट्र मनोरोग। 2010; 25:290-7.
15. पोद्दार के, कांत एस, सिंह ए, सिंह टीबी। पूर्वी उत्तर प्रदेश, भारत के निवासियों के बीच मनोभ्रंश का एक महामारी विज्ञान अध्ययन। इंडियन एन एकेड न्यूरोल। 2011; 14:164-8.
16. मोहन डी, आईपे टी, वर्गीस एस, उषा ए, मोहन एम। दक्षिण भारत के केरल के एक शहरी क्षेत्र में वृद्ध वयस्कों के बीच हल्के संज्ञानात्मक हानि से जुड़े प्रसार और कारकों का आकलन करने के लिए एक क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन। बीएमजे ओपन. 2019; 9:e025473.
17. पटेल आरएम, सिंह यूएस। एक मेडिकल कॉलेज के फील्ड प्रैक्टिस क्षेत्रों में रहने वाली बुजुर्ग आबादी के बीच लघु-मानसिक स्थिति परीक्षण का उपयोग करके संज्ञानात्मक हानि और उससे जुड़े सामाजिक-जनसांख्यिकीय चर का व्यापक अध्ययन। इंडियन जे कम्युनिटी मेड. 2018; 43:113-6.
18. गुरुराज जी, वर्गीस एम, बेनेगल वी, राव जीएन, पाठक के, सिंह एलके, और अन्य। एनएमएचएस सहयोगी समूह भारतीय राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2015-16: व्यापकता, पैटर्न और परिणाम। बेंगलुरु, राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और तंत्रिका विज्ञान संस्थान, एनआईएमएचएएनएस प्रकाशन संख्या 129, 2016. 2020
19. नायर एसएस, रघुनाथ पी, नायर एसएस। ग्रामीण वृद्धावस्था आबादी में मानसिक विकारों की व्यापकता: कर्नाटक, भारत में एक पायलट अध्ययन। सेंट एशियन जे ग्लोब हेल्थ। 2015; 4:138.
20. भारत. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय। वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति। नई दिल्ली: 2011. 2020.

"महासमुन्द जिले में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अनुसार उच्च शिक्षा में शैक्षिक उपलब्धि पर गुणवत्ता सुधार हेतु अशासकीय व शासकीय महाविद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन"

डॉ० किरण बाला पटेल

शोध निर्देशन, आई एस बी एम विश्वविद्यालय

श्री राजेन्द्र कुमार चौधरी

शोधार्थी, आई एस बी एम विश्वविद्यालय

प्रस्तावना:-शिक्षा मनुष्य की शक्ति का विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है। जिससे कि वह परम सत्य शिव और सुन्दरम का चिंतन करने के योग्य बन सक। शिक्षा एक व्यापक प्रत्यय है। यह जीवन पर्यन्त तक चलती है, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। शिक्षा में प्रत्येक अनुभव आता है, अत: इसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता और न ही काई निश्चित स्थान होता है। वह प्रत्येक स्थान पर प्राप्त की जा सकती है।

महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ.ए.पी.ने अब्दुल कलाम जी कहा था, भगवान ने हमारे मस्तिष्क और क्षमताएँ दी हैं। ईश्वर की प्रार्थना हमें इन शक्तियों को विकसित करने में मदद करती है। शिक्षा ऐसा मशाल है, जिससे अहंकार से उजाले की ओर जा सकते हैं एवं हम प्रकाशन हो सकते हैं अर्थात यह कह सकते हैं कि शिक्षा प्रकाश है जो सभी का विकास करती है और हमें तेजस्वी बनाने में सहायता प्रदान करती है। अर्न्तनहित शक्तियों को प्रस्फुरित कर हमें विकास की ओर अग्रसर करती है, जिससे सम्पूर्ण मानव को पतन नही। हमेशा उत्थान की ओर ले जाता है, साथ ही साथ शिक्षा हमारे व्यवहार को उत्तम बनाने में मुख्य रूप से सहायक सिद्ध होता है और हमें सम्पूर्णता प्रदान करता है। ज्ञान का संचय हमें संग्रहण करती है, जिसके फलस्वरूप अच्छे कार्यों को करने में तथा अच्छा व्यक्तित्व निर्माण में सहायता प्रदान करती है। जिससे व्यक्ति अपनी नैसर्गिक क्षमताओं को पूर्ण विकास कर सके तथा बदलते हुए परिवेश से अनुकुलन व समायोजन कर अपने विचार कार्य एवं कृति रूपी पुष्प की खुशबु दुर-दुर तक फैल सके तथा समाज एवं राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में सक्रिय योगदान दे सके। भारत में शिक्षा को इस प्रकार स्त्रोत की संज्ञा दी है,जो मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सच्चा पथ प्रदर्शन करती है। शिक्षा मानवीय उद्घृत करते हुए विभिन्न वर्ग संघर्षों तथा क्षेत्रियता जैसी बुराईयों को दूर कर समानता की भावना पल्लवित करती है।

रस्क के शब्दों में-अध्ययन ज्ञान या ग्रहण शक्ति को सुरक्षित रखने योग्यताओं को प्राप्त करने या समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाने वाला नियोजित प्रयास है। स्पष्ट है कि अध्ययन शक्ति अपनी स्वेच्छा से अपना ज्ञान ग्रहण शक्ति बढाने के लिए करता है, जो अभ्यास के साथआदत का रूप ग्रहण कर लेती है।

मार्गन एवं गिलीलैण्ड के मतानुसार:-

हम जो भी हैं, उन सब का योग व्यक्तित्व के नाम से पुकारा जाता है।

डेशिल के तानुसार:-

व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार:-

हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे देश में उद्योगों का विकास हो और मनुष्य नौकरियां खोजने की बजाय स्वयं के हुनर से पर्याप्त धन अर्जित कर सके। इस तरह से महाविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ अनेकों प्रकार के व्यवसायिक शिक्षा भी प्रदान की जा रही है। जिसमें हाई स्कूल स्तर पर एक व्यवसायिक विषय के चयन का विकल्प है वही हायर सेकेण्डरी स्तर पर यह एक अतिरिक्त विषय के रूप में पढाया जाता है।प्राप्त आंकडों के अनुसार 2020-21 में व्यवसायिक विषय के साथ 12वीं उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से 2244 विद्यार्थियों का उद्योगों में प्लेसमेंट हुआ।

एन.ई.पी.2020:-

वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए शिक्षक के महत्व पर सर्वाधिक जोर देती है।जिसमें उल्लेख

है कि प्रत्येक छात्र का विशिष्ट क्षमताओं की पहचान एवं उसके विकास के लिए शिक्षकों अभिभावकों को उसकी क्षमताओं के प्रति संवेदनशील एवं जागरूक होना पडेगा। जिससे छात्रों की अकादमिक और अन्य क्षमताओं का पूर्ण विकास हो सके। शिक्षक वास्तव में भविष्य को आकार देती है तथा छात्र एवं शिक्षक दोनों मिलकर हमारे समृद्ध राष्ट्र का निर्माण करते है। पूर्ण योगदान के कारण मेधावी छात्र तथा योग्य शिक्षक हमेशा समाज में सम्मानीय सदस्य रहें। नई शिक्षा नीति 2020 में उच्च शिक्षा प्रणाली का एक बडा भाग राज्य अधिनियमों के तहत संचालित होता है जिसमें 70 विश्वविद्यालय इस श्रेणी में आते है इसके अतिरिक्त 94 प्रतिशत छात्र राज्य एवं निजी संस्थानों में नामांकित है केंद्रिय उच्च शिक्षण संस्थानों में नामांकित छात्रों का अनुपात मात्र 6 प्रतिशत है। यह उच्च शिक्षा प्रदान करने में राज्यों की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है।

चर्चा के प्रमुख बिन्दु:-

? **भाषा सम्बंधी बाधाएं**- स्थानीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने वाले उच्च शिक्षा सस्थानों की संख्या काफी कम है जिससे सम्भावित रूप से आबादी का एक बडा हिस्सा शिक्षा से वंचित रह जाता है।

? **संकाय की कमी**- योग्य संकाय की कमी उच्च शिक्षा क्षत्र के लिए सबसे प्रमुख बाधा बनती जा रही है जिसका शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिफूल प्रभाव पड रहा है।

भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली को अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा रूपांतरित किया जा रहा है।यह नीति अंत: विषय अध्ययन को प्रोत्साहित करने नए विषयों की पेशकश करने और छात्रों को नए अवसरों और लचीले पाठ्यक्रमों विकल्पों तक पहुच प्रदान करने पर जोर देती हैं। नीति में एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन शैक्षिक प्राद्योगिकी पर एक राष्ट्रीय मंच और देश भर में अधिक उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना का आव्हान किया गया। नीति का लक्ष्य एक व्यापक अनुकूलनीय शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जो 21वीं सदी की मांगो को पूरा कर सके। उच्च शिक्षा के लिए एन.ई.पी.2020 की मुख्य विशेषताएं है-

- अनुसंधान और नवाचार
- पाठ्यचर्या लचीलापन और क्रेडिट हस्तांतरण
- कौशल विकाश और व्यवसायिक शिक्षा
- शिक्षा में प्रोद्योगिकी
- छात्रों के लिए वित्तिय सहायता
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का डिजिटलीकरण
- यूजीसी और एआईसीटीई को खत्म करना
- दूरस्त शिक्षा/मुक्त शिक्षा
- व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करना

शैक्षिक उपलब्धि:-

शैक्षिक उपलब्धि का सामान्य अर्थ है कि व्यक्ति द्वारा अपनी अधिगम की पूरी प्रक्रिया के समय द्वारा प्राप्त उपलब्धि को कह सकते हैं। शैक्षणिक उपलब्धि एक मनोवैज्ञानिक शब्द है जिसका उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त ज्ञान के सन्दर्भ में किया जाता है।

जैसे- शैक्षणिक उपलब्धि सम्प्राप्ति अथवा शालेय उपलब्धि इत्यादि।

ग्रीण लीक के अनुसार:- अभिरूचि कुछ विशिष्ट कार्य कर सकने की अपनी स्वभाविक योग्यता है।

रेमर्स तथा गेज के अनुसार:- "अभिरूचियों के वर्तमान गुण है, जिन्हें भावी उपलब्धि का पूर्ण कथन करने वाला समझा जा सकता है"। जिला महासमुन्द की राजधानी रायपुर से 50 किलोमीटर पूर्व दिशा में राष्ट्रीय राजमार्ग 06 बम्बई से कोलकाता राजमार्ग से 10 किलोमीटर अंदर बसा हुआ है। यहां पहुंचने के लिए बसे रेल एवं निजी टेक्सियां आसानी पूर्वक मिल जाती है। महासमुन्द जिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यहां अनेकों महाविद्यालय, स्वामी आत्मानंद उत्कृष्ट अंग्रेजी, हिन्दी माध्यम एवं अनेकों शासकिय एवं निजी विद्यालय तथा डाटा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हैं। दार्शनिक स्थल के रूप में जिले के महासमुन्द विकास खण्ड में राष्ट्रीय स्तर के दार्शनिक स्थल के रूप में सिरपुर का लक्ष्मणमंदिर है। जिसे देखने देश विदेश से लोग आते हैं, तथा दार्शनिक स्थल के लिए बम्हनी में प्रसिद्ध मंदिर है जहॉ प्रत्येक वर्ष मेला लगता है तथा सिंचाई के लिए शहीद वीरनारायण जलासय है जो हजारों हेक्टेयर जमीन मे सिंचाई हो रहा है। बागबाहराविकास खण्ड में खल्लारी मॉ तथा घुंचापाली के चण्डी मंदिर में जंगली भालू प्रसाद ग्रहण करने तथा एवं पुजा करने आते हैं यह एक देखने वाली बात होती हैं। विकासखण्ड पिथौरा में बनदुर्गा मंदिर प्रसिद्ध है जहॉ दर्शन करने वाले गेरवा ले कर आते हैं। एवं मनोकामना मॉग कर उसे मंदिर में चढाते हैं तथा जोंकनदी अनवरत बह रही है। विकास खण्ड बसना में पूर्व राजा महाराजाओं का निवास गढफुलझर रहा है। जहां एक ऐतिहासिक मंदिर भी है, जहॉ श्रद्धालु पुजा करने जाते हैं साथ ही साथ वहॉ मिट्टी से अनेकों कलाकृतियां किया जा रहा है।जिससे लोग आत्मनिर्भर बन रहे हैं। विकास खण्ड सराईपाली ओडिसा राज्य से लगा हुआ महासमुन्द जिले का अंतिम छोर है, यहां का कुछ-कुछ नक्सली क्षेत्र में आता है। शिशुपाल पर्वत एवं सिंघोडा मंदिर देखते ही मन मोह लेता है क्योंकि यहां औद्योगिक क्षेत्र में बिरकोनी का नाम राष्ट्रीय स्तर में गिना जाता है।

(3) शोध का उद्देश्य:-

1. महाविद्यालयों के छात्रों का व्यक्तिव के प्रकार का पता लगाना।

2. महाविद्यालयों के छात्रों का सामाजिक व्यावसायिक आचरण का अध्ययन करना।

3. महाविद्यालयों के प्राध्यापकों का गुणवत्ता पहलूओं का अध्ययन करना।

इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनः-

शर्मा अमर (2001) समाज सेवाओं के व्यक्तित्व के प्रकार से राजनितिक में प्रभाव का अध्ययन पर शोध किया और निष्कर्ष पाया कि समाज सेवकों के व्यक्तित्व के प्रकार से राजनैतिक अभिरूचि में अंतर किया गया। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले समाज सेवको की राजनिति में प्रभाव अधिक थी वे सामाजिक क्रियाकलाप में ज्यादा सहभागी होते हैं। महिला समाज सेवक एवं पुरूष समाज सेवक राजनिति में प्रभाव में अंतर पाया गया।

सहाय युक्त (2005) महाविद्यालयीन लडकियों में राजनैतिक विज्ञान में रूचि का अध्ययन। अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि इस अध्ययन का उद्देश्य आदिवाशी और गैरआदिवाशी तथा अनुसुचित जनजातियों के महाविद्यालयीन लडकियों में राजनैतिक विज्ञान में रूचि का अध्ययन करना है। इस उपकरण का प्रशासन 20 आदिवासी क्षेत्र 20 गैर आदिवासी क्षेत्र तथा 20 अनुसूचित जनजातिय वर्ग के 20 से 25 उम्र के लडकियों को लिया गया है। इस मापनी में 15 क्षेत्र हैं। आदिवासी, गैर आदिवासी तथा

अनुसूचित जनजाति के लडकियों के अलग अलग राजनैतिक विज्ञान में रूचि के मापन के लिए माध्यिका एवं आकृत की गणना की गई। अंत में यह निष्कर्ष पाया कि मीाविद्यालयीन लडकियों के राजनैतिक विज्ञान सें रूचि का सार्थक अंतर नहीं पाया गया है।

खटकर हेमंत कुमार (2022-23)कक्षा ग्यारहवी के छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि पर अध्ययन निष्कर्ष निकाला गया कि छात्रों के बहिर्मुखी व्यक्तित्व पर ग्रामीण एवं शहरी शासकिय विद्यालयों का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया इस शोध में 100 छात्राओं को न्यायदर्श में शामिल कर अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी मापनी तथा अध्ययन आदत अविष्कारिका का उपयोग कर छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालयों एवं व्यक्तित्व के अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

नोट किए गए कार्य के क्षेत्र में प्रस्तावित कार्य का योगदानः-

- ? महाविद्यालयीन विद्यार्थियों के व्यक्तित्व किस प्रकार अध्ययन आदत को प्रभावित करता है,यह स्पष्ट करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी।
- ? शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का नैसर्गिक क्षमताओं का पूर्ण विकास निर्धारण हो सकता है।
- ? छात्राओं में उत्तम अध्ययन आदतों के विकास से उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढाया जा सकेगी।

प्रस्तावित अनुसंधान विधिः-

परिकल्पनाः- अनुसंधान के प्रक्रम में समस्या का कथन के तुरंत पश्चात हमें उपयुक्त परिकल्पना की आवश्यक होता है परिकल्पना के लिए हमें विशिष्ट जानकारी होना आवश्यक है अन्यथा अनुसंधान कर्ता इधर-उधर भटकता है। परिकल्पना के अभाव में वैज्ञानिक अध्ययन प्रायः सम्भव नहीं हो सकता इसका मुख्य कारण यह है कि समस्या का स्वरूप् अत्यधिक विषम, विस्तृत तथा विसरित रहता है। ऐसी समय में उनके व्यापक क्षेत्र को घटाया तथा न्यून करना आवश्यक होता है। अनुसंधान में परिकल्पना करना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। ऐसा करने से अनुसंधानकर्ता को तर्क संगत आकडों के संकलन में ठीक-ठीक दिशा मिलती है तथा उपयुक्त वैध व शुद्ध निष्कर्षों के अनुमान में सुविधा व सरलता रहती है।

करलिंगरः-एक कल्पना दो अथवा दो से अधिक चरों के संबंध के विषय में एक कलपनात्मक कथन होता है।

टाउनलैण्डः-परिकल्पना एक समस्या का प्रस्तावित उत्तर होता है।

प्रस्तुत अध्ययन की शून्य परिकल्पना निम्नलिखित हो सकता है -

Ho_1:- शासकीय व अशासकीय महाविद्यालय छात्रों के व्यक्तिव प्रकार का में कोई सार्थक संबंध नहीं हो सकता।

Ho_2:-शासकीय व अशासकीय महाविद्यालय में सामाजिक व्यावसायिक और व्यवहारिक पहलू का अध्ययन करने में कोई सार्थक सम्बंध नहीं हो सकता।

Ho_3:- शासकीय व अशासकीय महाविद्यालय के गुणवत्ता पहलूओं का अध्ययन में कोई सार्थक सम्बंध नहीं हो सकता।

Ho_4:- नई शिक्षा नीति 2020 में अभिभावको एवं शिक्षकों हेतु क्या नवाचार है? उसका तुलनात्मक अध्ययन करने में कोई सार्थक सम्बंध नहीं हो सकता।

अनुसंधान विधिः- संक्षेपों में सर्वेक्षण किसी समाजिक स्थिति अथवा समस्या अथवा जीवसंख्या के परिभाषित उद्देश्यों हेतु वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में विश्लेषण की एक विधि है-एच. एन मोर्स प्रस्तुत अध्ययन में शोध उपकरणें का अनुप्रयोग करके सर्वेक्षण विधि का प्रयोग केया गया है।

न्यादर्शः- किसी जनसंख्या या समष्टि से प्रतिनिधि के रूप में किसी मांग या संख्या का योजनानुसार चयन न्यादर्श कहलाता है-करलिंगर

प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ राज्य के महासमुन्द जिले के विकास खण्ड क्रमशः सराईपाली, बसना पिथौरा, बागबाहरा, महासमुन्द में कितने महाविद्यालय संचालित हैं उनमें से 15 शासकीय व अशासकीय महाविद्यालय 11364 छात्रों एवं छाताऐं है जिसमें से 750 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्शन अधार पर किया गया है।

6.4 उपकरणः-

मात्रात्मक शोध में आकडों/प्रदत्तों के संकलन के लिए विभिन्न विधियों प्रक्रियाओं और उपकरणों का विकास किया गया है।

किसी भी समस्या के अध्ययन हेतु नवीन तथ्यों तथा अज्ञात तथ्यों का संकलन करने हेतु कई साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन्हे उपकरण कहते हैं। उपकरण वह ठोस साधन है जिन्हें शोध या सर्वेक्षण कार्यमें सहायक पाया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त संकलन के लिये दो प्रमापीकृत और एक स्वनिर्मित उपकरणों का उपयोग किया गया है। जिसका विवरण इस प्रकार है-

01 शिक्षा रूचि रिकार्ड एस.पी कुलश्रेष्ठ इ.आई.आर

02 व्यावसायिक रूचि रिकार्ड एस.पी कुलश्रेष्ठ वी.आई.आर

03 शैक्षिक उपलब्धि स्वनिर्मित शैक्षिक उपलब्धि मापनी परीक्षण

सांख्यिकी प्रविधियों का चयनः-

प्रस्तुत अध्ययन में एकत्रित प्रदत्तों के व्यवस्थापन प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय प्रक्रियाओं के साथ आलेखों का निर्माण किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रदत्तों का विश्लेषण दो प्रकार से किया जा सकता है-

(1) वर्णात्मक सांख्यिकी विश्लेषण

प्रेक्षित व्यक्तियों के विशेष समुह या वर्ग में प्रदत्तों के विवरण प्रकृति के विश्लेषण के लिए मध्यमान, माध्यिका, मध्यमान, मानक विचलन की गणना की जाती है और सामान्यीकरण को उस समूह या वर्ग के लिए सीमत किया जा सकता है-

प्रस्तुत अध्ययन में अंग्राकित सूत्रों का उपयोग किया जा सकता है-

आनुमानिक सांख्यिकीय विश्लेषणः- प्रतिदर्श आंकडों के आधार पर समष्टि या जीव संख्या के सी विशेषता या गुण के मध्यमान, मध्यिका, मानक विचलन (प्राचलों)का अनुमान जिन सांख्यिकीय प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है, आनुमानिक सांख्यिकी कहा जा सकता है।

चर

चर वे परिस्थितयां या विशेषताएँ हैं जिन्हें प्रयोगकर्ता नियंत्रित करता है जोड तोड करता है या अवलोकन करता है। किसी प्राणी या वस्तु के मापने योग्य गुणों को चर कहा जाता है-डी.ऐमेटो

आश्रित चर वह है जिसका प्रयोगकर्ता-द्वारा निरीक्षण किया जाता है तथा रिकार्ड किया जाता है-केन्टोविज एवं रोडिष्टार

प्रस्तुत अध्ययन के निम्न लिखित चर है-

स्वतंत्र चर-महाविद्यालय

आश्रित चर-शैक्षिक उपलब्धि

अपेक्षित निष्कर्षः-

वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए शिक्षक के महत्व पर सर्वाधिक जोर देती है। जिसमें उल्लेख है कि प्रत्येक छात्र का विशिष्ट क्षमताओं की पहचान एवं उसके विकास के लिए शिक्षकों अभिभावकों को उसकी क्षमताओं के प्रति संवेदनशील एवं जागरूक होना पडेगा। जिससे छात्रों की अकादमिक और अन्य क्षमताओं का पूर्ण विकास हो सके। शिक्षक वास्तव में भविष्य को आकार देती है तथा छात्र एवं शिक्षक दोनों मिलकर हमारे समृद्ध राष्ट्र का निर्माण करते है। पूर्ण योगदान के कारण मेधावी छात्र तथा योग्य शिक्षक हमेशा समाज में सम्मानीय सदस्य रहें।

- शासकीय से अशासकीय महाविद्यालय में विषय शिक्षको के संख्या अधिक हो सकता है।
- शासकीय व अशासकीय महाविद्यालय छात्राएं उनके व्यक्तित्व के अनुसार शैक्षिक निर्देशन करने में सहायता हो सकता है।
- शासकीय से अशासकीय महाविद्यालयों का सुविधा बेहतर हो सकता है।
- शासकीय से अशासकीय महाविद्यालय के छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि बेहतर हो सकता है।

भक्ति आन्दोलन का उदय और विकासः एक पुनरवलोकन

पुँज प्रकाश शरण

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बी०आर० अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार

ईश्वर के प्रति जो परम प्रेम है उसे भक्ति कहते हैं। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है कि 'परमात्मा' के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते है। भक्ति शब्द की निष्पति 'भज' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'सेवा करना' भक्ति में ईश्वर का भजन, पूजन, अर्पण आदि शामिल होता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण करने पर द्वितीय चरण को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई है। तथा इसे पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है। पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल पूर्व मध्यकाल को ही भक्तिकाल कहा जाता है। इस काल में मुगल सल्तनत भारत में स्थापित हो चुकी थी। मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से आहत होकर हिन्दू जनता ने प्रभु की शरण में अपने आपको सुरक्षित महसूस किया और भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। भक्ति आन्दोलन में नये विचारो का जन्म हुआ इसने भारतीय संस्कृति एवं समाज को एक दिशा दी। इस आन्दोलन ने एक और माननीय भावनाओं को उभारा, वहीं व्यक्तिवादी विचारधारा को सशक्त बनाया जिसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करके सदाचार, मानवता, भक्ति और प्रेम जरूरी समझा गया।

मुख्य शब्दः तादात्मय, आन्दोलन, सर्वव्यापी, आगोचर, मुखरता

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास का मध्यकाल कई मायनों में परिवर्तनों का काल रहा है। यह परिवर्तन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृति, कलाओं और साहित्य इत्यादि में देखे जा सकते है। जिस समय मुसलमान भारत पर राज्य कर रहे थे, उस वक्त उन्होंने हिन्दू धर्म पर इस्लाम मानने का दबाव बनाया। इसी कारण की वजह से हिन्दुओं को धार्मिक रूप से आघात करने की कोशिश की और हिन्दुओं को भक्ति आंदोलन से हिम्मत मिली भक्ति- काल के उदय की व्याख्या के प्रंसग में रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते है, देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया उनके सामने ही उसके देवमन्दिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत वे न तो गा सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया जब परस्पर लड़ने वाले स्वंतत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छायी रही अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।''[1] इस कथन से हमारे सामने राजनैतिक परिस्थितियाँ तो स्पष्ट हो जाती है। साहित्य का अध्ययन करने पर हमें यह पता चलता हैं कि आदिकाल में भी नाथों और सिद्धो के अंतर्गत यह दिखाया गया है कि नाथ पंथ ईश्वर को 'शून्य' रूप में मानते है जिसे वे 'अलख निरंजन' कहते है। नाथ पंथियों ने वैराग्य से मुक्ति सम्भव मानी है और वैराग्य गुरू की कृपा से मिलता है इसलिए गुरू दीक्षा तथा गुरूमंत्र का नाथ सम्प्रदाय में विशेष महत्व है। सिद्धों की साधनों को गुहा साधना कहा गया है। इनका मानना था कि ईश्वर को प्राप्त करना सबके बस की बात नहीं है। वे जादू-टोने में ही जनता को उलझा देते थे।

ऐसे समय में भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने व लीन रखने के लिए भक्ति भाव को जगाने का प्रयास करने लगे।

स्वामी माधवाचार्य ने 'ब्राह्म सम्प्रदाय' नाम से द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया जिसकी ओर लोगों का झुकाव हुआ। इसके साथ ही द्वैताद्वैतवाद के संस्थापक निम्बार्काचार्य ने विष्णु के दूसरे अवतार श्री कृष्ण की प्रतिष्ठा विष्णु के स्थान पर की। वल्लभाचार्य जी ने भी कृष्ण भक्ति के प्रसार का कार्य किया देश के पूर्व भाग में प्रचलित कृष्ण-राधा (जयदेव, विद्यापति) की प्रेम कथाओं को नवीन रूप प्रदान किया। जैन धर्म का प्रचार गुजरात से काठियावाड़ तक रहा है। हिन्दू धर्म इस्लाम के संपर्क से मात्र व्यक्तिगत साधना को केन्द्र न रहकर सामूहिक साधना का रूप धारण करने लगा था और उसमें आन्दोलनकारी प्रवृतियाँ उभरने लगी थी। सभी धर्मो में युगानुरूप परिस्थिति के अनुसार पंथो, सम्प्रदायो और उपसंप्रदायों तक की सृष्टि होने लगी, जिसके माध्यम से भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

भक्ति आंदोलन के उदय संबधी विविध धारणाए

भक्ति आंदोलन के उदय की व्याख्या साहित्यकारों तथा इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से की है मगर भक्ति आंदोलन के सदंर्भ में यह माना है कि सबसे पहले भक्ति का उदय दक्षिण

के आलवर संतो के यहाँ उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि:- 'भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाए रामानन्द' भक्ति का जो स्त्रोत दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उतर भारत की ओर आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानन्द रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में हुए और उन्होंने रामानन्दी सम्प्रदाय खड़ा कर दिया तथा विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया इन सभी का यह मूल उद्देश्य ज्ञान के साथ भक्ति का वादात्मय स्थापित करना था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व रामचन्द्र शुक्ल भक्ति के उदय की व्याख्या अलग-अलग रूपों में करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ हिन्दुओं की पराजित मनोवृति को नही मानते। वे कहते हैं:

''मुसलमानो के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा का उमड़ना था तो पहले सिन्ध में और फिर उसे उतर भारत में प्रकट होना चाहिए था पर हुई दक्षिण में।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते है कि "जब मुस्लिम साम्राज्य दूर दूर तक स्थापित हो गया, तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य नही रह गए इतने भारी उलट-फेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रहीं, अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करूणा की और ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।"

रामानुज मानते थे कि ईश्वर की भक्ति सभी वर्गो को समान रूप से करनी चाहिये लेकिन ईश्वर की प्राप्ति तभी हो सकती है जब ईश्वर का सच्चे मन से ध्यान किया जाये।

उतर भारत का भक्ति आंदोलन दक्षिण से अविरल धरा के रूप में इतिहास के विकास-क्रम में उतर भारत में फैला। इस आंदोलन से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी परिस्थितियाँ प्रभावित हुई। आज हम राष्ट्र एकता के रूप में इसे देख सकते हैं।

भक्ति आंदोलन के उदय संबंधी धाराएं

इस काल में ईश्वर के दो रूप माने गए हैं- सगुण एवं निर्गुण। जब परमात्मा को निराकार, अज, अनादि, सर्वव्यापी, अगोचर सूक्ष्म मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रह्मा कहा जाता है और जब वही ब्रह्मा सगुण साकार रूप धारण करके पर शरीर ग्रहण कर नाना प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता हैं। सगुण तथा निर्गुण धाराएं सामानांतर चलती रही आगे चलकर निर्गुण धारा दो शाखाओं में बंट गई-एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा तथा दूसरी प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत रामकाव्य और कृष्णकाव्य हैं। ज्ञानाश्रयी शाख्या के कवियो को संत कवि कहा जाता है इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। वही दूसरी ओर प्रेममार्गी शाखा को सूफी शाखा के नाम से जाना जाता है। इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि जायसी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्त के अनुसार ''सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानता है, पर भक्ति के लिए सगुण रूप ही स्वीकार करता है, निर्गुण रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड़ देता हैं।''

भक्ति साहित्य में भले ही निर्गुण- सगुण का भेद चला हो लेकिन मध्ययुगीन कवियों ने इस भेद को उस तरह से बढ़ने नही दिया जिससे इनके मानने वालों में वैमनष्य हो।

तुलसीदास जी ने कहा कि 'अगुनहि सगुनहि नहीं कुछ भेदा' इस प्रकार हम देखते है कि सगुण और निर्गुण उपासक दोनों में प्रेम और मानवता का धागा जुड़ा हुआ दिखाई देता है। भक्ति आंदोलन के उद्भव के कारण हिन्दू समाज के विभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू तथा मुसलमान निर्गुण तथा सगुण धाराओं के माध्यम से भी भेद भुलाकर मानवता के उदात्त मूल्यों की स्थापना में लगे हुए थे।

भक्ति आंदोलन परम्परा

भक्ति आंदोलन की परम्परा में चौतन्य महाप्रभु, रामानुचार्य, संत कबीर, संत तुकाराम आदि शंकराचार्य और संत रविदास ने मुखरता प्रदान की। चौतन्य महाप्रभु भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में गिनेजाते है। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय सम्प्रदाय की आधारशिला रखी तथा भजन गायकी की एक नयी शैली का विकास किया। इनके विचारों का सार यह है कि:- श्री कृष्ण ही एकमात्र देव है वे मूर्तिमान सौन्दर्य हैं, प्रेमपरक है। उनकी तीन शक्तियाँ- परम ब्रह्मा शक्ति, माया शक्ति और विलास शक्ति है। श्री रामानुचार्य के दर्शन में सता या परमसत् के सम्बन्ध में तीन स्तर माने गए हैं ब्रह्म अर्थात ईश्वर, चित् अर्थत आत्मा तथा अचित अर्थात प्रकृति वस्तुतः ये चित्, अचित् ईश्वर से पृथक नहीं है बल्कि ये विशिष्ट रूप से ब्रह्म का ही स्वरूप है। वही दूसरी आरे विद्यमान हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्तजगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। कबीर ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयंगम कर लिया।

भक्ति आंदोलन के सभी संतो व कवियों ने उस समय समाज में फैली बुराइयों को रोकने का प्रयत्न किया और शैवों तथा वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेष को खत्म किया और लोक धर्म व भक्ति साधना को सम्मिलत करके जनता के सामने लाए।

निष्कर्ष

भक्ति के उद्भव एवं विकास के समय जो कुछ भी भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा इतिहास को प्राप्त हुआ, वह स्वयं

में अद्‌भुत, अनुपम एवं दुर्लभ है। उस युग के संत एवं महात्माओं ने अपने धार्मिक विचारों, सिद्धान्तों और उपदेशों से सामान्य जनता सामाजिक व धार्मिक एकता का न केवल पाठ पढ़ाया, वरन उन्हें ईश्वर प्राप्ति एवं धर्म का सच्चा मार्ग दिखलाया। तत्कालीन समय से लेकर आज तक उन संतों की विचारधारा एवं आदर्श ने लोगों का पथ प्रदर्शन किया है। उन संतों और महात्माओं के सच्चे अनुयायी आज भी उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने जीवन को सार्थक व पूर्ण बना रहे है तथा मानव धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-61
2. डॉ. अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य सीरिज तृतीय प्रश्न पत्र पृ.-43
3. डॉ. सीमा शर्मा, भारत के महान संत
4. गोपश्वर सिंह, भक्ति आन्दोलन और काव्य, पृष्ठ-13-15
5. डा. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-94
6. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ-180

शिक्षा का अधिकार एवं बिहार में महिलाओं की शैक्षणिक स्थितिः फुलवारीशरीफ प्रखंड के विशेष संदर्भ में (2010-2020)

कन्हैया जी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

डॉ० विनोद कुमार

सहायक प्रोफेसर, एस. एम. डी कॉलेज पुनपुन, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

शोध सारांशः-

सुचना और संचार क्रांति के इस दौर में शिक्षा का बहुत महत्व है। किसी भी राष्ट्र को उन्नति के पथ पर आगे से जाने में शिक्षा को महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी देश में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। संविधान के 86वें संवैधानिक संशोधन से अनुच्छेद 21ए के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है। बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिनियन अगस्त 2009 में संसद द्वारा पारित किया गया था एक 1 अप्रैल 2010 से पूरे देश में लागू हो गया। यह प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से भारत सरकार की ओर से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम था। आर0 टी0 ई0 एक क्रियाशीलता का हिस्सा है न कि कोई जादू की घड़ी है जो निश्चित रूप से वंधित बच्चों को शिक्षा प्रदान करने वाली चुनौतियों को समाप्त कर देगा। शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने स्कूलों में कुछ विशेष रूप से मूल सुविधाएं उपलब्ध कराई है और जिसके फलस्वरूप सुविधाहीन स्कूली प्रणाली की कुछ हद तक प्रतिष्ठा बहाल हुई हैं।

कुंजी शब्दः- स्कूल, शिक्षा, अधिकार, मौलिक अधिकार, विकास।

भुमिकाः-

शिक्षा का अधिकार एक मूलभूत मानव अधिकार है। किसी भी लोकतान्त्रिक प्रणाली की सरकारी सफलता वहाँ के सभी नागरिको के शिक्षित होन पर निर्भर करती है। एक शिक्षित नागरिक स्वयं को विकसित करता है और साथ ही अपने देश को भी विकास की ओर आगे बढ़ाने में योगदान करता है। शिक्षा ही एक व्यक्ति को मानव की गरिमा प्रदान करती है। हमारे देश में यह कहा गया है कि एक शिक्षित व्यक्ति पशु के समान है।

शिक्षा सभी प्रकार के मानव विकास व प्रगति का आधार होती है। यह समस्त मानव समस्याओं के प्रति सर्वाधिक पैना हथियार तथा सबसे मजबूत ढ़ाल होती है। शिक्षा के अभाव में मानव जीवन अर्थहीन हो जाता है। शिक्षा के माध्यम से हम उस ज्ञान तथा उन कौशलों को ग्रहण करते है जिनसे हम एक सार्थक जीवन व्यतीत करने योग्य बनते है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति की कुंजी होती है। बेंकन के अनुसार ज्ञान ही शक्ति है अर्थात ज्ञान ही मनुष्य को समाज को और देश को शक्ति सम्पन्न बनाता है। शिक्षा के द्वारा हम मनुष्य के अन्दर छुपी हुई अंतर्निहित शक्तियों को बाहर निकालकर उसका उपयोग समाज एवं देश की भलाई में करते है। शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनने के पथ पर अग्रसर करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य की आंतरिक और वाह्य शक्तियों का विकास होता है।

जी. एच थॉमस के अनुसार- शिक्षा के कारण ही मानव आज सभ्यता के इस ऊँचे शिखर पर पहुँच गया है। शिक्षा ही मनुष्य की असत्य से सत्य की और अंधकार से प्रकाश की और अज्ञान से ज्ञान की ओर मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने के लिए प्रेरित करती है और निर्देशित करती है।

शिक्षा स्वयं साध्य न होकर व्यक्ति निर्माण का साघन है और व्यक्ति से समाज बनता है। इस प्रकार शिक्षा समाज निर्माण का साधन बन जाती है। शिक्षा ही अज्ञानता से मुक्ति दिला कर समाज के कमजोर वर्ग को सशक्त बनाने में अहम भूमिका निभाती है क्योंकि शिक्षा से ही यह यह जान पाता है कि उसके अधिकार व स्तन्त्रताओं का क्या रूप है? राज्य व समाज के प्रति उसके क्या दायित्व है? अधिकारों के हनन को कैसे रोका सकता है? निःसंदेह शिक्षा से व्यक्ति में सकारात्मक तर्किक, व गुणात्मक सुधार आता है। वस्तुतः शिक्षा से ही एक अच्छे नागरिक निर्माण में सहायता मिलती है. इसलिए एक अच्छे समाज निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि तद्नुरूप वाछित शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण किया जायें, क्योंकि शिक्षा समाज परिवर्तन का सशक्त साधन भी है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आर.टीई एक्ट, 2009) की ऐतिहासिक पृष्ठभुमि

26 अगस्त 2000 को भारतीय संसद से शिक्षा के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक अधिनियम पारित किया जिसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 कहा जाता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से भारत सरकार की ओर से सर्वाधिक प्रतिक्षित कदम था। सर्वप्रथम गोपालकृष्ण गोखले ने 19 मार्च 1910 को केंन्द्रीय धारा सभा मैं अनिवार्य एवं नि: शुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था। सोलह मार्च 1911 में गोखले ने इस प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में पेश किया, परन्तु यह विधेयक पास नहीं हो सका। 1937 में महात्मा गांधी ने डॉ० जाकिर हुसैन के साथ मिलकर नई तालीम की अवधारणा प्रस्तुत की। वर्तमान में इसे वर्धा शिक्षा योजना बुनियादी शिक्षा, बेसिक शिक्षा और बेसिक एजूकेशन आदि कई नामों से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत 1-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। 1966 में कोठारी आयोग ने बच्चों के लिए समान शिक्षा की सिफारिश की। 1965 की नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा को सभी को आसानी से प्राप्त होने के लिए एक किलोमीटर की दूरी के अन्दर प्राथमिक विद्यालय और तीन किलोमीटर की दूरी अन्दर उच्च प्राथमिक विद्यालय खोलने की बात कही गयी। नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की पृष्ठभूमि में कहा गया है कि- ''सविधान में 86वें संवैधानिक सशोंधन से अनुच्छेद 21ए के द्वारा शिक्षा को भौतिक अधिकार का दर्जा दिया गया है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की मुख्य विशेषतायें:

- भारत के 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बीच आने वाले सभी बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा।
- कक्षा 1 कक्षा 8 तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के रूप में परिभाषित।
- प्राथमिक शिक्षा खत्म होने से पहले किसी भी बच्चे को रोका नहीं जाएगा, निकाला नहीं जाएगा या बोर्ड परीक्षा पास करने की जरूरत नहीं होगी।
- प्राथमिक शिक्षा पूरा करने वाले छात्र को एक प्रमाणपत्र दिया जाएगा।
- एक निश्चित शिक्षक छात्र अनुपात की सिफारिश।
- जम्मू कश्मीर को छोड़कर समूचे देश में लागू।
- वित्तीय बोझ राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के बीच 55. 45 के अनुपात में साझा किया जाएगा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अन्तर्गत मुख्य उद्देश्य:

- नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
- केन्द्र एवं राज्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने के दायित्व की पूर्ति करना।
- संविधान के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना।
- शिक्षा एवं विद्यालयों की गुणवत्ता बढ़ाना।
- शिक्षकों द्वारा अपने दायित्व निर्वहन करना।
- बालकों का संरक्षण एवं बाल श्रम को रोकना।
- विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश में नौकरशाही प्रवृत्ति को समाप्त करना।
- शिक्षा में स्थानीय भागीदारी को बढ़ाना।
- परिक्षाओं के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अन्तर्गत प्रावधान-

- 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु के प्रत्येक बच्चे को प्रारंम्भिक शिक्षा के पूर्ण होने तक उसके निकट के प्राथमिक विद्यालय में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा कर अधिकार होगा।
- प्रारम्भिक शिक्षा के पूर्ण होने तक किसी भी बच्चे से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाएगा।
- यदि किसी बच्चे को राज्य के अन्दर या बाहर एक विद्यालय में दूसरे विद्यालय में प्रवेश पाने की आवश्यकता पड़ती है तो उसे अपनी इच्छानुसार स्थानांतरण का अधिकार होगा।
- सभी निजी स्कूलों में पहली कक्षा में प्रवेश के समय कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित रखना।
- केन्द्र और राज्य सरकारें इस कानुन को लागु करने के लिए धन उपलब्ध कराना सुनिश्चित करेंगी।
- इस कानून के लागू होने के बाद कोई भी नया स्कूल बिना सरकार की अनुमति और प्रमाण पत्र के नहीं खोला जायेगा।
- शिक्षक और विद्यार्थी का अनुपात 1:30 होना।
- संविधान में दिये गये मूल्यों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाऐगा।
- प्रशिक्षित अध्यापक ही विद्यार्थियों को पढ़ाने का कार्य करेंगे और अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जायेगा।
- शिक्षकों को जनगणना, प्राकृतिक आपदा तथा चुनाव कार्य के सिवाय किसी भी प्रकार की डयूटी का कार्य नहीं दिया जायेगा।

- बच्चों पर किसी भी प्रकार की उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण वाली परीक्षा लागू नहीं की जायेगी।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन का विश्लेषणः

एक गैर सरकारी संस्था प्रथम द्वारा 17 राज्यों के करीब ढाई हजार स्कूलों में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 90 प्रतिशत स्कूल शिक्षा का अधिकार कानून के मानकों पर खरे नहीं उतरते है। केवल 45 प्रतिशत स्कूल ही प्रति 30 बच्चों पर 1 शिक्षक होने का अनुपात करते हैं। डाइस रिपोर्ट 2013-14 के अनुसार शिक्षा के अधिकार कानून को मापदण्डों को पूरा करने के लिए 12 से 14 लाख शिक्षकों की जरूरत है। आर०टी0ई० फोरम की रिर्पोट के अनुसार बिहार में 51.51 छत्तीसगढ़ में 29.98 असम में 11.43 हिमाचल में 9.01 उत्तर प्रदेश में 27.99 पर पश्चिम बगाल में 40.50 प्रतिशत शिक्षक प्रशिक्षित नही है। 35 प्रतिशत स्कूलों में छात्र-छात्राओं के लिए अलग-अलग शौचालय की सुविधा नहीं है। 22 फिसदी सालाना विद्यालयों में पानी उपलब्ध नहीं है।

वर्ष 2014 (एनुअल स्टेट्स ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट) के अनुसार भारत में निजी स्कूल जाने वालों बच्चों का प्रतिशत 51.7 प्रतिशत हो गया है, 2010 में यह 39.3 प्रतिशत था। सरकारी विद्यालयों पर साधारण लोगों का विश्वास बहुत कम है, इसलिये इस वर्ग के लोग अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ने के लिए नहीं भेजते। सरकारी विद्यालयों में वे ही बच्चे पढ़ने जाते हैं जिन्हें किसी भी अच्छे प्राईवेट स्कूल में प्रवेश नहीं मिलता। भारत के संविधान के अनुसार सभी को एक समान शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था है। परन्तु सरकारी विद्यालयों में सबसे वंचित वर्गों के बच्चे ही पढ़ने जाते हैं। सुविधा सम्पन्न वर्ग की जनता अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ने नहीं भेजते।

गैर सरकारी संस्था वर्ष 2014 की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2009 में कक्षा 3 के 5.3 प्रतिशत बच्चे कुछ भी पाठ नहीं पढ़ सकते थे वहीं 2014 में यह अनुपात और बढ़ कर 14.9 प्रतिशत हो गया है। 2009 में कक्षा 5 के 1.8 प्रतिशत बच्चे कुछ भी पाठ नहीं पढ़ सकते थे, 2014 में यह अनुपात बढ़कर 5.7 प्रतिशत हो गया।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के क्रियान्यव्यन में चुनौतियाँः-

- शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों के लिए सबसे बड़ी समस्या भाषा है। जिन छात्रों की मातृभाषा हिन्दी छोड़कर अन्य भाषा होती है उन्हें हिन्दी में लिखी हुई पाठ्ड पुस्तकों को पढ़ने या समझने में अधिक परेशानी का सामना करना पड़ता है और उनको अन्य भाषा में दक्ष होने में लगभग आठ साल लग जाते हैं।
- सरकारी स्कूलों में साधारण लेकिन आश्यक शौचालय जैसी सुविधाएं अभी भी अनुपस्थित है। सर्वेक्षणों से पता चला है कि केवल 49 प्रतिशत स्कूलों में ही लड़कियों के लिए शौचालय की सुविधा उपलब्ध है. जिसके कारण किशोरी लड़कियाँ सरकारी स्कूली शिक्षा का त्याग कर रही हैं।
- केवल 43 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में बिजली की सुविधा उपलब्ध है, जो परिस्थितियों को उचित शिक्षा प्रदान करने के लिए अत्यंत प्रतिकूल बनाती हैं।
- अधिनियम के दिशा निर्देश के सम्बन्ध में अधिकांश माता-पिता को ठीक तरह जानकारी न होने के कारण वे अपने बच्चों के लिये अधिकारों की मांग नहीं कर पाते।
- देश के अनेक विद्यालय मानते हैं कि आर०टी०ई० के अन्तर्गत गरीब बच्चों के प्रवेश से उनके विद्यालय के परिणाम का स्तर गिर जाएगा, अतः इन बच्चों के प्रवेश को हतात्साहित करते हैं।
- सरकार विद्यालयों को समय पर क्षतिपूर्ति राशि प्रदान नहीं करती, अतः विद्यालय प्रशासन इन बच्चों को प्रवेश देने में आनाकानी करता है।
- इस अधिनियम के अन्तर्गत विकलांगों, अनाथों, भिखारियों आदि के बच्चों के लिये पृथक प्रावधान नहीं किया गया है।

आर० टी० ई०-2009 को सफल बनाने के लिए सुझावः-

सरकार को शिक्षा के अधिकार अधिनियन 2009 के समस्त प्रावधानों के क्रियान्वयन को निम्नलिखित सुझाव द्वारा सफल बनाया जा सकता-

- शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 को सफल बनाने के लिये जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिये, जिसमें मीडिया, सोशल मीडिया, प्रसिद्ध व्यक्तियों, स्थानीय नेताओं, सिविल सोसायटी आदि को शामिल करना चाहिये।
- विद्यालयों की समुचित निगरानी करनी चाहिये एवं समय-समय पर इस अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन की रिपोर्ट लेनी चाहिये।
- विद्यालयों को रियल टाइम आधार पर निगरानी के लिये ऑनलाइन प्रबन्धन प्रणाली का प्रयोग करना चाहिये।
- अध्ययन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये सतत् और व्यापक मूल्यांकन की महत्व देना चाहियें।
- अध्यापन की गुणवत्ता सुधार के लिये शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्थाओं पर ध्यान देना चाहिये।
- 25 प्रतिशत आरक्षण का पालन न करने के मामले में कड़े दण्ड का प्रावधान किया जाना चाहिये।

- शिक्षकों से गैर शिक्षकीय कार्य लेना पूरी तरह से बन्द कर दिया जाना चाहिये।
- शिंक्षा में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षण समाप्त करके शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिये।
- शिक्षा में सभी प्रकार का भेदभाव समाप्त कर देना चाहिये।
- सभी विद्यालयों में फीस की राशि एक समान होनी चाहिये। अगर कोई विद्यालय ज्यादा फीस ले तो उसको कठोर दण्ड दिया जाये।
- जो अभिभावक 6-14 वर्ष के बच्चों को विद्यालय नहीं भेजते और उनसे बाल श्रम करवाते हैं. उन्हें कठोर दण्ड देने का प्रावधान होना चाहिये।

निष्कर्ष:-

आर०टी०ई० के आदेश के फलस्वरूप प्रशिक्षित शिक्षक, बुनियादी सुविधाओं और एक बेहतर शैक्षणिक आधारभूत संरचना ने शिक्षा को काफी प्रेरित किया है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा अब हर 6-14 आयु वर्ग के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है। इसे कानून द्वारा अब बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जा रही है। स्कूल विकास एवं निगरानी समिति (एसबीएमसी) अब एक महत्वपूर्ण संस्था बन गई है और यह बाल शिक्षा के बारे में माता पिता के विचारों पर गंभीरता से विचार कर रही है। कई ऐसे निजी विद्यालय है जहाँ गरीब बच्चों को 25 प्रतिशत आरक्षण के लिए अलग से कक्षाएँ बना दी गई है। इस अधिनियम द्वारा विद्यालयों को अब किसी भी प्रकार की कैपिटेशन फीस न लेने की अनिवार्यता है एवं विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार के भेद-भाव करने पर रोक है। विद्यालयों एवं अध्यापकों द्वारा किसी भी प्रकार के दण्ड् या मानसिक प्रताड़ना न देने के प्रावधान के फलस्वरूप विद्यार्थियों में विद्यालय जाने और अध्ययन में रूचि बढ़ेगी। यह कानून सार्वभौमिक शिक्षा के मद्देनजर बहुत महत्वपूर्ण है किन्तु इसके क्रियान्वयन में कुछ चुनौतियों है, जिनका उल्लेख ऊपर वर्णित है। इन चुनौतियों को अगर सरकार द्वारा दूर कर दिया जायेगा तो निश्चित ही भारत में शत-प्रतिशत साक्षरता होगी जो कि 2011 की जनगणना के अनुसार 74.04 है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल जे०सी० (2010) राईट टू एजुकेशन एण्ड रिबाइटलाइजिंग एजूकेशन, नई दिल्ली शिक्षा पब्लिकेशन्स।
2. दास ए० (2010) राईट टू एजूकेशन, नई दिल्ली ऐक्सिस पस्तिकेशन्स।
3. गुप्ता एस०पी0 एवं अलका (2009) भारतीय शिक्षा की इतिहात विकास एवं समस्याऐं, इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन।
4. मिश्रा एस०के० (2014) भौतिक एवं शैक्षिक सुविधाओं के सन्दर्भ में शिक्षा के अधिकार कानून 2009 के क्रियान्वयन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉक्टरोत डिजर्टेशन, वनस्थली विद्यापीठ, retriew fromhttp://hdl.handle.net/10603/165950 on 14-02-2019
5. सिह. ए० के० (2000) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।
6. शर्मा के0 (2012), शिक्षा के अधिकार कानून का आकलन, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका (अंक 11) सितम्बर 2012 पृ0सं0 08-11।
7. श्रीवास्तव, ए०आर०एन० (2002) भारतीय सामाजिक समस्याऐं इलाहाबाद के०के० प्रकाशन एकेडमी प्रेस।
8. स्त्री शिक्षा एम०ए० हन्फी और एस०ए० हन्फी।
9. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ पी०डी० पाठक।
10. वुमेन ऐडुकेशन थ्रो द ऐजेस एन०एल० गुप्ता।
11. वुमेन ऐडुकेशन एण्ड डेवलपमेन्ट ए न्यु पर्सपेक्टिव जर्नादन प्रसाद एण्ड विजय कुमारी कौशिक।
12. वुमेन ऐडुकेशन एण्ड एम्पावरडमेन्ट रोज ऑफ बेथुन कॉलेज (1879-1947) - डॉ० स्वेता डे।
13. वुमेन ऐडुकेशन हेल्थ एण्ड मोबिलिटी स्टेट्स-सुचित्रा एस० कुमार
14. महिला विकास और शिक्षा-जी०पी० शास्त्री।
15. कौशिश विजय, (1998), "वुमैन मुवमेन्ट एण्ड ह्यूमन राइट्स" पोस्टर पब्लिशर्स, जयपुर।

कैमूर जिले का प्राचीन इतिहास एवं स्थापत्यः एक अवलोकन

राजा अम्बेदकर

शोधार्थी

डॉ० उदय नारायण तिवारी

शोध-निदेशक (विभागाध्यक्ष) प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व संस्कृति, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारः

बिहार राज्य में अवस्थित कैमूर का एक गौरवमय इतिहास रहा है। प्राचीन ग्रंथों में इस क्षेत्र को भगवान शंकर की भूमि के रूप में उल्लिखित किया गया है। कैमूर का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं मनोहर है। इस पठारी क्षेत्र में भार, चेरों एवं सबर जैसी आदिम जनजातियाँ निवास करती थीं और इन सबों का ही यहाँ पर आधि पत्य था। ऐसी मान्यता है कि यहाँ सहस्त्र अर्जुन ने यहाँ राज किया था, जिसे युद्ध में परशुराम ने मार डाला था। वैसे कैमूर क्षेत्र पहले लम्बे समय तक मगध साम्राज्य का हिस्सा रहा था। यहाँ मौर्य और गुप्त वंश के शासकों ने भी राज किया। सातवीं शताब्दी में इस भू-भाग पर कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन का अधिकार हो गया। उसी समय मशहूर चीनी यात्री ह्वेनसांग अपने यात्रा के दौरान इस इलाके से होकर गुजरा था। फिर कैमूर पर मध्य भारत में राज करने वाले शैल वंश का वर्चस्व कायम हुआ और इसत तरह उसका भी आधिपत्य रहा। इस क्षेत्र पर कुछ समय तक पाल वंश का भी शासन रहा। बारहवीं षताब्दी में यहाँ छोटे-छोटे राजा थे, जिनमें आपस में फूट था परिणाम स्वरूप बख्तियार खिलजी ने कैमूर इलाके पर आसानी से कब्जा कर लिया था। शेरशाह सूरी के पिता हसन खान को कैमूर क्षेत्र जागीर के रूप में मिला था। प्रारम्भ में कैमूर शाहाबाद के अन्तर्गत था, सन् 1972 ई० में शाहाबाद से अलग होकर रोहतास जिला बना। तत्पश्चात् बाद में 13 मार्च 1991 ई० को रोहतास से अलग करके कैमूर को स्वतंत्र जिला का दर्जा दिया गया। 1993 ई० में ऐतिहासिक कैमूर के नाम पर ही जिले का नामकरण कैमूर रखा गया।

मुख्य शब्दः गौरवमय, शिलालेख, आदिम, आधिपत्य, साम्राज्य।

कैमूर बिहार राज्य का एक मुख्य जिला है। कैमूर बिहार की राजधानी पटना से करीब करीब 200 किलोमीटर दूर है। कैमूर जिला बिहार राज्य में, उत्तर प्रदेश जिले की सीमा के पास स्थित है। कैमूर जिले में आपको पहाड़ी और मैदानी भाग देखने के लिए मिलता है। कैमूर जिले में कर्मनाशा नदी, दुर्गावती नदी और कोहीरा नदी बहती हैं। यह नदियां कैमूर जिले की मुख्य नदी है। कर्मनाशा नदी उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य की सीमा बनाते हुए बहती है। कैमूर जिले का मुख्यालय भभुआ है। कैमूर जिला बहुत सुंदर है। यहां पर आकर आपको ऐतिहासिक, प्राकृतिक पर्यटन स्थल देखने के लिए मिलते हैं। कैमूर जिला में घूमने के लिए बहुत सारी जगह है।

राजेंद्र सरोवर कैमूर शहर में भभुआ में स्थित एक मुख्य स्थल है। यहां पर आपको एक सुंदर सरोवर देखने के लिए मिलता है।[1] यह सरोवर नगर परिषद के द्वारा संरक्षित है। यहां पर चारों तरफ बाउंड्री वॉल बना दी गई है, ताकि सरोवर में किसी भी तरह का प्रदूषण ना किया जाए। यहां पर आप आकर अच्छा समय बिता सकते हैं। चारों तरफ पेड़ पौधे लगे हुए हैं। शाम के समय बिताना बहुत अच्छा लगता है। यहां पर सरोवर के किनारे बैठने की व्यवस्था भी की गई है।

माँ मुंडेश्वरी देवी मंदिर कैमूर- माँ मुंडेश्वरी देवी मंदिर भभुआ जिले का एक प्रसिद्ध मंदिर है। यह मंदिर भभुआ में कैमूर पहाड़ी पर स्थित है। यह मंदिर शिव और शक्ति को समर्पित है। यह मंदिर प्राचीन है। यह मंदिर बहुत सुंदर है। पूरा मंदिर पत्थर से बना हुआ है। यह मंदिर ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ है। मंदिर तक जाने के लिए सड़क माध्यम उपलब्ध है। यह मंदिर 2000 वर्ष पुराना है। मंदिर में प्राप्त शिलालेख 389 ई० के बीच का है, जो उसकी प्राचीनता को दर्शाता है[2] यह मंदिर अष्टकोणीय आकार में बना हुआ है। मंदिर के पूर्वी भाग में देवी मुंडेश्वरी की पत्थर से बनी हुई भव्य प्रतिमा देखने के लिए मिलती है। मां वारही रूप में विराजमान है, जिनका वाहन महीश है। यहां पर पशु बलि के रूप में बकरे को चढ़ाया जाता है, परंतु उसका मारा नहीं जाता है, उसे जिंदा छोड़ दिया जाता है। यह एक अनोखी बात है और यह इस जगह पर देखने के लिए मिलती है।

माँ मुंडेश्वरी देवी मन्दिर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित है। इस मंदिर के मध्य में आपको शिव भगवान जी का शिवलिंग देखने के लिए मिलता है। यह शिवलिंग चौमुखी है और शिवलिंग बहुत सुंदर है। इस शिवलिंग को बनाने में जिस पत्थर का उपयोग किया गया है। वह पत्थर सूरज की स्थिति के अनुसार अपना रंग बदलता है और बहुत सुंदर लगता है। यहां पर नंदी भगवान जी की

भी बहुत बड़ी प्रतिमा देखने के लिए मिलती है। नंदी भगवान की प्रतिमा मंदिर के बाहर विराजमान है। यहां पर मुंडेश्वरी देवी की प्रतिमा देखने के लिए मिलती है। आप इस मंदिर में घूमने के लिए आ सकते हैं। मंदिर की दीवारों में आपको नक्काशी देखने के लिए मिलती है, जो बहुत सुंदर है। मंदिर में और भी बहुत सारे देवी देवताओं की प्रतिमाएं देखने के लिए मिल जाती है। यहां पर आपको गणेश, सूर्य भगवान जी और भी बहुत सारे देवी देवता देखने के लिए मिलते हैं। यह मंदिर 600 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है।[3]

हरसू ब्रह्म धाम कैमूर जिले में स्थित एक प्रमुख धार्मिक स्थल है। यह एक पुरातन मंदिर है। यह मंदिर कैमूर जिले में चौनपुर में स्थित है। यह मंदिर प्राचीन है। यहां पर हरसू ब्रह्म बाबाजी का समाधि स्थल देखने के लिए मिलता है। इस मंदिर के बारे में कहा जाता है, कि इस मंदिर में जो भी भूत प्रेत से पीड़ित लोग रहते हैं। वह इस मंदिर में आकर प्रार्थना करते हैं, तो भूत प्रेत से छुटकारा मिलता है। यहां पर भारत के कोने-कोने से लोग आते हैं।[4]

चौनपुर डैम कैमूर जिले का एक मुख्य पर्यटन स्थल है। यह बांध कैमूर जिले में चौनपुर के पास स्थित है। यह बांध बहुत सुंदर है और पहाड़ियों से घिरा हुआ है। आप यहां पर बरसात के समय घूमने के लिए आ सकते हैं। बरसात के समय इस जगह का दृश्य बहुत ही जबरदस्त रहता है। यह बांध कोहिरा नदी पर बना हुआ है। इस बांध को जगदहवाँ बांध के नाम से भी जाना जाता है। आप यहां पर आ कर इस बांध की खूबसूरती को देख सकते हैं।

सूर्य मंदिर कैमूर जिले का एक मुख्य धार्मिक स्थल है। यह मंदिर कैमूर जिले में रामगढ़ में स्थित है। गोरसर पोखर के बीच में सूर्य मंदिर बना हुआ है। यह मंदिर बहुत सुंदर लगता है। यह तालाब बहुत सुंदर है। यहां पर आपको तालाब के बीच में दो मंजिला मंदिर देखने के लिए मिलता है। मंदिर में जाने के लिए पुल बना हुआ है। यहां पर गर्भग्रह में सूर्य भगवान जी की बहुत सुंदर प्रतिमा देखने के लिए मिलती है, जिसमें सूर्य भगवान जी अपने घोड़ों को साथ लिए रथ में सवार है। आप यहां पर घूमने के लिए आ सकते हैं।[5]

करकटगढ़ जलप्रपात कैमूर जिले का एक मुख्य जलप्रपात है। यह जलप्रपात बहुत सुंदर है। यह जलप्रपात करकटगढ़ घाटी में बना हुआ है। यह जलप्रपात बारहमासी है। यह जलप्रपात मगरमच्छों का आश्रय स्थल है। यह एक संरक्षित आश्रय स्थल है। इस जलप्रपात की ऊंचाई लगभग 35 मीटर है। इस जलप्रपात की दूरी कैमूर जिले के मुख्यालय भभुआ से लगभग 50 किलोमीटर है।

तेलहाड़ कुंड जलप्रपात भभुआ जिले का एक मुख्य जलप्रपात है। यह जलप्रपात भभुआ जिले का एक प्राकृतिक पर्यटन स्थल है। यहां पर आपको सुंदर जलप्रपात देखने के लिए मिलता है और यहां पर सुंदर घाटी देखने के लिए मिलती है, जो बहुत ही आकर्षक लगती है। बरसात के समय यहां पर आकर इस घाटी को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। यह जलप्रपात भभुआ जिले के अधौरा प्रखंड की तरफ जाने वाले मार्ग पर स्थित है। यहां पर आप आसानी से पहुंच सकते हैं। यहां पर आप अपनी कार या बाइक से जा सकते हैं। तेलहाड़ कुंड जलप्रपात बहुत सुंदर है।[6] इस जलप्रपात में घूमने का सबसे अच्छा समय बरसात का रहता है। बरसात के समय पानी की मात्रा बहुत ज्यादा रहती है। यह भभुआ टाउन से करीब 30 किलोमीटर दूर है। यहां पर आपको चट्टानों, पहाड़ों, घाटी और जलप्रपात का दृश्य देखने के लिए मिलता है। यहां पर एक व्यूप्वाइंट बना हुआ है, जहां से आप जलप्रपात का सुंदर दृश्य देख सकते हैं। बख्तियार खां का मकबरा कैमूर जिले का एक मुख्य ऐतिहासिक स्थल है।[7] यह मकबरा बहुत सुंदर है। यह मकबरा कैमूर जिले के चौनपुर प्रखंड में स्थित है। इस मकबरे का निर्माण 16 और 17वीं शताब्दी के मध्य किया गया था। यह मकबरा बहुत सुंदर है। यह मकबरा मुगल शासक बख्तियार खा का है। यह मकबरा अष्टभुजीय है। इस मकबरे में एक बरामदा है, जिसकी छत पर 24 छोटे-छोटे गुंबद स्थापित है और बीच में एक बड़ा सा गुंबद बना हुआ है, जो बहुत सुंदर लगता है।

यह मकबरा चौनपुर में कोहिरा नदी के किनारे बना हुआ है। आप यहां पर घूमने के लिए आ सकते हैं। इस मकबरे के आसपास और भी बहुत सारी जगह है, जहां पर आप घूम सकते हैं। यहां पर एक दरगाह देखने के लिए मिलती है। हनुमान मंदिर और बौद्ध मंदिर भी देखने के लिए मिलता है।

भारत का पूर्वी राज्य बिहार, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से काफी समृद्ध माना जाता है। यहां आप आज भी प्राचीन स्थल, शहर और सरंचनाओं को देख सकते हैं। इतिहास में दिलचस्पी रखने वालों के लिए यह राज्य किसी खजाने से कम नहीं। हालांकि इन सब के अलावा बिहार प्राकृतिक रूप से काफी खास माना जाता है। आप यहां कई खूबसूरत नदियां, पहाड़ी और जलप्रपात देख सकते हैं। इस लेख में हम राज्य के खूससूरत स्थल कैमूर के विषय में बताने जा रहे, जो कुदरती रूप से काफी खास माना जाता है। वर्तमान में यह बिहार राज्य का एक जिला है, जिसका गठन 1993में किया गया था। जानिए अपनी विभिन्न आकर्षणों के साथ कैमूर आपको किस प्रकार आनंदित कर सकता है। कैमूर की पहाड़ियों कई खूबसूरत जलप्रपातों का घर भी मानी जाती है। करकट जलप्रपात के अलावा आप यहां के तेलहार कुंड की सैर का आनंद ले सकते हैं। यह एक जलप्रपात है, जो कैमूर जिले के भभुआ-औधोरा मार्ग पर स्थित है। यह जलप्रपात यहां के प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में गिना जाता है। खासकर मॉनसून के दौरान यहां की खूबसूरत देखने लायक होती है। यहां का आसपास का प्राकृतिक माहौल सैलानियों का काफी ज्यादा प्रभावित करता है। तेलहार कुंड दुर्गावती नदी के काफी निकट स्थित है। इस जलप्रपात के पास एकमां मुंडेश्वरी का एक पुराना मंदिर भी स्थित है।[8]

इस क्षेत्र में बलुआ पत्थर की प्रधानता है किंतु कहीं-कहीं परिवर्तित चट्टाने भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। गोविंदगढ़ के पास लगभग 2000 ऊँचा भाग उत्तर पश्चिम की ओर चला जाता है। रोहतास गढ़ क्षेत्र के मध्य छोटी किंतु अत्यंत उपजाऊ घाटियाँ स्थित हैं। पहाड़ों की ढालें अत्यंत खड़ी एवं दुर्गम है परंतु बीच बीच में दर्रे हैं। चुनार गढ़, विजय गढ़ तथा रोहतास गढ़ के किलों के कारण इन श्रेणियों का ऐतिहासिक महत्व हैं।[9] विजयगढ़ के पास कंदराओं में प्रागैतिहासिक चित्र एवं प्रस्तरकालिनक हथियार

उपलब्ध हुए है। संपूर्ण क्षेत्र भवन निर्माणार्थ बलुआ पत्थर की खदानें है। चूना पत्थर में डालमियानगर, जपला, बनजारी और चुर्क में सीमेंट तथा चूना बनता है। डेहरी-ओन-सोन के दक्षिणी डेहरी रोहतास चुटिया रेलवे के पास बनजारी एवं अमझोर के पास गंध क के खनिज माक्षिक मिले हैं।

रोहतास से अलग स्वतंत्र जिला के रूप में कैमूर प्राचीन काल से ही विकसित संस्कृति का क्षेत्र रहा है। यहाँ बिखरीं पड़ीं धरोहरें इतिहास के कालखंडों के रहस्यों को अपने गर्भ में छिपाए हैं। कैमूर की गुफाओं में हजारों वर्ष पूर्व के शैलचित्र मौजूद है। ये शैलचित्र यहां की प्राचीन शैली के गवाह हैं, पर संरक्षण के अभाव में ये जीवंत दस्तावेज विलुप्त होने के कगार पर है। इतिहासविद् शैलचित्रों के आरंभ को ईसा पूर्व से ही जोड़ते हैं। इसकी खोज ब्रिटिश नागरिक एसी कारलाईल ने की थी।[10] यूरोप में शैलचित्रों का उल्लेख 1868 ई० के आसपास किया गया। बाद में कारलाईल ने 1880-81 के बीच विंध्य पर्वत शृंखला के मिर्जापुर व रीवां जिले में शैलचित्रों की पहचान की। 1883 में मि० राकवर्न ने इस तरह के शैलचित्रों का उल्लेख करते हुए मिर्जापुर की गोड़, चेरो, बैंगा, खरवार, भूटिया आदि जनजातियों के चित्रांकन के साथ इसका तुलनात्मक विवरण दिया। इसके बाद देशभर में शैलचित्रों का अध्ययन प्रारंभ हुआ। सन् 1922 में मनोरंजन घोष, 1933 में डीएच गोरडोन, 1952 में एस०के० पाण्डेय, अलंचिन, 1967 में एस० बाकनकर तथा 1977 ई० शंकर तिवारी, के०डी वनर्जी आदि विद्वानों ने इस कला का विस्तृत अध्ययन किया।[11]

रोहतास जिले के शैलचित्रों का सर्वेक्षण सर्वप्रथम फरवरी 1999 ई० में कर्नल उमेश प्रसाद के नेतृत्व में आए पर्वतारोही दल ने किया। जिसमें पूर्व निदेशक पुरातत्व विभाग बिहार डॉ० प्रकाशचंद प्रसाद, कैप्टन सुभाष धले व डॉ० कुमार आनंद शामिल थे। रोहतास गढ़ के पास बाण्डा गांव की पूरब पहाड़ी की गुफाओं में चार शैलचित्र मिले है। इनके नाम मिठईयामान, मंगरूआ मान, चनाइनमान, इनरबिगहिया मान हैं। ये सभी शैलचित्र पहाड़ी की ऊंचाई पर गुफाओं में हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही मानव सबसे सुरक्षित स्थान पर आवास बनाता रहा है। इन सभी शैलचित्रों के नजदीक ही पानी के स्रोत हैं। शैलचित्रों में विभिन्न प्रकार के चित्ताकर्षक दृश्यों का अंकन है। सभी गहरे लाल रंग के है। कहीं पशु पक्षी तो कहीं मानवों को युद्ध करते दिखाया गया है। एक गुफा में शैलचित्र पर नृत्य करते तो एक में आदमी जानवर पर बैठा है। मिठईया मान में राइमो के मुख के कंकाल, सुअर व बंदर का चित्र बना है। कुछ चित्रों में भाला-बाण आदि शस्त्रों से पशु पक्षियों के शिकार का अंकन है। यह मानव के आखेटक जीवन की झांकी का मनोरम चित्रण है।[12]

इसी तरह के शैलचित्र फुलवरिया घाट, गीता घाट के समीप की गुफा, कादिम कुंड, सिंगाय कुंड, बड़की कापरी, बुढ़ी खोह, जमुनिया मांद में भी पाए गए है। यहां की जनजातियों में आज भी दीवारों पर भालू, बंदर, हाथी, घोड़े, हिरण, बाघ, कुत्ते आदि के चित्र बनाने की परम्परा जीवित है।

निष्कर्ष: सर्वेक्षण समूह में शामिल अन्य सहकर्मियों एवं शोध कर्ताओं का मानना है कि ये शैलचित्र प्राचीन इतिहास की अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने में सहयोग कर सकते हैं। सरकार व पुरातत्वविदों को मध्यप्रदेश में भीमवेटिका की तरह पर्यटन की दृष्टि से यहां की गुफाओं को संरक्षित व विकसित कर पर्यटकों को इन राक पेंटिंग की गुफाओं तक पहुंचाना होगा। शैल चित्रों पर रेखाएं खींचकर चरवाहे इन्हे नुकसान पहुंचा रहे हैं। पुरातत्व विज्ञानियों ने पुरापाषाण, मध्य पाषाण और नव पाषाण काल के अवशेषों के लिए विंध्य कैमूर शृंखला और गंगा के मैदानी इलाकों की मानव सभ्यता के इतिहास के प्रमुख स्थलों के रूप में पहचान की है। कैमूर पर्वतीय क्षेत्र उनमें काफी महत्व रखता है। सासाराम आकाशवाणी में कार्यरत डा श्याम सुंदर तिवारी ने जिले के दक्षिणी भाग में कैमूर पहाड़ी पर 53 नए रॉक शेल्टर की खोज की है जो शैल चित्रों के विशाल खजाने साबित हो सकते हैं। कैमूर के पर्वतीय क्षेत्रों में मिले इन शैल चित्रों में बाघ जैसे पशु को मानव द्वारा पालतू कुत्तों के जरिए घेरते हुए दिखाया गया है। शैल चित्रों में सूअर, बाघ, बैल आदि पालतू जानवरों को दिखाया गया है। सारोदाग में एक गैंडे का चित्र बना है। धर्मशालामान में हाथी और उसके बच्चों के भागने और हिरण के शिकार को दर्शाया गया है। वहीं चनैनमान में एक अज्ञात लिपि भी दिखी है। चनैन मान से मिले शैलचित्र में नाच करते महिला पुरुष और पालतू पशुओं को दर्शाया गया है। इससे पहले रोहतास में सेनुवार, सकास, मलांव और कैमूर के अकोढी आदि गांवों में नवपाषाण काल के अवशेषों की खोज बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के इतिहास और पुरातत्व विभाग ने की थी।

संदर्भ:

1. सिन्हा, बी०पी०, आर्किओलॉजी इन बिहार, काशी प्रसाद जयसवाल शोध संस्थान, पटना, पृ० 1
2. बिहार सामान्य ज्ञान (पत्रिका), न्यू भारतीय पब्लिकेशन, पटना, 2008
3. दास, विशेश्वर, सिंह, बहादुर राकेश एण्ड मिश्रा, कुमार विजय, बिहार एक परिचय, तृतीय आवृति, जनवरी 2007-08, पृ० 252
4. अहमद, इम्तियाज, अहसन कमर, बिहार एक परिचय, नेशनल पब्लिकेशन, पटना, तृतीय संस्करण, 1998, पृ०-151
5. दास, विशेश्वर सिंह, बहादुर राकेश एण्ड मिश्रा, कुमार विजय, बिहार एक परिचय, तृतीय आवृति, जनवरी 2007-08, पृ० 252
6. नारायण, वासुदेव, प्री हिस्टोरिक आर्किओलॉजी ऑफ बिहार, वोल्यूम-1, पृ० 25
7. अहमद, इम्तियाज, अहसन कमर, बिहार एक परिचय, नेशनल पब्लिकेशन, पटना, तृतीय संस्कार, 1998, पृ० 152
8. पाण्डेय, एम० एस०, हिस्टोरिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्राफी ऑफ बिहार, मोतीलाल बनारसीदास, पटन, पृ० 55
9. यूवांग-च्वांग, वोल्यूम-2, पृ० 60
10. श्रीवास्तव, के०सी० -प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ० 54
11. रायचौधरी, हेमचन्द्र - प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ० 42
12. मजुमदार, रमेश चन्द्र प्राचीन भारत, पृ० 83

जैन धर्म में कला संस्कृति एवं कर्म सिद्धांतः एक अवलोकन

नवीन नवनीत

शोधार्थी

डॉ० उदय नारायण तिवारी

शोध-निदेशक (विभागाधयक्ष) प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व संस्कृति, ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारः

भारत के पश्चिमी भाग ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी में ही जैन धर्म के प्रभाव में आ गये। साहित्यिक अनुश्रुतियों के अनुसार सम्प्रति मौर्य के भाई सालिसुक ने सौराष्ट्र में जैन धर्म के प्रसार में योग दिया। उत्तर भारत में मथुरा जैन धर्म का महान केन्द्र था। जैन स्तूप के अवशेष तथा साथ में प्राप्त शिलालेख, जिनमें से कुछ ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक के हैं, मथुरा क्षेत्र में जैन धर्म की संपन्न स्थिति की सूचना देते हैं। मथुरा स्थित कें काली टीले के उत्खनन से ईंट-निर्मित स्तूप के अवशेष, तीर्थकरों की प्रतिमाएं, उनके जीवन की घटनाओं के अंकन से युक्त मूर्तिखंड, आयागपट, तोरण तथा वेदिका स्तंभ आदि प्रकाश में आये हैं जो अधिकांशतः कुषाणकालीन है। मथुरा से प्राप्त ये साक्ष्य जैन धर्म के विकास के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मुख शब्दः- जैन धार्म, वेदिका स्तंभ, अनुश्रुतियों, शिलालेख, कर्म सिद्धांत, संस्कृति।

प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों की प्रकृति धार्मिक है, अथवा उनकी सरंचना धार्मिक उद्देश्यों से हुई थी। इन्हीं उद्देश्यों से अभिभूत जैनियों ने भी अपने कर्म सिद्धांतो के अनुसार कला को नया आयाम दिया। इसी कड़ी में जैन कला एवं संस्कृति का पुरावशेषों के कई आयाम दृष्टिगोचर होता है, जिनकी सहायता से विभिन्न कालखण्डों के जैन कला एवं पुरावशेषों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पुरावशेष मूलतः भौतिक अवशेष होते हैं जो मानव के क्रियाकलापों को दर्शाती है, जो इतिहास की विश्वसनीयता को प्रमाणित करते हैं। ई० सन् की प्रारंभिक सदियों में जैनियों ने अपने समकालीन बौद्ध धर्मावलंबियों के समान अपने संतों की प्रतिष्ठा में स्तूपों का निर्माण किया था। इन स्तूपों में पाषाण 'रेलिंग', अलंकृत प्रवेश द्वार, पाषाण छत्रा, रूप शिल्प के उत्कीर्ण स्तम्भ एवं प्रचुर प्रतिमाएँ थीं। इनके कुछ नमूने मथुरा में उपलब्ध् है।[1] मधय भारत तथा बुन्देलखण्ड ग्यारहवीं एवं बारहवीं सदियों की जैन मूर्तियों से भरे पड़े हैं। मैसूर में श्रवण वेलमोला तथाकर्कल में बाहुवबली की विशाल दैत्याकार प्रतिमा जो गोमतेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है, विश्व की आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक है। सत्तर फुट ऊँची यह प्रतिमा जो पहाड़ी शिखर पर स्थित है, सन् 19814 ई० में गंगा नरेश राजमल्ल चतुर्थ (लगभग सन् 977-95) के मंत्री और सेनापति जैन चामुण्डराय ने स्थापित की थी। यह विशाल ग्रेनाइट चट्टान में से काटी गई है। दक्षिण मधय भारत में बड़वानी नगर के समीप इसी प्रकार लगभग 29 मीटर ऊँची जैन तीर्थंकर की विशालकाय प्रतिमा आज भी विद्यमान है। ग्वालियर दूर्ग में जैनियों द्वारा चट्टानों पर उत्कीर्ण जो कला के नमूने हैं वह पन्द्रहवीं सदी के हैं। जैनियों ने चट्टानों को काटकर मंदिर का निर्माण किया था। इनमें सबसे पूर्व के उदाहरण ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी पूर्व और उसके बाद के हैं और आज भी उड़ीसा में हाथी गुम्फा नामक गुहाओं में विद्यमान हैं। विभिन्न काल की जैन कला के अन्य नमूने जूनागढ़ (गिरनार), चुनार, उस्मानाबाद, ऊन द्धमध्य भारत) में आज भी है। जैनियों के अन्य तीर्थस्थलों जैसे पार्श्वनाथ पर्वत, बिहार में पावापुरी और राजगृह तथा काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में गिरनार और पलिताना में विभिन्न युगों के जैन मंदिर और अन्य कलापूर्ण स्मारक हैं। चितौढ़ दुर्ग में जैनियों का स्तम्भ जैन स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।[2]

शिलागृहों के युग से लेकर अर्वाचीन कला तक सर्जित भारतीय जैन कला में भी कलाओं के समन्वय के दर्शन होते हैं। साथ ही उनमें क्षेत्रीय विविधाताएँ तथा शिल्पकारों की निजी कल्पनाएँ और उद्भावनाएँ भी देखने को मिलती हैं। धार्मिक भावनाओं से उद्वेलित प्रत्येक युगों में अनेक मंदिरों, स्तूपों, चौत्यों, प्रतिमाओं आदि का निर्माण देश के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। उनमें जैनियों का भी अहम् योगदान हैं जैन धर्म से सम्बन्धित स्तूपों, चौतयों, देवालयों, विहारों आदि के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उन्हें देखने से पता चलता है कि शासक वर्ग एवं जनता दोनों में उदार धार्मिक भावना विद्यमान थी। फलतः जैनधर्म सम्बन्धी स्थापत्य एवं मूर्तिकला की कृतियों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ।

भारतीय स्थापत्य का एक प्रमुख अगं स्तूप है। स्तूप का प्रारंभ मृत्तिका निर्मित शव को गाड़ने वाले टीले के रूप में हुआ, जिसका स्थानीय जनता द्वारा आदर होता था। बिहार के लौरिया नन्दनगढ़ के टीलों में बौद्ध एवं जैन स्तूपों के आरंभिक रूप देखने को मिलते हैं।[3] स्तूप वस्तुतः चिता-स्थल पर निर्मित टीला होता था, जो

आरम्भ में मिट्टी का बनाया जाता था। 'स्तूप' की दूसरी संज्ञा इसलिए चौत्य हुई। उस स्थन पर पीपल का वृक्ष लगाने की परिपाटी भी हो गयी। मिट्टी के पास 'चौत्ययूप' बनाया जाता था, जो प्राय: लकड़ी का होता था। मिट्टी के टीले को धीरे-धीरे ईंटों या पत्थरों से आच्छादित किया जाने लगा। 'स्तूप' शब्द ट्रग्वेद में दो बार आया है।[4] एक स्थान पर उसका प्रयोग अग्निशिखा के गांठ के लिए हुआ है। दूसरे स्थान पर चारों ओर फैलते हुए वृक्ष के आकार से उसकी तुलना की गयी है। वैदिक साहित्य के अनुसार 'स्तूप' शब्द किसी महापुरुष के स्मारक का द्योतक था। बौद्धपालि साहित्य में 'स्तूप' शब्द मृत व्यक्तियों की अस्थियों पर बनायी जाने वाली समाधि् के लिए मिलता है जिसका आकार आधे कटोरेनुमा टीलो जैसा था। बाद में 'स्तूप' शब्द उन स्मारकों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो बुद्ध या उसके उपासकों की स्मृति या किसी घटना विशेष की याद के लिए बनाये जाते थे।[5]

पाटलिपुत्र जैन धर्मावलंबियों का एक प्रमुख केन्द्र है। जैनग्रंथ विविधा् तीर्थकल्प में पाटलिपुत्र के नामकरण के संबंध् में एक मनोरंजक कथा का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार कुणिक अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र उदयी ने अपने पिता की मृत्यु के शोक के कारण अपनी राजधानी को चंपा से अन्यत्र ले जाने का विचार किया और शकुन बताने वालों को नई राजधानी बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में भेजा। ये लोग खोजते-खोजते गंगातट पर एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने पुष्पों से लदा हुआ एक पटल वृक्ष देखा जिस पर एक नीलकंठ बैठा हुआ कीड़े खा रहा था। इस दृश्य को उन्होंने शुभ शकुन माना और यहाँ पर मगध् की नई राजधानी बनाने के लिए राजा को सलाह दी। फलस्वरूप जो नया नगर उदयी ने बसाया उसका नाम पाटलिपुत्र या कुसुमपुर रखा गया। उदयी ने यहाँ श्रीनेमिका चौत्य बनाया और स्वयं जैन धर्म में दीक्षित हो गया। विविधा् तीर्थ कल्प में चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक और कुणाल को क्रमश: पाटलिपुत्र में राज करते बताया गया है। जैन साधु स्थूल भद्र ने पाटलिपुत्र में राज करते बताया गया है। जैन साधु स्थूल भद्र ने पाटलिपुत्र में ही तपस्या की थी। स्थूल भद्र महापदम नन्द के मंत्री शकयल के पुत्र थे, जो जैन मुनी बन गये थे।[6]

जैनग्रंथ आवश्यकचूर्णी के अध्ययन से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में मध् में भयंकर अकाल पड़ा। अनेकों जैन भिक्षु भद्रबाहु के नेतृतव में पाटलिपुत्र छोड़कर चले गये और स्थूल भद्र के नेतृत्व में शेष जैन भिक्षु पाटलिपुत्र में ही रहे। अकाल समाप्त होने के बाद स्थूल भद्र ने पाटलिपुत्र में जैन श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए ग्यारह अंगों का संकलन किया गया और इसे जैन आगमों की पाटलिपुत्र वाचना कहा जाता है।[7] जैन अनुश्रुति में भी कहा गया है कि पाटलिपुत्र में ही जैन धर्म की प्रथम परिषद् का सत्रा सम्पन्न हुआ था। इसमें जैनधर्म के आगमों को सगृहित करने का कार्य किया गया था। इस परिषद् के सभापति स्थूल भद्र थे। इनका समय चौथी शती ई०पू० में माना जाता है।[8]

जैन परम्परा के अनुसार पावापुरी अंतिम तीर्थंकर महावीर का निर्वाण स्थान है। दिगम्बर शास्त्रों में इसे पावा नगर, पावापुरी, पावानगरी एवं मध्यम पावा आदि नामों से व्यक्त किया गया है जबकी श्वेताम्बर शास्त्रा में इसे पावा, मध्यमा, अपापा, पावापुरी आदि कहा गया है। 13वीं ई० में जिन प्रभासूरी ने अपने ग्रंथ विविधा् तीर्थ कल्प में इसका प्राचीन नाम अपापा बताया है।[9] जैन ग्रंथ राजवबली कथा के अनुसार कोटिकापुर में अंतिम केवली श्री जंबुस्वामी का स्तूप स्थित था। प्राचीन काल से ही यह स्थान जैन तीर्थ क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है।[10] इस मथुरा जनपद में महावीर के आगमन और उनके उपदेशों से प्रभावित न होकर नगर सेठ जिनदत्त के पुत्र एवं मथुरा के नरेश उदितोदय तथा अन्य नागरिकों के जैन धर्मावलंबी बनने के संबंध् में विवरण प्राप्त हुए हैं।[11] आचार्य जिन प्रभासूरि ने मथुरा में स्थित देव निर्मित स्तूपों एवं अनुभूतियों के आधार पर वर्णन करते हुए लिखा है- फ्भगवान सुपार्श्वनाथ के काल में धर्मघोष और धर्मरूचि नामक दो मुनि वर्षावास हेतु मथुरा नगरी आये थे। वे यहाँ स्थित भूतरमण नामक उद्यान में ठहरे थे।

निष्कर्ष: स्पष्टत: जैन धर्म के अनुयायियों ने अनेक गुफाओं का निर्माण करवाया। कला के क्षेत्र में जैनियों का योगदान महत्वपूर्ण है। उदयगिरि की हाथी गुफा मंदिर और एलोरा की इन्द्रसभा, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक मंदिरों, पाषाण स्तम्भों, शिलालेखों, आभागपट्टों, मूर्तियों आदि का निर्माण इस धर्म के अनुयायियों ने बड़े ही धार्मिक भावना से किया, जो अब भी दिग्दगंत है। ईसा सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में सौराष्ट्र में जैन धर्म की प्रवृति का अनुमान कुछ विद्वानों के अनुसार जूनागढ़ के निकट बाबा-प्यारा मठ में पाये गये जैन प्रतीकों से लगाया जा सकता है। क्षत्रप शासक जयदामन के पौत्रा के जूनागढ़ वाले शिलालेख में 'केवलज्ञान' शब्द का प्रयोग हुआ है जो वस्तुत: एक जैन पारिभाषिक शब्द है। इससे विदित होता है कि काठियाबाड़ में जैन धर्म का अस्तित्व कम से कम ईसा सन् की प्राथमिक शताब्दियों से रहा है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि ईसा सन् के आरंभ होने तक उसकी प्रारंभिक शताब्दियों में जैन धर्म का कार्यक्षेत्र पूर्वी भारत से मध्य एवं पश्चिम भारत की ओर स्थानांतरित हो गया था। गुजरात में जैन धर्म का प्रबल प्रभाव रहा, यह इस बात से स्पष्ट है कि वलभी में दो सम्मेलन आयोजित हुए थे जिनमें प्रथम चौथी शताब्दी में तथा द्वितीय पांचवीं शताब्दी में होना बताया गया है। मुसलमानों के आगमन के पफलस्वरूप भारत के सभी धर्मो को आघात सहना पड़ा। इसमें जैन धर्म अपवाद नहीं था। तथापित कई ऐसे उदाहरण हैं जब किन्हीं-किन्हीं जैन आचार्यों ने व्यक्तिगत रूप से किसी-किसी मुसलमान शासक को प्रभावित किया, यद्यपि ऐसे उदाहरण गिने-चुने ही हैं।

वर्तमान में भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पश्चिम भारत, दक्षिणापथ और कर्नाटक में जैन धर्मानुयायियों की संख्या सर्वाधिक है। जहाँ दक्षिणी महाराष्ट्र और कर्नाटक में दिगंबर जैनी की बहुलता है वहां गुजरात में श्वेतांबर मूर्ति पूजन और पंजाब में

स्थानकवासियों का प्राब्लय है। जैन धर्म अपने जन्म स्थान बिहार से बाहर की ओर फैलता तो गया किन्तु एक अविच्छिन्न गति के साथ नहीं, विविधा् कारणों से उसका प्रतिफल घाराओं या तरंगों के रूप में हुआ। जैन धर्म ने राज्याश्रय तथा व्यापारी वर्ग के संरक्षण पर मुख्यतया निर्भर रहने के कारण अपने पीछे मंदिरों, मंदिर बहुल नगरों, सचित्रा पाण्डुलिपियों, अनगिनत मूर्तियों तथा सांस्कृतिक क्षेत्रा में सर्वाधिक उल्लेखनीय अहिंसा के सिद्धांत की अद्‌भूत ध्रोहर छोड़ी है।

संदर्भः

1. ए०एल० वाशमः अद्‌भूत भारत, अनु० वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय, शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, आगरा, 1988, पृ०-291
2. के०डी० वाजपेयी एवं संतोष कुमार वाजपेयीः भारतीय कला, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2002, पृ०-46
3. विजेन्द्र कुमार माथुरः ऐतिहासिक स्थानावली, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1969, पृ०-542
4. राजेश कुमार सिंहः प्राचीन जैन एवं बौद्ध तीर्थ, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2000, पृ०-47
5. ओमप्रकाश प्रसादः ''जैन एवं बौद्ध साहित्यों में पाटलिनपुत्र'' बिहार सांस्कृतिक विरासत विशेषांक, वर्ष-41, अंक-7, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार, पटना, जुलाई, 1996, पृ०-17
6. ए० कनिंघमः ऐशियेन्ट ज्योग्रापफी ऑपफ इंडिया
7. राम निवास पाण्डेय (प्र०सं०), बिहार सांस्कृतिक विरासत विशेषांक, वर्ष-44, अंक-7, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पटना, जुलाई, 1996, पृ०-8
8. प्रभुदयाल मित्तल, ब्रह्मी का सांस्कृतिक इतिहास, मथुरा, 1996, पृ०-345
9. दिनेश चन्द्र जैनः इकोनोमिक लाइपफ इन एन्शियेंट इंडिया एज डेपिस्टेज इन जैन कैनोनिकल लिटरेचर, वैशाली, 1980
10. राकेश कुमारः "वैशालीः एक अध्ययन", बिहारः स्थानीय इतिहास एवं परम्परा, पृ०-200
11. बनभद्र जैन (सं०)ः भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, वाराणसी, 1974, पृ०-170-73

हिन्दी साहित्य और सिनेमा

प्रा० डॉ० पी० एम० भुमरे

हिंदी विभागप्रमुख, श्री म.बा.पा.ख. महाविद्यालय, शंकरनगर त.-बिलोली, जी. नांदेड़ (महाराष्ट्र)

साहित्य में मानव जीवन का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। मानव जीवन को चित्रित करना ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य होता है। इस संदर्भ में भर्तृहरि का कथन है कि साहित्य संगीत एवं कलायुक्त होना चाहिए, कलाविहीन साहित्य का कुछ भी अस्तित्व नहीं होता है। यथा-

''साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।।''[1]

समय चक्र अर्थात् काल की गति सदैव (निरन्तर) गतिमान रहती है। मानव ही नहीं बल्कि साहित्य एवं साहित्य सृजनकर्ता पर भी समय-चक्र का प्रभाव अवश्य रूपेण होता है। इस समय-चक्र की परिवर्तनशीलता का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तिगत, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक तथा उसके रहन-सहन पर भी दृष्टिगोचर होती है। मानव जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है। सुशील संस्कार ही मनुष्य को आदर्श मानव की श्रेणी में ले जाते हैं। प्रत्येक युग के संस्कारों में पृथकता दृष्टिगोचर होती है। मानव जीवन हर युग में प्रेममय ही रहा है। प्रेम की पराकाष्ठा का युग भक्तिकाल का समय माना जा सकता है। किन्तु उस काल को अर्थात् भक्तिकाल को ईश्वर भक्ति अथवा ईश्वर के प्रेम का युग कहा जा सकता है।

भक्तिकालीन प्रेम और आधुनिक के प्रेम में जमीन-आसमान का अन्तर है। वर्तमान समय का प्रेम मानसिक, शारीरिक एवं भौतिक दृष्टि से भरपूर प्रेम युग है। यही कारण है कि वर्तमान समय का मानव स्वयं को प्रेमाभक्ति में भूल जाता है। यही कारण है कि यदि हम आधुनिक समय के प्रेम को साहित्य या सिनेमा जगत में देखते हैं तो हमें वह साक्षात् कामदेव के सदृश्य आलिंगनबद्ध दिखाई देता है और इसे ही प्रेम कहा जाता है। फिल्मों में तो प्रेम मानों पहलवानों के कुश्ती लड़ने का अखाड़ा ही है। प्रत्येक फिल्म में हमें चुम्बन एवं आलिंगन के दृश्य की दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए यदि हम इस समय के प्रेम की गति पर दृष्टिपात करें, तो हमें ज्ञात होगा कि प्रेम शून्य से ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्ड से शून्य की ओर यात्रा करता है इसके अतिरिक्त वह मठों, आश्रमों एवं कार्यालयों में परिवर्तित होकर मोटी-मोटी फाइलों के भार से दबा यह संसार ही वीतरागी हो जाता है। भारतीय सिनेमा प्रायः बालीवुड की चकाचौंध तथा आकर्षण का प्रतीक माना जाता है। यह मूलतः एक बहुआयामी एवं विविध भाषी उद्योग के सदृश्य भी है।

साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है। समाज एवं साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्य समाज का एक सशक्त माध्यम है उसी प्रकार फिल्म का भी समाज में महत्व है क्योंकि सिनेमा तथा साहित्य यह दोनों कलाएँ हैं। साहित्य की नींव शब्दों पर है उसी प्रकार फिल्म की नींव दृश्य-श्रव्य पर आधारित है। साहित्यकार को केवल कलम तथा कागज की ही आवश्यकता पड़ती है, परन्तु फिल्म निर्देशक को फिल्म के कला पक्ष के साथ-ही-साथ तकनीकी की भी आवश्यकता होती है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य तथा कला एवं मनोरंजन जगत के दो महत्वपूर्ण माध्यम हैं। समाज के साहित्यकार एवं फिल्म निर्देशक इन दोनों घटकों का कार्य सामाजिक हितों की रक्षा करना है। इसके अतिरिक्त इन दोनों ने सदा से ही समाज के परिवर्तन की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। सिनेमा का यथार्थ है गतिशील खिलौना। साहित्य की विधा उपन्यास या कहानी की कथावस्तु से ही सिनेमा की निर्मिति होती है। वैसे अगर देखा जाये तो सिनेमा के उद्‌भव में विकास में नाटक एवं रंगमंच विधा का ही योगदान है।

उपन्यास तथा कहानी की कथावस्तु से ही सिनेमा की कथावस्तु निर्मित की जाती है। कथा साहित्य के तत्व-भूमिका, कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, देशकाल (वातावरण) संवाद, रस, अभिनव, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि के माध्यम से ही सिनेमा अर्थात् फिल्म की कहानी को नया, आकर्षक एवं प्रभावी बनाया जाता है। साहित्य की विधाओं की भाँति ही सिनेमा को भी अनेक भागों में बाँटा जा सकता है। यथा-आर्ट फिल्में, टेलीफिल्में, चाइल्ड फिल्में, डाक्यूमेन्ट्री फिल्में, कामर्शियल फिल्में, वृत्त चित्र फिल्में, विज्ञापन फिल्में, तथा युद्ध और शांति फिल्में आदि। फिल्म की कहानी में प्रमुख तत्वों के अतिरिक्त कुछ तत्व और भी पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. निर्माता
2. निर्देशक
3. पटकथा-लेखक
4. अभिनय कर्मी
5. गीतकार
6. संगीतकार
7. फोटो ग्राफर
8. कमेंटेटर
9. स्टंटमैन
10. साज- सज्जाकार

इसके अतिरिक्त सिनेमा में भी नव-रस, गुण, ध्वनि तथा रीति आदि का समावेश होता है। हिन्दी साहित्य और सिनेमा एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि सिनेमा की निर्मिति साहित्य के बिना असम्भव है।

सिनेमा का इतिहास लगभग 125 वर्ष पुराना है। विश्व में सर्वप्रथम 1895 ई. में पहली फिल्म का निर्माण हुआ था, जिसका

नाम था एराव्हल आफ द ट्रेन। पहली बार व्यक्ति इस फिल्म को देखकर आश्चर्यचकित हो गया था। इस फिल्म के निर्माता एवं निर्देशक लुमियेर ब्रदर्स थे। ''हमारे देश भारतवर्ष में सिनेमा का प्रारम्भ सन् 1913 ई. में हुआ था। पहली फिल्म का नाम 'राजा हरिश्चंद्र' था। यह उस समय के महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक 'हरिश्चंद्र' पर आधारित थी।''[2] तथा इस फिल्म के निर्माता एवं निर्देशक दादा फाल्के साहब थे। ''सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि-समष्टि के सम्बन्ध का विज्ञान है। इतना ही नहीं सिनेमा विभिन्न नाट्य एवं ललित कलाओं का सम्मिश्रण भी है। सिनेमा किसी घटना के काल तथा दिक् के आयामों का रूपांकन भी है।''[3]

''जीवन की हर झाँकी और मंजर को रूपायित करने सिनेमा संसार का सबसे सुन्दर सांस्कृतिक उपहार है।''[4]

''सिनेमा की एक विशेषता यह भी है कि वह मनुष्य का मनोरंजन करने के साथ-ही-साथ उस देश की संस्कृति, सभ्यता तथा नये युग को प्रदर्शित करती है। फिल्म ही एक ऐसा माध्यम है जो प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करता है।''[5]

सिनेमा का जन्म आज से लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष पूर्व सन् 1895 ई. में फ्राँस देश में 'लुमियेर ब्रदर्स' द्वारा माना जाता है। लुमियर महोदय ने प्रथम शायद चलचित्र प्रदर्शित किये थे। हमारे देश में भी इसके कुछ समय के उपरान्त सिनेमा का प्रचलन हो गया। भारतीय समाज में आज के समय में जितना सिनेमा का प्रभाव पड़ा है, शायद किसी अन्य माध्यम का उतना प्रभाव नहीं है। भारतीय समाज में साहित्य की अपेक्षा शायद सिनेमा अधिक प्रभाव डालता है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक तकनीक को भी सिनेमा प्रदर्शित करता है जिससे मानव समाज नई तकनीकि को ग्रहण करने की लालसा अपने मन में उत्पन्न करता है।

''साहित्य और सिनेमा दोनों में जीवन उपयोगी उद्देश्य देने की क्षमता विद्यमान रहती है। साहित्य के बिना समाज अपूर्ण है तथा समाज के बिना सिनेमा अपूर्ण है। साहित्य और सिनेमा अपनी-अपनी जगह पर श्रेष्ठ हैं, साहित्य का ध्येय समाज का हित है और सिनेमा का ध्येय समाज को मनोरंजन प्रदान करना है। इससे साथ-ही- साथ सिनेमा तथा साहित्य ये दोनों समाज के पथ-प्रदर्शक भी हैं।''[6] समाज का अच्छा-बुरा, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन तथा विपन्नता-सम्पन्नता सब कुछ साहित्य एवं सिनेमा के माध्यम से ही समाज में उजागर होता है। ये दोनों समाज की ज्ञान पिपासा को तृप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त ये मनोरंजन देने के साथ-ही-साथ शिक्षा भी प्रदान करते हैं। इसके साथ-ही-साथ हमें साहित्य तथा सिनेमा के माध्यम से मानव जीवन के अतिरिक्त राष्ट्रीय इतिहास, स्वतंत्रता संघर्ष, सांस्कृतिक चेतना, पर्व-उत्सव, मेले- प्रदर्शिनियाँ, रीति-रिवाज, संस्कार, शारीरिक शिक्षा, दार्शनिकता, मनोवैज्ञानिकता सामाजिक समस्याएँ, चुनौतियाँ, राजनीतिक गतिविधि, सुरक्षा, भ्रष्टाचार, अपराध, अत्याचार, शोषण, बलात्कार, मानवीय दुर्बलता, प्राकृतिक प्रकोप, पर्यावरणीय ज्ञान, आतंकवाद, वैचारिक विरासत, साहित्यिक रचनाओं की जानकारी, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं-समाधान, अन्याय, अव्यवस्था, जन्म-मृत्यु आँकड़ों तथा बेरोजगारी की समस्या आदि घटकों की पूर्णतया जानकारी तथा उनके निवारण की प्रक्रिया का भी समाधान प्राप्त होता है।

सिनेमा के संदर्भ में तेजस पुनियाँ जी का कथन है कि- ''भारत में समकालीन इतिहास को लेकर सिनेमा निर्माण की परम्परा रही है। जीवित किरदार, जीवंत घटनाएँ ही सुरक्षित सिनेमा निर्माण के तत्व आवश्यक माने जाते हैं।''[7] अनेकानेक फिल्मों में हमें भारत के विविध स्वरूपों एवं नव-निर्माण की रूपरेखा दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान समय में भारतीय सिनेमा में व्यावसायिक सिनेमा अपनी गहरी छाप छोड़ रहा है। इसके अलावा भारतीय सिनेमा अपने कार्यकाल का एक सौ वर्ष व्यतीत कर चुका है। सिनेमा से समाज की कोई गतिविधि अछूती नहीं है कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के प्रत्येक पहलू पर सिनेमा ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

''जहाँ विकासशील देशों में वीडियो-पायरेसी के कारण पश्चिमी फिल्मों का प्रचुर मात्रा में प्रचार-प्रसार हो रहा है वहीं भारत में इस समय दो प्रकार की फिल्में बन रही हैं। प्रथम अश्लील फिल्में जिसका मुख्य उद्देश्य है पैसा कमाना, दूसरी कला फिल्में जिनसे कला संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना है।''[8] कुछ फिल्में ऐसी होती हैं जो मनुष्य के जीवन को दु:ख से निकालकर हँसी-खुशी की ओर ले जाती हैं। यथा-

''हँसबे-बोलबे में ही,
जिंदगी को सार है
मेरे जैसा सेलिब्रटी
तुम्हारा यार है
जे का काम है।''[9]

वर्तमान समय में सिनेमा एक उद्योग का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। इसके माध्यम से विज्ञापन उद्योग भी फलीभूत हो रहा है साथ-ही-साथ विज्ञापन के माध्यम छोटे से लेकर बड़े उद्योग तक भी पनप रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सिनेमा के माध्यम से आज बेरोजगारी की समस्या का भी समाधान हो रहा है। अत: वर्तमान समय में सिनेमा की उपयोगिता दिनों-दिन बढ़ रही है।

संदर्भ

1. शतकत्रयम्-राजा भर्तृहरि, पृ. 103
2. हिन्दी साहित्य और सिनेमा-विवेक दुबे, पृ. 20
3. हंस-सं. राजेन्द्र यादव, फरवरी 2013, पृ. 122
4. पत्रकारिता, सिनेमा और बाजार-डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय, पृ. 25
5. भारतीय सिनेमा की विकास यात्रा- डॉ. देवेन्द्र नाथ सिंह, पृ. 57-58
6. 21वीं सदी का हिन्दी साहित्य एवं सिनेमा- सं. प्रो. कनुभाई वी. निनामा पृ. 60
7. सिनेमा: विविध रंगरूप- तेजस पुनियाँ, पृ. 110
8. हिन्दी सिनेमा के सौ वर्ष- सं. मृत्युंजय उपाध्याय, पृ. 50
9. भारतीय सिनेमा: विवेचन और मूल्यांकन- तेजस पुनियाँ, पृ. 33

गोपालगंज जनपद में साक्षरता आधारित जनसंख्या की गुणवत्ता

प्रियंका प्रियदर्शिनी

शोधार्थी, जे0पी0यू0, छपरा

प्रस्तुत शोध-प्रबंध गोपालगंज जनपद में जनसंख्या आधारित साक्षरता गुणवत्ता के विश्लेषण पर केन्द्रित है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् क्षेत्र में साक्षरता से सम्बन्धित सुविधाओं का विकास द्रष्टव्य है किन्तु क्षेत्र की बेतहास जनसंख्या वृद्धि के साथ यहाँ साक्षरता आधारित सुविधाओं में विस्तार सम्भव नहीं हो पाया है। अतएव साक्षरता से सम्बन्धित सुविधा की सम्भावनायें एवं समस्याओं के अध्ययन हेतु यहाँ द्वितीयक स्तर के आकड़ें द्वारा अवस्थिति लब्धांक विधि से साक्षरता आधारित संकेतकों का आकलन कर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

संकल्पना एवं विधितंत्र

साक्षरता व्यक्ति समाज या राष्ट्र की सांस्कृतिक प्रगति की कसौटी है। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए न्यूनतम स्तर की साक्षरता प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय साक्षरता योजना (नेशनल लिटरेसी' मिशन 1988) ने साक्षरता का अर्थ पढ़ने लिखने तथा अंक गणना की क्षमता का दैनिक जीवन में व्यवहृत किए जाने तक सीमित रखा रह गया किन्तु उसका आयाम विस्तृत है। यद्यपि जनसंख्या की साक्षरता आधारित गुणवत्ता शिक्षित, प्रगतिशील समाज/समुदाय का द्योतक है।

संकल्पना एवं विधि तंत्र

जनसंख्या की साक्षरता आधारित गुणवत्ता हेतु संकेतकों का चयन यहाँ शिक्षा से जुड़े संकेतक हैं:-

क्रम सं.	संकेतक चिन्ह	संकेतक
1.	X_1	समग्र साक्षरता
2.	X_2	महिला साक्षरता
3.	X_3	अनुसूचित जाति साक्षरता
4.	X_4	महिला साक्षरता
5.	X_5	प्राथमिक विद्यालय की संख्या
6.	X_6	मध्य विद्यालय की संख्या
7.	X_7	उच्च विद्यालय की संख्या
8.	X_8	महाविद्यालय की संख्या
9.	X_9	अन्य विद्यालयों की संख्या
10.	X_{10}	प्राथमिक विद्यालय युक्त गाँव
11.	X_{11}	मध्य विद्यालययुक्त गाँव
12.	X_{12}	उच्च विद्यालययुक्त गाँव

साक्षरता संकेतकों के अन्तर्गत प्राप्त मूल्यों के आधार पर व्यवहृत (चौहान, पी0 आर0 एवं सिंह, शिवकान्त, 2007) अवस्थिति लब्धांक द्वारा साक्षरता आधारित गुणवत्ता को निर्धारित करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया किया है:-

$$\text{अवस्थिति लब्धांक (LQ)} = \frac{X^i}{X^-}$$

Xi =अलग-अलग संकेतकों के अन्तर्गत प्राप्त वास्तविक मूल्य है

Xi =प्रत्येक संकेतकों के अन्तर्गत संघटकों द्वारा प्राप्त कुल मूल्यों का माध्य है।

यद्यपि जो तालिका 1 एवं 2 में आलेखित है। स्मरणीय है कि मिश्रित अवस्थिति लब्धांक का प्रसार न्यूनतम 0.52 से 2.05 प्राप्त है। स्मरणीय है कि लब्धांक के पूरे प्रसार को सामान्यत: तीन साक्षरता आधारित गुणवत्ता संभाग में विभाजित किया गया है:-

(1) उच्च साक्षरता युक्त गुणवत्ता संभाग

(2) सामान्यत: साक्षरता युक्त गुणवत्ता संभाग

(3) अल्प साक्षरता युक्त गुणवत्ता संभाग

तालिका- 2 साक्षरता आधारित गुणवत्ता

क्रम सं.	संभाग	विचलन	सम्मलित संघटक
1.	उच्च साक्षरता युक्त गुणवत्ता	> 71.50	गोपालगंज, उचका गाँव
2.	सामान्यतः साक्षरता युक्त गुणवत्ता	1.00–1.50	कटैया, बरौली
3.	अल्प साक्षरतों युक्त गुणवत्ता	< 1.00	थावे, बैकुण्ठपुर, कुचायकोट, सिधवलियां, माझा, हथुआ, फुलवरिया, बिजयपुर, भोरे, पंचदिवरी

तालिका-1 साक्षरता आधारित गुणवत्ता के संकेतकों के अन्तर्गत प्राप्त का अवस्थिति लब्धांक

क्रम सं.		X_1	X_2	X_3	X_4	X_5	X_6	X_7	X_8	X_9	X_{10}	X_{11}	X_{12}	$\sum(X_1-X_{12})$	Composite L.Q.
1.	कटैया	0.96	0.95	0.93	0.96	0.84	0.85	2.33	0.00	3.24	0.73	1.21	1.78	14.79	1.22
2.	बिजयपुर	0.96	0.84	0.89	0.82	0.85	0.73	1.55	0.00	0.00	0.52	0.43	0.91	8.51	0.70
3.	भोरे	0.89	0.89	0.95	0.97	0.87	0.97	1.55	0.00	0.00	0.44	0.47	0.76	8.76	0.72
4.	पंचदिउरी	0.85	0.73	0.92	0.90	0.59	0.24	0.78	0.00	0.00	0.53	0.20	0.66	6.37	0.52
5.	कुचायकोट	0.99	0.97	0.96	0.93	1.86	1.46	0.39	0.92	0.54	0.73	0.55	0.14	10.44	0.86
6.	फुलवरिया	0.99	0.94	1.03	1.01	0.81	0.73	0.78	0.92	0.00	0.68	0.58	0.62	9.09	0.76
7.	हथुआ	1.04	1.02	1.02	0.96	1.18	0.79	0.58	0.00	0.00	0.96	0.61	0.45	8.61	0.71
8.	उचका गाँव	1.03	1.05	1.32	1.05	0.72	1.76	1.75	8.26	3.24	0.88	1.92	1.91	24.89	2.05
9.	थावे	1.20	1.16	1.10	1.16	0.61	0.55	0.58	0.00	1.70	1.01	0.88	0.94	10.89	0.90
10.	गोपालगंज	1.07	1.16	1.04	1.37	1.90	0.79	1.55	2.75	2.70	1.60	0.98	2.88	17.73	1.63
11.	माझा	0.99	0.93	0.92	0.83	1.11	0.61	1.16	0.00	1.80	0.88	0.45	0.88	9.82	0.81
12.	बरौली	0.89	0.87	0.82	0.89	1.85	1.27	1.36	0.00	3.24	1.90	1.45	1.77	16.37	1.34
13.	सिधवलिया	0.86	0.78	0.75	0.59	0.67	0.97	0.58	0.92	0.00	1.20	1.63	1.00	9.95	0.82
14.	बैकुण्ठपुर	0.82	0.75	0.81	0.78	1.82	1.39	1.55	0.00	1.08	0.89	0.97	1.00	11.94	0.98

(i) साक्षरता आधारित गुणवत्ता (>1.50)

शिक्षा सहित अन्य सभी सुविधाओं से युक्त साक्षरता आधारित गुणवत्ता की उच्च संभावनायें गोपालगंज एवं अचकागांव अंचलों में उपलब्ध है। ये दोनों शहरी जनसंख्या से युक्त है। इस संभाग का दूसरा संघटक उच्चका गांव (मीरगंज) है। ये दोनों अंचल गोपालगंज जिला गोपालगंज तो दूसरा उचकागाँव (मीरगंज) में सरकारी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय और निजी क्षेत्र में समकक्ष महाविद्यालय यहाँ कार्यरत है। औद्योगिक प्रशिक्षण के सरकारी एवं निजी संस्थान भी गोपालगंज शहर में संचालित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त रेल सेवा, विशेषकर सिवान के रास्ते जनसंख्या को देश के महानगरों की ओर उन्मुखीकरण प्रदान करता है।

(ii) सामान्यतः साक्षरता युक्त गुणवत्ता (1.00-1.50%)

सामान्यत: साक्षरता युक्त गुणवत्ता इस संभाग में विद्यमान है जो कटैया एवं बरौली है। दोनों संघटक जिला मुख्यालय, शहरी एवं मुख्य शहर से निकटस्थ पड़ता है जिसका प्रभाव इन दोनों अंचलों पर विद्यमान है। इसके अतिक्ति शिक्षण प्रशिक्षण और औद्योगिक प्रशिक्षण से जुड़ी संस्थायें भी विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों के विकास सिवान, मुजफ्फरपुर यू0पी राज्य से जुड़े होने के कारण भी लाभ प्राप्त है।

(iii) अल्प साक्षरता युक्त गुणवत्ता (<1.00)

अल्प साक्षरता युक्त गुणवत्ता संभाग में अन्य सभी संभागों की तुलना में विस्तृत है। इसमें सभी संघक ग्रामीण जनसंख्या के हैं तथा जो शहरी संघटक हैं वह नवनियुक्त शहरी संघटक हैं। ज्ञातव्य है कि इसमें सम्मिलित संघटक थवे बैकुण्ठपुर, कुचायकोट, हथुआ, फुलवरिया, जिजयपुर, भोरे एवं पंचदिवरी है। इसमें वैसे अंचल सम्मिलित हैं जो जिला मुख्यालय से दूरस्थ व गंडक नदी के किनारे अवस्थित है। साथ ही शहरी केन्द्रों से दूरस्थ भी हैं। अतएव शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के लिए भी ये कारक निरूत्साहक हैं।

निष्कर्ष:

साक्षरता आधारित जनसंख्या की गुणवत्ता में वृद्धि यहाँ शैक्षणिक संस्थाओं में वृद्धि का आभास मिलता है। शैक्षणिक विकास के इतिहास से स्पष्ट होता है कि गोपालगंज में जनसंख्या की तीव्र से तीव्रतर होती वृद्धि से प्रतिफलित छात्रों की संख्या में कृतिमान रूप से वृद्धि प्रतिवेदित है। इस दिशा में संस्थाओं में अन्तर्लीन किये जाने के उद्देश्य से विद्यालय, महातविद्यालय एवं विश्वविद्यलय खोले जाते रहे हैं। समग रूप से साक्षरता आधारित गुणवत्ता की वृद्धि का यह एक उल्लेखनीय अवधि है। हालांकि यहाँ सीाग वर्गीकरण का मूल्यांकन किया जाये तो मुख्यालय, अनुमंडल एवं शहर के समीपस्थ जो अंचल हैं वह उन्नत हैं जबकि जो गंडक एवं मुख्यालय से दूरस्थ अंचल में गुणवत्ता अल्परूप से विद्यमान हैं।

संदर्भ:-

1. चान्दना, आर. सी. 1986, ए जियोग्राफी ऑफ पोपुलेशन कन्सेप्ट डिटरमीनेन्टस एवं पैटर्न्स, कल्याणी पब्लिशर्स, न्यू देहली एवं लुधियाना, पृ.-1.
2. नेशनल लिटरेसी मिशन, 1988.

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को वैश्विक रूप देने में सुभाष चंद्र बोस के योगदानों का विवेचनात्मक अध्ययन

विभा कुमारी

शोधार्थी, डी. डी. यू गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

परिचय-

राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति तीव्र आकांक्षा रखने वाले सुभाष चंद्र बोस की गणना राष्ट्रवादियों की पंक्ति में अग्रीम रूप से होता है। सुभाष चंद्र बोस एक कर्मयोगी थे। उन्हें कर्मयोग की प्रेरणा अरविन्द घोष और स्वामी विवेकानन्द से मिली। सुभाष चंद्र बोस स्वामी विवेकानंद से विशेष रूप से प्रभावित थे। उन्होंने उनसे 'आत्मनो मोक्षार्थम जगद् हिताय' (आत्म मोक्षा का अर्थ-जगत का कल्याण) सीखा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सुभाष चंद्र बोस का योगदान अतुलनीय है। वे पहले भारतीय क्रांतिकारियों मे से थे जिन्होंने सक्रिय रूप से अन्य बडी शक्तियों के साथ बाहरी गठबंधन कर ब्रिटिश सेनाओं का विरोध करने के लिए एक भारतीय राष्ट्रीय सेना बनाई। सुभाष चंद्र बोस संवैधानिक सुधारों के बजाय समाजवादी सुधारों की ओर फोकस किए। जिस वजह से सुभाष जी को कांग्रेस के राजनेताओं के बीच काफी लोकप्रियता प्राप्त हुआ। 1939 तक कांग्रेस में उनका एक प्रमुख स्थान, जब उन्होने कांग्रेस के अध्यक्ष (त्रिपुरा सत्र) के पद से इस्तीफा देने के बाद कांग्रेस के भीतर अपनी पार्टी (फारवर्ड ब्लॉक) बनाई।

सुभाष चंद्र बोस ने भारतीय राष्ट्रवाद को ब्रिटिश सम्राज्य के संकुचित दायरे से बाहर निकालकर विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज प्रदान किया। तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' इस नारे को देश की आजादी हेतु ब्रम्ह वाक्य साबित हुआ।

हरिपुरा कॉग्रेस अधिवेशन-

सुभाष चंद्र बोस ने अपनी हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष पद पर रहते हुए। अपने भाषण में कहाँ है कि इतिहास के संदर्भ में कई सम्राज्यों का उत्थान एवं पतन हुआ। जैसे-रोमन-साम्राज्य, मुगल साम्राज्य, तुर्की साम्राज्य सभी एक दिन धुल धुसरित हो गये। उसी तरह ब्रिटिश साम्राज्य का भी एक दिन विनाशा हो जाएगा। उन्होंने ब्रिटेन के संकटों का जिक्र करते हुए कहा कि ब्रिटेन के समक्ष पश्चिम में आयरलैण्ड, पूर्व में भारत, मध्य पूर्व में फिलिस्तीन, मिस्त्र इराक की समस्या, सुंदूर पूर्व से जापान भूमध्य सागर में इटली का दबाव इन सारे तनावों को ब्रिटेन अधिक समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकता।

विश्व राजनीति एवं भारत की आजादी-

यूरोप की राजनीति 1938 में एक नई मोड़ ले रही थी ऐसे में नेताजी का मानना था कि यूरोप में शीघ्र ही गंभीर राजनीतिक संकट उत्पन्न होगा। अत: भारत को इस परिस्थिति से लाभ उठाना चाहिए और काँग्रेस को चाहिए कि वह सरकार को भारत की आजादी हेतु अंतिम चेतावनी दे तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक विशाल जन आंदोलन शुरू करें। लेकिन गाँधी जी एवं उनके निकट सहयोगियों का विचार था कि भारत के लोग जन आंदोलन के लिए तैयार नहीं है। नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने जर्मनी, इटली और जापान की सरकारों से संपर्क साधना आरम्भ किया। क्योकि शत्रु का शत्रु हमारा मित्र होता है और ये तीनों देश ब्रिटेन के शत्रु थे।

फारवर्ड ब्लोक की स्थापना-

दलों एवं गुटो की राजनीति से ऊपर गहन राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित नेताजी सुभाष चंद्र बोस के द्वारा फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना की गई। जो सभी वामपंथी तथा क्रांतिकारी तत्वों को एक मंच प्रदान करता है। 1940 के फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना के बाद इसके सदस्य संख्या बढ़ाने तथा भारतीय सेना को बलात् द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंकने के ब्रिटिश सरकार के निर्णय के विरुद्ध जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने देश का तुफानी दौरा किया। नेताजी की अभूतपूर्व संगठन क्षमता तथा उनके महान गतिशील एवं ओजस्वी व्यक्तित्व ने उन्हें राष्ट्रीय विभूति बना दिया।

नेताजी का विदेश पलायन-

भारत सुरक्षा कानून के तहत् 1940 में नेताजी सुभाषचंद्र बोस को उनके घर में नजरबंद कर दिया गया। जहाँ से वे 1941 में बहुरूपीया के भेष में काबूल, रूस होते हुए जर्मनी पहुँच गए और उन्होंने हिटलर से मुलाकात कर भारत को स्वतंत्र कराने में मदद माँगी। जर्मनी में ही उनके नाम के साथ उपनाम नेताजी जोड़ा गया। नेताजी जर्मनी से ही एक जर्मन पनडुब्बी द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए रवाना हुए। तीन माह की कठीन यात्रा के पश्चात् वे सुमात्रा पहुंचे। पहुंचते ही जापानी अधिकारियों के साथ टोकियो

रेडियो से भाषण के दौरान भारत की आजादी हेतु अपने विचारों को व्यक्त किया।

(1) ब्रिटिश शासक इस गलतफहमी में न रहे कि उनके साम्राज्य का सूरज कभी अस्त नहीं होगा क्योंकि वह दिन अब दूर नहीं जब उनका सोचना मानसिक दिवालियापन साबित होगा।"

(2) यह सोचना मी दिवास्वपन्न ही है कि अंग्रेज अंतत: एक दिन खुशी-खुशी भारत को मुक्त कर देंगे। स्वतंत्रता समझौते से नहीं लड़कर लेनी होगी। अपने रक्त से स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना होगा।"

(3) "मेरे प्यारे देशवासियों आजादी प्राप्त करने का एक ही तरीका है कि हम देश के भीतर और बाहर दोनों ओर से आजादी के लिए लड़े।

आजाद हिंद फौज का नेतृत्व-

जुलाई 1943 में सिंगापुर में आजाद हिंद फौज का नेतृत्व नेताजी के द्वारा की गई और नेताजी के द्वारा यह घोषणा की गई कि आजाद भारत की आजाद हिन्द फौज होगी एवं आजाद हिंद सरकार होगी। अस्थाई सरकार के PM एवं सेना के सुप्रीम कमांडर नेताजी सुभाष चंद्र बोस बने। रंगुन इस अस्थायी सरकार की राजधानी तथा आजाद हिन्द फौज का कमाण्ड बनाया गया। नेताजी के प्रभावशाली संगठन क्षमता, ओजस्वी व्यक्तित्व के प्रभाव से आजाद हिन्द फौज में सैनिकों की संख्या 12,000 से बढ़कर 40,000 हो गयी। सेना के तीन ब्रिगेड बनाएँ गए थे क्रमश: सुभाष चंद्र बोस ब्रिगेड, गांधी ब्रिगेड, एवं नेहरू ब्रिगेड। रानी झाँसी रेजिमेंट में 1000 स्त्री सैनिक थे जिन्हें विधिवत प्रशिक्षण दिया गया। योग्य स्त्री सैनिको को यूद्ध क्षेत्र हेतु एवं शेष को नर्सिंग के कार्य सौंपे गए।

आजाद हिंद फौज द्वारा अंडमान निकोबार द्वीप पर विजय प्राप्त कर तिरंगा झंडा फहराया गया। वर्मा, कोहिमा पर विजय प्राप्त करते हुए सेना इम्फाल की ओर अग्रसर थे, किन्तु नियति को कुछ और ही मंजुर थी। भारी वर्षा के कारण जापान से संपर्क टूट गया एवं इसी बीच अनेक मोर्चे पर जापान की हार हो जाती है. जिससे आजाद हिन्द फौज का सहयोग मिलना बंद हो गया। इन विषम परिस्थितियों में भी नेताजी पुन: संघर्ष हेतु वायुयान से टोकियो के लिए खाना हुये। उन्होंने रवाना होने के पूर्व सैनिकों की आपात बैठक में कहा मैं शुरू से ही आशावादी रहा हूँ और अब भी मुझे पूरा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब हम आजाद भारत में साँस ले सकेंगे। 'अच्छा जय हिन्द'।

निर्णयक लड़ाई लड़ने के लिए स्वयं को पूरी तरह से निर्भयता पूर्वक तैयार कर लेंगे तब हम यकीनन आजाद हो जाएंगे।

निष्कर्ष:-

वायुयान दुर्घटना ग्रस्त हो जाता है और नेताजी हमारे बीच से अलविदा हो गए। बात यह भी उभर कर आती है कि बहुत से भारतीय नेताओं ने जापान और इसके फासीवादी तानाशाही मित्रों की सहायता से भारत को स्वतंत्र कराना पसंद नहीं किया लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि नेताजी सेना के जवानों तथा भारतीय जनता के हर वर्ग के सम्मुख साहस और देश भक्ति की जो मिसाल जलाई, वह अतुलनीय है, प्रेरणादायक है। नेताजी ने आजाद हिन्द फौज बनाकर सिद्ध कर दिया कि भारतीय सैनिक पैसे मात्र के लिए काम करने वाले सैनिक नहीं अपितु मातृभूमि के सच्चे सपूत हैं। भारत की आजादी के बाद 1956 में क्लेमेंट एटली ब्रिटिश प्रधानमंत्री कोलकत्ता आए थे। उस समय उनके मेजबान राज्यपाल और कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी बी चक्रवर्ती ने उनसे भारत को आजादी देने के ब्रिट्रिंश फैसले के पीछे का कारण जानने की कोशिश की थी। इसके उत्तर में एटली द्वारा कहा गया कि बोस की आजाद हिंद फौज की बढ़ती सैन्य गतिविधियों के कारण भारतीय सेना और नौसेना की ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी कम हो रही थी। ये एक बड़ा कारण था। यह स्वीकारोक्ति भारत की आजादी में बोस के महान योगदान को सिद्ध करती है। स्वतंत्रता के लिए बोस का संघर्ष न केवल भारत के लिए बल्कि तीसरी दुनिया के सभी देशों के लिए प्रेरणा साबित हुआ। बोस के नेतृत्व में हुए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का उन देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा। नेताजी का रूतबा उन्हें विश्व स्तर पर "आजादी के नायक" के रूप में स्थापित करता है। भारतीय सेना में देशभक्ति जागृत करने एवं वैश्विक जनमत को भारत की आजादी के पक्ष में तैयार करने की मुहिम के लिए नेताजी सुभाष चंद्र बोस का योगदान भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. नेताजी सुभाष चंद्र बोस-श्री हरदान हर्ष, जयपुर।
2. भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास-डॉ ए. के. मितल, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा उ. प्र.
3. सुभाष चंद्र बोस, द इण्डियन स्ट्रगल (1920-24) (नेताजी रिसर्च ब्यूरो द्वारा संकलित)।
4. सुभाष चंद्र बोस का अध्यक्षीय भाषण, ऑल इंडिया फारवर्ड ब्लॉक कांफ्रेंस, नागपुर।
5. सुभाष चंद्र बोस, एन इण्डियन पिलग्रिम या आटोवायोग्राफी ऑफ सुभाष चंद्र बोस।

18वीं शताब्दी में पटना की सामाजिक संरचनाः एक अध्ययन

ज्ञान प्रकाश

रामचंद्र चंद्रवंशी विश्वविद्यालय विश्रामपुर, पलामू (झारखण्ड)

शोध सारः-

भारत का सामाजिक जीवन प्राचीन काल से विविधता पूर्ण रहा है। मुसलमानों के आगमन ने सामाजिक जीवन को और भी प्रभावित किया जब भारत में तुर्क, अफगान और मुगलों ने शासन करना प्रारंभ किया। वहीं ब्रिटिश शासन की जब शुरूआत हुई तो इस क्रम में निरंतरता और परिवर्तन का क्रम जारी रहा। भारत में 18वीं सदी की राजनीतिक स्थिति उस समय की सामाजिक संरचना की कमजोरियाँ स्पष्ट करती थी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल राजतंत्र टूटता चला गया। इसने सामंतवादी तत्वों को मजबूत किया और इसके साथ ही स्वतंत्र सामंतवादी राज्यों की संख्या बढ़ती गई- जिसमें मराठा, अवध, कर्नाटक, हैदराबाद, मैसूर तथा बंगाल प्रमुख था। वहीं इस समय प्लासी व बक्सर के युद्धों से स्पष्ट हो गया था कि पश्चिमी पूँजीवाद तथा वहाँ की ओजस्विता के समक्ष हिन्दुस्तान की पतनोन्मुख सामंतवादी सामाजिक दशा सोचनीय थी। राजनीतिक विघटन तथा इससे उत्पन्न होने वाले अराजकता ने स्थिति को और भी दयनीय बना दिया। इस अराजकता और असुरक्षा के वातावरण में सामाजिक, सांस्कृतिक और सर्जनात्मक गतिविधियाँ होना या इस क्षेत्र में प्रगति होना असंभव था। इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से 18वीं सदी अवनति का काल था, जिसमें निष्क्रियता और जडता पनप रही थी। 18वीं सदी में सम्पूर्ण देश में पृथकत्व व सामंजस्य का जो दौर चल रहा था उसके प्रभाव से अन्य प्रांतों की तरह बिहार भी अछूता नहीं रहा। वहीं बिहार के प्रदेश में प्राचीन काल से केन्द्र बिन्दु रहे पटना इसके अन्य भागों से कहीं अधिक प्रभावित हुआ। इस प्रकार पटना में भी इस काल में निरंतरता व परिवर्तन का जो दौर चला उसे विद्वानों ने संक्रमण काल की शुरूआत माना, जो इसके सामाजिक क्षेत्र में भी परिलक्षित होता है।

मूल शब्दः- सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामंतवादी, अराजकता

प्रस्तावनाः-

सम्पूर्ण देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सामंजस्य और पृथकत्व का जो दौर चल रहा था उसके प्रभाव से अन्य प्रांतों की तरह बिहार भी अछूता नहीं रहा। वहीं बिहार के केन्द्र बिन्दु रहे पटना इसके अन्य भागों से कहीं अधिक प्रभावित हुआ। यहाँ मुसलमानों की अच्छी आबादी थी और उन्हें हिन्दुओं के साथ रहना पड़ता था। आबादी में हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान तथा अन्य वर्ग के लोग थे जो सामाजिक जीवन के अंग थे। 18वीं सदी का सामाजिक जीवन जातिप्रथा से संचालित था और इसका स्वरूप विभिन्न क्षेत्र में अलग-अलग रूप धारण किए हुए था।इस काल में हिन्दू समाज का संगठन पूर्व काल की तरह बन रहा है। ऋग्वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था थी। जिसमें प्रतिभा, गुण और वर्गीकरण का निर्धारण किया जाता था। इसमें जन्म और वंश का महत्व नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे जाति व्यवस्था विशेषकर गुप्त काल से जड़ पकड़ने लगी। वहीं व्यवस्था इस काल में बनी रही। मुगल काल में जाति व्यवस्था के नियम और भी कड़े हो गए। जायसी ने 36 जाति का उल्लेख किया है, जिनमें ब्राह्मण के अंतर्गत गौड़ व कान्यकुब्ज आते हैंय क्षत्रिय जिसमें चंदेल, तोमर, गढ़वाल गहलोत, खत्री, कल्हण पक्ष वानस और अन्य उपजातियाँ सम्मिलित थी वैश्य जिनमें बनियाँ, अग्रवाल, कलवार, बेरिया, पतुई जिनमें ढाडी, घडी आदि उपजातियाँ शामिल थीं। निकोलो कॉन्टी और ट्रैवर्नियर ने मुगल कालीन भारत में इन्हीं जातियों का उल्लेख किया है। निकोलो कॉन्टी ने 84 जातियाँ तथा ट्रैवर्नियर ने 72 जातियों का उल्लेख किया। ये जातियाँ उत्तर काल में भी विद्यमान था। बिहार में बहुत पहले से ही गैर आर्य प्रजातियों का निवास था जिनमें कोल, चेरी आदि आते थे और चेरी ही बाद में राजपूत कहे जाने लगे में इन जातियों को बाहर से आये राजपूतों तथा भूमिहारों ने भूमिहीन कर दिया और इस काल में राजपूत तथा भूमिहार स्वामी बन गए। बिहार में उनकी रियासते कायम हुई जैसे गिद्धौर के चंदेल व खड़गपुर के राजपूत वही भोजपुर, डुमराँव, बक्सर और जगदीशपुर के उज्जैनि राजपूत रियासत थे। भूमिहार, जिन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता था, बिहार में अधिक संख्या में फैल गए थे वे सभी ब्राह्मण माने जाते थे। लेकिन वे ब्राह्मण इसलिए कहे जाते थे क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण वृति, जैसे पूजा-पाठ, विवाह, संस्कार आदि का काम करना छोड़ दिया था और वे भूमिपति तथा कृषक हो गए थे। दरभंगा के औयनवर ब्राह्मण और पटना के लिच्छवार क्रमशः ओइनी और पिलिच से आए थे। लेखन कार्य करने वाले कायस्थ कहलाए, जो अपनी उत्पति पैराणिक पात्र चित्रगुप्त से मानते है। कायस्थों की अनेक शाखाएँ या उपजातियाँ थी जैसे-अम्बष्ठ, कर्ण, श्रीवास्तव सक्सेना, माथुर अस्थाना एवं दुस्सुई आदि कायस्थों की ये सारी उपजातियाँ एवं शाखाएँ यहाँ

निवास करती थी। ये जातियाँ चतुर संपन्न व सुसंस्कृति होती थीं। कायस्थों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि वे हिन्दू होते हुए भी अपने मुस्लिम स्वामियों की विदेशी भाषाय जैसे अरबी, फारसी या आगे चलकर अंग्रेजी में शीघ्रता से महारत हासिल कर लेते थे। इसलिए सरकारी नौकरी में आसानी से अपनी जगह सुरक्षित कर लेते थे। कानूनगो अधिकांशत: इसी वर्ग से हुआ करते थे। इस काल में कृषि कार्य में कुर्मी जाति की अनेक उपजातियाँ जैसे-अवधिया, कुचौसा एवं धमिला आदि यहाँ निवास करती थीं। इनमें अनेक अपने को क्षत्रियों का वंशज मानते अधिक सूखी थे क्योंकि वे कृषि के साथ पशुपालन का कार्य पेशे के रुप में यहाँ अहीरों की भी अच्छी संख्या थी तथाकथित इन सब के अलावा निम्न वर्ग के जातियों में दुसाध, चमार, पार्सी, डोम, कहार, नाई आदि भी निवास करते थे।

सामाजिक पिरामिड के शीर्ष स्थान पर ब्राह्मण जाति के लोग थे। वही इस पिरामिड के निम्न धरातल पर शूद्रों व अछूतों की जगह नियत थी। जिन्हें धर्म द्वारा अपवित्र घोषित कर दिया गया था और राज्य की उत्पीड़क सत्ता द्वारा समर्थित हिन्दू समाज ने उन्हें उच्च जातियों की सेवा करने व हलखोरी आदि निम्न कार्य करने के लिए बाध्य कर रखा था। यही जाति व सामाजिक व्यवस्था 18वीं सदी में विद्यमान थी। इस समय जाति-नियम अत्यंत कठोर थे तथा जाति के लोगों का आपस में मिलना-जुलना निषिद्ध जाति विशेष के पुरुष के साथ रागात्मक संबंध होता था। "बुकानन" कहता है कि, अगर एक जाति विशेष की महिला का दूसरे सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। वहीं 18वीं सदी का यूरोपीय लेखक विल्किस लिखता है कि- "एक व्यक्ति क्या करता है तथा क्या खाता है, यह जाति व्यवस्था पर निर्भर था। दूसरे शब्दों में वह अपनी जाति विशेष का पेशा करता था और जाति विशेष का भोजन करता था। "इसने हिन्दुओं को जन्म के आधार पर आधारित परस्पर पृथक पदानुक्रमित श्रेणियों में बाँट रखा था। इस काल में जाति व्यवस्था यदि श्रम विभाजन रुपी आर्थिक प्रणाली के रुप में रचि होती तो इसे लाभकारी मानकर उचित ठहराया जा सकता था। परन्तु इसने समाज को दो वर्गों में असंगत रुप से विभाजित कर दिया था, जिसमें एक वर्ग शोषणकर्ता था वहीं दूसरा अस्पृश्य वर्ग या जो सभी सामाजिक सुविधाओं तथा अधिकारों से वंचित था।

हिन्दुओं के साथ-साथ हिन्दुस्तान में मुस्लिम समाज भी संगठित हो गया था। अरब आक्रमण के काल से ही मुसलमानों की संख्या यहाँ बढ़ने लगी थी। जब तक, अफगान शासक की नींव पड़ी तब मुसलमानों का भारत में स्थायी निवास होना प्रारम्भ हुआ। मुगल काल तक वे भारतीय समाज के अंग बन गए। हिन्दुओं और मुसलमानों का धीरे-धीरे एक दूसरे के साथ सामंजस्य होने लगा। मुस्लिम समाज का सबसे उच्च वर्ग राज परिवार एवं उच्चाधिकारियों का था। इस वर्ग के लोग ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। शहजादा के समान जीवन जीता था और अलग-थलग रहता था तथा अन्य वर्गों से मेल-जोल नहीं रखते थे। दूसरा वर्ग अमीर-उम्मराओं का था जिन्हें कुलीन वर्ग कहा जाता था। इस वर्ग के लोगों का एक अलग समाज था। वे प्रबुद्ध जन थे ओर देश के शासन और राजनीति में उनकी भागीदारी थी। 1707 ई० के बाद मुस्लिम समाज का यह वर्ग मुगल शासन को प्रभावित करने लगे, क्योंकि औरंगजेब के उत्तराधिकारी कमजोर थे, इसलिए उनका अस्तित्व उमराओं पर निर्भर रहने लगे। जो उमरा अधिक शक्तिशाली थे, वे समाज और राजनीति को अधिक प्रभावित करते थे। इन उमराओं को राज्य प्रश्रय देता था और उनके परामर्श पर अमल भी किया जाता था। मुसलमानों का तीसरा वर्ग उलेमा कहलाता था जो युग के धर्म का ठेकेदार था। इन उलेमाओं के बिना राज्य का कार्य नहीं चलता था। वे धर्मशास्त्री थे और इस्लाम की व्याख्या करना अपना अधिकार मानते थे। इस काल में इनका महत्व बना रहा। चौथा वर्ग पीरजादा कहलाता था। पीरो के संतान और उनमें आस्था रखने वाले सारे लोग पीरजादा माने जाते थे। समाज के अधिकांश धार्मिक पुरुष पर हुआ करते थे। पीरजदा का भी एक अलग समाज था। समाज में सैय्यद लोग भी थे। सैय्यदों को पैगम्बर का वंशज माना जाता था। इसलिए घमण्डी शासक भी उसके समक्ष विनीत होने में नहीं हिचकते थे।

उद्देश्य:-

- 18वीं शताब्दी में पटना की सामाजिक सरंचना का अधययन करना है।
- 18 वीं शताब्दी में बिहार की सामाजिक , आर्थिक , राजनितिक परिदृश्य का विश्लेषण करना है।

शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध को पूरा करने के लिए विश्लेषणात्मक एवं अनुभवात्मक विधियों को प्रयोग में लाया जाएगा। अनुभवात्मक सैद्धान्तिक पक्ष के लिए पुस्तको पत्र पत्रिकाओं तथा शोध क्रियाओं जैसे द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से सामग्री एकत्र की जाएगी। द्वितीयक स्रोतों के तहत आवश्यक सामग्री विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों, इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि मे उपलब्ध साधनो के अलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनो आत्मलेखो, समाचार पत्र-पत्रिकाओं एवं राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों इत्यादि के लेखन सामग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ इस शोध के द्वारा सामाजिक समस्या का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन व विश्लेषण करने पर सम्बन्धित सामाजिक दोष इत्यादि की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की जाएगी।

निष्कर्ष-

ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत में व्यापक और मूलभूत रुप में राजनीतिक प्रशासनिक और वैधानिक एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। यही कारण है कि 1757 से 1853 तक सामाजिक

परिवर्तन स्पष्टतः परिलक्षित होने लगे थे और इस काल में इनकी गति तेज हो गई। जाति प्रथा में शिथिलता आई। प्राचीन वर्गों में विभाजित समाज में एक नए वर्ग का उदय हुआ और इस नए वर्ग को मध्यम वर्ग नाम दिया गया। शासन तंत्र और भारतीय जन समूह के मध्य होने के कारण भी मध्यम वर्गीय कहलाए। हालांकि इन पर अभी भी प्राचीन उच्च वर्ग का वर्चस्व कायम था किन्तु फिर भी जातिगत औपचारिकताओं और परम्पराओं का विधिवत पालन न करने के कारण इन्हें नए उभरते वर्ग के रूप में देखा गया। इनमें गतिशीलता थी जिससे वे अपना पेशा अथवा व्यवसाय परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र थे।

संदर्भ-सूची

1. हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग-2, पृ०- 812-813-
2. हरिहर दास, पूर्वोदधृत, पृ०- 119-
3. .Md& Yasin, A Social History of Islamic India] p. 193.
4. Majumdar, R.C.History and culture of the Indian people, Vol& 7 p&166
5. Ashraf. K.M. op. cit. p.101.
6. चंद्र, विपिन, मुखर्जी, मृदुला- आदित्य, पनिकर, क-न- महाजन, सुचेता, भारत का स्वतन्त्रता संग्रामदुला, कथा वा निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ, 366।'
7. मजूमदार, रमेशचन्द्र, रायचौधरी, हेमचन्द्र दत्त, कांलिकर, भारत का वृहद इतिहास, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1954, पृष्ठ, 353।'
8. चंद्र, विपिन, मुखर्जी, मृदुला, आदित्य, पनिकर, क-न, महाजन, सुचेता, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ, 366।
9. बी- एल- ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन (1707 ई से वर्तमान समय तक), एस-चंद एंड कंपनी लि, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ, 4091
10. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ, 502।
11. मित्तल, डॉ- एके, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास (1857 ई- से 1947 ई- तक), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2007, पृष्ठ, 231।।
12. वहीं, पृष्ठ, 232।
13. चंद्र, विपिन, मुखर्जी, मृदुला- आदित्य, पनिकर, क-न, महाजन, सुचेता, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ, 366 ।
14. पांडे, एस- के- आधुनिक भारत, सुमित प्रकाशन, इलहाबाद, 2008, पृष्ठ, 377
15. मजूमदार, रमेशचन्द्र, रायचौधरी, हेमचन्द्र, दत्त, कांलिकर, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1954, पृष्ठ, 355।
16. पांडे, एस-के- आधुनिक भारत, सुमित प्रकाशन, इलहाबाद, 2008, पृष्ठ, 377।
17. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ, 414।
18. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ, 1982, 823।
19. चंद्र, विपिन, मुखर्जी, मृदुला, आदित्य, पनिकर, क-न, महाजन, सुचेता- भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश् वविद्यालय, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ, 371।
20. सरकार, सुमित- अनुवाद (सुशीला डोभाल) आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ, 421।

प्राकृतिक आपदाओं का प्राणी जगत पर प्रभाव

डॉ० अखलेश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)

प्रस्तावना

आपदा से तात्पर्य उस विषम स्थिति से है, जो मानवीय, भौतिक, पर्यावरणीय तथा सामाजिक कारको के व्यापक रूप से प्रभावित करती है तथा सामान्य दिन चर्या में भारी व्यवधान डालती है। सामान्यता आपदा से तात्पर्य प्राकृतिक आपदाओ जैसे हिम स्खलन, भूकम्प, सुखा बाढ़ तूफान, भू-स्खलन, ज्वालामुखी विस्फोट, ओलावृष्टि, महामारी, लू, शीतलहर, बिजली गिरना उल्कापात, पाला सर्दी तथा समुद्री लहरों के उत्पात गिरना, पाला, सर्दी तथा आदि से है।

मानव प्रेरित आपदाओ में युद्ध, आतंकवाद रेल, वायु-यान सड़क दुर्घटना, आगजनी, भगदड़, दंगें, खान दुर्घटना गैस पाइपलाइन फटना, परमाणु परीक्षण तथा अन्य दुर्घटनाये सम्मिलित है। दूसरे शब्दो में हम कह सकते हैं कि वह सभी घटनाये जो प्राकृतिक के अन्दर विस्तृत क्षेत्र में घटित होती है तथा जिनका व्यापक विनाशकारी प्रभाव होता है। प्राकृतिक आपदाये कहलाती है।

भारत सरकार के आपदा प्रबन्धन अधिनियम: (2005)

आपदा का तात्पर्य प्राकृतिक अथवा मानव जनित दुर्घटना, लापरवाही या त्रुटि के कारण घटित ऐसी घटना से है। जिसके कारण वडे परिमाण पर मानव क्षति या कष्ट हो, सम्मपत्ति की क्षति या विनाश हो या पर्यावरणीय क्षति, या विनाश हो या पर्यावरणीय क्षति या अवनति हो और घटना का परिमाण प्रभावित जनसमुदाय की सामना करने की सीमा से अधिक हो।

भोगवादी अर्थव्यवस्था तथा बढ़ती हुई आबादी का प्रकृति के साथ अत्यधिक हस्तक्षेप हो रहा परिणाघ्म स्वरूप प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई है। प्राकृतिक आपदाये प्राकृतिक संसोधनों के प्रबन्ध मुख्यता योजनाओं तथा विकास की प्रक्रिया के साथ होता है। विकास ऊपर से नीचे रहने वाली प्रक्रिया जिससे अधिकारियो, राजनीतिज्ञो तथा व्यापारियों को छोटी-छोटी टुकडिया परियोजनाओ को अन्तिम रूप देती है।

संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रति वर्ष औसतन 3 हजार करोड रूपये का आर्थिक नुकसान प्राकृति आपदाओ के कारण होता है। हमारा देश प्राचीन काल से ही से अनेक प्रकार की प्राकृतिक आपदाओ का हमारे देश की जनसंख्या तथा अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पढ़ने के साथ साथ मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ा है।

वर्तमान समय में भारत देश में घटित होने वाली प्रमुख प्राकृतिक आपदाये निम्नलिखित है-

- बाढ़ आपदा।
- बादल आपदा।
- जल आपदा।
- सूखा आपदा।
- भूकम्प आपदा।
- वनाग्नी आपदा।
- सुनामी आपदा।
- महामारी आपदा।

बाढ़ आपदा (Flood Disaster)

सामान्यता बाढ़ का अर्थ होता है- विस्तृत भू-भाग का जलमग्न होना तथा अपार जन धन की हानि। बाढ़ ऐसी प्राकृतिक आपदा है, जो प्रकृति में अतिवृष्टि के द्वारा उत्पन्न होती है। मनुष्य द्वारा निर्मित ऐसी योजनाये जिनका प्रकृति के साथ सामजस्य नहीं होता है। बाढ जैसी आपदाओ को और अधिक बढावा देती है। अतिवृष्टि के द्वारा नादियों के जल में गाद की मात्रा अधिक बढ़ने से श्वाध एवं तटबन्धो के टूटने से जब नदी के सामान्य जलस्तर में वृद्धि होकर आस-पास भू-भाग जलमग्न होता है तथा जन-धन की व्यापक हानि हो तो प्रकृति मे इस घटना को बाढ़ आपदा कहते हैं।

हमारे देश के बिगड़ते हुए पर्यावरण के कारण क्षतिग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़ जैसी आपदाये निरंतर आने लगी है। बड़ती हुई गरीबी के कारण अधिक आबादी बाढ़ आपदा का शिकार हो रही है हमारे देश के चरण वद्ध विकास में कुछ विसंगतिया भी है जो देश के अनेक क्षेत्रों में देखने को मिलती है। देश के अनेक क्षेत्रों मेंबाढ़ नियंत्रण उपायो पर आत्यधिक धन व्यय होने के उपरान्त भी बाढ़ से होने वाली हानि निरन्तर बड़ती जा रही है। इस विसंगति की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था सन 1954 से 1978 तक 10281 किमी. नये तटवन्ध बनाये गयेप 254 शहरों को सुरक्षा प्रदान कि गयी तथा 4700 गावों को बाढ़ स्तर से ऊपर उठाया गया। वर्तमान समय में स्थिति यह है कि देश की लगभग 1.4 करोड़ हैक्टयर भूमि को बाढ़ से सुरक्षा प्रदान की जा चुकी है। किन्तु बाढ़ से होने वाली हानि की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण नही हुआ है।

सातवी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज (1985) ने यह स्पष्ट शब्दो में स्वीकार किया कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बाढ

नियन्त्रण उपायों पर होने वाला व्यय बढ़ता गया किन्तु बाढ़ से होने वाली हानि भी बड़ती गयी। पिछले 30 वर्षों में प्रत्येक वर्ष 1400 व्यक्ति तथा 1 लाख से अधिक पशु बाढ़ की चपेट में आये हैं।

हमारे देश में न केवल बाढ़ प्रभावित भू-भाग बड़ता जा रहा है अपितु बाढ़ प्रभावित जनसंख्या भीचढ़तीजा रही है। खाद्य एवं कृषि संगठन की ताजा अनुमानकेअनुसार देश की लगभग 25 करोड आबादी उन क्षेत्रों में निवास कर रही है जहां बाढ़ प्रकोप की आशंका है।

हमारे देश में गंगा और ब्रहापुत्र का क्षेत्र बाढ़ आपक्दा से अधिक प्रभावित है। देश की कुल बाढ़ आपदा का लगभग 60% विनाश केवल गंगा जल प्रवाह क्षेत्रों में ही दिखायी जाती है। अधिकतर पुराने समय में विहार, पश्चिमी बगांल उत्कल तथा आसाम बाढ़ से देश की 3 चौथाई क्षति दर्ज की गई है।

पश्चिमी बंगाल मे जहाँ प्रति वर्ष बाढ़ आती है अब बाढ़ से बहुत अधिक स्थिति खराब हो गयी है। वहीं आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान तथा कुछ भाग गुजरात का और हरियाणा का बचा हुआ भाग है। लेकिन इसका मुख्य कारण बाढ़ वाले मैदानों में कृषि करने, शहरीकरण तथा अधिक आबादी के बसाव तथा बाढ प्रभावित क्षेत्रो का अनियोजित विकास प्रमुख है।

हमारे देश में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रो की वृद्धि पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर अर्थात गंगा की निचली धारा के साथ बड़ती जा रही है। वही दाक्षिण से उत्तर दिशा की ओर अर्थात हिमालय तरफ भी बाढ़ प्रभावित क्षेत्र फैलते जा रहे है। दिन प्रतिदिन बाढ़ की गम्भीर समस्याये अतिक्षति पूर्णग्रस्त होती जा रही है जिससे बाढ़ के द्वारा काफी संख्या में मृत्यु ग्राफ में वृद्धि हुई है साथ ही 30 लाख एकड़ भूमि और लहलाती फसल नष्ट हुई है। जो कि गंम्भीर समस्या के रूप में उभरती प्रतीत होती है।

बाढ़ आपदा के लिए मुख्य उत्तरदायी कारकः

1. पर्यावरण विनाश तथा बाढ़

हमारे देश की बाढ़ प्रमुख समस्याओं में एक है, जोकि बाढ़ का स्वाभाव इस तरह बदल रहा है कि इससे जन-धन की हानि अधिक हो रही है। पहले बाढ़ के पानी के साथ जो गाद मिट्टी भरकर आती थी उसमें भूमि को उपजाऊ बनाने वाले तत्व अधिक होते थे किन्तु अब जो मलवा पानी के कारण और उसके के साथ वह्कर आता है। उसमे उपजाऊ तत्व मिलने की संभावना कम होती हैं- अनेक क्षेत्रों मे जल के फैलने से भूमि का उपजाऊपनकम हो जाता है।

नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों में वन विनाश तथा अनेकप्रकार से पर्यावरण का विनाश हो रहा है जिसमे भूमि के कटाव में वृद्धि हो रही है। वृक्ष विहीन भूमि वर्षा का जल तेजी से वहता है। यह धीरे-धीरे झरनों तथा अन्य जल स्रोतो के माध्यम से मुख्य नदी की ओर बढ़ता है। अपने अधिक तेज प्रवाह के कारण बहुत सी मिट्टी और मलवा भी अपने साथ नदी में ले आता हैं। इसे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होती है।

2. भू-स्खलन तथा बाढ़

पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन द्वारा नदी मार्ग अवरुद्ध होने, जलाश्य बनने तथा फिर उसके अचानक टुटने से प्रलयकारी बाढ़ आती है जिस तरह की बाढ़ का वेग इतना अधिक होता है कि यह बडी बडी बस्तियों का अस्तित्व मिटा देता है। उत्तराखण्ड हिमालय में हर मोड़ पर भूस्खलन देखा जासकता है पहले यह भूस्खलन गंगा तथा उसकी सहायक नदियों के प्रबल वेग से कम्पित पहाड़ों से होते थे किन्तु अब सड़क निर्माण, नदी वांध परियोजनाओं के निर्माण में डायनामाइट विस्फोटो से तथा भूकम्प से कम्पन हो रहे है।

गंगा नदी के मायके अर्थात गंगोत्री के निकट झाला के पास आज भी 500 वर्ष पूर्व वर्तमान सुक्खी भू-स्खलन से गंगा नदी का मार्ग अवरुद्ध हो गया, जिससे झाला से उपर नदी मार्ग में लगभग 10 कि.मी. लम्बी झील बन गयी है।

बाढ़ आने के मुख्य प्रमुख कारकः

(i) बाँध, तटवन्ध तथा बैराज टुटने से बाढ़-

हमारे देश में तटवन्धो के टूटने, बांध टूटने तथा वैराज से अधिक पानी छोड़े जाने के कारण अचानक तथा प्रचण्ड वेग से आने वाली जाती है। उसे फलैस फलड कहते हैं। 1984 में पूर्वी कोसी तटबन्ध टूटने से 100 से अधिक व्यक्ति मरे तथा 4.50 लाख व्यक्ति विना घर के हो गये। उत्तर बिहार की बात करे तो वहां भी तटबन्धो के टुटने से निरंतर खतरा बना रहता है। तटबन्धो का कार्य भी अविवेकपूर्ण तरीके व असावधानी पूर्वक किया जाता है जिसके चलते तटवन्ध टुट्ने की आशंका निरंतर बनी रहती है जो बाढ के रूप में विनाशकारी सावित होती है।

(ii) सड़क तथा अन्य निर्माणी कार्यों से बाढ़-

पर्वतीय क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण वन कटाई व अनियंत्रित खनन से पहाड़ो की भूमि अस्थिर हो गई है। निर्माण कार्यों में उपयोग होने वाले विस्फोटको के अत्याधिक उपयोग से पहाड़ों को क्षति हो रही है। एक अनुमान के अनुसार हिमालय में 1 किमी. लम्बी सड़क के निर्माण में औसतन 60,000 घन मीटरमलवा निकलता है। हिमालय क्षेत्र का लगभग 50000 किमी. लम्बी सड़को का निर्माण हो चुका है। यह मलवा नीचे गिरते हुए वनस्पतियों तथा जल स्रोत नष्ट करता है। सड़कों के निर्माण से सड़को के दोनो तरफभू-स्खलन भी बड़ते जा रहे है। यही हुटा हुआ मलवा बहते पानी साथ नदी-नालो में पहुंचता है और बाढ़ का रूप धारण करता है।

हमारे देश में जहां कही भी नई वस्तियां बस रही है वहां भूमि उपयोग में बदलाव आ रहा है। रेलवे-लाइन सड़को तथा नहरों का प्रसार हो रहा है। इन क्षेत्रों में पानी की निकासी की व्यवस्था नही हो पा रही है है और न ही इस बात की ओर ध्यान दिया जा रहा है। निकासी की उचित व्यवस्था न होने से वर्षा का पानी

जगह-जगह एकत्रित हो जाता है अनेक स्थानों पर निकासी मार्गो मे ही बस्तियां बसा दी जाती है परिणाम स्वरूप बहुत सी नई वस्तियां बाढ़ और जलभराव की समस्या से ग्रस्त रहती है।

(iii) नदियों में गांद की दर बढने से बाढ़-

हिमालय क्षेत्र में बहने वाली नदियों में वर्ष में 8-9 महीनो तक मिट्टी एवं गांद पानी के साथ घुलकर बहती रहती है एक अनुमान के अनुसार हिमालय की नादियां के जल समेत क्षेत्रों से प्रति वर्ष लगभग 6 अरब टन मिट्टी बहकर मैदानों एवं समुद्रीय क्षेत्रों में जमा हो रही है एक मोटे अनुमान के अनुसार नेपाल हिमालय से निकलने वाली गण्डक और सरयु प्रणाली की नदियों से प्रतिवर्ष 10 लाख घन फुट मिट्टी जल के साथ बहकर उत्तर-प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में जमा हो रही है। इससे नादियो का भाग भरता जा रहा है नदियों में बढ़ते हुए गाद एवं मलवे से नदियों की सतह भी उपर उठ रही है। नदियों में कम पानी होने पर भी उसकी जल ग्रहण क्षमता के अभाव में यह पानी बाढ़ का रूप धारण कर लेता है।

नदियो में गाद की दर में वृद्धि का मुख्य कारण पर्वतीय क्षेत्रो में वनस्पतियों का विनाश है एक विहीन स्थान पर तीव्र गति से वर्षा की बौछारे पड़ती है तो वहां मिट्टी उखड़ कर दूर-दूर तक फैल जाती है तथा पानी में घुलकर बहाव के साथ वह जाती है मूसलाधार वर्षा का पानी जब मिट्टी सहित नदी नालों में वहता है तो पानी के साथ-गाद अधिक होने से वह बाढ़ का स्वरूप धारण कर लेता है।

बाढ़ नियन्त्रण के उपाय:

बाढ़ आपदा पर नियन्त्रण पाने के लिए निम्न सुझाव सहायक हो सकते है-

- सहायक नदियों व धाराओं पर अनेक छोटे-छोटे बाँध बनाये जाये जिससे कि वे मुख्य नदी में बाढ़ का खतरा कम करने में सहायक हो सके।
- नदियों के उपरी क्षेत्रों में अनेक छोटे-छोटे- जल 'सग्रहण क्षेत्र बनाये जा सकते हैं जो कि बाढ़ का वेग कम करने के अतिरिक्त सुखे के लिए जल दे सके।
- मैदानी क्षेत्रों में निचली जगह, दलदली स्थानों पर तथा प्राचीन खदान स्थलों में जल संग्रहण किया जा सकता है।
- नदियों के उपरी, जल संग्रहण क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण किया जाये जिससे कि भूक्षरण पर नियन्त्रण हो सके।
- नदी के स्वाभाव और उसमे आ रही गाद के अध्ययन के आधार पर यह पता लगाना चाहिए कि तटबन्धो का नदी के बहाव पर क्या प्रति कूल प्रभाव पड़ सकता है। तटबन्धो का नदी पर प्रतिकूल प्रभाव पडे तो, तटबन्धो की अपेक्षा अन्य सुरक्षात्मक उपाय अपनाने होगे।
- तटबन्धो की सुरक्षा की ओर भी निरन्तर ध्ध्यान देते रहना चाहिए क्योकि- कभी-कभी नदी का जलस्तर उपर उठने से तटबन्धों को टूटकर अधिक विनाशकारी बाढ़ आती है कभी-कभी नदी की नई धारा भी निकल आती है।
- तटबन्धों के बीच फसें हुए गावों की सुरक्षा के लिए उनका पूर्ण अथवा आशिंक पुनर्वास आवश्यक है।
- पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण में विस्फोटको का उपयोग कम करके भू-स्खलनों पर नियन्त्रण किया जा सकता है इससे नादियों की गाद की दर की कमी होगी।
- सड़ध्को तथा रेलवे लाइन का निर्माण तथा वस्तियों बसाव स्थल का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इससे नादियों व जल धाराओ का प्राकार्तिक मार्ग अवरुद्ध न हो।
- नदियो के जल ग्रहण क्षेत्रो में वन विनाश पर नियंत्रण किया जाये तथा सघन वृक्षारोपण किया जाये।

सन्दर्भ सूची:

1. सविन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग सदन, इलाहाबाद, 2015
2. सुरेश चन्द्र बंसल, नगरीय भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2017
3. डॉ. के. के. पांचाल, प्राकृतिक आपदा, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, 2011
4. श्री मनीष मोहन गोरे, जैव विविधता संरक्षण, एसेक्ट पब्लिकेशन, 2009
5. सुरेश चन्द्र बंसल, पर्यावरण एक अध्ययन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2017
6. परिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, मेरठ, 2016
7. श्याम सुन्दर शर्मा, ज्वालामुखी भयंकरतम प्राकृतिक आपदा, प्रभात प्रकाशन, 2013
8. ललित नारायण आमेटा, प्राकृतिक आपदा एवं पर्यावरण प्रबंधन, प्रिंसेस पब्लिशिंग, 2023
9. प्रेमचंद्र स्वर्णकार, महामारी कोरोना और वायरस जनित रोग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2021
10. सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, प्राकृतिक आपदा परिणाम एवं प्रबंधन, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, 2017

डॉ० जगन्नाथ मिश्र का शिक्षा के क्षेत्र में योगदानः एक अध्ययन

अर्जुन कुमार

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, टी.एस. कॉलेज, हिसुआ, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

शोध-सार

डॉ. जगन्नाथ मिश्रा ने संत विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से अपने सार्वजनिक जीवन की बाकायदा शुरुआत की। टीएनबी कॉलेज (भागलपुर) में सर्वोदय परिषद बनाया। इसके वार्षिक सम्मेलन को जयप्रकाश नारायण संबोधित करते थे। वह बिहार विश्वविद्यालय के व्याख्याता बने। यहीं अर्थशास्त्र विभाग के आचार्य हुए। 1966 से बिहार विश्वविद्यालय के सिंडिकेट और सिनेट में कई बार सदस्य बने। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी एवं जेएनयू के कोर्ट में भी दो बार सदस्य चुने गए। डॉ. जगन्नाथ मिश्र एकीकृत बिहार के मुख्यमंत्री थे, इसलिए उनकी सरकार के फैसलों स्कृत बोर्ड, स्वीकृत को पूरे बिहार के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

मुल शब्दः- डॉ जगन्नाथ मिश्र, शिक्षा, बिहार, विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

डॉ. मिश्र हर भाषा की तरक्की और विकास के पक्षधर रहे हैं। डॉ. मिश्र की सरकार के दौरान संस्कृत शिक्षा बोर्ड की भी स्थापना की गई। साथ ही संस्कृत, मैथिली, मगही, भोजपुरी, बांग्ला, पंजाबी, छोटानागपुर की जनभाषाओं और दक्षिण भारतीय भाषाओं के लिए भी अलग-अलग अकादमियों की स्थापना की गई ताकि शोध और प्रसार को बढ़ावा मिल सके। उनके कार्यकाल में 3880 निरीक्षित एवं संस्कृत बोर्ड और स्वीकृत विद्यालयों को मान्यता दी गई। दरभंगा के ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय को यूजीसी की मान्यता के लिए भूमि, भवन और अपेक्षित राशि मुहैया कराई गई। डॉ. मिश्र के कार्यकाल में ही आरा में वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, छपरा में जयप्रकाश विश्वविद्यालय, दुमका में सिद्धूकान्हू, विश्वविद्यालय, हजारीबाग में आचार्य बिनोवा भावे विश्वविद्यालय, पटना में मौलाना मजहरुल हक विश्वविद्यालय और सहरसा में भारती मंडन विश्वविद्यालय की स्थापना का फैसला लिया गया। बाद में जनता दल सरकार ने सहरसा के बदले मधेपुरा। में इसे स्थापित कर बी एन मंडल विश्वविद्यालय का नाम दिया

- संस्कृत शिक्षा बोर्ड की स्थापना।
- 3880 निरीक्षित एवं संस्कृत बोर्ड, स्वीकृत विद्यालयों को मान्यता।
- मैथिली, मगही, भोजपुरी, संस्कृत, बांग्ला, पंजाबी, छोटानागपुर की जनभाषाओं, दक्षिण भारतीय भाषाओं के लिए अलग-अलग अकादमी।
- आरा, छपरा, दुमका, हजारीबाग में विश्वविद्यालय स्थापना का फैसला।
- पटना में मौलाना मजहरूल हक विवि। सहरसा में भारती मंडन विवि, जिसे बाद में मधेपुरा में बी एन मंडल विवि के नाम से स्थापित किया गया।
- ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा में भूमि, भवन और अपेक्षित राशि उपलब्ध कराई गई।

डॉ. मिश्र ने अपनी सरकार के कार्यकाल में बिहार में शिक्षा सुधार की दिशा में कई नई शुरुआत की। विश्वविद्यालय शिक्षा से अलग कर इंटरमीडिएट कौसिल की स्थापना उन्होंने ही की थी। बिहार में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा के लिए उन्होंने कदाचार पर रोक लगाने के लिए खासतौर पर अधिनियम बनाया था। बाद की सरकारों के दौरान इस अधिनियम के प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया गया, जिसका नतीजा ये है कि बिहार की परीक्षाओं में कदाचार अनियंत्रित स्तर तक बढ़ गया और राज्य की छवि खराब हुई। कुछ राजनीतिक दल अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए आरक्षण का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन आपको ये बताना चाहूंगा कि शिक्षण संस्थानों में नियुक्ति के लिए पहली बार दलितों, आदिवासियों के लिए आरक्षण डॉ. मिश्र ने ही सुनिश्चित कराया था। इतना ही नहीं सभी विभागों में आरक्षण सुनिश्चित कराने के लिए उन्होंने आरक्षण आयुक्त पद का सृजन भी किया। लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित कराई जाने वाली परीक्षाओं में उन्होंने सभी बेरोजगारों के लिए परीक्षा शुल्क लेने की व्यवस्था ही समाप्त करा दी। शिक्षण संस्थानों में नियुक्ति के लिए देश में पहल बार दलितों, आदिवासियों के लिए आरक्षण सुनिश्चित कराया।

- सभी विभागों में आरक्षण सुनिश्चित कराने के लिए आरक्षण आयुक्त का पद बनाया। लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में सभी बेरोजगारों से फीस लेने की व्यवस्था समाप्त की।
- विश्वविद्यालय शिक्षा में इंटरमीडिएट शिक्षा को अलग कर इंटरमीडिएट कौंसिल की स्थापना।
- परीक्षा में कादाचार रोकने के लिए अधिनियम बनाया गया।

डॉ. नित्र का मानना था कि शिक्षकों को बिना पर्याप्त सुकिया मुहैया कराए शिक्षा का समुचित विकास संभव नहीं है। इसी सोच को सामने रखकर उन्होंने बिहार के शिक्षकों, शिक्षकेत्तर कर्मचारियों और विश्वविद्यालय शिक्षकों के लिए यूजीसी वेतनमान और सरकारी कर्मचारियों के लिए केंद्रीय वेतनमान लागू करने संबंधी नीति निर्धारण कराया। डॉ. मिश्र ने अल्पसंख्यकों को मुख्यधारा में लाने और उनके विकास के लिए उर्दू और मदरसों को मान्यता दिलाई तो साथ ही हजारों उर्दू अनुवादकों, एक हजार से ज्यादा उर्दू टंककों की नियुक्ति भी की गई। कार्यालयों में पहली बार उर्दू टंकण यंत्रों की आपूर्ति कराई गई। डॉ. मिश्र की सरकार ने ये निर्णय लिया था कि माध्यमिक स्तर तक सभी विषयों की पाठय पुस्तकें बिहार टेक्स्टबुक कारपोरेशन से छपाई जाए। लेकिन जैसा कि मैं आपको बता चुका हूं कि उनका तीन बार का कुल कार्यकाल सिर्फ 5 साल ही था और बाद की सरकारों ने इस निर्णय को पूरा नहीं किया।

बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. जगन्नाथ मिश्र ने राज्य में उर्दू और मदरसों के विकास के लिए जितने काम किए, किसी भी दूसरी सरकार ने आजतक नहीं किए। जो लोग डॉ. मिश्र की उपलब्धि यों पर सवाल उठाते हैं, उन्हें शायद ये भी नहीं पता होगा कि उनकी अपनी सरकार और पार्टी में उर्दू को बिहार की दूसरी राजभाषा बनाने के फैसले पर भारी नाराजगी थी। ये डॉ. मिश्र की प्रतिबद्धता और दूरदर्शिता थी कि उन्होंने उर्दू और मदरसों के विकास को न सिर्फ शिक्षा बल्कि अल्पसंख्यक विकास से जोड़कर देखा। डॉ. मिश्र ने अपने मुख्यमंत्रित्य काल में मदरसा बोर्ड की स्थापना की और 2995 मदरसों को मान्यता दिलाई। डॉ. मिश्र ने हर साल 3000 उर्दू शिक्षकों की बहाली का प्रावधान किया था। सभी माध्यमिक स्कूलों में उर्दू शिक्षक की नियुक्ति अनिवार्य की गई थी। उर्दू शिक्षकों और मान्यता प्राप्त मदरसों के शिक्षकों को दूसरे शिक्षकों की तरह ही सरकारी सुविधाएं सुनिश्चित कराई गई। मदरसों से उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को आगे की पढ़ाई और नौकरियों में किसी भेदभाव का सामना नहीं करना पड़े, इसके लिए डॉ. मिश्र ने मदरसा बोर्ड के प्रमाणपत्रों और डिग्रियों को अन्य शिक्षा बोर्ड के समकक्ष मान्यता दिलाई।

संवेदना और दूरदर्शिता के साथ बिहार में शिक्षा विकास के कदम

प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों के लिए पोषाहार की व्यवस्था। 197 प्रखंडों में 100 कार्यदिनों तक 8 से 11 साल तक के बच्चों को 50 ग्राम अंकुरित चना या मूंगफली देने की व्यवसथा। प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय, मदरसा, संस्कृत विद्यालयों के छात्रों को 31000 छात्रावृत्तियां सालाना मिलती थीं, इसे दोगुनी की गई। 1981-82 में छात्रवृत्ति की राशि में 20 फीसदी वृद्धि की गई प्रारंभिक विद्यालयों में गणित एवं विज्ञान को प्राथमिकता, 400 गांवों में उपग्रह-दूरदर्शन द्वारा शिक्षाज्ञान, निशुल्क पुस्तक वितरण के कदम उठाए गए। राज्य और देश की आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए पटना में ललित नारायण मिश्र इंस्टीट्यूट ऑफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट एवं सोशल चेंज की स्थापना की गई।

त्रि-सूत्री परिवार कल्याण योजना

केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री के रूप में डॉ.मिश्रा ने त्रि-सूत्री परिवार कल्याण योजना शुरू की। इसमें गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के प्रमुख की मृत्यु पर 10 हजार अनुकम्पा अनुदान, वृद्धा पेंशन और गर्भवती महिला को पौष्टिक आहार के लिए दो बच्चों के हिसाब से 500-500 रुपए का अनुदान शामिल था।

सुनिश्चित रोजगार योजना

बिहार के सभी 727 प्रखंडों (तब के) को सुनिश्चित रोजगार योजना में सम्मिलित किया। बिहार को प्रतिवर्ष 3 लाख इंदिरा आवास की स्वीकृति दी। केन्द्रीय कृषि मंत्री के रूप में बिहार के जिलों में कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं 16 कृषि संबंधी विषयों पर शोध प्रतिष्ठानों की स्वीकृति करायी।

मुख्यमंत्री के रूप में खास काम

- मानवाधिकार सुरक्षित और सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कई कार्यक्रमों का कार्यान्वयन
- 54000 प्राथमिक विद्यालयों एवं 3000 माध्यमिक विद्यालयों का राजकीयकरण। 235 महाविद्यालयों का अंगीभूतकरण, 429 संस्कृत विद्यालयों का राजकीयकरण एवं 39 संस्कृत महाविद्यालय का अंगीभूतीकरण
- संस्कृत एवं मदरसा शिक्षकों को सरकारी शिक्षकों की भांति वेतन एवं अन्य सुविधाएं प्रदान कराई। कॉलेजों एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों को कालबद्ध प्रोन्नति एवं पेंशन की सुविधा दी।
- स्वास्थ्य से लेकर शिक्षकों एवं शिक्षकेतर कर्मचारियों, सरकारी कर्मचारियों, अधिवक्ता कल्याण कोष, रिक्शा स्वामित्व एवं अन्य वर्गों के लिए कल्याणकारी योजनाए
- कमजोर वर्गों के लिए विधिक सहायता अधिनियम बनाया
- 45000 चौकीदार-दफादार को सरकारी कर्मचारी का दर्जा
- खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करने के लिए प्रशासनिक तंत्र का गठन
- बिहार में प्रथम औद्योगिक नीति के अंतर्गत अनेक उद्योगों की स्थापना
- अत्यंत पिछड़ी जाति की 1976 में पहचान एवं उन्हें विशेष सुविधा देना। अत्यंत पिछड़ी जाति के छात्रों को दलित छात्रों की तरह सुविधा, जिला बोर्ड एवं जिला परिषद में अत्यंत पिछड़े एवं दलित का मनोनयन किया।

- 14 नवंबर 1980 को संपूर्ण राज्य में पंचायती राज की शुरूआत 0.1976 में विश्वविद्यालय एवं अन्य शिक्षण संस्थानों में देश में पहली बार दलित आरक्षण सुनिश्चित कराया। दलित एवं आदिवासी के लिए विशेष अंगीभूत एवं उपयोजना की शुरूआत
- डॉ.वर्गीज कुरियन मार्गदर्शन में सूबे में दुग्ध क्रांति की शुरुआत
- छात्रवृत्ति की संख्या और राशि दोगुनी हुई

इसके अलावा औद्योगिक मजदूरों के कल्याण संबंधी कार्यक्रम, बूढ़ों एवं विधवाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा पेंशन, पढ़े लिखे युवकों को बेरोजगारी भत्ता, भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत भूमिहीनों को जमीन देने, अल्पसंख्यक समुदाय के लिए सुरक्षा एवं कल्याण की अनेक योजनाओं के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की संभावनाओं को गतिशील बनाने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।

मीर-ए-उर्दू का मिला खिताब

उर्दू भाषा को राज्य की द्वितीय भाषा की स्वीकृति दिलायी। इसके लिए लखनऊ की मीर-एकेडमी ने उनको मीर-ए-उर्दू की उपाधि प्रदान की। उर्दू तथा अल्पसंख्यक समुदाय के लिए की उनके कार्यों को देखते हुए अनेक संस्थाओं ने उनको अलग-अलग उपाधियों से सम्मानित किया। विश्व उर्दू सम्मेलन में उन्हें मोहसिने उर्दू की उपाधि मिली।

विदेश दौरा: 1982 में प्रधानमंत्री के विशेष प्रतिनिधि के रूप में मास्को दौरे पर गए। मार्च 1996 में इजिप्टि के कैरो में एफ्रो-एशियन रूरल रिकन्स्ट्रकशन ऑर्गेनाइजेशन के 12वें महाधि वेशन में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। बिहार की काराओं में विचाराधीन कैदियों की स्थिति का अध्ययन कराया और उसकी रिपोर्ट राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजा।

निष्कर्ष

आज देश में और खासकर बिहार में बेरोजगारी सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। बिहार की राज्य सरकारें रोजगार सृजन के क्षेत्र में उम्मीदों पर खरा नहीं उतर पा रही है, हालांकि दो साल से केंद्र में बनी नरेंद्र मोदी सरकार की योजनाओं खासकर कौशल विकास योजना और मेक इन इंडिया से तस्वीर बदलने की बढ़ी उम्मीद बंधी है। आपको बताना चाहता हूं कि डॉ. मिश्र ने शिक्षित बेरोजगारों को निजी रोजगार के अवसर दिलाने और नौकरी न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता देने के कदम उसी दौर में उठाए थे। राष्ट्रीयकृत बैंकों से तब स्वरोजगार के लिए 25 हजार रुपये अनुमान्य थे. डॉ. मिश्र ने इसके साथ 1 से 5 हजार रुपये तक के अनुदान की व्यवस्था कराई। बैंकों और वित्तीय संस्थानों से 10-15 फीसदी तक सीड मनी के रूप में सरकारी सहायता मुहैया कराई। पूरे बिहार में अनियोजन सांकेतिक भत्ता 1 अक्टूबर 1981 में उन्हीं की सरकार ने लागू कराया। 1980-81 तक राज्य के 2 लाख लोगों को 50 रुपये प्रति माह वे भत्ता मिलता था, जिसे डॉ. मिश्र सरकार ने 3 लाख लोगों तक पहुंचाया और भत्ते की राशि 50 रुपये से बढ़ाकर 100 रुपये प्रतिमाह किया। 1980-81 के दौर में 3 लाख लोगों को 100 रुपये भत्ता पर्याप्त राशि मानी जाती थी और इसीलिए उस वक्त उनके इस फैसले को बड़ी संख्या में लोगों ने सराहा था। निजी रोजगार के अधिक मौके दिलाने के कारगर कदम उठाए। राष्ट्रीय बैंकों से अनुमान्य 25 हजार रुपये कर्ज के साथ 1 हजार से 5 हजार का विशेष अनुदान दिलाया।

सन्दर्भ सूची

- "संग्रहीत प्रति". मूल से 19 अगस्त 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2 अक्तूबर 2019.
- अहमद, सुरूर (2019-08-19). "जगन्नाथ मिश्रा: 'मौलाना' मिश्रा से मोदी प्रशंसक तक".
- BBc News हिंदी. मूल से 8 दिसंबर 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2020-04-05.
- नरेन्द्र कौशिक- सरकार गिराने वाली कम्पनियाँ, दिनमान, 10-16 अगस्त पृ० 27-28.
- डॉ0 प्रमोद मिश्र- तृतीय विश्व में बहुराष्ट्रीय निगमों को भूमिका, राजस्थान पत्रिक 01 जुलाई, 1986.

युवाओं में नए प्रकार की नशे की लतः एक अवलोकन

ज्योति

एम.ए. सोशल वर्क, (एन.ई.टी.-जे.आर.एफ.)

सारांश

नशे की लत लंबे समय से समाज में एक व्यापक और हानिकारक समस्या रही है, जिसका व्यक्तियों और उनके परिवारों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। हालाँकि, सिंथेटिक पदार्थों और डिजाइनर दवाओं जैसी नई प्रकार के नशीलें मादक पदार्थों की शुरूआत ने समस्या पर एक नया दृष्टिकोण ला दिया है। अब नशे के नए रूप सामने आ रहे हैं, जैसे फार्मास्युटिकल ओपिओइड। इन नए व्यसनों का व्यक्तियों और परिवारों पर जटिल प्रभाव पड़ता है। इस शोध पत्र का अध्ययन लोगों और उनके परिवारों पर नशीलें मादक पदार्थों की लत के नए रूपों के विविध प्रभावों पर प्रकाश डालता है।

नशीले मादक पदार्थों की लत के नए रूप व्यक्तियों और परिवारों के लिए विशेष कठिनाइयाँ पैदा करते हैं, जिससे प्रभावित लोगों पर शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और संबंधपरक परिणाम होते हैं। शारीरिक परिणाम गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक परिणाम मानसिक विकारों को जन्म दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त, नशीली दवाओं की लत रिश्तों पर तनाव डालती है, जिससे एक अस्वास्थ्यकर पारिवारिक वातावरण बनता है जो विशेष रूप से बच्चों के लिए स्थायी भावनात्मक और विकास संबंधी समस्याएं पैदा कर सकता है। इसलिए, इस बदलती समस्या के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए प्रभावी रोकथाम के तरीकों का होना, जागरूकता बढ़ाना और उपचार तक पहुंच प्रदान करना महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन का उद्देश्य युवाओं में नए प्रकार की नशे की लत से व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्दः नशा, नशीली दवाएं, सामाजिक प्रभाव, मादक पदार्थ।

भूमिका

युवाओं में नए प्रकार की नशे की लत एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है जिसने दुनिया भर के समाजों को त्रस्त कर दिया है। भारत में नई प्रकार की नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि ने विशेषज्ञों और नीति निर्माताओं का ध्यान खींचा है। इस शोधपत्र का उद्देश्य भारत में नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत के तेजी से विकास में योगदान देने वाले ऐतिहासिक संदर्भ, प्रमुख आंकड़ों, प्रभावों और प्रभावशाली व्यक्तियों का व्यापक विश्लेषण प्रदान करना है। शोधपत्र विभिन्न दृष्टिकोणों का पता लगाएगा और सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं पर विचार करते हुए एक तर्कसंगत विश्लेषण पेश करेगा, साथ ही इस संबंधित मुद्दे में संभावित भविष्य के विकास पर भी चर्चा करेगा।

पिछले कुछ वर्षों में, नशीले पदार्थों के सेवन की लत के क्षेत्र में नए पदार्थों और उपयोग के तरीकों के आगमन के साथ परिवर्तन का अनुभव हुआ है। इसने व्यक्तियों और उनके परिवारों के लिए अद्वितीय बाधाएँ पैदा की हैं। लगातार बदलता व्यसन परिदृश्य न केवल नए जोखिम प्रस्तुत करता है, बल्कि नशा करने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक संरचना की गतिशीलता पर भी बहुत प्रभाव डालता है। इसका प्रभाव उक्त व्यक्ति के पारिवारिक जीवन पर भी है। नशीले पदार्थों की लत पारिवारिक जीवन को बाधित कर सकती है, जिससे गहरी भावनात्मक परेशानी, वित्तीय अस्थिरता और पारिवारिक एकता में दरार आ सकती है। इसके अलावा, इससे होने वाला वित्तीय बोझ पूरे परिवार के लिए वित्तीय अस्थिरता और कठिनाई का कारण बन सकता है। पारिवारिक जीवन पर नशीली दवाओं की लत के प्रभाव को स्वीकार करना और उसका समाधान करना महत्वपूर्ण है।

भारत में नशीली दवाओं की लत का एक लंबा और जटिल ऐतिहासिक संदर्भ है जो सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक कारकों से जुड़ा हुआ है। ऐतिहासिक रूप से, मारिजुआना और अफीम जैसे विशिष्ट पदार्थों का उपयोग कुछ क्षेत्रों में प्रचलित रहा है। हालाँकि, हाल के वर्षों में, नई प्रकार की दवाओं के आगमन ने समस्या को बढ़ा दिया है।

भारत में नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि से जुड़े प्रमुख आंकड़ों में से एक सिंथेटिक दवाओं का उदय है। मेथामफेटामाइन, एमडीएमए (एक्स्टसी) और डिजाइनर दवाओं जैसी नई सिंथेटिक दवाओं के उद्भव ने देश में नशीली दवाओं की लत के परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ये दवाएं अक्सर अधिक गुणकारी, सस्ती और आसानी से उपलब्ध होती हैं, जिससे लत के मामलों में वृद्धि होती है।

उभरते हुए नशीले पदार्थ

तेजी से विकासशील देश के रूप में, भारत को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें नशीले पदार्थों की लत का

उद्भव और प्रसार भी शामिल है। हालाँकि शराब और तम्बाकू जैसे पारंपरिक पदार्थ महत्वपूर्ण स्वास्थ्य जोखिम पैदा करते हैं, लेकिन इसका समग्र रूप देखें तो भारत में नशीले पदार्थों की नई लतों का बढ़ना एक गंभीर समस्या है। जिसके लिए नीति निर्माताओं (सरकार) द्वारा स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों और समग्र रूप से समाज की ओर से तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है। नशीले पदार्थ जो उभर रहे हैं, जैसे कि चिट्टा, स्मेक, हेरोइन, सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स, डिजाइनर ड्रग्स, प्रिस्क्रिप्शन ड्रग का दुरुपयोग, इनहेलेंट का दुरुपयोग तेजी से बढ़ रहा है।

1. सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स: हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्यों में, सिंथेटिक कैनबिनोइड्स को आमतौर पर 'भांग' के रूप में जाना जाता है व अन्य राज्यों में गांजा, चरस आदि के नाम से जाना जाता है। भारत में सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स का उद्भव 2000 के दशक की शुरुआत में हुआ, शुरुआती यौगिकों HU-210 और JWH-018 ने मनोरंजक दवा ने युवाओं के बीच भारी लोकप्रियता हासिल की। प्रयोगशालाओं में बने इन पदार्थों को विशेष रूप से कैनाबिस के प्रभावों की नकल करके, दवा परीक्षणों में पता लगाने से बचने के लिए कानूनी सीमाओं को दरकिनार करने के लिए बनाया गया था। पिछले कुछ वर्षों में, सिंथेटिक कैनबिनोइड्स के कई रूप सामने आए हैं, जिनमें स्पाइस, के2 और ब्लैक माम्बा जैसे उपनाम व्यापक रूप से स्वीकार किए गए हैं। भारत में सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स की वास्तविक सीमा निर्धारित करना उनके गुप्त और अवैध वितरण चौनलों को देखते हुए एक चुनौती है। हालाँकि, वास्तविक साक्ष्य और मीडिया रिपोर्टों का संयोजन दृढ़ता से उनके उपयोग में वृद्धि का सुझाव देता है, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और गैर-कानूनी बाजारों पर उनकी व्यापक उपलब्धता सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स की अपील को बढ़ाती है, सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स, जिन्हें अक्सर हर्बल मिश्रण या धूप के रूप में बेचा जाता है, स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो सकते हैं। क्योंकि ये पदार्थ कितने हानीकारक हैं या उनमें कौन से रसायन हैं, इसके लिए कोई मानक या गुणवत्ता नियंत्रण नहीं हैं। इससे अप्रत्याशित और हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स को कई नकारात्मक प्रतिक्रियाओं से जोड़ा गया है, जिनमें दिल की धड़कन में तेजी, घबराहट के दौरे, दिल का दौरा, मतिभ्रम और यहां तक कि चरम मामलों में मृत्यु भी शामिल है। वे प्राकृतिक कैनाबिस की तुलना में अधिक नशीले हैं क्योंकि वे अत्यधिक रासायनिक प्रक्रिया से गुजरते हैं। सिंथेटिक कैनबिनोइड्स के बार-बार और भारी उपयोग से शारीरिक और मनोवैज्ञानिक निर्भरता हो सकती है। साथ ही, हम इन पदार्थों के दीर्घकालिक प्रभावों को नहीं जानते हैं, जिससे उनके उपयोग का खतरा बढ़ जाता है।

सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स के उद्भव के जवाब में नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट (एनडीपीएस) में संशोधन किया गया है, जिससे कानून प्रवर्तन एजेंसियों को उत्पादन और वितरण पर नकेल कसने में मदद मिलेगी। भारत में, दिल्ली और महाराष्ट्र जैसे राज्यों ने सिंथेटिक कैनाबिनोइड-संबंधी गतिविधियों की निगरानी और मुकाबला करने के लिए विशेष टास्क फोर्स का गठन किया है। सिंथेटिक कैनाबिनोइड्स के खतरों के बारे में सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाना, लोगों को शिक्षित करना और स्वस्थ विकल्पों को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है।

2. डिजाइनर ड्रग्स: मेफेड्रोन, जिसे भारत में 'म्याऊ म्याऊ' के नाम से भी जाना जाता है, एक डिजाइनर दवा है जिसने कोकीन और एक्स्टसी के समान अपने उत्तेजक और उत्साहवर्धक प्रभावों के लिए लोकप्रियता हासिल की है। भारत में, यह एमडीएमए (मौली) और एम्फैटेमिन जैसी दवाओं के विकल्प के रूप में व्यापक रूप से उपलब्ध हो गया है। यह डोपामाइन, सेरोटोनिन और नॉरपेनेफ्रिन को उत्तेजित करता है, जिससे उत्साह की भावना, ऊर्जा में वृद्धि और सामाजिकता में वृद्धि होती है। हालाँकि, इसके उपयोग से व्यामोह, चिंता और हृदय गति में वृद्धि भी हो सकती है। इसके अलावा ब्राउन शुगर, जिसे हेरोइन भी कहा जाता है, मॉर्फीन से बना एक अत्यंत नशीला पदार्थ है। इसके रूप और अहसास के कारण इसे आमतौर पर 'ब्राउन शुगर' के रूप में जाना जाता है। यह अवैध दवा भारत में एक प्रमुख मुद्दा है, खासकर पंजाब और मणिपुर राज्यों में, जहां इसने कई समुदायों को भारी नुकसान पहुंचाया है और नशीली दवाओं से संबंधित अपराधों में वृद्धि हुई है।[1] ब्राउन शुगर के बार-बार उपयोग से शारीरिक और मनोवैज्ञानिक निर्भरता, श्वसन अवसाद, साझा सुइयों के माध्यम से एचआईवी एड्स का संचरण और कई अन्य स्वास्थ्य परिणाम हो सकते हैं। स्पैस्मोप्रोक्सीवोन या (एसपी) एक दवा है। जिसमें डेक्सट्रोप्रोक्सीफेन, डाइसाइक्लोमाइन और पेरासिटामोल होता है। हालाँकि इसके लिए नुस्खे की आवश्यकता होती है, लेकिन इसके शामक और दर्द निवारक गुणों के कारण अक्सर इसका दुरुपयोग किया जाता है। भारत में लोग इस अवैध दवा को 'स्पास्मो प्रोक्सीवोन' कहते हैं। भारत में डिजाइनर दवाओं का अत्यधिक उपयोग एक गंभीर समस्या है जिस पर तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है। नीति निर्माता, शिक्षक और परिवार इस मुद्दे से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए सहयोग कर सकते हैं। नई डिजाइनर दवाओं के उद्भव को ध्यान में रखते हुए सफल दृष्टिकोण साझा करने और कानून बनाने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग महत्वपूर्ण है। व्यापक प्रयासों के माध्यम से ही हम अपने समाज की जीवन और भविष्य की रक्षा कर सकते हैं।

3. प्रिस्क्रिप्शन नशीली दवाओं का दुरुपयोग: भारत में, ओपिओइड, साइकोस्टिमुलेंट्स, बेंजोडायजेपाइन और शामक दवाओं सहित डॉक्टर द्वारा लिखी दवाओं के दुरुपयोग में चिंताजनक वृद्धि हुई है। जैन एट अल द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग 29 प्रतिशत वयस्कों ने अपने जीवन में कम से कम एक बार गैर-चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए डॉक्टरी दवाओं का उपयोग किया है।[2] इसके अतिरिक्त, ग्रोवर एट अल द्वारा एक अलग अध्ययन से पता चला कि भारत में कॉलेज के छात्रों के बीच डॉक्टर द्वारा बताई गई दवाओं का दुरुपयोग 8 प्रतिशत से 21.2 प्रतिशत तक है, जिसमें ओपिओइड सबसे अधिक दुरुपयोग की जाने वाली दवा है।[3] ओपिओइड, बेंजोडायजेपाइन और शामक जैसी प्रिस्क्रिप्शन दवाएं भारतीय फार्मेसियों में आसानी से उपलब्ध हैं, जिनमें अक्सर उचित विनियमन या निगरानी प्रणाली का अभाव होता है। यह आसान पहुंच इन दवाओं के दुरुपयोग और दुरूपयोग को बढ़ावा देती है। स्वास्थ्य देखभाल संस्था और रोगियों दोनों में अक्सर जागरूकता की कमी होती है और डॉक्टरी दवाओं के संभावित जोखिमों और नशे की प्रकृति के बारे में गलत जानकारी होती है, जिससे दुरुपयोग होता है।[4] डॉक्टरी दवाओं के दुरुपयोग के दीर्घकालिक प्रभाव तात्कालिक स्वास्थ्य खतरों के अलावा बेहद हानिकारक हो सकते हैं। नियमित रूप से ओपिओइड का दुरुपयोग करने से निर्भरता और लत लग सकती है, जिससे व्यक्ति नकारात्मक परिणामों के बावजूद लगातार दवाओं की तलाश और उपयोग कर सकते हैं। प्रिस्क्रिप्शन नशीली दवाओं की लत न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है बल्कि मानसिक और भावनात्मक कल्याण को भी प्रभावित करती है। अध्ययनों से संकेत मिलता है कि लंबे समय तक ओपिओइड के उपयोग से अवसाद और चिंता विकार विकसित होने की संभावना बढ़ सकती है।[5] इसके अलावा, प्रिस्क्रिप्शन दवाओं का दुरुपयोग अक्सर अवैध पदार्थों के उपयोग की ओर ले जाता है क्योंकि जब प्रिस्क्रिप्शन दवाओं तक उनकी पहुंच प्रतिबंधित होती है तो व्यक्ति वैकल्पिक स्रोतों की तलाश करते हैं। यह प्रगति जोखिम भरे व्यवहारों में शामिल होने और एचआईवी और अन्य रक्तजनित बीमारियों (बेकर, फिलिन, और देसाई, 2017) सहित व्यापक स्वास्थ्य खतरों के संपर्क में आने का जोखिम बढ़ाती है।

नशों का प्रसार युवाओं में क्यों

1. आसान उपलब्धता और पहुंच में वृद्धि: नशीली दवाओं की बढ़ती उपलब्धता और पहुंच ने युवा लोगों में नशीली दवाओं की लत को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तकनीकी प्रगति और सामाजिक परिवर्तनों ने उनके लिए अवैध दवाएं और डॉक्टर द्वारा बताई गई दवाएं दोनों प्राप्त करना आसान बना दिया है।[6] परिणामस्वरूप, कई युवा व्यक्ति विभिन्न पदार्थों के साथ प्रयोग करने में सक्षम हो गए हैं, जिससे अंततः कुछ मामलों में लत लग गई है।
2. साथियों का दबाव और सामाजिक प्रभाव: किसी समूह में शामिल होने और उसका हिस्सा बनने की इच्छा एक युवा व्यक्ति के निर्णय लेने के तरीके पर बड़ा प्रभाव डाल सकती है। इससे उनके साथियों के दबाव के आगे झुकने की अधिक संभावना हो सकती है। सहकर्मी समूह युवाओं को नशीली दवाओं से परिचित कराने और उन्हें इसका उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करने में प्रभावशाली हो सकते हैं। साथ ही, जिस तरह से मीडिया में नशीली दवाओं को दिखाया जाता है और समाज नशीली दवाओं के उपयोग को जिस तरह से देखता है, उससे यह सामान्य या शांत प्रतीत हो सकता है, जिससे युवाओं को इन्हें आजमाने में अधिक रुचि हो सकती है (Measham, Aldridge, - Parker, 2001)[7]।
3. मनौवैज्ञानिक कारक: चिंता, अवसाद और तनाव जैसी मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के कारण युवा व्यक्तियों में नशीली दवाओं की लत लगने की संभावना अधिक होती है। वे अक्सर स्वयं-उपचार करने और अपने भावनात्मक दर्द या नकारात्मक भावनाओं को कम करने के लिए दवाओं का सहारा लेते हैं।[8] हालाँकि, यह दृष्टिकोण उलटा पड़ जाता है क्योंकि मादक द्रव्यों के सेवन से उनके मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं बिगड़ जाती हैं, जिससे लत और मनोवैज्ञानिक संकट का एक हानिकारक चक्र बन जाता है।

शिक्षा एंव जागरूकता का अभाव:

नशीली दवाओं के उपयोग से जुड़े खतरों और परिणामों के बारे में अपर्याप्त समझ और जागरूकता युवाओं में नशीली दवाओं की बढ़ती लत को बढ़ाने में योगदान करती है। कई किशोर अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर संभावित नकारात्मक प्रभावों को पूरी तरह से समझे बिना खुद को मादक द्रव्यों के सेवन में शामिल कर लेते हैं (Pacula, Powell, Heaton, & Sevigny, 2017)[9]। अपर्याप्त रोकथाम कार्यक्रम और स्कूलों में नशीली दवाओं की शिक्षा पर जोर की कमी ने इस मुद्दे को और खराब कर दिया है। नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि का मुकाबला करने के लिए, भारत में प्रभावशाली व्यक्तियों का उदय हुआ है जिन्होंने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसी ही एक शख्सियत हैं प्रसिद्ध मनोचिकित्सक और शोधकर्ता डॉ. अतुल अंबेकर, जिन्होंने साक्ष्य-आधारित हस्तक्षेप और नीति वकालत के माध्यम से भारत में नशीली दवाओं की लत के मुद्दे को संबोधित करने पर ध्यान केंद्रित किया है। डॉ. अंबेकर ने नशीली दवाओं की लत के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक शोध किया है और

रोकथाम और उपचार के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

डॉ. ए.के.घोष ने शुरुआती दिनों में नशा मुक्ति केंद्रों की स्थापना और नशीली दवाओं की लत के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी तरह, अंकित गुप्ता जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने जागरूकता बढ़ाने, समुदायों को शामिल करने और समस्या से निपटने के लिए प्रभावी नीतियों का प्रस्ताव देने के लिए अथक प्रयास किया है।

भारतीय युवाओं में व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन पर नई प्रकार की नशीली दवाओं की लत का विनाशकारी प्रभाव

भारत में नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि का व्यक्तियों, परिवारों, समुदायों और समग्र रूप से समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है। हानिकारक प्रभावों में बिगड़ता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, अपराध दर में वृद्धि, टूटे हुए परिवार और उत्पादकता में कमी के कारण आर्थिक परिणाम शामिल हैं।

इस मुद्दे को संबोधित करते हुए, कई प्रभावशाली व्यक्तियों ने भारत में नशीली दवाओं की लत के क्षेत्र में योगदान दिया है। उदाहरण के लिए, प्रोफेसर योगेश्वर शर्मा, एक प्रसिद्ध व्यसन मनोवैज्ञानिक, ने व्यसन के मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर शोध का नेतृत्व किया है और विभिन्न प्रकार की नशीली दवाओं पर निर्भरता के लिए हस्तक्षेप रणनीतियाँ विकसित की हैं। लत के ट्रिगर, उपचार के तौर-तरीकों और रोकथाम कार्यक्रमों को समझने में उनके अभूतपूर्व काम ने देश में नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि का मुकाबला करने में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की है।

नशीली दवाओं की लत एक गंभीर समस्या है जिसने दशकों से दुनिया भर के समाजों को परेशान किया है। हाल के वर्षों में, भारत में नई प्रकार की नशीली दवाओं की लत में चिंताजनक वृद्धि देखी गई है, जो न केवल युवाओं के व्यक्तिगत जीवन से समझौता कर रही है, बल्कि परिवारों के भीतर सद्भाव को भी नुकसान पहुंचा रही है। इस निबंध का उद्देश्य इस मुद्दे की गंभीरता पर प्रकाश डालना और इसे प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए तत्काल कार्रवाई की वकालत करना है।

भारत में विशाल जनसंख्या आकार और विविध सांस्कृतिक संदर्भ नशीली दवाओं की लत से प्रभावी ढंग से निपटने में चुनौतियां पैदा करते हैं। लत से जुड़ा लगातार कलंक और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल तक सीमित पहुंच प्रगति में बाधा डालती है। इसके अलावा, नई प्रकार की दवाओं के निरंतर विकास और डार्क वेब के आगमन ने नशीली दवाओं की तस्करी और खपत को नियंत्रित करना अधिक कठिन बना दिया है।

1. नये प्रकार की नशीली दवाओं की लत में तेजी से वृद्धि: भारतीय युवाओं में नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत का तेजी से बढ़ना एक चिंताजनक प्रवृत्ति है जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। सिंथेटिक पदार्थों, प्रिस्क्रिप्शन दवाओं और डिजाइनर दवाओं सहित इन दवाओं की उपलब्धता और पहुंच ने उनके बढ़ते प्रचलन में योगदान दिया है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ड्रग्स एब्यूज का अनुमान है कि वर्तमान में 2 मिलियन से अधिक भारतीय नशीली दवाओं पर निर्भरता से पीड़ित हैं, जिनमें एक महत्वपूर्ण हिस्सा युवा व्यक्तियों का है (एनआईडीए, 2021)।[10]
2. युवाओं पर नशीली दवाओं की लत के व्यक्तिगत प्रभाव: भारत में युवाओं के निजी जीवन पर नशीली दवाओं की लत के प्रभाव को कम करके नहीं आंका जा सकता। मादक द्रव्यों का सेवन किसी व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर कहर बरपाता है, जिससे समग्र कल्याण में गिरावट आती है। नई प्रकार की दवाओं की लत की प्रकृति दीर्घकालिक निर्भरता का एक महत्वपूर्ण जोखिम पैदा करती है, जिससे स्थिति बिगड़ती है और व्यक्तिगत विकास में बाधा उत्पन्न होती है।
3. नशे की लत के कारण पारिवारिक अशांति: नशीली दवाओं की लत न केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करती है, बल्कि पूरे परिवार पर भी हानिकारक प्रभाव डालती है। उपचार और पुनर्वास से जुड़ी लागतों के कारण परिवार चिंता, बेचैनी से ग्रस्त हो जाते हैं और अक्सर वित्तीय तनाव का अनुभव करते हैं। इसके अलावा, माता-पिता, भाई-बहन और परिवार के अन्य सदस्यों पर भावनात्मक प्रभाव बहुत अधिक होता है, जिससे रिश्ते तनावपूर्ण होते हैं, विश्वास टूटता है और यहां तक कि हिंसा भी होती है।
4. समाज पर आर्थिक बोझ: युवाओं पर नशीली दवाओं की लत का व्यापक प्रभाव पूरे समाज में व्याप्त है और एक महत्वपूर्ण आर्थिक बोझ डालता है। मादक द्रव्यों का सेवन व्यक्तियों की उत्पादकता को कम करता है, जिससे देश की आर्थिक वृद्धि में बाधा आती है। लत से संबंधित स्वास्थ्य देखभाल लागत, नशीली दवाओं से संबंधित अपराध और खोई हुई उत्पादकता देश की स्वास्थ्य सेवा प्रणाली और समग्र अर्थव्यवस्था (यूएनओडीसी, 2020) पर भारी बोझ हैं।[11]
5. व्यापक हस्तक्षेप रणनीतियों की आवश्यकता: किसी भी जटिल मुद्दे की तरह, भारत में नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि पर विचार करते समय विभिन्न दृष्टिकोण मौजूद हैं। कुछ लोगों का तर्क है कि नशीली दवाओं के उपयोग और तस्करी को रोकने के लिए सख्त कानून प्रवर्तन और दंडात्मक उपाय आवश्यक हैं। अन्य लोग अधिक दयालु दृष्टिकोण की वकालत करते हैं, पुनर्वास, शिक्षा और नुकसान कम करने की रणनीतियों पर जोर देते हैं।

आने वाले वर्षों में भारत में नशीली दवाओं की लत का चेहरा और अधिक विकसित होने की उम्मीद है। सोशल मीडिया और इंटरनेट के तेजी से विकास ने ऑनलाइन दवा बाजार को सुविधाजनक बनाया है, जिससे यह विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों के लिए अधिक सुलभ हो गया है। इसके अलावा, युवाओं के बीच पार्टी ड्रग्स और सिंथेटिक पदार्थों की बढ़ती लोकप्रियता अधिकारियों और स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकारी निकायों, स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों और गैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है। व्यापक रोकथाम कार्यक्रम विकसित करना, साक्ष्य-आधारित उपचार तक पहुंच बढ़ाना और समुदायों के बीच जागरूकता बढ़ाना आवश्यक कदम हैं। इस संकट से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। इसमें युवाओं, अभिभावकों और शिक्षकों को लक्षित करने वाले शैक्षिक और जागरूकता कार्यक्रम शामिल होने चाहिए। इन नशीले पदार्थों की उपलब्धता को सीमित करने के लिए सख्त विनियमन और नियंत्रण उपायों का कार्यान्वयन आवश्यक है। इसके अलावा, नशे की लत से जूझ रहे लोगों को सहायता प्रदान करने के लिए सुलभ पुनर्वास केंद्र और परामर्श सेवाएं स्थापित की जानी चाहिए।

निष्कर्ष:

भारत में नए प्रकार की नशीली दवाओं की लत की तेजी से वृद्धि एक जटिल और बहुआयामी चुनौती पेश करती है जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। इस शोधपत्र में इस मुद्दे से जुड़े ऐतिहासिक संदर्भ, प्रमुख आंकड़े, प्रभाव, किए गए उपाय और प्रभावशाली व्यक्तियों का पता लगाया गया है। सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को समझते हुए, और संभावित भविष्य के विकास पर विचार करते हुए, भारत में नशीली दवाओं की लत से प्रभावी ढंग से निपटने और अपने नागरिकों की भलाई की रक्षा के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। सख्त कानून प्रवर्तन, दयालु पुनर्वास प्रयासों और समुदाय-आधारित हस्तक्षेपों के संयोजन से, एक उज्जवल भविष्य की आशा है, जहां नशे की लत से जूझ रहे व्यक्तियों को आवश्यक सहायता और उपचार की पेशकश की जा सकती है।

नई प्रकार की नशीली दवाओं की लत का बढ़ना भारतीय युवाओं के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के लिए गंभीर खतरा है। इस संकट से समग्र रूप से निपटने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है। शिक्षा, जागरूकता, विनियमन और सुलभ पुनर्वास सेवाओं को प्राथमिकता देने वाली व्यापक हस्तक्षेप रणनीतियों में निवेश करके, हम इस खतरे का मुकाबला कर सकते हैं और अपने युवाओं और उनके परिवारों के लिए एक उज्जवल भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं। यह जरूरी है कि नीति निर्माता, समुदाय और परिवार इस विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकने और प्रभावित लोगों को लक्षित सहायता प्रदान करने के प्रयास में एकजुट हों।

भविष्य की ओर देखते हुए, कई विकास अपेक्षित हैं। सबसे पहले, तकनीकी प्रगति नशीली दवाओं की लत के खिलाफ लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, जिससे बेहतर निगरानी, शीघ्र पता लगाने और व्यक्तिगत उपचार हस्तक्षेप की अनुमति मिलेगी। इसके अतिरिक्त, एक एकीकृत दृष्टिकोण जो नशीली दवाओं की लत के सामाजिक निर्धारकों, जैसे गरीबी, बेरोजगारी और शिक्षा की कमी को संबोधित करता है, निरंतर प्रगति के लिए आवश्यक होगा। अंत में, इस जटिल मुद्दे से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए सरकारी एजेंसियों, गैर सरकारी संगठनों और अंतरराष्ट्रीय भागीदारों के बीच अधिक सहयोग आवश्यक होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Mukherjee, A. (2019). Substance Use and the Opioid Crisis in India: Pilot Study to Examine Heroin Use in Manipur. Frontiers in Sociology, 4, 72.
2. Jain, N., Wanjari, A., Khanna, P., & Tripathi, A. (2020). Non-medical use of prescription drugs in Northern India: A cross-sectional study. Asian Journal of Psychiatry, 49, 101962.
3. Grover, S., Basu, D., Bathla, M., Kumar, S., Sehgal, V., & Chakrabarti, S. (2018). Caffeine dependence syndrome in a recurrent major depressive disorder patient: A case report and review of literature. Journal of Clinical and Diagnostic Research: JCDR, 12(2), VD05-VD06.
4. Sharma, R., Tyagi, S., Sandhu, J., Chaudhary, P. K., Rohit, M. K., Verma, D., & Saha, R. (2018). Prescription Drug Abuse: A review. Journal of Applied Pharmaceutical Science, 8(07), 185-191.
5. Lembke, A. (2012). Why doctors prescribe opioids to known opioid abusers. New England Journal of Medicine, 367(18), 1580-1581.
6. Mieczkowski, T. (2016). The Drug Revolution. Routledge.
7. Measham, F., Aldridge, J., & Parker, H. (2001). Dancing on Drugs: Risk, Health and Hedonism in the British Club Scene. Expanded Edition. Routledge.
8. Mannelli, P., & Schwarts, R. P. (2015).Psychiatric Aspects of Prescription Drug Abuse. Current Psychiatry Reports, 17(3), 1-9.
9. Pacula, R. L., Powell, D., Heaton, P., & Sevigny, E. L. (2017). Assessing the Effects of Medical Marijuana Laws on Marijuana Use: The Devil is in the Details. Journal of Policy Analysis and Management, 36(2), 236-263.
10. National Institute of Drug Abuse (NIDA). (2021). DrugFacts: Understanding Drug Use and Addiction. Retrieved from https:èkèkwww.drugabuse.govèkdrug-topicsèkdrug-factsèkunderstanding-drug-use-and-addiction
11. United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC). (2020). World Drug Report 2020: Executive Summary. Retrieved from https:èkèkwdunodc.orgèkwdr2020èkfileèkWDR20_Booklet_1_EXECUTIVE_SUMMARY.pdf

Websites

1. New type of drug addiction among youth: personal and family effects on life

2020 के बिहार विधानसभा के चुनाव के जरिए सामाजिक न्याय का मूल्यांकन

शशि रंजन

सहायक प्राचार्य, एस० एन० सिन्हा कॉलेज, टेकारी, गया, मगध विश्वविद्यालय

2020 के चुनाव के बाद बिहार विधानसभा कैसा दिखता है और 243 विधायकों की पृष्ठभूमि क्या है जो अगले पाँच वर्ष बिहार की जनता की सेवा करेगें?

इस लेख में बिहार विधान सभा चुनाव 2020 के जातिगत लिंगगत और धर्मगत आँकड़ों के साथ अन्य आँकड़ों का भी विश्लेषण करेगें जो कि प्रत्येक उम्मीदवार के द्वारा अपने नामांकन के समय भरा गया था। इस जनसांख्यिकी आँकड़ा को एसोसिएशन फॉर डेमोक्रटिक रिफार्म द्वारा उपलब्ध कराया गया है।[1] साथ ही साथ त्रिवेणी सेण्टर ऑफ पॉलिटिकल डाटा के चित्रों का भी इस्तेमाल किया गया है।

2 विजेता उम्मीदवारों के शपथपत्र स्पष्ट ना होने के कारण उनका विश्लेषण नहीं किया गया है। नीचे की तालिका में 2 विजेता उम्मीदवार की सूची दी गयी है।

क्र० सं०	विजेता उम्मीदवार	दल	जिला	निर्वाचन क्षेत्र
1	राम सूरत कुमार	भाजपा	मुजफ्फरपुर	औरई
2	प्रहलाद यादव	राजद	लखीसराय	सूर्यगढ़ा

जाति

जो आँकड़े उपलब्ध है उसके अनुसार नयी विधानसभा के 40. 7 प्रतिशत सदस्य अत्यंत पिछड़ा वर्ग से संबंधित है। सवर्ण विधायकों 30 प्रतिशत है जबकि दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व 16. 5 प्रतिशत है और मुस्लिम 8 प्रतिशत के बराबर है।[2]

अगर हम प्रतिशत आँकड़ों के बजाय संख्या के आधार पर विश्लेषण करे तो यह स्पष्ट होता है कि ऊँची जाति के सर्वाधिक विधायक भारतीय जनता पार्टी से चुनकर आये है जिनकी संख्या 34 है। इसके बाद राष्ट्रीय जनता दल की बारी आती है। इससे 13 विधायक चुनकर आए हैं। जनता दल यूनाइटेड से 10 और कॉग्रेस से 7 जहाँ तक अत्यंत पिछड़ा वर्ग के विधयकों का प्रश्न है तो सबसे ज्यादा सख्या में राष्ट्रीय जनता दल से चुनकर आये हैं जिनकी संख्या 39 है। भारतीय जनता पार्टी से 27, जनतादल यूनाइटेड से 22 तथा कॉग्रेस से 2 विधायक हैं।[3]

विधायकों की यह संख्या विभिन्न राजनीतिक दलों की मुख्य जातिगत समूहों में सीटों के बँटवारा को प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय जनता पार्टी ने 110 टिकों में 52 टिकट सवर्णों को दिया 39 टिकट अत्यंत पिछड़ा वर्ग को दिया, 15 टिकट अनुसूचित वर्ग को दिया और एक टिकट अनुसूचित जनजाति को दिया। किसी मुस्लिम को टिकट नहीं दिया गया।

राष्ट्रीय जनता दल ने 144 सीटों में से 69 टिकट अत्यंत पिछड़ा वर्ग के लोगों को दिया 23 टिकट सवर्ण लोगों को दिया अनुसूचितजाति के लोगों को 19 तथा मुस्लिमों को 18 टिकट दिया। 14 उम्मीदवारों के जाति उस समय पता नहीं चल पाया। ऐसा माना जा सकता है कि उनमें से अधिकांश अत्यंत पिछड़ा वर्ग के लोग होंगे।

जनतादल यूनाइटेड ने 59 टिकट अत्यंत पिछड़ा वर्ग के लोगों को दिया 23 टिकट सवर्ण लोगों को दिया 18 टिकट अनुसूचित वर्ग के लोगों को, 11 टिकट मुस्लिमों को तथा 1 टिकट अनुसूचित जनजाति को दिया।

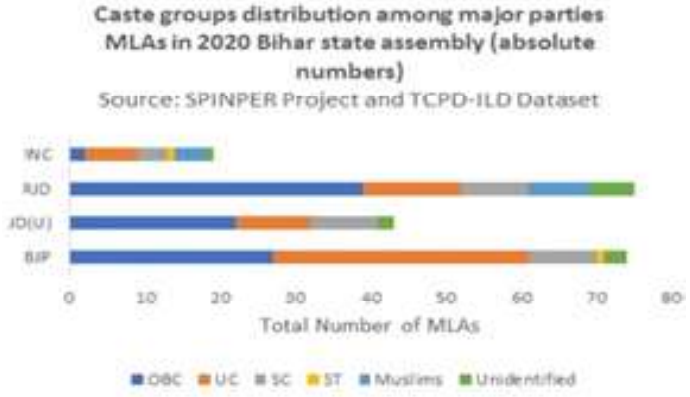

विभिन्न राजनीतिक दलों जो टिकट का बँटवारा किया गया यह प्रदर्शित करता है कि कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी ने सवर्ण जातियों को ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया। राष्ट्रीय जनता दल और जनता दल यूनाइटेड ने मुख्य रूप से अत्यंत पिछड़ा वर्ग के लोगों को ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया।

अत: भारतीय जनता पार्टी के अधिकांश विधायक सवर्ण जाति से है जबकि राष्ट्रीय जनता दल और जनता दल यूनाइटेड के अधिकांश विधायक अत्यंत पिछड़ा वर्ग से हैं।[4]

दूसरे शब्दों में, ये आँकड़े इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि विभिन्न राजनीति दलों तथा वर्गगत समूहों के बीच गहरा संबंध है लेकिन राजनीतिक दलों के अंदर चुनावों के मद्देनजर अन्य जातिगत समूहों में भी व्यापक तौर पर टिकट का बँटवारा किया गया। अत: ऐसी स्थिति में विभिन्न राजनीतिक दल तथा अन्य जातिगत समूहों के बीच सम्बन्धों के बीच का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

भारतीय जनता पार्टी ने अपने कुल उम्मीदवारों में 24.5 प्रतिशत टिकट राजपूत उम्मीदवारों को दिया 11.8 प्रतिशत टिकट ब्राह्मणों को दिया तथा 7.3 प्रतिशत टिकट भूमिहारों को दिया। बनिया जिसे बिहार में अत्यंत पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत माना जाता है उसे भी पर्याप्त रूप से टिकट दिया गया। जो बचे हुए टिकट थे वह अत्यंत पिछड़ा वर्ग को दिया गया जिसमें 13.6 प्रतिशत टिकट यादवों को दिया गया तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों को 22 प्रतिशत टिकट दिया गया।

जनता दल यूनाइटेड ने अपने कुल उम्मीदवारों में 14 प्रतिशत टिकट कुर्मी को दिया 13 प्रतिशत टिकट यादवों को दिया। बाकी 25 प्रतिशत टिकट कुर्मी तथा यादवों को छोड़कर अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों को दिया। राष्ट्रीय जनता दल ने अपने आधार को सबसे ज्यादा टिकट दिया। 31 प्रतिशत टिकट यादव उम्मीदवारों को दिया। बाकी 69 प्रतिशत टिकट स्थानीय जातिगत सम्बन्धों तथा स्थानीय व्यवहार को ध्यान में रखते हुए बँटवारा किया गया। 12.5 प्रतिशत टिकट मुस्लिम उम्मीदवारों को दिया गया।

काँग्रसे ने अपने 70 टिकट में 40 प्रतिशत ऊँची जाति के लोगों को दिया 17 प्रतिशत टिकट मुस्लिम कोदिया। बचे हुए टिकट को अत्यंत पिछड़ा वर्ग के लोगों को दिया गया जिसमें यादवों की संख्या सबसे ज्यादा थी।

महिलाओं की स्थिति

2020 के चुनाव की सबसे निराशाजनक पहलू यह था कि महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम हो गया इसके बावजूद कि महिलाओं ने 2015 के चुनाव की तुलना में 2020 के चुनाव में ज्यादा सीटों पर चुनाव लड़ा था।[5] 2020 के चुनाव में कुल 371 महिलाओं ने चुनाव लड़ा था। जबकि 2015 के चुनाव में कुल 273 महिलाओं ने चुनाव लड़ा था।

बिहार के दो महत्वपूर्ण गठबंधन एनडीए तथा महागठबंध ने 62 महिलाओं को उम्मीदवारी दी थी। एनडीए ने 37 महिलाओं को तो महागठबंधन ने 25 महिलाओं को टिकट दिया था। दो महत्वपूर्ण राजनीतिक दल जनता दल यूनाइटेट तथा लोकजनशक्ति पार्टी ने महिला उम्मीदवारों के लिए ज्यादा प्रयास किया। इन दोनों राजनीतिक दलों ने 22-22 महिलाओं को टिकट दिया। होना तो यह चाहिए था कि महिलाओं की संख्या विधानसभा में बढ़ती लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जहाँ 2015 में 28 महिलायें चुनकर आयी थी वह 2020 में घटकर 26 रह गया।

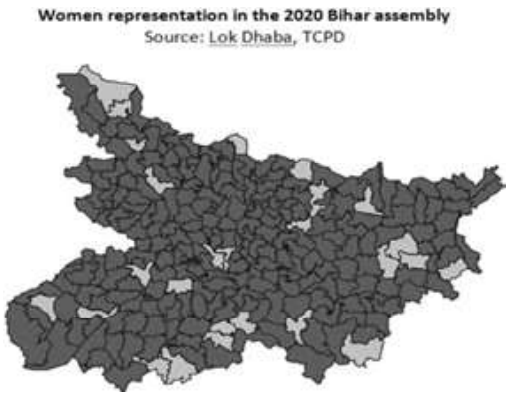

जनतादल यूनाइटेड और लोकजनशक्ति पार्टी का प्रयास स्पष्ट रूपसे नजर आता है जब 2015 के नामांकन आँकड़ों के साथ तुलना करते हैं। 2015 के चुनाव के समय सिर्फ 8 प्रतिशत उम्मीदवार महिलयें थे। 2020 में जनतादल यूनाइटेड ने 19 प्रतिशत टिकट महिलाओं को दिया जबकि लोकजनशक्ति पार्टी ने 16 प्रतिशत टिकट महिलाओं को दिया।

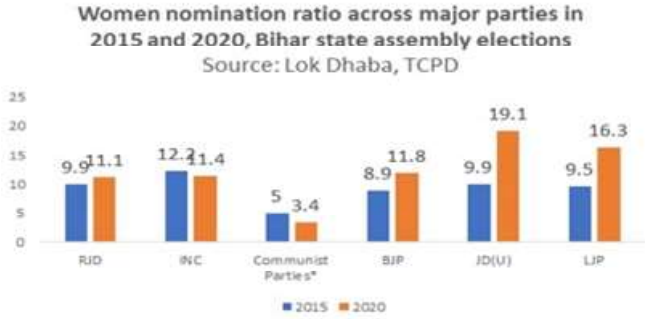

यह चार्ट इस बात को भी प्रदर्शित करता है कि महिला उम्मीदवार तीनों कम्यूनिस्ट पार्टी में कितना कम थी। उन्होंने इस बार सिर्फ 1 उम्मीदवार को मनोनीत किया। बिहार में विभिन्न बामपंथी पार्टियों ने 1962 से 2419 उम्मीदवारों को खड़ा किया है जिसमें सिर्फ 80 महिलायें थीं इनमें से सिर्फ 5 महिलायें सीट जीत सकी। 1980 और 1990 के दशक में सुनैना देवी, शकुंतला सिन्हा, मंजू प्रकाश (दो बार) और माधवी सरकार चुनकर आयी। यह वामपंथी दलों की परम्परा की ओर संकेत करता है कि महिलाओं को राज्य स्तरीय और राष्ट्रीय चुनाव मे राजनीतिक प्रतिनिधित्व से बाहर रखा जाये।

अगर इन महिलाओं के आँकड़ों को अन्य दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट होता कि ये महिला उम्मीदवार पुरुष उम्मीदवारों से अलग नहीं हैं। उनकी जाति, उम्र तथा शैक्षणिक पृष्ठभूमि पुरुष उम्मीदवारों के समान है। उनका राजनीतिक अनुभव पुरुष उम्मीदवारों के समान थी जैसे 54 प्रतिशत महिलायें पहली बार चुनाव लड़ रही थी जबकि पुरुषों में 46 प्रतिशत पहली बार चुनाव लड़ रहे थे। ज्यादातर महिलायें राजनीतिक परिवारों से संबंध रखती थीं।[6]

मुस्लिम का प्रतिनिधित्व

ए आई एम आई एम ने मुस्लिमों के प्रतिनिधित्व के उस स्थायी रूप को बनाये रखा जो पहले से चला आ रहा था। 2020 के विधान सभा चुनाव में 19 मुस्लिम उम्मीदवार चुनकर आये जबकि 2015 के चुनाव में 24 उम्मीदवार चुन कर आये थे।[7] 8 उम्मीदवार राष्ट्रीय जनता दल से चुनकर आये थें 5 उम्मीदवार ए आई एम आई एम से चुनकर आये, 4 कॉंग्रेस से और 1 बहुजन समाज पार्टी और 1 कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी लेनिन समूह) से आये। 2020 के विधान सभा चुनावों में मुस्लिम उम्मीदवारों की संख्या 10 प्रतिशत से कम थी तथा जो मुस्लिम चुनकर आये वे लगभग 8 प्रतिशत थे। बिहार की जनसंख्या में मुस्लिमों का प्रतिशत जनसंख्या 16.5 प्रतिशत है।

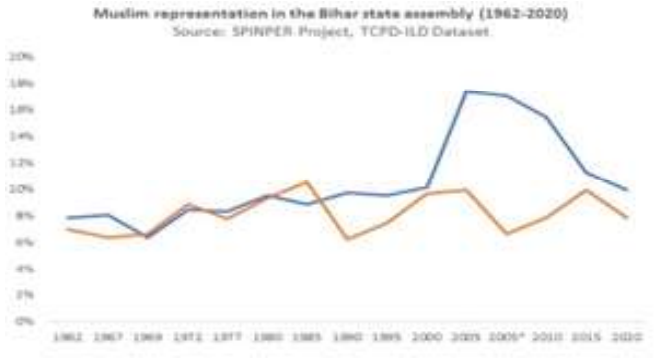

प्रमुख राजनीतिक दलों में मुस्लिम उम्मीदवारों का अंशधारिता 1990 के दशक से बढ़ती गयी। राष्ट्रीय जनता दल की चुनावी रणनीति यादव मुस्लिम गठजोड़ पर आधारित थी जिसके कारण मुस्लिम उम्मीदवारों की संख्या बढ़ी। वामपंथी दलों ने भी इसमें अपनी भूमिका निभायी। दलित राजनीतिक दलों के उभार के मुस्लिम उम्मीदवारों के नये राह को खोला। लेकिन 2005 के बाद मुस्लिम उम्मीदवारी में तेजी से गिरावट नजर आती है। महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों में उनकी उम्मीदवारी 17 प्रतिशत से घटकर 11 प्रतिशत आ जाती है। इसमें राष्ट्रीय जनता दल और कॉंग्रेस भी शामिल है। 2010 में जहाँ कांग्रेस ने 19 प्रतिशत टिकट मुस्लिम उम्मीदवारों को दिया वहीं 2015 और 2020 में यह घटकर 6 प्रतिशत के बराबर आ जाती है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम प्रतिनिधित्व 8 से 9 प्रतिशत के बीच स्थिर रह गया। इसकी भरपाई लोकजनशक्ति पार्टी और ए आई एम आई एम से हुई।

आर्थिक पृष्ठभूमि

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म के अनुसार 2020 के चुनाव में 33 प्रतिशत उम्मीदवार ऐसे थे जिनके पास 1 करोड़ से जयादा की संपत्ति थी जबकि 2015 में चुनाव में यह आंकड़ा 25 प्रतिशत था।[8] प्रमुख राजनीति दलों में करोड़पति उम्मीदवारों तथा विधायकों का अनुपात क्रमशः 86 प्रतिशत तथा 78 प्रतिशत बढ़ा। प्रमुख राजनीतिक दलों के निर्वाचित विधायकों का औसत धन से उम्मीदवारों के औसत धन से ज्यादा था। हिन्दुस्तानी आवाम मोर्चा तथा वामपंथी दल इसके अपवाद थे जिनके सफल उम्मीदवार करोड़पतियों की श्रेणी में शामिल नहीं थे। लोकजनशक्ति पार्टी को इस श्रेणी से हटा दिया गया है क्योंकि इसके एकमात्र विधायक राजकुमार सिंह जो मटिहानी से चुनकर आये उनका औसत धन 12.2 करोड़ था जबकि लोकजनशक्ति पार्टी के उम्मीदवारों का औसत धन 1.9 करोड़ रुपया था। यही बात विकासशील इंसान पार्टी के संदर्भ में कही जा सकती है जिसके विधायक पार्टी के उम्मीदवारों से दस गुणा ज्यादा अमीर थे जैसे उम्मीदवारों का औसत धन 64 लाख था जबकि विजयी उम्मीदवारों का औसत धन 6.3 करोड़ था।

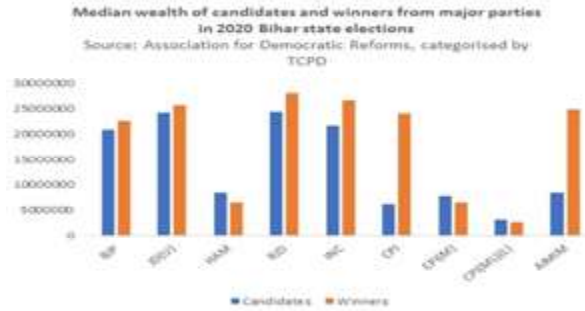

अपराधगत ऑकड़ा

उम्मीदवारों के द्वारा जो शपथ पत्र प्रस्तुत किया गया है वह यह बताता है कि आरोपी उम्मीदवारों की संख्या बढ़ी है। 2015 में प्रमुख राजनीतिक दलों में 54.5 प्रतिशत उम्मीदवार के खिलाफ अपराधिक मामले चल रहे थे जबकि विजयी उम्मीदवारों में से 58.2 प्रतिशत के खिलाफ अपराधिक मामले चल रहे थे। 2020 में यह आंकड़ा बढ़ गया। उम्मीदवारों में से 61.7 प्रतिशत के खिलाफ अपराधिक मामले चल रहे थे जबकि विजयी उम्मीदवारों में से 66.8 प्रतिशत पर अपराधिक मामले चह रहे थे।[9]

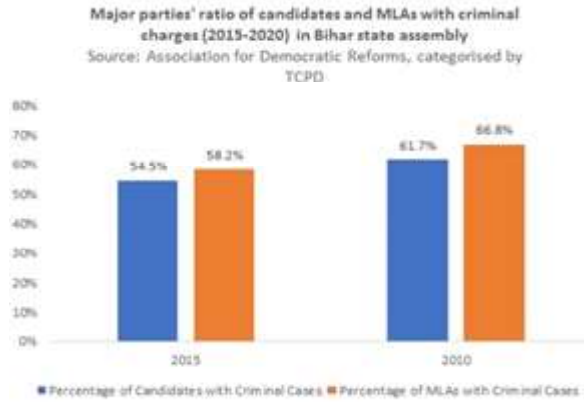

2015 और 2020 की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि उम्मीदवारों और विधायकों में से अपराध संबंधी मामलों की संख्या बढ़ी है। अनंत कुमार सिंह जो बिहार के सबसे धनी विधायक हैं उनपर सबसे ज्यादा अपराधिक मामले भी चल रहे हैं। उनपर 38 मामले चह रहे हैं जिनमें 11 मामले हत्या से संबंधित है और 4 मामले अपहरण के चल रहे हैं।[10]

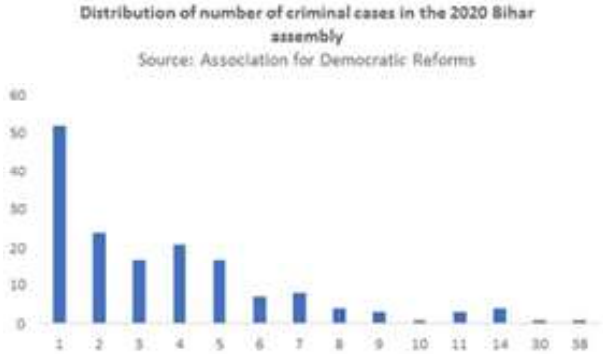

अगर विभिन्न राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों और विधायकों के अपराध संबंधी मामलों का तुलनात्मक अध्ययन करे तो यह

स्पष्ट होता है कि सभी प्रमुख राजनीतिक दलों में इस तरह के उम्मीदवार है। जनता दल यूनाइटेड के उम्मीदवारों के खिलाफ सबसे कम अपराध संबंधी मामले थे लगभग 48.7 प्रतिशत। महागठबंधन के उम्मीदवारों की तुलना अपराधिक मामले वाले विधायक ज्यादा चुन कर आये जबकि एन डी ए में उनका अनुपात कुछ कम था।

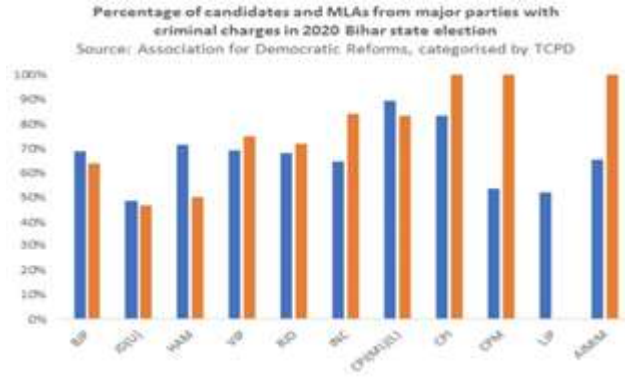

यह आंकड़े इस बात को साबित करते हैं कि सभी राजनीतिक दलों उस तरह के व्यक्तियों को अपना उम्मीदवार बनाया। इसका कारण यह था कि अन्य उम्मीदवारों की तुलना में इस बाद के उम्मीदवारों की जीतने की संभावना ज्यादा थी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 2020 का विधानसभा 2015 की विधानसभा की तरह ही दिखता है। ज्यादा विधायक पुरुष है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि समाज का वैसा तबका जो वंचितो, उपेक्षितो की श्रेणी में आता है वह अभी भी विधान सभा के प्रतिनिधित्व से बाहर है।

1. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
2. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
3. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
4. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
5. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
6. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
7. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
8. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020
9. ए० डी० आर० रिपोर्ट 2020

भारत में स्त्रीओं उत्थान व सशक्तीकरण के नीतिगत प्रावधान

डौली प्रवीण

शोध-छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध-सार

महिला सशक्तिकरण का अभिगम जिस रूप में आज हमारे समक्ष हैं उसके परिणामों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता हे कि हम सशक्तिकरण को लेकर महिलाओं के आर्थिक विकास, आजादी और उनका पुरूषों की बराबरी के अधिकार तक सिमटकर रह गये हैं और महिला सशक्तिकरण के संदर्भ भूल चुके हैं कि महिलाओं की क्या भूमिका होनी चाहिए ताकि वास्तविक समस्यॉ से निजात पायी जा सके, जड़ों में पैदा हो चुकी संडाद को खुरच कर फिर से इस व्यवस्था को नूतन परिधानों से मुक्त किया जा सके। औपचारिक व अनौपचारिक क्षितिज पर दलित महिला सशक्तिकरण के कई सारे प्रयास हुए, बुराइयों को खत्म करने व समानता लाने के लिए संवैधानिक व कायदाकीय प्रावधान भी किए गए किन्तु इस सबके बावजूद हम इस तथ्य को नहीं नकार सके कि महिला और पुरूष जीवन की गाड़ी के दो पहिये पूरकता के स्वरूप में साथ चलने के स्थान पर विपरित दिशा में गति करने लगे। इस खिंचाव ने जो दूरियाँ व खाई पैदा की, जो क्षति की उसकी भरपाई कर पाना संभव नहीं है।

मूल शब्दः- महिला, सशक्तिकरण, अधिकार, विकास, मानवाधिकार

प्रस्तावना

नारी की सुदृढ़ एवं सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत, समृद्ध व मजबूत समाज का द्योतक हैं। प्राचीन धर्मग्रन्थों में ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तंत्र देवता" सूत्र वाक्य द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भारत में जहाँ एक ओर लक्ष्मी, सीता, दुर्गा एवं पार्वती के रूप में नारी को देवतुल्य बताया जाता है, वही उसे अबला बताकर परम्परा एवं रूढ़ीयों की बेड़ी में भी जकड़ा जाता रहा है। यद्यपि यह सच है कि स्वतंत्रता के बाद अपनये गये विभिन्न कार्यक्रमों और नारी अधिकारों के संरक्षण के लिए किए गये प्रयासों के कारण महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ है और इसी के कारण आज देश की आर्थिक गतिविधियों में नारी की सहभागिता दर में भी वृद्धि दिखायी दे रही है। धातव्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में महिला उत्थान के लिए भारतीय नीति-निर्माताओं ने कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की। यही नहीं महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा देने के पंचायती राजव्यवस्था में आरक्षण दिया तथा विधायिका और संसद में देने का प्रस्ताव विचाराधीन है।[1] यही नहीं अनेक राज्यों में सिविल सेवा में भी महिलाओं को आरक्षण प्रदान करके महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा दिया है, परंतु इसके बावजूद आज भी महिलायें एक उपयोग की वस्तु ही समझी जाती हैं। इसके लिए केवल कार्यक्रम या योजना बनाने से महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा, बल्कि इन योजनाओं के क्रियान्वयन पक्ष पर ध्यान देने के साथ-साथ सामाजिक संचेतना तथा राजरूकता लानी होगी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-2000[2]

वर्ष 2000 में घोषित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का लक्ष्य यद्यपि जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना है, तथापि नीति में घोषित कई बातें महिलाओं के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। इस नीति में घोषित कुछ मुख्य बातें इस प्रकार हैं:-

शिशु स्वास्थ्य सेवाओं में ध्यान केन्द्रीत करना:[3]

- 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था निशुल्क करना।
- प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में बीच में ही स्कूल छोड़ने की दर को कम करना।
- शिशु मृत्यु दर को प्रति एक लाख पर 100 से कम पर लाना।
- बच्चों को सभी बीमारियों से बचाने के लिए टीकाकरण कार्यक्रम को वृहद स्तर पर चलाकर लक्ष्य को प्राप्त करना।
- लड़कियों के लिए विवाह की आयु को बढ़ाना।
- 20 वर्ष से अधिक की आयु में विवाह हेतु प्रोत्साहित करना।
- जन्म, मृत्यु, विवाह एवं गर्भधारण करने वाली महिलाओं का पंजीकरण 100 प्रतिशत तक करना।
- छोटे परिवार की व्यवस्था को प्रोत्साहित करना।
- प्रिवार कल्याण से सम्बंधित सभी उपायों को सरकारी स्तर के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर लाना।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति-2001:

महिला सशक्तीकरण की दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण कदम 2001 में महिला सशक्तीकरण नीति की घोषणा

के साथ उठाया गया।[4] जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान तथा सशक्तीकरण के लिए इस नीति में कई दिशा-निर्देश और मानक तय किए गये। इसी नीति के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं-

- देश में महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा हेतु आधारभूत ढाँचा तैयार करना तथा सभी प्रकार के सामाजिक गतिविधियों में उन्हें शामिल करना।
- महिलाओं, के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए उचित माहौल बनाना तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और न्यायिक सभी क्षेत्रों में समान रूप से उन्हें भागीदार बनाना।
- महिलाओं के लिए ऐसा वातावरण बनाना, जिससे उन्हें यह अनुभव हो सके कि वे देश कि वे देश की आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भागीदार हैं।
- महिलाओं के प्रति किसी तरह के भेदभाव को दूर करने के लिए समुचित नियमों, निर्देशों एवं कानूनों का प्रणयन करना।
- महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा को रोकने के लिए समुचित कानून बनाना।
- महिलाओं के सामाजिक अधिकार को स्थापित करने हेतु प्रयास करना।
- आर्थिक रूप से महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना तथा आर्थिक गतिविधियों में उनकी सहभागिता को बढ़ावा देना।
- राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति-2001 को देश में पूरी तरह लागू करने हेतु 10 वर्ष का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई उल्लेखनीय प्रयास किये गये हैं।

राष्ट्रीय महिला बाल विकासः

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने महिला नीति-2016 का मसौदा जारी कर दिया गया है, जिसे समाज के लोगों विशेषतः महिलाओं के विचारों से अवगत हो जा सकें।[5] उल्लेखनीय है कि 15 वर्षों के बाद इस नीति की समीक्षा की जा रही है और सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि इस नीति से आगामी 15-20 वर्षों के दौरान महिला सम्बंधी मुद्दों पर सरकार की कार्यवाही को दिषा-निर्देष प्राप्त होगा।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति-2001 के बाद अब तक स्थिति में बहुत बदलाव आ गया है, विशेषकर महिलाओं की अपने प्रति जागरूकता और जीवन से उनकी आकांक्षायें उसमें सामिल हो गयी हैं। इसे ध्यान में रखकर नीति का नया मसौदा तैयार किया गया है।

नीति की प्राथमिकतायें- इस नीति की प्रमुख प्राथमिकतायें निम्नवत् है-

- खाद्य सुरक्षा एवं पोषण सहित स्वास्थ्यः इसके तहत महिलाओं के प्रजन्न अधिकारों पर फोकस किया गया है और परिवार नियोजन योजनाओं के दायरे में पुरूषों को भी रखा गया है। इसके तहत महिलाओं के स्वास्थ्य समस्याओं को हल किया जायेगा और उनके कल्याण को ध्यान में रखा जायेगा। इसके तहत किशोरावस्था के दौरान पोषण, स्वच्छता, स्वास्थ्य बीमा योजना इत्यादि भी सामिल की गयी हैं।
- शिक्षाः इसके अंतर्गत किशोरावस्था वाली लड़कियों की प्राथमिक पूर्व शिक्षा पर ध्यान दिया जायेगा और प्रयास किया जायेगा कि वे स्कूलों मे पंजीकरण करा सकें और उनकी शिक्षा की निरन्तरता बनी रहे। इसके अतंर्गत लड़कियों के लिए स्कूल तक पहुँचने के लिए सुगम्य बनाया जायेगा और असमानताओं को दूर किया जायेगा।
- आर्थिक उपायः इसके तहत महिलाओं के प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के लिए व्यवस्था की जायेगी। इसके तहत व्यापार समझौतों और भूस्वामित्व के डेटाबेस को महिलाओं के अनुकूल बनाया, श्रम कानूनों और नीतियों की समीक्षा करना और मातृत्व एवं बच्चों की देखभाल सम्बंधी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उचित लाभ प्रदान करना, समान रोजगार अवसर प्रदान करना तथा महिलाओं की तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करना शामिल है।[6]
- शासन एवं निर्णय करने में महिलाओं की भूमिकाः इसके तहत राजनीति, प्रशासन, लोकसेवा एवं कार्पोरेट में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना शामिल है।
- महिलाओं के खिलाफ हिंसाः नियमों एवं कानून के माध्यम से महिलाओं के खिलाफ हर प्रकार की हिंसा को रोकना, इसके लिए प्रभावशाली नियम बनाना और उनकी समीक्षा करना, बाल लिंग अनुपात को सुधारना, दिशा निर्देशों इत्यादि को करई से लागू करना, मानव तस्करी को रोकना इत्यादि शामिल है।
- पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तनः जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण के नुकसान से होने वाले प्राकृतिक आपदा के समय होने वाले पलायन के दौरान लैंगिक समस्याओं को दूर करने को इसमें शामिल किया गया है। ग्रामीण घरों में महिलाओं के लिए पर्यावरण अनुकूल, नवीरकरणीय, गैर पारम्परिक ऊर्जा, हरित ऊर्जा संसाधनों को प्रोत्साहन देना शामिल है। इनके अलावा इस नीति के तहत महिलाओं के लिए सुरक्षित साइबर स्पेस बनाना, संविधान के प्राविधानों के तहत व्यक्तिगत एवं परम्परिक नियमों की समीक्षा भी करने का प्राविधान है। वैवाहिक दुष्कर्म को अपराध की श्रेणी में रखने की भी समीक्षा की जायेगी, ताकि महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा हो सके।

- महिलाओं की सुरक्षा: वन स्टाप केन्द्रों,, महिला हेल्पलाइन, महिला पुलिस स्वयंसेवक, पुलिस बलों में अधिकारों के लिए आरक्षण, मोबाईल फोन पैनिक बटन के जरिये महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करना, यातायात और आम स्थानों पर निगरानी प्रणाली स्थापित करना।[7]
- महिलाओं में उद्यमशीलता के सम्बंध के लिए ईको प्रणाली बनाना: महिला ई-हाट, समर्पित विषय वस्तु विषयवसतु आधारित प्रदर्शनियों के जरिये महिलाओं में उद्यमशीलता को बढ़ावा देना, महिला उद्यमशीलता के जरिये महिलाओं को सलाह देना तथा आसान और सस्ता ऋण उपलब्ध कराना।
- सभी हितधारकों का प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण: इसमें जेण्डर कैम्पियन पहल के जरिये युवाओं, कामगारों, महिला सरपंचों और महिला सम्बंधी नीति से जुड़े सभी अधिकारियों को शामिल किया गया है।
- कार्यस्थलों में महिलाओं को सुविधा: कार्यस्थालों को महिलाओं के अनुकूल बनाने, कार्य विधि को लचीला बनाने, मातृत्व अवकाश को बढ़ाने, कार्य स्थलों में बच्चों के लिए क्रेंच का प्रावधान करने के जरिये महिलाओं को सुविधायें प्रदान की जायेगीं।

शोध विधि

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध आलेख सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया। द्वितीयक स्त्रोतों के तहत आवश्यक सामग्री विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के आलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधरित पुस्तकों के आलावा विभिन्न आयोगो के प्रकाशनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं एवं राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों इत्यादि के लेखन सामग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

निष्कर्ष

वर्तमान में भारत सरकार महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए प्रतिबद्ध नजर आ रही है। सरकार शुरू किये गये स्टैण्डअप कार्यक्रम भी महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देने के तथा महिला उद्यमी तैयार करने पर बल दिया गया है। यही नहीं कारपोरेट सेक्टर में बोर्ड ऑफ डॉयरेक्टरर्स महिला डॉयरेक्टर को सम्मिलित करना अनिवार्य कर दिया गया है। हालांकि नीति क्षेत्र की कम्पनियों में इसका अनुपालन किया जा रहा है, परंतु सार्वजनिक क्षेत्र की अधिकांशत: कम्पनियों ने अभी महिला डॉयरेक्टरों की नियुक्ति नहीं की है। इससे स्पष्ट होता है कि सरकार नीतिगत प्रावधान को सृजित करती है, परंतु उसको लागू करने के लिए उसके पास दृढ़ इच्छा शक्ति की कमी है। अत: समय की माँग है कि संतुलन को बनाये रखने के लिए महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व दिया जाय तथा उनके साथ होने वाले लिंगीय भेदभाव को समाप्त किया जाय। उल्लेखनीय है कि हाल ही में आईएमएफ की एक रिपोर्ट में यह बताया गया है कि भारत में कार्य सथलों पर लिंगीय अंतराल उत्पन्न हो रहा है, जो कि चिन्तनीय है।

संदर्भ-सूची:

1. सुधीर वर्मा, पॉलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, आलेख परिवर्तन, जयपुर 1992 पृ0-09
2. डी0 पॉल चौधरी, वूमन, वेलफेयर एण्ड डेवलपमेण्ट- ए सोर्स बुक, इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पृ0-55.
3. नीरा देसाई, भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982, पृ0-1-6.
4. आशा रानी व्होरा, भारतीय नारी दशा व दिश नेशनल, नई दिल्ली, 1983.
5. सरस्वती मिस्त्री, भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, शारदा पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, 1996, पृष्ट-56.
6. प्रज्ञा आप्टे, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिकेशन हाऊस, 1996, पृष्ट-27
7. प्रो0 कमला प्रसाद स्व0 राजेन्द्र शर्मा द्धस) स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ट-43.
8. सरस्वती मिस्त्री, भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, शारदा पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, 1996.
9. प्रज्ञा आप्टे, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिकेशन हाऊस, 1996.
10. प्रो0 कमला प्रसाद स्व0 राजेन्द्र शर्मा द्धस) स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009.
11. बी0 एन0 लूणिया, भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1966

जैन कला शैली में नारी-अभिव्यक्ति

मिथुन कुमार

शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय प्रा0 भा0 इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

कला का विकास और उसकी अनेक शैलियाँ, मानव सभ्यता के विकास के साथ ही जुड़ी हैं। यह विविधता मानवीय अनुभवों, भावनाओं, और सोच के व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का साधन है। जैन चित्रकला भी इस विविधता का अभिन्न हिस्सा है और भारतीय कला के विविध आयामों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखा है और मानव सभ्यता के विकास में अपना योगदान दिया है। सरगुजा राज्य की जोगीमारा गुफा में मिलने वाले जैन चित्र प्राचीनतम जैन चित्रों में से एक हैं। ये चित्र साधारणत: मूल्यवान धातु रंगों में बनाए गए होते हैं और जैन धर्म के महत्वपूर्ण तत्वों को दर्शाते हैं। जैन चित्रकला का विकास सित्तनवासल, एलोरा जैसी गुफाओं में दिखाई गई है, जहां चित्रों के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतों और इतिहास का प्रसार हुआ। ये चित्र महान कलाकारों के द्वारा बनाए गए हैं और उनकी कला का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। जैन चित्रों की परंपरा उन्नति के साथ विकसित हुई और ताड़पत्रों, पोथियों, कागजों, और वस्त्रों पर भी चित्रित किया गया। यह चित्रकला का क्रमिक विकास 11वीं से 15वीं सदी के बीच देखा गया है। ये चित्रों में जैन धर्म के तत्व, बौद्धिकता, और संगठन को दिखाया गया है।

जैन धर्म का अत्यंत प्राचीन इतिहास है। यह धर्म अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को महत्वपूर्ण मानता है। जैन धर्म के अनुयायी जैन तीर्थंकरों के उपदेशों का पालन करते हैं और सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जैन स्थापत्य कला, मूर्तिकला, और चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण भारतीय सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण हिस्से हैं। ये कलाएं जैन मंदिरों, जिनालयों, और अन्य सांस्कृतिक स्थलों में देखी जा सकती हैं। इनमें सुंदर और अद्वितीय संरचनाएं, मूर्तियाँ, और चित्रण होते हैं जो अपने साहसिक और आकर्षक डिजाइन के लिए प्रसिद्ध हैं।[1] खजुराहो, कुण्डलपूर, पावागिरि, श्रवणबेलगोल, कारकल, मूडविद्रि, सम्मेद शिखर, बादामी, और सित्तनवासल जैन स्थानों के प्रमुख केन्द्र हैं जहां इस प्रकार की ललित कलाओं का अद्वितीय संग्रह देख सकते हैं। ये स्थान जैन साहित्य, धर्म, और कला के महत्वपूर्ण केंद्र हैं जो अन्य धर्मों और संस्कृतियों के लिए भी आकर्षक होते हैं। जैन कला का निर्माण करने से सिर्फ आध्यात्मिक और नैतिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सौन्दर्य और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा भी मिलता है। इन कलाओं का अद्वितीय डिजाइन और क्राफ्ट्समैंशिप भारतीय संस्कृति की धरोहर को उज्जवल बनाते हैं और उनके महत्व को बढ़ाते हैं।

कला और प्रतीकों का महत्व न केवल भावों की अभिव्यंजना में होता है, बल्कि यह समाज में विभिन्न मूल्यों, धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों को भी प्रकट करने का माध्यम भी है। जैन कला में उपयोग किए जाने वाले प्रतीक और चित्रण विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक सिद्धांतों को साझा करते हैं, जिससे समाज का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास होता है।[2] जैन कला में उपयोग किए जाने वाले प्रतीक, चित्रण, और कलाकृतियाँ समाज में शांति, शुभ कल्याण, और धार्मिकता की भावना को स्थापित करती हैं। इसके अलावा, इन्हें अद्भुत साहित्यिक और ऐतिहासिक कामों के साथ जोड़कर समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का भाग बनाते हैं।

भारतीय संस्कृति में नारी को देवी की प्रतिकृति माना गया है, जिसका आदर-सम्मान किया जाता है। नारी को देवी के रूप में पूजा जाता है और उसके महत्त्व को समझाने के लिए उसे धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीकों में भी उपस्थित किया गया है। इसके साथ ही, भारतीय पुराणों और ग्रंथों में महिलाओं के उत्कृष्ट चरित्रों का वर्णन भी मिलता है, जो समाज में नारी की महत्ता को स्थापित करता है। भारतीय चित्रकला में भी नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है, जिससे समाज में उसके अलग-अलग भूमिकाओं की महत्ता को समझाने में मदद मिलती है। नारी के विभिन्न रूपों जैसे कन्या, गृहणी, माता, गणिका, दासी और देवी के प्रतिरूप समाज में उसकी भूमिका को समझने का माध्यम बनते हैं।[3] जैन संस्कृति में भी नारी की महत्ता और उसका योगदान महत्वपूर्ण है। जैन धर्मग्रंथों में नारी के उत्कृष्ट चरित्रों का वर्णन होता है, जो समाज को नारी की महत्ता और उसके सामाजिक स्थान की प्रतिष्ठा को समझाने में मदद करता है। ये कलाकृतियाँ समाज में सामाजिक विचारों और मूल्यों को प्रतिष्ठित करती हैं, और महिलाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान को महत्वपूर्ण बनाती हैं। मध्यकालीन जैन शैली में नारी की अभिव्यंजना को विशेष महत्व दिया गया है। यहां कुछ प्रमुख चित्रों का वर्णन है:

1. "तीर्थंकरों की जननी:"

जैन परंपरा में महिलाओं को मातृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका दी जाती है। उनके जन्म के चित्रों में वे माँ के रूप में अभिव्यंजन किए जाते हैं।

2. "सोलह विद्यादेवी:"

जैन धर्म में सोलह विद्यादेवी के पूजन का महत्व है। इनके चित्रों में वे माता, बहन, या पत्नी के रूप में उपस्थित होती हैं।

3. "दासी:''

जैन शैली में दासी का भी चित्रण किया जाता है, जो कि महिलाओं के समर्थन में व्यापक भूमिका निभाती हैं।

4. "पत्नी:"

जैन लोक कथाओं और पुराणों में, तीर्थकरों के साथ पत्नियों का भी चित्रण किया गया है।

5. "गणिका और दासी:"

समाज में गणिका और दासी की भूमिका का भी चित्रण किया गया है, जो कि उनके साथ समाज के अन्य कार्यों में संलग्न होती हैं।

6. "उपासिकाएं और श्राविकाएं:"

जैन संस्कृति में उपासिकाओं और श्राविकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है, और उनका चित्रण भी किया गया है।

इन सभी चित्रों में, महिलाओं की शक्ति, सम्मान, और महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर किया गया है। यद्यपि जैन चित्रों में तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो नारी चित्रण कम मिलते है। परन्तु जितने भी उदाहरण हमें पोथियों में मिले है, उनमें नारी के आंतरिक सौन्दर्य के साथ ही बाह्य सौन्दर्य पर भी विशेष महत्व दिया गया है। इसमें नारी के चित्रण की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख है, जो कि उसके आंतरिक और बाह्य सौंदर्य को दर्शाता है। जैन कजाकारों ने नृत्यांगनाओं को बहुत आकर्षक मुद्रा में चित्रित किया है जिन्हें भिन्न भिन्न मुद्राओं और लयताल युक्त नृत्य करते हुए दिखया गया है। अन्य चित्रों में दिक्ककुमारियों का अवतरण, चित्र क्रमांक३- महावीर का जन्म एवं दिक्कुमारियों का आगमन एवं मेरूस्नान: कल्पसूत्र १४५९ ई. देहलाना उपाश्रय अहमदाबाद से प्राप्त: छठी जागरण, चित्र क्रमांक ४- महावीर का जन्म एवं छठी जागरण: कल्पसूत्र साराभाई की पुस्तक -जैन पेन्टिग भाग-२ चंपकमाला का अध्ययन चित्र भी बनाए गये हैं। इस शैली में नारी का चित्रण रागरागिनो के चित्रण में भी किया गया है। प्रत्येक तीर्थकरों के जन्म से पूर्व माता के गर्भ में आने पर माता को चौदह शुभ स्वप्न के दर्शन होने के कई प्रमाण जैन ग्रथों में मिलते हैं। इन महास्वप्नों का अत्याधिक महत्व है। अत: चित्रकला में भी इनका चित्रण अधिक मिलता है। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र -श्री महावीर जी, जयपुर- के 'महापुराण' ग्रंथ में माता मरूदेवी द्वारा देखे गये सोलह स्वप्नों का अंकन है। इस चित्र में माता मरूदेवी महल में लेटी हुई है। एक दासी उनके पैर दबा रही है, एक दासी चंवर डुला रही है, चित्र के शेष भाग में १६ स्वप्नों का अंकन है। जो इस प्रकार है:- हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, दो मालाएं, चंद्रमा, सूर्य, मीन युगल, दो कुम्भ, जलाशय, समुद्र, मणि जड़ित सिहांसन, देव विमान, सर्प युगल, रत्न राशि, और निर्धूम अग्नि।[4] इन चित्रों में नारियों के अभिव्यक्ति और उनके आसन को भी उजागर करता है। विभिन्न मुद्राओं और लयताल के साथ नृत्यांगनाओं के चित्रण का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है, जो कि उनके कला को और भी आकर्षक बनाता है।

ध्वजा का उल्लेख आदिपुराण में अत्यंत महत्वपूर्ण है। आदिपुराण ग्रंथ में मरूदेवी के स्वप्नों का चित्रण भी किया गया है, और यह ध्वजा उनमें से एक है। ध्वजा का उल्लेख इस संदर्भ में उपनिषदों, पुराणों, और अन्य धार्मिक ग्रंथों में भी होता है। यह आमतौर पर देवी के स्वप्नों का एक प्रमुख अंग होता है, जिसे पूजनीय माना जाता है। यह ध्वजा उत्तम स्वर्णदण्ड पर प्रतिष्ठित थी और अत्यंत शोभायुक्त थी। ध्वजा का चित्रण मुख्यत: ध्यान की आध्यात्मिक अभ्यासों में किया जाता है,[5] जिससे श्रद्धालु भक्त उनके मार्ग पर चलते हैं और धार्मिक साधना की दिशा में प्रयास करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ध्वजा का महत्व धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से उच्च था।

दिगम्बर आम्नाय के सोलह स्वप्नों में से मीन युगल एवं सर्प युगल का अंकन श्वेताम्बर आम्नाय में नहीं किया गया है। शेष स्वप्न दोनों आम्नाय में समान वर्णित है। इसके अतिरिक्त इन स्वप्नों सिद्धार्थ से अर्थ पूछते हुए अथवा कहीं कहीं पर स्वप्नज्ञाताओं से अर्थ पूछते हुए चित्रित किया गया है।[6] श्वेताम्बर संप्रदाय में गर्भ परिवर्तन से संबंधित एक रोचक कथा प्रचलित है। जिसमें शक्र-देवेन्द्र-देवराज की आज्ञा से माता देवनन्दा के गर्भ से किन्हीं कारणों भगवान महावीर के गर्भ रूप को माता क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थापित करते है। इस कथा से संबंधित अनेक चित्र अंकित किये गये है। इन चित्रों को गर्भ परिवर्तन के नाम से ही जाना जाता है। कई बार दोनों घटनाओं का चित्रण एक ही चित्र में किया गया है, चित्र क्रमांक ५: कालकाचार्यकथा १६वीं शता. बड़ौदा सग्रहालय पी.जी. ५ एफ ९: और कुछ चित्रों में अलग अलग किया गया है। इन चित्रों में माता को शैय्या पर निद्रावस्था में और देव हरिनेगमैषी को हथेलियों के सम्पुट में गर्भरूप को लाते और ले जाते हुए चित्रित किया गया है।

अन्य नारी चित्रण में जैन कलाकारों ने देवियों का अंकन अत्यधिक किया है। इन देवी चित्रों में उज्जवल, धूम वर्ण लोक शैली की अल्हड़ता, वस्त्र सज्जा और हस्त मुद्राएं सभी में कलात्मकता तथा माधुर्य है। चित्र क्रमांक १। छानी बड़ोदा के जैन भंडार में तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चित्रित ओधनियुक्ति में सोलह विद्यादेवियों के बहुत सुन्दर चित्र है। इन चित्रों के विषय में श्री कार्ल खंडालावाला का मानना है कि विद्यादेवियों के यह चित्र स्पष्टत: शांतिनाथ भंडार, केम्बे के संग्रह में नेमिनाथ चरित में सन् १२४१ में निर्मित अंबिका की चित्रशैली में अंकित है। जैन चित्रशैली में २४ यक्षियों जैसे महामानसी, अंबिका, पद्मावती, काली यक्षी और अन्य देवी आकृतियों में सरस्वती, लक्ष्मी चित्र क्रमांक 1, महिसासुरमर्दिनी, इत्यादि।[7] दासियों, नृत्यांगनाओं, वादिकाओं, अप्सराओं एवं राग रागिनियों में नारी चित्रण किया गया है।

प्रारंभिक ताड़पत्रीय चित्रों में रेखाकंन उत्कृष्ट है, जिसमें नारी को अजन्ता के भित्तिचित्रण के समान अत्यंत गोलाईयुक्त रेखाओं के माध्यम से चित्रित किया गया। यह सुंदर वर्णन उन प्रारंभिक तारपत्रिय चित्रों की शैली को विस्तृत रूप से वर्णित करता है, जो नारी के चित्रण में काफी प्रचलित थी। इस शैली के चित्रों में नारी की चेहरे की विशेषताओं को उत्कृष्टता से दिखाने का प्रयास किया जाता था, जैसे कि उनके मुँह के अनुपात, नेत्रों की आकृति, नाक की लम्बाई, गोल ठोस गले, एवं उनके शरीर के अनुपात को विशेष महत्व दिया जाता था। इस शैली में, चेहरे के अंदर अधिकतम व्यक्तिगतता को उजागर करने का प्रयास किया जाता था। वस्त्रों और आभूषणों को भी ध्यान में रखते हुए चित्रित किया गया, और यह स्थानीय संस्कृति और प्रभाव के अनुसार किया गया। रंगों के संयोजन में भी विशेषता का ध्यान रखा गया, जिससे चित्रों में जीवंतता और स्थायित्व का अनुभव होता।[8] यह स्थायी और चित्रित शैली नारी के चित्रण में समाज में उसकी भूमिका को दर्शाने के लिए महत्वपूर्ण थी, और यह उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, और कला के परिपेक्ष्य में दर्शकों को उसकी अद्‌भुतता को अनुभव करने में मदद करती थी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जैन चित्रकला में नारी का आदर्श रूप समाज में उच्च स्थान और महत्त्व का प्रतीक है। इस चित्रकला के माध्यम से, जैन चित्रकारों ने नारी को धार्मिक और सामाजिक संरक्षा, स्त्री शक्ति, और संयम का प्रतीक के रूप में उत्ष्टता में प्रस्तुत किया है। नारी के चित्रों में उनकी शारीरिक अंगों की आकृति, रंग, और सज्जा को समर्थन करने के लिए कई तरह के आकार, रंग, और पैटर्न का प्रयोग किया गया है। वे आमतौर पर ग्रेसफुल, शांत, और आत्म-संयमित रूप में दिखाई जाती हैं, जो उनके धार्मिक आदर्श को प्रकट करता है। इन चित्रों में नारी को साधना, तपस्या, और संयम का प्रतीक माना गया है। वे आसन में बैठी हुई, ध्यान लगाई हुई, और अकेले या समुदाय के साथ ध्यानाभ्यास करती हुई दिखाई जाती हैं। उनके चेहरे पर शांति और आनंद का अभिव्यक्ति होता है, जो उनके आत्मा की शांति और स्थिरता का प्रतीक है। सम्पूर्ण रूप में, जैन चित्रकला में नारी को शक्ति, समर्थन, और संयम का प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है, जो उनकी समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका को प्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ सूची:-

1. रायकृष्णदास, भारत की चित्रकला, पृष्ठ 1-2.
2. आर. ए. अग्रवाल, कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन, पृष्ठ 68.
3. शोध प्रबंध, रोली ब्यौहार,जैन चित्र शैली में अभिव्यंजित नारी सौन्दर्य , नारी के विविध रूपों की अभिव्यंजना
4. वही.
5. महोपायाय,विनय सागर, संपादक एवं हिन्दी अनुवादक कल्पसूत्र पृष्ठ 60-71, 86.
6. वही, पृष्ठ 36-41, 55-56.
7. कार्ल खण्डालावाला, भित्ति चित्र कला एवं स्थापत्य, पृष्ठ 410.
8. वही, पृष्ठ 412.

भारतीय वास्तु कला का उद्भव एवं विकास

मुस्कान कुमारी

शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय प्रा0 भा0 इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

यदि हम वास्तु या स्थापत्य कला के उद्भव एवं विकास की बात करें तो यह उतना ही प्राचीन है, जितना की मानव सभ्यता। आदि मानव का आश्रय स्थल प्राकृतिक गुफायें थीं। अन्य देशों की तरह भारत में भी विभिन्न शिलाश्रयों एवं प्राकृतिक गुफाओं में आदि मानव द्वारा निर्मित चित्र, मूर्तियाँ तथा औजार मिले हैं। इसकी निरंतरता हमें वैदिक कालीन पर्णकुटियों का निर्माण तथा मौर्य तथा मौर्येत्तर कालीन 'रिलीफ मूर्तियों' में भी साधु-संन्यासियों के निवास हेतु निर्मित कुटियों में दिखाई पड़ता है।[1]

भारतीय कलाकृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कलाकृतियों का विकसित स्वरूप सैन्धव सभ्यता से आरंभ होती है। वहाँ की नगरीय सभ्यता, कला के प्रति लोगों में रूचि के परिप्रेक्ष्य में इसे और अच्छी तरह से समझा जा सकता है। सैन्धव स्थल से पर्याप्त मात्रा में कलाकृतियों के विविध रूपों में प्राप्त अवशेष इसका प्रमाण हैं। परंतु पुरातात्विक एवं मानव शास्त्रियों द्वारा एकत्रित साक्ष्यों से सहज यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कला का सृजन एवं उन्नयन मानव विकास के साथ-साथ आरंभ होता है। प्रागैतिहासिक अथवा पाषाणकाल में लोगों का कला के प्रति रूचि को समझा जा सकता है, क्योंकि इस काल में भी हमें कला के अवशेष मिले हैं। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में पुरातात्विक अन्वेषणों द्वारा अनेक शैल गुफाओं में बने चित्र की खोज की गयी है। भारत में प्रागैतिहासिक शैली के चित्रों का अध्ययन कार्लाइल द्वारा कैमूर की पहाड़ियों का किए गए अन्वेषणों से प्रारंभ हुआ। इस क्षेत्र में काकवर्न, एंडरसन, एबु, पंचानन मिश्रा, मनोरंजन घोष, जॉर्डन आदि का कार्य अत्यंत उल्लेखनीय है। अभी तक किए गए अन्वेषणों से भारत में निम्नलिखित क्षेत्रों में शैलाशयों की चित्रकला से संबंधित सामग्री ज्ञात हुई है[2]-

1. मध्य देष: यहाँ रायगढ़, जबलपुर, रीवा, पन्ना, छतरपुर, सागर, नरसिंहपुर, बैतूल, होशंगाबाद, पंचमढ़ी, भोपाल, रायसेन, नरसिंहगढ़, शिवपुरी, गुना, दतिया, ग्वालियर तथा मंदसौर जिले में गुहा चित्र मिले हैं।
2. उत्तरप्रदेष: यहाँ मिर्जापुर, बनारस, बांदा, आगरा तथा कुमायूँ जिले से प्राप्त हुए हैं।
3. राजस्थान: भरतपुर जिले से शैलाश्रयों के गुहाचित्र प्राप्त हुए हैं।
4. दक्षिणभारत: हैदराबाद, केरल, विल्लारायण, ऋष्यक पर्वत, पिक्लीहल, गुड्डा, मेस्की, वेंकल, कोडाइकेनाल, नेलोर आदि क्षेत्र से गुहाचित्र प्राप्त हुए हैं।

यह मानवों द्वारा चित्रित करने का आदि उदाहरण था, इसलिए प्रागैतिहासिक काल के कलाकृतियों का उद्भव काल भी माना जाता है। उल्लेखनीय है कि गुहाचित्रों का सर्वप्रथम शैलीगत विभाजन जॉर्डन द्वारा किया गया। इसी आधार पर उन्होंने चित्रों का वर्गीकरण किया और उनकी तिथियों से संबंधित सुझाव भी दिए।[3] इन कलाकृतियों में शैलीबद्ध चित्रों की स्वाभाविकता के साथ-साथ रेखांकनों एवं अंकनविधि में नई शैलियों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के चित्रों में पशु आकृतियों में रेखाओं का भराव प्रारंभ हुआ। पशुओं के अतिरिक्त मानव आकृतियों का चित्रण भी इसके साथ प्रारंभ हुआ। परंतु रचना की दृष्टि से इनमें मानव आकृतियों की तुलना में पशु आकृतियाँ अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावशाली हैं। मानवीय कलाकृतियों में बने चित्रों में उसके विभिन्न गतिविधियों जैसे आखेट, नृत्य, दौड़ आदि को दर्शाया गया है वहीं पशुओं में अधिकांश आकृतियाँ हिंसक पशुओं का है। इन गुहाचित्रों में युद्ध की दृश्यों की अधिकता है तथापि दैनिक जीवन के विभिन्न स्थितियों यथा-झोपड़ियों में निवास, नृत्य, गायन, वाद्यवादन, मधुसंचय, पशुपालन आदि का अंकन है। शैल चित्रों में विभिन्न धार्मिक एवं मांगलिक चिन्हों एवं दृश्यों को भी अंकित किया गया है। इनमें उल्लेखनीय है-यक्ष पूजा, क्रॉस, वर्षा देवता, वनदेवता, वृक्ष पूजा, स्वस्तिक, नंदिपद, सूर्य, चंद्र, तारे आदि।

प्रागैतिहासिक शिला चित्रकला का संबंध उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल से स्थापित किया जा सकता है क्योंकि इस वर्ग की चित्रकला के कार्य-विषय उच्च पुरापाषाणिक और मध्य पाषाणिक काल के मानव के आर्थिक क्रिया-कलापों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से बहुत कुछ मेल खाता है।[4] प्रागैतिहासिक चित्रकला में जंगली पशुओं को प्राय: दौड़ते, उछलते-कूदते, चरते, खड़े अथवा शिकारियों द्वारा पीछा करते, घात लगाकर शिकार करते हुए ज्यादातर दिखलाया गया है। ये पशु एकाकी, एक ही प्रजाति के छोटे अथवा बड़े झुंड में तथा कभी-कभी अनेक प्रजातियों के सम्मिलित झुंड के रूप में प्रदर्शित किए गए हैं।[5] आखेट के दृश्यों में जंगली पशुओं, विशेषकर शस्यभोजी पशुओं को भयभीत होकर कभी-कभी एक ओर को और यदा-कदा अलग-अलग दिशाओं में भागते हुए दिखलाया गया है। कुछ दृश्यों में वर्गाकार जालों में हरिणों को फंसे हुए प्रदर्शित किया गया है। शिकारियों को धनुष-बाण एवं कुछ को भाले लिए हुए दर्शाया गया है। इन दृश्यों के अतिरिक्त फल एवं शहद इकट्ठा करते हुए, चिड़ियों का शिकार करते हुए तथा

कछुआ, मछली आदि जलचरों को पकड़ते हुए और किसी धार्मिक उत्सव में भाग लेते हुए मानव समुदाय के दृश्य भी देखने को मिलते हैं। इस प्रकार इन चित्रों में आखेट एवं संचय के माध्यम से जीवन-यापन करने वाले लोगों के क्रिया-कलापों को बखूबी दर्शाया गया है।

तकनीकी आधार पर इन चित्रों को विद्वानों द्वारा कई उपवर्गों में विभाजित किया गया है। विशेषज्ञों ने इन्हें पाँच उपवर्गों में विभाजित किया है[6]-

1. अनुकरणात्मक अथवा प्राकृतिक उपवर्ग- इसमें पशुओं का चित्रण स्वाभाविक एवं यथार्थ ढंग से किया गया है तथा शिकार संबंधी दृश्यों का अभाव है। इस उपवर्ग में मानव का निरूपण अत्यल्प है।
2. अभिकल्प अथवा संकेतात्मक उपवर्ग- इस उपवर्ग में वर्ण्य-विषय की विविधता उल्लेखनीय है। एकांकी या छोटे से झुंड के रूप में पशुओं का अंकन मिलता है। आखेट के दृश्यों तथा स्त्री-पुरूषों का स्वतंत्र अंकन मिलता है।
3. प्रतीकात्मक उपवर्ग- इस उपवर्ग में चित्रों के संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। मनुष्यों का अंकन उपयुक्त कथन का अपवाद है क्योंकि उनके चित्र स्वाभाविक ढंग से बनाये गये हैं।
4. कृत्रिमता उपवर्ग- इसमें पशुओं के अंकन में कृत्रिमता का समावेश किया गया है। पशुओं का रूढ़िगत ढंग से अंकन किया गया है तथा ज्यादातर सफेद रंग से चित्रों का निर्माण किया गया है।
5. ज्यामितीय रेखाकृतियाँ- इस उपवर्ग में चित्र बनाने में ज्यामितीय रेखाकृतियों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया है एवं मधुमक्खी की छत्ते की तरह की डिजाइन का उपयोग पशु-आकृतियों की रूपरेखा को भरने के लिए किया गया है।

उल्लेखनीय है कि इन गुहाचित्रों की तिथि की समस्या अपने-आप में एक जटिल प्रश्न है। इस संबंध में विद्वानों की अलग-अलग राय है। पंचानन मिश्र तथा मनोरंजन घोष ने इसे प्रागैतिहासिक माना तथा इसकी तिथि ईसा से लगभग 50,000 वर्ष पूर्व मानी।[7] गार्डन के अनुसार ये चित्र ऐतिहासिक काल के हैं। इनकी प्राचीनतम तिथि उन्होंने 600 ई0पू0 के लगभग मानी।[8] पांडेय के अनुसार यह चित्र उत्तरपाषाण युगीन है। वाकणकर ने इसे मध्यपाषाणकालीन माना।[9] हाल में हुए आदमगढ़ तथा मीन बैठका में शैल गुहाओं में उत्खनन का जो क्रमबद्ध कार्य हुआ, उससे शैल गुहाओं में प्रयोग करने वाले मानवों की तिथि पर प्रकाश पड़ा है। इसके बावजूद तिथि की व्यापक सीमाओं में किस विशिष्ट काल से कौन विशिष्ट चित्र संबंधित किए गए इस विषय में और अधिक जानकारी की जरूरत है।[10]

यदि हम ताम्रपाषाणिक शिला चित्रकला का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि इस काल की चित्रकला की प्रमुख विशेषता है-पालतू पशुओं के अंकन में प्रधानता। इस काल के चित्रों में कदमान बैलों (Humped Oxen) के सींगों में फीते अथवा फुंदने (Tassels) बंधे हुए दिखलाये गये हैं। कुछ दृश्यों में लोगों को बैलों पर सवारी करते हुए भी दिखलाया गया है। इस प्रकार मनुष्यों एवं पशुओं के बीच बढ़ते नजदीकी को इंगित करता है। कलात्मकता की दृष्टि से इस काल के चित्रकला में सक्रमणता दिखाई देता है क्योंकि इसमें पूर्ववर्ती काल के कतिपय विशेषताओं के साथ-साथ कुछ नवीन विशेषताओं से युक्त इस काल की कलाशैली है।

चित्रकला का अगला चरण अर्थात् ऐतिहासिक शिला चित्रकला विषय-वस्तु को लेकर अपने पूर्ववर्ती कला से भिन्न हैं।[11] इस काल के चित्रकार ने अपने आस-पास के प्राकृतिक परिवेश के स्थान पर नवीन वर्ण्य-विषयों को शिला चित्रकला के लिए चुना। इस काल के चित्रकला में झूले डाले हुए हाथियों तथा जींस में कसे हुए घोड़ों को अंकित किया गया। राजकीय यात्रा एवं शोभा यात्रा का चित्रांकन मिलता है। सैनिकों को कवच पहनते हुए तथा नवीन अस्त्र-शस्त्र तथा ढाल-तलवार धातु निर्मित हैं। घुड़सवार तथा हाथियों पर आरूढ़ श्रीमन्तों के चित्र इस वर्ग में मुख्यत: बने हुए मिलते हैं। हाथ एवं अंगुलियों की छाप, पेड़-पौधे, फूल-पत्ती और पौराणिक देवी-देवताओं का भी अंकन मिलता है। भीम बेटका के कुछ शिलालेखों में कुषाण तथा गुप्त काल के ब्राह्मी अक्षरों में सक्षिप्त अभिलेख ऐतिहासिक काल में मिलते हैं।[12]

वस्तुत: जब हम प्राचीन भारतीय कला एवं स्थापत्य पर विहंगम नजर दौड़ाते हैं तो सैन्धव सभ्यता के अंतिम काल से पूर्व मौर्यकाल तक की अवधि का भारतीय कला का इतिहास और उसकी परम्परा में निरंतरता का अभाव दृष्टिगोचर होता है।[13] यद्यपि ऐसा संकेत मिलता है कि 'वैदिक आर्य' भी मूर्ति ज्ञान से परिचित थे। आश्वालयन[14] तथा आपस्तम्भ[15] गृह्य सूत्रों में प्रतिभा संबंधी अनेक तथ्यों का उल्लेख है। महर्षि पाणिनी ने भी प्रतिमा पूजन का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है।[16] परंतु मौर्य काल से भारतीय कला का विकसित रूप सामने आने लगा, क्योंकि इस युग में कला की परम्परा तथा शैली में नवीनता का समावेश हुआ। मौर्य कला एवं स्थापत्य को शिखर पर पहुँचाने का श्रेय राजघरानों के साथ-साथ स्थानीय काष्ठकारों का रहा। मौर्यकालीन आर्य तथा अशोक निर्मित स्तम्भ इस युग के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान आनंद कुमार स्वामी के राष्ट्रों में 'The ffoicial Art of Asokan reign is mainly represented monolithic pillars on which the edicts are engraved'-[17] यद्यपि कुछ विद्वानों की राय में अशोक के स्तम्भों पर जो चमकीली पॉलिस की गयी है, उस पर ईरानी कला का प्रभाव था। परंतु ऐसा मानना सही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि विशिष्ट पॉलिस का ज्ञान भारतीयों को मौर्यकाल से बहुत पहले था। बौद्ध साहित्य और महाभारत में भी ऐसे स्तम्भों का उल्लेख है।[18]

मौर्य के बाद भारत में शुंग और सातवाहन वंशों का प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि यह वह काल था, जब हिन्दू धर्म का पुनरूद्धार

हो रहा था, परंतु इसके बावजूद भी बौद्ध धर्म के अनुयायी बुद्ध को महान प्रवर्तक मानकर उनके प्रतीकों-यथा-बोधिसत्व, स्तूप तथा धम्मचक्र आदि का पूजन करते थे, जिसका प्रत्यक्षीकरण तत्कालीन कला में दृष्टिगोचर होता है। सांची, भारहूत एवं अमरावती जैसे स्तूपों का निर्माण-विस्तार इसी युग में हुआ था। अमरावती की कला में सांची तथा भारहूत की पूर्णता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। डॉ0 कुमारस्वामी ने इस संदर्भ में अपना विचार रखते हुए कहा-''भारतीय दर्शन में सृष्टि का सृजन जल से माना गया है, जिसका प्रस्तुतीकरण सांची एवं भारहूत की कला में मकर, पूर्णघट तथा कमल से किया गया है''।[19]

कुषाणों के समय भारतीय कला के स्वरूप में और निखार आया। इसी काल में कला के दो मुख्य शैली गांधार कला और मथुरा कला ने विशिष्टता प्राप्त की। यद्यपि गांधार कला का प्रादुर्भाव ई0पू0 पहली शताब्दी में हो गया था, परंतु इसका सर्वांगीण विकास कुषाणों के समय ही हुआ। गांधार की मूर्तियाँ यद्यपि यूनानी कला से प्रभावित थी, परंतु रचना-प्रकार पूर्ण भारतीय है। मूर्तिकला के अतिरिक्त कुषाणकालीन स्वर्ण एवं रजत मुद्रायें इस काल की कला की श्रेष्ठता को पुष्ट करती हैं।

कला की दृष्टि से भारतीय इतिहास के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथा गुप्त युग था। यह वही काल है, जो प्राचीन भारतीय इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है। इस काल में कला के विविध रूपों का सर्वांगीण विकास हुआ और अपनी पराकाष्ठा तक जा पहुँचा। स्थापत्य कला भी इससे अछूता नहीं रहा। गुप्तकाल में जो भागवत धर्म का पुनरूत्थान हुआ उसके प्रभावस्वरूप हिन्दू प्रतिमाओं का सृजनकार्य प्रारंभ हुआ।[20] इस युग की कलाओं में पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों के लोकप्रिय होने से अत्यंक आकर्षक एवं सुन्दर मूर्तियों का निर्माण होने लगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्तकालीन कलाओं में हिन्दू धर्म को अत्यधिक महत्व प्राप्त होने के बावजूद भी बौद्ध मूर्तियों के निर्माण में कमी नहीं आयी। अपितु बुद्ध एवं बोधि-सत्वों की विभिन्न मुद्राओं में बहुसंख्य मूर्तियाँ बनने लगीं। इन मूर्तियों में तत्कालीन कला का माधुर्य, ओज तथा सजीवता प्रचूर मात्रा में विद्यमान हैं प्रसिद्ध कलाविद् इतिहासकार डॉ0 कुमारस्वामी का मानना है कि गुप्तकालीन मूर्ति कला की उत्पत्ति मथुरा कला से हुई।[21] इस तथ्य को भारतीय कला मर्मज्ञ भी स्वीकार करते हैं कि गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला का बीजारोपण मथुरा केंद्र में ही हुआ। यहाँ यह भी स्वीकार करना होगा कि 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उत्कर्ष' के परिणामस्वरूप कला में एक नूतन भाव का जन्म हुआ जो संभवत: अपने पूर्वगामी कुषाणकालीन कला (मथुरा केंद्र) से श्रेष्ठ प्रतीत होती है।[22] गुप्तकालीन कला की प्रशंसा में गोखले ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा-

"The art of the Gupta age is flower of established tradition, a polished and perfect medium for the statement of thought and feeling."[23]

इसी तरह अजन्ता एवं बाघ गुफाओं की चित्रकला भी मानव भावनाओं को अनुपम एवं सशक्त रूप से अभिव्यक्त करती है। यहाँ के चित्रों में गुप्तकला अपनी सभी पूर्ववर्ती कलाओं की परम्परा को तोड़ते हुए एक अभिनव तथा श्रेष्ठतम वर्चस्व को स्थापित करने में सक्षम हुई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गुप्तकालीन कला की विशेषता तत्कालीन मुद्राओं में भी दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय कला-स्थापत्य अपने विभिन्न चरणों से गुजरते हुए अपने तत्कालीन भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को समेटे हुए अग्रसर हुई, एक निश्चित रूप, आकार को धारण किये। हम देखते हैं कि गुप्तकाल में जो भारतीय कलाकृति अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त किये उसकी नींव अच्छी तरह से इसके पूर्व पड़ गया था।

संदर्भ सूची-

1. ब्राउन पर्सी, इंडियन आर्किटेक्चर-हिन्दू-बुद्धिस्ट, पृ0सं0-3.
2. रामनाथ मिश्र, भारतीय मूर्तिकला, पृ0सं0-23.
3. डी0एच0 गार्डन, प्रिहिस्टॉरिक बैकग्राउंड ऑफ इंडियन कल्चर, 1969, पृ0सं0-21.
4. डॉ0 जयनारायण पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 2000, पृ0सं0-322.
5. वही.
6. वही, पृ0सं0-325.
7. श्यामकुमार पाण्डेय, पेंटेड रॉक शेल्टर्स इन मध्य प्रदेश, (अप्रकाशित शोध प्रबंध, सागर विश्वविद्यालय, 1969).
8. डी0एच0 गार्डन, प्रिहिस्टॉरिक बैकग्राउंड ऑफ इंडियन कल्चर, 1960, पृ0सं0-277.
9. श्यामकुमार पाण्डेय, पेंटेड रॉक शेल्टर्स इन मध्य प्रदेश, (अप्रकाशित शोध प्रबंध, सागर विश्वविद्यालय, 1969.
10. जगदीश गुप्त, प्रागैतिहासिक चित्रकला, 1967, पृ0सं0 24-30.
11. डॉ0 जयनारायण पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ0सं0-326.
12. वही.
13. बी0के0 गोखले, एन्सियेन्ट इंडिया, पृ0सं0-187.
14. अश्वालयन गृहसूत्र, 3.16.
15. आपस्तम्ब गृहसूत्र, 19.13.
16. अष्टाध्यायी, 5.3.96.
17. ए0के0 कुमारस्वामी, पूर्वोक्त, पृ0सं0-17.
18. वाशुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ0सं0 120-22; आपस्तम्ब सूत्र, 15.3.15.
19. कुमारस्वामी, यक्ष, भाग-2, पृ0सं0-503.
20. एस0 राधाकृष्णन, हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, 1927, पृ0सं0-126.
21. डॉ0 कुमारस्वामी, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, पृ0सं0-71.
22. फोगल, कैटलॉग ऑफ द सारनाथ म्युजियम, भूमिका, पृ0सं0-19.
23. वी0के0 गोखले, एन्सियेन्ट इंडिया, पृ0सं0-190.

मौर्य काल में धर्म

पूनम देवी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

कौटिल्य ने भारत के प्राचीन धर्म को 'त्रयी धर्म' कहा है।[1] कौटिल्य के अनुसार धर्म जनता के लिए बहुत ही उपकारक होता है। वह मानते थे कि धर्म सभी वर्णों (जातियों) और आश्रमों के लोगों को अपने-अपने धर्म में स्थिर रखता है। प्राचीन काल में जो धर्म वैदिक काल में प्रचलित था वह उसे ही उत्तम धर्म मानते थे। उनके अनुसार प्राचीन लोग ईश्वर में विश्वास रखते हुए अनेक देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे तथा प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में भी ईश्वर की कल्पना करते थे। उन्हें देव स्वरूप मानकर उनकी पूजा किया करते थे उदाहरण के लिए वर्षा के होने पर वह इन्द्र देव की पूजा करते थे,[2] यदि वर्षा ऋतु में वर्षा न हो तो वह वर्षा के लिए हवन यज्ञ का अनुष्ठान करके वर्षा शुरू करने के लिए इंद्र देव की स्तुति करते थे।[3] सभी अनुष्ठानों के लिए वह अग्निदेव का आह्वान करते थे तथा उन्हें आहुति देकर हवन पूर्ण तथा उन्हें प्रसन्न करने का प्रावधान था।[4] उनके अनुसार हवन-यज्ञ करने की विधि-विधान जटिल होते चले गए। लोगों ने इन विधि-विधानों को मोक्ष और स्वर्ग प्राप्ति का साधन मानना आरम्भ कर दिया। उन्होंने इसे और अधिक विस्तृत रूप में करना आरम्भ कर दिया, वे अब इस विधान में पशु बलि भी देने लगे। वह मानते थे कि बलि से अग्नि, इंद्र तथा अन्य देवता खुश होगें तथा उन्हें यज्ञ व हवन के फलस्वरूप स्वर्ग प्रदान करेंगे। धीरे-धीरे याज्ञिक कर्मकाण्डों के इस जटिल स्वरूप के विरुद्ध लोगों ने अन्य धर्मों में जाना प्रारम्भ कर दिया। जिनमें जटिलताएँ ना हो और वे सरल नियमों वाले होए दो नए धर्मों का उदय छठी शताब्दी ई०पू० में एक जैन धर्म महावीर जैन के द्वारा तथा दूसरा बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के द्वारा चलाए गए।[5] जो धीरे-धीरे भारतीय उपमहाद्वीप के एक बहुत बड़े भाग में फैल गए। इन धर्मों की उन्नति व प्रगति का बड़ा कारण था। इनका सुधारवादी होना समाज में चली आ रही-जातिभेद, वर्णभेद और सामाजिक असमानता को खत्म करना ही इन धर्मों का मुख्य उद्देश्य था।

मौर्य साम्राज्य के उदय के समय ये दोनों ही धर्म उन्नति कर रहे थे। मौर्य युग में ये दोनों धर्म राज संरक्षण प्राप्त कर और अधिक उन्नति करने लगे। चन्द्रगुप्त जैन धर्म का अनुयायी था तथा अशोक बौद्ध धर्म का। इसके अतिरिक्त एक अन्य धर्म भी था। आजीवक सम्प्रदाय जिसके प्रवर्तक थे मक्खलिपुत्र गोसाल जो महावीर स्वामी का समकालीन था। सबके अतिरिक्त आज के समय में आजीवक सम्प्रदाय का कोई भी अनुयायी आज नहीं है और ना ही उसके विषय में साहित्य में बहुत अधिक लिखा हुआ उपलब्ध होता है। कौटिल्य भी जैन धर्म के विषय में कुछ नहीं लिखता। कौटिल्य त्रयी धर्म का अनुयायी था। फिर भी वह अन्य धर्मों के प्रति सहसनुता की भावना रखता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में केवल बौद्धों और आजीवक प्रव्रीजतों का ही वर्णन है। परन्तु बौद्ध साहित्य अन्य धार्मिक सम्प्रदायों का भी उल्लेख है। जो इस प्रकार है, आजीवक, जैन, मुण्डश्रावक, परिव्राजक, त्रैदण्डिक, अविरुद्धक, गौतमक इसके अलावा वे सम्प्रदाय भी है जो हाथी, घोड़े, गाय, वासुदेव, बलदेव, मणिभद्र, अग्नि, नागों, यक्ष-यक्षणियों असुरों और गन्धर्वों की पूजा करते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मौर्यों से पहले भारत में बहुत से धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हो चुका था।

मौर्यकाल में वैदिक धर्म

मौर्य काल में अनेक धर्मों की सत्ता थी, फिर भी इस काल में जनता का एक बहुत बड़ा भाग वैदिक धर्म को ही मानता था। मैगस्थनीज ने भी अपने वर्णनों में जीन अनुष्ठानों और विश्वासों का उल्लेख किया है वे प्राचीन वैदिक धर्म से ही सम्बन्ध रखते है।[6] उसमें हवन, यज्ञ, बलि, प्रसाद, श्राद्ध आदि है। वही मैगस्थनीज इन सब प्रथाओं का विस्तार से वर्णन करते हुए बताते है कि इन सब अनुष्ठानों को करने के लिए पुरोहित या दार्शनिक रखा गया था वह सबका गुरु होता था।[7] इनके नियम व कानून बताता था- जैसे यज्ञ और श्राद्ध में कोई भी मुकुट धारण नहीं कर सकता था। पशु बलि में पशुओं काटा नहीं जाता था बल्कि उनका गला घोट कर मारा जाता था क्योंकि देवताओं को खण्डित वस्तुएं नहीं चढ़ाई जाती।

यज्ञों की ही तरह 'संस्कार' भी वैदिक धर्म के महत्व रखते थे। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में सोलह संस्कारों का विधान बताया गया है। जिसका अनुष्ठान करना पड़ता था। इन संस्कारों में से मुण्डन, उपनयन और विवाह संस्कारों की तरह ही अन्य संस्कार भी मौर्य युग में भी प्रचलित थे।

इस काल में वैदिक धर्म में बहुत से परिवर्तन आ गए थे[8] जो लोगों का मूर्ति पूजा करना। अब तक सभी देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण कर लोग उनकी पूजा करने लगे थे। ये मूर्तियाँ कुछ-कुछ आधुनिक समय की मूर्तियों जैसी थी और पूजा विधान भी ऐसा ही था। जिन देवी देवताओं की प्रतिमा मंदिरों में प्रतिष्ठापित की जाती थी। कौटिल्य ने उनके नाम भी दिए है। अपराजित (इन्द्र) वैश्रवण (कुबेर) श्री (लक्ष्मी) तथा अश्विन वैदिक देवता थे। ब्रह्मा, इन्द्र, यम और सेनापति (स्कन्द) की मूर्तियाँ बनाकर नगर के चार मुख्य द्वार पर रखी जाती थी।[9] वरूण,

नागराज तथा संकर्षण का वर्णन भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। इस काल में यक्ष-यक्षणियों की सुन्दर प्रतिमाएँ अधिक मात्रा में मिलती है।[10] जिन्हें शक्तिशाली माना जाता था। मंदिरों की सम्पत्ति की देखभाल का काम राज्य का होता था राज्य इसके लिए एक अलग अमात्य की नियुक्ति करता था। जिसे 'देवताध्यक्ष' कहते थे। राज्य पर वित्तिय संकट के समय राज्य मंदिरों की सम्पत्ति का प्रयोग कर सकता है।[11] इसका उल्लेख कौटिल्य भी करता है। साथ ही देवताओं की सम्पत्ति जैसे पशु, पेड़, अन्न व पैसों को चोरी करने वाले को दण्ड दिए जाने का भी वर्णन कौटिल्य ने किया है। सम्भवत: इस समय देवदासी प्रथा भी शुरू हो चुकी थी और देवदासियों से सूत कतवाया जाता था।

वही गाँव में बने मंदिरों की देखभाल ग्रामवृद्धों अर्थात् ग्राम सभा के सदस्य करते थे। मौर्य युग ने भी ऐसे अनेक उत्सवों और त्यौहारों का आयोजन किया जाता था। जिनका सम्बन्ध देवताओं और दैवाल्यों से था। वर्तमान समय की रथ यात्रा के समान ही उस समय में भी रथ यात्राएँ निकाली जाती थी। ऐसा माना जाता है कि पौराणिक हिन्दू धर्म की पूजा-विधि का जो रूप आजकल पाया जाता है उसका विकास मौर्य युग में ही जो चुका था तथा पुरानी याज्ञिक व कर्मकाण्डों का स्थान मूर्तिपूजा ने लेना आरम्भ कर दिया था।[12] गायों को पवित्र मानने की परम्परा भी इस युग में शुरू हो चुकी थी। साँडों को देव मंदिरों के नाम पर छोड़ दिया जाना प्रथा बन गई थी। अर्थशास्त्र में राजा की दिनचर्या का निरूपण करते हुए लिखा गया है कि दिन के आठवें पहर में राजा गाय व वृषभ की प्रदक्षिणा करने के बाद ही राज सभा में आए।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्य युग की धार्मिक दशा व धार्मिक विश्वासों का पता चलता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस युग में अन्य धर्मों के होते हुए भी वैदिक धर्म की प्रधानता थी। परन्तु मौर्यों के समय में विभिन्न देवी-देवताओं के अलावा कुछ रहस्यमयी शक्तियों की सत्ता में भी विश्वास करने लगे थे जो आजकल के समय में भूत, प्रेत या जिन्न आदि कहते है। परन्तु कौटिल्य इन्हें रक्षांसि की संज्ञा दी है। विष्णु गुप्त के अनुसार, आठ दैविय महाभय होते है जैसे अग्नि, उदक, महामारी, दुर्भिक्ष, मूषिका व्याल और सांप आदि का निर्वाण किया जाता है उसी प्रकार रक्षांसियों का भी निर्वाण किया जा सकता है। इनके निवारण के लिए कहते है कि पर्वो के अवसर पर छत्र, उल्लेपिका हाथ का चित्र, झंडा तथा बकरे की बलि देकर पूजा कराई जाए तो इनसे मुक्ति मिल सकती है।

रक्षासि एक ऐसी अदृश्य, अज्ञात व रहस्यमय शक्ति है, जो मनुष्यों का विनाश कर सकती है। अत: इसके भय को दूर करने के लिए मायायोग के ज्ञाताओं की आवश्यकताओं पड़ती है। कौटिल्य ने लोगों के भय का प्रयोग राज्य व राजा की भलाई के लिए करने की सोची। उन्होंने राज्य के गुप्तचरों को लोगों के बीच भेजकर ऐसे भ्रम पैदा करने के लिए कहा जो लोगों को रक्षासि प्रतीत हो। जब लोगों को यह विश्वास हो जाता कि ये रक्षासि तब ये गुप्तचर रक्षों के महाभय के निवारण के लिए यथेष्ठ धन लेते थे। उस धन को राजकोष में जमा करवा देते थे। इस प्रकार के भय चाणक्य ने शत्रु राजाओं के लिए भी प्रयोग किए थे वह उन्हें भयभीत करके दुर्ग से बाहर निकलने के लिए मजबूर कर देते थे।

निष्कर्ष

मौर्य युग में भारतीय तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने तथा अभिचार क्रियाओं में विश्वास करते थे। वशीकरण करके शत्रु व किसी को वंश में करना, तापसों की अलौकिक शक्तियों में विश्वास करना तथा फलित ज्योतिष में विश्वास करना उस समय की प्रमुख विशेषताएं थी। परन्तु कौटिल्य इन सबमें विश्वास नहीं करता था। वह इन सब का प्रयोग राष्ट्र हित में कनरने की सलाह देता है। कौटिल्य ने वैदिक धर्म को उत्तम धर्म माना है। वह अन्य धर्मों की निन्दा नहीं करता परन्तु उनके लिए कठोर नियम बनाता है।

सन्दर्भ सूची

1. विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''मौर्य साम्राज्य का इतिहास'', श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 411
2. सिंह, राजकिशोर, ''प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति'', मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 1968, पृ० 228
3. सांकृत्यायन, राहुल, ''ऋग्वैदिक आर्य'', किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण 1987, पृ० 187
4. मजूमदार, आर०सी०, ''प्राचीन भारत'', ताज प्रेस मायापुरी, नई दिल्ली, संस्करण 1954, पृ० 36
5. शर्मा, रामशरण, ''प्राचीन भारत का इतिहास'', ओरियंट ब्लैकस्नान प्रा०लि०, प्रथम संस्करण 2004, पृ० 132
6. झा, डी०एन०, ''प्राचीन भारत का इतिहास'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण 1981, पृ० 216
7. राय, राजेश कुमार, ''हिन्दू वर्ण व्यवस्था में शूद्रों का इतिहास'', सनराइज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 71
8. थापर, रोमिला, ''अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन'', दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 1977, पृ० 154
9. विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''मौर्य साम्राज्य का इतिहास'', श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 411
10. मिश्र, जयशंकर, ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', संस्करण 1986, पृ० 773
11. बाशम, ए०एल०, ''भारत'', शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ०
12. विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''मौर्य साम्राज्य का इतिहास'', श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 5

नारी जीवन-दुर्दशाक ज्वलन्त चित्रः विलाप

डॉ० अरुण कुमार ठाकुर

अध्यक्ष, मैथिली विभाग, जगदीश नन्दन महाविद्यालय, मधुबनी

'यात्री' क उपनामसँ ख्यात-प्रख्यातक्तबैद्यनाथ मिश्र मैथिली साहित्यमे प्रगतिशील साहित्यकारक रूपमे चर्चित एवं प्रतिष्ठित रहलाह अछि। हिनक साहित्यमे असहाय, उपेक्षित ओ प्रताड़ित जिनगीक चित्रक संग कुरीति, रूढ़िग्रस्तता एवं अशिक्षाजन्य वितृष्णाक बहुविध चित्रण भेटैत अछि।

'यात्री' अपन कविता मे अभावग्रस्त जिनगीक चित्रण करैत मैथिल-समाजमे व्याप्त बालविवाह एवं बैधव्य समस्याक उद्घाटन व्यापक रूप मे कयलनि अछि। कविवर 'यात्री' क काव्यसंग्रह 'चित्रा' मे संकलित 'विलाप' एकगोट कालजयी रचना अछि, जाहिमे कविवर बालविवाहक दुष्परिणाम एवं बैधव्यक करुण कथाकेँ मर्मस्पर्शी रूप मे उपस्थापित कयलनि अछि। वस्तुतः बालविवाह नारी जीवनक विभीषिका ओ वैधव्य हृदयक दुर्दम्य हाहाकार अछि। कविवर बैधव्य जीवनक नैराश्य एवं वेदनाक पारावारकेँ निकटसँ देखि-परेखि सहृदयताक संग प्रस्तुत कयलनि अछि।

विवेच्य कविताक प्रारम्भ मे कवि बालविवाहक ओहि परिस्थितिक चित्रण कयलनि अछि जाहिमे अनभिज्ञताक संग ओकर विवाह सम्पन्न कयल जाइछ जेना कनियाँ- पुतराक विवाह हो। वर-कनियाँ दुनू मे सँ ककरो ई ज्ञान नहि रहैत छैक जे विवाह कोन वस्तुक नाम अछि आ' विवाह किए क कराओल जाइत छैक। कनियाँक अनभिज्ञताकेँ दिग्दर्शित करैत कविवर लिखलनि अछि-

"माइक कोरामे दूध पिबैत
बैसलि छलौं उँधाइत झुकैत
परतारि क मड़वा पर बहीन ल' गेल
की-दन कहाँ दन भेलै, बिआह भ' गेल
पैरमे होमक काठी गड़ल
सीथमे जहिना सिन्नूर पड़ल।।"[1]

एहि पदमे विधवाक आत्मव्यथा अभिव्यंजित भेल अछि। मिथिलाक ई बालविवाह एकटा अभिशाप छल जाहिमे अबोध वर-कनियाँक विवाह सम्पन्न कय देल जाइत छल। विवाह की थिक तथा जीवन मे विवाहक महत्त्वकेँ वर-कनियाँ बुझबे नहि करैत छलाह। सिन्दूर, लहठी की थिकैक सेहो ओ नहि बुझैत छलीह। भाई-बहिनि जकाँ खेला-धूपा कय वाल्यावस्था बितबैत छलीह आ' जखन वयस बढ़लाक कारणे यौवन ओ प्रेमक बोध होअय लगलनि तखन जीवन-आशाक संचार भेलनि जकर वर्णन कविवर 'यात्री' एहि पदमे कहने छथि जे सर्वथा यर्थाथ ओ सजीव प्रतीत होइत अछि-

"सिन्नूर लहठी छल सोहागक चीन्ह
हम बुझिअइ ने किछु उएह बुझथीन्ह
रहै लगलौं भाइ-बहीन जकाँ
खेलाय लगलौं राति-दिन जकाँ
कोनो वस्तुक नहि छल बिथूति
कलेसक ने नाम दुखक ने छूति
होम' लागल यौवन उदित
होम' लागल प्रेम अंकुरित
बारहम उतरल, तेरहम चढ़
ज्ञान भेल रसक, सिनेह बढ़
ओहो भ' गेला बेस समर्थ
बूझै लगला संकेतक अर्थ
सुखक दिन लगिचौल अबैत रहै
मन आशाक मलार गबैत रहै
बन्हैत रही बेस मनोरथक पूल
विधाता बूझि पड़ै छल अनुकूल।"[2]

परन्तु ओहि युवतीक जीवनपर असमय तुषारापात भ' जाइत छनि। हुनक पति दर्दक कारणे असमय काल-कवलित भ' जाइत छथि आ' उल्लासपूर्ण जीवनमे पतझड़क उदासीनता आबि जाइत छनि। चारू दिस दृष्टिपात करैत छथि, केओ अपन नहि भेटैत छनि, सभ आने लगैत छनि। ओ अपन व्यथा व्यक्त करैत कहैत छथि-

"कानी तँ चुप कैनिहार क्यौ नहि
रूसी तँ बौंसनिहार क्यौ नहि
हम पड़लि छी टूटल पूल जकाँ
मौलैल, बिनु सूँघल फूल जकाँ
आगि छुबै छी तँ जरैत ने छी
माहुर खाइ छी तँ मरैत ने छी।"[3]

वस्तुतः बैधव्यक पश्चात् विधवाकेँ फूकि-फूकि कऽ पयर राखय पड़ैत छैक। सोचि-बिचारि कय मुँह खोलय पड़ैत छैक आ' अपन इज्जत-आबरू बचयबाक हेतु निष्ठुर ओ तत्पर बनय पड़ैत छैक। हुनक समस्त जीवनक्त प्रतिबंधित भ' जाइछ। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सेहो 'विधवा' कविता मे एही तरहक भावक अभिव्यक्ति कयने छथि। 'यात्री' वैधव्य जीवनक विवशताकेँ यथार्थता एवं सजीवताक संग प्रस्तुत करैत लिखलनि अछि--

"भुस्साक आगि जकाँ नहू-नहू
जरै छी मने मने हमहू
फटै छी कुसियारक पोर जकाँ
चौत्रक पछ्वामे ठोर जकाँ।"[4]

वैधव्यक संतापसँ संत्रस्त विधवाक जीवन अछूतक जीवन भ' जाइछ। तथापि तथाकथित सभ्य समाजक दृष्टिकोण ओकरा प्रति नीक नहि रहैछ। एहि पुरुष-प्रधान समाजमे निष्कलंक रहितहुँ विधवाकेँ कुदृष्टिसँ देखबाक प्रयास कयल जाइछ। गामक गणमान्यलोकनि जे अपनाकेँ समाजक महंथ बुझैत छथि, पंचौतिया मानैत छथि सेहो सभ ओकर इज्जत-प्रतिष्ठापर कुठाराघात करैत छथि आ' ओ बेचारी अबला हुनकालोकनिक कुदृष्टिक शिकार होइत रहैत छथि। समाजमे विधवाक तिरस्कार, अपमान, दोहन-शोषण, उत्पीड़न ओ लाचारीक उल्लैख करैत कविवर लिखलनि अछि--

"धर्मसँ जीवन बिताबै चाहै छी
इज्जति आबरू बचाबै चाहै छी
तैओ करै चाहै छथि हमरा नचा
केहेन-केहेन ठोप चानन कैनिहार
ओहनाक सङे जँ हम खाधिमे खसी
ओ नुकैले रहता, हमर हैत हँसी
स्त्री गणक जाति हम थिकौं अबला
तहू पर विधवा, कहू तँ भला!
पुरुषक जाति ओकरा के की कहतै
ओकरे समाज ओकरे बात रहतै
उठा लितथि बरू भगवान हमरो
कथी लै भारी लगितिअइ ककरो
मरब तँ कानत क्यो नहिएँ
रहब तँ क्यौ जानत नहिएँ
इहो जीवन कोनो जीवन थिक
एहिसँ कुकुर बिलाड़िए नीक।"[5]

सभ्य समाजक प्रति विकट परिस्थितिजन्य आक्रोश व्यक्त करैत, धिक्कारैत-ललकारैत अबला विधवा अपन विवशता प्रकट करैत तत्कालीन पीढ़ीकेँ अभिशापित करैत करैत छथि--

"अगड़ाही लगौ बरू बज्र खसौ
एहेन जातिपर बरू धसना धसौ
भूकम्प हौक बरू फटौ धरती
माँ मिथिला रहिये क' की करती?"[6]

एहि कविताक सन्दर्भ मे डा. जयकान्त मिश्र अपन इतिहास ग्रंथ'A History of Maithili Literature' मे लिखने छथि--"The change in his idiom was remarkable-The poet took no recourse to Sanskritized words and raised a colloquial style to the poetic level-Ingenious thought, epigrammatic and terse style, colloquial diction, unpa- rallelled speed and tempo and pointed observation characterise these poems-"[7]

'विलाप शीर्षक कविता मे बालविधवाक व्याजेँ कवि मिथिलाक सामाजिक जीवनक मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित कयलनि अछि। बालविधवाक हाक्रोश ओ आन्तरिक वेदनाकेँ मुखरित कयलनि अछि। मिथिलामे प्रचलित बाल विवाहक कुरीतिक संग-संग प्राय: बाल-वृद्ध अनमेल विवाहक विषम परिणाम दिस सेहो संकेत कयलनि। समाजमे विधवाक उपेक्षापूर्ण कष्ट भरल, पवित्र रहितहुँ लांछनाक शिकार बनल, समाजक कामुक प्रवृत्तिक कुत्सित भावनाक आधार बनल जीवनक दुर्वस्थाक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कयलनि अछि।

'विलाप' शीर्षक कविता 'यात्री' क सर्वश्रेष्ठ रचना अछि जे समस्त मैथिली साहित्यमे कालजयी अछि। एहिमे असमयमे विधवा भेल बालिकाक व्यथा वर्णित अछि। पुरुष प्रधान समाजमे नारीक जे अवहेलना, प्रताड़ना, उपेक्षा ओ तिरस्कार कयल जाइत रहल अछि, जाहि कारणे नारीकेँ वैधव्य ओ अनमेल विवाहक दंश सहबाक हेतु विवश होअय पड़ैत छनि, 'यात्री' एहि सभक दिग्दर्शन सहृदयताक संग करौलनि अछि। कविवर निरपेक्ष भावसँ पुरुषक हृदयहीनता, क्रूरता, बर्बरता, कुत्सित भाव विचार, शोषण, उत्पीड़न ओ निकृष्ट कामलोलुपताकेँ वाणी प्रदान करैत नारीक विवशता, असह्य सहनशीलता ओ नैराश्य जीवन प्रदान करबाक हेतु पुरुष-समाजकेँ उत्तरदायी मानि हास-परिहासक सृष्टि कयलनि अछि।

वस्तुत: ई प्रगतिवादी रचना अपन उद्देश्यकेँ प्राप्त करबामे सफल भेल अछि आ' 'यात्री' एहि सफलताक हेतु स्तुत्य एवं वरेण्य छथि। 'यात्री' क कल्पना ओ संकल्प आजुक युग मे सिद्धि दिस बढ़ल अछि। नारी शिक्षाक विकास ओ माता-पिताक दृष्टिकोणक परिवर्तनक फलस्वरूप विवेच्य कविता मे वर्णित हृदयहीनता ओ कन्याक प्रति दृष्टिकोणमे परिवर्तन भेल अछि आ दिन-प्रतिदिन ई परिवर्तन दृढ़ भेल जा रहल अछि, जाहिसँ नारी जीवनक ओहि प्राचीन विडम्बनासँ मुक्तिक मार्ग प्रशस्त भेल अछि आ' नारी जीवन सुख-समृद्धि दिस सतत बढ़ि रहल अछि।

सन्दर्भ संकेत

1. 'यात्री' बैद्यनाथ मिश्र, 1390 साल, चित्रा; अखिल भारतीय मैथिली साहित्य समिति, प्रयोग ; पृष्ठ-16.
2. तत्रैव -- पृ०सं०-17-18.
3. तत्रैव--पृष्ठ-18.
4. तत्रैव-क्तपृष्ठ - 19.
5. तत्रैव-क्तपृष्ठ-19-20.
6. तत्रैव- पृष्ठ-20.
7. मिश्र डा. जयकान्त, 1950 ई.- A History of Maithili Literature, Tirabhukti Publications, Allahabad, पृष्ठ-111.

मैथिलीक प्रथम स्वातन्त्र्य स्वरः मिथिला गीतांजलि

डॉ० अरविन्द कुमार सिंह झा

अध्यक्ष, स्नातकोत्तरसहित मैथिली विभाग, राम कृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

कोनहुँ जीवन्त भाषाक सर्वप्रथम लक्षण थिक जे ओहिमे राष्ट्रिय भावनाक अभिव्यक्ति आ' सम्प्रेषणीयता रहय। राष्ट्रिय चेतना आश देशप्रेमक भावना अनादि कालसँ रहल अछि। आधुनिक मैथिली कविता सफलताक सोपानपर चढ़बाक प्रेरणा एहीसँ ग्रहण कयलक। कविशेखर बदरीनाथ झा लिखने छथि- "ब्रह्मानन्द समान जकर आस्वाद अमृतसन पाबि निरतिशय मुदित विश्ववन्दित छल कवि जन चिन्तामणि, पुरुषार्थ चतुष्ट्य दान परायण कविता कल्पलताक वेद नहि मानल बुध गण।"

कवि द्रष्टा एवं स्रष्टा होइत छथि, जनिक लेखनी उच्च कोटिक होइछ। मैथिली कविताक भाव उत्तरोत्तर व्यापक प्रसार पबैत गेल आश ई कलात्मक परिणति दिस उन्मुख भेल। कविता द्वारा सम्प्रेषित ज्ञानमे स्पन्दन रहैत छैक, हिलकोर भेटैत छैक, मानवीय मूल्य आश उद्देश्यसँ ओतप्रोत रहैछ। 'वन्दे मातरम्' जहिना भारतवासीक लेल महान प्रेरणादायक रहल, एकर शंखनाद मैथिली कवितामे सेहो क्रान्ति अनलक। कविगण राष्ट्रप्रेम आ राष्ट्रिय परिवेशक चित्रांकन करैत छथि, जाहिमे राष्ट्र प्रेमसँ परिपूर्ण भाव रहैछ आ' राष्ट्रक प्रति हार्दिक भावना व्यक्त करैत छथि।

कवीश्वर चन्दा झा राजनीतिक ओ सामाजिक जीवन मे व्याप्त कलुषताकेँ देखलनि- "न्यायक भवन कचहरी नाम, सब अन्याय भरल तेहि ठाम" एही दृष्टिकोणक द्योतक थिक। हिनक बाद स्वाधीनता-प्राप्तिक पूर्व धरि अंग्रेजी शासनक विरोधमे जन आक्रोश मुखरित रहल, जे वर्णनात्मक होइतहुँ अलौकिक अनुभवक आनन्द दैत छल। पद सभमे श्रद्धा, प्रेम, घृणा, सन्तोष, असन्तोष -भिन्न-भिन्न भाव-वृत्ति भेटैत रहय ;जकर शब्द - विन्यास ओ सम्प्रेषण उच्चकोटिक रहैत छल। अंगरेजक अत्याचार जँ-जँ क्रूरतर होइत गेलैक तथा समाजमे चेतना जेना-जेना पसरैत गेलैक, देशभक्तिक कविता ताही अनुपातमे उभरैत रहलैक। चन्दा झा देशक दुर्दशाक खाका खिचिए देने रहथि, हुनक परवर्तीलोकनि ताहीसँ प्रेरित भ' देशभक्तिक स्वरकेँ बुलन्द करय लगलाह। देशक दुर्दशासँ व्यथित भ' देशभक्तिक उद्गार आधुनिक काव्यक एक गोट लक्षण भ' गेल। हँ, देशक अर्थ ताहि दिनक लोकक दृष्टि मे छल मिथिला।. .....यदुनाथ झा 'यदुवर' तथा छेदी झा 'मैथिल मधुप' मिथिलाक अधोगति आश मैथिलक तिरस्कारकेँ लक्ष्य कय अनेक उद्बोधन काव्य लिखलनि।[1]

डा. मायानन्द मिश्र आधुनिक काव्यक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करैत आधुनिक कालक युग-विभाजन एहि तरहेँ कयलनि-

(क) चन्द्रयुग -1880 ई.सँ 1910 ई. धरि

(ख) यदुवरयुग -1910 ई.सँ 1940 ई.धरि

(ग) सुमनयुग -1940 ई.सँ1960 ई. धरि

(घ) किसुनयुग-1960 ई.सँ अद्यावधि। 2

ई मानैत छथि जे मैथिलीक आधुनिक काव्य सामाजिक चेतनासँ राष्ट्रिय चेतना तथा राष्ट्रिय चेतनासँ व्यक्तिवादी चेतना-यात्राक काव्य थिक। चन्द्रयुगक सामाजिक चेतनाक काव्य अगिला युगमे राष्ट्रिय चेतनाक काव्य बनि गेल, जकर प्रेरणा सूत्र रहथि यदुनाथ झा 'यदुवर'। हिनक 'मिथिला गीतांजलि' ओहि समयक काव्य-गीता थिक। 1920-'22 क असहयोग आन्दोलनक बाद जे राष्ट्रिय नवचेतना भारतीय जनमानसकेँ प्रभावित कयलक, ताहि शब्द-शिल्पक साक्षी 'यदुवर' रहथि। मिथिला देश-दशाक वर्णन, कुरीति, राष्ट्रिय उद्बोधन, सामाजिक ओ शोषितक प्रति सहानुभूतिक भावनासँ परिपूर्ण रचना 'यदुवर' क कविता मे भेटैछ। 'यदुवरयुग' मे दू गोट विशिष्ट कविता-संग्रह प्रकाशित भेल-यदुनाथ झा 'यदुवर' द्वारा संकलित-सम्पादित 'मिथिला गीतांजलि' तथा 'यामानन्द झा द्वारा सम्पादित 'मैथिली-सन्देश'। डा. जयकान्त मिश्र लिखने छथि जे 'मिथिला गीतांजलि' आ' 'मैथिली सन्देश' मे नवचेतनाक उदय घोषित कयल गेल। 'मिथिला गीतांजलि'क भूमिका मे यदुनाथ झा 'यदुवर' एकरा व्यक्त कयने छथि। 'यामानन्द झा तँ एतेक धरि कहलनि जे जँ देशभक्ति विषयक कविता मे उच्च कोटिक काव्यक गुण नहि भेटय, तथापि ओकर मूल्यांकन एहि दृष्टिएँ कयल जाय जे ओ जनसामान्यकेँ जगयबा मे कतेक समर्थ अछि 1906 सँ 1935 ई.धरि मैथिली मे पद्य वा कविता लिखबाक मूल प्रेरक तत्त्व इएह रहल जे देशभक्ति जगाओल जाय। ई मैथिल महासभाक आदर्शक फल छल जेना गद्यमे तहिना पद्यहुमे परिलक्षित होइत अछि।[3]

मैथिलीमे स्वातन्य स्वरक प्रथम चेतना-संग्रह 'मिथिला गीतांजलि' [1926 ई.] थिक, जे विस्तृत भूमिकाक संग यदुनाथ झा 'यदुवरश्द्वारा सम्पादित-प्रकाशित भेल। रामकृष्ण झा 'किसुन' लिखने छथि जे पं.यदुनाथ झा' यदुवर' (मुरहो, मधेपुरा; 1888-1935 ई.) मैथिलीक अनन्य सेवक आ' एक कान्तिकारी कवि रहथि। 'यदुवर' जी मे लोकचेतना तथा राष्ट्रिय भावना बड़ उग्र रूपमे छल। तँ पुरान परम्पराकेँ तोड़ि राष्ट्रिय काव्य-परम्पराक सूत्रपात करबाक संगहि संगीतक राग-पाशसँ मैथिली कविताकेँ सर्वप्रथम यदुवरेजी मुक्त कयने छलाह। भुवनजीकेँ जे एकर प्रथम श्रेय देल जाइछ से हमरा बुझने अयुक्त थिक। एकर श्रेय यदुवरेजीकेँ छनि आ' तकर विकास निस्सन्देह भुवनजी कयलनि।[4]

'मिथिला गीतांजलि'क अतिरिक्त 'वासन्ती विलास', 'संकीर्तनसार संग्रह', 'अन्योक्ति पुष्पावली', 'यदुवर विनोद'- 6 भाग, 'मिथिला संगीत रत्नमाला', 'अन्योक्ति शतक' आदि 'यदुवर' क रचनावलीक उल्लेख भेटैत अछि। 'मैथिली नवीन गीत', 'मैथिली पद्यसंग्रह, 'स्वातंत्र्य स्वर' आदिमेसेहो हिनक गीत संकलित भेटैछ। डा. रमानन्द झा 'रमण'क कुशल सम्पादन मे 2003 ई.मे मिथिला सांस्कृतिक समन्वय समिति, गुवाहाटीसँ 'यदुवर रचनावली' प्रकाशित भेल, जाहिमे हिनक उनासी गोट पद्यक संग दस गोट विलक्षण गद्य रचना संगृहीत अछि।

'मिथिला गीतांजलि' पोथीक विवेचन-विश्लेषण अधिकांश साहित्यकारलोकनि द्वारा अत्यल्प भेल अछि। एतेक धरि जे राम कृष्ण झा 'किसुन', डा. जयकान्त मिश्र, डा. दुर्गानाथ झा 'श्रीश', पं.चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर', डा.मायानन्द मिश्र सन यशस्वी साहित्यकार एहि पोथीक नाम पर्यन्त 'मैथिली गीतांजलि' लिखने छथि, जे त्रुटिपूर्ण ओ भ्रमाह थिक। एकर भूमिकामे ओहि युगक मूल प्रवृत्ति आ' सम्पादकक उद्देश्य स्पष्ट अछि- "ज्ञान- शृंगार सम्बन्धिनी कविता पराकाष्ठा पर पहुँचि गेल अछि। किन्तु आब समय बदलि गेल अछि। आब विकट मार्मिक समय उपस्थित भेल अछि.... वीर भेषमे माता मिथिलाक भक्तिपूर्ण गानमे तन्मय होयबाक चाही। एहिमे देशानुराग, देश ओ समाज कुरीति सुधारसम्बन्धिनी उत्साहवर्धिनी कविता, विशेषत: गानक संग्रह भेल अछि।"[5] देश-भक्तिसँ विभिन्न भाव उदित भेल-मिथिला वन्दना, स्वदेश-प्रेम स्मृति, मैथिली वन्दना, मिथिलाक पूर्व गौरव ओ वर्तमाना कुरीति आदि। कहल जाइछ जे आवश्यकता आविष्कारक जननी अछि। 'यदुवर युग'क अधिकांश कविक हृदय मे एहने भाव भरल रहनि। प्रत्येक मैथिली प्रेमी ओहि काव्य-रसक साहित्य-सरोवरकेँ श्रीसम्पन्न करथि आ' तेँ 'मिथिला गीतांजलि'मे यदुनाथ झा 'यदुवर' अपन गीतक संग चन्द्रकवि, मुंशी रघुनन्दन दास, सीताराम झा, जीवन झा, छेदी झा, त्रिलोचन झा, नित्यानन्द दास, कुशेश्वर कुमर, पुण्यधर झा, केदारनाथ झा, वेदानन्द कुमर, चन्द्रशेखर झा, माया प्रसाद मिश्र आदिक रचना संगृहीत कयलनि। एहिमे संकलित हिनकालोकनिक गीत मिथिलाक अतीत वा भविष्यकेँ साकार करबाक स्वप्न वा संकल्प अछि, जकर काव्यात्मक गुण अक्षुण्ण छैक। मिथिलाक उद्बोधनक दृष्टिएँ 'यदुवर' क निम्न पाँती द्रष्टव्य-

"मातृभूमि उद्धार पाठ जे सतत पढ़ै छथि,
नित निर्भर उन्नतिक शिखर सोपान चढ़ै छथि
भेलहुँ विघ्न अनेक पाछु नहि पएर धरै छथि।
धीर वीर दृढ़ संयमी सब विधि जे नि:स्वार्थ छथि,
हुनके जीवन सफल थिक, आन पुरुष जगमे व्यर्थ छथि।"[6]

हिमालय आ' गंगा भारतीय गौरव-गरिमा, वैभव ओ शक्तिक प्रतीक थिक, जकर सम्बन्ध भारतीय साहित्य ओ संस्कृतिसँ रहल अछि। ई दुनू भारतीय आदर्श, सिद्धान्त आ' परम्पराक वन्दनीय रूप थिक, जकर चित्रण बटगमनीक माध्यमेँ 'यदुवर' कयलनि-

"भूमिक अचल महापति सजनी, चुम्बथि उच्चाकाश हिमिगिरि पथ रक्षक जहँ सजनी, छथि हितकारक पास। बहथि जतय सँ अगणित सजनी, रम्य नदी नद धार नन्दन वन सम राजित सजनी, भारत सुखमागार। शुचि धारा सुरसरि जँह सजनी, बहि कर पाप संहार विचरथि मज्जथि जँह नित सजनी, हमर वृन्द कय प्यार।"[7]

जहिना जनमानस मे घृणा, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, रति आदि मनोभाव विकसित आ' उन्नत होइछ ;तहिना स्वतन्त्रताक कामना रखनिहार मानवक हृदयमे राष्ट्रिय भावना उन्नत ओ विकसित होयब स्वाभाविक छल। स्वतन्त्रताक चेतना एहन माध्यम थिक, जाहिसँ आत्म साक्षात्कार होइछ। स्वतंत्रताक लेल संघर्ष करब साहित्यकारक वैशिष्ट्य छल,जे एक भावात्मक प्रक्रिया थिक। एहि चेतनासम्पन्न साहित्यक सम्भावना कहियो धूमिल नहि भ' सकैछ आ' इएह कारण अछि जे आधुनिक मैथिली काव्य मे एकर पर्याप्त उदाहरण भेटैत अछि, जकर पहिल संग्रह 'मिथिला गीतांजलि' थिक--

"भारत हमर जगत बिच सजनी, सभसँ रम्य महान।
एहि उपवनक थिकहुँ हम सजनी, यैह हमर उद्यान।।
कोनहुँ देश बसब हम सजनी, रहत एतहि नित ध्यान।
जतय हृदय तत देहो सजनी, तन मन एकहि जान।"[8]

पण्डित त्रिलोचन झाक निम्नलिखित उद्बोधनात्मक पाँती सहृदय संवेद्य थिक-

"जाति देश हित सब किछु त्यागह, महासुव्रत अवधारी।
द्वेष भस्म कै उपर उड़ाबह,मेलक अवीर लगारी।
प्रेम शुभ डम्फ बजारी।"[9]

नित्यानन्द दासक व्यंग्यवाण अत्यधिक मर्मभेदी रहैछ---

"दुख सुख देशक कहब हम ककरा।
जे धन मदसों छथि बड़ मातल, सुनता से की हमर दुख फकरा।
हानि लाभ जे किछु नहि बुझथि, से मोचण्ड बड़द थिका धकरा।
सब अधलाह दोष घुसिआएल, तैओ ने जागथि मुरुख बकरा।"[10]

तत्कालीन मानव जीवनमे व्याप्त विसंगति ओ पाखण्डकेँ देखि मुंशी रघुनन्दन दासक लेखनी मौन नहि रहि सकल। मैथिलीक चरणपर सर्वस्व समर्पित कय उद्धार करबाक उत्कट अभिलाषा कविवर व्यक्त कयलनि-

" लखु लखु मिथिला निज सुत काज।
लालच वश कुकरम रत निश दिन, कहितहुँ होइछ लाज।।
पिशुन प्रपञ्ची सञ्चहि सञ्चरु, कैकहुँ कत कत व्याज।
धर्मक पथ विसरल सभ भै गेल, किंकर कलि महराज।
गौतम आदिक नाम नशाओल,वनल कुटिल शिरताज।
हा! की छल, की भै गेल मैथिल,नहि किछु फुरइछ आज।"[11]

केदारनाथ झाक वाणीमे ओज, उत्तेजना अनुगुंजित भश उठल--

"काम क्रोध मद मोह लोभ भ्रम, त्यागू चित दै भाई।
होउ स्वदेशोन्नति पर तत्पर, तन धन चित्त लगाई
विद्या नीति कला प्रचलित कय, सुयश लिय जग आई।
छाड़ि विरोध सवहि जन मिलि कय, एके भाव देखाई।"[12]

कविवर सीताराम झा गौरवपूर्ण इतिहासकेँ उद्घाटित कयलनि--

"आब ध्रुव सुधरत हमरो देश।
सब-दुख दैन्य निवारण कारण,उद्यत छथि मिथिलेश।।
परदेशक किछु वस्तु लेब नहि, सहि बरु रहब कलेश।
तहि विधि चलब चालि जहि सौं नहि लागत कहियो ठेश।।"[13]

संगीतात्मकताक प्रति 'यदुवर'क अभिरुचि एतेक बेसी रहनि जे प्रत्येक गीतमे राग-रागिनीक उल्लेख सेहो 'मिथिला गीतांजलि' मे कयने छथि। स्वातन्त्र्य चेतनाक संग्रह रहबाक कारणे भिन्न-भिन्न मनोभावक आधारपर गीतक वर्गीकरण कयने छथि- मंगलाचरण, मातृभूमि वन्दना, स्वदेश प्रेम तथा स्मृति, मैथिली (मातृभाषा)वन्दना, देशोद्धार हेतु भगवानसँ प्रार्थना, मिथिलाक लक्षण वैचित्र्य, मिथिलाक पूर्व गौरव ओ वर्तमान दुरवस्था, मंगलकामना, मिथिलाक क्रन्दन वा मिथिलावासीसँ मिथिलाक उपालम्भ, श्रीमान् प्रभुवरसँ प्रार्थना, सहानुभूति, धिक्कार, उद्बोधन, चेतावनी, उपदेश, उपालम्भ, अनुताप, सान्त्वना मिथिलाक प्रति आदि।

स्वातन्त्र्य स्वरक श्रीगणेश भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गाँधी द्वारा भेल, जे मिथिलाक पश्चिमान्त सीमांचल चम्पारणकेँ अपन कर्मभूमि बनाओल। एहिसँ मिथिला सेहो प्रभावित भेल आश कवीश्वर चन्दा झाक पदमे स्वातन्त्र्य चेतनाक बीज अंकुरित, पल्लवित ओ प्रस्फुटित भेल। ओहि समयमे पत्र-पत्रिका, प्रेस, मंच, सोसल मीडिया आदि साधनक ओहन व्यवस्था नहि छल; तेँ लोककण्ठमे बसैत प्रचार-प्रसारसेहो सीमिते रहल। यदुनाथ झा 'यदुवर' द्वारा 1923 ई.मे संकलित आ' 1926 ई.मे सम्पादित-प्रकाशित 'मिथिला गीतांजलि' सँ स्वातन्त्र स्वरक विचारधारा दिस उन्मुख होयबाक प्रेरणा भेटैत अछि। एक शतक पूर्व प्रकाशित ई पोथी आब दुर्लभ भ' गेल अछि, तेँ एकर भूमिकाक निम्नलिखित अंश महत्त्वपूर्ण अछि- "अधिकांश मैथिलक हृदय राष्ट्रिय भावक प्रकाशसँ प्रकाशित नहि भेल अछि, किन्तु हँ, हम मुक्तकण्ठसँ कहि सकैत छी जे मैथिल कविलोकनिक हृदय ओहि प्रकाशसँ वंचितो नहि अछि, जकर सद्यः प्रमाण यैह पुस्तक अछि। ..... उक्त विचार सूत्रहिक प्रेरणासँ हम ई 'मिथिला गीतांजलि' नामक पुस्तक सम्पादित कैल अछि जकर अत्यन्त अभाव हमरा मिथिला भाषा-भाषी समाजमे छल।"[14]

मैथिली साहित्यक मुकुटमणि पण्डित गोविन्द झा 'यदुवर'क प्रसंग लिखने छथि-- "आलोच्य कालमे मैथिलीक साहित्य कार लोकनिक ठोर पर तेँ राष्ट्रिय चेतना आ' क्षेत्रीय चेतनाक स्वर खूब मुखरित भेटैत अछि, परन्तु वास्तविक जीवन मे एहन चेतना बला साहित्यकार बिरले भेटताह। एही विरल आ' अति विरल महानुभाव मे अग्रणी भेलाह यदुवर।"[15]

लब्धप्रतिष्ठ समालोचक डा.रमानन्द झा 'रमण' लिखलनि- "यदुनाथ झा 'यदुवर' द्वारा संगृहीत सम्पादित 'मिथिला गीतांजलि मैथिली गीतक प्रथम संग्रह थिक जाहिमे राष्ट्रिय मूल्यक विभिन्न कविक रचनाक संग्रह भेल अछि। एहिसँ पहिनेक एहि प्रकारक संग्रहक उल्लेख कतहु नहि भेल अछि। मैथिली साहित्यकेँ अपन देश-कालसँ जोड़बाक जे कवीश्वर चन्दा झासँ प्रवृत्ति चलल आश 'मिथिला मोद', 'मैथिल हित साधन' एवं 'मिथिला मिहिर'मे आबि कवीश्वरक सभ समस्याक कारणपर लागल धार्मिक लेपकेँ पोछबाक प्रवृत्ति चलल, ओकर नेतृत्त्व कविवर यदुनाथ झा 'यदुवर' कयल। ओ राष्ट्रिय आ' देशोत्थान विषयक गीतक रचना करैत रहलाह। हुनक रचनाक राष्ट्रिय आत्मा एक दिस जँ कविक समकालीन कवि वर्गमे स्पर्द्धा उत्पन्न करैत रहल तँ दोसर दिस परवर्ती कवि लेल प्रेरणाक स्रोत बनल। देशोत्थान लेल राष्ट्रिय विचारधारासँ ओतप्रोत रचनाक परिपाटी सुदृढ़ भेल।"[16]

वस्तुतः 'मिथिला गीतांजलि' मैथिलीक पहिल स्वातन्त्र्य स्वरक संग्रह थिक। एहिमे संकलित विभिन्न कविलोकनिक गीतक महत्त्व ओ व्याप्तिक प्रसंग विशेष नहि कहि एतबय लिखब जे उक्त कविगण अपन संस्कारक रक्षा करैत राष्ट्रिय काव्यधाराक प्रतिनिधित्त्व कयलनि। राष्ट्रिय चेतनाक प्रथम पुरोधाक रूपमे मान्य रहि, 'मिथिला गीतांजलि' सन राष्ट्रिय ओ समाज सुधार मूलक संकलनक सम्पादन कय 'यदुवर' तत्कालीन नवयुवक साहित्यकार लोकनिक उत्प्रेरक रहथि, ताहिमे कोनहुँ अत्युक्ति नहि।

सन्दर्भ संकेत-

1. झा भीमनाथ, 2004 ई., विमर्श-जखन तखन प्रकाशन, दरभङ्गा, पृष्ठ-60.
2. मिश्र मायानन्द, 2017ई., मैथिली साहित्यक इतिहास- किसुन संकल्प लोक, सुपौल; (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ-174.
3. मिश्र जयकान्त, 1988ई., मैथिली साहित्यक इतिहास-साहित्य अकादेमी, दिल्ली, पृष्ठ-281-282.
4. झा पुरुषोत्तम, झा 'श्रीश' दुर्गानाथ, सिंह 'प्रभाकर' जयधारी, पाठक अमरेश, मिश्र विश्वेश्वर, झा 'व्यथित' बालगोविन्द(संयुक्त सम्पादन)-1968ई., रमानाथ झा अभिनन्दन ग्रंथ, रमानाथ झा अभिनन्दन ग्रंथ समिति, दरभङ्गा; पृष्ठ-269-270.
5. झा 'श्रीश' दुर्गानाथ, 1983ई. मैथिली साहित्यक इतिहास-भारती पुस्तक केन्द्र, दरभङ्गा, तृतीय संस्करण, पृष्ठ-148.
6. झा 'रमण' रमानन्द, 2003ई. (संकलन एवं सम्पादन)- यदुवर रचनावली; मिथिला सांस्कृतिक समन्वय समिति, गुवाहाटी, पृष्ठ-37.
7. तत्रैव - पृष्ठ--9.
8. तत्रैव- पृष्ठ-9.
9. झा 'यदुवर' यदुनाथ-1926ई., मिथिला गीतांजलि (सम्पादन), पृष्ठ-53.
10. तत्रैव - पृष्ठ -56
11. तत्रैव- पृष्ठ - 60
12. तत्रैव- पृष्ठ - 69
13. तत्रैव- पृष्ठ - 94.
14. मिश्र 'अमर' चन्द्रनाथ (सम्पादन)1994ई.- स्वातन्त्र्यस्वर, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृष्ठ -14
15. झा 'रमण' रमानन्द- 2003ई., यदुवर रचनावली, मिथिला सांस्कृतिक समन्वय समिति, गुवाहाटी, पृष्ठ- 2(2)
16. झा 'रमण' रमानन्द -1982ई., नवीन मैथिली कविता, मैथिली अकादमी, पटना, पृष्ठ-162.

नाटककार महेन्द्र मलंगिया

संजीत कुमार राम

सहायक प्राध्यापक (अतिथि) मैथिली विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

मैथिली नाट्य साहित्यक एक सशक्त हस्ताक्षर छथि महेन्द्र मलंगिया। हिनक जन्म मलंगिया (मधुबनी जिला) मे 20 जनवरी 1946ई० भेल अछि। ई मैथिली साहित्यक एहन साहित्यकार छथि जे नाट्य विद्याक विकासमे अपन अप्रितम योगदान छथि।

मैथिली समाजक विभिन्न समस्या पर लिखल हिनक नाटक के अभूतपूर्व मंचीय सफलता भेटल। ई प्रायः सभ तरहक नाटक लिखने छथि मुदा हिनक अधिकांश नाटक सामाजिक समस्या मूलक अछि। हिनक प्रकाशित कृति सभमे प्रमुख अछि-लक्ष्मण रेखा खंडित (1970); एक कमल नोर मे (1970); जुआयल कनकनी (1972); ओकरा ऑगनक बारहमासा (1980); कमला कातक राम लक्ष्मण ओ सीता, गाम नै सुतेयै, ओरिजनल काम, राजा सलहेस, पूस जाड़ की माघ जाड़, खिच्चड़ी।

टुटल तागक एकटा ओर (1983), काठक लोक(1987), लेभराह अन्हार में एकटा इजोत, छुतहा घैल,एकटा बताहि आयल छल, एक टुकड़ा पाप ई सभ एकांकी थिक। 25 टा नुक्कड़ नाटक-चक्रव्यूह, लटर पटर अहाँ बन्द करु, आब कहुं मन केहन लगैए, हमर बौआ इस्कूल जेतय।

महेन्द्र मलंगिया जीक अनेक रेडियो नाटक आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्र सँ प्रसारित भेल अछि। सम्प्रति हिनक ग्यारह (11) टा रेडियो नाटक प्रकाशित अछि जाहिमे प्रमुख अछि-आलूक बोरिया, नाकक पूरा, ई जन्म हम व्यर्थ गमाओल, काठक लोक, एक टूक पाप, ओ खाली मुँह देखै छै, मामा सावधान, हमरो जे साम्ब भैया, फटफटिया काका, भुतहा घर, गोनूक बाप आदि। नाटकके दृश्यकाव्य कहल गेल अछि मुदा रेडियो नाटक दृश्यकाव्य नहि अपितु श्रव्यकाव्य अछि। आलुक बोरिया एक शिक्षाप्रद नाटक अछि जाहिमे नारी शिक्षाक महत्वपर ध्यान केन्द्रित कयल गेल अछि। शिक्षित नारी सम्पूर्णता के प्राप्त करैत छथि जे परिवार, समाज ओ राष्ट्रक लेल गौरवक विषय बनैत अछि। एहि विषय वस्तुके ध्यानमे राखि मलंगिया जी ई नाटक लिखने छथि। 'नाकक पूरा' नाटकमे देखाओल गेल अछि जे तामस बड़ खराब चीज अछि आ बर्दाश्त करव सभ सँ निक बात। बहुत जनसंख्या मध्यवर्गक लोक लेल कतेक घातक होइत अछि इयह 'ई जन्म हम व्यर्थ गमाओल' नाटकक विषय थिक। नाटक मे पैघ परिवारक मध्य पिसाइत दम्पतिक दयनीय स्थितिके सजीव चित्रण कयल गेल अछि। नाटकक कथावस्तु बेस मार्मिक अछि एकटा भयानक दुष्परिणाम समक्ष अबैत अछि जाहि सँ श्रोता कानि उठैत छथि। ई नाटक पैघ परिवारक प्रति एकटा डर उत्पन्न करैत अछि। 'काठक लोक' मलंगियाजीक पूर्णाकी नाटक थिक जकर मंचन अनेको स्थलपर भेल अछि। एहि नाटकक दृश्य आ संवाद के काँटि-छाँटि रेडियो नाटकक अनुरूप बनाओल गेल अछि। 'एक टूक पाप' हिनक एकांकी थिक जकरा लेखक रेडियो नाटकक रूप मे रूपांतरित कयलनि अछि। बाल मनोविज्ञानपर आधारित ई नाटक अशिक्षा, गरीबी आ संवेदनशीलता के अभाव आ एहि सँ उपजल पारिवारिक कलहक कथा कहैत अछि जे श्रोता-दर्शके कना दैत अछि। 'ओ खाली मुँह देखै छै' नाटक दहेज समस्यापर आधारित अछि। 'मामा सावधान' सेहो दहेज समस्यापर आधारित नाटक अछि। 'ओ खाली मुँह देखे है' जतय कारूणिक-नाटक अछि ओतहि 'मामा सावधान' हास्य नाटक। 'हमरो ज साम्ब भैया' लोककथा पर आधारित नाटक अछि।

लक्ष्मण रेखाक अतिक्रमण करबाक परिणाम भेल सीता हरण। प्राचीन कालहिसँ मिथिलामे उच्च जाति विधवा-विवाह आपत्ति जनक छल। एहन सामाजिक रुढ़ि के तोरब एक दुस्साध्य काज छल। एहि कारणें अनेक कुत्सित व्यापारक आशंका सतत बनले रहैछ। परिस्थितिमे सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे एहि लक्ष्मण रेखा के खंडित करबाक प्रयोजन अछि। देवकान्त झाक मत छनि जे- "लक्ष्मण रेखा खंडित विधवा-विवाहक विषय वस्तु पर रचित महेंद्र मलंगियाक एक सामाजिक नाटक थिक। युवा नायक शंकर आ मनोज के विवाहार्थ नेता के रुप मे प्रस्तुत कऽ ई पुनर्विवाहक नव क्षितिज उद्घाटन करैत अछि।"[1]" अरविन्द कुमार सिंह झाक वक्तव्य छनि- जे लक्ष्मण रेखा खंडित 'आदर्शवादी नाटक थिक' जाहिमे विधवा-विवाह के आ तकर समस्याके नव दृष्टि एं प्रस्तुत कयल गेल अछि।"[2]"

'एक कमल नोर मे' प्रस्तुत नाटक मे पुरुष प्रधान समाजमे स्त्रीक केहन स्थान छैक- ई अवर्णनीय अछि; प्रत्युत ई एक विचारणीय विषय अवश्य अछि, की वस्तुतः स्त्री-पुरुष के सुख सुविधाक ध्यान रखनिहार, ओकर वासना तृप्ति आ सन्तानोत्पतिक मझिन थिकीह? स्त्री के पूर्णता मातृत्वमे छैक। तें कि बाँझ स्त्री समाजक समस्या रहबाक अधिकारिणी नहि। बाँझपन बाँस स्ती परिवार समाजक समता रहनाक कधिकारिणी ओहि निरीह स्त्रीक कोन दोष? ओ तँ भगवानक देन मानल जा सकैछ। डॉ प्रीती झाक कथन छनि- "सामाजिक नाटक कर घटना वस्तु समाजक धरातल सँ संबंध रखैत अछि। एहि मे सामाजिक समस्या, व्यवस्था दोष, गुण आदिक चित्रण होइछ।"[3]" पति-पत्नीक वयस सेहो एहिमे कम महत्वपूर्ण भूमिका नहि निर्वाह करैछ। तथापि कि बाँझ स्त्री त्याज्य अछि? कलंकिनी-पापिनी अछि? सर्वगुण संपन्न होइतहूँ की मात्र एहि आधारपर ओकर असित्वके नकारब उचित अछि? इऐह

तँ कथानक थीक 'एक कमल नोर मे'।

'जुआयल कनकनी' एक मनः स्थितिक चित्रण नाट्यकार मनोवैज्ञानिक रीतिए करबाक मे सफलता पौलनि अछि। एहि मे नाट्यकारक नव दृष्टिकोण मानवतावाद एवं जीवन मूल्य प्रगतिशील मानदण्डक स्थापना करैछ। एहि मे कृत्रिमता के आभास कतहु दृष्टिगत नहि होइछ। नाटकमे पात्रक चरित्रिक उत्कर्ष, विविध पात्रक मनमे आन्दोलित भ्रांति चतुर्दिक परिचालित होइछ। देवकान्त झाक वक्तव्य छनि-ई नाटक एक विचित्र आधुनिक मनोविज्ञानिक नाटक थिक जे रचनाकार 'मलंगिया' द्वारा अचेतन मोनक रहस्यता, उथल-पुथल आ मनोव्यथापर सृजित अछि। ई नाटकीय औत्सुक्यसँ अन्तर्गर्भित अछि। अतितक वर्जन-बन्हेजके तोड़ैत अछि आ मनोचिकित्सक पद्धतिसँ नव परिदृश्य उद्घाटन करैत अछि।"[4]"

'ओकरा आंगन बारहमासा' नाटक मे मिथिलाक निम्नवर्गीय समाजक एलबम थीक जाहि मे शोषण पीड़न, आशा-निराशा, आचार- विचार व्यवहार, आक्रोश - अपमान, रीति- रिवाज, सुख-दुःखके एहिमे विन्यस्त कयल गेल अछि। समाजक ओहि वर्गक व्यथा- कथासँ निर्मित अछि जतय एक भाग परिवार कर्जमे डूबल अछि आ सुरसा सदृश ओकर ब्याज बढ़ि रहल छैक, मालिकक अत्याचार छैक, बेरोजगारीक समस्या छैक। दुर्गानाथ झा 'श्रीश' के मतक अनुसार कहि रहल छैक जे- "ओकरा आंगन बारहमासा मे एक सफल लघु नाटिका थिक, एहि मध्य नाटककार कातिक सँ लए प्रत्येक मासक एक-एकटा दृश्यके अंकित कए एकटा एहन दीन-हीन निम्न जाति वर्गीय पारिवारिक करुण कथा प्रस्तुत करैत छथि जे आतहु अभिजात्यवर्ग द्वारा 'राड़' क नामसँ संबोधित कएल जाइत अछि।"[5]" एकर कथानक यथार्थतः प्रतिकात्मक थिक जे मिथिलाक लाख-लाख ऑगनक जकर दयनीय स्थितिक नग्न चित्र एहि मध्य सजीव रीतिए साकार कयल गेल।

एक दरिद्र हरिजन परिवारक अभाव, उत्पीड़न एवं सामाजिक शोषणक अति यथार्थवादी कथानक थीक 'कमला कातक राम लक्ष्मण ओ सीता' क। उपर्युक्त परिप्रेक्ष्यमे ई नाटक अद्यावधि गाम- गाममे अभावग्रस्त हरिजन वर्ग, सम्पन्न वर्ग द्वारा कोनो शोषित भ रहल अछि तकर स्पष्ट चित्र एहिमे अंकित कयल गेल अछि। निम्न वर्गक उत्थानक हेतु जतेक सरकारी योजना नियोजित अछि तकर निस्तार भेल जा रहल अछि।

'टुटल तागक एकटा ओर' हिनक एकांकी संग्रह थिक। जाहिमे पाँच एकांकी यथा- 'टुटल तागक एकटा ओर', नसबंदी, प्रेत चाहय अशौच, एक टुकड़ा पाप एवं बिरजू, विलटू आ बाबू संग्रहित अछि। जयकांत मिश्रक मन्तव्य थिक जे- 'टूटल तागक एकटा ओरश एहि मे मिथिलाक निम्न स्तरीय लोकजीवनके कवि हृदयक संवेदना ओ कौशलसँ ओ मंच पर अनलनि अछि।"[6]" हिनक प्रत्येक एकांकीय वैशिष्ट्य अछि जे ओ सभ अभिनेय अछि तथा कथानकक नवीनता, कथोपकथनक प्रवाह, संयमित भाषा-शैलीक कारणें मैथिली पाठक एवं दर्शकक ध्यानाकर्षित करैछ।

उपर्युक्त विश्लेषणसँ ई विषय स्वतः स्पष्ट भ' जाइछ जे महेंद्र मलंगिया मैथिली रुपें एक आलोकमय भविष्यक सूचक कहल जा सकैछ। सामाजिक परिवेशमे नित-नूतन परिवर्तनक ज्वार आवि रहल अछि ताहि मे जीवन के यथार्थता के जे स्पर्श कयलक तकरा ओ अपन नाटकक विषय बनौलनि। नारीक उत्पीड़नक चित्रांकन नाट्यकार अत्यंत सूक्ष्म रीति सँ कऽ ओकर उत्थानक परिकल्पना अपन प्रत्येक नाटकमे डेग डेगपर कयलनि अछि।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. झा, देवकान्त, 2017ई०, आधुनिक मैथिली साहित्य इतिहास, पृष्ठ सं-141
2. झा, अरविन्द कुमार सिंह, 1962ई०, साहित्यश्री, हरिनन्दन प्रकाशन मनिगाछी, दरभंगा, पृष्ठ सं-15
3. झा, प्रीती, 2021ई०, मालिनी, अभिधा बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं-42
4. झा, देवकान्त, 2017ई०, आधुनिक मैथिली साहित्य इतिहास, पृष्ठ सं-142
5. श्रीश, दुर्गानाथ झा, 1968ई०, मैथिली साहित्य इतिहास, भारती पुस्तक केन्द्र, दरभंगा, पृष्ठ सं-287
6. मिश्र, जयकांत, 1998ई०, मैथिली साहित्य इतिहास, साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, पृष्ठ सं-268

अनुसूचित जनजाति और भारतीय शिक्षा व्यवस्था

डॉ० जयनाथ यादव

सहायक प्राध्यापक, स्कूल ऑफ एजुकेशन, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट, मध्यप्रदेश

शोध सार

भारतीय समाज में शिक्षा में असमानताएँ अंतर्निहित हैं। पुरुषों और महिलाओं के बीच और विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच शैक्षिक उपलब्धियाँ काफी भिन्न होती हैं। जनजातीय आबादी के बीच साक्षरता दर न केवल कम है बल्कि लैंगिक असमानता का उच्च स्तर भी दर्शाता है। आज भी जनजातीय साक्षरता राष्ट्रीय औसत से नीचे है। इसके अतिरिक्त, जनजातियों में सीखने की उपलब्धियों का निम्न स्तर, लड़कियों की कम भागीदारी जैसी समस्याएँ भी हैं। जबकि 1991 में जनजातियों के बीच साक्षरता दर 29.6% थी, समग्र जनसंख्या के लिए साक्षरता दर 52.21% थी (जनगणना, 1991)। 2001 में, आदिवासी समूहों के बीच साक्षरता दर बढ़कर 47.10% हो गई, लेकिन इसकी तुलना में समग्र जनसंख्या के लिए साक्षरता दर कम थी। इसी तरह, प्रारंभिक शिक्षा में समग्र बाल आबादी की तुलना में आदिवासी समूहों में साक्षरता दर अधिक रही है। जबकि समग्र आबादी के लिए साक्षरता दर 45.90 रही है, आदिवासी समूहों के लिए साक्षरता दर 62.54 है (एसईएस, 2007-08)। जनजातीय समुदायों के विकास के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण इनपुट के रूप में मान्यता देते हुए, जनजातीय उप-योजना दृष्टिकोण, शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति और हाल ही में सर्व शिक्षा अभियान के राष्ट्रीय प्रमुख कार्यक्रम में शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। अभी भी जनजाति और जनसंख्या के सामान्य समूह के बीच न केवल नामांकन संकेतक में बल्कि उपलब्धि संकेतक के मामले में भी बड़ा अंतर है।

मुख्य शब्दः अनुसूचित जाति, जनजाति, शिक्षा योजना, शैक्षिक असमानताएँ, व्यावसायिक शिक्षा

पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र और जनजातीय शिक्षा

अब आदिवासी स्कूलों में नामांकन कोई समस्या नहीं है, बल्कि नीति निर्माता ज्यादातर पाठ्यचर्या और सीखने के परिणाम से संबंधित संकेतकों का सामना करते हैं। बच्चे कक्षा में बैठने में रुचि नहीं लेते और अभिभावक भी शिक्षा के प्रति उदासीनता दिखाते हैं। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों को रोकना शिक्षा अधिकारियों के लिए एक गंभीर चुनौती है। उपरोक्त अध्याय स्पष्ट रूप से अनुसूचित जनजाति आबादी और सामान्य आबादी के बीच अभी भी कायम अंतर की ओर इशारा करता है। इसके बजाय, जनसंख्या के हिस्से से अधिक निवेश के बावजूद अंतर को पाटने के बावजूद, शैक्षिक प्रणाली में असमानता अभी भी पुनः उत्पन्न हो रही है। यह मुख्य रूप से प्रचलित कक्षा प्रथाओं (स्कूल प्रणाली, सामग्री, पाठ्यक्रम, शिक्षा के माध्यम, शिक्षाशास्त्र, शिक्षक संबंधी समस्याएं, शैक्षणिक पर्यवेक्षण और निगरानी से जुड़ी समस्याएं) को जिम्मेदार ठहराता है, हालांकि आर्थिक कारक (गरीबी, घरेलू आय) भी इसमें बहुत मायने रखते हैं।

भारत की अनुसूचित जनजातियाँ (एसटी) विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और जीवन के पारंपरिक तरीकों के साथ देश की आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। विभिन्न सरकारी पहलों के बावजूद, एसटी को अक्सर हाशिए का सामना करना पड़ता है, खासकर

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच में। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय शिक्षा प्रणाली में अनुसूचित जनजातियों के सामने आने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालता है और इन मुद्दों के समाधान के लिए संभावित सुधारों की पड़ताल करता है। यह एसटी के लिए शिक्षा के ऐतिहासिक संदर्भ, वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाओं की जांच करता है, शैक्षिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में समावेशी नीतियों और सामुदायिक भागीदारी के महत्व पर जोर देता है।

परिचय

भारत का विविध सांस्कृतिक परिदृश्य इसके स्वदेशी समुदायों से समृद्ध है, जिन्हें अनुसूचित जनजाति (एसटी) या आदिवासियों के रूप में जाना जाता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले इन समुदायों के पास अद्वितीय भाषाएं, परंपराएं और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाएं हैं जो देश की विविधता की समृद्ध छवि में योगदान करती हैं। हालाँकि, अपनी सांस्कृतिक समृद्धि के बावजूद, एसटी को अक्सर सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें शिक्षा और विकास के अवसरों तक सीमित पहुंच भी शामिल है।

शिक्षा हाशिए पर मौजूद समुदायों को सशक्त बनाने और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत सरकार ने एसटी के लिए शैक्षिक परिणामों में सुधार लाने के उद्देश्य से कई नीतियां और कार्यक्रम लागू किए हैं। फिर भी, महत्वपूर्ण कमियाँ बनी हुई हैं, जो शैक्षिक समानता और समावेशी विकास की प्राप्ति में बाधा बन रही हैं। यह पेपर अनुसूचित जनजातियों और भारतीय शिक्षा प्रणाली के अंतर्संबंध की आलोचनात्मक जांच करता है, प्रमुख चुनौतियों पर प्रकाश डालता है और एसटी के लिए शैक्षिक पहुंच, गुणवत्ता और प्रासंगिकता बढ़ाने के लिए सुधार उपायों का प्रस्ताव करता है।

ऐतिहासिक संदर्भः शिक्षा और अनुसूचित जनजातियाँ

भारत में अनुसूचित जनजातियों के बीच शिक्षा का ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ औपनिवेशिक विरासतों, राज्य नीतियों और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता की एक जटिल परस्पर क्रिया को दर्शाता है। औपनिवेशिक युग के दौरान, स्वदेशी समुदायों को अक्सर औपचारिक शिक्षा प्रणालियों से बाहर रखा जाता था, और शिक्षा प्रदान करने के मिशनरी प्रयास छिटपुट और सीमित दायरे में थे। संसाधनों के लिए जनजातीय भूमि के दोहन पर औपनिवेशिक प्रशासन के ध्यान ने इन समुदायों को और अधिक हाशिए पर धकेल दिया, जिससे गरीबी और सामाजिक बहिष्कार का चक्र कायम हो गया।

स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार ने एसटी द्वारा सामना की जाने वाली शैक्षिक असमानताओं को दूर करने की आवश्यकता को पहचाना और आदिवासी कल्याण और विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नीतियां बनाई। जनजातीय अनुसंधान संस्थानों (टीआरआई) जैसे समर्पित संस्थानों की स्थापना और संविधान में विशेष प्रावधानों की शुरूआत, जैसे कि अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजाति (एसटी) आरक्षण, का उद्देश्य जनजातीय अधिकारों की रक्षा करना और उनकी सामाजिक-आर्थिक उन्नति को बढ़ावा देना शामिल है।

इन प्रयासों के बावजूद, एसटी के लिए शैक्षिक परिदृश्य चुनौतीपूर्ण बना हुआ है। अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा, शिक्षकों की कमी, भाषाई और सांस्कृतिक बाधाएँ और सामुदायिक भागीदारी की कमी जैसे मुद्दे आदिवासी समुदायों के बीच शैक्षिक प्रगति में बाधा बने हुए हैं। इसके अलावा, वैश्वीकरण और तेजी से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के प्रभाव ने असमानताओं को और बढ़ा दिया है, जिससे एसटी आबादी के बीच भेद्यता बढ़ गई है।

वर्तमान स्थितिः चुनौतियाँ और अवसर

वर्तमान सत्र में अनुसूचित जनजातियों को भारतीय शिक्षा प्रणाली तक पहुंचने और लाभ उठाने में बहुमुखी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इनके प्रमुख मुद्दा इस प्रकार हैं-

पहुँच और बुनियादी ढाँचाः कई आदिवासी क्षेत्रों में स्कूल, परिवहन और आवासीय सुविधाओं जैसे बुनियादी शैक्षिक बुनियादी ढांचे का अभाव है। भौगोलिक अलगाव, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे के साथ मिलकर, एसटी बच्चों के बीच स्कूल नामांकन और उपस्थिति में महत्वपूर्ण बाधाएं पैदा करता है।

शिक्षा की गुणवत्ताः शैक्षिक सुविधाओं वाले क्षेत्रों में भी, शिक्षा की गुणवत्ता चिंता का विषय बनी हुई है। सीमित संसाधन, खराब प्रशिक्षित शिक्षक, पुराना पाठ्यक्रम और अपर्याप्त शिक्षण सामग्री एसटी छात्रों के बीच शैक्षिक परिणामों को खराब करने में योगदान करते हैं।

भाषा और सांस्कृतिक बाधाएँः शिक्षा की भाषा और जनजातीय समुदायों की भाषाई विविधता के बीच बेमेल प्रभाव प्रभावी शिक्षण में बाधा डालता है। पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों और सांस्कृतिक प्रथाओं को अक्सर मुख्यधारा के शैक्षिक पाठ्यक्रम में नजरअंदाज कर दिया जाता है या हाशिए पर डाल दिया जाता है, जिससे एसटी शिक्षार्थियों में अलगाव और विघटन होता है।

सामाजिक आर्थिक कारकः कई आदिवासी परिवारों में गरीबी, कुपोषण और माता-पिता के समर्थन की कमी प्रचलित है, जिससे बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करने और स्कूल में रहने की क्षमता प्रभावित होती है। आर्थिक कठिनाइयाँ अक्सर किशोरों को स्कूल छोड़ने और श्रम या प्रवासन में संलग्न होने के लिए मजबूर करती हैं, जिससे गरीबी और शैक्षिक नुकसान का चक्र कायम रहता है।

लैंगिक असमानताएँः एसटी समुदायों के बीच शिक्षा में लैंगिक अंतर बरकरार है, लड़कियों को कम उम्र में शादी, घरेलू जिम्मेदारियाँ और लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता देने वाले सामाजिक मानदंडों जैसी अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ता है। एसटी आबादी के बीच समग्र शैक्षिक विकास और सशक्तिकरण सुनिश्चित करने के लिए लैंगिक असमानताओं को संबोधित करना महत्वपूर्ण है।

इन चुनौतियों के बावजूद, सकारात्मक बदलाव के अवसर भी हैं। स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों की बढ़ती मान्यता, समुदाय के नेतृत्व वाली पहल और तकनीकी प्रगति जनजातीय शिक्षा में नवाचार और सुधार के लिए अवसर प्रदान करती है। इसके अलावा, समावेशी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील शिक्षा के महत्व के बारे में बढ़ती जागरूकता ने मुख्यधारा और आदिवासी शिक्षा प्रणालियों के बीच अंतर को पाटने के प्रयासों को प्रेरित किया है।

अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा के लिए योजनाएँ और कार्यक्रम

किसी भी समाज/समुदाय के पिछड़ेपन और हाशिए पर जाने की बाधाओं को दूर करने के लिए शिक्षा पूर्व शर्त है। इसलिए अनुसूचित जनजाति की शिक्षा भारत सरकार की प्राथमिकता रही है। समाज के इस वंचित वर्ग के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए शुरू किए गए कुछ कार्यक्रमों और योजनाओं का विवरण यहां दिया गया है

पोस्ट-मैट्रिक छात्रावृत्ति योजना

यह योजना 1944-45 से चालू है। इस योजना का उद्देश्य पोस्ट-मैट्रिक या पोस्ट-माध्यमिक स्तर पर पढ़ रहे अनुसूचित जनजाति के छात्रों को अपनी शिक्षा पूरी करने में सक्षम बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना है। यह योजना यह उन सभी एसटी छात्रों के लिए खुला है जिनके माता-पिता की वार्षिक आय 1.08 लाख रुपये या उससे कम है और छात्रवृत्ति उस राज्य/केंद्र शासित प्रदेश की सरकार के माध्यम से प्रदान की जाती है जहां उनका निवास है।

एसटी लड़कियों और लड़कों के लिए छात्रावास निर्माण की योजनाएँ

एसटी लड़कियों के छात्रावास के निर्माण की योजना तीसरी योजना अवधि के दौरान शुरू की गई थी। एसटी लड़कों के निर्माण के लिए एक अलग योजना 1989-90 में शुरू की गई थी। 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान दोनों योजनाओं को एक योजना में मिला दिया गया था। योजना का उद्देश्य ऐसे एसटी छात्रों को छात्रावास आवास प्रदान करके आदिवासी छात्रों के बीच साक्षरता को बढ़ावा देना है जो अन्यथा अपनी खराब आर्थिक स्थिति और अपने गांवों के दूरस्थ स्थान के कारण अपनी शिक्षा जारी रखने में असमर्थ होते।

जनजातीय उपयोजना क्षेत्रों में आश्रम विद्यालय की स्थापना हेतु योजनाएँ

यह योजना जनजातीय उपयोजना 1990-91 में संचालित है। बोर्डिंग और आवास सुविधाओं की उपस्थिति को स्कूलों में नामांकन की उच्च दर का कारक माना गया है (अयादप्पनवर, 2003)। इस योजना का उद्देश्य पीजीटी सहित अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए शैक्षिक सुविधाओं को बढ़ावा देना और उनका विस्तार करना है। आश्रम विद्यालय सीखने के लिए अनुकूल वातावरण में आवासीय सुविधाओं के साथ शिक्षा प्रदान करते हैं। यह केंद्र और राज्यों के बीच लागत साझाकरण के आधार पर एक केंद्र प्रायोजित योजना है।

योग्यता का उन्नयन

यह योजना जो पहले चल रही थी, दसवीं पंचवर्षीय योजना में पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना में विलय कर दी गई है। तब से यह केवल पीएमएस की उप-योजना के रूप में कार्य कर रहा है। इस योजना का उद्देश्य कक्षा 11वीं और 12वीं में पीजीटी छात्रों सहित अनुसूचित जनजाति के छात्रों की योग्यता को उन्नत करना है और उन्हें आवासीय विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम से सर्वांगीण विकास के लिए सुविधाएं प्रदान करना है ताकि वे उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए अन्य छात्रों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें और वरिष्ठ प्रशासनिक और तकनीकी पद पर कार्य हेतु चयन हो सके। इस योजना के तहत 2008-09 से प्रति वर्ष प्रति छात्र 1900 रुपये का संशोधित पैकेज अनुदान प्रदान किया जाता है जिसमें प्रिंसिपल या कोचिंग प्रदान करने वाले विशेषज्ञों को भुगतान किया जाने वाला मानदेय और आकस्मिक शुल्क भी शामिल है।

यह एक प्रकार का प्रायोजित केन्द्रिय योजना है और इसका खर्च केंद्र और राज्यों के बीच 50:50 के आधार पर साझा किया जाता है। हालाँकि, Ut~ प्रशासन के संबंध में मंत्रालय द्वारा शत-प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।

विदेश में उच्च अध्ययन के लिए राष्ट्रीय प्रवासी छात्रावृत्ति योजना

यह योजना 1954-55 से चल रही है। यह एक गैर योजना थी जो 2007-2008 से एक योजना बन गई। इस योजना का उद्देश्य इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी के कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रों में उच्च अध्ययन (मास्टर, डॉक्टरेट और पोस्ट डॉक्टरेट स्तर) करने वाले चयनित एसटी छात्रों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस योजना के तहत एसटी और पीजीटी उम्मीदवारों को चार वार्षिक पैसेज ग्रांट उपलब्ध हैं। शैक्षणिक मार्ग अनुदान ऐसे उम्मीदवारों के लिए पूरे वर्ष खुला रहता है जो किसी विदेशी विश्वविद्यालय/सरकार से या किसी अन्य योजना के तहत विदेश में स्नातकोत्तर अध्ययन, अनुसंधान या प्रशिक्षण के लिए योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त कर रहे हैं, जहां मार्ग की लागत प्रदान नहीं की जाती है। यह योजना इकोनॉमी क्लास द्वारा भारत से वापस आने और जाने के लिए अनुदान प्रदान करती है। चयनित अभ्यर्थियों को मंत्रालय द्वारा सीधे भारतीय मिशन के माध्यम से 100 प्रतिशत के आधार पर अनुदान दिया जाता है।

राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप

यह योजना वर्ष 2005-2006 से शुरू की गई है। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जनजाति के छात्रों को एम.फिल और पीएचडी जैसी उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए वित्तीय सहायता के रूप में फेलोशिप प्रदान करना है। यह योजना यूजीसी अधिनियम की धारा 2(एफ) के तहत यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त सभी विश्वविद्यालयों/संस्थानों को कवर करती है। जूनियर रिसर्च फेलो (जेआरएफ) और सीनियर रिसर्च फेलो (एसआरएफ) के लिए फेलोशिप की दर समय-समय पर संशोधित यूजीसी फेलोशिप के बराबर है।

एसटी छात्रों के लिए शीर्ष श्रेणी की शिक्षा की योजना

जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने वर्ष 2007-2008 से एसटी छात्रों के लिए शीर्ष श्रेणी की शिक्षा की एक नई छात्रवृत्ति योजना शुरू की है। योजना का उद्देश्य मेधावी एसटी छात्रों को संस्थानों की किसी भी चयनित सूची में डिग्री या पोस्ट डिग्री स्तर पर अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करना है, जिसमें छात्रवृत्ति योजना संचालित होगी। इस योजना के तहत प्रबंधन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून और वाणिज्यिक पाठ्यक्रमों के क्षेत्र को कवर करने वाले सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों में 125 संस्थान स्वीकृत हैं। प्रत्येक संस्थान को प्रति वर्ष कुल 625 छात्रवृत्तियों की सीमा के साथ पांच पुरस्कार आवंटित किए गए हैं।

जनजातीय क्षेत्रा में व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र

यह योजना 1992-93 में शुरू की गई थी और जारी है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार की नौकरियों के साथ-साथ

स्वरोजगार के लिए एसटी युवाओं के कौशल को विकसित करना और उनकी आय में वृद्धि करके उनकी सामाजिक आर्थिक स्थितियों में सुधार करना है। इस योजना के तहत राज्यों, केंद्रशासित प्रदेशों और योजना को लागू करने वाले अन्य संघों को 100% अनुदान प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत, मंत्रालय तीन घटकों के तहत वित्तीय सहायता प्रदान करता है–

- जनजातीय अनुसंधान संस्थानों को 50:50 हिस्सेदारी के आधार पर अनुदान; अनुसंधान और मूल्यांकन अध्ययन, सेमिनार, कार्यशालाएं आदि आयोजित करने के लिए।
- भारतीय विश्वविद्यालयों में पंजीकृत 100: आधार पर जनजातीय छात्रों को अनुसंधान फैलोशिप के पुरस्कार और
- जनजातीय मामलों पर अनुसंधान करने, यात्रा अनुदान और के लिए गैर सरकारी संगठनों/विश्वविद्यालयों आदि को 100: आधार पर अखिल भारतीय या अंतर-राज्य प्रकृति की सहायक परियोजनाओं का समर्थन करना। आदिवासियों पर पुस्तकों का प्रकाशन।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए कोचिंग

वंचित परिवारों और वंचित परिवेश से आने वाले अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को सामाजिक और आर्थिक रूप से लाभप्रद पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा करना मुश्किल होता है। समान स्तर के खेल के मैदान को बढ़ावा देने और एसटी उम्मीदवारों को प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं में सफल होने का बेहतर मौका देने के लिए, जनजातीय मामलों का मंत्रालय वंचित एसटी उम्मीदवारों के लिए गुणवत्तापूर्ण कोचिंग संस्थानों में कोचिंग की एक योजना का समर्थन करता है ताकि नौकरियों के लिए परीक्षाओं में सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाया जा सके।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश

यह योजना विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए एसटी उम्मीदवारों को मुफ्त कोचिंग का समर्थन करती है। सिविल सेवा/ राज्य सिविल सेवा/ यूपीएससी द्वारा आयोजित अन्य परीक्षाएं जैसे सीडीएस, एनडीए, आदि / पेशेवर पाठ्यक्रम जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग, बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन / बैंकिंग / कर्मचारी चयन आयोग / रेलवे भर्ती बोर्ड / बीमा कंपनियां आदि। योजना के वित्तीय मानदंड 2007-2008 के दौरान संशोधित किया गया है। इस योजना में कोचिंग फीस, प्रति एसटी छात्र प्रति माह 1000/- रुपये की दर से मासिक वजीफा और कोचिंग की अवधि के लिए आउट स्टेशन छात्रों के लिए प्रति माह 2000/- रुपये की दर से भोजन/आवास शुल्क शामिल है।

कम साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा को मजबूत करना

यह जनजातीय मामलों के मंत्रालय की एक लैंगिक योजना है। इस योजना का उद्देश्य जनजातीय लड़कियों के 100% नामांकन की सुविधा के माध्यम से सामान्य महिला आबादी और जनजातीय महिलाओं के बीच साक्षरता के अंतर को पाटना है। पहचाने गए जिलों या ब्लॉकों में, विशेष रूप से नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में और आदिम जनजातीय समूहों (पीजीटी) द्वारा निवास किए जाने वाले क्षेत्रों में, और शिक्षा के लिए आवश्यक माहौल बनाकर प्रारंभिक स्तर पर गिरते दरों को कम करना। यह योजना 12 राज्यों और 1 केंद्र शासित प्रदेश के 54 चिन्हित जिलों को कवर करती है, जहां एसटी आबादी 25% या अधिक है, और 2001 की जनगणना के अनुसार एसटी महिला साक्षरता 35% या इसके अंश से कम है। इसके अलावा, किसी जिले में कोई अन्य आदिवासी ब्लॉक, उपरोक्त 54 चिन्हित जिलों के अलावा, जहां अनुसूचित जनजातीय आबादी 25% या उससे अधिक है, जनजातीय महिला साक्षरता दर जनगणना के अनुसार 35% या उसके अंश से कम है, को भी कवर किया गया है। यह योजना राज्य सरकार/केंद्र शासित प्रदेश के गैर-सरकारी संगठनों और स्वायत्त समितियों द्वारा कार्यान्वित की जाती है।

निष्कर्ष

हमारे देश में अनुसूचित जनजातियों के पिछड़ेपन का मूल कारण निरक्षरता है। सरकार विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं के माध्यम से उनके शैक्षिक मानकों में सुधार के लिए गंभीर प्रयास कर रही है। कई कारणों से शिक्षा में एसटी की भागीदारी में बाधा उत्पन्न हुई है। केवल कार्यक्रम और योजनाएं शुरू करना आदिवासी जनता के बीच निरक्षरता की बुराई का रामबाण इलाज नहीं है। इन योजनाओं का लाभ उन तक बहुत कम पहुंचा है। जनजातीय जनता के बीच इन योजनाओं के बारे में जागरूकता का निम्न स्तर, उनके आवास की विशिष्ट प्रकृति, इन योजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में प्रशासनिक अधिकारियों की उदासीनता एसटी की शिक्षा में बाधाएं हैं। स्थानीय मीडिया और एसटी इंटेलिजेंसिया एसटी के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए संयुक्त रूप से काम कर सकते हैं। प्रशासनिक मशीनरी को जनजातीय आवास की विशिष्टताओं के प्रति संवेदनशील बनाया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अनुसूचित जनजातियों के सांख्यिकीय प्रोफाइल (2013): जनजातीय कार्य मंत्रालय: नई दिल्ली भारत सरकार।

उप्पल, श्वेता 2010: अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ: नई दिल्ली- एन.सी.ई.आर.टी.।

पटवर्धन अमृता और तिर्की दिव्या (2017): आदिवासी छात्रों को सशक्त बनाने के लिए पारंपरिक ज्ञान का शैक्षिक विधियों के साथ एकीकरण: हिंदुस्तान नई दिल्ली।

भारत की जनगणना (2011): कार्यालय महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त, भारत सरकार।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति। (2020): मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय, भारत सरकार: नई दिल्ली।

लोकतांत्रिक शासन में विकेद्रीकरणः एक अध्ययन

डॉ० आलोक आनन्द

राजनीतिक विभाग, देवघर, झारखंड

सामान्य भाषा में विकेन्द्रीकरण का अर्थ है कि शासन सत्ता को एक स्थान पर केन्द्रित करने के बजाय उसे स्थानीय स्तरों पर विभाजित किया जाये, ताकि आम आदमी की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित हो सके और वह अपने हितो व आवश्यकताओं के अनुरूप शासन संचालन में अपनी अपनी भागीदारी सुनिश्चित करे सके। अर्थात आम जनता तक शासन सत्ता की पहुँच को सुलभ बनाना ही विकेन्द्रीकरण है। यह एक ऐसी प्रकिया है, जिसमें सारा कार्य एक जगह से संचालित न होकर अलग-अलग जगह व स्तर से संचालित होता है। उन कार्यों से सम्बन्धित निर्णय भी उसी स्तर पर लिये जाते है। तथा उनसे जुड़ी समस्याओं का समाधान भी उसी स्तर पर होता है। विकेन्द्रीकरण को निम्न रूपों में समझा जा सकता है।

1. विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न स्तरों पर सत्ता, अधिकार एवं शक्तियों का बटवारा होता है। अर्थात, केन्द्र से लेकर गाँव की इकाई एक सत्ता शक्ति व संसाधनों का बटवारा। साथ ही प्रत्येक स्तर से अपनी गतिविधियों के लिए स्वयं जवाब देह होता है। साथ ही प्रत्येक ईकाई अपनी स्वतंत्र होते हुए केन्द्र तक एक सूत्र से जुड़ी है।
2. विकेन्द्रीकरण का अर्थ है, विकास हेतु नियोजन, क्रियान्वयन एवं कार्यक्रम की निगरानी में स्थानीय लोगों की विभिन्न स्तरों में भागीदारी सुनिश्चित हो। स्थानीय इकाईयों व समुदाय को ज्यादा से ज्यादा अधिकार व संसाधनों से युक्त करना ही वास्तविक विकेन्द्रीकरण करना है।
3. विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है, जिसमें सत्ता जनता के हाथ में हो और सरकार लोगों के विकास के लिए कार्य करें।

इस प्रकार विकेन्द्रीकरण शासन व्यवस्था में शासन ही हर इकाई स्वायत होती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि व इकाई अपने मनमाने ढंग से कार्य करें, अपितु प्रत्येक इकाई अपने स्तर से उपर की इकाई के द्वारा बनाये गये नियमों व कानूनों के अन्तर्गत कार्य करती है। उदाहरण के लिए भारत में राज्य सराकरें राज्य अपने लोगों के विकास के लिए नियम कानून नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन वे केन्द्रिय संविधान के प्रवधानों के अन्तर्गत ही यह कार्य करती है। कोई भी राज्य सरकार स्वतंत्र होते हुए भी संविधान के नियमों से बाहर रह कर कार्य नहीं कर सकती।

स्तवंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सरकार के विकेन्द्रीकरण के दिशा में अनेक प्रयास किये गये हैं। इनमें भारत में पंचायती राज्य का लागू किया जाना सरकार के विकेन्द्रीकरण के दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। इसके माध्यम से जनता को सत्ता में भागीदारी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

शोध प्रविधिः-

प्रस्तुत शोध आलेख विश्वलेषणात्मक एवं वर्णणात्मक प्रकृति का है। शोध कार्य के लिए विभिन्न स्रोतों का उपयोग किया जाता है। उसके लिए मुख्यतः प्रकाशित ग्रंथ पत्रपत्रिकाओं में छपे विवरण, निबंध एंव लेख आलेख, इन्टरनेट, गुगल तथा विभिन्न शोध ग्रन्थों को अध्ययन का आधार बनाया है।

तथ्य विश्लेषण

वर्तमान के विशाल एवं बहुसंख्यक राज्यों में केन्द्र या राजधानी से शासन को सुचारू एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाना जटिल समस्या है। इसके मुख्य दो कारण है- पहला केन्द्र के कार्यों की सूची लम्बी एवं समय का अभाव है। दूसरा कुछ समस्याओं का सम्बन्ध मुख्य तौर पर स्थानीय होता है। जिसका समाधान स्थानीय स्तर पर सत्ता अधिकार और उत्तरदायित्व के विकेन्द्रीकरण द्वारा किया जा सकता है। जो स्थानीय शासन को जन्म देता है।[1] केन्द्रीकरण प्रजातंत्रत्मक प्रगति के विरूद्ध एवं शासन के प्रति नागरिकों में व्याप्त उदासीनता का कारण है। स्थानीय स्वशासन से शासन कार्य में कुशलता की वृद्धि होती है एवं स्थानीय नागरिकों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।[2]

लोकतांत्रिक शासन और विकेन्द्रिकरणः-

राजनीति में लोकतंत्र के प्रयोग का अभिप्राय न केवल राज सत्ता में लोगों की भागीदारी का प्रयास है, अपितु सकरार के दैनिक कामकाज में लोगों को सहभागी बनाना भी है। प्रसिद्ध विद्वान जे0 एस0 मिल ने लिखा है कि एक ऐसी सरकार जिसमें सभी लोगों की भागीदारी है वही राज्य की समस्त आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सकती है।[3] लोगों की सहभागिता जितनी अधिक होगी, वह व्यवस्था लोकतंत्र के राजनीतिक आदर्श के उतनी ही समीप समझी जाएगी। यह विचारनीय विषय है कि लोकतंत्र की अवधारणा में विकेन्द्रीकरण का विचार अन्तर्निहित है तो विकेन्द्रीकरण के साथ ''लोकतांत्रिक" शब्द क्यों लगाया जाता है!? विद्वानों का मत है कि विकेन्द्रीकरण के पूर्व ''लोकतांत्रिक' शब्द का प्रयोग निर्रथक नहीं है। वस्तुतः लोकतांत्रिक शब्द विकेन्द्रीकरण के उदेश्यों को अभिव्यक्त करता है, जो सत्ता के विकेन्द्रीकरण में लोगो के व्यापक, विकेन्द्रीकरण" को स्थानीय स्तर पर लोगों का

अपने कल्याण की योजनाओं को बनाने व पहल करने तथा स्वायत्तपूर्ण उन्हें कार्यान्वित करने के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार लोकतांत्रिक-विकेन्द्रीकरण प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की तुलना में अधिक व्यापक है और दोनों में अंतर उनके उदेश्यों को लेकर किया जा सकता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण जहाँ लोगों की सहभागिता पर बल देता है, वहीं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के विचार को प्रत्यायोजन के समानार्थक समझ कर भ्रमित होते है। यदपि इन शब्दो में कुछ समान गुण हो सकते है। फिर भी समानार्थक नही है। प्रत्यायोजन में सत्ता का उच्चाधिकारियों द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को स्थानांतरण होता है। वो उस सत्ता के उपयोग के लिए इच्छा के अनुरूप स्वतंत्र नहीं होता, अपितु उकसा निर्वाह उच्चाधिकारियों के निर्देशों और प्रसाद की सीमाओं के अन्तर्गत करना होता है। जबकि ''लोकतांत्रिक-विकेन्द्रीकरण" लोकतांत्रिक सिद्धांत का विस्तार है, उसमें स्थानीय स्तर पर लोगों का अपने कार्यो के बिना किसी उच्च हस्तक्षेप के प्रबन्धन का अधिकार निहित है। अतएव लोगतांत्रिक-विकेन्द्रीकरण के विचार में लोगों का अधिकार अन्तर्निहित होता है। अतएव लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के विचार में लोगों का अधिकार अन्तर्निहित होता है, किन्तु प्रत्यायोजन उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को प्रद्रत सुविधा मात्र है लोकतांत्रिक-विकेन्द्रीकरण एक ऐसा सिद्धांत है। जो स्थानीय लोगों को मौलिक सत्ता के उपयोग का अधिकार प्रदान करता है, जबकि प्रशासनिक प्रत्यायोजन किसी भी प्रशासनिक संगठन में प्रशासनिक कुशलता प्राप्त करने का उपागम मात्र है, जिसमें अधिनस्थ अधिकारी द्वारा ऐसी सत्ता का उपयोग किया जाता है, तो उसे उच्च अधिकारी द्वारा दी गई है।[4]

भारत में ''लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" की अवधारणा पूर्व सोवियत संघ और चीन जैसे साम्यवादी देशो में प्रचलित लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की धारणा से पूर्णतया भिन्न है। जहाँ इन साम्यवादी देशों में लोकतंत्र और केन्द्रीय नेतृत्व की शक्तियों के केन्द्रीकरण का समायोजन किया गया है। इन देशों की जनता जनतांत्रिक तरीके से प्रारंभिक तौर पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है तथा अपना शासन की नीति संबंधी व्यापक मुद्दों का चयन करती है, किन्तु उन देशों की जनता जब प्राथमिक तौर पर व्यापक नीतियों को निर्धारण कर अपने प्रतिनिधियों को चुन देती है तो इस बिन्दु पर उनकी लोकतांत्रिक स्वतंत्रता प्राय: समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् निर्वाचित नेतृत्व जनता द्वारा स्वीकृत व्यापक नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए रीति-नीति निर्धारण करता है और आवश्यक आदेश देता है। केन्द्रीय नेतृत्व के इन आदेशों का कोई विरोध, आलोचना या उसके प्रति कोई संकोच या प्रतिरोध व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस स्तर पर जनता भी अपने प्रतिनिधियों द्वारा निर्धारित रीति-नीति अथवा कार्य-प्रणाली के प्रति कोई विरोध करने में सक्षम नहीं है। इस तरह इन साम्यवादी देशों में लोकतंत्र, नीतियों के निर्धारणा की प्राथमिक प्रक्रिया तक सीमित है और तत्पश्चात सीमित प्रक्रियाओं पर केन्द्रीय नेतृत्व का केन्द्रीकरण स्थापित है।[5]

शासन व्यवस्था के रूप में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण:-

शासन व्यवस्था के रूप में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अभिव्यक्ति पंचायत व्यवस्था में होतीदहै। वर्तमान समय में पंचायत को ही मानव गरिमा, व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा समानता, राजनैतिक निर्णयों में जनता की भागीदारी आदि के कारण एक मात्र आदर्श शासन व्यस्था मानी जाती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राज्य है। शासन के प्रकार के रूप में लोकतंत्र को ऐसी व्यवस्था कहा जाता है, जिसमें जनता शासन-शक्तियों का प्रयोग स्वयं प्रत्यक्ष रूप से चुने गये प्रतिनिधियो के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से करती है। अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यायत्मक लोकतंत्र व्यवहारिक होने के कारण विश्व के अधिकांश देशों में लोकतंत्र का यह स्वरूप प्रचलित है। प्राचीन विचारकों जॉन स्टुअर्ट मिल, अब्राहम लिंकन आदि ने लोकतंत्र की व्याख्या इस प्रकार की है कि लोकतंत्र लम्बे समय तक चिर प्रतिष्ठित अर्थ में जनता का, जनता के द्वारा शासन माना जाता रहा, किन्तु आज की प्रविधि एवं वाणिज्य प्रधान सभ्यता में ऐसा लोकतंत्र कोरी कल्पना है।[6]

पंचायत राजनैतिक परिस्थिति या शासन चलाने की पद्धति मात्र नहीं है, अपितु यह सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिती भी है। यह एक विकासशील दर्शन एवं जीवन जीने का ऐसा तरीका है, जिसमें समाज की इकाई के रूप में व्यक्ति मूल आधार है। गाँधीजी ने प्रचलित लोकतंत्र के स्वरूप की कटु आलोचना करते हुए व्यस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र के ऐसे रूप को समर्थन किया, जिसमें बुनियादी स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतंत्र तथा उपरी स्तर पर अप्रत्यक्ष से चुनी गयी संस्था है। इस प्रकार सत्ता के वास्तविक विकेन्द्रीकरण आधारित नये ढंग से लोकतंत्र को भारत में अपनाने की उन्होंने सिफारिश की उन्होंने कहा लोकतंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि नीचे से नीचे तथा उँचे से उँचे आदमी को आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए, लेकिन सिवाय अहिंसा के ऐसा हो ही नहीं सकता।[7] उन्होंने अन्तिम सार्वजनिक लेख में लिखा कि सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे 10-20 जने नहीं चला सकते। वह तो नीचे से गाँव के हर आदमी द्वारा चलायी जानी चाहिए।[8] पंडित जवाहर लाल नेहरू का कहना था कि लोकतंत्र का अर्थ केवल राजनैतिक तथा आर्थिक ही नहीं वरण मानसिकता से भी है। अर्थात, लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में समानता के अवसर मिलने चाहिए। लोकतंत्र हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समाधान का एक मानसिक दृष्टिकोण है।[9]

पंचायती राज की त्रिस्तीय योजना का आशय इस अर्थ में लोकतंत्र को वास्तविक रूप देना है। जिसमें सब से निचले स्तर तक करोड़ों लोगों को शासन के संचालन में भागीदारी बनाया जा सके। इस प्रकार यह धरातल पर लोकतंत्र की व्यवस्था है।[10] इस व्यवस्थ के माध्यम से ही केन्द्र एवं राज्य स्तर पर केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर जनतंत्र में जन का महत्व राजनैतिक प्रशिक्षण का कार्य करती है। अत: इन्हें भावी नेताओं की पाठशाला

कहा जाता है। किसी स्थानीय समस्या को सटीक रूप से सुलझाने हेतु यह आवश्यक है कि निर्णय लेने वालों को स्थानीय परिस्थतियों एवं वातावरण की पूर्ण जानकारी हो। अत. स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय समस्याओं के समाधान खोजे जाएं तो वे अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी होंगे।

इस व्यवस्था को पूर्ण मान्यता है कि सभी समस्याएँ केन्द्र की समस्याए नहीं है, उनका हल उसी स्थान पर एवं उन्ही लोगों के द्वारा ही होना अनिवार्य है, जिसके द्वारा वे अनुभव की जाती है। इस प्रकार सत्ता, अधिकार, शक्ति एवं उतरदायित्व के विकेन्द्रीकरण द्वारा स्थानीय शासन की स्थापना आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में अपरिहार्य बन गई है।[11]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र मूलत. विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि सर्वोच्च शासन की जड़े जनसाधारण के बीच हो ताकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं एवं मांगो को अभिव्यक्त करने का समुचित अवसर मिल सके।[12] लोगों की राजनीति में सहभागिता इस रूप में हो कि स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने में स्वायत्तता, वित्तीय मामलों का प्रबंधन तथा प्रशासन पर पर्यवेक्षण का उन्हें अधिकार प्राप्त हो। लोकतांत्रिक सत्ता का केन्द्रीकरण राष्ट्र या राज्य स्तर पर न हो अपितु जिला खण्ड तथा ग्राम स्तर तक लोकतांत्रिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो, जिसमें जनता केवल चुनावों के समय ही राजनीति में भागीदारी ना हो, वरण स्थानीय स्तर पर निरंतर अधिकतम, जीवंत एंव सक्रिय रूप में शासन के कार्यों में भागीदारी रहे।

सुझावः-

लोकतांत्रिक शासन पद्धति में विकेन्द्रीकरण व्यवस्था के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है।

1. स्थानीय स्तर पर स्थानीय समस्याओं को समझकर उसका समाधान आसानी से किया जा सकता है। स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने से कार्य तेजी से होगे। कार्यों के क्रियान्वयन में अनावश्यक विलम्ब नहीं होगा। साथ ही विकास कार्यो के लिए उपलब्ध धनराशि का उपयोग स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों की निगरानी में होगा। इससे पैसे का दुरूपयोग कम होगा।
2. विकेन्द्रीकरण शासन व्यवस्था से किसान योजनाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चत होती है। विकास कार्यो की प्राथमिकता स्थानीय स्तर पर, स्थानीय लोगों द्वारा, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप तय की जायेगी व विकास कार्यक्रम उपर से थोपने के बजाय स्थानीय स्तर पर तय किये जायेंगे।
3. विकास कार्यों का स्थानीय स्तर पर नियोजन एवं क्रियान्वयन किये जाने से उनका प्रभावी निरीक्षण होगा। नियोजन में स्थानीय समुदाय की भागीदारी होने से कार्यो के क्रियान्वयन व निगरानी में भी उनका सक्रिय भागीदारी बढेगी। इससे कार्य समय पर पूरे होंगे तथा उनकी गुणवत्ता में सुधार होगा।
4. स्थानीय स्तर पर स्थानीय साधनों के उपयोग से अपना कोश विकसित होने से व कार्य करने से कार्य की लागत भी कम आयेगी।
5. इस व्यवस्था में क्षेत्रिय या स्थानीय अधिकारियों को केन्द्रीय सत्ता से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए वे शीघ्र निर्णय ले सकते है। और इससे कार्य में विलम्ब नहीं होता।

निष्कर्षः-

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि विकेन्द्रीकरण के पीछे बुनियादी सोच वही है कि अनेक मुद्दों समस्याओं का निपटारा स्थानीय स्तर पर ही अच्छे तरीके से किया जा सकता है। लोगों को अपने इलाके की समस्याओं की बेहतर समझ होती है। लोगों की इस बात की अच्छी जानकारी होती है कि पैसा कहाँ खर्च किया जाय और चीजों का अधिक कुशलता से उपयोग किस तरह किया जाय। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक शासन पद्धति में विकेन्द्रीकरण की सोच स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक तरीके से चयनित सरकार पर जोर देती है एवं यह भी सुनिश्चित करती है कि स्थानीय इकाई को सभी अधिकार शक्तियाँ व संसाधन प्राप्त हो ताकि वे स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके व अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. सरोज चोपड़ा, स्थानीय स्वशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2000, पृ0 3
2. प्रमोद कुमार अग्रवाल, भारत में पंचायतीराज, ज्ञान गंगा, नई दिल्ली 2013, पृ0 70
3. इकवाल नारायण, डेमोक्रेटिक डिसेन्ट्रलाइज नेशन द आइडिया, द इमेज एण्ड दि रियलिटी, संकलन आर0बी0 जौन
4. डॉ शर्मा अशोक, भारत में स्थानीय प्रशासन, 096
5. इकवाल नारायण, डेमोक्रेटिक डिसेन्ट्रलाइज नेशन द आइडिया, द इमेज एण्ड दि रियलिटी, संकलन आर० बी० जौन
6. एम0 के0 गाँधी, हरिजन सेवक, 18 1940
7. सिद्धराज ढढढा, मेरे सपनों का भारत, सर्वसेवा संघ प्रकाशक, वाराणसी, 1951 पृ0 18-19
8. कविन्स नारमन, टाक्स विथ नेहरू, वनडे कम्पनी, न्यूयार्क, 1959, पृष्ठ, 18-19
9. जे० सी० जौहरी, 1986, भारतीय राजनीति, विशाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ० 18-19
10. आर० पी० जोशी व अरुण भारद्वाज, 2000 में भारत में स्थानीय प्रकाशन, शीलसंस, जयपुर, पृष्ठ 80

मिथिला में भारत छोड़ो आंदोलनः एक संक्षिप्त अध्ययन

विवेक कुमार अमर

अतिथि सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, भारत सेवक समाज महाविद्यालय, सुपौल

सारः

मुट्ठी भर अग्रेंजों ने भारत पर लगभग 200 वर्षों तक राज किया, मगर जब भारत की आम जनता समझ गई की अंग्रेज हमारे दुश्मन है, अतः अंग्रेजों की खिालफत करनी चाहिए तब अंग्रजों को भारत छोड़के जाना पड़ा। इस आम जनता को जगाने के लिये गांधीजी, सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, वीर भगत सिंह जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने बखूबी प्रयास किया। भारत के इतिहास में गांधीजी ने अंग्रेजों के खिलाफ कई सारे आंदोलन किये, मगर जिस आंदोलन में मुख्य नेताओं की गिरफ्तारी के बाद संपूर्ण नेतृत्व आम जनता की और भारत में अंग्रेजों की स्थिति खराब की वह था 1942 ई0 का भारत छोड़ो आंदोलन। इस आंदोलन में जनता का उग्र रूप देखने को मिला, जिसमें बिहार व मिथिला के स्वतंत्रता सेनानियों ने बढ-चढकर हिस्सा लिया। मिथिला में सड़क, पुल तोड़ने के अलवा रेल-पटरियों को भी खूब उखाड़ा गया। अंग्रजी दमन के बावजूद भी मिथिला की धरती से योगेंद्र शुक्ल, रामनंदन मिश्र, सूरज नारायण सिंह, कुलांनद वैदिक आदि क्रांतिकारी सामने आये। भारत छोड़ो आंदोलन में मिथिला के दरभंगा, मधुबनी, मुजफ्फरपुर, हाजीपुर, पूर्णियां आदि जिलों की भूमिका सराहनीय रही।

विशेष शब्दः स्वदेशी, आजाद दस्ता, योगेन्द्र शुक्ल, दरभंगा।

मिथिला में भारत छोड़ो आंदोलनः एक संक्षिप्त अध्ययन

भारत छोड़ो आंदोलन गांधीजी के द्वारा आंरभ किये गये आंदोलनों में इतना ज्यादा महत्व रखता है कि इसके आंदोलन के कुछ साल बाद अंग्रेजों को वाकई भारत छोड़ के जाना पड़ा। 1942 ई0 की इस महान क्रांति में मिथिला का योगदान कही से भी कमतर नहीं था, बल्कि यहॉ के स्वतंत्रता सेनानियों ने बढ-चढकर गांधीजी के आव्हान पर आंदोलन में हिस्सा लिया। चूंकि दूसरे विश्वयुद्ध के समय जापान का भय लगातार बढता जा रहा था। अतः भारत में खतरे कि स्थिति में स्वदेशी शासन का होना जरूरी था पर अंग्रेजों ने भारत में फिलहाल किसी स्वदेशी शासन की बात नहीं स्वीकारी। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस की 8 अगस्त 1942 ई0 को हुई बैठक में अंग्रेजो के भारत छोड़ने का प्रस्ताव बंबई में पारित किया गया और गंधीजी के मार्गदर्शन में आजादी प्राप्ती की दिशा में सारे भारतीय चलने की तैयार हो गये। तुरंत अगले दिन 1 अगस्त को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, बिहार में भी राजेन्द्र बाबू को अंग्रेजी हुकूमत ने गिरफ्तार कर लिया। कांग्रेस व उनके जैसे अनेक क्रांतिकारी संगठनों को अवैध घोषित कर आंदोलन को शुरूआत में ही दबाने की कोशिश की गयी।[1]

मिथिला में छात्रों ने पूरे बिहार की तर्ज पर जोरदार हड़ताल किया। छात्रों ने भी कुलानंद वैदिक के पीछे चलते हुए दरभंगा में अपनी ताकत दिखाई। पुलिस ने दरिंदगी दिखाई, छात्रों को हवालात का डर दिखाया गया पर छात्र डरे नहीं। सारे देश में भारत छोड़ो आंदोलन को दबाने के लिये पुलिसीया हिंसा हुई, मगर मिथिला के लाल शहीद भी हुए पर आंदोलन चलता रहा।[2] समस्तीपुर में मि0 एटकिन नामक अंग्रेज को आंदोलन के दमन का कार्य सौंपा गया और उसने ताजपुर के डॉक्टर मुक्तेश्वर सिंह को कोड़े से पीटा व जेल में बंद कर दिया। वह सेना के सिपाहियों की मदद से ग्रामीणों का पीटता व उनके घरों को आग के हवाले कर देता था। मिथिला के दिघरा व हरपुर जैसे गॉवों में उसने आम लोगों के घरों के साथ समानों में भी आग लगा दिया।[3] क्रांतिकारी माह अगस्त की बारह तारीख को मुजफ्फरपुर जिलों सड़क, पूल, पटरी आदि को क्रातिकारियों ने धवस्त कर अपना विरोध प्रदर्शन किया। सीतामढ़ी में भी उपर्युक्त सारे कार्य आंदोलनकारियों द्वारा किया गया। छात्रों ने कमाल करते हुए सीतामढी स्टेशन के भवन पर भारत का झंडा फहराके अंग्रेजी सत्ता को शानदार चुनौती दी। झंडा फहराने का कार्य सुरसंड व बेलसंड थाने जैसे मिथिला के अन्य इलाकों में भी बरदूबी हुआ। यहॉ तक की मधुबनी में भी वाटसन विद्यालय में भी उपर्युक्त चर्चित कार्य जोर-शोर से हुआ छात्र ट्रेन कब्जा करके उसकी मदद से राह में आने वाले ग्रामीणों को कांति में भाग लेने को उत्साहित करते थे। हाजीपुर मे रेलवे गोदाम को क्रांतिकारियों ने लूट लिया। मधुबनी व पंडौल में भी तारों का काटने का कार्यक्रम बखूबी हुआ।[4] कहने का मतलब है कि संपूर्ण मिथिला में लगभग रेल संचालन का BIi करने की कोशिश क्रांतिकारियों द्वारा की गई। अंग्रेजों द्वारा दमन भी खूब जोरदार तरीके से किया गया। अंग्रेजी पुलिस ने मिथिला के गॉवों को भरपूर लूटने का कार्य किया। गरीबों के घर जला दिये गये। ये घर जलाने का घृणित कार्य रतनपूर, सरिसबपाही, पंडौल, फुलपरास आदि मिथिला के क्षेत्रों में किया गया। मिथिला के प्रसिद्ध कांतिकारियों में यमुना सिंह, शिवकांत ठाकूर, कमला कांत झा, सूरज नारायण सिंह व रामनंदन मिश्र आदि शामिल थे। इन्होंने भारत-छोड़ो आंदोलन में

बखूबी हिस्सा लिया। सूरज बाबू व रामनंद बाबू ने तो बिहार नहीं वरन् संपूर्ण भारत के क्रांतिकारी युवा नेताओं में से एक जय प्रकाश नारायण को जेल से भागने में भी मदद की। मिथिला के कांतिकारियों ने आजाद दस्ता के क्रियाकलापों में भी अपना शानदार योगदान दियो जिससे भारत की आजादी की लड़ाई को खूब बल मिला।[5] यह दस्ता छापामार पद्धति द्वारा देश को आजादी की राह पर ले जाना चाहता था। मिथिला के लाल सूरज नारायण सिंह व उनके साथियों की मदद से जयप्रकाश बाबू ने इस संगठन की स्थापना की थी। मिथिला की ही धरती से भारत छोड़ो आंदोलन मे योगेंद्र शुक्ल भी जेल गये।[6] सरकारी ऑकड़ो के अनुसार 30 नवंबर तक बिहार में लगभग 15000 लोगों को गिरफ्तारी हो चूकी थी और पुलिसीया दमन व गोलीकांड मे 134 लोग मारे जा चूके थे जो मारे नहीं गये बल्कि देश की आजादी की लड़ाई में शहीद होनेवाले वीर थे। मिथिला के जिलों में सर्वाधिक दरभंगा से 1189 गिरफ्तारियॉ अंग्रेजी हुकुमत ने की, वही मुजफ्फरपुर से 893 व पूर्णिया से 888 गिरफ्तारियॉ हुई। दमनों ने ओदोलनकारियों का हौसला तोड़ने की पूरजोर कोशिश की मगर यह आंदोलन आगे बढ़ता रहा। हाजीपुर, पुपुरी, सीतामढ़ी, दरभंगा आदि जगहों पर कुछ दिनों के लिये जनता का राज्य स्थापित हो गया था। ये कही न कही अंग्रेजी सत्ता के लिये बड़ी बात थी कि अब छोटे-छोटे इलाके भी उनके नियंत्रण में नहीं थें।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भारत छोड़ों आंदोलन के ही दूरगामी परिणामों के फलस्वरूप अंग्रेज भारत छोड़के निकल गये। सबसे बड़ी बात यह थी की इस आंदोलन में आम जनता ने खुलकर हिस्सा लिया। चूंकि सभी बड़े नेताओं की गिरफ्तारी हो गयी तो छात्रों व नये युवा क्रांतिकारियों ने मिथिला सहित पूरे भारत में क्रांति को बुलंदियों पर पहूँचा दिया। अतः भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसमें मिथिलावासियों ने बढ-चढकर हिस्सा लिया। इन्हीं महान विभूतियों के प्रयासों के वजह से हम आज आजाद भारत में सांसे ले रहे है।

संदर्भ

1. रामप्रकाश शर्माः मिथिला का इतिहास, कुलसचिव, के0 एस0 डी0 एस0 यु0 दरभंगा, दरभंगा, प्रथम संस्करण 1971, पृ0 411 - 412।
2. जटाशंकर दास, स्वतंत्रता आंदोलन में मिथिला, बिहार राज्य अभिलेखागार पटना, पृ0 संख्या 46
3. रामप्रकाश शर्माः पूर्वोकत, पृ0 संख्या 414 - 415
4. कोलेश्वर रायः बिहार का इतिहास, किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 संख्या 490 - 491
5. जटाशंकर दास, पूर्वोक्त, पृ0 संख्या 47
6. रामप्रकाश शर्माः पूर्वोक्त पृ0 संख्या 415 - 416
7. कौलेश्वर रायः पूर्वोक्त, पृ0 संख्या 494,500

समकालीन हिन्दी रंगमंच और मोहन राकेश के नाटक

रंजीत कुमार

शोध-छात्रा, हिन्दी विभाग, बी.एन0 एम. यू. मधेपुरा (बिहार)

हर संवेदनशील रचनाकार का साहित्य उसके व्यक्तित्व की पहचान होता है। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार व्यक्ति और उसकी कृति में रक्त का संबंध है, अतएव एक का विश्लेषण दूसरे को साथ लिये बिना असंभव है। मदन मोहन गुगलानी से मोहन राकेश जिस परिवेश और परिस्थिति में ढल कर तैयार हुआ उसकी छाया हम उनकी रचनाओं में देख सकते हैं। मोहन राकेश आधुनिक हिन्दी रंगकर्म की एक विशिष्ट, प्रेरक और प्रखर प्रतिभा थे। उनके नाटकों के तिलिस्म को तोड़ने और उनके वास्तविक महत्त्व को जानने की कुंजी उनके सूक्ष्म, जटिल एवं सम्मोहक रंग-शिल्प में छिपी है। एकाध अपवाद को छोड़कर समकालीन हिन्दी भारतीय रंगमंच का शायद ही कोई उल्लेखनीय निर्देशक या कलाकार होगा जिसने कभी मोहन राकेश का कोई छोटा-बड़ा नाटक न किया हो। मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। किंतु समकालीन नाटककार के रूप में उनका स्थान सर्वोपरि है। आधुनिक हिन्दी नाटक के विकास यात्रा में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे-अधूरे' ने महत्त्वपूर्ण योगदान निभाया है।

मूल शब्द: समकालीन हिन्दी, मोहन राकेश, नाटक, संवेदनशील रचनाकार, हिन्दी रंगकर्म

बहुमुखी प्रतिभा के धनी मोहन राकेश ने गद्य की अनेक विधाओं में काम किया किन्तु उनकी विशिष्ट पहचान एक संवेदनशील नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में है। मोहन राकेश का जन्म 7 जनवरी 1924 को अमृतसर में हुआ। इनका मूल नाम मदन मोहन गुगलानी था। पहली बार मदन मोहन राकेश के नाम से उनकी कहानी 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई और बाद में मोहन राकेश के नाम से हिन्दी साहित्य जगत में चर्चित हो गये। मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। उन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास, यात्रा विवरण, निबंध आदि लिखकर साहित्य क्षेत्र में अपना स्थान स्वयं निर्धारित किया है। किंतु नाटककार के रूप में मोहन राकेश को विशेष ख्याति मिली है। मोहन राकेश को कहानी के बाद सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली। हिंदी नाटकों में भारतेंदु और प्रसाद के बाद का दौर मोहन राकेश का दौर है जिसे हिंदी नाटकों को फिर से रंगमंच से जोड़ा। उन्होंने अच्छे नाटक लिखे और हिन्दी नाटक को अँधेरे बन्द कमरों से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐन्द्रजालिक सम्मोहक से उबारकर एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया। वस्तुत: मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक नहीं हैं। वे हिन्दी में लिखे अवश्य गए हैं, किन्तु वे समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। उन्होंने हिन्दी नाटक को पहली बार अखिल भारतीय स्तर ही नहीं प्रदान किया वरन् उसके सदियों के अलग-थलग प्रवाह को विश्व नाटक की एक सामान्य धारा की ओर भी अग्रसर किया। प्रमुख भारतीय निर्देशकों इब्राहीम अलकाजी, ओम शिवपुरी, अरविन्द गौड़, श्यामानन्द जालान, राम गोपाल बजाज और दिनेश ठाकुर ने मोहन राकेश के नाटकों का निर्देशन किया। हिन्दी नाटक के क्षितिज पर मोहन राकेश का उदय उस समय हुआ जब स्वाधीनता के बाद पचास के दशक में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का ज्वार देश में जीवन के हर क्षेत्र को स्पन्दित कर रहा था। उनके नाटकों ने न सिर्फ नाटक का आस्वाद, तेवर और स्तर ही बदल दिया, बल्कि हिन्दी रंगमंच की दिशा को भी प्रभावित किया। उसके पहले, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद जैसे प्रतिभावान रचनाकारों के बावजूद, हिन्दी नाटक अधिकांशत: या तो सस्ते में मनोरंजन का साधन बना हुआ था या फिर नाट्य पुस्तकों की दीवारों के पीछे बन्द था। पचास के दशक में उसे धीरे-धीरे एक अत्यन्त ही समर्थ किन्तु जटिल और परिश्रम तथा प्रशिक्षण-साध्य कला माध्यम के रूप में स्वीकृति मिलना शुरू हुआ, और साथ ही नाट्यकर्मियों से भी अधिक जागरूकता, संवेदनशीलता और कलात्मक गंभीरता की अपेक्षा होने लगी।[1] 1958 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ का एक दिन' को सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिए और कलकत्ते की नाट्यमंडली 'अनामिका' को विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' के सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण के लिए पुरस्कारों में इस बदलती हुई स्थिति की ही स्वीकृति दी। उसके बाद से हिन्दी नाटक लगातार आगे बढ़ता रहा है।[2] और सारी सीमाओं के बावजूद उसके क्रमश: हिन्दी के सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में और देश के नाटक साहित्य में सार्थक स्थान हासिल किया है।

मोहन राकेश ने कथ्य, शिल्प और प्रयोग तीनों ही दृष्टियों के आधुनिक नाटकों की शुरुआत की। नाटक की रंग मंचीयता को ध्यान में रखते हुए इनके नाटक सफल नाटक हैं। यथार्थ धरातल से जुड़े, परिष्कृत नाट्य शिल्प वाले मोहन राकेश के नाटकों ने हिंदी नाटक और रंग मंच को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। मोहन राकेश के तीनों नाटकों में स्त्रीवादी चिंतन विकसित होता हुआ दिखाई देता है। 'आषाढ का एक दिन'(1958) में आदर्श भारतीय स्त्री का समर्पण है, जबकि 'लहरों के राजहंस' (1963)

में स्त्री के अहं-पोषित रूप को अभिव्यक्ति मिली है, वहीं 'आधे-अधूरे' (1969) में आर्थिक रूप से सक्षम और आधुनिक स्वतंत्र नारी निकम्मे पुरुष से विरोध करती हुई अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु विद्रोह करती है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए स्वतंत्र रूप से पूर्णता की खोज करती है तथा एक अधूरा नाटक 'पैर तले की जमीन है। मोहन राकेश के अंतिम नाटक का प्रकाशन उनके निधन के बाद हुआ। इसे वह अपूर्ण लिखा छोड़ गये थे इस नाटक को उनके मित्र कमलेश्वरजी ने पूरा किया। उनका प्रकाशित पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' वास्तव में यही वह हिन्दी का पहला नाटक भी था जिसने हिन्दी रंगमंच के अपने स्वतंत्र स्वरूप की नींव भी रखी।

आषाढ़ का एक दिन

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया आधुनिक बोध के विविध आयामों को उद्घाटित करने वाला यह नाटक आधुनिक हिन्दी नाट्य युग का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। इतिहास प्रसिद्ध कवि कालिदास के रूप में रचनाकार के सृजन के विविध द्वन्द्वों, कालिदास, मल्लिका, प्रियंगुमंजरी तथा विलोम जैसे पात्रों के रूप में आधुनिक स्त्री पुरुष के संबंधों की जटिलता को, परिवेश से कटे विवश आधुनिक मानव की पीड़ा को प्रस्तुत किया है। नाटक की भाषा पात्र और विषय वस्तु के अनुकूल और संप्रेषणीयता के गुण से युक्त है। संवाद-योजना, रंग-मंचीयता के अनुकूल क्षिप्र, चरित्रोद्घाटक, उद्देश्योन्मुख और प्रभावी है। अभिनेयता के लिये कथावस्तु, पात्रों की सीमित संख्या संक्षिप्त प्रेषणीय संवाद ध्वनि-संकेत, स्थान-संकलन की दृष्टि से यह सफल नाटक है।[3] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक की श्रृंखला में 'आषाढ़ का एक दिन' एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में उल्लेखनीय है। यह मोहन राकेश का सर्वप्रथम, बहुचर्चित तथा लोक प्रिय नाटक है। इसमें कवि कालिदास को एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में ऐतिहासिक पात्रों के साथ काल्पनिक पात्र भी है। मोहन राकेश ने इतिहास और कल्पना के सामंजस्य से प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों को समन्वित करके शाश्वत सत्य को युगानुरूप पुष्ट किया है। इस नाटक का कालिदास इतिहास का कालिदास नहीं, मोहन राकेश कालीन कालिदास है। 'आषाढ़ का एक दिन' हिंदी के युगान्तरकारी नाटककारों में से एक मोहन राकेश की एक कृति है। इस नाटक को हिंदी साहित्य में इसलिए जाना जाता है क्योंकि इस नाटक से हिंदी रंगमंच में यथार्थवाद की उस समय नयी परम्परा को एक बहुत मजबूत प्रोत्साहन मिला। मोहन राकेश ने कहा कि हिंदी रंगमंच पाश्चात्य रंगमंच से अत्यधिक भिन्न है। हमारे पास उपलब्धियों को देखने के लिए पाश्चात्य रंगमंच ही है क्योंकि हिंदी रंगमंच किसी एक विचार विशेष से बंधा हुआ नहीं है। मोहन राकेश ने हिंदी रंगमंच के उद्देश्य को भी परिभाषित करने की कोशिश की है। उनका कहना है कि रंगमंच को हिंदी भाषी प्रदेश की दैनिक आवश्यकताओं और उनकी सांस्कृतिक महत्त्व को अभिव्यक्त करने वाला होना चाहिए और ऐसा पाश्चात्य रंगमंच की अंधाधुंध तरीके से नकल करने से संभव नहीं है। और इस बात के लिए सराहना होनी चाहिए कि इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कालिदास को कथानक में सम्मिलित किया गया है, जो कि अपने आप में स्वयं बहुत बड़े नाटककार थे। अगर यह कहा जाये कि इस नाटक का नायक कालिदास न होकर मल्लिका थी तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस नाटक को हिंदी साहित्य के कुछ शुरुआती स्त्री-प्रधान रचनाओं में जगह दी जा सकती है। तृतीय अंक में कालिदास के संवाद, जहाँ उन्होंने अपने मानसिक द्वंद्व का चित्रण किया है, भी कथानक की स्त्री प्रधानता को कम नहीं कर सके। मल्लिका का चित्रण एक स्वतंत्र, आत्म-निर्भर, विचारशील, आधुनिक और निर्णायक नारी के रूप में हुआ है। इस नाटक में इतिहास के पुनरुत्थानवादी काव्य की झलक कहीं से भी देखने को नहीं मिलती। मोहन राकेश ने अपने आपको कालिदास और मल्लिका के प्रसंग तक सीमित रखा है। अनावश्यक रूप से संस्कृति का गुणगान इस नाटक में देखने को नहीं मिलता है। कहानी के लिहाज से भी यह अत्यंत सीमित और सार-गर्भित रचना कही जायेगी। पातंजलि के एक उल्लेख के अलावा कहीं भी लेखक ने पात्रों के ज्ञान को दर्शाने के लिए संदर्भों का सहारा नहीं लिया जिससे पूरे नाटक में गति बनी रही है। भाषा अत्यधिक संस्कृतिनिष्ठ नहीं है, पढ़ने पर प्रवाह बना रहता है। इस नाटक के मंचन देश-विदेश में हुये हैं जिनमें से कुछ प्रसिद्ध लोगों द्वारा अभिनीत और निर्देशित मंचनों के दृश्य इस पुस्तक में दिए गए हैं। मोहन राकेश को उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के सर्जक के रूप में जाना जाता है। यह नाटक सन् 1958 में प्रकाशित हुआ था। इसे हिंदी के आधुनिक नाटकों के क्रम का पहला नाटक भी कहा जाता है। सन् 1959 में इसे सर्वश्रेष्ठ नाटक होने का सम्मान संगीत नाटक अकादमी के द्वारा दिया गया था। मोहन राकेश के इस वैचारिक नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' को लेकर मणिकौल ने सन् 1971 में एक फिल्म का निर्माण भी किया था, जिसे फिल्मफेयर अवार्ड भी मिला। मोहन राकेश के द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' को हिंदी साहित्य जगत में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

लहरों के राजहंस

यह नाटक भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया आधुनिक बोध कराने वाला प्रभावशाली नाटक है। ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक दुविधाग्रस्त मानव के द्वन्द्व, उसकी पीड़ा अलगाव बेचैनी को पूरी नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है। महाकवि अश्वघोष की काव्य कृति सौन्दरानन्द पर आधारित नाटक में जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वंद्व के कारण गहराते पीड़ा बोध को उद्घाटित किया गया है जिसमें नाटककार पूरी तरह सफल हुआ है।4 संवाद-योजना, पात्रों की मनः स्थिति के अनुकूल सफल, यथार्थपरक, चुस्त और तीक्ष्ण है जिसके कारण नाटक की प्रभावान्विति सतत बनी रहती है। भाषा नाटक की मूल संवेदना के अनुसार भावों और विचारों को वहन करने वाली है। अभिनेयता

की दृष्टि से यह सफल नाटक है जिसके कारण कई संस्थाओं के द्वारा इसका सफल मंचन किया जा चुका है। 'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा, सशक्त नाटक है। 'आषाढ़ का एक दिन' यदि भावना में भावना का वरण की कहानी है तो 'लहरों के राजहंस' नारी के आकर्षण-विकर्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। एक में समर्पित नारी का चित्रण है तो दूसरे में रूप पर गर्व करने वाली नारी की विविध मनः स्थितियों के संदर्भों का आलेखन है।[5] कालिदास अपार मानसिक संघर्षों से पीड़ित आधुनिक मानव का प्रतिरूप तो नन्द प्रवृत्ति और निवृत्ति में पिसकर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर जीवन के चौराहे पर खड़ा है। इसमें नाटककार मोहन राकेश ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के मध्य उलझे हुए व्यक्ति की चेतना को नन्द और सुन्दरी के द्वंद्व के माध्यम से मुखरित करने का प्रयास किया है।

आधे-अधूर

मोहन राकेश का यह अत्यंत ख्याति प्रसिद्ध और चर्चित नाटक है। आधुनिक मध्य वर्गीय परिवार की विसंगतियों को यह नाटक यथार्थपरकता के साथ उद्घाटित करता है। पति-पत्नी के आपसी तनाव, परिवार के सदस्यों की घुटन, तनाव और बिखराव के रूप में पारिवारिक विघटन की समस्या को पूरी वास्तविकता के साथ यह नाटक सामने लाता है। आर्थिक आभावग्रस्तता और सुविधाओं की आकांक्षा, परिवेशगत दबाव और मानसिक तनाव में आधी-अधूरी जिन्दगी जीते पात्रों द्वारा पूर्णता पाने की लालसा में आपसी टकराहट नाटक की मूल संवेदना है। पत्नी सावित्री की कर्मठता तथा पारिवारिक जिम्मेदारी को अकेले उठाने के दर्द के साथ अपने महत्त्व का एहसास, पति महेन्द्रनाथ की निष्क्रियता जन्य निराशा और तनाव तथा पति के रूप में पत्नी की सम्पूर्ण पुरुष की अन्ततः असफल तालाश और इसी बीच परिवार के अन्य सदस्यों का एक दूसरे से कटाव इस नाटक का केन्द्र बिन्दु है। वस्तुतः यह नाटक मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं, तृष्णाओं, लगाव व तनाव की कहानी है जिसे 'एक स्तर पर स्त्री पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज' कहा गया है।[6] रंगमंच की दृष्टि से यह सफल नाटक है। यह नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की तुलना में भिन्न कोटि का नाटक है। आलोच्य नाटक में आज के मानव की अनियंत्रित एवं अंतहीन यंत्रणाओं के बीच नारी मुक्ति भावना, वैवाहिक संघर्षों की विडंबना, पुरुष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन मूल्यों का प्रकर्ष है। समूचा नाटक घर के चार दीवार के अंदर के अधूरापन की कथा व्यंजित करता है। 'आधे-अधूरे' में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार की मनोस्थितियों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है। 'आधे-अधूरे' के सभी चरित्र आधे अधूरे हैं। आधुनिक परिवेश में जी रहे यह पात्र कुंठा और संत्रास के शिकार हैं। महेन्द्रनाथ और सावित्री पति-पत्नी के अटूट रिश्ते में बंधे हैं, फिर भी अलगाव की विशद छाया उनके संबंध पर निरंतर बनी रहती है। पूर्णता की खोज में दौड़ रही स्त्री (सावित्री) अधूरे पुरुष (महेन्द्रनाथ) को स्वीकार नहीं कर पाती, जबकि अहं पर निरंतर चोटें खा रहा महेन्द्रनाथ सावित्री से प्रेम करते हुए भी मानसिक तंगदिली में जी रहा है। यही तनाव, संशय और कुंठा इन दोनों की नियति बन गई है। सावित्री महेन्द्रनाथ को एक निठल्ला, बेकार और पराधीन पुरुष मानती है, जिसकी अपनी कोई अहमियत या माद्दा नहीं है। इसीलिए वह इसकी खोज अन्य स्थानों पर, अन्य पुरुषों से करती रहती है। जबकि महेन्द्रनाथ भी स्वयं को बार-बार घिसने वाला रबर का एक टुकड़ा समझता है जिसकी परिवार के सदस्यों की दृष्टि में कोई अहमियत नहीं है। अपने अहं पर बार-बार कुठाराघात होने पर वह सावित्री को मारता-पीटता है जिससे परिवार में घृणा, उपेक्षा और तंगदिली की रुग्ण छाया बनी रहती है। आधुनिक दौर के पितृसत्तात्मक परिवेश में घर का आर्थिक बोझा उठाती हुई सावित्री जैसी भारतीय स्त्री की स्थिति का यथार्थ निरूपण मोहन राकेश ने इस नाटक में किया है। सावित्री 'आधे-अधूरे' नाटक का प्रमुख नारी-चरित्र एवं नाटक की 'नायिका' है। मध्यमवर्गीय स्त्री का प्रतीक जो अर्थांजन की खोज, आधुनिक स्त्री, पत्नी के रूप में, फैशन को अपनाने वाली आधुनिक महिला, कामकाजी स्त्री, अति महात्वाकांक्षी स्त्री, जीवन में अनंत इच्छाओं को रखनेवाली स्त्री। नाटक में वह महेंद्रनाथ की नौकरी पेशा पत्नी के रूप में चित्रित की गयी है। महेंद्रनाथ के साथ पिछले बाईस वर्षों से अपने वैवाहिक जीवन को ढो रही है। उसकी दो बेटियाँ -बिन्नी और किन्नी एवं बेटा है अशोक। घर की पूरी जिम्मेदारियाँ उसी पर हैं। कामचोर पति, दिनभर मैगजीन की कटिंग्स इकट्ठा करनेवाला निठल्ला लड़का, स्वयं के प्रेमी के साथ भाग जानेवाली स्वच्छंद बिन्नी और जिद्दी छोटी लड़की किन्नी से बना परिवार चलाते-चलाते तनाव और घुटन से तंग आ चुकी सावित्री का अहं उसे बार-बार मुक्त होने को प्रेरित करता रहता है नाटककार मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक की नायिका 'सावित्री' के द्वारा नारी की मुक्ति भावना, विघटनशील जीवनमूल्य, वैवाहिक संबंधों की विडंबना आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। यह नाटक स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित सामाजिक परिवेश में एक परिवार के आपसी तनाव के बीच उठते क्यों? और कैसे? के प्रश्नों का अपने ढंग से संश्लेषण है। खुद नाटककार उसके बारे में लिखते हैं- 'उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण।' सावित्री हँसते-खेलते जिंदगी जीना चाहती है, वह भी भरी-पूरी जिंदगी। उच्च वर्गीय औरतों की तरह जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करना चाहती है। 'आधे-अधूरे' आधुनिक मध्यवर्गीय, शहरी परिवार की कहानी है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने को अधूरा महसूस करता है। हर सदस्य अपने को पूर्ण करने की चेष्टा करता है। पत्नी सावित्री पति के पास काम नहीं रहने की वजह से नौकरी करने घर से बाहर निकलती है। उसे तब पति में दायित्वबोध की कमी नजर आती है। उसे लगता है कि वह सबसे बेकार आदमी है। वह सम्पूर्ण मनुष्य नहीं है। बाहर निकलने पर सावित्री की मुलाकात चार लोगों से होती है। एक है धनी व्यक्ति, वह मित्र स्वभाव का है और सज्जन

व्यक्ति है। दूसरा डिग्री धारी व्यक्ति शिवदत्त है जो सारे संसार में घूमता रहता है। वह एकनिष्ठ नहीं है। तीसरा सामाजिक व्यक्ति है, मनोज। वह सावित्री से दोस्ती तो गांठता है पर उसकी बेटी से प्रेम विवाह करता है। और चौथा व्यक्ति एक व्यापारी है। वह चालाक और घटिया किस्म का आदमी है। चालीस वर्षीय सावित्री जिसके चेहरे पर अभी भी चमक बरकरार है, अपनी जिन्दगी के खालीपन को भरने के लिए एक सम्पूर्ण पुरुष की तलाश में रहती है। इस क्रम में वह इन पुरुषों के सम्पर्क में आती है। इनसे संबंध बनाकर भी उसे पूर्णता का अहसास नहीं होता। हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उसका उपयोग करता है।

पैर तले की जमीन

यह मोहन राकेश का अन्तिम नाटक है जिसका खाका उन्होंने अपने जीवन काल में पूरा कर दिया था किन्तु इसे नाटक का आकार देने का कार्य उनके मित्र कमलेश्वरजी ने किया। पर इस बात का ध्यान रखा गया कि वह पूरी तरह से मोहन राकेश का ही नाटक रहे। उसमें किसी दूसरे के स्पर्श का आभास न हो। दो अंकों में विभाजित इस नाटक की सम्पूर्ण घटना एक ही स्थान पर घटती है। अपने मनोरंजन के लिये एक स्थान पर एकत्रित हुए लोगों के चेहरों से सन्निकट आती मौत से एक-एक कर के नकाब हटने लगते है। मृत्यु बोध व्यक्ति के अन्दर तरह-तरह के भाव पैदा करता है। अतीत की स्मृतियाँ, राग संबंधों से वितृष्णा तथा अपने किये गये अपराधों का तीव्र-बोध।[7] वस्तुतः यह नाटक मृत्यु बोध के त्रासद, पीड़क भयानक क्षणों में अकेलापन, भय, निर्णय और बेबसी जैसे मनोभावों को यथार्थ शैली में नाटकीयता के साथ व्यक्त करता है। 'पैर तले की जमीन' मोहन राकेश का अंतिम, किंतु अधूरा नाटक है जिसे उनके आत्म मित्र कमलेश्वर ने राकेश के मृत्यु के बाद पूरित किया। अनिता राकेश के शब्दों में- 'पैर तले की जमीन' को अपनी आँखें मूंद जाने से वर्षों पहले ही राकेश ने लिखा था। जिस दिन धोखा देकर वे सदा के लिए चले गये थे तब भी टाइपरैटर पर इसी नाटक का एक पृष्ठ, आधा टाइप किया, आधा खाली रह गया था। इस नाटक में राकेश ने शब्दों और नेपथ्य की ध्वनियों के मिले-जुले प्रभाव को रंगमंच पर एक नये प्रयोग के रूप में प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के सामाजिक मूल्य-विघटन तथा मानवीय संबंधों के खोखलापन को मूर्त किया है।

उपसहांर

मोहन राकेश जी की सृजनात्मक प्रवृत्तियों एवं कृतियों ने उन्हें स्वतंत्र रूप से जीने को बाध्य किया। इन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना, एकांकी जैसी सभी विधाओं पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी। मोहन राकेश को प्रसादोत्तर युगीन प्रयोगशील नाटक साहित्य का प्रमुख स्तंभ माना जाता है। इन्होंने हिंदी साहित्य को एकांकी, नाटक, निबंध समीक्षा, यात्रा संस्मरण आदि पर विभिन्न कृतियां प्रदान की हैं जिनमें आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, अंडे के छिलके, आधे-अधूरे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश के नाटक जब प्रकाशित हो रहे थे तब हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का वैसा रूप स्पष्ट नहीं था जैसा कि आज है। संविधान ने स्त्री-पुरुष समानता का अधिकार तो दे दिया था किंतु 1956 में हिंदू कोड़ बिल पारित होने के बाद ही स्त्रियों को वयस्क मताधिकार प्राप्त हुआ। कानूनी स्तर पर समानता मिलने पर भी सामाजिक स्तर पर नारी की स्थिति पिछड़ी हुई थी जिसका प्रतिबिंब साठ के दशक की चर्चित कथाकार उषादेवी मित्रा के उपन्यासों में देखा जा सकता है। 1960 के बाद कृष्णा सोबती, शिवानी, उषा प्रियंवदा जैसी कई नयी महिला कथाकार सामने आई जिन्होंने शिक्षित, नौकरी पेशा और प्रणय संबंध में बंधी स्त्रियों की समस्यओं को अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया। किंतु सत्तर के दशक तक नारी का वह स्वतंत्र रूप साहित्य में नहीं दिखाई देता, जो नारी-विमर्श के जोर पकड़ने के पश्चात के साहित्य में दिखाई देता है। इस परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश के नाटकों को देखा जा सकता है। इनके नाटकों में मुख्य रूप से स्त्री-पुरुष संबंध और पुरुष अहं की समस्या का निरूपण किया गया है। अतः मोहन राकेश के नाटकों में पुरुष अहं और यह अहं स्त्रियों की स्वतंत्रता, उनके अधिकारों में किस प्रकार की भूमिका निभाता है उसे स्त्रीवादी विमर्श के आईने में देखना रोचक विषय बन सकता है। मोहन राकेश द्वारा हिंदी साहित्य की अनंत सेवा की गई जिसके लिए वे हमेशा स्मरणीय रहेंगे तथा याद किए जाते रहेंगे। इनकी कृतियां हिंदी साहित्य की अक्षय निधि हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. आधुनिक हिन्दी नाटक, अग्रदूत-मोहन राकेश -गोविन्द चातक।
2. पारसी हिन्दी रंगमंच -डॉ0. लक्ष्मीनाराण लाल।
3. मोहन राकेश के साहित्य में सामाजिक यथार्थ -डॉ0 बसन्त कुमार परिहार।
4. लहरों का राजहंस -मोहन राकेश।
5. आषाढ़ का एक दिन -मोहन राकेश।
6. आधे अधूरे -मोहन राकेश।
7. नई कहानी के आंदोलन के स्तंभ मोहन राकेश -ओम शिवपुरी।

प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० तुषार रंजन

सहायक आचार्य (बी०एड०) विभाग, शिवपति स्नातकोत्तर महाविद्यालय शोहरतगढ़ सिद्धार्थ नगर, (उ०प्र०)

भूमिका:

शिक्षक समाज का सजग प्रहरी है। यह समाज की प्रत्येक गतिविधि पर न केवल पैनी दृश्टि रखता है बल्कि समाज की प्रत्येक आवश्यकताओं और समस्याओं से प्रतिक्षण परिचित भी होता रहता है। समाज में शिक्षक का स्थान सदैव उच्च रहा है। उसके आदर्ष व आचरण समाज को सदैव दिशा देते रहे हैं। समाज अपनी प्रत्येक आवश्यकताओं व समस्या-समाधान के लिये शिक्षकों की ओर ही आशापूर्ण दृश्टि से देखता रहा है। शिक्षक का व्यवहार व व्यक्तित्व समाज की दशा व दिशा तय करता है। यदि वह समाज के साथ मित्रवत एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रखता है तो वह समाज के सम्बन्ध में अधिक जागरूक हो सकता है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समाज का विश्वास अर्जित कर लेता है। फलस्वरूप वह अपने उत्तरदायित्वों का अधिक कुशलतापूर्वक निर्वहन कर पाता है।

कई बार एक शिक्षक को विभिन्न समस्याओं पर अध्ययन करने के लिये एकान्तवासी व एकाग्रचित्त होना पड़ता है ताकि वह उन समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत कर सके। ऐसे में उसे समाज में दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। कमी वहदार्शनिक की भाँति चिन्तनशील व्यक्तित्व का धनी (अन्तर्मुखी) जान पड़ता है तो कभी समाज के पथ-प्रदर्श के रूप में उनके कदम से कदम मिलाकर चलने वाला अभिन्न मित्र (बहिर्मुखी)। हर रूप में वह सदैव सामाजिक और राष्ट्रीय हितों की रक्षा हेतु ही प्रयत्नशील रहता है। एक शिक्षक का व्यक्तित्व उसकी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता पर व्यापक प्रभाव डालता है। ऐसी स्थिति में जिस प्रकार ''न अति वर्शा न अति धूप'' के माध्यम से प्रकृति के सन्तुलन की महत्ता को स्वीकृत किया जाता है, उसी प्रकार से शिक्षक का अत्यन्त अन्तर्मुखी या अत्यन्त बहिर्मुखी हो जाना भी उचित नहीं जान पड़ता है। कई बार उसका व्यक्तित्व समाज में उसकी छवि को नकारात्मक रूप में प्रदर्शित करने लगता है। प्राथमिक शिक्षकों में उनके व्यक्तित्व का विशेष महत्व होता है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी कच्चे घड़े के समान होते हैं जिन्हें एक सही आकार देना शिक्षक का दायित्व होता है। अत: शिक्षक के अन्तर्मुखी एवं बहर्मुखी व्यक्तित्व का ऑकलन किया जाना आवश्यक है। इसलिए शोधार्थी द्वारा अपने शोध प्रपत्र में प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. प्राथमिक शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना करना।
2. प्राथमिक शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ:

1. प्राथमिक शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. प्राथमिक शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि:

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण प्रविधि पर आधारित है क्योंकि इसमें व्यापक पर्यवेक्षण, विश्लेषण एवं निश्कर्श विवेचन के आधार पर संकलित प्रदत्तों को विश्लेषण किया गया है। जनसंख्या के रूप में आजमगढ़ जनपद में अध्यापनरत प्राथमिक शिक्षकों को रखा गया है। न्यादर्श के रूप में 50-50 शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का चयन किया गया है। शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व को ज्ञात करने हेतु डॉ0 पी0एफ0 अजीत और डॉ0 आर0 अग्निहोत्री द्वारा निर्मित अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी सूची का प्रयोग किया गया है। संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान मानक विचलन एवं टी-अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

निश्कर्श एवं विवेचन:

सारणी-1: प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व कि तुलना

Variable	N	M	S.D.	D	D	टी– अनुपात	सार्थकता
प्राथमिक स्तर के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले शिक्षक	25	34.87	3.00	2.73	0.84	3.25	0.05 स्तर पर सार्थक
प्राथमिक स्तर के बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले शिक्षक	25	37.60	2.97				

विश्लेषण:

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के प्राप्ताँकों का मध्यमान 34.87 तथा मानक विचलन 3.00 है। जबकि प्राथमिक शिक्षकों के बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के प्राप्ताँकों का मध्यमान 37.60 तथा मानक विचलन 2.97 है। परिगणित टी-अनुपात 3.25 है जो स्वतन्त्रयांश (df) 48 के लिये सार्थकता स्तर .05 पर सी0आर0-सारणीमान 2.01 से अधिक है, जो सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, को अस्वीकृत कर दिया गया। चूंकि प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं का मध्यमान अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के मध्यमान से उच्च है। अत: प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के व्यक्तित्व में बहिर्मुखता का स्तर उच्च है।

व्याख्या:

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के व्यक्तित्व में बहिर्मुखता का स्तर उच्च होने का सम्भावित कारण उनका समाज से निरन्तर जुड़ाव, उनके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो विभिन्न सामुदायिक कार्यों का भी शामिल होना, उन्हें प्राप्त होने वाला बहु आयामी प्रशिक्षण आदि हो सकता है जबकि उनकी अन्तर्मुखता में उनकी सांवेगिक दशाएँ, परिस्थितियों के साथ समन्वय न स्थापित कर पाना एवं शैक्षिक परिस्थितियों से तालमेल न स्थापित कर पाना आदि हो सकते हैं।

आरेखीय स्पष्टीकरण:

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी स्थितियों को निम्नलिखित आरेख के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

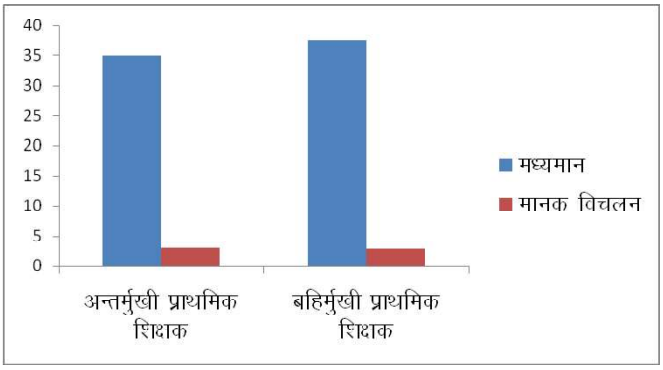

सारणी-2: प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना

Variable	N	M	S.D.	D	D	टी-अनुपात	सार्थकता
प्राथमिक स्तर के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाली शिक्षिकाएं	25	34.75	3.45	1.86	0.99	1.88	0.05 स्तर पर असार्थक
प्राथमिक स्तर के बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली शिक्षिकाएं	25	36,61	3.60				

विश्लेषण:

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के प्राप्ताँकों का मध्यमान 34.75 तथा मानक विचलन 3.45 है जबकि प्राथमिक स्तर की शिक्षकाओं के बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के प्राप्ताँकों का मध्यमान 36.61 तथा मानक विचलन 3.60 है। परिगणित टी-अनुपात 1.88 है जो स्वतन्त्रयांश (df) 48 के लिये सार्थकता स्तर .05 पर सी0आर0-सारणीमान 2.01 से कम है, जो असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, को स्वीकृत कर दिया गया अर्थात प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं में अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी स्थितियाँ समान है।

व्याख्या:

प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के समान होने का आशय शिक्षिकाओं द्वारा विद्यालयी गतिविधियों में विशेष रूप से सहभागिता की जाती है। सामाजिक एवं वाह्य परिवेश के साथ उनका बहुत जुड़ाव नहीं होता है। इसके साथ ही शिक्षिकाओं में विभिन्न सह-शैक्षिक गतिविधियों एवं सामुदायिक कार्यो में सहभागिता न रखने के कारण उनमें अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता की स्थिति समान होती है।

आरेखीय स्पष्टीकरण:

प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी स्थितियों को निम्नलिखित आरेख के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

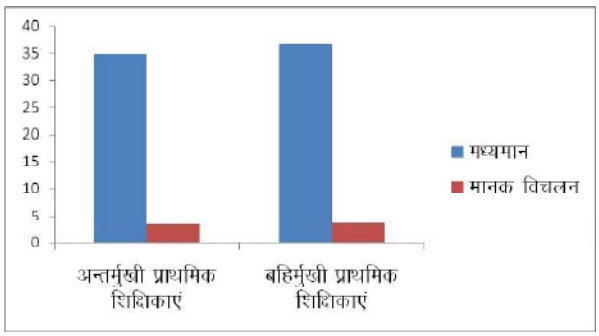

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सांख्यकीय विश्लेषण के आधार पर सार्थक एवं उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई। जिसके आधार पर प्राथमिक शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलनात्मक स्थिति का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं-

1. प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं का मध्यमान अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले शिक्षकों

की प्रतिक्रियाओं के मध्यमान से उच्च पाया गया। अर्थात् प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के व्यक्तित्व में बहिर्मुखता का स्तर उच्च है।

2. प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया अर्थात प्राथमिक स्तर की शिक्षिकाओं में अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्बन्धी स्थितियाँ समान है।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, आर.एन. और अस्थाना: ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1987.
2. आलपोर्ट, जी0डब्लू0: पर्सनालिटी ए साइकोलोजिकल इन्टरप्रेटेशन हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क 1937.
3. तिवारी, उमेश चन्द्र (2005): सामान्य बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों के कार्य सन्तुष्टि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं व्यक्तित्व के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन'' पी-एच0डी0 वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2005.
4. गुप्ता, एस0पी0 (2008): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, षारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज.
5. सारस्वत, मालती (2004): शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, लखनऊ.
6. सिंह, कर्ण (2004): शिक्षा के नूतन आयाम, वसुन्धरा प्रकाशन, खीरी लखीमपुर
7. सिंह, एस0पी0 (2012): प्राथमिक शिक्षकों के व्यावसायिक दक्षता, कार्य संतुश्टि एवं शिक्षण व्यवहार पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव, शोध प्रपत्र, यूटोपिया, अमेठी उ0प्र0.

चौधरी छोटूराम की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में भूमिका

सरोज रानी

एम.ए., नेट-जे.आर.एफ. (राजनीति विज्ञान)

सारांश

सर छोटूराम स्वतंत्रता-पूर्व भारत के एक प्रमुख व्यक्ति थे, जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अपने योगदान के लिए जाने जाते थे। वह एक दूरदर्शी नेता थे जिन्होंने किसानों और ग्रामीण समुदायों की उन्नति के लिए अथक प्रयास किया। इस लेख का उद्देश्य इन तीन क्षेत्रों में सर छोटूराम की भूमिका और भारतीय समाज पर उनके प्रयासों के प्रभाव का पता लगाना है।

भूमिका

सर छोटूराम का जन्म 1881 में ब्रिटिश भारत में हुआ था और वे स्वतंत्रता-पूर्व काल के एक प्रमुख राजनीतिक व्यक्ति बन गए। वह किसानों के अधिकारों के कट्टर समर्थक थे और उन्होंने उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए बड़े पैमाने पर काम किया। उन्होंने ग्रामीण समुदायों के सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सामाजिक क्षेत्र में भूमिका:

सर छोटूराम सामाजिक सुधारों के कट्टर समर्थक थे और उन्होंने हाशिए पर रहने वाले समुदायों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए सक्रिय रूप से काम किया। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए कई शैक्षणिक संस्थानों और कृषि सहकारी समितियों की स्थापना की। अपने प्रयासों के माध्यम से, वह वंचितों को सशक्त बनाना और एक अधिक न्यायसंगत समाज बनाना चाहते हैं।

सर छोटूराम का मानना था कि शिक्षा सामाजिक प्रगति की कुंजी है और उन्होंने ग्रामीण आबादी के बीच साक्षरता बढ़ाने के लिए अथक प्रयास किया। उन्होंने विविध पृष्ठभूमि के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की। इसके अलावा, उन्होंने किसानों को उत्पादकता बढ़ाने और उनकी फसलों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद करने के लिए कृषि सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहित किया।

राजनीतिक क्षेत्र में भूमिका:

सर छोटूराम एक प्रतिष्ठित राजनीतिक नेता थे जिन्होंने स्वतंत्रता-पूर्व भारत के राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह यूनियनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य थे, जो ब्रिटिश भारत में किसानों और ग्रामीण समुदायों के हितों का प्रतिनिधित्व करती थी। वह विधान परिषद के सदस्य भी हैं और कृषि क्षेत्र को लाभ पहुंचाने वाले कानून बनाने के लिए काम करते हैं।

सर छोटूराम किसानों के अधिकारों के कट्टर समर्थक थे और उनके हितों की रक्षा के लिए अथक प्रयास करते थे। उन्होंने किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने और साहूकारों पर उनकी निर्भरता को कम करने के उद्देश्य से कई कृषि सुधार पेश किए। उनके प्रयास कृषि नीतियों को तैयार करने और ब्रिटिश भारत में कृषक समुदाय के कल्याण को बढ़ावा देने में सहायक थे।

आर्थिक क्षेत्र में भूमिका:

सर छोटूराम किसानों के आर्थिक सशक्तिकरण के कट्टर समर्थक थे और उन्होंने उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने की दिशा में काम किया। उनका मानना है कि आर्थिक प्रगति की कुंजी कृषि के विकास में निहित है और वह कृषि आधुनिकीकरण के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने कृषि उत्पादकता में सुधार लाने और किसानों की आय बढ़ाने के उद्देश्य से कई पहल शुरू कीं।

सर छोटूराम ने किसानों को आधुनिक कृषि तकनीक और उपकरणों में निवेश करने में सक्षम बनाने के लिए ऋण और वित्तीय सेवाएं प्रदान करने के लिए भी काम किया। उन्होंने किसानों को उनकी उपज का कुशलतापूर्वक विपणन करने और बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद करने के लिए कृषि सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहित किया। अपने प्रयासों के माध्यम से, वह एक अधिक टिकाऊ और समृद्ध कृषि क्षेत्र बनाना चाहते हैं।

ब्रिटिश शासनकाल

आधुनिक काल के नाम से प्रसिद्ध ब्रिटिश शासन काल भारतीय कृषि के लिए सबसे कष्टकारी समय माना है। हालांकि भारतीय फसलों में कपास, नील, अफीम और धान विश्व के बाजार में राज कर रहीं थी, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इनका उत्पादन भी कम हो गया था। सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था, खेती लायक भूमि की देखभाल न होना, कृषकों पर अत्याचार जैसे कारणों ने भारत की कृषि व्यवस्था की कमर तोड़

कर रख दी थी इसलिए इस समय को कृषि का अवसादी काल भी कहा जाता है।

कृषि में स्थिरता एवं उसकी बर्बादी

कृषकों के पास न ही कृषि के साधन थे और न ही कृषि में निवेश करने के लिए धन। जमींदारों का गांवों से कोई संबंध नहीं था तथा सरकार द्वारा कृषि तकनीक एवं कृषि से संबंधित शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन कम था। इन सभी कारणों से भारतीय कृषि का धीरे-धीरे पतन होने लगा तथा उसकी उत्पादकता बहुत कम हो गई।

कृषि ऋण की समस्या

प्रत्येक आर्थिक क्रिया का वित्त से गहरा सम्बन्ध होता है, क्योंकि वित्तिय आधार प्रत्येक आर्थिक क्रिया की एक महत्त्वपूर्ण पूर्व अपेक्षा होती है। कृषकों को उर्वरक, बीज, कृषि यंत्र एवं कीटनाशक दवाइयाँ खरीदने, मजदूरी और लगान का भुगतान करने, भूमि में आधारिक सुधार करने, विभिन्न उपभोग वस्तुओं की प्राप्ति एवं पुराने ऋणों के परिशोधनार्थ वित्त की आवश्यकता होती है। अधिकांश कृषक अपने निजी चालू आय स्त्रोतों द्वारा कृषिगत उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कृषि ऋण की समस्या का उदय होता है।

कृषि के विकास में रूकावट के कारण

(1) अशिक्षा भी कृषि की बदहाली का कारण
(2) कृषकों को समाज में उचित सम्मान नहीं
(3) शिक्षित लोग खेती करना अपमानजनक समझते हैं
(4) किसानों में जागरूकता का अभाव

चौ० छोटूराम का पंजाब राज्य और राजनीति में योगदान

- निर्विरोधनिर्वाचन के समर्थक
- ग्रामीण विकास में योगदान
- शिक्षा विकास में योगदान
- औद्योगिक विकास में योगदान
- श्रमिक विकास में योगदान
- महिला कल्याण में योगदान
- समाज सुधारक
- राजनीतिक स्थिरता
- धर्म को राजनीति से अलग कर दिया
- राजनीति नैतिकता के विकास में योगदान
- आम जनता का कल्याण
- सहकारी समितियों के समर्थक
- आजाद पंजाब योजना का विरोध
- कृषि विकास में योगदान
- सिंचाई विकास में योगदान
- जाट गजट में प्रकाशित भाषण

चौधरी छोटूराम का आर्थिक दृष्टिकोण

चौधरी छोटूराम ने आर्थिक उत्थान की अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों का सूत्रपात किया जिससे आज पंजाब तथा हरियाणा उपजाऊ क्षेत्र हैं। इसके लिए उन्होंने बड़ी लग्न, मेहनत एवं परिश्रम से निष्ठापूर्वक एवं ईमानदारी से कार्य किए-

- सिंचाई के साधन उपलब्ध कराके, उनका मानना था कि बिना सिंचाई व पानी के अभाव में कृषि के पेशे में उन्नति करने की सोचना व्यर्थ है।
- उन्होंने मण्डी जल विद्युत योजना को लागू किया।
- भाखड़ा बांध योजना का प्रारूप तैयार किया और 8 जनवरी, 1945 ई० को सभी कागजी कार्यवाही पूरी करके, बांध की योजना को लागू करने के लिए हस्ताक्षर किए।
- हवेली कनाल प्रोजक्ट चालू किया।
- खुशाब ब्रांच को निकाला।
- करोल ट्यूबल्ज स्कीम को लागू किया।
- जमन गरबी नहर निकलवाई।
- ताजे वाला हैड का निर्माण करवाया।
- नहरों और रजबाहों को बढ़ाया।
- दुल्हेड़ा और झज्जर रजबाहा निकाला।
- मेन बड़ी नहर में पानी बढ़ाया।
- खरीफ प्रसार सिंचाई परियोजना 1940 को लागू किया।
- गुड़गाँवा बांध परियोजना पर सन् 1943 में कार्य किया।

बिजली द्वारा सिंचाई का क्षेत्र बढ़ाने के लिए उन्होंने मण्डी हाइड्रोइलैक्ट्रिक स्कीम चालू की। इसके पूर्ण होने पर आधे पंजाब को बिजली और पानी मिलने की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देती थी। इसके सिवाय हवेली प्रोजेक्ट को 21è2 में पूरा किया जिस पर चार-पांच करोड़ का अनुमानित व्यय हुआ था। अत: इन योजनाओं से चौ० छोटूराम ने धनहीन व जलहीन इलाकों को समृद्ध बनाया। जहाँ धूल उड़ती थी वहाँ खेत लहलहा उठे। लोगों में खुशी का माहौल उत्पन्न हो गया था।

1. हेवली कनाल प्रोजेक्ट: इस स्कीम को 1938 से दो साल में पूरा कर लिया गया, जिसकी लागत तीन करोड़ तरेसठ लाख रूपये बनी। इससे स्थायी रूप से 5 लाख एकड़ और फसली तौर पर 4.5 लाख एकड जमीन को सिंचित किया गया। इस प्रोजेक्ट पर 60 हजार व्यक्तियों को रोजगार मिला तथा 83 लाख रूपये सालाना सरकार को इस रकबे से आमदनी हुई। जो रकम दूसरी योजनाओं के बनाने के प्रयोग में लाई गई।

2. थल प्रोजेक्ट: यह प्रोजेक्ट मई 1938 में शुरू किया गया इससे जिला मियाँ वाली, मजफरगढ़ और शाहपुर की 13 लाख एकड़ जमीन में से 10 लाख एकड़ को सिंचित किया गया।
3. खुशाब ब्रांच: काला बाग के नजदीक दाऊद खेल के स्थान पर सिन्ध दरिया से नहर निकाली गई। सिन्ध और झेलम नदी के बीच बहुत सारा रक्बा सिंचित किया गया।
4. करौल ट्यूबवैल्ज स्कीम: लाहौर के नजदीक इलाके में रावी नदी के साथ 31 बिजली के ट्यूबवैल्ज लगाये गए। जिनसे 10 हजार एकड़ जमीन को सिंचित किया जाने लगा।

सर छोटूराम द्वारा किए गए उल्लेखनीय कार्य

1. पंजाब इंतकाल आराजी एक्ट: इसके आधार पर खेती करने वाले साहूकारों को किसानों से अलग कर दिया गया। रहनशुदा जमीन की उत्पादकता ाटकों पर रोक लगाई गई।
2. बंधक भूमि वापस एक्ट: इसके द्वारा 8 जून 1901 से पहले रहन-शुदा जमीन को मुक्त वापिस करा दिया गया। इस कानून से 3,65,000 किसानों को फायदा हुआ और 8,35,000 एकड़ भूमि किसानों को वापस मिली।
3. पंजाब कृषि-उत्पादन मार्किट एक्ट: इस एक्ट के फलस्वरूप मंडियों का पंजीकरण किया गया, महाजनों को लाइसेंस लेना अनिवार्य बना दिया गया, मंडी कमेटी में 2/3 प्रतिनिधि किसानों के और 1/3 महाजनों के निर्धारित किए गए।
4. पंजाब रजिस्ट्रेशन ऑफ मनी-लैंडर्ज एक्ट: इस एक्ट के आधार पर ब्याज पर रूपया देने का धंधा करने वाले महाजनों को नियंत्रित किया गया। इससे अनाप -शनाप ब्याज लेने की योजना ाट गई।
5. ट्रेड एम्पलाइज एक्ट: इस एक्ट में कामगारों मुनीमों और मजदूरों को राहत दिलाई गई। उनके काम करने ांटे निश्चित हुए, सप्ताह में एक दिन की छुट्टी मिलने लगी और नौकरी से अलग करने के लिए एक माह का नोटिस देना आवश्यक हो गया।
6. दि पंजाब वेट्स एण्ड मेजर्स एक्ट: इसके अनुसार व्यापारियों के बाटों को तोलने और उसके जांच का कार्य प्रारम्भ हुआ। फलत: खरीददारों को निर्धारित मात्रा में कम तोलकर देने और विक्रेताओं से अधिक तोलकर लेने की आदत पर रोक लगी।
7. कन्सीलियेशन बोर्ड की नियुक्ति: इसके द्वारा किसानों को सुविधा दी गई कि ऋणी व्यक्ति आठ आना की कोर्ट फीस पर अपने ऋण को ाटाने का प्रार्थना पत्र दे सकता था।
8. बिक्रीकर कानून: इस कानून द्वारा 5000 की वार्षिक बिक्री पर कर लगाया गया।

पंजाब में किस प्रकार के उद्योग-धन्धों का विकास किया गया था। यह उन्होंने 1938 के कौंसिल में दिए गए वक्तव्यों से मिलता है। जैसे-

1. पानीपत में ऊन साफ करने और कातने का एक कारखाना शुरू कराया गया।
2. हिसार जिले में भी कताई और बुनाई के उद्योग धन्धों की शुरूआत की।
3. प्रान्त भर में ऊन के कातने और बुनना सिखाने के लिए चलती-फिरती पार्टियाँ कायम की थी। एक पार्टी चमड़ा रंगने का काम सिखाने के लिए भी बनाई गई थी।
4. ऊनी उद्योग-धन्धों को बढ़ावा देने के लिए अन्य योजनाएं।
5. ऊन बुनने वालों को छोटे-छोटे कर्जे भी दिए गए।
6. कांगड़ा जिले में ऊन की कताई-बुनाई की प्रतियोगिता प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था।
7. पालमपुर में भी प्रतियोगिता-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था।
8. लुधियाना में जुराब व बनियानें बुनने वाले कारीगरों को अपना काम और भी उन्नत तरीकों से करने के लिए एक लाख बीस हजार का ऋण का प्रावधान सुनिश्चित किया गया।

सर छोटूराम के विचारों की प्रासंगिकता

छोटूराम जी का जो चिन्तन था वह वर्तमान में भी प्रासंगिक है। उनके आदर्शों, मार्गदर्शन तथा उनकी व्यावहारिकता हमेशा उन्हें महान बनाती रही है। छोटूराम जी इतिहास का अंग बन चुके हैं, लेकिन उनके विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान में भी मौजूद है।

छोटूराम जी ने किसानों में बहुत चेतना जगाई। सर छोटूराम को किसानों के मसीहा के रूप में देखा जाता है क्योंकि उनकी स्वयं की पृष्ठभूमि भी किसान परिवार से ही सम्बन्धित थी। इसलिए वे अच्छी तरह जानते थे कि किसानों को किस प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए जब वे राजनीति के क्षेत्र में आये तो उन्होंने किसानों के लिए हमेशा सांर्ष जारी रखा। जब वे पंजाब सूबे में कृषि मन्त्री बने तो उन्होंने किसानों के लिए अनेक रियायतों की ाोषणा की तथा उसको लागू करवाया। छोटूराम ने किसानों की फसलों के उचित दाम दिलवाये। यही कारण है कि वर्तमान में किसान अपनी फसलों के उचित दामों के लिए सांर्ष करते है। छोटूराम के विचारों की प्रासंगिकता का वर्णन हमें इन बिन्दुओं से भी मिलता है-

भाई-चारे का विचार वर्तमान में भी प्रासंगिक

दीनबन्धु छोटूराम हर कौम के गरीबों के परम सहायक थे। गाँवों में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति हो, वह चौधरी छोटूराम को अपना नेता,

रक्षक, मार्गदर्शक तथा रहनुमा मानते थे। वे जाति-पाति के बंधन से मुक्त जन हितकारी नेता थे। इसलिए सम्पूर्ण भारतीय समाज के जन-जीवन के हितैषी एवं प्रिय नेता थे। उनका भी यही प्रमुख ध्येय था कि भारतीय समाज में भाई-चारा बना रहे। सर छोटूराम के भाई चारे के विचार की प्रासंगिकता वर्तमान में भी पाई जाती है।

उद्योग-धन्धों के बारे में विचार वर्तमान में प्रासंगिक हैं

छोटूराम ने मन्त्री रहते हुए उद्योग-धन्धों के विकास के लिए अनेक कार्य किये। उन्होंने गाँव वालों को प्रमुख रूप से यह सुझाव दिये कि वे सहकारिता के आधार पर उद्योग-धन्धे शुरू करे तथा उनसे लाभ कमायें। छोटूराम ने उद्योग-धन्धों में कार्य करने वाले मजदूरों के हितों की रक्षा हेतु अनेक नियम व कानून बनवाये, जैसे व्यवसाय श्रमिक अधिनियम 1940, जिनकी प्रासंगिकता हमें वर्तमान राज्य सरकारों द्वारा बनाये गए नियम व कानूनों से मिलती है। सर छोटूराम ने पंजाब में उद्योग-धन्धों के विकास के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र भी स्थापित किये। वर्तमान समय में भी प्रशिक्षण केन्द्रों की भरमार है। इस प्रकार सर छोटूराम के उद्योग-धन्धों के बारे में जो विचार थे वे आज भी प्रासंगिक है।

साम्प्रदायिकता रोकने का विचार वर्तमान में प्रासंगिक

राष्ट्रीय स्तर पर ओर किसी अन्य नेता के अलावा सर छोटूराम ही एक ऐसे नेता थे जिसने एक तूफान को रोकने के लिए अपने श्रेष्ठतम प्रयास किये थे। मुस्लिम लीग ने देश के प्राय: हरेक हिस्से में साम्प्रदायिकता के कीटाणुओं को फैला दिया था और इसके प्रभाव को रोकने के लिए केवल छोटूराम ही आगे आये। उन्होंने साम्प्रदायिकता का डटकर विरोध किया। वर्तमान में भी साम्प्रदायिकता की भावना पाई जाती है इसका विरोध आज भी है। अत: छोटूराम के विचारों की आज भी प्रासंगिकता है।

किसानों का मसीहा का विचार वर्तमान में प्रासंगिक

किसान वर्ग की उन्नति और मुक्ति के लिए जितने कानून पंजाब कौंसिल और पंजाब विधानसभा में बने उन सभी का श्रेय छोटूराम को जाता है। उन्होंने अपने जीवनकाल में देखा था कि किस प्रकार किसानों पर कर्जा चढ़ा रहता है। उस समय यह धारणा थी किसान के ार जब बेटा पैदा होता है तो उस पर भी कर्जा चढ़ा होता था। महाजन किसानों पर काफी सूद लगा देते थे। महाजन भोले-भाले किसानों से अपनी बही में अंगूठा लगवा लेते थे तथा जो रकम दी जाती उसको बढ़ा कर लिखा जाता। छोटूराम जी का परिवार इन सभी बातों का भुक्तभोगी था। यही कारण है कि जब छोटूराम जी को मौक मिला तो उन्होंने इन कानूनों को उखाड़ फेंका तथा ऐसे नये कानून बनाये जो कि किसानों के लिए काफी सहायक सिद्ध हुए। किसानों के हितों के बारे में उनके विचार आज भी प्रासंगिक है तथा कोई भी सरकार वर्तमान में किसानों की अनदेखी नहीं कर सकती।

इस प्रकार छोटूराम के कृषि विकास में किसानों के उत्थान के प्रति जो विचार थे वे आज भी प्रासंगिक है। बल्कि उनकी जरूरत वर्तमान में अधिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटूराम के विचार वर्तमान में पूर्णरूप से प्रासंगिक है। यद्यपि कुछ आलोचकों को ऐसा लगता है कि वे जात-पात की तथा किसानों की ही राजनीति करते थे लेकिन ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि छोटूराम जी एक सच्चे नेता थे जिन्होंने अपना सारा जीवन दलितों तथा गरीबों के लिए लगा दिया। उन्होंने जो कार्य किसानों के लिए किये उसकी मिसाल मिलना काफी मुश्किल है। उनके दिमाग में हमेशा एक ही बात रहती थी। आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का विकास किस प्रकार हो। इसके लिए उन्होंने अपने स्तर पर हर संभव प्रयास किया। जिससे कि किसानों का विकास हो सकें।

निष्कर्ष

भारतीय किसान ब्रिटिश काल से लेकर वर्तमान समय तक का सबसे शोषित और उपेक्षित वर्ग रहा है। आज भी यह देखा जा सकता है कि देहात के व्यक्तियों के पास, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाएँ सिर्फ नाममात्र की है। इन्हीं कारणों की वजह से ही कुछ किसान शहरों की तरफ रुख करते है। लेकिन भारत की आधी से अधिक आबादी गांवों में रहती है और उनका कमाई का साधन, ज्यादातर खेती करना है। किसानों के ज्यादा पढ़े-लिखे न होने से तथा संसाधनों की कमी के कारण भी अधिकतर किसान साल भर मेहनत करने पर भी अपना और अपने परिवार का पेट पालने में सक्षम नजर नहीं आ रहे है। दूसरी तरफ सरकारें हरित क्रान्ति और श्वेत क्रांति का राग अलाप कर यह जताते है कि भारतीय किसान धन-धान्य से सम्पन्न हो चुका है। लेकिन, इन सबके प्रभाव समान रुप से दिखाई नहीं दे रहे है। वैश्वीकरण की दौड़ में छोटे भारतीय किसान अपने आपको बहुत पीछे खड़ा पाते है। इन्हीं सभी परेशानियों को चौ० छोटूराम जी ने समय से पहले पहचान लिया था और समाज सुधारक के तौर पर ऐसे किसानों से सम्बन्धित कानून पास करवाएं जिनसे उस समय किसानों को काफी राहत मिली। हरियाणा प्रान्त में चौ० छोटूराम ऐसे 'युग पुरुष' थे जिन्हें अंग्रेजी सरकार ने 'सर' की उपाधी से विभूषित किया और जन साधारण ने उन्हें 'रहबरे आजम' और 'दीनबन्धु' का नाम दिया। उन्होंने अपना जीवन 'दरिद्र किसान' की सेवा में समर्पित कर दिया, यही कारण है कि हरियाणा के लोग विशेषकर कृषक समाज का हर व्यक्ति उनका नाम लेते ही श्रद्धा से नत-मस्तक हो जाता है। अत: प्रस्तुत शोध में रोहतक व झज्जर जिले के उत्तरदाताओं से चौ० छोटूराम के द्वारा पास करवाए कृषि सम्बन्धित कानूनों की जानकारी, सिंचाई के लिए किए गए प्रयास व वर्तमान समय में ऋण राशि का निवेश सम्बन्धित जानकारी और सुझावों को जानने का प्रयास किया गया है। उत्तरदाताओं के द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं को चतुर्थ अध्याय में विभिन्न तालिकाओं के माध्यम

से दर्शाया गया। इन तालिकाओं से प्राप्त परिणामों का वर्णन किया गया है। सर छोटूराम के द्वारा कृषि क्षेत्र में पास करवाए गए कानूनों के परिणामस्वरूप वर्तमान समय में भी उनकी गरिमा बनी हुई है।

वर्तमान समय में लागू मण्डी एक्ट और किसान राहत कोष जैसे कानूनों का आधार सर छोटूराम द्वारा पास करवाए गए कानून ही है। उनके द्वारा ही भाखड़ा बांध के प्रस्ताव की योजना की शुरूआत हुई थी। उनकी इसी देन के कारण हरित क्रांति भारत की नई कृषि नीति सन् 1967-68 में लागू की गई जिसमें अधिक उपज देने वाले बीजों को बोया गया तथा कृषि की नई तकनीकों का प्रयोग किया गया, जिससे फसल उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। 1970 के दशक में एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्केटिंग एक्ट के तहत कृषि विपणन समितियाँ बनी थी। इन समितियों का उद्देश्य बाजार की अनिश्चिताओं से किसानों को बचाना था। एपीएमसी कानून लागू होने के बाद कृषि बाजारों में व्यवस्था लाने और बिचौलियों के हाथों किसानों का शोषण रोकने की दिशा में सराहनीय काम हुए है। मड़ी ढाँचे में बढ़ोतरी तो हुई लेकिन यह सरप्लस एग्रीकमोडिटी की खरीद-बिक्री में वृद्धि से तालमेल नहीं बिठा पाई। इसके तहत आधुनिकीकरण एवं प्रतियोगी माहौल को बढ़ाने की कोशिश भी नहीं हुई।

नई आर्थिक नीति, 1991 के अनुसार सभी क्षेत्र समय के साथ आगे बढ़े लेकिन कृषि क्षेत्र सुधारों में पिछड़ गया। सरकार द्वारा शुरू किए गए कई सुधार विभिन्न कारणों से वापस ले लिए गए। इसलिए 2000 में एक कमेटी बिठाई गई जिसमें कृषि सम्बन्धित सुधारों के लिए सुलाह-मशवरा लिया गया। इसके अन्तर्गत मॉडल एपीएमसी अधिनियम, 2003 के तहत राज्यों को अनुबंध खेती से संबंधित कानूनों को लागू करने संबंधी अधिकार प्रदत किए गए थे। इस अधिनियम के परिणामस्वरूप 20 राज्यों द्वारा अपने एपीएमसी अधिनियमों में अनुबन्ध खेती हेतु संशोधन किए गए हैं, इतना ही नहीं पंजाब में तो अनुबन्ध खेती पर अलग से एक कानून का निर्माण किया गया था।

निष्कर्ष

सर छोटूराम एक दूरदर्शी नेता थे जिन्होंने स्वतंत्रता-पूर्व भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किसानों और ग्रामीण समुदायों के उत्थान के लिए उनके प्रयासों का भारतीय समाज पर स्थायी प्रभाव पड़ा। अपनी पहल के माध्यम से, वह एक अधिक न्यायसंगत और समृद्ध समाज बनाना चाहते हैं जहां हर किसी को शिक्षा, आर्थिक अवसर और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक पहुंच हो। सर छोटूराम की विरासत भविष्य की पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेगी, और अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज बनाने में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सशक्तिकरण के महत्व पर जोर देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, हरि, दीनबन्धु सर छोटूराम जीवन-चरित्र, खेडी जट (रोहतक), दीनबन्धु सर छोटूराम मिशन, 1990
2. कादियों, प्रभावती, "दीनबन्धु चौधरी छोटूराम, नई दिल्ली, सूर्यप्रभा प्रकाशन, 1993
3. सिंह, बलबीर, "सर छोटूराम जीवन तथा कार्य", रोहतक, आचार्य प्रिटिंग प्रेस, 1997
4. सिंह, बलबीर, "सर छोटूराम चिन्तन और कर्म", रोहतक, गढी सांपला: सर छोटूराम जन्म स्थान ट्रस्ट, 1997
5. सिंह, रणजीत, "चौधरी छोटूराम के पत्र", वेदव्रत शास्त्री, रोहतक, आचार्य प्रिटिंग प्रेस, 1998
6. सिंह, रणजीत, "छोटूराम गौरव गाथा" रोहतक, छोटूराम मेमोरियल सोसायटी, 1998
7. शास्त्री, महेन्द्र कुमार, "शोषितों के मसीहा रहबरे आजम सर छोटूराम", दिल्ली, सर छोटूराम ऐजुकेशन ट्रस्ट, 1999
8. यादव, के० सी०, "बेचारा किसान, गुडगाँव, हिस्टारिकल सोसायटी रजिस्ट्रड, 20001
9. चाहर, आजाद सिंह, "झज्जर इतिहास के आइने से, पंचकूला, हरियाणा साहित्य अकादमी, 2005, पृष्ठ 192-1991
10. तहलान, नारायण सिंह, "दीन बन्धु का सफर नामा" बहादुरगढ़, दीनबन्धु-धर्मशाला सोसायटी, 2005
11. तहलान, नारायण सिंह, "सर छोटूराम कथन एवं लेखन", बहादुरगढ़, सर छोटूराम धर्मशाला सोसायटी, 2005
12. मलिक, शिवानन्द, "देहाती गाँधी भक्त फूल सिंह जीवन-वृत, हिसार, शिव-लक्ष्मी विद्याधाम, 2006

निराला के साहित्य में मानवतावाद व युगीन परिवेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० जैस्मिन करुना

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा

सार

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला एक महान व्यक्तित्त्व वाले व्यक्ति हैं जिनके जीवन और कार्यों ने भारत के साहित्यिक परिदृश्य पर एक अमिट छाप छोड़ी है, निराला समकालीन हिंदी साहित्य के दिग्गजों में से एक हैं। 21 फरवरी, 1896 को मिदनापुर (अब पश्चिम बंगाल में) में अपना रचनात्मक करियर शुरू करने वाले निराला ने कविता, निबंध, उपन्यास और लघु कथाएँ लिखीं। हिंदी साहित्य में एक सम्मानित और प्रमुख चरित्र के रूप में, उन्हें मानवीय स्थिति की गहरी समझ, भाषा पर पकड़ और दलितों के प्रति करुणा के लिए याद किया जाता है। निराला का बचपन कठिनाइयों से भरा था, उन्होंने युवावस्था में ही अपने माता-पिता दोनों को खो दिया था, और उनके निधन से परिवार गरीब हो गया। हालाँकि, उनकी स्वाभाविक क्षमता और जानकारी की अतृप्त आवश्यकता ने उन्हें साहित्य की ओर धकेल दिया, जहाँ वे अपने समय के एक प्रभावशाली लेखक बन गए। उनके लेखन करियर में स्पष्ट चरण हैं जो उनके विचारों और विषयों के विकास के अनुरूप हैं। इस अध्ययन में निराला के साहित्य में मानवतावाद व युगीन परिवेश का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः निराला, साहित्यिक परिदृश्य, समकालीन हिंदी साहित्य, कविता, निबंध, उपन्यास, लघु कथाएँ, मानवतावाद।

परिचय

बांगर के महिषादल में ही क्रांतिकारी महाप्राण निराला का जन्म हुआ था और उनकी विद्रोही आवाज के माध्यम से मुक्त छंद की एक नई परंपरा की स्थापना हुई, जिसने हिंदी रोमांटिक कविता की प्रकृति को बदल दिया। वह राज्य के मूल निवासी थे जिनका जन्म 1896 में मेदिनीपुर क्षेत्र में हुआ था। निराला जी के पूर्वज किसान हैं जो उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़कोला गांव के रहने वाले हैं। निराला जी के पिता पंडित रामसहाय त्रिपाठी को महिषादल राज्य में काम मिला और अंततः उन्होंने इसे ही अपना स्थायी ार बना लिया। निराला का जन्म अनेक संस्कारों से हुआ। उनका जन्म रविवार को हुआ था और चूंकि उनकी मां सूर्य व्रत करके एक बेटे की उम्मीद कर रही थीं, इसलिए उन्हें सूर्यकुमार नाम दिया गया था। तीन वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अपनी माँ को खो दिया। हालाँकि उनके पिता ने दूसरी शादी नहीं की, लेकिन निराला को कभी भी वह प्यार महसूस नहीं हुआ जिसकी उन्हें उनसे उम्मीद थी। आस-पड़ोस की महिलाओं द्वारा मासूम बच्चे को अपमानित करने और पीटने के बावजूद, बच्चा बड़ा हो गया। हो सकता है कि वहां पले-बढ़े होने के कारण उसका चरित्र दृढ़ निश्चयी, छोटा-सा और ामंडी बना हो। निराला की परिस्थितियों ने उन्हें नौवीं कक्षा से ऊपर की स्कूली शिक्षा जारी रखने से रोक दिया, लेकिन परिश्रमपूर्वक स्वाध्याय से वे बंगाली, संस्कृत और अंग्रेजी में पारंगत हो गए।[1]

तेरह या चौदह वर्ष की अल्पायु में उन्होंने मनोहरा देवी से विवाह किया, लेकिन वैवाहिक सुख उनके लिए सितारों की तरह नहीं था। इस प्रकार, 1918 में फ्लू से उनकी मृत्यु हो गई। उस समय परिवार में एक लड़की और एक लड़का था। कुछ दिन बाद बेटे का निधन हो गया। यह भी, निर्दयी निर्माता द्वारा उससे छीन लिया गया था।[2]

1935 में, 19 वर्ष की आयु में, जब वह अपने चरम पर थे, सरोज का निधन हो गया। परिवार में मृत्यु, विशेषकर अपनी बेटी से अलगाव ने, उनके ऋणित, दार्शनिक दृष्टिकोण को आकार दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह कभी भी अपनी वित्तीय संकट से बाहर निकलने में सक्षम नहीं था। उनकी कविताओं में ऐसे कई संकेत हैं जो उनके इस लक्ष्य की ओर इशारा करते हैं। साहित्यिक पत्रिका 'सरोजा-स्मृति' उनका आउटलेट है-

मैं वास्तव में हर समय ऐसा ही था, आज जो बातचीत हो चुकी है उसमें मैं संभवतः क्या जोड़ सकता हूं

एक अन्य स्थान पर, वह ये शब्द कहते हैं जो उनके दर्द को दर्शाते हैं:

> मानव शरीर रेत के कण के समान है, स्नेह का
> ज्वार पलट गया है।

निराला का जीवन दुखद था, फिर भी उन्होंने जिन कठिनाइयों और हानियों को सहन किया, उन्होंने कभी भी अपनी गरिमा की भावना या जरूरतमंदों की मदद करने की इच्छा को कम नहीं होने दिया। अपनी बेटी की मृत्यु के बाद उनकी मानसिक स्थिती ठीक नहीं होंगी, फिर भी वह किसी भी तरह साहित्यिक उत्कृष्टता की खोज में लगे रहे। निराला की शुरुआती रुचि पढ़ना और संगीत सुनना था। युवावस्था के बाद दर्शनशास्त्र में उनकी रुचि बढ़ी और उन्हें विवेकानन्द और स्वामी रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं से

विशेष प्रेरणा मिली। महिषादल छोड़ने के बाद उनकी मदद से 1922 में 'मतवाला' अखबार निकाला और लंबे समय तक उसके संपादक रहे। 1930 में, 'गंगा पुस्तक-माला' साहित्यिक पत्रिका सुधा में संपादक की भूमिका निभाने के लिए लखनऊ चले गए, जो वहां भी प्रकाशित हुई थी। 1935 से 1950 तक वे अक्सर लखनऊ, काशी, सीतापुर और प्रयाग के बीच यात्रा करते रहे।[3]

उनके प्रयासों के लिए उन्हें प्रतिष्ठा और वित्तीय पुरस्कार दोनों से सम्मानित किया गया। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने 1947 में वसंत पंचमी के दिन उनके जन्म का स्मरण किया और उत्तर प्रदेश सरकार ने वर्ष 1949 ई. में 'अपरा' को 2100 रुपये का पुरस्कार दिया। कई लोगों ने वित्तीय सहायता की पेशकश की, लेकिन उन्होंने या तो उनके उपहार अस्वीकार कर दिए या उन्हें दूसरों को वितरित कर दिया, जिन्हें उनकी अधिक आवश्यकता थी। 1950 में उनका मानसिक स्वास्थ्य स्थिर होने लगा और वे प्रयाग के दारागंज मोहल्ले में बस गये। महाप्राण निराला की मृत्यु 15 अक्टूबर 1961 को यहीं हुई थी। निराला एक अनोखे, जीवंत और ओजस्वी व्यक्ति थे जिनकी तुलना किसी अन्य कवि से नहीं की जा सकती। शायद यही कारण रहा होगा कि शिक्षाविदों ने उन्हें महाप्राण निराला कहा। कबीर हिंदी साहित्य में पहले ऐसे लेखक थे जिनकी आवाज इतनी अलग थी, और उनके बाद कोई भी उनके करीब नहीं आ सका। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के चरित्र के बारे में जो कुछ कहा है वह सब निराला के बारे में भी सत्य है। विपरीत प्रतीत होने वाले लक्षणों के बीच अद्भुत सामंजस्य के कारण द्विवेदी जी कबीर में नरसिम्हा को देखते हैं: कबीर के आत्म-सम्मान और आत्म-बलिदान, उनके अहंकार और विनम्रता, उनके पुरुषत्व और कोमलता, उनके क्रोध और करुणा, उनकी प्रवृत्ति और वैराग्य के बीच सामंजस्य है। उनका शरीर यूनानी देवताओं की तरह बनाया गया था। वह शायद किसी समय एक बहादुर आर्य जैसा दिखते थे, लेकिन अब वह एक बुद्धिमान बूढ़े गुरु जैसा दिखते थे।[4]

उनका विलक्षण व्यवहार सनक के स्तर तक पहुंच गया था: वह बारी-बारी से अपनी दाढ़ी और मूंछें मुंडवाते और बढ़ाते थे, पूरे शहर में बिना जूतों के ूमते थे और लुंगी और लंबा कुर्ता पहनते थे और यहां तक कि अपना सिर भी मुंडवा लेते थे। कभी-कभी, अगर वह कई दिनों तक बिना नहाए रहते तो उसे सुगंधित मालिश मिल जाती। उनकी दयालुता, त्याग और उदारता की कहानियाँ आज भी इस तरह जीवित हैं मानो वे मिथक हों। एक भिखारी मां द्वारा बेटे का नाम दिए जाने के बाद, वह अक्सर ठंड के महीनों में बेारों के साथ अपनी गर्म रजाई और कंबल साझा करते थे। हिंदी के प्रति उनके गौरव और उनकी अपनी काव्यात्मक क्षमता के कारण वे गांधी और नेहरू से परिचित हुए। परिणामस्वरूप, हिंदी जगत निराला से उनकी अनेक कुशलताओं और करिश्माई उपस्थिति से डरता था और उनका सम्मान करता था। इसीलिए लोग उन्हें "दान के मसीहा" और "दारागंज के संत" और "महान आत्मा" और "क्रांतिकारी" कहने लगे। निराला में कालिदास, शेक्सपियर और टैगोर की बहुआयामी प्रतिभा थी। वह मुख्य रूप से एक कवि थे, लेकिन रेखाचित्र, कथा, उपन्यास, निबंध और आलोचना जैसी अन्य शैलियों में उनकी रचनाएँ उनकी मृत्यु के बाद भी लंबे समय तक नवीन बनी रहीं। अन्य भाषाओं से राम की शक्तिपूजा और सरोज स्मृति। अप्सरा, अलका, निरुपमा और छोटी की पकड़ जैसे उपन्यास उनके कहानी संग्रहों की तरह ही प्रसिद्ध हैं। कुल्ली भट और बिल्लेसुर बकरिहा ने उनकी रेखाचित्र शैली स्थापित की, जबकि उनके बाद के चार निबंध-संग्रह और दो आलोचनात्मक कार्य उनके आलोचक और निबंधकार रूप का पूर्ण विकास दर्शाते हैं।[5]

हिंदी काव्य परिदृश्य में 'जन्मभूमि की वंदना' निराला की पहली कविता थी। कालान्तर में संकलित हिन्दी काव्य संग्रह 'जूही की कली' की प्रकाशन तिथि 10 वर्ष आगे बढ़ा दी गई। निराला की कविता में तर्क, रहस्यवाद और प्रगतिवाद तीनों अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व मिलता है। प्रगतिशील कविताओं में दलित वर्ग के प्रति आध्यात्मिक चिंतन और करुणा, कवि की कल्पना कौशल और गीतिका के लाु गीतिका की संवेदनशीलता के कारण, छायावादी कविता में प्राथमिक चीज है। उनकी धार्मिक कविता 'अचौना' और 'आराधना' खंडों में पाई जा सकती है। वीर रस की कविताएँ, जैसे "जागो फिर एक बार", मजबूत राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करती हैं और श्रृंगार की मादक, शानदार भावना, प्रकृति-अद्वैतवादी दृष्टिकोण को दर्शाती हैं। "भिक्षुक" और "विधवा" जैसी रचनाओं में भी सहानुभूति का प्रचंड माधुर्य है।[6]

निराला तत्वों से अप्रतिबंधित, आत्मविश्वासी और उद्दंड थे। उनकी कविता में सदैव पूर्वकल्पित धारणाओं की डोर को तोड़ने की प्रवृत्ति रही है। शुरू से ही, उनकी रचनाएँ आधुनिक मनुष्य की पीड़ा, दासता पर गुस्सा और अन्याय के खिलाफ भावुक विरोध को दर्शाती हैं। बादल राग संग्रह की कुछ कविताएँ बादल को समाज में एक नई क्रांति शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, जबकि अन्य उनसे भारत के सांर्षरत किसानों की पुकार सुनने और उनकी ओर से एक क्रांति शुरू करने के लिए कहती हैं-

विप्लव के वीर के साथ इसकी जीवन शक्ति समाप्त हो गई है। बस आपके कंकाल पर निर्भर रहना है। ओह, जीवित परिवार!

भारत की सोई हुई शक्तियों को झकझोर दिया गया है, वीरों को उपदेश दिया गया है, और इस सामाजिक क्रांति के आह्वान पर जागने का समय आ गया है-

वापस उठो और ूमो। एक साहसी इंसान, कोई जानवर नहीं. मतलबी मत बनो; इसके बजाय, अपने आप को समय की रेत में डूबने दें।

कवि ने देशभक्ति की उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत होकर भारत माता की उसके वास्तविक रूप में स्तुति की है-

लड़ाई जीती जाए और कमल खिले, भारती; गरजितोरमी सागर जल, लंका पडताल शतदल, धोता शुचि चरण, समृद्ध प्रतीकात्मक की सराहना करते हुए।

इन विचारों से प्रेरित होकर, वह सरस्वती से प्रार्थना करते हुए प्रार्थना करते हैं कि वह भारत के लोगों के लिए रोशनी लाएँ और उन्हें एक नई आवाज दें।[7] कवि भारत माता को विदेशी प्रभुत्व से बचाने के लिए अपनी जान देने के अलावा और कुछ नहीं चाहता है।

महाकाल की आवाज से मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता. आप मुझे और अधिक ताकत के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। मूर्ति की माटी युक्त अश्रु जल, धौत विमल मैं तुम्हें मुक्त कराने के लिए अपना बलिदान दे दूंगी। अपने बलिदान को अपने चरणों में लाओ। काम और सिंचाई से अर्जित श्रेय-कुल।

निराला को भारतीय संस्कृति की रीति-नीति अस्वीकार थी। उसका दिल उस विधवा के लिए टूट गया जिसने अपने पति और बच्चों को खो दिया था और अब अकेली थी और पीड़ित थी।

सुनता है दु:ख की मूक चीखें समीर आकाश धीर निश्चल उसे कौन सह सकता है मेरे दु:ख का भार कौन सह सकता है?

समाज में भयानक असमानता को देखने के बाद, एक अनोखा पत्थर तोड़ने वाला व्यक्ति एक लड़की के जीवन की कहानी को गीतात्मक अभिव्यक्ति देता है।

दिवा के तपते शरीर की गर्मी बढ़ गई। धूल भरे अंगारे आग में रुई की तरह जमीन पर लिपट गए। वह आमतौर पर दोपहर में पत्थर तोड़ती है। आगे और पीछे से क्रियाशील लकुटिया प्रणाली को जोड़ते हुए, जब भी उसे भूख लगती तो वह कुछ मुड़े हुए कागज के थैले बाहर निकाल देता था।

निराला, अपने पूरे जीवन में देखे गए अन्याय, जबरदस्ती और मानवीय पीड़ा से निराश होकर, माँ दुर्गा से तांडव नृत्य करने और असमानता के राक्षस को हराने की अपील में अपनी आवाज उठाते हैं।

बस उठो और नाचो, यार। श्यामा के लिए तैयारी
मायने रखती है।

अब कवि कोमल रागों के स्थान पर भैरवी राग सुनने को लालायित है और वह प्रार्थना करता है कि पुराने, बिगड़ते राग को जलाने से नवजीवन और शक्ति उत्पन्न हो।

पुरानी और टूटी-फूटी लाश को नष्ट कर दो, मैं तुम्हारा क्या करूँ? देवव्रत नरवर शक्ति नवीन के प्रचार की संतान थे।

निराला ने अन्याय और असमानता के विरुद्ध विरोध गीत और प्रेम गीत दोनों ही भैरवी राग में गाये। प्रियतम का पवित्र प्रेम प्रियतम के हृदय को अपनी ओर खींचता है और इन धुनों में कहीं न कहीं प्रियतम के मादक प्रेम का सुंदर चित्र है।[8] 'जूही की कली' में पवन और काली द्वारा दिखाए गए किशोर नायक-नायिका का दृश्य मनमोहक और आकर्षक है।

वन-वल्लरी विजन की तरह, कुछ आरामदायक नींद लें। हमारे नायक के गाल पर एक चुम्बन, वल्ली के सांर्ष में वृद्धि हुई,

जैसे ही उनकी विशाल आँखें बंद हुईं, हिंडोल नील बंकिम-
उसने यौवन के झरने को बहुत गहराई से आत्मसात
कर लिया था।

कुछ गीतों में प्रेम को शाम की सुंदरता के रूप में चित्रित किया गया है जो सभी जीवित प्राणियों के दिलों से स्नेह का प्याला पीती है और फिर उन्हें गहरी नींद में सुला देती है।[9] छायावादी काव्य के निर्विवाद प्रणेता निराला ने प्रकृति को उसके संपूर्ण सुंदर और भयानक वैभव में चित्रित किया है। जबकि "जूही की कली" और "संध्या सुंदरी"

खूब तोष अंग से रुद्ध कोष है वे सभी, चाहे कपड़े पहने हों या नहीं, डर से कांप रहे हैं। शक्तिशाली तूफानी बादल, रहस्यमय शक्ति पर आश्चर्य की भावना - जो आत्मा में बांसुरी बजाती है - यहीं कहीं छिपी हुई है। और कल्पना की अज्ञात भूमि का पता लगाने की आवश्यकता व्यक्त की गई है।

जहां भी दो लोग मिलते हैं, लाखों तरह की रोशनी खिल उठती है। लगातार अत्याधुनिक नवाचार; ब्रह्मांड में आगे बढ़ो।

कुछ गीतों में आत्मा के अभिसरण, एकता और ईश्वर से अलगाव का जीवंत प्रतिनिधित्व भी पाया जा सकता है। निराला की कविता देशभक्ति की भावनाओं का अनुभव करने का अवसर भी प्रदान करती है। 'मातृभूमि की वन्दना' वह कविता थी जिसके साथ उन्होंने हिंदी भाषा में एक कवि के रूप में अपनी शुरुआत की। ऐसे कई अतिरिक्त गीत हैं जो प्राचीन भारत की वीरता, उसकी बुद्धिमत्ता और सुंदरता पर गर्व का जश्न मनाते हैं। 'फिर जागो' और 'महाराज शिवाजी का पत्र'।[10] एक समय ऐसी कविताएँ भी थीं। तुलसीदास अपने प्रबंध काव्य में आधुनिक समाज में व्याप्त संस्कृति-परदमुखता और भौतिकवाद पर व्यंग्य करते हैं, साथ ही अपने पाठकों को जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता पाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसी तरह, निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में एक विदेशी बुराई को हराने के लिए ताकत इकट्ठा करने का संदेश देने के लिए पौराणिक कथावाचन का उपयोग किया है।[11] निराला ने न केवल उपदेशात्मक गीत लिखे हैं, बल्कि सामाजिक चेतना को झकझोरने के लिए कटु व्यंग्य का भी सहारा लिया है। उन्हें व्यवसायियों, अवसरवादियों, धनी लोगों और स्वयंभू सामाजिक-कार्य गुरुओं से प्रोत्साहन मिला है। कुकुरमत्ता, नये पत्ते, बेला और अनिमा का व्यंग्यात्मक स्वर पिछले कार्यों की तुलना में अधिक स्पष्ट है। मजदूरों और किसानों का पैसा बर्बाद करने वाले उच्चवर्गीय पूंजीपतियों को 'कुकुरमुत्ता' में दंडित किया गया है-

सुनो प्रिये, याद रखो, इत्र मत खरीदो, उसे रंग दो, तुमने ग्रणित पूंजीपति का जीवन रक्त सोख लिया है।

विवाह के लिए लड़की की उपयुक्तता पर विचार करते समय समाज उसके रूप-रंग को कितना महत्व देता है, इस कारण से, "रानी और कानी" में विवाह प्रणाली की कवि की आलोचना बहुत तीखी है। 'बेला' साथ खड़े भिखारियों पर व्यंग्य है। गंभीर

क्षति हुई है।[12] निराला अपनी कविताओं में वन्दना-गीतों को पर्याप्त महत्व देते हैं। प्रारंभ में, उन्होंने भारत माता के भौतिक प्रतिनिधित्व के सामने सिर झुकाया था-

भारती जीत सकती है, और कनक कमल उगा सकती है। गार्जिटोर्मी नदी से लंकाई चावल और करी, दाल और सागर। धोता शुचि चरण जोड़ी के साथ इसमें कुछ गहराई डालें। शिखर प्राचीन बर्फ और बर्फ से ढका हुआ है, प्रणव ओंकार प्रणव, स्वर स्थापित करने में प्रचुर मात्रा में अच्छा, मुखारे शतमुख शत्रव।

कवि माँ सरस्वती की पूजा करते हुए भी उनसे प्रार्थना करता है और उनसे भारत के लोगों को बंधनों से मुक्त करने, उनके पर्यावरण को साफ करने और देश के हर कोने में प्रकाश, ज्ञान और समृद्धि प्रदान करने की भीख मांगता है। काव्य संग्रह 'आराधना' में निराला ने खुद को भगवद-भक्ति के लिए समर्पित कर दिया है, जहां उन्होंने सत्यम-शिव-सुंदरम को श्रद्धांजलि दी है। निराला की कविता में कल्पना और कोमलता, राष्ट्रीय गौरव का ओजस्वी स्वर और समाज का धारदार चित्र सभी मौजूद हैं। उसकी शब्दावली विषय और सेटिंग के साथ बदलती रहती है। छायावादी-रहस्यवादी या संस्कृति-उन्मुख फोकस वाली कविता में संस्कृत के समान शब्द, प्रतीकात्मक और रूपक शब्दावली और समास-योजना के प्रति पूर्वाग्रह पाया जा सकता है। भाषा की सहजता उनके लिए जोर देने वाली बात नहीं थी। उन्होंने अन्यत्र जो कहा है, उसके लिए भी यही कहा जा सकता है, जहां उनका तर्क है कि "साहित्य में अभिव्यक्ति की उपयुक्तता पर भी विचार किया जाना चाहिए, भाषा अभिव्यक्ति की अनुयायी है। इसलिए, उन्होंने भाषा को लोगों की भावनाओं के अनुरूप आकार दिया। जब लोगों की भावनाएं अधिक गंभीर और परिपक्व होती हैं, तो उनकी भाषा अधिक परिपक्व, गंभीर और सशक्त होकर इसे प्रतिबिंबित करती है। इसके विपरीत, जहां भी उनकी कविताओं में सार्वजनिक जीवन का चित्रण होता है, उनकी शब्दावली सीधी और उपयोगितावादी हो गई है। सभी को पढ़ने के बाद निराला-काव्य, हम उनकी कविता में मौजूद चार अलग-अलग भाषाई शैलियों की पहचान कर सकते हैं। तुलनीय संस्कृत शब्दों और गुरु की समाधि, परिष्कृत स्वर के सूचक लंबे यौगिक शब्दों का उपयोग-

रावण शक्तिशाली विकल वानर दल के साथ दुर्वार पर आक्रमण करता है।

ऐसे भाषण-गीत हैं जिनमें बहुत हिंसक शब्दों का प्रयोग किया गया है-

उठो, उठो; रात समाप्त हो गई है और भोर आ गई है। ज्योतिर्मय प्रकट पूर्वांचल झरता झार ज्योतिर्मय।

प्रेमी के हृदय की कोमल भावनाओं और प्रकृति के मनोहारी दृश्यों को व्यक्त करने के परिणामस्वरूप निराला की भाषा सुरीली हो गई है। यह संगीत की दृष्टि से मनभावन होने के साथ-साथ आलंकारिक और प्रतीकात्मक रूप से भी समृद्ध है। 'गीतिका' गीतों को पढ़ते समय पाठक को ब्रह्मांड के आनंद का अनुभव होता है, जिसमें सुंदर स्वर, लय और झंकार होती है-

वीणा वादिनी, कृपया हमें अनुग्रह प्रदान करें। नये भारत को रव अमृत मंत्र से भर दो, स्वतंत्र भारत।

निराला की भाषा के ध्वन्यात्मकता अथवा ध्वनि-सौंदर्य ने भी इसे जीवंत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। "बादल राग" कविता पढ़ते समय बादलों की शक्तिशाली गर्जना सुनी जा सकती है।

गड़गड़ाहट की हल्की गड़गड़ाहट ान-ार झूम-झूम किसी राग के साथ अपनी अमर अम्बर चीख को बढ़ाओ।

जीवन की वास्तविक छवि प्रस्तुत करने वाले शब्द सीधी, समझने योग्य भाषा का उपयोग करते हैं, हालाँकि उनकी सीधी भाषा गंजेपन की चरम सीमा तक नहीं पहुँचती है। विधवा के 'विधवा' के लिए प्रस्तावित रूपक, हालांकि कविता में उनका अर्थ स्पष्ट है, फिर भी वे विनम्र और परिष्कृत प्रतीत होते हैं।

यह सर्वोच्च देवता को समर्पित एक पवित्र मंदिर के दर्शन के समान है। वह स्थिर थी, अपनी भावनाओं में खोई हुई थी। तांडव की यादों की एक रेखा उस भयानक युग में खींची जा सकती है। वह मुझे एक ढीले लता वाले क्षतिग्रस्त पेड़ की याद दिलाती है।

जिन स्थानों पर जीवन का चित्र लिखा गया है, वहां भाषा और भी सरल हो गई है। फिर भी पाठक इस अत्यंत सरल भाषा से प्रभावित होता है। भीख मांगते आदमी को देखकर पाठक का दिल भी टूट जाता है। यह वाक्यांश केवल धारणा को बढ़ाता है -

अकेला, अकेला, मैं हूँ सूरज मेरे आसमान पर
डूब रहा है।

इसमें कुछ अंग्रेजी और उर्दू शब्द भी हैं। इसी तरह की शब्दावली का उपयोग निराला ने सामाजिक अन्याय, शोषण और असामाजिक व्यवहार पर अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिए किया है। कुछ क्षेत्रों में कई उर्दू शब्द हैं। निराला एक तानाशाह की तरह जुबान पर राज करते हैं. उनके खलिाफ शब्द बेकार लगते हैं. उन्होंने अपनी बदलती भावनाओं और दृष्टिकोणों को प्रतिबिंबित करने के लिए शब्दावली को फिर से आकार दिया है, जिससे यह विभिन्न प्रकार से परिपक्व प्रांजल जैसी, नरम और नाजुक, कठोर और कड़वी लगती है। भाषा को उनके नेतृत्व में नर्तक के रूप में दिखाया गया है। निराला ने केवल शृंगार ही नहीं किया है। यह अप्रतिम डिजाइन भावनाओं, विचारों, चीजों और स्थितियों की इतनी सुंदर, भावपूर्ण छवि अंकित करता है कि उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता और यही कारण है कि उनकी कविताओं में अलंकार स्वाभाविक रूप से प्रकट हुए हैं। निराला का मानना था कि कविता के लिए मूर्तिकला महत्वपूर्ण है, इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में ज्वलंत और गतिशील शब्द मूर्तियां बनाने के लिए अलंकरण का उपयोग किया। वे शब्द-मूर्तियाँ छोटे से लेकर स्मारकीय तक, हर जगह हो सकती हैं। वह इन मूर्तियों के निर्माण में उपमा और रूपक भाषा का प्रयोग करता है। लेखक "विधवा" कविता में उपमाओं के उपयोग के माध्यम से विधवा की मासूमियत,

नम्रता और त्रासदी की एक ज्वलंत छवि चित्रित करता है। तुलना करते समय, उनका ध्यान अभी भी मुख्य रूप से परिणाम की निष्पक्षता पर होता है। रूपक अलंकारों के माध्यम से उन्होंने कुछ आश्चर्यजनक शब्द चित्र भी चित्रित किये हैं। निरंग रूपक, जो अक्सर संक्षिप्त होते हैं, का उपयोग उदाहरणात्मक चित्र प्रदान करने के लिए किया गया है जैसे-

> हृदय उड़ गया है, और शरीर का खोल ही शेष
> रह गया है।

इस वाक्य में निर्झर पर स्नेहहीन होने का आरोप लगाकर कवि एक प्रभावशाली छवि बनाता है। इसी प्रकार, रत्नावली का शब्द छवि रत्नावली का वर्णन करने के लिए एक उपयुक्त रूपक है-

> शफरी-अलाकेन भटकती आँखें, साफ-सुथरी
> पलकें।

यहाँ तक कि मानक रूपकों और संगीत रूपक का उपयोग करते हुए, कवि ने एक सिंथेटिक छवि चित्रित की जो सुंदर और मार्मिक दोनों थी। रत्नावली में शारदा पर आरोप लगाने में कवि की ज्वलंत प्रतिभा पूर्ण प्रदर्शन पर है-

देखा, रश्ना के ही मुख में शारदा नील-वासना खड़ी है। वीणा का अपना स्वर, शहद जैसा मधुर, निकलता है। चरण सुार उस विश्व हंस का नाम है जो श्री निराला काव्य में मानवाकृति, संसोक्ति, रूपक, अनिश्चितता तथा ध्वन्यात्मक-व्यंजना अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है।

इन अलंकरणों द्वारा कवि के शब्दों को अतिरिक्त गंभीरता और प्रतिध्वनि प्रदान की गई है। संरचना और भाव को व्यक्त करने के लिए निराला ने प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। उनके अधिकांश प्रतीक प्राकृतिक दुनिया से उत्पन्न हुए हैं। उनकी प्रतीक प्रणाली इस मायने में अनूठी है कि भावनात्मक छवि को रूप विवरण के साथ साकार किया जाता है। 'जूही की कली' में जूही और पवन का प्रतीक न केवल नई नायिका की भावनाओं को प्रकट करता है, बल्कि उसकी एक सुंदर छवि भी पेश करता है। 'बादल राग' कविता के एक खंड से दूसरे खंड तक, बादल एक क्रांतिकारी, एक सैनिक और एक बच्चे सहित विभिन्न प्रकार के पात्रों का प्रतिनिधित्व करता है। कवि ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी अंतरतम भावनाओं को व्यक्त करने का लक्ष्य पूरा कर लिया है। निराला के प्रतीक न केवल उनकी उर्वर कल्पना का प्रमाण हैं, बल्कि उनकी गहरी भावनाओं को व्यक्त करने का एक सफल प्रयास भी हैं। निराला एक स्वतंत्र आत्मा वाले कवि थे जो खुशियों को पसंद करते थे और किसी भी प्रकार की कैद बर्दाश्त नहीं करते थे। इसीलिए वे कविता को छंद की आवश्यकता नहीं समझते थे। आरंभिक विरोध के बावजूद वे मुक्त कविता लिखने में लगे रहे। पंत ने निराला के लिए यह प्रशस्ति रचना की, जिन्हें अक्सर हिंदी कविता में अलंकार और छंद की सीमाओं को तोड़ने का श्रेय दिया जाता है-

> प्रास के रजत पाश के प्रतीक काव्य का ताला
> खुल गया है।

उनके शब्दों में मात्रा या लय की परवाह किए बिना हर दिशा में प्रवाहित होने की प्रबल इच्छा होती है। निराला ने मुक्त छंद में कविता बोलकर इतिहास रचा, जबकि हिंदी जगत में बाकी सभी लोग छंद और छंद और वर्णक्रम में लिख रहे थे। इस प्रकार, उन्हें मुक्त छंद के जनक के रूप में संदर्भित करना सटीक है। निराला केवल छायावाद के ही आधार नहीं थे; उन्होंने प्रगतिशील विचारों को फैलाने और प्रयोग को प्रोत्साहित करने में भी प्रमुख भूमिका निभाई।20 पूर्व धारणाओं से मुक्त कविता सृजन में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

पद्य बंधन टूटने से पर्वतीय वाहन टूट सकता है। अपरिवर्तनीय सामान्यीकरणों के कवि! आपकी कविताएँ प्रवाहित हैं।

निष्कर्ष

मानव आत्मा की परिवर्तनकारी क्षमता और रचनात्मक प्रतिभा के चिरस्थायी प्रभावों का उदाहरण देता है। उनके गहरे चरित्र और व्यापक कार्य के कारण, पूरे हिंदी भाषी जगत में पाठक और लेखक समान रूप से उनका सम्मान करते हैं। निराला का जीवन, उनकी विनम्र शुरुआत से लेकर एक साहित्यिक दिग्गज के रूप में उनकी स्थिति तक, दृढ़ता, दृढ़ता और ज्ञान की कभी न खत्म होने वाली आवश्यकता और खुद को व्यक्त करने की स्वतंत्रता की शक्ति का एक प्रमाण है। निराला की साहित्यिक विरासत उनके बाद आए लेखकों और कवियों की रचनाओं में जीवित है। हिंदी लेखन में उनके योगदान ने एक स्थायी विरासत छोड़ी है, जो पीढ़ियों से महत्वाकांक्षी लेखकों की कल्पना को प्रेरित और प्रज्वलित कर रही है। अपनी कई प्रतिभाओं, व्यावहारिक दृष्टिकोण और लिखित शब्द की निपुणता के लिए, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला को अभी भी व्यापक रूप से एक साहित्यिक किंवदंती के रूप में माना जाता है।

संदर्भ

1. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, (2019) "कुल्ली भाट।" (काव्य संग्रह) राजकमल प्रकाशन।
2. गुप्ता, हरीश (2018) "सूर्यकांत त्रिपाठी निराला: एक चिंतन यात्रा।" (जीवनी). वाणी प्रकाशन।
3. राय, अमृत. (2016) "सूर्यकांत त्रिपाठी निराला: कविता और व्यक्तित्व।" नेशनल बुक ट्रस्ट।
4. सिंह, प्रतिभा. (2018)"निराला की कविता में भावनाओं की खोज: एक मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य।" जर्नल ऑफ इंडियन लिटरेचर, वॉल्यूम 44, नहीं. 3, पृ. 87-101.
5. शर्मा,रामेश्वर (2017) "निराला की स्वच्छंदतावाद और मानवीय भावनाएँ।" तुलनात्मक साहित्य के भारतीय जर्नल, खंड 31, नहीं. 1, पृ. 56-72.
6. वर्मा, सुभाष. (2019) "निराला के निबंधों में सामाजिक चेतना: एक आलोचनात्मक विश्लेषण।" विश्व साहित्य आज, खंड। 70, नहीं. 4, पृ. 112-126.

7. चौधरी, सुरेंद्र नाथ.(2016) "निराला का गद्य: सामाजिक वास्तविकताओं का प्रतिबिंब।" इंडियन जर्नल ऑफ लिटरेरी स्टडीज, खंड 25, नहीं. 2, 2016, पृ. 98-112.
8. शर्मा, वंदना. (2017)"हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय पहचान में निराला का योगदान।" तुलनात्मक साहित्य जर्नल, खंड 19, नहीं. 3, 2017, पृ. 142-157.
9. राय, देवेन्द्र कुमार। (2015) "निराला: जन-जन के कवि।" राजकमल प्रकाशन, 2015.
10. चतुर्वेदी, रामप्रसाद (2018) "निराला का साहित्यिक शिल्प कौशल।" लोकभारती प्रकाशन।
11. सिंह, आनंद कुमार. (2016) "दूरदर्शी निराला: उनके साहित्यिक दर्शन का एक अध्ययन।" रिसर्च जर्नल ऑफ लिटरेचर एंड कल्चर स्टडीज, वॉल्यूम। 10, नहीं. 1, पृ. 34-48.
12. त्रिपाठी, आकाश. (2019) "आधुनिक हिंदी कविता पर निराला का प्रभाव।" भारतीय साहित्य में अध्ययन, खंड 36, नहीं. 3, पृ. 176-192.

रामायण कालीन भारतीय समाज

नवीन

शोध छात्र, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

भूमिका

भारतीय लोक जीवन में रामायण का अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान है। यह हमारा आदि-काव्य है जिसकी रचना महर्षि बाल्मीकि ने की थी। इसके रचना काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है लेकिन अधिकतर विद्वानों का मानना है कि इसकी रचना ई० पू० चौथी शताब्दी में हुई। रामायण कालीन भरतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का वहीं स्वरूप था जो उत्तरवैदिक काल में था उसका कर्म भी उसी प्रकार का था। चातुर्वर्ग की उत्पति के विषय में ऋग्वेद की तरह रामायण में भी परमपुरूष से उसका होना उत्पन्न होना बताया गया है-

मुखतों ब्राह्मण जाता उरस क्षत्रियास्तया
उरूम्या जतिरे वैश्या पद्भ्यां शूद्रा.....।[1]

ब्राह्मण: ब्राह्मण का मान और सम्मान समाज में उच्च था। उसे परमपुरूष के मुख से उत्पन्न मानकर उसकी श्रेष्ठता और विशिष्टता स्वीकार की गई। उसकी सर्वोच्चता और महानता भूमिचर देवता के रूप में थी। वह अपनी विद्वता और ज्ञान के लिए विख्यात था। अपने विभिन्न उच्चस्तरीय कार्यो के कारण वह समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गया था तथा उसे अनेक विशेषाधिकार भी प्राप्त हो गए थे। किन्तु स्वयंघर्म का त्याग करने वाला ब्राह्मण अन्दनीय था। रामायण में एक जगह कहा भी गया है कि क्षतिर्य और वैश्य के कर्म अपनाने वाला ब्राह्मण कुत्ता और भेडिया माना जाता था अर्थात उसे निम्न वर्ग का समझा जाता था।

क्षतिय: वर्ण राजन्य और शासक वर्ग से संबघ था। प्रशासन और देश की सुरक्षा उनका प्रधान कर्म माना जाता था। रामायण में भी कहा गया है कि धर्मेण चतुरों वर्णान पलायने क्लेशमाप्नुहि रामायण में एक स्थान पर कहा गया है कि क्षतिर्य जन्म से नहीं वीरता से ही होता है।[2] उस समय के स्रोतों से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण और क्षतिर्य दोनों को पारस्परिक सहयोग और सदभावना से कार्य करने के लिए निर्दिष्ट किया जाता था। दोनों के आपसी प्रेम और मेल से कोइ भी बांधा या शत्रु प्रबल नहीं हो सकता थी। इसी संदर्भ में रामायण में कहा गया है कि ब्राह्मण और क्षेतिर्य का सहयोग शत्रु का उसी प्रकार विनाश करता है जिस प्रकार वायु और अग्नि का सहयोग वन का।

क्षतिय वर्ण को भी अध्ययन करने का अधिकार था। किन्तु यह विधान सर्वप्रचलित नहीं था। रामायण के अनेक स्थलों पर उसे अध्यापन और याजन से विलग किया गया है- क्षतिर्य याजको यस्य चाण्डालस्य विशेषता, कंथ सर्दास भोक्तारो हविस्तरयसुरर्षय।। किन्तु ऐसे भी क्षेतिर्यो का वर्णन हम देखते हैं जो वेदों, धनुर्वेदों, रणविधा और संगीत में भी पारंगत होते थे।[3]

वैश्य: इस वर्ण के लिए रामायण में कहा गया है कि वह समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन और यजन के कर्मो को छोडकर कृषि कर्म तथा गोपालन वृति का अनुसरण किया। इस वर्ग का प्रधान उद्देश्य था धनार्जन करना। समाज को आर्थिक दृष्टि से सबल और सुव्यवस्थित करने के लिए वैश्य वर्ण की आवश्यकता थी, जो अपने अथक परिश्रम और लगन से समाज के आर्थिक जीवन को सुदृढ करता था। प्राचीन काल में समाज का आर्थिक उत्कर्ष कृषि और व्यापार से ही हो सकता था जिससे वैश्य वर्ग धन सम्पति से युक्त हो सकता था। इनके लिए कुछ ऐसी वस्तुएं भी निर्धारित की गई थी जिनका व्यापार करना उनके लिए वर्जित था। वह मद्य, मांस, लौह और चर्म का व्यापार नहीं कर सकता था। ऐसा लगता है कि इस वर्ग को विशिष्ट वस्तुओं का ही व्यापार करने का अधिकार था।[4]

शूद्र: वर्ग का तत्कालीन समाज में निम्न स्थान था। उसके लिए महाभारत में भी कहा गया है कि उनका प्रमुख धर्म अन्य वर्णा की सेवा करना है। जैसा पहले उल्लिखित किया जा चुका है कि शूद्र की उत्पति विराट पुरूष के पैर से हुई थी। उसे अध्ययन और याजन का अधिकार नहीं था। कोई भी शूद्र विद्याध्ययन के नियमित आचार्य के आश्रम में प्रविष्ट नहीं कर सकता था। अनाधिकारी तप करने वाला शूद्र उपेक्षणीय और निन्दनीय था।[5] रामायण में भी उल्लेख आया है कि एक शुद्र वर्णीय शम्बूक ने अनधिकारपूर्वक तप करने की चेष्टा की थी, जिस पर राम ने वर्ण धर्म की सुरक्षा के लिए उसका वध कर डाला था। लेकिन हम रामायण में यह भी उल्लेख देखते हैं कि शूर्द्र अपने सदाचार से वैश्य, क्षतिर्य अथवा ब्राह्मण हो सकता है-

यस्तु शूद्रों दमें सत्ये धर्मे सततोत्थित: त ब्राह्मण
मन्यें वृळोन हि भवत् द्विज।[6]

सामान्यत: समाज में शूद्रों की स्थिति प्राय: दयनीय थी। किन्तु कुछ शूद्र अपने सत्कर्मो और सदाचरणों के कारण समाज में आदृत थे विदुर, कायव्य और मतंग इसके ऐसे उदाहरण है। जो अपने कर्मो के कारण समाज में प्रतिष्ठत थे तथा अपनी इच्छानुसार दूसरे कर्म भी अपना सकते थे।[7]

व्यावहारिक रूप से शूद्रों के प्रति उदारता का बर्ताव किया जाता था। उन्हें अनेक बधनों से मुक्त किया गया था तथा उनकें प्रति सहदयता प्रदर्शित की गई है।[8] महाभारत में कुछ ऐसा वर्णन आया है जहां युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में शूद्र प्रतिनिधियों को भी निमन्तिर्त किया था जो तत्कालीन उदार भावना का प्रतीक था।[9]

आश्रम व्यवस्था

इस काल में आश्रम व्यवस्थ का स्वरूप स्पष्ट हो चुका था। ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा-दीक्षा, अनुशासन और ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहारिक रूप में ब्रह्मचर्याश्रम का पालन मुख्यत: ब्राह्मणों और साधारणतया क्षत्रियों के द्वारा ही किया जाता था। अन्य वर्णों तथा नारी समुदाय में ब्रह्मचारियों के उदाहरण देखने को नहीं मिलते। गृहस्थाश्रम मुख्य रूप से विवाहित जीवन का काल था। कभी-कभी विवाह होने में कुछ देर हो जाती थी। अत: ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम के बीच की इस अवस्था को स्नातकावस्या कहते हैं। रामायण में विद्याध्ययन के पश्चात् राम को स्नातक कहा गया वानप्रस्थ आश्रम में साधारणतया मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के पश्चात् ही इस आश्रम को ग्रहण करता था। महाकाव्यों के उदाहरणों से प्रकट होता है कि वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करने वाले अधिकांशत: ब्राह्मण और क्षत्रिय ही होते थे। जहाँ तक शूद्रों का सम्बन्ध है, उनके लिए एकमात्र गृहस्थाश्रम की ही योजना थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वानप्रस्थ आश्रम को स्त्रियाँ भी ग्रहण कर सकती थीं। महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र और पाण्डु के साथ उनकी पत्नियाँ भी वानप्रस्थ हुई थी। संन्यास प्रथम तीन आश्रमों के समस्त उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के पश्चात् मनुष्य संन्यासाश्रम में सम्पूर्णत: संसार से विरक्त हो जाते थे। महाकाव्यों के साक्ष्य से यह भी ज्ञात होता है कि महिलाए भी संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो सकती थी।[10]

नारी

दोनों महाकाव्यों से प्रतीत होता है कि भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र ही तार्ण करता था। इसी से उसका नाम पुत्र पडा। इसके विपरीत पुत्री तो साक्षात आपति थी। वह अपने माता-पिता और पति, तीनों के कुलो के लिए संकट थी, रामायणकार की दृष्टि से भी उसकी स्थिति निम्न थी।

सती और पर्दा प्रथा

रामायण कालीन भारतीय समाज में प्रचलित नहीं थी। रामायण में ब्राह्मणी वेदवती की माता प्रज्वलित अग्नि में प्रविष्ट हुई लेकिन इस से सती प्रथा की मान्यता सिद्ध नहीं होती। समाज में नारी पर्दा नहीं रखती थी। राम स्वयं कहते हैं कि स्त्री के लिए गृह, वस्त्र, प्राकार और पार्थक्य निरर्थक है उसका चरित्र ही आवरण है।[11]

इस प्रकार महाकाव्य युगीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। किन्तु इस युग में वर्ण कठोर होकर जातियों का रूप लेने लगे थे। रामायण में शक, यवन आदि विदेशी जातियों का उल्लेख मिलता है। इस काल में चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम का सर्वाधिक महत्त्व था। महिलाओं की दशा इस काल में पहले की अपेक्षा हीन हो गई थी। फिर भी इनका समाज में महत्त्व समझा गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामायण, 3.14. 29-30
2. वही, 7. 26. 33
3. वही
4. वही, 2. 106-121
5. महाभारत, 2. 33-41
6. रामायण, 7. 13
7. वही, 5. 6. 13-14
8. वही, 8. 9-11
9. महाभारत, 2. 33-41
10. महाभारत, 2. 82. 11
11. रामायण. 6.17. 32

महात्मा गाँधी के सामाजिक और राजनीतिक विचार- एक अध्ययन

दिव्य प्रकाश सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री वैंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, यूपी

डॉ० प्रियंका सिंह

शोध निदेशक, सहायक प्राध्यापक, श्री वैंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, यूपी

सारांश- महात्मा गांधी ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और समाज के सभी वर्गो को स्वीकार्य तरीके से एक साथ जोड़ा है। गांधीवादी विचार प्रकृति में दार्शनिक हैं। निस्संदेह गांधी एक सामाजिक अभियंता थे जो एक नए मानव समाज का निर्माण करने की कोशिश करते हैं जहां हर व्यक्ति हिंसा और युद्ध के बिना रह सकता है। गांधीजी ने अपने पूरे जीवन महिलाओं, अछूतों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों की बेहतरी के लिए काम किया। इस अध्याय में समाज में गांधीवादी चिंतन और उनके दर्शन के महत्व को उजागर करने का प्रयास किया गया है। तर्क यह है कि गांधी के अहिंसक तरीकों से गांधीवादी विचार और सिद्धांत कुछ हद तक भारतीय समाज को बदलने में सफल रहे हैं। इसके अलावा, उनके विचारों ने लैंगिक समानता, लोगों में एकरूपता ला दी और अस्पृश्यता, विधवा पुनर्विवाह और बाल विवाह पर रोक जैसी कई अमानवीय प्रथाओं को समाप्त कर दिया।

कुंजी:- सत्य, हिंसा, युद्ध, गांधीवाद, बाल-विवाह, पुनर्विवाह।

प्रस्तावना:- 1914 में, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों कारण का सफलतापूर्वक नेतृत्व करने के बाद, गांधीजी भारत लौट आए अपनी वापसी के तुरंत बाद, गांधीजी ने लगभग एक साल तक किसी भी राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लिया क्योंकि उन्हें लगा कि वह पहले राष्ट्रीय मुद्दों से परिचित हो सकते हैं। वे 1919 तक सक्रिय राजनीति से दूर रहे और भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में एक सक्रिय नेता बन गए। गांधीजी के मानदंड राजनीति के सामान्य मानदंड नहीं थे। उनके अपने कुछ सिद्धांत थे और उन्हीं के सिद्धांतों पर चल रहे थे। गांधी जी ने अपने सिद्धांतों से कोई समझौता नहीं किया, उनकी सफलता के मानक नैतिक और धार्मिक थे। वह हर तरह से नैतिकता के आदमी थे उनकी नैतिकता को उनके संपूर्ण सार्वजनिक कार्यों से समझा जा सकता है जब उन्होंने ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपना असहयोग आंदोलन शुरू किया, तो उन्हें 1922 में छह साल की कैद की सजा सुनाई गई। 1930 में उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए कठोर नमक कानून को तोड़ने के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया। कई भारतीयों ने उनका अनुसरण किया और नमक पर लगी पाबंदियों को तोड़ा सविनय अवज्ञा आंदोलन ने भारतीय समाज को कई तरह लाभान्वित किया। इस आन्दोलन ने भारतीय जनमानस को बिना किसी हिंसक तरीके से ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करना सिखाया, इसने भारतीय सामाजिक संरचना में अहिंसा के सिद्धांत को भी समाहित किया। उनके जाति भेद के बावजूद अहिंसा के तरीके ने भारतीय जनता को एक साथ एकत्रित किया, यदि उपरोक्त सिद्धांत को भारतीय राजनीति में लागू नहीं किया गया होता, तो भारतीय सामाजिक समूह शायद एक दूसरे को अलग कर देते भारतीय समाज में उनकी भूमिका की पहचान करके, यह दावा किया जा सकता है कि गांधीजी एक सदाचारी व्यक्ति थे जिन्होंने जीवन भर अपने आदर्श लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए अहिंसा के मार्ग का अनुसरण किया।

गांधीजी ने महसूस किया कि गरीबी केवल मनोबल और हताशा की ओर ले जा सकती है। साथ ही वह समान रूप से इस बात पर भी जोर देते थे कि विकास का एकमात्र उद्देश्य विशुद्ध रूप से भौतिकवादी नहीं होना चाहिए। उनका विचार था कि सीमा से परे भौतिक समृद्धि कई बुराइयों को जन्म देती है। गांधीजी ने हमारे सामने जो आदर्श रखा वह यह था कि 'हमारी सभ्यताएं हमारी संस्कृति और हमारा स्वराज हमारी चाहत-आत्म-भोग को बढ़ाने पर नहीं, बल्कि हमारी चाह-आत्म-अस्वीकृति को सीमित करने पर निर्भर करता है।

परिवर्तन का एक उद्देश्य व्यक्ति का पुनः उदय होना चाहिए। आधुनिक समय में यह मानवीय गरिमा के नीचे है कि मशीन में एक मात्र दलदल बनने के लिए किसी की वैयक्तिकता को खो दिया जाए। मैं चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति समाज का पूर्ण और पूर्ण विकसित सदस्य बने। एक अन्य अवसर पर गांधीजी ने टिप्पणी की, "यदि व्यक्ति यह गिनना बंद कर दे कि समाज में क्या बचा है? केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता ही मनुष्य को स्वेच्छा से स्वयं को समाज की सेवा के लिए पूरी तरह समर्पित कर सकती है। यदि उससे यह छीन लिया जाता है, तो वह एक ऑटोमेटन बन जाता है और समाज बर्बाद हो जाता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के खंडन पर कोई समाज नहीं बनाया जा सकता है। जब हम मानव

व्यक्तित्व के विकास या व्यक्ति के स्वयं के सम्मान की बात करते हैं तो हम यह नहीं कहते हैं कि यह समाज से अलग होगा। मनुष्य को समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में विकसित होना है और यह न केवल उसके विकास के लिए बल्कि साथ ही उस समूह और समाज के विकास के लिए भी योगदान देना है जिसका वह एक सदस्य है।

सामाजिक समानता के सवाल को संबोधित करते हुए, गांधी ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच जाति के अंतर को खारिज कर दिया। वह अस्पृश्यता या आमतौर पर वहिष्कृत जातियों और वर्णों के रूप में जाने जाने के खिलाफ थे। गांधी ने माना कि हिंदुओं में अस्पृश्यता का प्रसार इंजील के सिद्धांतों का खंडन हो सकता है जो भारतीय लोगों के गौरव को तोड़ सकता है अस्पृश्यता जैसी कुप्रथा समाज की उपज थी जो मानव आचार संहिता का बुरी तरह उल्लंघन करती है गांधी बचपन से ही अस्पृश्यता और संबंधित बुराइयों के पूरी तरह खिलाफ थे अस्पृश्यता जैसी बुराइयों पर गांधी ने स्पष्ट किया है, "लोगों के प्यार ने मेरे जीवन की शुरुआत में ही अस्पृश्यता की वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। मेरी मां ने कहा, तुम्हें इस लड़के को नहीं काटना चाहिए, यह अछूत है। "आगे, 'क्यों न मैंने वापस पूछताछ की और उसी दिन से इसके खिलाफ मेरा विद्रोह शुरू हो गया।" गांधीजी ने अपने पूरे राजनीतिक जीवन में अस्पृश्यता के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई लड़ी, अस्पृश्यता के खिलाफ उनका आंदोलन दिन-ब-दिन मजबूत होता गया, यहां तक कि उन्होंने इस नेक काम के लिए पूरा जीवन अपना बलिदान भी दिया। अस्पृश्यता के खिलाफ लड़ाई ने अपने पति या पत्नी के त्याग और धर्म को डुबो दिया। हालाँकि, अपनी व्यक्तिगत परेशानियों के अलावा, वे अस्पृश्यता के खिलाफ मजबूत और अडिग रहे और आम जनता के मन से इस अमानवीय प्रथा को दूर करने की आकांक्षा की उनके लेखन, भाषण और कार्य। गांधी ने हरिजनों की बेहतरी और उत्थान के लिए काम किया और उनके मंदिर में प्रवेश के लिए संघर्ष किया, जिसने अंततः उच्च जातियों के हिंदुओं को हरिजनों के लिए मंदिर खोलने के लिए मजबूर किया मंदिर में प्रवेश ने एकरूपता की भावना पैदा की और उन्हें ठीक किया। हरिजनों के घाव और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे ईश्वर के सामने बहिष्कृत नहीं हैं।

मोहनदास करमचंद गांधी भारत के इतिहास और आधुनिक भारतीय राजनीतिक सिद्धांत में एक प्रभावशाली व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी प्रभावी विचारधाराओं के लिए अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की गांधी ने पारंपरिक अवधारणाओं और प्रतीकों को स्वीकार किया लेकिन अनिच्छा के बिना विदेशी से भारतीय संस्कृति में व्याख्याओं और विचारों को पेश किया जो उनके दृष्टिकोण में पश्चिमी मानवतावाद के महत्व को दर्शाता है। उन्होंने पश्चिमी तकनीक की तुलना इस आधार पर की कि मशीन सभ्यता अपने साथ पुरुषों के साथ दुर्व्यवहार और शक्ति की एकाग्रता को लेकर आई। इस संबंध में उन्होंने टॉल्स्टोई को पीछे छोड़ दिया, जिनके लेखन, थोरो और अन्य लोगों के साथ उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए अध्ययन किया। उन्होंने राजनीतिक कार्रवाई के विभिन्न तरीकों और विभिन्न प्रकार के राजनीतिक कार्यक्रमों को आजमाया उनके विचारों पर गोखले का प्रभाव उत्साहपूर्वक दिखाई देता है, जैसा कि तिलक द्वारा दर्शाए गए भारतीय राष्ट्रवादी राजनीतिक विचारों के तत्व का प्रभाव है। इन प्रभावों को गांधी के धार्मिक व्यक्तिवाद को पुनर्निर्देशित करने और देशी भाषाओं और स्वदेशी सिद्धांत पर जोर देने के प्रयास में माना जाता है स्वदेशी उन कर्तव्यों को पहले स्थान और समय में हमारे सबसे निकट रखता हैः यह "हम में वह भावना है जो हमें हमारे निकटतम परिवेश के उपयोग और सेवा के लिए प्रतिबंधित करती है, जो कि अधिक दूरस्थ के बहिष्कार के लिए है। हमारे पड़ोसी की सेवा के माध्यम से मानवता की सेवा की जाती है दुनिया के बारे में हमारी समझ केवल उन लोगों की समझ है जिनके साथ हम रहते हैं।

इस असहमति के प्रमुख आर्थिक निहितार्थ हैं घर पर उत्पादित वस्तुओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए इसका विस्तार बहिष्कार का प्रयोग, तिलक की एक और विरासत है। गांधी के अनुसार, पुनर्निर्माण स्थानीय स्तर पर शुरू होता है, और गांव सामाजिक योजना का आधार है उनके लेखन और भाषणों में ग्राम गतिविधि और एक व्यक्ति के प्रयास और पहल पर बल दिया जाता है उन्होंने लगातार छोटे पैमाने के संगठन और सरल उपकरणों और सामग्रियों के उपयोग का समर्थन किया। केवल हाथ से काते और हाथ से बुने कपड़े के उपयोग के उनके अभियान का बड़े कार्यक्रम के लिए बहुत महत्व था, और यह चरखा ही था जिसे गांधी ने सामाजिक स्वायत्तता के प्रतीक के रूप में चुना। भूमि सुधार पर उनके विचार गहरे बैठे थे, लेकिन उन्होंने निजी संपत्ति के उन्मूलन का आह्वान नहीं किया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि व्यवसायी वर्ग को आर्थिक समानता के आदर्श को स्वीकार करने के लिए राजी किया जा सकता है गरीबों के लिए ट्रस्ट में रखे गए धन के विचार से विधायी अधिनियमन अनावश्यक हो जाएगा।

गांधी के राजनीतिक विचार पूर्वी और पश्चिमी विभिन्न परंपराओं से उत्पन्न हुए। हालाँकि उन्हें कई परंपराएँ विरासत में मिली थीं, लेकिन वे उनमें से किसी एक से सहमत नहीं थे। उन्होंने अपने तत्काल पूर्ववर्तियों के साथ-साथ प्राचीन ग्रंथों से कई पारंपरिक अवधारणाओं का चयन किया था। गांधी ने कभी मौलिक विचारक होने का दावा नहीं किया। परन्तु उनके सभी कथनों से अवगत कराने पर यह कहा जा सकता है कि उनका साहित्य एक वैचारिक ढाँचा है, जो एक दार्शनिक के लिए सामान्य है। इसके अलावा, जब यह पाया जाता है कि उनके सैद्धांतिक सूत्रीकरण और व्यावहारिक खोज समान हैं, तो उन्हें भारतीय अर्थों में एक दार्शनिक के रूप में स्वीकार करने का एक कारण है।

गांधी ने स्वयं अपने दक्षिण अफ्रीकी मित्र के सामने स्वीकार किया कि उनका झुकाव धार्मिक था न कि राजनीतिक। 1924 में लिखी गई गांधी की जीवनी में रोमेन रोलैंड ने टिप्पणी की थी कि

अगर तिलक की मृत्यु नहीं होती तो गांधी ने राजनीतिक के बजाय धार्मिक जीवन को चुना होता। गांधी के अनुसार राजनीति ही उनका धर्म था। वे धर्म के राजनीतिकरण के विरोधी थे। वे धर्म के अध्यात्मीकरण के पक्ष में थे, लेकिन वे अनिवार्य रूप से एक परिष्कृत व्यक्ति थे और उन्होंने कभी भी दुनिया से अलग होकर अपनी मुक्ति की मांग नहीं की। गांधी ने कहा कि राजनीति ने उन्हें सांप की कुंडली की तरह घेर रखा है। वे राजनीति से बचने के बारे में सोच सकते थे, अगर राजनीति के बिना भारत के भूखे बेरोजगारों को भोजन और काम उपलब्ध कराया जा सकता था। उन्होंने दृढ़ता से महसूस किया कि खुद को राजनीति में शामिल किए बिना, सामाजिक-आर्थिक दुराचार और राजनीतिक दमन को दूर करना संभव नहीं है और इस तरह भारतीय लोगों का नैतिक अपमान तब तक संभव नहीं है जब तक कि वह खुद को राजनीति में शामिल नहीं करते।

इस दृष्टिकोण से, यह प्रभावी ढंग से किया जा सकता है यदि हम वर्तमान राजनीति को धार्मिक राजनीति से कम कर सकते हैं। गांधी ने धार्मिक राजनीति का वर्णन किया क्योंकि इसे भ्रष्ट प्रभावों और संप्रदायवाद से दूर किया जाना चाहिए। यह राजनीति सभी का विशेषाधिकार होना चाहिए। गांधी राजनीति या धर्म के किसी भी निश्चित सिद्धांत या यांत्रिक तरीके को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

गांधीजी के राजनीतिक विचारों में उल्लेखनीय निरंतरता है। उन्होंने मनुष्य को आध्यात्मिक सिद्धांत के उदाहरण के रूप में माना जो कि दिव्य है। उन्होंने चर्चा की कि मनुष्य की दैवीय प्रकृति धर्म को दुनिया के साथ सकारात्मक रूप से जोड़ने के लिए बनाती है गांधी कार्यकर्ता थे। उन्होंने समाज के उत्थान के लिए काम किया। राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने सामाजिक-आर्थिक और राजनीति की भारतीय प्रकृति के आधार पर विशेष विचार के साथ मुद्दों को समझा। उन्होंने राजनीति को राष्ट्रीय जीवन को विनियमित करने के सर्वोत्तम साधन के रूप में परिभाषित किया और यह भी निर्धारित किया कि इसकी शक्ति निष्पक्ष तरीके से विकेंद्रीकृत होनी चाहिए गांधी जी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का सुख ही अंत है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के सत्याग्रह और अहिंसा को लक्ष्यों को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका पाया। उन्होंने सभी के कल्याण के अपने अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राजनीति में उल्लेखनीय सिद्धांतों को व्यक्त किया। उन्होंने सोचा कि शक्ति संरचना के केंद्रित रूप में राज्य व्यक्ति की तुलना में अधिक जबरदस्त है इसलिए उन्होंने शासन के लोकतांत्रिक रूप में राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण की सिफारिश की। क्योंकि विकेंद्रीकृत लोकतंत्र जनता के योगदान और प्रतिनिधित्व की संभावना देता है। यह व्यक्ति, गाँव और राष्ट्र को स्वतंत्रता और स्वायत्तता की गारंटी देता है. इसके व्यापक अनुप्रयोग में कल्याणकारी दुनिया प्राप्य होगी।

वह आश्वस्त नहीं थे और इस धारणा का विरोध किया कि धर्म को राजनीति से अलग किया जाना चाहिए धर्म से खाली राजनीति व्यर्थ है। उन्होंने सोचा कि राजनीति दूसरों की सेवा करने के महान अवसर प्रदान करती है और ऐसी सेवा धर्म का एक अनिवार्य गुण है। उन्होंने माना कि अंत और मनुष्य एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं। उन्होंने इस विश्वास को सत्य की खोज में भी लागू किया, जिसे वे स्वयं ईश्वर मानते थे साध्य के रूप में सत्य और साधन के रूप में अहिंसा अविभाज्य है गांधीजी एक नैतिक क्रांतिकारी थे। उनका मानना था कि हिंसा ने सामाजिक संरचना की वास्तविक क्रांति को विचलित कर दिया। उनका मानना था कि हिंसा मानव जाति का भाग्य लिख देगी। उनका मानना था कि लोगों की समस्याओं का अहिसात्मक समाधान न केवल संभव है बल्कि वास्तविक समाधान का एकमात्र तरीका है। वह गांवों को भारतीय आर्थिक संगठन का केंद्र मानता था। वकील, डॉक्टर और मैला ढोने वालों के लिए वेतन की समानता की अवधारणा की उनकी प्रतियोगिता में उनका आर्थिक कट्टरवाद सामने आया है पंचायत राज की उनकी धारणा एक दूर का सपना रही, लेकिन शासन में लोगों की भागीदारी के लिए उनके तर्कों ने भारत में समतावाद के विस्तार के लिए प्रेरित और समेकित आंदोलनों को भी किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गांधी, एम. के. (1959) एक आत्मकथा: सत्य के साथ मेरे प्रयोगों की कहानी, नवजीवन प्रकाशन गृह, अहमदाबाद, पृष्ठ 3।
2. दत्ता, डी. के. ; (1961) सामाजिक, मोरालैंड धार्मिक दर्शन और महात्मा गांधी, बौद्धिक पुस्तक कॉमर, 23 दरयागंज, प्रताप गट्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 18।
3. राठी, शुभांगी (2004) सर्वोदय और उसके सिद्धांतों के गांधीवादी दर्शन।
4. ठक्कर, उषा (2006) विकास का गांधीवादी दृष्टिकोण।
5. मथाई. एम. पी. स्वराज का गांधी के लिए क्या मतलब था?
6. माथुर (संपा.) (2009) महात्मा गांधी के आर्थिक विचार, पृष्ठ 507।
7. हैरी ए. (1939). पृष्ठ 438।
8. बॉन्डुरेंट जोन, वी. कॉन्क्वेस्ट ऑफ वॉयलेंस, पृष्ठ 30।
9. एल झा मधु निर्णय लेने की स्थिति में महिलाएं, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 30।
10. मुखर्जी सुब्रत, रामास्वामी सुशीला महात्मा गांधी आर्थिक और सामाजिक सिद्धांतों के तथ्य, दीप और दीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 300।
11. भारत सरकार (1940) द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, नई दिल्ली, नवजीवन ट्रस्ट, पृष्ठ 591
12. गांधी, एम. के अस्पृश्यता को हटाना, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959, पृष्ठ 177

शहीद-ए-आजम भगत सिंह: धर्मनिरपेक्षता के संबंध में विचार वर्तमान संदर्भ में

ममता कुमारी

शोधार्थी पीएच.डी., राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

डॉ० शर्मिला लोचब

शोध निर्देशिका, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

डॉ० रामजीलाल

सह-शोध निर्देशक, सामाजिक वैज्ञानिक, पूर्व प्राचार्य, दयाल सिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा

आलेख सार

भगत सिंह जन्म- 28 सितंबर 1907, जिला- लायलपुर, गांव बंगा, पाकिस्तान।

मृत्यु- 23 मार्च 1931, फांसी की सजा, लाहौर सेंट्रल जेल, पाकिस्तान।

भगत सिंह के पिता का नाम सरदार किशन सिंह व माता का नाम विद्यावती था। सरदार अर्जुन सिंह (भगत सिंह के दादा) स्वामी दयानंद सरस्वती के संपर्क में आए और उन्होंने आर्य समाज को अपना लिया। उन दिनों आर्य समाज धार्मिक आंदोलन न होकर एक समाज सुधार आंदोलन था। भगत सिंह का जन्म एक सिख परिवार में हुआ। परिवार में आर्य समाज रीति-रिवाज का परंपराओं का पालन किया जाता था। भगत सिंह हिंदू व मुस्लिम क्रांतिकारियों के संपर्क में आए इस प्रकार भगत सिंह धर्म को लेकर एक उदारवादी विचारधारा के समर्थक बन गए।

मुख्य शब्द: धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिक, धार्मिकता, कट्टरता, अंतर-धार्मिक, अंतर-जातीय, द्वि-राष्ट्र सिद्धांत, संकीर्ण मानसिकता, उदारवादी

भूमिका

धर्मनिरपेक्षता से अभिप्राय धर्म के नाम पर सहनशीलता, सभी धर्म को समान भाव से देखना। "1924 में कोहाट में सांप्रदायिक दंगे हुए। 1928 में 'किरती' में "सांप्रदायिक दंगे और इनका इलाज" लेख छपा। इसमें भगत सिंह ने लिखा कि यदि धर्म को अलग कर दिया जाए तो राजनीति पर हम सब एक हो सकते हैं। धर्म में हम चाहे अलग-अलग ही रहे। 'सांप्रदायिक दंगे भड़काने में हमारे नेताओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है।''

सड़क से लेकर संसद तक नेताओं के बोल इस हद तक बिगड़ चुके हैं की लगता ही नहीं यह किसी सम्मानजनक पद पर बैठे हुए व्यक्ति के बोल हैं। कट्टर धार्मिक विचारधारा कहीं न कहीं देश के लिए घातक बनती जा रही है और देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। भारत जो कि महात्मा बुद्ध, महावीर जैन और महात्मा गांधी जैसे शांतिप्रिय महापुरुषों का देश है। परंतु समय-समय पर में भारत में 'धर्म विशेष' राज्य की जो विचारधारा चल रही है, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि को खराब करती है। इसका कारण बिकाऊ मीडिया जो अपने कार्यक्रम में ऐसे ऐसे मुद्दे लेकर बैठते हैं जिनका कोई उद्देश्य नहीं है। जनता महंगाई, बेरोजगारी, भुखमरी, स्वास्थ्य, शिक्षा संबंधी सवाल सरकार से ना पूछ सकें और सिर्फ धर्म तक ही सीमित रह जाएं।

अपने लेख में भगत सिंह धर्म को राजनीति से अलग रखते हैं। उनका मानना था कि धर्म के नाम पर राजनीति नहीं होनी चाहिए। भगत सिंह के अनुसार "यदि धर्म को राजनीति से अलग कर दिया जाए तो राजनीति पर सब की राय एक हो सकती है।" संक्षेप में भगत सिंह के अनुसार धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संदर्भ में हिंदू, मुस्लिम व सिक्ख होने की अपेक्षा पहले इंसान को इंसान समझो और फिर भारतीय, यह विचार सांप्रदायिकता की बाढ़ को रोककर धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना करेगा तथा भारत का भविष्य सुनहरा होगा। "सन् 1925 में दो संगठनों - प्रथम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। सन् 1926 में लाहौर में भगत सिंह और उनके साथियों के द्वारा नौजवान सभा की स्थापना की गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ दक्षिणपंथी विचारधारा पर आधारित था जबकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और नौजवान सभा वामपंथी विचारधारा पर आधारित था। "नौजवान सभा का मुख्य उद्देश्य वर्ग रहित व धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना था इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नौजवान सभा के

सदस्य शपथ लेते थे कि वह अपनी कम्युनिटी की अपेक्षा राष्ट्र को महत्व देंगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के किसानों व मजदूर के प्रचार करने के लिए अंतर-धार्मिक व अंतर-जातीय विभिन्न धर्म के अनुयायियों के लिए सामूहिक दावतों का आयोजन हो सके, ताकि èkपारस्परिक भाईचारा बढ़े और भेदभाव समाप्त हो।" भारतीय साधु संतों का पहले सक्रिय राजनीति में आना और धर्म के नाम पर लोगों को उकसाना कहीं ना कहीं देश के लिए बहुत बड़ा खतरा बनता जा रहा है।

सन् 1920-21 में कांग्रेस में खिलाफत कमेटी साथ-साथ काम कर रही थी। खिलाफत आंदोलन का उद्देश्य पूरा होते ही इसके नेता सांप्रदायिक आधार पर अलग हो गए। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "गांधी जी ने धर्म और धर्म की आड़ में जिस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा किया उससे मुसलमानों में धार्मिकता और कट्टरता बढ़ी है। गांधी जी कहते हैं कोई भी आदमी धर्म के बिना जीवित नहीं रह सकता और मैं पूरी विनम्रता के साथ कह सकता हूं कि वे लोग जो कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई भी नाता नहीं वो समझते ही नहीं है धर्म का क्या अर्थ है?'' गांधी जी के समकालीन नेताओं का मानना था कि गांधी जी ने असहयोग आंदोलन के साथ खिलाफत आंदोलन के नेताओं का समर्थन करना धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा देना था। गांधी जी के धर्म और राजनीति के आपसी संबंध का नकारात्मक अर्थ निकाल लिया गया और वर्तमान में धर्म और राजनीति अपने पूर्ण नकारात्मक स्वरूप में है। भगत सिंह ने सही लिखा है कि सांप्रदायिक दंगे भड़काने में हमारे नेताओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। परिणाम स्वरुप "द्विराष्ट्र के सिद्धांत हिंदू या मुस्लिम धर्मों के अनुयायियों ने सांप्रदायिक ज्वाला को भड़काकर भारत के विभाजन में अहम भूमिका निभाई अदा की। भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता प्राप्त करने की संभावना के प्रति निराशा व्यक्त की। इसके बजाय, उन्होंने भारत के स्पष्ट विभाजन का प्रस्ताव रखा, सुझाव दिया, पंजाब को दो प्रांतों में विभाजित किया जाना चाहिए, बड़े मुस्लिम बहुमत वाले पश्चिमी पंजाब को मुस्लिम शासित प्रांत बनाया जाना चाहिए और योजना के तहत, यही सिद्धांत बंगाल पर भी लागू किया जा सकता है। मुसलमानों के चार प्रांत होंगे, एनडब्ल्यूएफपी, पश्चिमी पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल। उन्होंने आगे स्पष्ट किया। "लेकिन यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि यह अखंड भारत नहीं है, इसका मतलब भारत का मुस्लिम भारत और गैर-मुस्लिम भारत है, बल्कि मुस्लिम भारत में एक स्पष्ट विभाजन है।" सांप्रदायिक हिंदू बनाम मुस्लिम-धर्म व संप्रदायवाद के आधार पर भारत का विभाजन हुआ। भारत का विभाजन धर्म के नाम पर हुआ। एक हिंदू राज्य व एक मुस्लिम राज्य स्वतंत्रता से पहले भारत में "20वीं सदी की शुरुआत में, भारत में कुछ मुस्लिम नेता- मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना सिंधी, मौलाना असफर अली थानवी और सर आगा खान ने हिंदू प्रभुत्व के डर के कारण मुसलमानों के लिए एक अलग मातृभूमि की वकालत करना शुरू कर दिया। हालाँकि, यह विचार केवल मुस्लिम समुदाय तक ही सीमित नहीं था, क्योंकि गुलशन राय, मेहर चंद खन्ना और वीडी सावरकर सहित कुछ कट्टर हिंदू नेताओं ने भी एक अलग मुस्लिम मातृभूमि के विचार का समर्थन किया था, जिसे 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' के रूप में जाना जाता है। 1937 में हिंदू महासभा सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में, सावरकर ने साहसपूर्वक कहा कि "हिंदू और मुस्लिम दो राष्ट्र हैं।''

निष्कर्ष

धर्म के नाम पर काफी दंगे हुए ब्रिटिश सरकार ने इसका भरपूर लाभ उठाया स्वतंत्र भारत में इस प्रकार की घटनाएं न हो इसलिए भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, परंतु स्वतंत्र भारत में भी सांप्रदायिक घटनाओं के घटित होने के असंख्य उदाहरण हैं। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़कर हम धर्म के नाम पर होने वाले विवादों से नहीं बच सकते। भगत सिंह के अनुसार यदि हमें एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करनी है तो संकीर्ण मानसिकता को त्यागना होगा धर्म के नकारात्मक स्वरूप को त्यागना होगा, धर्म के नाम पर होने वाले विवादों से बचना होगा, धर्म के नाम पर सहिष्णु होगा, तभी हम एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ

1. भगत सिंह, "सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज'', किरती, जून-1928
2. इरफान हबीब, "आयडियस दैट इन्सफारड भगत सिंह'', टाइम्स आफ इंडिया, 23 जनवरी 1993
3. जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 2007
4. रामजीलाल, लाला लाजपत राय के जन्मदिन - 28 जनवरी पर विशेष लेख पंजाब केसरी लाला लाजपत राय- एक महान दूरदर्शी और करिश्माई नेता: एक पुनर्मूल्यांकन https:èkèksamajweekly.comèkpunjab-kesari-lala-lajpat&raièk 24 जनवरी 2024
5. "भगत सिंह मैं नास्तिक क्यों हूँ'', द पीपुल, लाहौर, 27 सितंबर 1931
6. रामजीलाल, "शहीद-ए-आजम भगत सिंह: युगदृष्टा, युगपुरुष, वैज्ञानिक समाजवादी, क्रांतिकारी, निर्भीक एवं स्वतंत्र पत्रकार", ई. समाज वीकली. यूके, 27, सितंबर 2022
7. भगत सिंह, "अराजकतावाद - एक कीरती'', अमृतसर, मई-1928
8. अभय संधू, (सं) शहीद-ए-आजम भगत सिंह की जेल डायरी, प्रकाशन यूनिस्टार बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, चंडीगढ़, 2014
9. भगत सिंह, "धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम", किरती, अमृतसर, मई-1928
10. रामजीलाल, "शहीद-ए-आजम भगत सिंह: व्यक्तित्व, चिंतन, विरासत और वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता: पुनर्मूल्यांकन", ई-समाज वीकली. यू. के, 29 अप्रैल, 2023
11. वीरेंद्र संधू, युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखें, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सन् 1982,
12. चमन लाल, (सं), भगत सिंह के संपूर्ण दस्तावेज ,आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2004
13. मन्मथनाथ गुप्त, भगत सिंह और और उनका युग, दिल्ली, सन 1975

परमाणु अप्रसार के प्रयास और उस पर भारतीय प्रतिक्रिया: एक विशद विवेचन

डॉ० रजवन्त सिंह

Dr. Rajwant Singh, Associate Professor, MDPG Collage , Pratapgarh

1945 में जापान पर हुये परमाणु हमले की त्रासदी के उपरान्त परमाणु शक्ति को लेकर दो तरह का विचार सामने आया। पहला दृष्टिकोण परमाणु हथियारों को सुरक्षा की गारण्टी मानकर परमाणु प्रतिरोधकता का समर्थक था जबकि दूसरा दृष्टिकोण इसे मानवता के विनाश का साधन मानकर परमाणु अप्रसार एवं नि:शस्त्रीकरण की माँग कर रहा था। भारत ने दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन किया। आजादी के पूर्व (जून 1946) में प्रस्तावित वरूच योजना एवं आजादी के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति आइजन हावर की दिसम्बर 1953 में आई ''शान्ति के लिए परमाणु" योजना का पं0 नेहरू ने समर्थन किया क्यों कि इन योजनाओं का प्रत्यक्ष उद्देश्य परमाणु प्रसार को रोकना था। भारत सरकार ने अपने स्तर पर परमाणु हथियार न बनाने तथा क्षेत्रीय एवं वैश्विक स्तर पर परमाणु नि:शस्त्रीकरण के समर्थन का निर्णय लिया।

IAEA एवं PTBT भारत का दृष्टिकोण:

विश्व भर में परमाणु संयंत्रो के शान्तिपूर्ण (गैर सामरिक) संचालन एवं सुरक्षा मानकों के पालन पर नजर रखने के लिए 1957 में अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु उर्जा एजन्सी (IAEA) का गठन हुआ जिसकी सदस्यता भारत ने ग्रहण की। ''अमेरिका के विकिनी (Bikini) परमाणु परीक्षण के उपरान्त सर्व प्रथम भारत ने ही परमाणु परीक्षणों पर विराम समझौते (Stand Sttil Agreement) का 1954 में प्रस्ताव रख कर विश्व का ध्यान परीक्षणों पर रोक लगाने पर आकर्षित किया"।[1] अन्तत: 1963 में आंशिक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (PTBTèLTBT) अस्तित्व में आयी। इस संधि में जल स्थल एवं हवा में परमाणु परीक्षण पर रोक लगाई है। इसमें भूमिगत परीक्षण पर रोक नहीं है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सत्यापन की शर्त होने के कारण संधिकर्ता देशों पर स्वयमेव अनुपालन की जिम्मेदारी डाली गई है। भारत ने इसकी सदस्यता ग्रहण की है।

वाह्य अन्तरिक्ष संधि: (OST) एवं समुद्र तल संधि (SBT) पर भारत का दृष्टिकोण:

1960 के दशक में अन्तरिक्ष में पहुंचने की स्पर्धा देखी गई जिससे यह भय उत्पन्न हो गया कि अन्तरिक्ष का सैनिक गतिविधियों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अत: ''अक्टूबर 1967 में वाह्य अन्तरिक्ष संधि अस्तित्व में आई, जिसमें राज्यों को सामूहिक विनाश के हथियारों (WMD) को वाह्य अन्तरिक्ष में तैनात करने एवं खगोलीय पिण्डों पर सैन्य गतिविधि सम्पादित करने पर पाबन्दी लगाई गयी है। संधि में अन्तरिक्ष के शांन्तिपूर्ण प्रयोग के बाध्यकारी नियमों का उल्लेख किया गया है"।[2] भारत ने इस संधि को मानवता के हित में मानकर स्वीकार किया है। शीतयुद्ध काल होने के नाते महाशक्तियाँ दुनिया भर के समुद्रों में अपने सामरिक पहुँच बनाने में लगी थीं, जिससे समुद्र में परमाणु स्पर्धा फैलने का भय पैदा हो गया। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटेन अमेरिका एवं सोवियत संघ के बीच समझौते के माध्यम से समुद्र तल संधि फरवरी 1971 में प्रकाश में आई।

समुद्र तल संधि को मई 1972 में लागू किया जिसे आरम्भिक संधिकर्ताओं के अलावा अन्य राज्यों ने अपनी नीति एवं सुविधा के अनुसार स्वीकार अथवा अस्वीकार किया। इस संधि में यह व्यवस्था है कि परमाणु हथियारों एवं अन्य सामूहिक विनाश के हथियारों को तट से 12 नाटिकल माइल छोड़कर समुद्र की सतह समुद्र तल एवं अधोभूमि पर तैनात नहीं किया जायगा। भारत को इस संधि पर इस बात की आशंका थी कि इससे कहीं अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री कानून के तहत तटीय देशों को समुद्र में प्राप्त अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं पड़ेगा परन्तु अमेरिका द्वारा भारतीय आशंका के निर्मूलन के उपरान्त जुलाई 1973 में भारत ने इसे स्वीकार कर लिया। इस संधि के बावजूद समुद्र विसैन्यीकृत नहीं होता क्योंकि समुद्र में भ्रमणशील पन्डुब्बियां एवं युद्धपोत इस संधि के दायरे में नहीं आते।

परमाणु अप्रसार संधि (NPT) और भारतीय दृष्टिकोण:

1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका अकेला परमाणु शक्ति संम्पन्न देश था किन्तु 1964 में चीन द्वारा परमाणु शक्ति अर्जित कर लेने के बाद परमाणु राष्ट्रो की संख्या 05 हो गई। शीतयुद्ध में अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने की प्रक्रिया में अन्य देश भी परमाणु हथियार प्राप्ति की कोशिश में लगे थे, जिसमें भारत भी शामिल था। इस स्थिति को देखते हुए अमेरिका, ब्रिटेन एवं सोवियत संघ के प्रयासों से परमाणु अप्रसार संधि 1968 में प्रकाश में आयी, जिसमें परमाणु अप्रसार के नाम पर P5 हेतु परमाणु एकाधिकार की व्यवस्था कर दी गई। इस संधि में कुल 11 अनुच्छेद हैं, जिसमें ''व्यवस्था दी गई है कि परमाणु शक्ति धारक देश किसी गैर परमाणु राज्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ऐसा कोई तकनीकि, उपकरण या अन्य सहायता नहीं प्रदान करेंगे, जिससे परमाणु

हथियार प्राप्त किया जा सके। गैर परमाणु राज्य न तो परमाणु हथियार बनायेंगे न ही कहीं से प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए सभी दशों को परमाणु कार्यक्रम संचालित करने की छूट होगी किन्तु उन्हें परमाणु संस्थानों का IAEA से निरीक्षण कराना होगा। परमाणु परीक्षणों से प्राप्त सूचना (आंकड़ा) को गैर परमाणु राज्यों को भी उपलब्ध कराया जायगा"।[3]

NPT वैश्विक स्तर पर परमाणु अप्रसार के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण संधि है किन्तु इस संधि में क्षेत्रीय नि:शत्रीकरण की धारणा को भी मान्यता दी गई है। इसमें राज्यों को यह छूट है कि वे जब चाहें हस्ताक्षर करके इसका सदस्य बन जाएं और उनके सर्वोच्च हितों को नुकसान होने की स्थिति में समझौते से अलग हो जाएं। एम0पी0टी0 को 05 मार्च 1970 को लागू किया गया और इसकी कार्य अवधि 25 साल तय की गई। इस संधि पर भारत ने अनेक आपत्तियों के साथ हस्ताक्षर नहीं किया है। भारत के अनुसार यह संधि विश्व में परमाणु शक्तियों को परमाणु एकाधिकार प्रदान करती है क्योंकि अन्य देशों को परमाणु हथियार के अवसर से वंचित कर दिया गया है जबकि उनके विरूद्ध परमाणु हमले अथवा धमकी की दशा में सुरक्षा की कोई व्यवस्था संधि में मौजूद नहीं है। परमाणु शक्तियों ने अपने उपर न तो परमाणु नि:शस्त्रीकरण का प्रावधान लागू किया है न ही परमाणु हमला न करने या परमाणु धमकी न देने का आश्वासन दिया है।

भारत ने 1968 में यह तर्क दिया था कि परमाणु शान्ति एवं परमाणु हथियार तकनीकि में मूल भूल अन्तर नहीं होता। अत: किसी भी देश के परमाणु कार्यक्रम को IAEA के निरीक्षकों द्वारा हथियार प्रेरित बताकर बन्द कराया जा सकता है क्योंकि निरीक्षको की टोली में परमाणु शक्ति सम्पन्न राज्यों के अधिकांश वैज्ञानिक अथवा विशेषज्ञ होंगे। यद्यपि भारत ने भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते के उपरान्त सैन्य एवं असैन्य परमाणु तकनीकि में भेद स्वीकार कर लिया है। जिसके पीछे कारण यह है कि अमेरिका सिर्फ असैन्य परमाणु संस्थानों को सहयोग प्रदान करेगा। अत: भारत को दोनों के बीच अन्तर स्वीकार करके अपने परमाणु संस्थानों को सैन्य एवं असैन्य में विभाजित करना पड़ा। एन0पी0टी0 के विभेदकारी स्वरूप के नाते भारत ने अभी तक इस पर हस्ताक्षर नहीं किया है। पाकिस्तान एवं इजराइल भी इस संधि के सदस्य नही हैं।

''संधि में उल्लखित व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक 05 वर्ष उपरान्त इसकी समीक्षा करके 25 वर्षो के बाद इसके विस्तार पर विचार किया जायगा। सन् 1975-80-85-90 एवं 1995 में इसकी समीक्षा की गई किन्तु अन्तिम समीक्षा के उपरान्त इसकी कमियों व भेदभाव पूर्ण व्यवस्था को दूर किये बगैर इसे अनिश्चित कालीन विस्तार दे दिया गया, जिससे परमाणु हथियारों को शाश्वत वैधता प्राप्त हो गई"।[4] एन0पी0टी0 अपने उदेश्य में विफल रही है, जिसे विफल बनाने में परमाणु शक्तियों का बड़ा योगदान है। आज जितने गैर मान्यता प्राप्त परमाणु राष्ट्र हैं अथवा जिन्होंने थ्रेसहोल्ड क्षमता अर्जित कर ली है अथवा जिनके प्रयासों को जानबूझ कर नजंरदाज किया गया है, उन सभी को सहयोग करने में परमाणु शक्तियों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष भूमिका है।

भारत का प्रथम परमाणु परीक्षण तथा परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (NSG) का गठन:

चीन द्वारा परमाणु शक्ति अर्जित कर लेने तथा हिंद महासागर में परमाणु शक्तियों की बढ़ती सक्रियता के कारण भारत ने गुप्त तरीके से भूमिगत परमाणु परीक्षण का निर्णय लिया। ''18 मई 1974 को जैसलमेर (राजस्थान) के पोखरन स्थल पर भारत ने अपना पहला परमाणु परीक्षण किया। इस परीक्षण की सूचना देने के लिए ''भगवान बुद्ध मुस्कुराए" जैसे संकेत वाक्य का प्रयोग किया गया"।[5] ''विस्फोट के बाद अन्तर्राष्ट्रीय जगत इसकी सूचना पा गया। बाद में तत्कालीन रक्षामंत्री जगजीवन राम ने कहा कि इस परीक्षण का सैन्य महत्व नहीं है और यह सामान्य रूप से भारत के नाभिकीय उर्जा की शान्ति पूर्ण उदेश्यों हेतु (PNE) क्षमता प्राप्ति का प्रयास है"।[6] प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने परमाणु उर्जा के शांन्तिपूर्ण प्रयोग के आश्वासन के साथ-साथ परमाणु हथियारों पर विकल्प खुला रखने की नीति अपनाई और पं0 नेहरू के क्षेत्रीय परमाणु नि:शस्त्रीकरण की अवधारणा का त्याग कर परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र (NWFZ) निर्माण के प्रयासों का विरोध किया।

भारत द्वारा परमाणु परीक्षण के उपरान्त भारत एवं भारत जैसे अन्य देशों की घेराबंदी के लिए परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (NSG) का 1975 में गठन हुआ। यह एक बहुपक्षीय नियंत्रण व्यवस्था को लागू करने वाले देशों का एक ऐसा समूह है जो परमाणु हथियारों के लिए उपयोगी सामग्रियों, उपकरणों और प्रौद्योगिकी के निर्यात को नियंत्रित करके परमाणु प्रसार को रोकना चाहता है। NSG के देश NPT पर हस्ताक्षर न करने वाले देशों के साथ सहयोग नहीं करते। NSG के बहिष्कार के कारण भारतीय परमाणु कार्यक्रम की गति बहुत धीमी रही। 2005 में अमेरिका के साथ असैन्य परमाणु समझौते के उपरान्त NSG की सहमति से भारत विश्व का एक मात्र देश है जिसने बिना NPT पर हस्ताक्षर किये समूह के देशों के साथ परमाणु सहयोग समझौते किये हैं। भारत इस समूह का सदस्य बनना चाहता है किन्तु चीन के विरोध के कारण उसे सदस्यता नहीं मिल पा रही है।

प्रक्षेपास्त्र तकनीकि नियंत्रण व्यवस्था: (MTCR)

1974 में भारत द्वारा परमाणु थ्रेसहोल्ड क्षमता अर्जित कर लेने के उपरान्त सरकार ने प्रक्षेप प्रणालियों पर काम करना शुरू किया। 1983 में एकीकृत मिसाइल विकास कार्यक्रम (IMDP) के अन्तर्गत परमाणु हथियार ले जाने में सक्षम अग्नि मिसाइल के विकास का कार्य होने लगा। ''भारत को इस कार्य हेतु वाह्य मदद न मिल सके, अत: अमेरिकी पहल पर 1987 में MTCR अस्तित्व में आया जिसमें 500 किग्रा भार वहन व 300 किमी0 से अधिक मारक क्षमता वाली मिसाइलों के लिए तकनीकि, उपकरण व सेवाएं न

उपलबध कराने का दायित्व संधिकर्ता देशों पर डाली गई। शर्तों का पालन न करने पर सभी सम्बद्ध पक्षों पर आर्थिक व अन्य प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था संधि में मौजूद है"।[7] MTCR में मानव रहित विमानों की तकनीकी के विक्रय पर भी पाबंदी लगाई गई है। भारत ने बिना विदेशी सहयोग के प्रतिबंधित क्षमता से कहीं ज्यादा क्षमता हासिल कर जून 2016 में MTCR पर हस्ताक्षर कर दिया।

राजीव गांधी की परमाणु मुक्त विश्व की परिकल्पना (09 जून 1988)

09 जून 1998 को प्रधामंत्री राजीव गांधी ने ''परमाणु मुक्त विश्व एवं अहिंसक व्यवस्था के लिए यू0एन0 महासभा में एक कार्य योजना प्रस्तुत की जिसमें एक निश्चित समय के भीतर चरणबद्ध तरीके से कानूनी तौर पर बध्यकारी वैश्विक परमाणु नि:शस्त्रीकरण पर जोर दिया गया। अपने वक्तव्य में उन्होंने परमाणु प्रतिरोधकता को आतंक के दर्शन की चरम अभिव्यक्ति का नाम देकर कुछ देशों द्वारा सुरक्षा के नाम पर मानवता को बंधक बनाये जाने का उल्लेख किया"। [8] इन विचारों के बावजूद राजीव गांधी ने भेदभाव पूर्ण छच्ज् पर हस्ताक्षर नहीं किया और उन्हीं के कार्यकाल में 1989 में अग्नि मिसाइल का पहला परीक्षण भी किया गया।

1990 के दशक के परमाणु अप्रसार के प्रयास एवं भारतीय दृष्टिकोण:

(I) विखंण्डनीय पदार्थ कटौती समझौता (FMCT): संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1993 में सर्व सम्मत्ति से एक प्रस्ताव पास करके आवाहन किया गया कि एक पक्षपात रहित, बहुपक्षीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी सत्यापनीय संधि हो जो परमाणु हथियारों व परमाणु विस्फोटों में प्रयोग में आने वाले विखण्डीय पदार्थों के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाये। इस संधि में मुख्यत: उच्च संवर्धित यूरेनियम एवं प्लूटोनियम के उत्पादन को प्रतिबंधित करने पर जोर है क्योंकि इसका प्रयोग परमाणु बम के उत्पादन के लिए होता है। इस संधि की शर्तें अंतिम रूप से तय नहीं हैं। भारत FMCT वार्ताओं का हिस्सा है।

(II) परमाणु सुरक्षा अभिसमय (CNS): अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु उर्जा एजन्सी की पहल पर जून 1994 में परमाणु सुरक्षा अभिसमय अस्तित्व में आया। ''यह अभिसमय लोगों, समाज व पर्यावरण को खतरनाक रेडियो धर्मिता एवं परमाणु खतरे से बचाने लिए विश्व भर में चल रहे परमाणु संस्थानों इकाईयों में उच्च स्तरीय सुरक्षा मानक स्थापित करने या बनाये रखने पर जोर देता है। सदस्य देशों पर यह दायित्व सौंपा गया है कि वे IAEA द्वारा प्रकाशित मौलिक सुरक्षा सिद्धान्तों का पालन करें"।[9] अक्टू0 1996 से लागू इस अभिसयम की सदस्यता 2005 में भारत ने ग्रहण की है।

(III) परमाणु कचरा प्रबंधन संधि (NWMT): सितम्बर 1997 में IAEA के आवाह्न पर ''सुरक्षा के मद्देनजर एक अभिसमय द्वारा प्रयुक्त परमाणु ईंधन एवं रेडियो धर्मी कचरे के प्रबंधन पर वैश्विव कानूनी व्यवस्था तय की गई है जिसमें सुरक्षा के मौलिक सिद्धांतों व एक समान पियर रिब्यू प्रक्रिया की व्यवस्था है"।[10] सैन्य एवं असैन्य परमाणु इकाईयों में प्रयोग में लाये जाने वाले ईंधन व निकलने वाले रेडियोधर्मी कचरे के सुरक्षित प्रबंधन पर यह अभिसमय 18 जून 2001 से लागू है। भारत इस अभिसमय को स्वीकार करता है।

(V) NPT के विस्तार एवं CTBT भारत की प्रतिक्रिया: 1970 में लागू 25 वर्षीय संधि छच्ज् की 1995 में समीक्षा की गई और उसके कार्यकाल को अनिश्चितकाल के लिए बढ़ा दिया गया। भारत ने पूर्व में किये गये अपनी आपत्तियों को दोहराते हुए इसका सदस्य बनने के इन्कार कर दिया। आंशिक परमाणु परीक्षण संधि का विस्तार करते हुए परीक्षणों पर पूर्ण प्रतिबंध की संधि (CTBT)1996 में प्रस्तावित की गई। ''इस संधि में शामिल होने सम्बन्धी प्रावधान में यह व्यवस्था दी गई कि संधि का आवश्यक रूप से पाँच परमाणु देशों तथा तीन सम्भावित परमाणु राष्ट्रो यथा भारत पाकिस्तान एवं इजाराइल द्वारा इसका अनिवार्य रूप से अनुसमर्थन किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त 18 जून 1996 में जेनेवा में नि:शस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग लेने वाले परमाणु रिएक्टर सम्पन्न 44 देशों द्वारा इस संधि का अनुसमर्थन करने का प्रावधान भी किया गया"।[11]

CTBT को लेकर भारत की आपत्तियाँ बहुत हद तक वही हैं जो NPT पर हैं। अपनी सम्प्रभुता और सुरक्षा का हवाला देकर भारत ने इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार दिया। ''भारत समय एवं चरणबद्ध परमाणु नि::शस्त्रीकरण का समर्थक है जबकि इस संधि में नि::शस्त्रीकरण की कोई व्यवस्था नहीं है। भारतीय आपत्ति इस बात को लेकर है कि विभिन्न श्रेणी व गुणवत्ता के पर्याप्त परमाणु परीक्षण करके परमाणु शक्तियों ने इतना डाटा प्राप्त कर लिया है कि उन्हें अब वास्तविक परीक्षण की आवश्यकता नहीं है। ब्ज्ठज् प्रयोगशाला में किये जाने वाले अपक्रांतिक (Sub critical) परीक्षण को प्रतिबंधित नहीं करता जिससे परमाणु शक्तियों को कम्प्यूटर परीक्षण के माध्यम से अपने परमाणु हथियारों की डिजाइनिंग व परिशुद्धता के लिए अवसर उपलब्ध रहेगा"।[12]

भारत द्वारा परमाणु शक्ति सम्पन्नता की घोषणा:

अपनी सुरक्षा एवं NPT तथा NPT के लिए बढ़ रहे अन्तर्राष्ट्रीय दबाओं के चलते भारत ने परमाणु बम के संदर्भ में विकल्प खुला रखने की नीति को समाप्त करते हुए पोखरण (II) के माध्यम से स्वत: को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश घोषित कर दिया। 11 मई 1998 को भारत ने ''पोखरण में एक पर एक तीन नाभिकीय परीक्षण किए, जिसमें से एक ताप परमाणु विस्फोट था जो कि हाइड्रोजन बम बना सकने की क्षमता का प्रदर्शन था। दो दिन बाद भारत ने उसी स्थान पर दो अन्य भूमिगत कम शक्ति वाले परीक्षण किये जिसका उदेश्य यह दिखाना था कि भारत के पास बेहतर नाभिकीय शक्ति हेतु कम्प्यूटर के जरिए अतिरिक्त आंकड़े प्राप्त करने तथा अगर आवश्यक हो तो सम्बद्ध सूक्ष्म प्रयोगों की क्षमता (TNW हेतु जरूरी) को लागू करने की योग्यता है"।(13)

भारत के द्वितीय परमाणु परीक्षण के उपरान्त अमेरिका एवं उसके अनेक समर्थक देशों द्वारा भारत पर प्रतिबंध आरोपित किये गये लेकिन भारत ने दबाव में आने से इन्कार कर दिया। भारत एवं अमेरिका के बीच परमाणु विवाद के निस्तारण हेतु वार्ताकारों की नियुक्ति की गई। भारतीय वार्ताकार यंशवत सिंह एवं अमेरिकी समकक्ष स्ट्रोब टाल्वोट के बीच वार्ताओं के अनेक दौर हुए, जिसमें भारत ने परमाणु शक्ति सम्पन्न देश की मान्यता के साथ NPT तथा NPT पर हस्ताक्षर करने की सहमति दी। अमेरिका ने भारत को परमाणु राष्ट्र मानने से इन्कार कर दिया जिससे कि वार्ता बेनतीजा रही। स्वत: अमेरिकी ससंद द्वारा NPT को अनुमोदित न करने से अमेरिकी दबाव निष्प्रभावी हो गया और 2001 तक सभी देशों ने भारत पर लगाये गये प्रतिबंधत हटा लिए।

परमाणु शक्ति सम्पन्नता के बावजूद परमाणु अप्रसार के प्रति भारतीय दृष्टिकोण:

परमाणु शक्ति सम्पन्नता के बाद अन्तिम रूप से 2003 में जब भारत ने अपने परमाणु सिद्धांतों की घोषणा की तब उसमें भारत ने पुन: दोहराया कि वह परमाणु हथियार मुक्त विश्व का समर्थक है और भेदभाव रहित पारदर्शी समय एवं चरणबद्ध परमाणु नि:शस्त्रीकरण का समर्थन करता रहेगा। परमाणु हथियारों पर प्रतिबंध हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभियान (ICAN) की पहल पर यू0एन0 महासभा द्वारा जुलाई 2017 में सम्मेलन के माध्यम से परमाणु हथियारों पर प्रतिबंध संधि (TPNW) को 122 देशों द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। 50 देशों द्वारा रैटीफिकेशन हो जाने के बाद अक्टू0 2021 यह संधि में अस्तित्व में आ गई। ''इस संधि में परमाणु हथियारों के उपयोग पर कई तरह के प्रतिबंध लगाये गये हैं, जिसमें परमाणु हथियारों का विकास, परीक्षण, उत्पादन, अधिग्रहण (Aquire), अधिकार,(Posses), भण्डारण, प्रयोग अथवा प्रयोग की धमकी देना शामिल है। यह संधि अपने राष्ट्रीय क्षेत्र में भी परमाणु हथियारों की तैनाती को प्रतिबंधित करती है"। (14)

परमाणु हथियारों पर प्रतिबंध संधि कानूनी तौर पर बाध्यकारी है, लेकिन सिर्फ उन्हीं देशों पर जिन्होंने इस पर हस्ताक्षर किया है। गैर सदस्य देशों पर इस संधि का कोई दायित्व नहीं है। अमेरिका, रूस, चीन, ब्रिटेन एवं फ्रांस सहित भारत, पाकिस्तान, इजराइल एवं उत्तरी कोरिया में इस पर हस्ताक्षर नहीं किया है। भारत की आपत्ति इस आधार पर है कि भारत परमाणु मुक्त विश्व का समर्थक है किन्तु वह भेदभाव रहित, समयबद्ध, चरणबद्ध तथा विश्वसनीय हो। चूंकि इस संधि में सत्यापन का प्रावधान नहीं है, अत: भारत इस पर भरोसा नहीं कर सकता और इसके वर्तमान स्वरूप पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं है।

निष्कर्ष:

सैद्धांतिक रूप से भारत पूर्ण परमाणु नि:शस्त्रीकरण के लिए तैयार है बशर्ते की विश्व के अन्य देश भी अपने परमाणु विकल्पों को ईमानदारी से छोड़ने के लिए तैयार हों। NPT एवं CTBT को छोड़कर परमाणु अप्रसार की करीब-करीब सभी संधियों का भारत सदस्य है। परमाणु शक्ति के रूप में वह NPT एवं CTBT पर हस्ताक्षर के लिए तैयार है। परमाणु दुर्घटना व रेडिया धर्मिता को रोकने के लिए जरूरी सुरक्षा मानकों का भारत द्वारा पालन किया जाता है। भारत ने परमाणु बम का निर्माण आत्मरक्षा के लिए किया है, इसीलिए उसके परमाणु सिद्धांत में प्रथम प्रहार न करने तथा किसी गैर परमाणु राज्य पर परमाणु हमला न करने की वचनबद्धता विद्यमान है। पंचशील जैसे आदर्शवादी सिद्धान्तों को अपनाने के बावजूद भारत को 1962 में चीन के हाथों अपनी जमीन गवाँनी पड़ी। अत: अब जमीनी यथार्थ से दूर किसी कोरे आदर्श के चक्कर में पड़ कर भारत अपनी सुरक्षा को खतरे में डालने की स्थिति में नहीं है। अपने सुरक्षा हितो को ध्यान में रख कर परमाणु शक्तियों व खतरों से घिरा भारत वर्तमान परिस्थिति में परमाणु शक्ति को लेकर यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य है।

संदर्भ:

1. राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंध- लेखक: रामसूरत पाण्डेय, 6वाँ संस्करण 2022, प्रकाशक- प्रकाश बुक डिपो बरेली। पृष्ठ संख्या: 138
2. Arms Control Association की वेबसाइट: http.//www.armscontrol.org पर उपलब्ध लेख The Outer Space Treaty at a Glance देखिए।
3. राष्ट्रीय सुरक्षा- लेखक: जे0एम0 श्रीवास्तव एवं प्रो0 हर्ष सिन्हा, तृतीय संस्करण 2017 ए0एस0आर0 पब्लिकेशन्स सरोजनी नगर, लखनऊ। पृष्ठ संख्या: 537 पर उपलब्ध।
4. राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंध- लेखक: रामसूरत पाण्डेय, 6वाँ संस्करण 2022, प्रकाशक प्रकाश बुक डिपो बरेली। पृष्ठ संख्या: 133

5. राष्ट्रीय सुरक्षा- लेखक: डा0 ओम प्रकाश तिवारी, प्रथम संस्करण-ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या: 259 पर अंकित।
6. राष्ट्रीय सुरक्षा के आयाम- लेखक: प्रो0 शेखर अधिकारी, प्रथम संस्करण 2019 आर0डी0यू0 पब्लिशिंग हाउस, प्रयागराज। पृष्ठ संख्या: 211 पर उपलब्ध।
7. राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंध- लेखक: रामसूरत पाण्डेय, 6वाँ संस्करण 2022, प्रकाशक- प्रकाश बुक डिपो बरेली। पृष्ठ संख्या: 221
8. National Herald पत्र की वेबसाइट nationalheraldindia.com पर कुमार सुंदरम का आलेख दिनांक 10 जून 2018।
9. IAEA की वेबसाइट www(ns.iaea.org ij Convention on Nuclear Saजिल शीर्षक पर उपलब्ध।
10. वही।
11. राष्ट्रीय सुरक्षा- लेखक: डा0 ओम प्रकाश तिवारी, प्रथम संस्करण-ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या: 269 पर अंकित।
12. वही, पृष्ठ संख्या: 270 पर अंकित।
13. बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति (भाग-2), लेखक- वी0पी0 दत्ता, द्वितीय संस्करण 2009 प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या: 495-96
14. जेम च्तपदज पत्र में 28 जनवरी 2021 को सुभानी मिश्रा का लेख-What is the "nuke ban treaty and why India and other nuclear powers haven"t signed it" जो पत्र की वेबसाइट जीमचतपदजण्पद पर उपलब्ध है।

Abbreviation:

IAEA: International Atomic Energy Agency.
PTBT: Partial Test Ban Treaty.
OST: Outer Space Treaty.
SBT: Sea Bed Treaty.
NPT: Nuclear Non proliferation Treaty.
PNE: Peaceful Nuclear Explosion.
NSG: Nuclear Suppliers Group.
MTCR: Missile Technology Control Regime.
FMCT: Fissile Material Cut off Treaty.
CNS: Convesntion on Nuclear Safty.
NWMT: Nuclear Waste Management Treaty.
CTBT: Comprehensive Test Ban Treaty.
TNW: Tactical Nuclear Weapon.
ICAN: International Compaign to Abolish Nuclear weapon.
TPNW: Treaty on the Prohibition of Nuclear Weapon.

हिन्दी वेब पत्रकारिता: एक दृष्टि

दुर्गेश कुमार मिश्र

शोध-छात्र (हिन्दी), शहीद स्मारक राजकीय महाविद्यालय, यूसुफपुर मुहम्मदाबाद, गाजीपुर, उ0प्र0

पत्रकारिता की नई विधाओं में सबसे नई विधा वेब पत्रकारिता है। आज वेब पत्रकारिता, पत्रिकारिता जगत में सबसे नवीन एवं रोमांचक है। वेब को वर्ल्ड वाइड वेब के रूप में जाना जाता है। इसे श्रूश् से भी दर्शाया जाता है। यह पूरी दुनिया में कम्प्यूटरों पर बिछा हुआ एक संजाल है। जिससे सभी वेबसाईट्स पत्र-पत्रिकाएँ एवं मैगजीन नेट पर उपलब्ध हो सकती है।[1]

वेब पत्रकारिता को हम अन्य कई नामों से भी पहचानते हैं - इंटरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, सायबर पत्रकारिता आदि।[2] जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कम्प्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से ही संचालित पत्रकारिता है जो किसी एक पाठक, गांव, खण्ड, प्रदेश या एक देश तक सीमित न रहकर पूरे विश्व में व्याप्त होती है और जो 'डिजिटल तरंगों'[3] के माध्यम के रूप में उपलब्ध होती है।

वेब पत्रकारिता को गति तब मिली जब सन् 1980 में अमेरिका के न्यूयार्क 'वाल स्ट्रीट जनरल' 'डाब जोन्स' ने अपने-अपने संस्करणों को इंटरनेट पर ऑनलाइन करवाया तथा साथ ही साथ समाचारों की भी उपस्थिति नेट पर दर्ज करवाई। इस तरह शनैः-शनैः इंटरनेट ऑनलाइन के विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस विकास प्रक्रिया के चलते सन् 1994 में अमेरिका की 'टाइम मैग्जीन'[4] एकमात्र ऐसी पत्रिका थी जिसने इंटरनेट पर सर्वप्रथम अपने पैर रखे। इसके बाद फिर कई पत्र-पत्रिकाओं ने भी नेट पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी।

इन सबके चलते भारत में भी वेब पत्रिका का उदय हुआ। 1990 के मध्य में हमें भारत में इंटरनेट की शुरूआत दिखायी पड़ने लगी थी। भारत का पहला वेब-पत्र 'द हिन्दू' अखबार है, जो चेन्नई से प्रकाशित किया गया था। इस अखबार का इंटरनेट संस्करण 1995 को जारी किया गया। इसके अतिरिक्त 1998 तक लगभग 48 समाचार पत्र अपनी उपस्थिति को ऑनलाइन करा चुके थे। इसी क्रम में 'ब्लिट्स', 'इण्डिया टुडे', 'आउटलुक' और 'द वीक' आदि पत्र भी आज इंटरनेट पर शामिल हो चुके थे। ये सभी समाचार पत्र अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं-हिन्दी, मराठी, तमिल, मलयालम, गुजराती आदि में प्राप्त होते हैं।[5] इनके अतिरिक्त कई ऐसी पत्रिकाएँ भी हैं, जो मुद्रित होने के साथ-साथ तथा इनकी पठनीयता को बढ़ाने के लिए इन्हें इंटरनेट पर निःशुल्क ही उपलब्ध कराया जाता है, जिससे इनके प्रचार-प्रसार में वृद्धि हो तथा इनके पाठकों (यूजर्स) को विशेष लाभ प्राप्त हो। इन पत्रिकाओं में 'हंस', 'वागर्थ', 'तद्भव', 'अन्यथा', 'अट्टहास', 'ऋचा' आदि ऐसी ही पत्रिकाएं हैं।

आज इंटरनेट पर हिन्दी की अनेक वेबसाइट्स उपलब्ध हैं, जो अधिकाधिक सामग्रियों को उपलब्ध कराके उनकी गुणवत्ता एवं महत्व के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्नशील हैं। यह पत्रिकाएं नेट पर आसानी से प्राप्त हो जाती हैं तथा इनको सरलता से पढ़ा व देखा जा सकता है। हिन्दी की यह वेब पत्रिकाएं नेट पर लगभग कई दर्जन उपलब्ध हैं। विषय-वस्तु के आधार पर इनका विभाजन इस प्रकार है -

- समाचार परक पत्रिकाएँ
- खेलकूद पत्रिकाएँ
- पर्यटन पत्रिकाएँ
- मनोरंजन सम्बन्धी पत्रिकाएँ
- स्वास्थ्य पत्रिकाएँ
- कई ज्ञान विषयक पत्रिकाएँ
- साहित्यिक पत्रिकाएँ

साहित्यिक पत्रिकाओं के भी कई भेद किए जा सकते हैं।

क) साहित्यिक वेब-पत्रिकाएँ
ख) इंटरनेट पर प्रसारित मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाएँ
ग) ब्लागजीन पत्रिकाएँ।[6]

आज का युग 'सूचना क्रान्ति' और 'संचार-विस्फोट' का युग है। आज नई 'सूचना प्रौद्योगिकी' एवं वेब तकनीक को इस युग के प्रत्येक देश-विदेश के बडेघ समाचार उद्योग एवं पत्र-पत्रिकाओं ने सहर्ष अपनाया है।

वेब पत्रिका से हमारा तात्पर्य उन पत्रिकाओं से है, जो इंटरनेट पर ही प्रसारित की जाती हैं।7 अर्थात् वेब पत्रिकाएं उन पत्रिकाओं को कहा जाता है जिनकी रचना केवल मात्र नेट के लिए ही हुई हो। इन पत्रिकाओं को हम केवल नेट पर देख व पढ़ सकते हैं। इन वेब-पत्रिकाओं का प्रचार-प्रसार इंटरनेट पर ही होता है। नेट पर ही इन पत्रिकाओं को प्रसारित, संशोधित परिवर्तित किया जाता है तथा साथ ही साथ इन वेब-पत्रिकाओं के सम्पादन प्रभारी तथा इनके रचनाकार अपना सम्पर्क ई-मेल तथा नेट के द्वारा ही स्थापित करते हैं। इन पत्रिकाओं की जानकारी या सामग्री हमें इंटरनेट से ही प्राप्त होती है या प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यह सभी वेब-पत्रिकाएं प्रकाशित नहीं होतीं। अर्थात् यह पत्रिकाएं मुद्रित करके बेची नहीं जातीं। यह ई-पत्रिकाएं नेट पर भरी पड़ी हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-'अनुभूति', 'अभिव्यक्ति', 'भारत दर्शन', 'कृत्या', 'सृजन-गाथा' आदि।

इन ई-पत्रिकाओं के भी 3 भेद होते हैं -

1. पठनीय (रीडिंग)
2. श्रवणीय (ऑडियो)
3. दृश्यात्मक-श्रव्यात्मक (ऑडियो-वीडियो)।

इन साहित्यिक वेब पत्रिकाओं में अभिव्यक्ति पत्रिका जिसका जन्म 15 अगस्त 2000 को हुआ था तथा यह गद्य पर केन्द्रित पत्रिका है तथा जिसकी वेबसाइट (www.abhivyakti-hindi.org) है[8] तथा दूसरी अनुभूति पत्रिका जिसका जन्म 1 जनवरी 2001 को हुआ था यह पद्य पर आधारित पत्रिका है इसकी वेबसाइट (www.anubhuti-hindi.org) है।[9] अति महत्वपूर्ण है।

दूसरे प्रकार की वे पत्रिकाएं आती हैं, जो इंटरनेट पर उपलब्ध मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाएं हैं। अर्थात् वे पत्रिकाएं जो कई व्यक्तियों या कई समूहों के द्वारा मुद्रित होकर प्रकाशित की जाती हैं। इन पत्रिकाओं का मूल्य निर्धारित होता है। यह पत्रिकाएं कई पृष्ठों में होती है तथा यह कई रूपों में प्राप्त होती हैं। प्रबन्धकाव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तकाव्य। इनमें किसी प्रकार का बंधन नहीं होता। पहले ये पत्रिकाएं केवल बाजारों में ही उपलब्ध होती थीं किन्तु अब वेब के आगमन से इनकी पठनीयता को और अधिक बढ़ाने के लिए इनके संस्करणों को वेब पर भी उपलब्ध कराया गया है। जिनमें 'हंस', 'वागर्थ', 'तद्भव', 'ऋचा', 'अन्यथा' आदि प्रमुख हैं। अतः अब यह सभी पत्रिकाएं वेब पर आसानी से देखी व पढ़ी जा सकती हैं।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक वेब-पत्रिकाओं की कोटि में एक वर्ग 'ब्लॉग' पत्रिकाओं का भी आता है। ब्लॉग उसे कहते हैं जिनमें हम अपने विचारों, भावों को भरते हैं। लोकमंच डॉट कॉम के सम्पादक अमिताभ त्रिपाठी का मत है कि- ''वर्तमान पत्रकारिता के जन से कटने का परिणाम हमें चिट्ठाकारिता या ब्लागिंग के उदय में देखने को मिला, चिट्ठाकारिता के उदय ने पत्रकारिता में आए शून्य को भर दिया और चिट्ठाकारिता तेजी से एक स्वतंत्र विधा बनकर उभर रही है। चिट्ठाकारिता की इस नई विधा ने सबसे तेज तकनीक वेब का प्रयोग कर वेब पत्रकारिता के लिए नई संभावनाआं के द्वारा खोल दिए हैं। चिट्ठाकारिता को पत्रकारिता से जोड़कर उसे अपनी तासीर और महक देने के लिए 'लोकमंच' ने अभिनव प्रयोग किया ताकि पत्रकारिता चिट्ठाकारिता के मर्म को समझ सके और पत्रकारिता के माध्यम को चिट्ठाकार भी अपना सकें।''[10]

ब्लॉग को हिन्दी में चिट्ठा भी कहते हैं। वह विचारों की अभिव्यक्ति के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरा है। इसे ऑनलाइन डायरी भी कहा गया है।

हिन्दी का पहला ब्लॉग-'नौ दो ग्यारह (वर्ष 2004) है जिसे बैंगलोर निवासी आलोक कुमार ने लिखा है। इसके अलावा अन्य हिन्दी चिट्ठा लेखकों में-पंकज नरुला, शैल, संजय व्यास, अतुल अरोरा आदि हैं।[11] जिन्होंने हिन्दी ब्लॉगों को एक नई और उत्कृष्ट दिशा प्रदान की।

इस तरह पहले हिन्दी में ज्यादा वेबसाइट्स और लिंक्स न थे, किन्तु आज हिन्दी के लिए कई वेबसाइटस एवं ब्लॉग्स का निर्माण हो रहा है जिससे हिन्दी प्रचार में विशेष सफलता मिली हैं।

वेब पत्रिकाओं और मुद्रित साहित्यिक पत्रिकाओं की आपस में तुलना करने पर जो अंतर दिखाई पड़ते हैं, वे इस प्रकार हैं -

- वेब पत्रिकाएं केवल नेट पर ही खुलती हैं एवं इनका परिवर्तन व संशोधन नेट पर ही होता है। जबकि मुद्रित पत्रिकाएं नेट पर उपलब्ध न होकर यह बाजार में प्रकाशित होती हैं तथा एक बार प्रकाशित हो जाने पर इसमें किसी प्रकार का संशोधन होना असम्भव होता है।[12]
- वेब साहित्यिक पत्रिकाओं के रचनाकार, सम्पादक आदि सभी नेट पर या ई-मेल के द्वारा ही अपना सम्पर्क स्थापित करते हैं अपने विचारों तथा अभिव्यक्तियों और संवादों को ई-मेल से ही प्रस्तुत करते हैं जबकि मुद्रित पत्रिकाओं के लेखकों के विचारों से हम अवगत नहीं हो सकते अर्थात् हम उनसे अपना सम्पर्क नहीं बना सकते।
- वेब पत्रिकाओं में सीमित शब्दों का प्रावधान है अर्थात् सीमित शब्दों को प्राथमिकता दी गई है। उसमें लम्बे-लम्बे संवादों, लेखों का प्रावधान नहीं दिया गया है, जबकि मुद्रित पत्रिकाओं में ऐसा कोई बन्धन नहीं है। इसमें लेखक अपनें संवादों और लेखों को मनचाहा रूप देकर उसे विस्तृत कर सकते हैं।
- इन दोनों पत्रिकाओं में एक बड़ा अन्तर यह है कि अखबारों व पत्रिकाओं के ई-संस्करण उन क्षेत्रों में भी आसानी से पहुँच जाते हैं जहाँ उनकी छपी हुई कापियाँ नहीं पहुँच पाती।
- वेब पत्रिका इलेक्ट्रानिक मीडिया का एक रूप है जबकि मुद्रित पत्रिका प्रिंट मीडिया का रूप है।
- नेट पत्रिकाओं में मूल्य निर्धारित नहीं होता अर्थात् उनमें मूल्य प्रकाशित नहीं होता जबकि मुद्रित पत्रिकाओं में मूल्य निर्धारित होता है।
- नेट पर वेब पत्रिका को वो ही पाठक देख व पढ़ सकता है जिसे आधुनिक उपकरण (कम्प्यूटर) के बारे में ज्ञान हो तथा उसे चलाना जानता हो, जबकि मुद्रित पत्रिका में ऐसा कुछ नहीं होता उसे हर सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी पढ़ सकता है।
- वेब पत्रिका के यूजर्स (पाठक) कम समय में नेट पर अनेक सामग्री देख व पढ़ सकते हैं, जबकि मुद्रित की हुई पत्रिका में हमें ज्यादा समय देना पड़ता है।
- इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य और पत्रिकाओं को आप कहीं भी देख सकते हैं यहाँ तक कि आप अपने बचे समय में भी इसका उपयोग कर सकते हैं, जबकि मुद्रित पत्रिकाओं

या साहित्य को हमेशा साथ लेकर चलना संभव नहीं हो पाता है।

- वेब पत्रिका और मुद्रित पत्रिका में एक बड़ा अंतर यह है कि वेब पत्रिका का जीवन अस्थाई है अर्थात् जब तक इंटरनेट का अस्तित्व है या जब तक इन पत्रिकाओं के रचनाकारों का रुझान इस ओर है तब तक यह पत्रिकाएं जीवित हैं इसके विपरीत मुद्रित पत्रिका जीवन पर्यन्त चलने वाली पत्रिका है।

जहाँ मुद्रित साहित्य और पत्रिकाओं का दायरा इंटरनेट के आगे बहुत सीमित हो गया तथा उसके पाठक का एक विशिष्ट वर्ग हो गया वही नेट की कोई भौगोलिक सीमा आज नहीं रह गई है और यह विश्व के कोने-कोने तक आसानी से तुरंत उपलब्ध हो जाती है। शायद यही आज इसकी (वेब पत्रिका) जीत का प्रमुख कारण बन रहा है और जैसे आज समाचार-पत्र लोगों का एक अभिन्न अंग बना है ठीक उसी तरह वेब पत्रिकाएँ भी भविष्य में लोगों से इस तरह जुड़ जाएंगी। अतः वेब पत्रिकाओं का भविष्य उज्ज्वल है।

आज वर्तमान समय में हिन्दी भाषा इंटरनेट पर अपनी उपस्थिति को मजबूत रूप में दर्ज करा चुकी है। नेट पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार उसका विकास बड़ी ही तेजी से हो रहा है किन्तु फिर भी उसे अभी वो दर्जा व मुकाम पाना है जो आज अंग्रेजी भाषा का है। लेकिन हिन्दी इस ओर प्रयत्नशील है तथा जल्द ही वह इस दिशा में सफलता प्राप्त कर लेगी। अभी भी इंटरनेट और कम्प्यूटर का लाभ हिंदी भाषा में वैसे नहीं उठाया जा रहा जैसा कि पश्चिमी देशो के लोग उठाते है। आज जिस तरह स्कूल कालेजों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कम्प्यूटर और इंटरनेट बच्चो को सिखाया जाता है ठीक उसी प्रकार हिंदी भाषा में भी इन बच्चों को कम्प्यूटर व इंटरनेट सिखाना चाहिए। हिंदी विभाग, हिन्दी कार्यालय, पुस्तक विक्रेता आज उस हृदय तथा मन से नहीं जुड़े है जैसे अंग्रेजी साहित्य से लगाव रखते हैं, हिन्दी व्यक्ति के जीवन में तथा इंटरनेट तथा कम्प्यूटर के रूप में उसकी जीवन शैली नहीं बन पाई है इसके लिए हमें संयुक्त रूप से होकर कार्य करना चाहिए।

'हिन्दी वेब पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य तथा लक्ष्य है कि वह अपनी पत्रकारिता के द्वारा हिन्दी साहित्य को, हिन्दी भाषा को सर्वश्रेष्ठ तथा विश्व में प्रसिद्ध बनाकर उसका विकास करे।

संचार युग में हिन्दी भाषा का दायरा आज बहुत ही विकसित हुआ है। पहले हिन्दी केवल भारतवर्ष तक ही सीमित थी, परन्तु आज वह अपनी पुरानी स्थिति से उठकर विश्व में भी पहुँचकर अपना परचम लहरा रही है और यह सब कुछ केवल पत्रकारिता के ही माध्यम से संभव हो पाया है।

संदर्भ सूची

1. पत्रिका इंटरनेट डाइजेस्ट-पुष्पलता सक्सेना, पृ0 48
2. मीडिया विमर्श - डॉ0 श्रीकान्त सिंह, पृ0 22
3. संचार श्री शोध पत्रिका - डॉ0 रमेश चन्द्र त्रिपाठी, डॉ0 मुकुल श्रीवास्तव, पृ0 27
4. मीडिया विमर्श - डॉ0 श्रीकान्त सिंह, पृ0 23
5. वही, पृ0 24
6. Communication Today (Light house Media Professionals)- Dr. Sanjeev Bhanawat, page 7-8
7. Communication Today (Light house Media Professionals) - Dr. Sanjeev Bhanawat, page 8
8. www.abhivyakti-hindi.org
9. www.anubhuti-hindi.org
10. मीडिया विमर्श - डॉ0 श्रीकान्त सिंह, पृ0 40
11. संचार श्री शोध पत्रिका - डॉ0 रमेश चन्द्र त्रिपाठी, डॉ0 मुकुल श्रीवास्तव, पृ0 43-44
12. Communication Today (Light house Media Professionals) - Dr. Sanjeev Bhanawat, page 14

अलवर जिले में स्थित पर्यटन स्थलों का भौगोलिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

ऋषि प्रकाश शर्मा

शोधार्थी-भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० विजय कुमार गुप्ता

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर-भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

शोध सारांश- पर्यटन की दृष्टि से राजस्थान राज्य का अलवर जिला अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ अनेक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व के पर्यटन स्थल स्थित हैं जो देश-विदेश के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में सरिस्का बाघ संरक्षित क्षेत्र भी विद्यमान है जो कि अपनी जैव विविधता के लिए विश्व भर में ख्याति रखता है। क्षेत्र में स्थित इन पर्यटन स्थलों के कारण ही यहाँ पर्यटन उद्योग को भरपूर प्रोत्साहन मिला है। देश की राजधानी दिल्ली के निकट अवस्थिति के कारण अध्ययन क्षेत्र में पर्यटन का महत्व और बढ़ गया है। अलवर जिले में पर्यटन उद्योग स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करने में अग्रणी साबित हो रहा है।

कूट शब्द- अलवर जिले के प्रमुख पर्यटन केन्द्र, नवीन उद्योग, सामाजिक-आर्थिक विकास।

प्रस्तावना- वैश्वीकरण ने पर्यटन को एक लोकप्रिय गतिविधि बना दिया है। पर्यटन या देशाटन भारत में एक बड़ा सेवा क्षेत्र है। पर्यटन का आरम्भ से ही भूगोल विषय के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। पर्यटन आर्थिक-सामाजिक तथा आमोद-प्रमोद आदि गतिविधियों का सम्मिलित रूप है। विविध स्थलों की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था, भौगोलिक तथ्य, प्राचीन व वर्तमान तथ्यों को पर्यटन ही परिभाषित करता है। पर्यटन एक उद्देश्यपूर्ण यात्रा है। पर्यटन उद्योग किसी भी क्षेत्र को आर्थिक समृद्धता प्रदान करता है। जब किसी स्थान पर पर्यटन उद्योग विकसित अवस्था में आ जाता है तो वहाँ रोजगार के अन्य सेक्टरों पर दबाव स्वत: ही कम हो जाता है।

अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति- अलवर जिला राजस्थान राज्य के उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है। इसका अंक्षाशीय विस्तार 27° 20' उत्तर से 27° 34' उत्तर है जबकि देशान्तरीय विस्तार 76° 23' पूर्व से 76° 38' पूर्व है। यह जिला धरातलीय विविधताओं से युक्त है। अरावली पर्वतमाला यहां दक्षिण-पश्चिम दिशा में विकर्ण की भांति फैली हुई है। अलवर जिले के उत्तर में हरियाणा राज्य के गुडगांव तथा रेवाड़ी जिले अवस्थित हैं जबकि उत्तर-पूर्व दिशा में राजस्थान का ही भरतपुर जिला स्थित है। इसके उत्तर-पश्चिम में जयपुर जिला व दक्षिण में दौसा जिला अवस्थित हैं। यह राजस्थान का बड़ा नगर व उद्योग तथा व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण केन्द्र है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. अलवर जिले के प्रमुख पर्यटन केन्द्रों का संक्षिप्त अध्ययन करना।
2. अलवर जिले में पर्यटन उद्योग के सम्मुख उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन करना।।
3. पर्यटन उद्योग का अलवर जिले के स्थानीय लोगों पर प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध विषय "अलवर जिले में स्थित पर्यटन स्थलों का भौगोलिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन" में अलवर जिले में स्थित प्रमुख पर्यटन स्थलों का भौगोलिक अध्ययन प्राय: व्यक्तिगत भ्रमण के आधार पर किया गया है। अलवर जिले के मुख्य पर्यटन स्थलों को दर्शाने के लिए पर्यटन विवरणिका, पर्यटन विभाग, अलवर के पर्यटन मानचित्र का उपयोग किया गया है। प्राचीन पर्यटन स्थलों का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन साथ-साथ करने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है। पर्यटन उद्योग का अध्ययन क्षेत्र के स्थानीय लोगों पर प्रभाव का भी अध्ययन भी शोध विषय में सम्मिलित किया गया है, इस हेतु पर्यटन विभाग, अलवर से जानकारी व्यक्तिगत रूप से प्राप्त की गई है।

अलवर जिले के प्रमुख पर्यटन स्थल- अलवर जिले में स्थित प्रमुख पर्यटन स्थल निम्न प्रकार हैं-

1. सरिस्का वन्य जीव अभ्यारण्य- यह अलवर जिले का एक मुख्य पर्यटन स्थल है। यह बाघ संरक्षित क्षेत्र लगभग 1200 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में सैलानी भम्रण के लिए आते हैं। यह राष्ट्रीय पार्क अलवर जिला मुख्यालय से लगभग 37 कि.मी. दूर स्थित

है। यहाँ पाए जाने वाले मुख्य वन्य जीवों में बाघ, तेंदुआ, जंगली बिल्ली, लकड़बग्घा, जंगली सूअर, गीदड़, बिज्जू व लाल मुंह के बन्दर प्रमुख हैं।

2. भानगढ़ का किला- यह किला अरावली की पहाड़ियों में गोला का बास कस्बे (राजगढ़ तहसील) में स्थित है। यह स्थल हान्टेड स्थल के रूप में विख्यात है। इस किले का प्रबंधन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के अन्तर्गत आता है। यह किला देश-विदेश के पर्यटकों के बीच आकर्षण का केन्द्र है।
3. सिलीसेढ़ झील- यह एक नम भूमि स्थल है जो कि अलवर शहर के नजदीक ही स्थित है। यह झील लगभग 7 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैली हुई है। इस झील में नौकायन की सुविधा भी उपलब्ध है। यह एक प्रमुख पिकनिक स्थल है।
4. बाला किला-इसे अलवर के किले तथा बड़े किले के नाम से भी जाना जाता है। यह किला अरावली पहाड़ियों के मध्य में स्थित है। इस किले का पुनर्निमाण हसन खां मेवाती ने करवाया था। इस किले की उंचाई से सम्पूर्ण अलवर षहर का दृश्यावलोकन किया जा सकता है।
5. सरिस्का पैलेस- यह एक महल है, जो सरिस्का मुख्यालय के निकट स्थित है। इसका का निर्माण राजा जयसिंह ने ड्यूक ऑफ एडिनबर्ग की भारत यात्रा के दौरान मार्ग में ठहरने के लिए करवाया था। वर्तमान में यह महल निजी पाँच सितारा होटल है।
6. नीलकंठ महादेव मन्दिर- इस मन्दिर का निर्माण अजयपाल ने करवाया था। यह मन्दिर सरिस्का बाघ संरक्षित क्षेत्र में स्थित है। यह एक धार्मिक महत्व का पर्यटन स्थल है। इस क्षेत्र की अनोखी विशेषता यह है कि यहाँ मन्दिर के आस-पास खुदाई करने पर अनेक प्राचीन मूर्तियां व भवन अवशेष निकलते हैं, जिनका रख-रखाव भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के द्वारा किया जाता है।
7. विजय मन्दिर पैलेस- यह महल अलवर षहर के निकट ही स्थित है। इसका निर्माण राजा जयसिंह ने करवाया था। वे वास्तुकला के संरक्षक थे। इस महल में एक सीता-राम मंदिर भी स्थित है, जो आकर्षण का एक प्रमुख केन्द्र है।
8. पांडुपोल मन्दिर- यह हनुमान जी का मन्दिर है। इस मन्दिर की विचित्रता यह है कि इस मन्दिर में हनुमान जी की मूर्ति षयन मुद्रा में है। यह मन्दिर सरिस्का बाघ संरक्षित क्षेत्र में स्थित है। यह एक धार्मिक आस्था का केन्द्र है, इस कारण ही बाघ संरक्षित क्षेत्र में स्थित होने के बावजूद इस मन्दिर के लिए मंगलवार तथा शनिवार को प्रवेश नि:शुल्क रखा जाता है।
9. भर्तृहरि धाम- यह उज्जैन नगरी के राजा भर्तृहरि की तपोभूमि है। इस मन्दिर में एक अखंड़ दीपक जलता रहता है। यह तीर्थस्थल कनफड़े नाथ साधुओं के लिए प्रसिद्ध है। यह स्थानीय लोगों के लिए तो आस्था का केन्द्र है, साथ ही देश के अन्य राज्यों से भी श्रद्धालु यहाँ प्रतिवर्ष आते हैं। यहाँ भाद्रपद माह में षुक्ल पक्ष की सप्तमी व अष्ठमी को लक्खी मेला भरता है।
10. मूसी महारानी की छतरी- राजस्थान राज्य में अधिकांश राजपूत रियासतों में किसी व्यक्ति को सम्मान प्रदान करने हेतु व स्मृति में छतरियों का निर्माण किया जाता था। इसका निर्माण 1815 में राजा विनयसिंह ने करवाया था। इसे 80 खम्भों की छतरी के नाम से भी जाना जाता है। यह लाल बलुआ पत्थर व सफेद संगमरमर का स्मारक है।
11. सिटी पैलेस- इसे विनय विलास महल के नाम से भी जाना जाता है। यह महल मुगल तथा राजपूत वास्तुकला शैली का मिश्रण है। इस महल का निर्माण विनयसिंह ने करवाया था। इस पैलेस में दीवारों पर भित्ति चित्रों व षीषे की नक्काशी का काम इसे बेहद आकर्षक बनाते हैं।

चित्र:- अलवर जिले का पर्यटन मानचित्र

स्रोत:- अलवर जिले की पर्यटन विवरणिका, पर्यटन विभाग, अलवर।

अलवर जिले में पर्यटन उद्योग के विकास में बाधक समस्याएं-

- प्रशासनिक समन्वय का अभाव।
- जनसामान्य की उदासीनता।

- सड़क मार्गों का क्षतिग्रस्त होना तथा अव्यवस्थित रख-रखाव।
- क्षेत्र में विमान सेवा की सुविधा उपलब्ध न होना।
- पेशेवर अकुशलता।
- बुनियादी सुविधाओं का अभाव।

पर्यटन उद्योग का अलवर जिले के स्थानीय लोगों पर प्रभाव-

- रोजगार के अवसर उत्पन्न करने में सहायक।
- क्षेत्र को आर्थिक संपन्नता प्रदान करने में सहायक।
- विभिन्न संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करने वाला।
- विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायक।

शोध का निष्कर्ष- अत: प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट है कि पर्यटन उद्योग वर्तमान में महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में स्थापित हो चुका है। देश की अर्थव्यवस्था में इस उद्योग की मुख्य भूमिका है। अत: केन्द्र व राज्य सरकारों को चाहिए कि वे इस प्रकार का नीति निर्माण करें जिससे पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन प्राप्त होता रहे तथा वह देश की अर्थव्यवस्था में अग्रणी भूमिका अदा कर सकें। जनसामान्य को भी इन नीतियों के प्रति उत्सुकता व जागरूकता प्रकट करनी चाहिए।

संदर्भ-

- पर्यटन भूगोल - एच.के.खत्री, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
- दैनिक समाचार पत्र।
- राजस्थान पर्यटन विभाग, जयपुर।
- राजस्थान का भूगोल - प्रो. एच.एस.षर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- अलवर जिले के प्रमुख पर्यटन स्थलों की व्यक्तिगत यात्राएं।
- अलवर जिले की पर्यटन विवरणिका, पर्यटन विभाग, अलवर।
- दी हैरिटेज वेल्थ ऑफ राजस्थान, राजस्थान ट्यूरिज्म आरटीडीसी, जयपुर 2011-2014।

राजस्थान में पर्यटन उद्योग में बाघ संरक्षित क्षेत्रों की भूमिका

मनोज कुमार शर्मा

शोधार्थी-भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ० के०सी० शर्मा

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

भूमिका- आज के बदलते हुए परिवेश में पर्यटन उद्योग एक उभरते हुए उद्योग के रूप में स्थापित होता जा रहा है। लोगों का रूझान भी पर्यटन के प्रति दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। वन्य जीव पर्यटन अपने आप में एक रोमांचित कर देने वाला पर्यटन साबित हो रहा है। बाघ पर्यटन (Tiger Tourism) के पाछे सारी दुनियां दीवानी हो चली है। बाघ संरक्षित क्षेत्रों में पर्यटकों की संख्या वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है।

कूट शब्द- बाघ पर्यटन, बाघ संरक्षित क्षेत्र

बाघ पर्यटन (Tiger Tourism)- 20 वीं सदी की शुरूआत में भारत में 40000 से अधिक बाघ थे। हांलाकि हमें यह नहीं पता था कि केवल 6 दशक बाद यह संख्या 2000 से भी कम हो जाएगी। यह विनाश कैसे हुआ? राज काल के दौरान अंधाधुंध शिकार की शुरूआत हुई, प्राकृतिकवासों का बड़े पैमाने पर दोहन किया गया। जिससे प्राकृतिकवास काफी सिकुड़ गए। इसके बाद स्वतंत्र भारत में विकास पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

यदि 1973 में भारत सरकार ने बाघ परियोजना (Tiger Project) आरम्भ न किया होता तो हमारा देश आज बाघ विहीन होता। हम जगंल में रहने के लिए अव्यवहार्य आबादी तक पहुँचने के कगार पर थे। बाघ परियोजना राष्ट्रीय कार्यक्रम ने अवैध शिकार एवं बाघों के प्राकृतिकवासों में नुकसान के प्रति जागरूकता फैलाने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया।

ऐसा लगने लगा कि इससे समस्या का समाधान कर लिया गया है और अब बाघों का पनपना आसान हो जाएगा। हांलाकि हमें यह नहीं पता था कि पिछले 5 दशकों में मानव आबादी दुगुनी होने से बाघ संरक्षण की चुनौतियां कई गुना बढ़ जायेंगी। अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए पनबिजली परियोजना, बांधो, राजमार्गो, एक्सप्रेस-वे तथा जीवाश्म ईंधन की आवश्यकता हुई। जिसने बाघों के प्राकृतिकावासों को अपरिवर्तनीय बिन्दु तक खण्ड़ित कर दिया। वन गलियारें (Corridor) लगभग समाप्त हो गए। अब बाघ के सामने चुनौतियां नयी थी। वर्ष 2006 की अखिल भारतीय बाघ गणना रिपोर्ट (All India Tiger Estimation Report-2006) इस तथ्य की पुष्टि करता है। वर्ष 2006 में बाघों की संख्या 1411 तक सिमट कर रह गयी थी।

वन्यजीव पर्यटन की नींव 21 वीं सदी की शुरूआत में पड़ी। संरक्षण में सरकार के प्रयासों और गैर लाभकारी संगठनों तथा वन्यजीव पर्यटन के लिए समर्पित कुछ व्यक्तियों ने मिलकर बाघ संरक्षण के कार्य को पूरा किया। जिसके सकारात्मक परिणाम बाद की बाघ गणना रिपोर्टो में साफ दिखने लगे। जिसने बाघ पर्यटन को नयी दिशा प्रदान की।

तालिका 1:- अखिल भारतीय बाघ गणना रिपोर्ट (भारत व राजस्थान के संदर्भ में)।

क्रम सं.	बाघ गणना रिपोर्ट वर्ष	भारतीय में बाघों की संख्या	राजस्थान में बाघों की संख्या
1	2006	1411	32
2	2010	1706	36
3	2014	2226	45
4	2018	2967	69
5	2022	3682	88

Source :- All India Tiger Estimation Report- 2006, 2010, 2014, 2018 and 2022. National Tiger Conservation Authority, Government of India, New Delhi & Wildlife Institute of India, Dehradun.

चित्र 1:- भारत व राजस्थान में बाघों की संख्या ग्राफीय निरूपण।

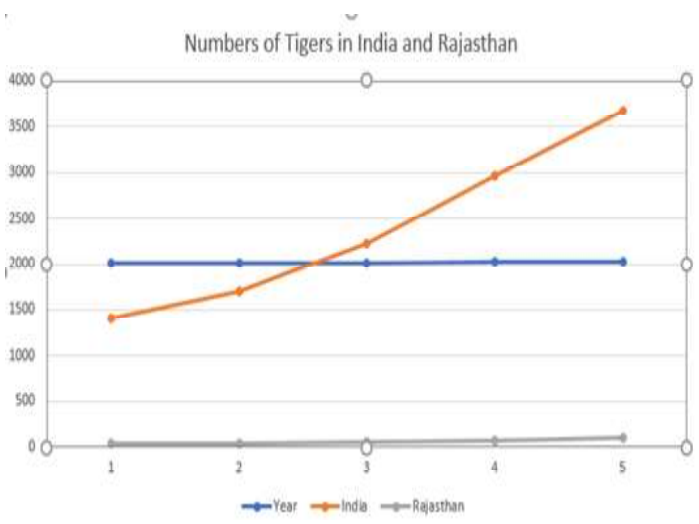

चित्र 2:- भारत में स्थित बाघ परियोजनाओं का मानचित्रीय निरूपण।

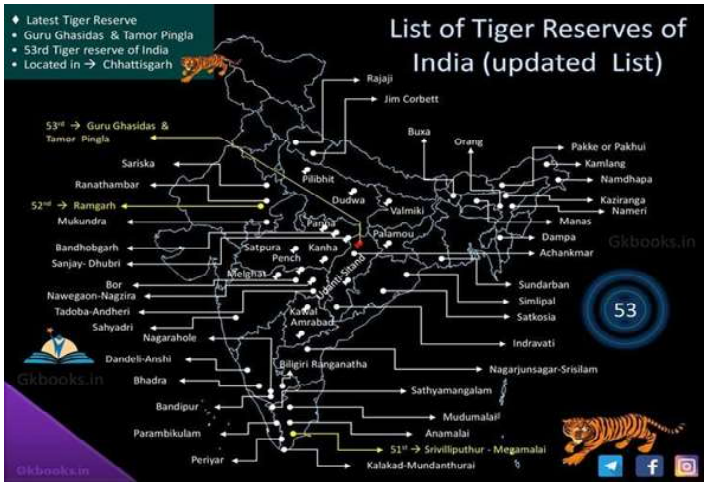

अध्ययन क्षेत्र का परिचय- राजस्थान राज्य भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में स्थित है। इसका विस्तार 23° 03' उत्तर से 30° 12' उत्तरी अक्षांश तथा 69° 30' पूर्वी देशान्तर से 78 17' पूर्वी देशान्तर तक है। यह क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है, जो कि देश के कुल क्षेत्रफल का 10.41 प्रतिशत है। राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र में वन क्षेत्र का प्रतिशत लगभग 9.5 है। राज्य में बाघ परियोजना 1973 के अनुसार सर्वप्रथम रणथम्भौंर बाघ परियोजना, सवाई माधोपुर की स्थापना की गई। कालांतर में इसी क्रम में बाघ परियोजना सरिस्का की स्थापना की गई। वर्तमान राजस्थान राज्य में 5 बाघ परियोजनाएं अस्तित्व में हैं जो निम्न प्रकार हैं-

1. बाघ परियोजना रणथम्भौंर
2. बाघ परियोजना सरिस्का
3. बाघ परियोजना मुकुंदरा हिल्स
4. बाघ परियोजना रामगढ विशधारी
5. बाघ परियोजना धौलपुर-करौली

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1 राजस्थान राज्य में बाघ पर्यटन के महत्व का अध्ययन करना।

2 अखिल भारतीय बाघ गणना रिपोर्ट के माध्यम से बाघों की संख्या का सारणीबद्ध अध्ययन करना।

3 बाघ पर्यटन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्यों का अध्ययन करना।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध विषय "राजस्थान में पर्यटन उद्योग में बाघ संरक्षित क्षेत्रों की भूमिका" में राजस्थान राज्य की बाघ परियोजनाओं के संदर्भ में बाघ पर्यटन के महत्व का अध्ययन किया गया है। बाघ परियोजनाओं के क्षेत्रफल संबंधी आंकड़े राजस्थान सरकार के वन विभाग की वेबसाइट से प्राप्त किए गए हैं। बाघों की संख्या का सारणीबद्ध अध्ययन अखिल भारतीय बाघ गणना रिपोर्ट के माध्यम से किया गया है। भारत व राजस्थान राज्य में स्थित बाघ संरक्षित क्षेत्रों को मानचित्र द्वारा चिन्हित किया गया है।

परिकल्पना-

- भारत व राजस्थान में बाघों की संख्या में वृद्धि हो रही है।
- राजस्थान राज्य में बाघ पर्यटन की लोकप्रियता बढ़ रही है।

राजस्थान के बाघ संरक्षित क्षेत्रों की पर्यटन उद्योग में भूमिका- राजस्थान पर्यटन की दृष्टि से भारत का अग्रणी राज्य है। राजस्थान के प्रत्येक जिले में कई दर्शनीय स्थल देखने को मिलते हैं। यहाँ विशेषकर दुर्ग एवं पौराणिक मन्दिर स्थित हैं। प्राकृतिक सुन्दरता और महान इतिहास से संपन्न राजस्थान राज्य में पर्यटन उद्योग समृद्धशाली है। भारत की सैर करने वाला हर तीसरा विदेशी सैलानी राजस्थान घूमने जरूर आता है। राजस्थान में ऐतिहासिक पर्यटन, धार्मिक पर्यटन, स्वास्थ्य पर्यटन, रिजोर्ट पर्यटन, विरासत पर्यटन, रोमांच पर्यटन व शैक्षणिक पर्यटन आदि के साथ-साथ वन्यजीव पर्यटन व बाघ पर्यटन भी महत्वपूर्ण है। बदलते हुए परिवेश में लोगों का रूझान इस ओर बढ़ने लगा है।

केन्द्र सरकार व राजस्थान राज्य सरकार के निरन्तर प्रयासों से राज्य में बाघ संरक्षित क्षेत्रों में अनवरत वृद्धि हो रही है। साथ ही बाघ पुनर्वास की अप्रत्याशित सफलता ने पर्यटकों को बाघ संरक्षित क्षेत्रों की ओर आकर्शित करने में मुख्य भूमिका अदा की है। यह विश्वास है कि कालान्तर में राजस्थान में वन्यजीव पर्यटन व बाघ पर्यटन को चार चाँद लग सकेंगे। राज्य के बाघ संरक्षित क्षेत्रों में पर्यटन से-

- राज्य सरकार के राजस्व में इजाफा होने लगा है।
- स्थानीय लोगों यथा होटल व्यवसायकों, स्थानीय दुकानदार, कुटीर उद्योग में लगे कर्मी, नेचर गाइडस, स्थानीय ग्रामीणों व ट्रेवल एजेन्सीज को रोजगार के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं।
- बाघ संरक्षित क्षेत्रों से जुडेध शहरों, कस्बों, गांवो आदि के आधारभूत ढांचे के विकास को त्वरित गति मिली है, जिससे क्षेत्र के सर्वांगीण विकास में मदद मिल रही है।
- वन एवं वन्य जीव सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण के प्रति

लोगों में चेतना जागृत कर रही है।

- बाघ संरक्षित क्षेत्रों के आस-पास पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन में सुधार होने लगा है।

चित्र 3:- राजस्थान में स्थित बाघ संरक्षित क्षेत्र।

बाघ पर्यटन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य-

1. भारत बाघों की 75 प्रतिशत आबादी का घर है। इसलिए भारत इस राजसी जानवर को जंगल में देखने के लिए स्वचालित विकल्प बन गया है। यह उस चुम्बक की भांति है जो विश्वभर के सैलानियों को अपने संरक्षित क्षेत्रों की ओर खींचेगा और राजस्व प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगा।
2. वन्यजीव पर्यटन भारत के लिए काफी महत्वपूर्ण है, न केवल आर्थिक पहलुओं व संरक्षण प्रयासों से बल्कि शिक्षा में भी। आज दुनिया जलवायु परिवर्तन के आसन्न खतरे का सामना कर रही है। वर्तमान में देश में वन जो कि बाघों के प्राकृतिकावासों/शरणस्थलियों तक सिमट कर रह गए हैं, वायुमंडल से कार्बनडाइआक्साइड को ग्रहण करने तथा इसे बायोमास में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन गम्भीर मौसम परिवर्तनों को भी कम करने में सहायक होते हैं।
3. घने जंगलों में सफारी का अनुभव व्यक्ति की आत्मा के उस हिस्से को जागृत कर देता है जो अन्यथा निष्क्रिय रहता है।
4. खाद्य श्रृंखला की रक्षा करना अत्यावश्यक है और वन इसमें प्रमुख भूमिका निभाते हैं। मानव जाति के लिए वनों की रक्षा का महत्व अत्यधिक व सीमा से परे है।

तलिका 2:- राजस्थान के पर्यटन सर्किट एवं उनके अन्तर्गत आने वाले बाघ संरक्षित क्षेत्र।

क्रम सं.	पर्यटन सर्किट	बाघ संरक्षित क्षेत्र	क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. में
1.	जयपुर–अजमेर परिपथ	–	
2.	अलवर, सीलीसेढ़ परिपथ	1 बाघ परियोजना सरिस्का	1216.0731
3.	भरतपुर, डीग, धौलपुर परिपथ	2 बाघ परियोजना धौलपुर–करौली	599.64
4.	जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, नागौर परिपथ	–	
5.	चुरू, झुझुनू , सीकर परिपथ	–	
6.	माउण्ट आबू, सिरोही, पाली, जालौर परिपथ	–	
7.	उदयपुर, चितौडगढ, नाथद्वारा, कुम्भलगढ, जयसमंद, डूंगरपुर परिपथ	–	
8.	अजमेर, पुष्कर, मेड़ता परिपथ	–	
9.	कोटा, बूंदी, झालावाड़ परिपथ	3 बाघ परियोजना मुकुंदरा हिल्स 4 बाघ परियोजना रामगढ विषधारी	1135.78 1496.49
10.	रणथम्भौंर, टोंक, परिपथ	5 बाघ परियोजना रणथम्भौंर	1530.23

Source :- https://forest.rajasthan.gov.in, Wildlife, Details of Protected Area and Tourism Department of Rajasthan.

उपसंहार- राजस्थान जैव विविधता की दृष्टि से काफी समृद्ध प्रांत है। यहाँ वन्यजीव पर्यटन व बाघ पर्यटन के नए आयाम स्थापित होने लगे हैं। बाघों के कुनबे में निरन्तर इजाफा होना इंगित करता है कि यहां वन्यजीव पर्यटन व बाघ पर्यटन का व्यापक विस्तार है। बाघ पर्यटन की लोकप्रियता को देखते हुए ही राज्य सरकार ने रणथम्भौंर बाघ परियोजना से बाघों के उत्क्षेप का उपयोग सरिस्का बाघ परियोजना (अलवर), मुकुंदरा हिल्स (आंशिक विस्तार -कोटा, बूंदी, चिळौडगढ़, झालावाड़), रामगढ विशधारी (कोटा, बूंदी) व धौलपुर-करौली वन क्षेत्र (धौलपुर, करौली) आदि संरक्षित क्षेत्रों को आबाद करने में किया है। सरकार के प्रयासों के साथ-साथ पर्याप्त जन सहयोग भी इस कार्य में अतिआवश्यक है, जिससे बाघ पर्यटन को नए आयाम स्थापित करने के अवसर मिल सके। उदाहरणस्वरूप उल्लेखनीय है कि अलवर आने वाले ज्यादातर पर्यटक सरिस्का आते हैं। यदि यह कहा जाए कि सरिस्का बाघ परियोजना अलवर के पर्यटन की रीढ़ है तो इसमें कोइे अतिशयोक्ति नहीं होगी। सरिस्का में बाघ पर्यटन से प्राप्त होने वाली सालाना आय 400 से 450 करोड़ तक पहुंच गई है।

संदर्भ-

- All India Tiger Estimation Report- 2006, 2010, 2014, 2018 and 2022. National Tiger Conservation Authority, Government of India, New Delhi & Wildlife Institute of India, Dehradun.

- Buckley,R.C.(January,2013) Tiger Tourism : Critical Issues , General Lessons. TOURISM RECREATION RESEARCH , Vol. 38 (1) ,2013 PP 101-103 http://www.trrworld.org
- Qureshi,Q. Jhala,Y.V. Yadav,S. Satya,P. Mallick,A. (2023) Status of Tigers co-predators & prey in India , 2022. National Tiger Conservation Authority, Government of India , New Delhi and Wildlife Institute of India , Deharadun. ISBN No. 81-85496-92-7
- Singh, S. (2002) " Biodiversity and Ecotourism with special Reference to India " TOURISM RECREATION RESEARCH Vol. 27(3) PP 92-95, 2002
- Vishvendra,B. Singh,R. and Sen,A. (April,2022) Assessment of Tiger Tourism in India : A case study of Ranthambore Tiger Reserve, Rajasthan, India. Springer publisher, PP 317-327,2022
- राजस्थान पत्रिका " बाघों में बहार है....."। मंगलवार, 30 जुलाई, 2019, जयपुर।
- सिन्हा, एस.के. परमार,वी. (नवम्बर, 2022): "बाघ विरासत और सरोकार", वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण- 13 नवम्बर, 2022
- राजस्थान पत्रिका "बाघों से सरिस्का निहाल"। बुधवार, 08 नवम्बर 2023।

ई-ग्रंथ सूची-

- fsi.nic.in
- https://ntca.gov.in
- https://forest.rajasthan.gov.in
- https://www.tigernet.nic.in
- https://www.tourism.rajasthan.gov.in

शिक्षा का अधिकार और मूल अधिकार : मधेपुरा जिले के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ० धनंजय कुमार

पी-एच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, बी० एन० एम० यू० मधेपुरा

शिक्षा मानव जीवन की आधार शिला है। मानव का विकास और उन्नयन शिक्षा पर निर्भर है, शिक्षा व्यक्तित्व का निर्माण भी करती है। शिक्षा व्यक्ति एवं उसके व्यवहार को उसके आचरण को, उसके क्रियाकलापों को उचित और समाजोपयोगी बनाती है तथा उसमें रचनात्मक शक्ति का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा वह केवल अपने वातावरण को अनुकूलन करने में ही समर्थ नहीं होता वरन् वातावरण और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का भी प्रयत्न करता है। जी.एच. थॉमस के अनुसार शिक्षा के कारण ही मानव आज सभ्यता के इस ऊँचे शिखर पर पहुँच पाया है। शिक्षा ही मानव को असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है और निर्देशित करती है। शिक्षा ही वैयक्तिकता की केंचुली से बाहर लाकर मानव को इस योग्य बनाती है कि वह समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण संसार के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपना सके और अपने कर्तव्यों का निर्वहन भली भाँति से कर सके।

यदि शिक्षा का अर्थ अधिक समझें तो यही है कि शिक्षा ही वह गुरू तथा दीपक है जो मनुष्य को सही पथ दिखाती है तथा जिसकी दीक्षा तथा रोशनी को अपनाकर मनुष्य खुद को समाजपयोगी बनाता है और समाज को विकास की ओर अग्रसर करता है। शिक्षा के द्वारा हम मनुष्य की उन छिपी हुई तथा अंतर्निहित शक्तियों को बाहर निकालकर उनका उपयोग समाज, देश, राष्ट्र की भलाई के लिए करते हैं। शिक्षा वह साधन है जिसका प्रयोग कर मनुष्य की छिपी हुई शक्तियों को बाहर निकालकर उनको उसकी क्षमता अनुसार प्रयोग करते हैं। शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता के आदर्शो तथा कर्मो का ज्ञान कराकर उसे समाजपयोगी बनाती है। अर्थात् शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनने के पथ पर अग्रसर करती है। इसके द्वारा मनुष्य की आंतरिक और बाह्य शक्तियों का विकास होता है।[1]

भारत में शिक्षा का स्वर्णिम इतिहास रहा है। वैदिक काल से ही शिक्षा की ज्योति प्रज्जवलित कर भारतीय विद्वान जीवन को प्रकाशमय करने का प्रयास करते रहें है। अंग्रेंजी विद्वान-एफ0 डब्लू0 थामस ने कहा कि-ष्ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में आरंभ हुआ हो, जितना भारत में या जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो, जितना भारत मेंष् मनुष्य जीवन में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान के कारण वैदिक, बौद्ध, मुस्लिम शासन काल में शिक्षा की नि:शुल्क व्यवस्था थी। परन्तु ब्रिटिश काल में शिक्षा की व्यवस्था लड़खड़ा उठी, और जब 1813 ई0 में आज्ञा पत्र की धारा 43 द्वारा भारत में ष्ब्रिटिश शिक्षा की आधारशिलाष्रखी गयी तो भारतीय शिक्षा का स्वरूप ही बदल गया।[2]

बीसवीं शताब्दी के मध्य में हुए परिवर्तन के कारण विश्व में साम्राज्यवादी मूल्य की जगह लोकतांत्रिक मूल्यों ने अपनी जगह बनाई। भारत भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा और लम्बी लड़ाई के बाद 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र देश के रूप में विश्व मानचित्र पर उभर कर आया। भारत ने लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित अपना नया संविधान अपनाया तथा संविधान के द्वारा भारत को प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया। भारत की स्वतंत्रता के साथ ही संविधान निर्माताओं ने भारत के पिछड़ेपन के कारण व विकास की आवश्यताओं को देखते हुए ऐसे संविधान की रचना की जिसके माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, न्याय पर आधारित आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की गई। यह व्यवस्था ने केवल भारतीय समाज, संस्कृति व मूल्यों को परिलक्षित करता है बल्कि आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्य, व्यक्ति की स्वतंत्रता, उसके मानवीय अधिकारों की रक्षा तथा निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर रहना भी सुनिश्चित करता है। जिसमें राज्य के कार्य, व्यक्ति के अधिकारों के साथ राजनीतिक व्यवस्था को किस दिशा में आगे बढ़ना है यह निर्देशित करने के लिए संविधान के भाग चार में नीति निदेशक तत्वों की रचना की गई। शिक्षा को संविधान निर्माताओं ने शुरू में नीति निदेशक तत्व में रखा था, लेकिन बदलते समय के साथ शिक्षा पर ध्यान देना हमारे लिए आवश्यक होता चला गया, क्योंकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलावों के औजार के तौर पर शिक्षा की अहम भूमिका है। भारत की आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए लोगों का शिक्षित होना जरूरी है। शिक्षा के प्रसार के जरिए ही समानता और न्याय पर आधारित समाज बनाया जा सकता है। शिक्षा नागरिकों को शासन की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए तैयार कर लोकतंत्र को भी मजबूत बनाती है। यह सामाजिक एकता और राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने वाले मूल्यों को बढ़ावा देकर देश की अखंडता की हिफाजत के लिये भी आवश्यक है।

आजादी के बाद के तीन दशकों तक शिक्षा सभी राज्यों की जिम्मेदारी थी। लेकिन बिना किसी भेद-भाव के सभी क्षेत्रों और तबकों को एक समान शिक्षा मुहैया कराना कठिन था और इसके

लिए काफी धन और विशेषज्ञता की दरकार थी। इन्हें केन्द्र और राज्य सरकारों के साझा प्रयासों से ही जुटाया जा सकता था। लिहाजा सन् 1976 ई0 में 42 वाँ संविधान संशोधन के जरिए शिक्षा को समवर्ती सूची में लाया गया। इससे शिक्षा के प्रसार में राज्यों की भूमिका और जिम्मेदारी में कोई फर्क नहीं आया। लेकिन इसके राष्ट्रीय और समेकित स्वरूप को मजबूत करने, सभी स्तरों पर इसकी गुणवत्ता और स्तर को बरकरार रखने तथा देश में इसकी जरूरतों के अध्ययन और निगरानी की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी केन्द्र सरकार के पास आ गई। शिक्षा का मूल अधिकार की बात तब सामने आयी जब 1993 में उच्चतम न्यायालय ने यूनीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में वाद संख्या-एस0 सी0 सी0 645 के अंतर्गत निर्णय में कहा कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन एक मूल अधिकार है और सभी को शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का उत्तरदायित्व है। भारत सरकार ने भी इसके बाद 86वाँ संविधान अधिनियम 2002 द्वारा संविधान में संशोधन कर एक नया अनुच्छेद 21 (क) जोड़ा और इस तरह शिक्षा को संविधान के भाग 3 अध्याय-11 के अंतर्गत मूल अधि कार का दर्जा प्रदान किया गया। जिसमें 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा का मूल अधिकार प्रदान करना स्पष्ट एवं सुनिश्चित किया गया तथा अनु0 45 के स्थान पर एक नया अनु0 प्रतिस्थापित किया गया, जो यह कहता है कि राज्य 6 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के पूर्व बाल्यकाल की देख-रेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबंध करेगा। इस प्रकार शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार का रूप दिया गया। लेकिन व्यक्ति को शिक्षा प्रदान करने का दायित्व राज्य, समाज तथा परिवार सभी पर है। यही कारण है कि मूल कर्तव्य के अनुच्छेद 51(क) के अंतर्गत इसे जोड़कर यह कहा गया है कि छः वर्ष से चौदह वर्ष आयु के बच्चों के माता-पिता और प्रतिपालक के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का उचित अवसर प्रदान करें। यह खंड मूल कर्तव्यों में इसलिए जोड़ा गया है क्योंकि राज्य तथा समाज के कार्यो का सफलतापूर्वक संचालन हेतु संविध ान में नया अनु0 21 (क) के अंतर्गत शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।[3]

एक अप्रैल 2010 से सम्पूर्ण देश में शिक्षा का अधिकार अधि नियम, 2009 को शत्-प्रतिशत लागू कर दिया गया है। साल भर में इसका असर दिखा और ज्यादातर राज्यों ने अधिनियम में दिए गए निर्देशों के तहत शिक्षा व्यवस्था को लागू कर दिया है, जिनमें से बिहार भी एक है। बिहार सरकार द्वारा षबिहार राज्य बच्चों की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा नियमावली 2011ष बनाया गया है और इस कानून के अंतर्गत निजी विद्यालयों को भी लाया गया है। जिसके तहत हर सत्र में 25 प्रतिशत गरीब बच्चों का नामांकन करना उनके लिये अनिवार्य कर दिया गया है। इस अधिनियम का सर्वाधिक लाभ श्रमिकों के बच्चों को, बाल मजदूरों, प्रवासी बच्चों,विशेष आवश्यकता वाले बच्चों या फिर ऐसे बच्चों को जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई तथा लिंग कारकों की वजह से वंचित बच्चों में शामिल है उनको होना है। इस अधिनियम के कार्यान्वयन के साथ ही यह उम्मीद भी है की इससे विद्यालय छोड़ने तथा विद्यालय ना जाने वाले बच्चों के अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रशिक्षित शिक्षकों के माध्यम से दी जा सकेगी।[4]

शिक्षा का अधिकार कानून मूल रूप से कुल 07 भागों में विभक्त है:-

प्रथम भाग में प्राथमिक शिक्षा, द्वितीय भाग में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, तृतीय भाग में उपयुक्त सरकार, स्थनीय प्राधिकरण और माता-पिता के कर्तव्य, चतुर्थ भाग में शिक्षक और माता-पिता की प्रतिक्रिया, पंचम् भाग में प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम और समापन, षष्ठम भाग में बच्चों के अधिकार का संरक्षण, सप्तम भाग में अन्यान्य।

6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चे विशेषकर कमजोर वर्ग के बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दिलाने वाला शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को लागू हुए काफी समय हो गया, अब तक देश के कमजोर वर्ग के करोड़ों बच्चों को गरीबी की वजह से शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती थी लेकिन इस कानून के लागू हो जाने के बाद ऐसी आशा की जा सकती है कि अब प्रत्येक बच्चे को सुगमता से शिक्षा प्राप्त हो जायेगी। गोपालकृष्णन गोखले ने सबसे पहले 19 मार्च 1910 को केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य एवं निशुल्क प्राथमिक शिक्षा के संबंध में एक प्रस्ताव पेश किया था। सोलह मार्च 1911 में गोखले ने इस प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में पेश किया। पंडित मदन मोहन मालवीय और मोहम्मद अली जिन्नाह भी उस समय इस केन्द्रीय धारा के सदस्य थे। उन्होंने गोखले द्वारा प्रस्तुत इस विधेयक का समर्थन किया, परन्तु भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों ने सरकार के पक्ष में मत दिया। और यह विधेयक 13 मतों के विरूद्ध 38 मतों से गिर गया। अतः गोखले द्वारा प्रस्तावित यह विधेयक केन्द्रीय धारा सभा में पास नहीं हो सका, परन्तु उनके द्वारा प्रस्तावित इस विधेयक से ब्रिटिश सरकार में खलबली अवश्य मच गयी थी। राष्ट्रपति महात्मा गाँधी भी देश में निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के समर्थक थे नव जीवन पत्रिका में लिखे गए एक लेख में गाँधीजी ने कहा था कि मैं भारत के लिए निशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत का दृढ़ समर्थक हूँ। उनके अनुसार इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बच्चों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो सके। 1937 में महात्मा गाँधी ने डॉक्टर जाकिन हुसैन के साथ मिलकर नई तालीम की अवधारणा प्रस्तुत की। आज इसे वर्धा शिक्षा योजना, बुनियादी शिक्षा, बेसिक शिक्षा और बेसिक ऐजुकेशन आदि कई नामों से जाना जाता है। इसके अंतर्गत 7-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। और इस बात पर बल दिया गया था कि सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प

अथवा उद्योग पर आधारित हो। 1966 में कोठारी आयोग ने बच्चों के लिए समान शिक्षा की सिफारिश की थी। 1986 की शिक्षा नीति के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए एक किलोमीटर की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय और 3 किलोमीटर की दूरी के अंदर उच्च प्राथमिक विद्यालय खोलने की बात की गयी थी। साथ ही प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारने हेतु ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना प्रस्तुत की गयी थी। बाल शिक्षा के क्षेत्र में नई आवधाराणाओं का जन्म 1992-93 में तब हुआ, जब भारत ने संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार चार्टर पर हस्ताक्षर किये। इस चार्टर का हस्ताक्षरकर्त्ता देश होने के कारण भारत को बाल शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान करना आवश्यक हो गया। 1993 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश के मामले में कहा गया कि शिक्षा का अधिकार संविधान के भाग-3 अध्याय-11 के अनुच्छेद 21 में उल्लिखित जीवन के मौलिक अधिकार का एक हिस्सा भाग है। 1993 के फैसले के बाद 2002 में 86वें संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया। तदोपरांत 01 अपैल 2010 में सम्पूर्ण देश में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को लागू किया गया।[5]

इस अधिनियम में सभी बच्चों के लिए गुणवत्ता पूर्ण और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है, जिससे ज्ञान, कौशल और मूल्यों से लैस करके उन्हें भारत का प्रबुद्ध नागरिक बनाया जा सके। यदि विचार किया जाए तो आज देश भर में विद्यालयों से वंचित लगभग एक करोड़ बच्चो को शिक्षा प्रदान करना सचमुच हमारे लिए एक दुष्कर कार्य है। यूनिसेफ के एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में कक्षा पाँच तक जाते-जाते 48 प्रतिशत बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं, जिसे दूर करना एक चुनौती है। इसलिए इस लक्ष्य को साकार करने के लिए सभी हितधारकों-माता-पिता, शिक्षकों, विद्यालयों, गैर-सरकारी संगठनों और कुल मिलाकर समाज, राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार की ओर से एकजुट प्रयास का आह्वाहन किया गया है। इस अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया है की पहुँच के भीतर वाला कोई निकटवर्ती विद्यालय किसी भी बच्चे को प्रवेश देने से इंकार नहीं करेगा तथा साथ ही यह प्रावधान भी शामिल है कि प्रत्येक विद्यार्थियों के लिए एक शिक्षक के अनुपात को कायम रखते हुए पर्याप्त संख्या में सुयोग्य शिक्षक विद्यालयों में मोजूद होने चाहिए। सभी निजी विद्यालयों मे पहली कक्षा में प्रवेश के समय कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटे आरक्षित करनी होगी तथा इसे मजबूती से लागू किया जाए। निजी विद्यालयों में बच्चों से किसी प्रकार की कैपिटेशन फीस नहीं ली जायेगी। तथा बच्चों के स्क्रीनिंग टेस्ट पर भी प्रतिबंध होगा। बच्चों को ना तो अगली कक्षा में पहुँचने से रोका जाएगा न ही विद्यालय से निकाला जाएगा और ना ही उनके लिए बोर्ड उत्तीर्ण करना अनिवार्य होगा। विद्यालयों को पाँच वर्षो के भीतर अपने सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। शिक्षकों की डयूटी जगगणना, चुनाव कार्य एवं आपदा राहत के अलावा अन्य किसी भी कार्य में नहीं लगाया जायेगा। विद्यालय में तीन वर्षो के भीतर समुचित सुविधाएँ भी मुहैया करवानी होंगी जिसमें खेल का मैदान, पुस्तकालय, पर्याप्त संख्या में अध्ययन कक्ष, शौचालय, शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों के लिए निर्वाध पहुँच, पेयजल सुविधाएँ आदि शामिल है।[6]

विद्यालय प्रबंधन समितियों के 75 प्रतिशत सदस्य छात्रों की कार्यप्रणाली और अनुदानों के इस्तेमाल की देखरेख करेंगे। विद्यालय समितियाँ अथवा स्थानीय अधिकारी विद्यालयों से वंचित बच्चों की पहचान करेंगे और उन्हें समुचित प्रशिक्षण के बाद उनकी उम्र के अनुसार समुचित कक्षाओं में प्रवेश दिलवाएंगे। सम्मिलित विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सभी निजी विद्यालय भी सबसे निचली कक्षा में समाज के गरीब और हाशिये पर रहने वाले वर्गो के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करेंगे। देश में लगभग एक करोड़ बच्चे आज भी शिक्षा से वंचित है जो अपने आप में एक बड़ी संख्या है। प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, विद्यालयों में सुविधाओं का अभाव, अतिरिक्त विद्यालयों की आवश्यकता, और धन की कमी होना यही बड़ी चुनौतियाँ हैं।

मौजूदा स्थिति में लगभग 46 प्रतिशत विद्यालयों में बालिकाओं के लिए शौचालय नहीं हैं। देश में 12.6 लाख शिक्षकों के पद खाली है। देश के 12.9 लाख मान्यता प्राप्त प्रारंभिक विद्यालयों में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या 7.72 लाख है, जो कुल शिक्षकों की संख्या का 40 प्रतिशत है। लगभग 53 प्रतिशत विद्यालयों में अधिनियम के प्रावधान के अनुसार निर्धारित छात्र-शिक्षक अनुपात 1.30 से अधिक हैं। रिक्तियों को भरने के उद्देश्य से आगामी 6 वर्षो में लगभग 5 लाख शिक्षकों को भरती करने की योजना है।

जहाँ तक धन की कमी का प्रश्न है, इस अधिनियम में राज्यों के साथ हिस्सेदारी का प्रावधान है। जिसमें कुल व्यय में केन्द्र का हिस्सा 65 प्रतिशत है। एक अनुमान के अनुसार, इस अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए आगामी 5 वर्षो में 1.71 लाख करोड़ रूपए की आवश्यकता होगी। इनमें केन्द्रीय बजट में 15,000 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया है वहीं दूसरी ओर केन्द्र सरकार द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए पहले से राज्यों को दिए गए लगभग 10,000 करोड़ रूपए का व्यय नहीं हो पाया है इस अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए वित्त आयोग ने राज्यों को 25,000 करोड़ रूपए आवंटित किये है इसके बावजूद बिहार, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा जैसे राज्यों ने अतिरिक्त निधि की मांग की है। इस परियोजना की सफलता के लिए सभी हितधारकों की ओर से एक ईमानदार पहल की आवश्यकता है। सामने कई चुनौतियाँ भी है निम्न आय समूह वाले माता-पिता, परिवार की आय बढ़ाने के लिए अपने बच्चों को काम करने लिए भेजते हैं, इस शिक्षा के इतिहास में अब जो नई बात लिखी गई है उसे कई वर्षो पहले ही जानना चाहिए था। भारत सरकार के द्वारा सबको शिक्षा मिले इसके लिए कई तरह की योजनायें पहले से ही चल रही हैं। सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय शिक्षा अभियान, साक्षरता मिशन,

ऑपरेशन ब्लैक-बोर्ड आदि योजनाओं से शायद ही कोई अपरिचित हो। हमें इन योजनाओं पर भी सरसरी तौर पर एक नजर डाल लेनी चाहिए। पिछली योजनाओं का परीक्षण/मूल्यांकन किये बिना और उनके अनुभव से सीखे बिना इस कानून को पटरी पर लाना आसान न होगा।[7]

जहाँ तक भारत के ग्रामीण परिवेश का संबंध है, वहाँ मूलभूत सुविधाओं का हमेशा अभाव रहता है। खासकर चिकित्सा और शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा इन मूलभुत सुविधाओं के लिए पिछले सालों में लाखों व करोड़ों रूपए खर्च किये गए हैं पर समस्या वैसे की वैसी बनी हुई है। उचित चिकित्सा के अभाव में न जाने कितनी ही जानें रोज जाती हैं तथा शिक्षा के क्षेत्र में तो स्थिति और भयावह है। हर 30 बच्चों पर एक शिक्षक की सरकार की योजना शायद ही नजर आती है। कई जगह जो पूरा का पूरा विद्यालय एक शिक्षक के भरोसे चल रहा है। एक ही शिक्षक को पूरे विद्यालय की कमान संभालनी पर रही है। जिससे ऐसा लगता है कि वहाँ शिक्षा का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। शिक्षा की असामनता भी आज मुख्य समस्या बनी हुयी है। निजी विद्यालयों और सरकारी विद्यालयों में शिक्षा के स्तर में जमीन-आसमान का अंतर है। यही कारण है कि आज अभिभावक सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों को ज्यादा तवज्जो देते नजर आ रहें हैं।

आज हमारे देश में लगभग 22 करोड़ बच्चे विद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर रहें है, इतनी बड़ी संख्या तक उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पहुँचाना सरकार के लिए वाकई आसान नहीं है। कुछ केन्द्रीय विद्यालय इस कार्य में ईमानदारी से अवश्य लगे हुए हैं, पर इन विद्यालयों तक सिर्फ 10 लाख बच्चों की ही पहुँच रहे है। ऐसे में सरकार के सामने सिर्फ एक ही विकल्प बचता है कि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के सरकारी विद्यालयों की गुणवतत्ता बढ़ाई जाए पूर्ण रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की ही भरती की जाए। और समय-समय प्रशिक्षिकों को उचित प्रशिक्षण दिया जाये। केन्द्र सरकार इस कानून को पूर्णरूप से भँलीभाँति अपने बलबूते पर कभी नहीं कर सकती, जब तक उन्हें राज्य सरकार, लोकन कोमुनिटीज और पंचायत का पूरा सहयोग ना मिले राज्य सरकारों का यह फर्ज बनता है। कि जिन जगहों पर विद्यालय नहीं है वहाँ जल्द से जल्द विद्यालयों को खोला जाय। उनमें प्रर्याप्त शिक्षकों की भरती की जाए और गुणवत्ता-पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था की जाए वैसे कुछ वर्षो से प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में बच्चों की संख्या लगातर बढ़ते हुए दिखाया जा रहा है। पर सरकारी विद्यालयों के स्तर में आ रही गिरावट को रोके बिना सिर्फ विद्यालय बना देने से हमें यह सोचकर आराम से नहीं बैठना चाहिए कि अब यह सरकार का ही काम है, हमें देश को जागरूक नागरिक होने के नाते बच्चों को उनके मौलिक अधिकार दिलानें के लिए ईमानदारी से प्रयास करने चाहिए ताकि कल के देश के भविष्य इनके सामने हमें शार्मिन्दा ना होना पड़े।[8]

विश्व स्तर पर हमारा देश भारत सम्पन्न और प्रगतिशील माना जाता है। आज देश ने मंगल ग्रह पर जाने की कामयाबी हासिल की है। लेकिन इस पूरे प्रगतिशील दौर में आज भी देश में शिक्षा का स्तर अधिक चिंताजनक बना हुआ है। आज भले ही हमारे पास एक किलोमीटर के अंदर विद्यालय और पाठशालाएं मौजूद हों लेकिन शिक्षा का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। आज के दौर में भले ही हमनें ज्यादा से ज्यादा बच्चों को विद्यालय में दाखिला दिला दिया हो लेकिन यह आधारभूत अधिकार व सुविधायें अभी भी केवल कागजों पर ही है।

विद्यालयी शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के सिलसिले में जो कुछ प्रश्न उठाये जाते हैं वे है:-शिक्षकों की कमी/अनुपस्थिति, बच्चों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों की उदासीनता, उचित पाठयक्रम का अभाव, बच्चों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार, स्वच्छ जल का अभाव, घर से विद्यालयों की अधिक दूरी, शौचालयों का अभाव, विद्यालयों की मरम्मत का अभाव, मिड डे मील की खराब गुणवत्ता, संख्या से अधिक कक्षाओं में निर्धारित मानदंडों से अधिक भार, अध्यापन के पुराने तरीके।

परन्तु इन समस्याओं को अलग-अलग समस्याओं में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि इनकी जड़े सारी व्यवस्था में फैली हैं। इसलिए व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना जरूरी है। इसके लिए हमें विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था की मूल समस्याओं पर गौर करना होगा। पहली मूल समस्या है प्रवेश की कमी। आजादी के 70 साल बाद भी हमारे देश में लाखों बच्चे शिक्षा से दूर रह जाते है। पूरे देश में यह संख्या 30 प्रतिशत से कम ना होगी। वर्त्तमान सरकारी आंकड़ों के अनुसार कक्षा 10 तक आते-आते 61 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई छोड़े देते हैं प्रवेश की समस्या के समाधान के लिए सबसे पहला कार्य होना चाहिए-अतिरिक्त विद्यालयों का निर्माण, अतिरिक्त शिक्षकों की बहाली और अतिरिक्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का निर्माण। शिक्षा की दूसरी मूल समस्या है इसकी निम्न गुणवत्ता इसे बेहत्तर करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपाय है-न्यूनतम मानकों का निर्धारण कर उन्हें सभी विद्यालयों में लागू करना। हालांकि शिक्षा का अधिकार कानून की अनुसूची में कुछ मानक निर्धारित किये गए हैं परन्तु वो काफी नही है।

हमारी विद्यालय शिक्षा व्यवस्था में एक और समस्या असमानता और भेदभाव की है। देश में सामाजिक वर्गीकरण के साथ-साथ हमारे यहाँ विद्यालयों का भी वर्गीकरण है। जिसके धनी और विशिष्ट वर्ग के बच्चे ज्यादा फीस वाले अच्छे विद्यालयों में पढ़ते हैं और गरीब और निम्न वर्ग के बच्चे सामान्य और कम फीस वाले विद्यालय में पढ़ते हैं जिनकी संख्या कुल छात्रों का 80 प्रतिशत है। इसके चलते देश का सामाजिक विभाजन और बढ़ाता जा रहा है। सभी विद्यालयों में न्यूनतम मानक लागू करने से न केवल शिक्षा की गुणवता बढ सकता है। बल्कि शिक्षा व्यवस्था में मौजूद भेदभाव को मिटाने में भी मदद मिल सकता है। भेदभाव मिटाने का दूसरा उपाय है जिसके मुताबिक परोस के हर विद्यालय को उसके लिए निर्धारित पोषक क्षेत्र अथवा पड़ोस के सभी बच्चों को दाखिला देना होगा। परन्तु इसका भी शिक्षाधिकार विधेयक में

कोई प्रावधान नहीं है, बल्कि विद्यालयों के वर्तमान वर्गीकरण को कायम रखने की व्यवस्था है।[9]

प्रवेश एवं गुणवत्ता इन दोनों समस्याओं का मूल कारण धन का अभाव है। शिक्षा अधिकार विधेयक से संलग्न वित्तीय स्मरण पत्र में कहा गया है कि विधेयक को अमल में लाने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों का परिणाम निर्धारित करना फिलहाल संभव नहीं हैं यदि देखा जाये तो यह कथन गलत है। पिछले कुछ दस वर्षो में भारत के हर बच्चे को निशुल्क प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने में जो खर्च होगा उसको कई बार अनुमान लगाया जा चुका है। सन् 1999 में मजुमदार समिति ने बताया की इसके लिए अगले 10 वर्षो में 1,37,000 करोड़ अतिरिक्त रकम लगेगी। वर्ष 2005 में शिक्षा परामर्श बोर्ड के एक विशेषांग में अनुमान लगाया था कि इस पर 6 साल तक प्रतिवर्ष न्यूनतम 53,500 करोड़ रूपए और अधिकतम 73 हजार करोड़ रूपए का अतिरिक्त व्यय होगा। फिलहाल प्रारंभिक शिक्षा के लिए सर्व शिक्षा के माध्यम से धनराशि उपलब्ध करायी जाती है। दसवीं पंचवर्षीय योजना की तुलना में तकरीबन दोगुनी वृद्धि के बाद भी ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सर्व शिक्षा अभियान के लिए प्रतिवर्ष करीब 30,000 करोड़ रूपए का प्रावधान है। इस रकम से न तो देश के सभी बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश दिलवाया जा सकता है। और न ही गुणवत्ता में कोई विशेष परिवर्तन ही लाया जा सकता है। वर्त्तमान पंचवर्षीय योजना में भी जो धन उपलब्ध कराया गया है वह शिक्षा का अधिकार कानून के उद्देश्य को पुरा करने के लिहाज से काफी कम है।[10]

इन सभी सरकारी आंकड़ों से शिक्षा की कार्यशैली से आम जनता को तो भ्रमित किया जा सकता है, पर शिक्षा के लिए शिक्षा का अधिकार कानून का कार्यान्वयन होना जरूरी है। सिर्फ शिक्षा के मौलिक अधिकार का कानून बनाने और सरकारी आंकड़ों से शिक्षा नही मिल सकता है। सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को अब जड़ चेतन के साथ जुड़कर शुरूआत करनी होगी। आम जनता की भागीदारी के लिए मीडिया को भी आगे आना होगा। लोगों को जागरूक और प्रोत्साहित करना होगा। विद्यालयों में मूलभूत संसाधनों और आधारभूत सुविधाओं की कमी को दूर करना होगा। तभी शिक्षा का अधिकार कानून का उद्देश्य पुरा वो सफल हो पायेगा।

हालाँकि शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद से विद्यालयों की शिक्षा में सुधार करने के लिये सरकार गंभीर तो दिखाई दे रही है। परन्तु शिक्षा जगत से जुड़े विश्लेषकों को इस बात का शक है की इस कानून का वास्तविक लाभ उन बच्चों को मिल सकेगा, जिनके लिए यह कानून बनाया गया है। यह कानून सिर्फ कागजों तक ही सीमित न रह जाए इसके लिए निशुल्क एवं बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों को यथार्थ के धरातल पर उतारने के लिए बिहार सरकार सरकार ने बिहार राज्य बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा नियमावली 2011 अधिसूचित की है। इस नियमावली के कई प्रावधानों को लागू करने में प्राथमिक शिक्षा विभाग व्यवहारिक कठिनाईयाँ महसूस कर रहा है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अनुसूचि में दिए गए मानकों के अनुसार न तो विद्यालयों में पढ़ाई हो रही है और ना ही पर्याप्त शिक्षक हैं। नियमावली में प्रावधान है की स्थानीय प्राधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को जन्म से लेकर 14 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक के अभिलेखों का सर्वेक्षण के माध्यम से अनुरक्षण करेगा। इस प्रावधान का भी पालन नहीं हो पा रहा है। निजी विद्यालयों की 25 प्रतिशत सीटों पर अलाभकारी समूह और दुर्बल आय वर्ग के बच्चों को प्रवेश दिलाना भी विभाग के लिए असाध्य कार्य साबित हो रहा है। विद्यालयों में शिक्षकों की नियमित उपस्थिति और उनकी शिकायतों के निवारण के लिए भी उपर्युक्त प्रणाली विकसित नहीं की जा सकी है।[11]

प्रस्तुत शोध में शिक्षा का अधिकार कानून का क्रियान्वयन एवं इसका प्रभाव सरकारी विद्यालयों में देखने की कोशिश की गई है। शिक्षा के इस अधिकार को विद्यालयों में लागू करने में आने वाली समस्याओं तथा इसके प्रभाव को देखा जाएगा। इस अधिकार को लागू करने में 5 वर्षो का समय सुनिश्चित किया गया है। तथा इस समय अंतराल में इस शिक्षा के अधिकार को विद्यालय में लागू करना है ताकि इसका लाभ बच्चों को गुणात्मक रूप से मिल सके। इस शोधकार्य के अंतर्गत इसके रास्ते में आने वाली समस्याओं को देखा जाएगा और शोध के माध्यम से इन समस्याओं को उजागर कर आगे लाया जाएगा। साथ ही यह देखा जायेगा कि शिक्षा को अधिकार कानून का क्रियान्वयन एवं प्रभाव सरकारी विद्यालयों में किस हद तक हुआ है? यदि थोड़े शब्दों में कहे तो शोधार्थी द्वारा शोध के माध्यम से शिक्षा का अधिकार कानून के क्रियान्वयन एवं प्रभाव को सरकारी विद्यालयों में देखने की कोशिश की गई है। और साथ ही इसके समकक्ष आने वाली समस्याओं को देखा जायेगा। ताकि इसके नीति निर्माताओं को उसके आगे के क्रियान्वयन एवं नीति निर्माण में सहायता मिल सके। इससे स्थानीय प्राधिकारियों को भी इसके रास्ते में आने वाली समस्याओं की जानकारी हो सके और इनके माध्यम से इसकी जानकारी इसके नीति निर्माताओं तक पहुँच सके।

इस शोध में बिहार राज्य के मधेपुरा जिले के अंतर्गत आने वाले प्राथमिक, मध्य विद्यालयों का चयन किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया जायेगा की शिक्षा का अधि कार कानून लागू करने के लिए राज्य ने किस हद तक तथा किस प्रकार के प्रयास किये हैं। अगर सरकारी स्तर पर प्रयास हुए भी हैं तो वे किस हद तक कार्यान्वित हुये हैं? इन प्रयासों का परिणाम क्या रहा है? यह कानून किस हद तक अपने उद्देश्यों को पाने में सफल हो पाया है? यदि वह सफल हुआ है तो कितना और नहीं हो पाया है तो क्यों? वे कौन सी चुनौतियाँ है जो इस कानून को सफल होने देने में बाधा बनी हुई है। इन तमाम बातों का विश्लेषण व अध्ययन इस शोध का मूल उद्देश्य है।

अध्ययन का क्षेत्र

प्रस्तावित शोध का क्षेत्र निम्नांकित होगा:-

- मूल अधिकार और शिक्षा की सैद्धान्तिक व्याख्या।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा की स्थिति और नये कानून की आवश्यकता।
- शिक्षा व्यवस्था और विभिन्न संस्थाओं की भूमिका।
- नये कानून लागू होने के बाद आने वाले परिवर्तन की दिशा।
- मूल्यांकन

अध्ययन केन्द्र व निदर्शन:-

शिक्षा के क्षेत्र में कानून और संरचनात्मक आधार पर तो नई व्यवस्था स्थापित कर दी गई है, पर क्या नई व्यवस्था लागू करने मात्र से ही शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो जायेगा और लोकतांत्रिक उदारवादी जीवन मूल्यों को विकसित व निर्मित करने में सफलता मिल पायेगी? क्या इसके द्वारा हम लोकतांत्रिक नागरिक चरित्र का विकास कर पाने में सक्षम हो पायेंगे? क्या नया कानून शिक्षा के स्तर और शिक्षित नागरिक तैयार करने में सफल हो पायेगा और क्या इसके माध्यम से शिक्षा एक मूल्य के रूप में उभर पाया है?

संपूर्ण देश के साथ साथ मधेपुरा जिले में भी शिक्षा का अधिकार कानून एक अप्रैल 2010 से लागू है। शिक्षा का अधिकार कानून के अंतर्गत धारा 12, 21 तथा 29 जो कि संवैधानिक एवं व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं, इनके क्रियान्वयन की प्रभावशीलता का अध्ययन नहीं किया गया है। शिक्षा का अधिकार कानून के प्रावधानों के क्रियान्वयन के संदर्भ में अभी तक कोई भी शोध कार्य जिले में नहीं हुआ है। अत: अनुसंधानकर्ता ने इस महत्वपूर्ण विषय को अध्ययन के लिए चुना है।

प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन के बाद की स्थिति का अध्ययन है। जो समाज व राज्य के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों के लिए न केवल प्रेरणास्पद है वरन् निदानात्मक एवं सुधारात्मक भी है। शैक्षणिक क्षेत्र में अग्रणी मधेपुरा जिले में शिक्षा का अधिकार कानून लागू हुए 8 वर्ष बीत चुके है। ऐसे में स्कूली शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन का आकलन किया जाना प्रासंगिक है। शासन, सक्षम अधिकारीगण एवं समस्त हितधारकों के लिए यह जानने की आवश्यकता है कि इस महत्वाकांक्षी कानून का जिले में क्रियान्वयन किस सीमा तक हुआ? इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का लाभ सभी 6-14 आयु वर्ग के बच्चों, अभिभावकों, दुर्बल और वंचित वर्ग के बच्चों को मिल रहा हैं अथवा नहीं? यह कानून क्या वास्तव में प्रारंभिक शिक्षा की दशा एवं दिशा बदलने में समर्थ है? क्या जिले के वंचित एवं अलाभित समूह तथा दुर्बल के बच्चे 25 प्रतिशत आरक्षित सीट का वास्तविक लाभ उठा पा रहे हैं? गुणवत्ता मूलक शिक्षा देने की दिशा में जिला कहाँ तक सफल रहा? दूसरे शब्दों में सतत् एवं समग्र मूल्यांकन की प्रभावशीलता कितनी है? ग्रामीण एवं शहरी परिवेश, इस अधिनियम से कितना परिचत है? शिक्षा के अधिकार अधिनियम से संबंधित ऐसे कई प्रश्नों के उत्तर हमें इस शोध अध्ययन से प्राप्त हुए।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम से संबंधित इस अध्ययन से प्राप्त आंकड़े शिक्षक, विद्यार्थी, समुदाय, समाज, अधिकारीगण, प्रशासन को शिक्षा का अधिकार कानून के क्रियान्वयन से जुड़ी समस्याओं के निराकरण में, इसके क्रियान्वयन के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करने एवं उपलब्धियों को बढ़ाने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होंगी।

इन्हीं बातों को जानने के लिए अध्ययन के केन्द्र के रूप में मधेपुरा जिले का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा के अधिकार कानून के माध्यम से समाज में आ रहें परिवर्तन व निरंतरता व इस संदर्भ में उभर रही नई प्रवृतियों को समझने का प्रयास किया जायेगा। अत: इसमें निदर्श के रूप में दैव निर्दशन, विधि द्वारा 200 शिक्षकों व अभिभावकों को न्यादर्श के रूप में चयन किया जायेगा।

निष्कर्ष

शिक्षा का अर्थ बहुत से विद्वानों के द्वारा शिक्षण से मान लिया जाता है। जो केवल विद्यालय के परिधि में ही कार्यान्वित होता है। परन्तु शिक्षा का अर्थ इतना सीमित नहीं है। शिक्षा एक व्यापक अवधारणा मानी जाती है। यह मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। जिस समय व्यक्ति का जन्म होता है उस समय से वह अपने माता-पिता तथा अन्य सहयोगियों के साथ शिक्षा प्राप्त करता है। उसके उपरांत देखते ही देखते वह समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करके आगे की शिक्षा की ओर अग्रसरित हो जाता है। यह देखा जाता है। कि बालक को शिक्षा प्राप्ति हेतु विशेष रूप से उसी समय प्रोत्साहित किया जाता है जिस समय उसके जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है।

शिक्षा के बिना मनुष्य का शारीरिक विकास तो संभव है, परन्तु उसका मानसिक विकास संभव नहीं है। मनुष्य को एक मनुष्य बनने, जिससे वह समाज के अनुकूल कार्य करने तथा समुचित रूप से समायोजन करने के लायक बने तथा मानव प्रगतिशील, सजग एवं प्रबुद्ध रहें, जिससे मनुष्य का सामाजिक, संवेगात्मक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास हो सके, शिक्षा के बिना संभव नहीं है। शिक्षा मनुष्य की भावी संभावनाओं की पूर्ति के लिए अंतर्निहित क्षमता का विकास करती है जो मानसिक स्वास्थ्य एवं आंतरिक शक्तियों का समन्वित विकास कर आचरण में ऐसा सुधार एवं परिवर्तन ला देती है जिससे वह किसी भी परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होता है।

शिक्षा शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द ऐजुकेशन का हिन्दी रूपातंरण है जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द श्एडूकेटमश से मानी जाती है। इसका अर्थ है-शिक्षित करना। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ

विभिन्न तथ्यों को सिखाना तथा किसी विषय-वस्तु का ज्ञान किसी अन्य व्यक्ति को प्रदान किए जाने से माना जा सकता है। जिसके आधार पर व्यक्ति के द्वारा भलीभांति विभिन्न तथ्यों के संबंध में विकसित हुआ जाता है। एक शिक्षित व्यक्ति के द्वारा ही जीवन में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा सभी प्रकार के समस्याओं का निराकरण करने की ओर बल दिया जाता है। उस समय वह भलीभांति उन्नति की ओर विकसित हो जाता है। यही कारण है कि आज शिक्षा के स्तर को उन्नत करने की ओर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है।

संदर्भ-सूची

1. गौतम (डा0) नीरज कुमार, शिक्षा मानव विकास का आधार स्तंभ, पेज नं0-10, कुरूक्षेत्र सितम्बर-2010
2. प्रांजलधर, शिक्षा की भूमिका और हमारा देश, पेज नं0-18, कुरूक्षेत्र, सितम्बर-2007
3. पाण्डेय, जे0 एन0: भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2005, पृष्ठ-218
4. भारत प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2016
5. फारूकी उमर, शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार, पेज नं0-3, कुरूक्षेत्र-मई-2011
6. फरीद अब्दुल (2014), इशुस एण्ड चलेंचेंस इन इम्प्लीमेंटशन ऑफ आर टीई एक्ट
7. मलहौत्रा, ममता (2014): शिक्षा का अधिकार (RTE Act), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. गुप्ता एस0 पी0 गुप्ता अलका: आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2005
9. राय, अखिल कुमार (2009): 'शिक्षा व्यवस्था में भय का चेहरा', परमिता, वारणसी

छत्तीसगढ़ का कंकाली मठ और नागा साधुओं की परंपरा

डॉ० अलका यतीन्द्र यादव

(सहायक प्राध्यापक) पी.एन. एस. महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

संस्कृत में 'साधु' शब्द से तात्पर्य है 'सज्जन व्यक्ति'। लघु सिद्धांत कौमुदी में साधु का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि ''साध्नोंति परं कार्यमिति साधु'' अर्थात जो दूसरे का कार्य करें वह साधु है। साधु का एक अर्थ उत्तम भी होता है। ऐसे व्यक्ति जिसने छः विकार - काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मत्सर का त्याग कर दिया हो साधु कहलाता है। इतिहास साक्षी है कि छत्तीसगढ़ की भूमि अनादि काल से ही सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपरा का कें रही है। शैव धर्म छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक प्राचीन धर्म माना जाता है। इस अंचल में शैव धर्म सर्वाधिक लोकप्रिय तथा व्यापक स्वरूप में दिखाई देता है। वर्तमान में रायपुर छत्तीसगढ़ की राजधानी है। रायपुर धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिकता का केंद्र रही है। प्राचीन काल और राजा महराजाओं के शासन काल का यदि अध्यन करते हैं तो कई धार्मिक एवं पौराणिक महत्व के अनेक स्थल हमारे अंचल में देखने को मिल जाते हैं और यहीं प्रमाण हमारी धार्मिक आस्था को और प्रबल करने में सहायक होते है, इनमें मठ, मंदिर और किले के साक्ष्य के रूप में आज भी हमारे पथ प्रदर्शन करते हैं।

बीज शब्दः साधु संत, मठ, योग, साधना, तपस्या, शासन काल, ऋषि मुनि, अखाड़ा।

प्रस्तवना

भारत में प्राचीन काल से ही साधु-संतों, महात्माओं का विशेष महत्व रहा है। साधु संत समाज के पथ-प्रदर्शक माने जाते रहे हैं, जो अपने ज्ञान और साधना के माध्यम से हमेशा ही समाज का कल्याण करते आए हैं। आज भी हमें किसी कुंभ मेले या तीर्थ स्थलों पर कई साधु देखने को मिल जाते हैं। धर्म-कर्म में लीन रहने वालों को साधु, सन्यासी, ऋषि मुनि आदि नामों से पुकारा जाता है। ये लोग हमेशा योग, साधना, तपस्या के द्वारा अपने ज्ञान को परिमार्जित करते हैं।

संस्कृत में 'साधु' शब्द से तात्पर्य है 'सज्जन व्यक्ति'। लघु सिद्धांत कौमुदी में साधु का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि ''साध्नोंति परं कार्यमिति साधु'' अर्थात जो दूसरे का कार्य करें वह साधु है। साधु का एक अर्थ उत्तम भी होता है। ऐसे व्यक्ति जिसने छः विकार - काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मत्सर का त्याग कर दिया हो साधु कहलाता है। किसी विषय विशेष की साधना करने वाले व्यक्ति को भी साधु कहा जाता है। प्राचीन काल में कई व्यक्ति ऐसे भी हुआ करते थे जो समाज से हटकर या कई बार समाज में ही रहकर किसी विषय की साधना करते थे और उस विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते थे। विषय को साधने या उसकी साधना करने के कारण ही उन्हें साधु कहा गया।

इतिहास गवाह है - आस्था, विश्वास, परंपरा और संस्कृति का गढ़ है छत्तीसगढ़। यह प्राकृतिक सौंदर्य से घिरा हुआ प्रदेश है, यहां की नदियां एवं झरनों की कल-कल करती धाराएं, हर किसी का मन मोह लेती है। छत्तीसगढ़ एक शांत एवं वनांचल प्रदेश के रूप में पहचाना जाता है। यही कारण है कि यहां सनातनी साधु-महात्माओं ने अपना मठ व आश्रम बनाया और समाज के कल्याण का कार्य करते रहे। छत्तीसगढ़ के मंदिरों व मठों की परंपरा में नागा साधुओं का भी विशिष्ट योगदान रहा है। नागा का मतलब है, जो अपनी बात पर अडिग रहे, देश और समाज की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर दें, परिवार और रिश्ते-नातों को भूलाकर ईश्वर की सेवा और देश की रक्षा करें। जब-जब देश व समाज पर खतरा मंडराया है तब-तब अखाड़े एवं मठों के साधुओं ने ईश्वर की उपासना के साथ-साथ शस्त्र उठाकर देश और समाज की रक्षा के लिए संघर्ष करते रहे हैं, मठों और मंदिरों की रक्षा के लिए नागा साधुओं ने कालांतरों में कई लड़ा इयां लड़ी है। प्राचीन काल में नागा साधुओं को अखाड़ों में एक योद्धा की तरह तैयार किया जाता था। नागा साधु सात प्रमुख अखाड़ों से संबंध रखते हैं। जिनमें पंचजना अखाड़ा, पंचशंभू अखाड़ा, अमान अखाड़ा, अग्नि अखाड़ा, निर्माण अखाड़ा, महानिर्माणी अखाड़ा, निरंजनी अखाड़ा प्रमुख है।

श्री श्री 108 चौतन्यपुरी महाराज (जूना अखाड़ा) से प्राप्त जानकारी अनुसार अखाड़े में शामिल होने के लिए मनुष्य को मन शुद्ध करके गुरु की सेवा में आसक्त होना पड़ता है। उन्हें समाज में मौजूद बुराइयों से दूर रहकर ईश्वर की भक्ति में लीन होना पड़ता है। तभी वह अखाड़े में सम्मिलित होकर गुरु और अखाड़े की सेवा कर सकता है। गुरु की सेवा पाने के लिए व्यक्ति को संसार के सभी सुखों का त्याग करना होता है। जिससे वह थोड़े संसाधन में अपना जीवन गुजार सके। नागा साधु बनने का मार्ग बहुत कठिन है। नागा साधुओं को अस्त्र-शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती है ताकि वे समयानुसार उसका प्रयोग कर सके। साधु बनने का मार्ग और नियम कठिन होने के कारण बहुत से लोग बीच में

ही पथ छोड़ दते` हैं। जो व्यक्ति अंत तक टिका रहता है, वही व्यक्ति नागा साधु बनता है। नागा साधु कभी भी किसी से कुछ मांगते नहीं है। श्री श्री 108 चौतन्यपुरी जी ने 12 वर्ष की अवस्था में गृह ग्राम सिधि (म.प्र.) त्यागकर अखाड़े में शामिल होने चले गये थे।

नागा साधु देश और राज्य की विभाजन रेखा को नहीं मानते। उनका मानना है कि यह विभाजन तो मनुष्य के द्वारा किया गया है। नागा साधुओं के लिए संपूर्ण आकाश और पृथ्वी ही उनकी छत और फर्श है। इसी विचारधारा के साथ नागा साधु किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते हैं। यहीं अस्थिरता उनके मन, मस्तिष्क को सदैव जागृत रखती है और सनातन धर्म की रक्षा के प्रति हमेशा समर्पण की भावना से सराबोर रहते हैं। नागा साधुओं के विषय में मेरा विचार था कि नागा साधु अपने में ही मशगूल रहने वाले अक्खड़ स्वभाव के हठी बाबा होते हैं, परंतु वास्तविकता श्री श्री 108 चौतन्यपुरी (जूना अखाड़ा) से मिलने के बाद काफी विपरीत लगी। नागा साधु सदाचारी, तपस्वी व विद्वान होते हैं। यह बात अलग है कि जब-जब देश और समाज पर संकट आया है, तब-तब उन्होंने अपना रौ रूप धारण करके हाथ में भाला उठाया है।

आवाहन अखाड़ा के महामंडलेश्वर स्वामी श्री श्री 1008 श्री डॉ. करूणानंद गिरी जी महराज ने कहा अखाड़े का उद्देश्य सदैव से ही सनातन धर्म की रक्षा करना रहा है। प्राचीन और वर्तमान समय की परिस्थितियों में बदलाव अवश्य आया है। प्राचीन समय की जो परिस्थितियां थी, वो धर्म की मांग थी वह अलग थी और जो वर्तमान समय की मांग है वह अलग है। परंतु साधु-संत प्राचीन काल में भी सनातन धर्म की रक्षा के लिए तत्पर था और वर्तमान समय में भी सनातन धर्म की रक्षा के लिए तत्पर है। वर्तमान समय में भी वे इन्ही उद्देश्यों को लेकर कार्य कर रहे हैं। उनका मानना है कि जहां भी विधर्म होगा, वहां साधु संतों का अखाड़ा मौजूद रहेगा।

छः सौ वर्ष के पहले से उत्तराखंड के बद्रिका आश्रम में नागा साधु सन्यासियों का तपोस्थलि है। यह नागा साधु सन्यासि पूरे भारत में भ्रमण करते रहते हैं। बताया जाता है कि इसी काल में कुछ नागा साधु सन्यासियों का जत्था दक्षिण भारत के भ्रमण के लिए निकला था।

छत्तीसगढ़ के वनांचल क्षेत्र ने नागा साधुओं को ठहरने पर विवश कर दिया, दशनाम गोस्वामी संप्रदाय के बद्रिका आश्रम जोशी मठ के नागा साधु महंत हीरागिरि यहां पर अपने शिष्यों के साथ अखाड़े और मठ निर्माण कार्य की प्राथमिक प्रक्रिया पूर्ण की, जिसे कंकाली मठ के नाम से जाना जाता है, कंकाली मठ तक पहुंचने के लिए रायपुर जिले के रेलवे स्टेशन से महज 03 किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ती है। कंकाली मठ के नामकरण के पीछे मान्यता है कि नागा साधुओं द्वारा घनघोर जंगल में शमशान के बीच में मठ का निर्माण किया था। यहां वे मां काली की पूजा-अर्चना करते थे, कंकालों के बीच मां काली की पूजा-अर्चना होने के कारण इस मठ का नाम 'कंकाली मठ' पड़ा।

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि 13 वीं शताब्दी से लेकर 17 वीं शताब्दी तक मठों की पूजा होती थी। यह पूजा नागा साधुओं द्वारा ही संपन्न होती थी। 17 वीं शताब्दी में नए मंदिर का निर्माण किया गया जिसके पश्चात कंकाली माता की प्रतिमा को मठ से स्थानांतरित करके मंदिर में स्थापित किया गया। आज भी उसी मठ में नागा साधुओं के अस्त्र-शस्त्र के साथ वस्ष्त्र भी रखे हुए हैं, जो 1000 साल से भी अधिक पुराने हैं जिसमें तलवार, भाला, कुल्हाड़ी, चाकू, ढाल और तीर है। बद्रिका मठ से आए नागा साधु तांत्रिक पूजा किया करते थे। ये सभी हथियार इनके योद्धा होने के प्रमाण तो है ही, साथ ही इनके बलिष्ठ शरीर का भी। इन अस्त्र-शस्त्र को लेकर यह भी मान्यता है कि जब भगवान राम और रावण के बीच युद्ध हो रहा था तब मां कंकाली ने ही युद्ध के मैदान में प्रकट होकर भगवान राम को अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए थे। विजयादशमी के दिन भगवान राम ने रावण का वध किया था। इसी करण विजयादशमी के दिन कंकाली मठ के कपाट भक्तजन के लिए खोल दिया जाता हैं, ताकि भक्तजन इन शस्त्रों के दर्शन कर सके।

मान्यता है की मां कंकाली दशहरा के दिन वापस मठ में आती है। रात्रि को पूजा के बाद फिर एक साल के लिए इस मठ का द्वार बंद कर दिया जाता है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार नागा सन्यासियों में देवी भक्त महंत होते थे। इन्ही महंतों की पीढ़ियों द्वारा आज भी मंदिर का देखरेख व संचालन किया जाता है। इन महंतो द्वारा धार्मिक व पौराणिक परंपरा के बारे में विस्तृत जानकारी भी मिलती है। मां कंकाली मंदिर में सेवा देने वाले महंत -

1. महंत हीरागिरी गोस्वामी
2. महंत कृपाल गिरी गोस्वामी
3. महंत रामगिरी गोस्वामी
4. महंत सुजानगिरी गोस्वामी
5. महंत अयोध्या गिरी गोस्वामी
6. महंत सुभान गिरी गोस्वामी
7. महंत संतोष गिरी गोस्वामी
8. महंत शंकर गिरी गोस्वामी
9. महंत सोमार गिरी गोस्वामी
10. महंत शंभु गिरी गोस्वामी
11. महंत रामेश्वर गिरी गोस्वामी
12. वर्तमान में महंत हरभूषण गिरी गोस्वामी।

मठ और मंदिर की व्यवस्था के लिए चार गांव पवनी, खौना, तर्रा और मंगसा दान में दिए गए थे। इन्ही गांव के आय से ही मठ और मंदिरों की व्यवस्था की जाती थी। महंत शंकर गिरी ने अपने शिष्य सोमार गिरी को सन्यासी जीवन से गृहस्थ में प्रवेश कराया। इसी समय से गृहस्थ परंपरा का प्रारंभ हुआ, जो आज तक चल रहा है।

ब्राहमण पारा स्थित छत्तीसगढ़ का कंकाली मठ नागा साधुओं के दिव्य प्रभाव से ही संचालित हुआ जो वर्तमान में संचालित हो रहा है। नागा साधुओं का प्रमुख शपथ है कि वे सभी मनुष्यों पर करुणा, दया और क्षमा करेंगे। और यही नागा साधुओं का मुख्य धर्म है। नागा साधु सनातन संस्कृति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होने का भी संकल्प लेते हैं। इसी कारण नागा साधुओं के दर्शन को शिव दर्शन के समान माना गया है। नागा साधुओं के बारे में कहा जाता है कि 'भेदो ना भासते अभेदो भासते सर्वनाम'। अर्थात अभेद की स्थिति में पहुंचा हुआ साधु सब के हितों की ही सोचता है। मंदिर निर्माण का श्रेय कृपाल गिरी महाराज को जाता है।

वर्तमान में भी इस मंदिर की देखरेख गिरी परिवार के लोग ही करते है। अभी कंकाली मठ के महंत श्री हरभूषण गिरी गोस्वामी जी है। कंकाली माता के मंदिर में समय-समय पर कुछ पर्व एवं उत्सव भी मनाए जाते हैं। जो मूलतः सनातन परंपरा पर ही आधारित होते हैं। जैसे - महाशिवरात्रि, समाधि स्थापना दिवस, कंकाली पूजा, नवरात्रि, दशहरा आदि। नवरात्र के दिनों में घर-घर घटों में ज्वांरा बोए जाते हैं और उन ज्वांरों को रायपुर शहर के लोग कंकाली तालाब में ही विसर्जन करते हैं। मन्नत धारी श्रद्धालु अपने पुरे शरीर पर नुकीले सांग - बाना धारण कर आते हैं और तालाब के पानी को शरीर में छिड़कते हैं। ऐसी मान्यता है कि शरीर में चर्म रोग हो या खुजली से परेशान हो तो तालाब में डुबकी लगाने से चर्म रोग से राहत मिलती है। सिर्फ छत्तीसगढ़ ही नही बल्कि अन्य राज्यों से भी लोग इस तालाब में नहाने आते हैं इसके अलावा इस तालाब के पानी में कई प्रकार के औषधिय गुण विद्यमान है। तालाब की खुदाई के बाद यहां कई कंकाल मिले इस वजह से तालाब का नाम ककांली तालाब पड़ा।

एक मान्यता यह भी है कि जिन नागा साधुओं ने कंकाली माता मंदिर की स्थापना की थी उन्होंने ही यहां शिवलिंग की भी स्थापना की थी। अचानक ऐसा चमत्कार हुआ कि धरती से पानी की धारा फूट पड़ी और पूरा शिव मंदिर पानी में डूब गया। तथा इस स्थान ने एक तालाब का रूप ले लिया। देश आजाद होने के बाद सबसे पहले 1965 में तालाब की सफाई कराई गई। तब रायपुर शहर के लोगों ने पत्थर के शिवलिंग (आशीष शर्मा पुजारी कंकाली मठ से प्राप्त जानकारी) का पहली बार दर्शन किया। तालाब फिर से भर गया, इसके बाद सन् 1975, 1999 और फिर पुनः 2013 में तालाब की सफाई की गई। वर्तमान में तालाब पानी से लबालब भरा हुआ है। मंदिर का सिर्फ गुंबद ही दिखाई पड़ता है। जब छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में गर्मी पड़ती है तो इस समय सभी नदी, तालाब सूखने लगते हैं तब भी यह चमत्कारी कंकाली तालाब जल से सराबोर रहता है। इसी कारण ज्यादातर लोग इस तालाब में डूबे शिवलिंग के दर्शन से वंचित रह जाते हैं। भगवान शिवजी की पूजा जलाभिषेक से की जाती है लेकिन यहां पर भगवान स्वयं जल समाधि लिए हुए हैं। सदियों से कंकाली माता की पूजा भगवान शिव से पहले की जाती है, इसके बाद ही तालाब के उपर से भगवान शिव की आराधना की जाती है।

मठ के परिसर में मेरी मुलाकात महंत श्री हरभूषण गिरी से हुई जो कि नागा गृहस्थ समुदाय की चौथी पीढ़ी है, उन्होंने बताया कि जप, तप के बाद नागा साधु आम आदमी नहीं रह जाते, इसलिए उनके शव को सिद्ध योग मुद्रा में बैठाकर भू-समाधि दी जाती है, इसके बाद इनके समाधि स्थल को पूजा जाता है। आज भी समाधियां कंकाली मठ में मौजूद है तथा उनके ऊपर एक-एक शिवलिंग स्थापित है। महंत कृपाल गिरी जी महाराज की पवित्र समाधि आज भी कंकाली मठ में देख सकते हैं, जो श्रद्धालुओं को अपनी ओर बरबस ही खींच लेती है। किवदंती के अनुसार कंकाली देवी ने महंत कृपाल गिरी महाराज को साक्षात कन्या रूप में दर्शन दिया, लेकिन महंत कृपाल गिरी महाराज उनको पहचान न सके, उनका उपहास करने लगे जिसके फलस्वरूप कन्या रूपी देवी अदृश्य हो गई तब आत्मग्लानि से महंत कृपाल गिरी महाराज ने मंदिर परिसर में ही जीवित समाधि ले ली, समाधि में भक्तों के लिए पूजा अर्चना की विशेष परंपरा प्रचलन में है, भक्त सहर्ष इन परंपराओं को अपनाकर पूजा अर्चना करते हैं।

निष्कर्ष

इतिहास साक्षी है कि छत्तीसगढ़ की भूमि अनादि काल से ही सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपरा का कें रही है। शैव धर्म छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक प्राचीन धर्म माना जाता है। इस अंचल में शैव धर्म सर्वाधिक लोकप्रिय तथा व्यापक स्वरूप में दिखाई देता है। वर्तमान में रायपुर छत्तीसगढ़ की राजधानी है। रायपुर धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिकता का केंद्र रही है। प्राचीन काल और राजा महराजाओं के शासन काल का यदि अध्यन करते हैं तो कई धार्मिक एवं पौराणिक महत्व के अनेक स्थल हमारे अंचल में देखने को मिल जाते हैं और यहीं प्रमाण हमारी धार्मिक आस्था को और प्रबल करने में सहायक होते है, इनमें मठ, मंदिर और किले के साक्ष्य के रूप में आज भी हमारे पथ प्रदर्शन करते हैं। सनातन धर्म रक्षक नागा सन्यासी और इनकी परंपरा को प्रणाम। शोध सर्वेक्षण दिनांक, स्थान व नाम -

साक्षात्कार

1. दिनांक 23.04.2023 रायपुर (छ.ग.)
   नाम - श्री गजेंद्र गिरी गोस्वामी (नागा संप्रदाय)
2. दिनांक 10.05.2023, रायपुर (छ.ग.)
   नाम - आशीष शर्मा कंकाली मठ (पुजारी)
3. दिनांक 18.06.2023, रायपुर (छ.ग.)
   नाम - सर्वाकार महंत हरभूषण गिरी गोस्वामी श्री कंकाली देवी मंदिर
4. दिनांक 16.07.2023, भोजपुर (म.प्र.)
   नाम - महंत श्री बाबू भारती
5. दिनांक 17.08.2023, बिलासपुर (छ.ग.)
   नाम - श्री श्री 108 चौतन्यपुरी (नागा साधु जूना अखाड़ा)
6. दिनांक 17.08.2023, बिलासपुर (छ.ग.)
   नाम - महामण्लेश्वर स्वामी श्री श्री 1008 श्री डॉ. कृष्णानंद गिरी जी महराज, (आवाहन अखाड़ा)

शिक्षित वर्ग तथा निर्धन वर्ग पर विश्व बैंक के कल्याण योजना का समाजशास्त्रीय प्रभाव

अंशु प्रिया

शोध-छात्रा समाजशास्त्र विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

पूर्व में यह अवधारणा रही है कि गरीबी में जीवनयापन कर रहे लोगों को सरकार द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा और ऐसी ही अन्य मूलभूत सुविधाएँ निशुल्क उपलब्ध कराई जाती है। तेंदुलकर समिति ने अपनी रिपोर्ट में देश की गरीब आबादी द्वारा स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में निजी संस्थानों पर किये जाने वाले खर्च को ध्यान में रखते हुए संशोधित गरीबी रेखा जारी की, समिति द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा विश्व बैंक द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा से समान ही है। गौरतलब है कि विश्व बैंक द्वारा निर्धारित यह गरीबी रेखा निम्न आय वर्ग की सूची में शामिल देशों के लिये निर्धारित की गई थी, वर्ष 2009 में भारत निम्न आय वर्ग से निम्न-मध्यम आय वर्ग वाले देशों की सूची में शामिल हो गया। निम्न-मध्यम आय वर्ग में शामिल होने के बाद तेंदुलकर समिति द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा को अब चरम गरीबी के रूप में परिभाषित किया जाता है, साथ ही विशेषज्ञों के अनुसार, समय के साथ इस गरीबी रेखा की उपयोगिता सीमित हुई है।

गरीबी के प्रमुख कारण

- निम्न पूंजी निर्माण
- आधारभूत संरचनाओं का अभाव
- मांग का अभाव
- जनसंख्या का दबाव
- सामाजिकध्कल्याण व्यवस्था का अभाव
- वर्तमान चुनौतियाँरू

असमानता पिछले दो दशकों में भारत के सामाजिक-आर्थिक परिवेश में बड़े बदलाव देखने को मिले हैं, वर्ष 2009 में निम्न मध्यम आय वर्ग में पहुँचने के बाद अगले 5-10 वर्षों में भारत मध्यम आय वर्ग में पहुँच सकता है। हालाँकि इसी आर्थिक स्तर पर विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत की स्थिति कुछ मामलों में भिन्न है। उदाहरण के लिये समान आय वाले देशों की तुलना में भारत में ग्रामीण आबादी का अनुपात बहुत अधिक है, ऐसे में इसे शहरों के विकास या शहरी आबादी के जीवनस्तर में सुधार के आधार पर ही नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार भारत में कृषि पर आश्रित लोगों की संख्या बहुत अधिक है, गौरतलब है कि कृषि क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की तुलना में जोखिम और अस्थिरता अधिक होती है। 'आय का जोखिम' और ग्रामीण तथा क्षेत्रों में सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की पहुँच में अंतर भी एक बड़ी चुनौती है। असंगठित क्षेत्ररू भारत में कामगारों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्र से जुड़ा हुआ है, असंगठित भारतीय आर्थिक क्षेत्र की एक चुनौती है। कृषि का अधिकांश हिस्सा असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत आता है। उदाहरण के लिये- ज्यादातर मामलों में कृषि कार्यों में शमिल लोग दूसरों की भूमि पर मजदूरी करते हैं और स्थानीय अधिकारियों के पास ऐसे लोगों का कोई प्रमाणिक डेटा उपलब्ध नहीं होता है, जिसके कारण सरकार की अधिकांश योजनाओं का लाभ ऐसे लोगों तक नहीं पहुँच पाता है। भारत सरकार द्वारा भी असंगठित क्षेत्र और समायोजित विकास पर विशेष बल दिया जाता है, परंतु इन क्षेत्रों में अभी भी अपेक्षित सुधार देखने को नहीं मिला है। कोविड-19 की महामारी के कारण वैश्विक स्तर पर बेरोजगारी के मामलों में अभूतपूर्व वृद्धि देखी गई है और यदि बेरोजगारी की यह स्थिति लंबे समय तक जारी रहती है तो इससे गरीबी में भी व्यापक वृद्धि होगी। आँकड़ों का अभावरू हाल ही में विश्व बैंक ने भारत सरकार द्वारा वर्ष 2017-18 की घरेलू उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण रिपोर्ट न जारी किये जाने के संदर्भ में अपनी चिंता व्यक्त की थी। गौरतलब है कि केंद्र सरकार द्वारा इस सर्वेक्षण के डेटा की गुणवत्ता से जुड़ी आशंकाओं को लेकर रिपोर्ट को न जारी करने का निर्णय लिया था।बहुआयामी गरीबी बहुआयामी गरीबी के तहत चार क्षेत्रों (शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन स्तर, आवास की गुणवत्ता) 38 संकेतांकों के आधार पर आँकड़ों की समीक्षा की जाती है। वर्तमान में बहुआयामी गरीबी के मामले में भारत 0.123 अंकों के साथ विश्व के 107 देशों में से 62वें स्थान पर है। गौरतलब है कि इसके तहत विभिन्न पैमानों देशों के प्रदर्शन की समीक्षा कर उन्हें 0 और 1 के बीच अंक प्रदान किये जाते हैं।

व्यावसायिक गतिशीलता सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक है। इस गतिशीलता का निर्धारण स्वत: रोजगार कार्यक्रम से निर्धारित होता है। व्यवसाय न केवल व्यक्ति के जीवनयापन के लिए अपितु उसके सामाजिक पद व प्रतिष्ठा के लिए भी महत्वपूर्ण होता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के क्रियाशील समय का अधिकांश भाग किसी न किसी व्यावसायिक क्रिया से जुड़ा होता है। व्यवसाय व्यक्ति की आय का प्रधान स्रोत होने के साथ ही आय

की मात्रा का निर्धारण करता है। व्यवसाय तो व्यक्ति के जीवन-यापन का साधन होता है तो दूसरी तरफ अप्रत्यक्ष रूप सं उसके सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति को निर्धारित करता है।

पूर्ववर्ती शोध सर्वेक्षण में यह पाया गया कि अनेक समाज वैज्ञानिकों ने व्यक्ति के जीवन में व्यवसाय के महत्व व आकांक्षाओं का अध्ययन किया हैं इस सन्दर्भ में ह्यूज, मैकाइवर तथा पेज, डिसूजा शर्मा, गोयल, बिताई, ब्रून, मर्फी एण्ड मैरिल तथा पाण्डेय का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ह्यूज के अनुसार 'व्यक्ति का कार्य उसकी जीवनशैली को उसी स्थिति तक प्रतिबिम्बित करता है, जिस स्थिति तक उसके सामाजिक अस्तित्व व तादात्मीकरण व सामंजस्य बनाता है।' (ह्यूज, 1958:7)। गोयल के अनुसार, ''व्यवसाय की प्रकृति तथा रूप, व्यक्ति के मूल्यों, विचारों तथा जीवन के प्रति आकांक्षाओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है।'' (गोयल, 1968:208)। बित्ताई ने व्यवसाय को समाज में व्यक्ति के शक्ति, पद व सम्मान का सूचक बताया है (बित्ताई, 1969:79)। शर्मा ने व्यवसाय को समाज में व्यक्ति की समस्त आर्थिक-सामाजिक इच्छाओं का समन्वित रूप माना है। (शर्मा, 1967:12)। समाज में व्यक्ति की पहचान उसकी इच्छाओं व आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्नों के आधार पर की जाती है। समाज में उसका तादात्मीकरण उसी के अनुसार होता है। इस प्रकार उन आकांक्षाओं के परिणामस्वरूप व्यक्ति के उच्च व्यवसाय में अपने आपको प्रतिष्ठित कर पाना उर्ध्व सामाजिक गतिशीलता को प्रदर्शित करता है (गोयल, 1973:17)। व्यावसायिक आकांक्षायें व्यक्ति के सामाजिक मूल्यों व मान्यताओं को निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। समाज में व्यक्ति दूसरे व्यवसाय व सम्बन्धित क्रियाओं के प्रति जो धारणा बनाता है, वह उसके भिन्न-भिन्न व्यावसायिक आकांक्षाएं एवं उसकी उपलब्धियां उसकी पूर्वाभिमुखता, जो आधुनिक समाज को एक अंग है, को भी निर्धारित करती हैं (मेक्लेण्ड, 1961:75)।

परम्परागत भारतीय ग्रामीण संरचना में लोगों के व्यवसाय निर्धारण में जाति समुदाय का विशेष महत्व रहा है। जाति विशेष में जन्म के साथ उसके व्यवसाय को निश्चित मान लिया जाता था। लेकिन आधुनिक समाज-व्यवस्था के ग्रामीण समुदाय में ऐसी मान्यताएँ कमजोर होती जा रही हैं। अब लोगों की व्यावसायिक सामाजिक आकांक्षायें काफी गतिशील हो गई हैं। प्राचीन मान्यताओं के अन्तर्गत बोर्गेल के अनुसार- कितना भी निम्न स्तर का व्यवसाय क्यों न हो, परम्परागत रूप से जातीय व्यवस्था के अन्तर्गत लोग उसे अपनाना प्रतिष्ठा का प्रतीक मानते है (बोर्गेल, 1971:20)। परन्तु ड्यूमा के अनुसार- यद्यपि जाति तथा व्यवसाय में निश्चित सम्बन्ध होता है (ड्यूमा, 1966:175)। अब व्यवसाय का सम्बन्ध व्यक्तिगत आकांक्षाओं, इच्छाओं व प्रयत्नों पर आधारित होने लगा है। व्यवसाय या जाति के पुराने सम्बन्ध में जिसमें लोग जाति के नाम पर ही व्यवसाय को जानते थे, काफी बदलाव आया है (हाइग्रेव, 1969:15; मेण्डलवामा, 1960:17)।

आधुनिक भारत में औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप जाति संस्था द्वारा व्यवसाय निर्धारण प्रक्रिया शिथिल होती जा रही है आज दैनिक उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन मशीनों के द्वारा होने लगा है, जिसमें अनेक जाति सम्प्रदाय के लोग बिना किसी जातीय बन्धन के एक कन्धे से कन्धा मिलाकर उत्पादन कार्य में हाथ बंटा रहे हैं। पैतृक तथा जातीय व्यवसाय में लगे ग्रामीण युवक भी आज घरेलू लघु एवं कुटीर उद्योगों के प्रति उन्मुख हो गये हैं जिससे सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं से प्रशिक्षण, कच्चा माल, व आर्थिक सहायता लेकर नवीन औद्योगिक व्यवसायों में प्रवेश कर रहे हैं जिससे इन ग्रामीण युवजनों का आर्थिक-सामाजिक स्तर तो सुधर ही रहा है साथ ही साथ परम्परागत व्यवसायों से इनका लगाव काफी कम होता जा रहा है।

आज का ग्रामीण युवक अपने जन एवं निवास की विशेषताओं के आधार पर ही ग्रामीण कहा जा सकता है। शहर के युवकों तथा ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार युवकों में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा। एक तरफ सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं ने जातिगत रूढ़िवादिता को कमजोर करते हुए युवकों को नई दिशा में सोचने के अवसर उपलब्ध कराये हैं दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा जनसंचार के साधन तथा बाहरी समाज से सम्पर्क के परिणामस्वरूप इन युवकों की आकांक्षायें सार्वभौमिक स्तर पर विकसित हुई हैं। तीसरे सरकार ने समानता सामाजिक न्याय सामाजिक कल्याण और शोषण से मुक्ति के सिद्धान्तों पर निर्मित अनेक प्रकार के कानूनों के द्वारा जातिगत निर्योग्यताओं को समाप्त करते हुए, समान अवसर की उपलब्धि इन युवकों को कराने का प्रयास किया है।

गाँवों की आत्मनिर्भरता और बाहरी समाज पर अन्त:निर्भरता व अन्त:क्रिया की धारणा पर प्रतिस्थापित हुई है। अत: जातिगत व्यवसाय इस परिवर्तित आर्थिक संरचना में अर्थहीन हो गये हैं। व्यवसायों का निर्माण देश के विकास, उद्योगों की उन्नति एवं जनसंसाधनों के निमित्त निर्भर करता है। अत: कुल मिलाकर व्यवसाय का अब जाति से सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया है। शिक्षा, नगरीकरण, राजनैतिक जागरूकता और विकास के लाभों के उपभोक्ता के रूप में इनकी आकांक्षायें परिवर्तित हुई हैं। लेकिन आज भी शिक्षित युवक नौकरी के लिए प्रयत्नशील है। नौकरी की इच्छा से प्रेरित ग्रामीण युवक की आकांक्षायें स्वरोजगार की सुविधाओं से कहां तक मेल खाती है। यह तथ्य स्वरोजगार कार्यक्रम में उनकी सहभागिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और इसलिए इस अध्याय में ग्रामीण युवकों की व्यावसायिक आकांक्षाओं एवं स्वरोजगार में उपलब्ध सम्भावनाओं के सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है।

इच्छित व्यवसाय

अधिकांश उत्तरदाता इण्टर एवं स्नातक स्तर का शिक्षा प्राप्त है। इस स्तर पर व्यवसाय के विभिन्न प्रकारों की जानकारी इन्हें सम्भव नहीं है। विभिन्न व्यवसायों की पूर्ण जानकारी के अभाव में

तथा अपने वर्तमान साधन की सीमा में किसी विशेष व्यवसाय के बारे में पूछना उचित नहीं है। सामान्यतया आज के परिवेश में नौकरी, व्यवसाय व कृषि, रोजगार के तीन प्रमुख क्षेत्र माने जाते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए यह जानने का प्रयास किया गया है कि ये युवक वरीयता क्रम में व्यवसाय की दिशा में आगे बढ़ने की इच्छा रखते हैं। इस तथ्य की खोज में विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं का बहुसंख्यक वर्ग (50.67 प्रतिशत) तीन अच्छे व्यवसायों में नौकरी को प्राथमिकता देते हैं 33.33 प्रतिशत उत्तरदाता व्यापार को वरीयता क्रम में सर्वाधिक महत्व देते हैं और 16.00 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि व्यवसाय को अपना प्रिय व्यवसाय मान कार्य करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि रोजगार कार्यक्रम में संलग्न अधिकांश उत्तरदाता नौकरी को ही प्राथमिकता देते हैं जिसका मुख्य कारण निश्चित आय व सामाजिक प्रतिष्ठा से है। व्यापार व कृषि को मजबूरी में अपनाने या करने को तैयार होते हैं।

व्यवसाय से लगाव के कारण- उपरोक्त सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाता कृषि व व्यापार की अपेक्षा नौकरी को काफी महत्व देते हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उत्तरदाताओं का जीवन-यापन के साधन में नौकरी की तरफ उन्मुखता है। नौकरी के प्रति झुकाव का कारण क्या हो सकता है। इसी प्रश्न को लेकर हुए सर्वे के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 41. 34 प्रतिशत उत्तरदाता इच्छित तीन व्यवसायों (नौकरी, व्यापार, कृषि) में से प्रथम को आय के अच्छे स्रोत के रूप में पाकर अपनाना चाहते हैं। 27.33 प्रतिशत उत्तरदाता इन व्यवसायों में प्रगति के अनेक अवसरों को ध्यान में रखकर स्वीकार करते हैं जो किसी भी व्यवसाय के लिए आवश्यक माना जाता है। 18.00 प्रतिशत उत्तरदाता मानसिक व शारीरिक आराम के परिणामस्वरूप इस रोजगार के प्रति लगाव रखते हैं और 13.33 प्रतिशत उत्तरदाता समाज में अर्थ के अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा व मानसम्मान को ध्यान में रखकर इच्छित व्यवसाय के प्रति आकर्षित हैं।

अत: विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में व्यापार की अपेक्षा नौकरी में और कृषि की अपेक्षा व्यापार में अधिक आय कमाने के अवसर प्राप्त हैं। आर्थिक आवश्यकता मनोवैज्ञानिक संतुष्टि अथवा सामाजिक महत्व तीन प्रमुख तत्व हैं, जिसके आधार पर व्यवसायों को ग्रामीण युवकों ने वरीयता क्रम दिया है। दूसरे शब्दों में इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही उत्तरदाताओं ने तीन व्यवसायों को अच्छा माना है।

उच्च शिक्षित वर्ग के बहुसंख्यक उत्तरदाताओं (66.67 प्रतिशत) ने मनपसंद व्यवसाय में शिक्षा जगत् को अपनाने की इच्छा व्यक्त किये। 18.52 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उच्च शिक्षा को राजनीति के साथ मिलाकर अपना जीवन यापन करने के पक्ष में हैं। जबकि उच्च शिक्षित वर्ग के 14.81 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने मेडिकल विभाग में अपने शिक्ष का सही उपयोग होने की बात कही है। मध्यम शिक्षित वर्ग के अधिकांश 39.80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रविधिकीय व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं। 23.46 प्रतिशत मध्यम शिक्षित उत्तरदाता किसी भी व्यवसाय के माध्यम से जीवन यापन के पक्षधर हैं जबकि 14.81 प्रतिशत

उत्तरदाता शिक्षा जगत में जाने की इच्छा जाहिर किये। निम्न शिक्षित वर्ग के 47.62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर व्यवसाय करने के पक्ष में अपना मत व्यक्त किये। 26.19 प्रतिशत निम्न शिक्षित उत्तरदाता किसी भी व्यवसाय के माध्यम से जीवन निर्वाह के पक्षधर हैं जबकि 16.67 प्रतिशत शिक्षा व 7.14 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीति के क्षेत्र में रहकर जीविकोपार्जन करना चाहते हैं।

अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षित वर्ग के बहुसंख्यक उत्तरदाता शिक्षक तथा मध्य व निम्न शिक्षित वर्ग के उत्तरदाता तकनीकी व्यवसाय के साथ-साथ किसी भी व्यवसाय के माध्यम से जीविका कमाने के पक्ष में हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मध्यम व निम्न शिक्षा वर्ग के उत्तरदाताओं ने रोजगार को महत्व दिया है न कि रोजगार के प्रकृति को।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

- agrawal, S.P. and Agrawal, J.C. 1990: Information India 1989-90, Global View – Global Books Result, History, p. 530.
- Herskovits, M.J. 1952: Economic Anthropology, New York.
- Hoebel, E.A. 1958: Man in the Primitive World, New York Jalihal, Krishna A. 2003: Pragmatic Rural Development of Poverty Allevaiation : A Pioneering, Political Science, p. 324.
- Misra, P.K. 1966: The Economy of a Nomadic Artisan Community: A Study of the Nomadic Godulia Lohras, University of Lucknow.
- Mookerjee, Ajit 1958: Indian Primitiv Art, Brass, Stone etc., Oxford Book Company, Delhi.
- Ogburn, William F. 1922: Social Change, The Viking Press, New York.

जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की श्रवण बोध एवं पठान बोध क्षमता पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव

डॉ० हिमानी उपाध्याय

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, हवाबाग महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

सारांश:

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों के पठान बोध एवं श्रवण बोध पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव देखना था। जिस हेतु शोधार्थी ने जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के चार माध्यमिक विद्यालयों को यादृक्षिक विधि द्वारा चुना, न्यायदर्श के रूप में कक्षा आठवीं के 400 विद्यार्थियों (200 बालक और 200 बालिकाओं) उद्देशपूर्ण विधि से चुना गया। जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों के श्रवण बोध एवं पठान बोध उपलब्धि के मापन हेतु ए. सी. पचोरी द्वारा विकसित श्रवण और पठन बोध प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। प्राप्त आंकड़ों का प्रसारण विश्लेषण द्वारा गणना की गई। परिणाम से ज्ञात होता हैं कि, जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों के पठन बोध और श्रावण बोध पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव में लिंग, शिक्षण माध्यम का (व्यक्तिक और अंत: क्रियात्मक प्रभाव) .01 सार्थक स्तर पर सार्थक अन्तर पाया गया।

मुख्य शब्द: पठन बोध और श्रावण बोध

प्रस्तावना:

शिक्षा में गुणवत्ता और समता की समस्याओं को देखते हुए यह उचित समझा गया कि सभी विद्यार्थी अधिगम दक्षता को न्यूनतम अधिगम स्तर तक प्राप्त कर सके। न्यूनतम अधिगम स्तर एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें यह निर्धारित किया जाता है कि विद्यार्थी को किसी निश्चित स्तर पर काम से कम कितना सीखना चाहिए, वही विद्यार्थी की अधिगम दक्षता अर्थात अधिगम समर्थ किसी विशेष विषय के आवश्यक नियमों ज्ञान और तकनीकी को व्यवहार में उपयोग कर सकते की योग्यता या क्षमता को कहा जा सकता हैं। मॉरिसन के शब्दों में दक्षता से तात्पर्य है कि "अधि गमकर्ता द्वारा अधिगम उत्पादन को वास्तव में अर्जित करना"।

श्रवण बोध एवं पठान बोध से यह आशय होता है कि बच्चे ने किसी सूचना या विषय वस्तु को सुनकर या पढ़कर समझा अर्थात उसका अर्थ ग्रहण किया एवं उसकी व्याख्या कर सकने में सक्षम हुआ साथ ही मौखिक एवं लिखित सूचना के आधार पर निष्कर्ष निकाल सकता है। निष्कर्ष निकालने के लिए समझ का हुनर होना आवश्यक है, अगर कोई बालक अपनी उम्र के अनुसार किसी मौखिक एवं लिखित सूचना के आधार पर निष्कर्ष निकालने में सफल हो जाता है, तो यह कहा जा सकता है कि उसे मौखिक या लिखित में दिए गए विचारों समप्रत्यायों का बोधन हो गया है।

बोध से आशय है, बोली गई या लिखी गई भाषा को समझने की प्रक्रिया, जिसमें भाषा एक अत्यंत महत्वपूर्ण कौशल है। आमतौर से यह समझा जाता है की सुनने या पढ़ने की क्रिया के साथ-साथ बोध भी हो जाता है, किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। बल्कि बोली गई या लिखी गई सामग्री पर ध्यान देते समय उसके साथ-साथ संज्ञानात्मक प्रक्रिया भी शामिल होती है।

बोध मस्तिष्क द्वारा सूचना ग्रहण करने की क्रिया है अत: इसका निरीक्षण नहीं किया जा सकता, सुनते या पढ़ते समय विद्यार्थी के मस्तिष्क में क्या-क्या चल रहा है इसे देखा भी नहीं जा सकता, केवल कुछ प्रश्न पूछ कर बोध के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है अत: बोध प्रक्रिया में दो क्रियाएं शामिल है –

अ) किसी सामग्री को पढ़कर सुनना।

ब) प्रश्नों (टास्क) के उत्तर देना।

अधिगम दक्षता से तात्पर्य है कि प्रत्येक विद्यार्थी कक्षा में पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु में प्रवीणता प्राप्त कर सकता है, बशर्ते विषय वस्तु को समुचित ढंग से उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाए और अधिगम के लिए उसे उपयुक्त समय और अभ्यास करने का अवसर प्रदान किया जाए। नई शिक्षा नीति 2020 भी इसी बात पर जोर देती है।

प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक कक्षा के लिए भाषा के मूल तत्वों को निम्नलिखित क्षेत्रों में विभाजित किया गया है:- 1) सुना 2) बोलना 3) पढ़ना 4) लिखना 5) विचारों का बोधन 6) व्यावहारिक व्याकरण।

प्रस्तुत शोध में भाषा के क्षेत्र से सुनना और पढ़ने का बोधन को लिया गया।

संप्रत्यात्मक अवधारणा:

1) सुनना (श्रवण बोध): प्रस्तुत शोध में श्रवण बोध से तात्पर्य है कि बोलने वाले के उच्चारण, प्रयुक्त व्याकरण और शब्दों को पहचानना तथा उसका अर्थ समझना।

2) पढ़ना (पठान बोध): पठान बोध से यहां तात्पर्य है कि पढ़ने के साथ-साथ शब्दों का अर्थ समझकर उसके प्रति की गई मानसिक प्रक्रिया।

डिसेटो, लोनड और हैनडेल (1965) ने अपने शोध में पाया कि, अनुमान लगाते समय संप्रत्यात्मक संबंधों का वितरण उनमें से संबंधित विघटित स्पाशियल संबंधों पर आधारित होता है इस पूरी प्रक्रिया को उन्होंने श्रवण चिंतन कहा। ग्रीव्य और होम्यांक (1996) और ग्रेटिसज (1997) ने पाया कि अगर व्यवस्थित नियमों के अभाव में शब्द चिंतन (श्रवण एवं पठान) में अधिक समय और अधिक धन के स्रोतों का ज्यादा प्रयोग होता हैं।

शोधार्थी के मन में यह जिज्ञासा थी कि क्या बालक एवं बालिकाओं के शिक्षण माध्यम का अधिगम दक्षता पर कोई प्रभाव पड़ता है? उपयुक्त प्रश्न को जानने की जिज्ञासा से ही शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध विषय का चुनाव किया।

समस्या कथन:

"जबलपुर जिले के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की श्रवण बोध एवं पठान बोध उपलब्धि पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव"

उद्देश्य:

1) लिंगानुसार, जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की श्रवण बोध उपलब्धि पर शिक्षण माध्यम के प्रभाव का अध्ययन करना।
2) लिंगानुसार, जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की पठान बोध उपलब्धि पर शिक्षण माध्यम के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना:

1) लिंगानुसार, जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की श्रवण बोध पर शिक्षण माध्यम का व्यक्तिक एवं अंत:क्रियात्मक कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है
2) लिंगानुसार जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की पठन बोध पर शिक्षण माध्यम का व्यक्तिक एवं अंत:क्रियात्मक कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है।

परिसीमंकन:

प्रस्तुत शोध जबलपुर शहर तक सीमित है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं पर सीमांकित किया गया:

1) कक्षा - मध्य प्रदेश बोर्ड की आठवीं कक्षा ।
2) आयु - 13 से 14 वर्ष के विद्यार्थी।
3) लिंग- बालक एवं बालिकाएं दोनों।
4) स्वतंत्र चर - शिक्षण माध्यम (हिंदी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम)
5) परतंत्र चर - श्रवण बोध एवं पठान बोध उपलब्धि।

शोध प्रकल्प एवं विधि:

प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने के लिए विवरणात्मक सर्वेक्षण शोध विधि एवं 2×2 शोध प्रकल्प का प्रयोग किया गया।

न्यायदर्श:

न्यायदर्श चयन हेतु शोधार्थी ने जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के माध्यमिक विद्यालयों की सूची से यादृक्षिक विधि द्वारा चार माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया। इन विद्यालाओं से 400 विद्यार्थी (200 बालक और 200 बालिकाओं) को न्यायदर्श के रूप में चयनित किया गया।

उपकारण:

आश्रित चर के मापन हेतु प्रो. ए. सी .पचोरी द्वारा विकसित पठान बोध एवं श्रवण बोध उपलब्धि प्रश्नावली, जो जनरल ऑफ इंडियन एजुकेशन सितंबर 1993 में प्रकाशित हुई थी, का प्रस्तुत शोध में प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण:

प्राप्त आंकड़ों को सारणीबद्ध करने के पश्चात प्रसारण विश्लेषण का प्रयोग कर परिकल्पनाओं का सत्यापन किया गया।

परिणाम:

तालिका क्रमांक -1: लिंगानुसार श्रावण बोध हेतु जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की 2×2 प्रसारण विश्लेषण सारांश तालिका

Source of Varence	df	Sum of Squares(SS)	Mean Squre(MS)	F
Gender	1	2986.21	2986.21	5.33**
Medium of Teaching	1	1961.83	1961.83	6.21**
Gende x Medium of Teaching	1	176.38	176.38	4.23**
Total	399			

** = 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर

ग्राफ क्रमांक -1: लिंगानुसार श्रवन बोध को दर्शाता ग्राफ

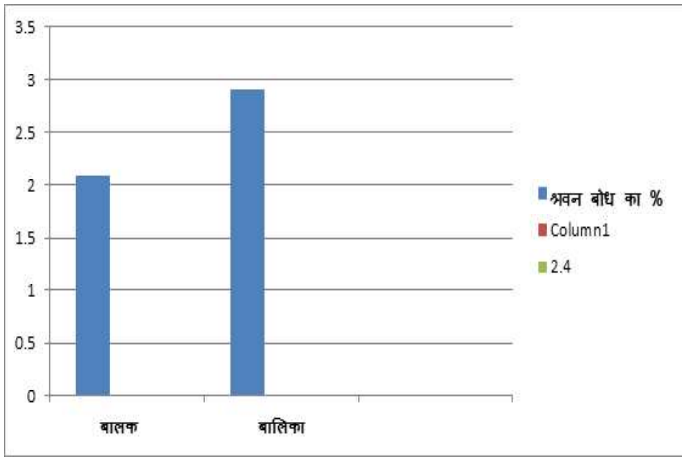

ग्राफ क्रमांक -2: शिक्षण माध्यम और श्रवन बोध को दर्शाता ग्राफ

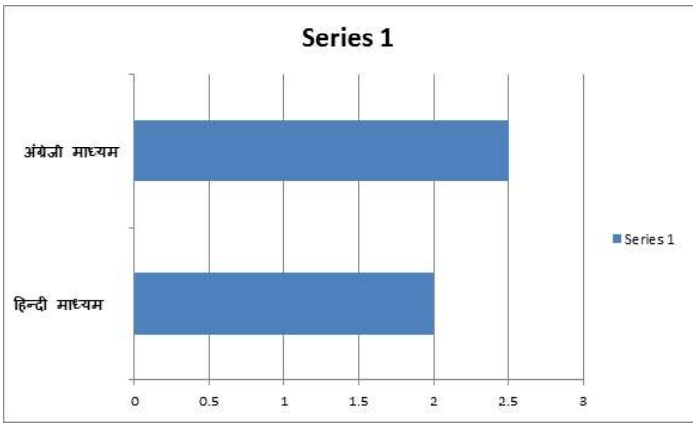

व्याख्या और विश्लेषण:

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट होता है कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के श्रवण बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 6.23 पाया गया, जो की 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। जिसका तात्पर्य है कि जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। जैसा कि ग्राफ क्रमांक 1 में स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि बालकों का श्रवण बोध का मध्यमान 2. 8 एवं बालिकाओं के श्रवण बोध मध्यमान 2.9 (अंतर .8) का पाया गया। यह कहा जा सकता है कि बालिकाओं का श्रवण बोध बालको के श्रवण बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उपशून्य परिकल्पना क्रमांक 1 (अ)"जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता हैं" आमान्य होती है।

जैसा कि तालिका क्रमांक 1 से विदित होता है, कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के श्रवण बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 7.12 पाया गया, जो की 0. 01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। अर्थात् जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। जैसा कि ग्राफ क्रमांक 2 में स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों का श्रवण बोध का मध्यमान 2.0 एवं, अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का श्रवण बोध मध्यमान 2.7 (अंतर .7) का पाया गया। यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का श्रवण बोध हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के श्रवण बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उपशून्य परिकल्पना क्रमांक 1 (ब) "जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता हैं" आमान्य होती है।

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट होता है, कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालीकाओं के श्रवण बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 4.23 पाया गया, जो की 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। जिसका तात्पर्य है कि जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालीकाओं के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों बालक और बालिकाओ का श्रवण बोध का मध्यमान क्रमश 2.3 और 2.1 एवं , अंग्रेजी माध्यम के बालक और बालिकाओं का श्रवण बोध का मध्यमान क्रमश: 2. 6 और 2.9 पाया गया। अर्थात् अंग्रेजी माध्यम के बालक और बालिकाओ का श्रवण बोध हिन्दी माध्यम के बालक और बालिकाओ के श्रवण बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उपशून्य परिकल्पना क्रमांक 1 (स) "जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालिकाओ के श्रवण बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में अंत:क्रियात्मक कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैं" आमान्य होती है।

तालिका क्रमांक -2: लिंग अनुसार पठन बोध हेतु जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों की 2×2 प्रसारण विश्लेषण सारांश तालिका

Source of Varence	df	Sum of Squares(SS)	Mean Squre(MS)	F
Gender	1	2511.78	2511.78	8.31**
Medium of Teaching	1	1897.23	1897.23	9.34**
Gende x Medium of Teaching	1	158.56	158.56	5.00**
Total	399			

** = 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर

ग्राफ क्रमांक -3: लिंगानुसार पठन बोध को दर्शाता ग्राफ

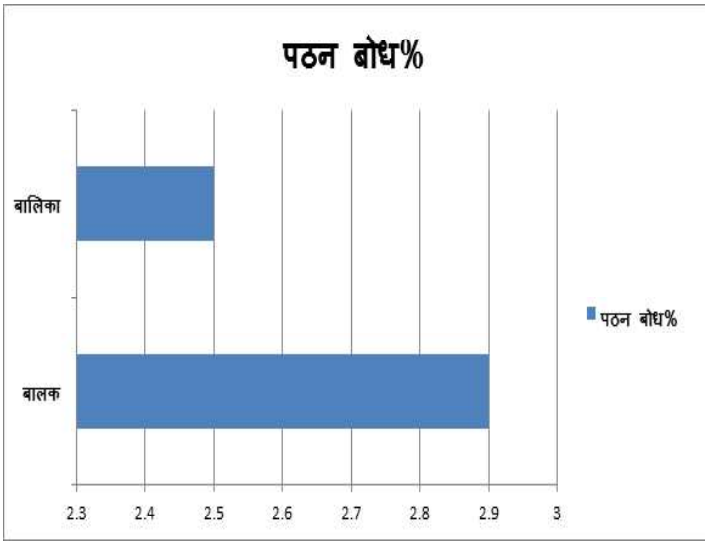

ग्राफ क्रमांक -4: शिक्षण माध्यम और पठन बोध को दर्शाता ग्राफ

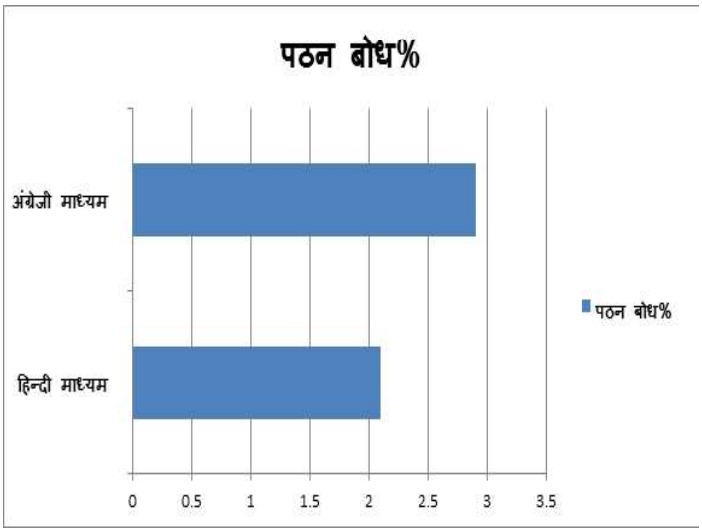

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के पठन बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 8.31 पाया गया, जो की 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। जिसका तात्पर्य है कि जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। जैसा कि ग्राफ क्रमांक 3 में स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि बालकों का पठन बोध का मध्यमान 2.9 एवं बालिकाओं के पठन बोध मध्यमान 2.4 (अंतर .5) का पाया गया जो की बालको के पठन बोध बालीकाओ के पठन बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उपशून्य परिकल्पना क्रमांक 2 (अ) "जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के बालक एवं बालिकाओं के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता हैं" आमान्य होती है।

जैसा कि तालिका क्रमांक 2 से विदित होता है, कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के पठन बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 9.34 पाया गया, जो की 0. 01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। जिसका तात्पर्य है कि जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। जैसा कि ग्राफ क्रमांक 4 में स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों का पठन बोध का मध्यमान 2.1 एवं, अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का पठन बोध मध्यमान 2.9 (अंतर .8) का पाया गया। अर्थात् अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का श्रवण बोध हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के श्रवण बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उप शून्य परिकल्पना क्रमांक 1 (ब) "जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता हैं" आमान्य होती है।

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है, कि जबलपुर शहर के मध्य प्रदेश बोर्ड के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालीकाओं के पठन बोध के लिए 1/399 स्वतंत्रता के अंश पर F मान 5.00 पाया गया, जो की 0.01 सार्थक स्तर पर सार्थक अंतर को दर्शाता है। जिसका तात्पर्य है कि जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालीकाओं के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमान के मध्य सार्थक अंतर पाया गया। हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के बालक और बालिकाओ का पठन बोध का मध्यमान क्रमश 2.1 और 2.3 एवं, अंग्रेजी माध्यम के बालक और बालिकाओं का श्रवण बोध का मध्यमान क्रमश: 2.7 और 2.8 पाया गया। अर्थात् अंग्रेजी माध्यम के बालक और बालिकाओ का पठन बोध हिन्दी माध्यम के बालक और बालिकाओ के पठन बोध से सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अत: बनाई गई उप शून्य परिकल्पना क्रमांक 2 (स) "जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं के हिन्दी माध्यम और अंग्रेजी माध्यम मे पढ़ने वाले बालक और बालिकाओ के पठन बोध के प्राप्तांको के मध्यमानो में अंत:क्रियात्मक कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता हैंष आमान्य होती है।

निष्कर्ष:

1) श्रवण बोध और पठन बोध दोनों की उपलब्धि पर शिक्षण माध्यम का प्रभाव पाया गया।
2) जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं की बालिकाओं का श्रवण बोध उपलब्धि बालकों की श्रवण बोध उपलब्धि से सार्थक रूप से उच्च पाई गई।
3) जबलपुर शहर के कक्षा आठवीं की बालकों का पठन बोध उपलब्धि बालिकाओं की पठन बोध उपलब्धि से सार्थक रूप से उच्च पाई गई।

सन्दर्भ:

1) पटेल, जे. जे. (1982). "केंद्रीय गुजरात के कक्षा 5 के विद्यार्थियों के गुजराती में श्रवण बोध का अध्ययन" जर्नल आफ इंडियन एजुकेशन, राष्ट्रीय अनुसंधान दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 89 - 95
2) Gattis, S(1998). "Transitive Inference by Visual Reasoning Studies" Journal of Expert Mental Psychology, pp 150-164
3) Tiffany, J. K.(2012). "Reading Comprehension Instruction for Ninth Graders with Learning Disabilities" Ph. D., Chicago University, Illinos
4) पचोरी, ए. सी. (1996). "कमजोर वर्ग के बच्चों की शाब्दिक सकर्मक अनुमान के मगन निगमन की योग्यता का अध्ययन जर्नल आफ इंडियन एजुकेशन नई दिल्ली इंडिया ड्यूरिंग राष्ट्रीय उद्यान शैक्षिक अनुसंधान पृष्ठ क्रमांक 24 से 26
5) New Education Policy 2020- Shiksha Mantralaya duvara Prakashit, July,2020, Bharat

बिहार में अति पिछड़ी जातियों का राजनीतिक उभार: एक अध्ययन

प्रिंस कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, भू0ना0मं0वि0, मधेपुरा

सारांश- सदियों से राजनीति में जाति का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो राजनीतिक पार्टियों ने जाति को एक मुद्दा बनाकर अपने-अपने हित साधे हैं। देश में 1931 जनगणना से सम्बन्धित अँग्रेज कमिश्नर मिस्टर हट्टन ने लिखा है, सही-सही जाति आधारित जनगणना असम्भव है। हमारे विशाल देश मे लगभग छः हजार जातियां होगीं उनकी भी उप जातियां होगीं जिनकी संख्या हजारों में होगी। अतः उनकी वैज्ञानिक जन गणना सम्भव नही है। वर्तमान चुनाव 2012 में भी जाति एक अहम मुद्दा बनकर उभरा है, जिसे सभी राजनैतिक पार्टियों ने अपने दलों में टिकट बाँटते समय प्रत्याशी तय करने में ध्यान रक्खा है। क्षेत्रवाद ने जातिवाद को बढाने में अहम भूमिका निभाई, जिसके आधार पर विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों का प्रादुर्भाव हुआ और विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों ने जातीय समीकरण के आधार पर जाति विशेष की हितैषी बनकर भारतीय राजनीति में अपनी पहचान बनाने मे न केवल कामयाब हुई वरन सत्ता भी प्राप्त करके राष्ट्रीय पार्टियों को भी जाति वाद के फार्मूले पर राजनीति करने के लिये आकर्षित किया। राजनीति के तहत देश में विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के कद्दावर नेता तक देश मे जातीय जनगणना को अपना समर्थन दे रहे थे। शायद उन्हे पता नही है कि ऐसा कर वह देश में जातिवाद की अमरबेल बना देना चाहते हैं। देश की राष्ट्रीय एकता को खन्डित करने के लिए अंग्रेजों ने 1871 में जो जातीय जनगणना का विष रूपी अंकुर हमारी राजनैतिक धरा पर बोया था। उसे हमारी राजनैतिक पार्टियां अपने वोट बैंक के लिये राजनैतिक तुष्टीकरण के खाद पानी से सिंचित करती आ रही है। यही कारण है जब एक आम मतदाता चुनाव मे मत डालने निकलता है तो उसके मन मस्तिष्क पर उस प्रत्याशी की छवि और चरित्र से ज्यादा उसकी जाति भारी पड़ जाती है।

कुंजीः- जनगणना, राजनीति, दल, चुनाव, प्रत्याशी।

प्रस्तावनाः- बिहार में अब सिर्फ दलितों और पिछड़ों की राजनीति नहीं हो रही, इसकी राजनीति का नया रुझान महादलित और अति पिछड़ों से जुड़ा है। ये दो श्रेणियां बताती हैं कि जिन्हें हम दलित और पिछड़े वर्गों की तरह देखते हैं, उनका स्वरूप हर जगह एक सा नहीं है। इन वर्गों के भीतर भी गैर-बराबरी, ऊंच-नीच या भेदभाव है। इसके चलते संसाधनों का समान वितरण नहीं हो पाता। इनके भीतर भी ऐसी श्रेणियां हैं, जो सरकार से मिलने वाली सुविधाओं और योजनाओं के ज्यादातर हिस्से को आसानी से हासिल कर लेती हैं और इनका लाभ नीचे तक पहुंचने नहीं देतीं। कई कारणों से ये वंचित श्रेणियां बाकी पिछड़ों व दलितों से पीछे रह जाती हैं।

जब कोई राजनीतिक दल इनके बीच काम करता है, तो धीरे-धीरे ये छोटे-छोटे सामाजिक समूह लामबंद होकर राजनीति के समीकरण को बदलने की क्षमता रखने लगते हैं। राजनीतिक विश्लेषक मान रहे हैं कि इस बार के बिहार विधानसभा चुनाव में अति पिछड़ों का मत निर्णायक होगा। बिहार में पिछड़े वर्ग की लगभग 51 प्रतिशत आबादी में करीब 24 प्रतिशत अति पिछड़े हैं। इनमें लगभग 94 जातियां हैं, जिनमें कुशवाहा, तेली जैसी थोड़ी बड़ी जातियों को अगर छोड़ दें, तो निषाद, चंद्रवंशी (ततवां, धानुक, गड़ेरिया) जैसी जातियों की आबादी काफी कम है। उत्तर बिहार में निषाद की संख्या थोड़ी प्रभावी है।

आजादी के बाद की बिहार की राजनीति को अगर देखें, तो इन समूहों से बड़े नेता कम ही दिखाई पड़ते हैं। उत्तर बिहार में निषाद समूह की संख्या ज्यादा है, इनमें जरूर समय-समय पर नेता उभरते रहे हैं। अति पिछड़ों की अनेक जातियां इसीलिए अपने को अनुसूचित जाति में शामिल किए जाने की भी मांग करती रही हैं, क्योंकि ये पिछड़ों में आगे बढ़ी जातियों की स्पर्द्धा में टिक नहीं पातीं। इसी कारण से वे आरक्षण का लाभ नहीं ले पा रही हैं। इन्हें महसूस होता है कि इस जनतंत्र में उनकी जितनी हिस्सेदारी है, वह उन तक नहीं पहुंच पा रही है।

बिहार में वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी। जनता पार्टी के विधायक दल के नेता श्री कर्पूरी ठाकुर चुने गये और वे बिहार के मुख्यमंत्री बने। श्री कर्पूरी ठाकुर हजाम जाति से आते हैं। जिसकी संख्या बिहार में काफी कम है। वे खासकर पिछड़ी जातियों के दर्द को भली-भाँति समझते थे। वर्ष 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार थी और श्री मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमंत्री थे। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार होने के कारण इनका हौसला अन्दर ही अन्दर काफी मजबूत था। वर्ष 1978 में केन्द्र सरकार ने पिछड़ी जातियों के आरक्षण के लिए बिहार के ही श्री बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में मंडल कमीशन की नियुक्ति की, जो 1980 में अपना रिर्पोट दिया परन्तु वर्ष 1980 में केन्द्र में सत्ता, कांग्रेस पार्टी के हाथ में आ गई। मंडल कमीशन के रिर्पोट को 1990 तक ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। पुनः 1989 में जनता दल की सरकार के प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के द्वारा

मंडल कमीशन के रिर्पोट को लागू किया गया। श्री कर्पूरी ठाकुर पिछड़ी जातियों को आगे बढ़ाने के लिए अपने पार्टी के घोषणा पत्र के अनुसार पिछड़ी जातियों, अगड़ी जाति एवं स्त्रियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया। वे अत्यन्त पिछड़ी जातियों के लिए 12 प्रतिशत, पिछड़ी जातियों के लिए 8 प्रतिशत, अगड़ी जातियों के लिए 3 प्रतिशत तथा स्त्रियों के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। इस प्रकार 1990 से पूर्व श्री कर्पूरी ने पिछड़ी जातियों के विकास के लिए काफी काम किए। फिर भी पिछड़ी जाति मुख्य राजनीति में उभरकर सामने नहीं आ सकी। इस प्रकार कुल मिलाकर यह देखा जाय तो आजादी से लेकर वर्ष 1989 तक बिहार की राजनीति में उच्च जातियों का ही बोलबाला रहा।

वर्ष 1989 में केन्द्र में जनता दल की सरकार बनी और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने। जनता दल की सरकार बनते ही मंडल कमीशन की आवाज जोरों से उठने लगी। देश में आरक्षण की राजनीति और सामाजिक न्याय के नारों के साथ पिछड़े समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। मंडल कमीशन लागू करने वाले तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपनी पुस्तक "मंजिल से ज्यादा सफर" में मंडल कमीशन लागू होने के बाद देश में हुए सामाजिक परिवर्तन को रेखांकित किया है। मंडल कमीशन लागू होने के बाद देश की राजनीति में बदलाव आया। इससे पंचायत से लेकर संसद तक की संरचना बदल गई। जो आजादी के बाद की सबसे बड़ी क्रांति है। इस क्रांति के फलस्वरूप बिहार में पिछड़े वर्ग के विभिन्न जातियों के लोगों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना जागृत हुई और बिहार में पिछड़ों के नेता के रूप में श्री लालू प्रसाद यादव का उदय हुआ। बिहार में वर्ष 1990 में विधानसभा का चुनाव हुआ। श्री लालू प्रसाद यादव ने पिछड़ी जातियों को आपस में संगठित कर अपने पक्ष में मतदान करने के लिए लोगों को प्रेरित किया। बिहार की जनता भी कई वर्षो से कांग्रेस की सरकार के कार्यकलाप से नाराज थी और सत्ता परिवर्तन का विकल्प ढूढ़ रही थी। जिसके कारण पिछड़ी जातियों एवं अन्य जातियों के लोगों ने जनता दल के पक्ष में अपना मतदान किया और श्री लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री बने। 1990 के विधानसभा चुनाव में उच्च जाति के विधायकों की संख्या-105, पिछड़ी एवं अत्यन्त पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या- 128, मुस्लिम-19 अनुसूचित जाति एवं जन जाति के विधायकों की संख्या-72 थी। जिसमें पिछड़ा वर्ग के यादवों की संख्या सबसे अधिक थी। बिहार में यादव जाति के लोग श्री लालू प्रसाद यादव को अपना जातिगत नेता मानते थे। श्री यादव ने 10 मार्च, 1990 से 28 मार्च, 1995 तक अपने पूर्ण कार्यकाल तक मुख्यमंत्री रहे। पुनः वर्ष 1995 में विधानसभा चुनाव हुआ और श्री लालू प्रसाद यादव दोबारा मुख्यमंत्री बने। उन्होंने पिछड़ी जातियों के आरक्षण के अन्तर्गत यादव को प्रमुखता दी और कोईरी तथा कुर्मी की उपेक्षा की। जिसके कारण जनता दल में अन्दर ही अन्दर मतभेद शुरू हो गया। उस समय नारा चला था कि "भूरा बाल साफ करो, कोईरी कुर्मी मॉफ करो"। इस नारों के बाद दल में विखराव हो गया और जनता दल दो भागों में विभक्त हो गई। उस समय श्री नीतीश कुमार कुर्मी जाति के नेता थे। उन्होंने कोईरी और कुर्मी जाति को संगठित कर लव -कुश समीकरण बनाया और समता पार्टी का गठन किया। बाद में जनता दल को तोड़कर वर्ष 1997 में लालू यादव ने राष्ट्रीय जनता दल का गठन किया। समता पार्टी कालान्तर में जद (यू) के रूप में परिवर्तित हो गयी और श्री नीतीश कुमार भारतीय जनता पार्टी से गठबंधन कर लालू यादव की सत्ता को चुनौती देने लगे। वर्ष 1995 के चुनाव में उच्च जाति के विधायकों की संख्या -66, पिछड़ी एवं अत्यन्त पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या-165, मुस्लिम-19 और अनुसूचित जाति एवं जन जाति के विधायकों की संख्या-72 थी। इस चुनाव में भी पिछड़ी जाति के यादवों की संख्या सबसे अधिक थी। पुनः वर्ष 2000 में विधानसभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव में समता पार्टी और भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरी लेकिन पूर्ण बहुमत नहीं होने के कारण विश्वास मत हासिल करने में नाकाम रही। जिसके कारण श्री नीतीश कुमार मात्र 6 दिनों तक ही मुख्यमंत्री रह सके। उसके बाद दूसरी बड़ी पार्टी राजद कांग्रेस और अन्य सहयोगी दलों का सहयोग लेकर सदन में विश्वास मत हासिल किया और सरकार बनाने में सफल रही। राजद ने विधायक दल के नेता के रूप में श्रीमति राबड़ी देवी को चुना गया और वह पुनः बिहार की मुख्यमंत्री बनी। श्रीमति राबड़ी देवी वर्ष 2000 से वर्ष 2005 तक अपना पूर्ण कार्यकाल पूरा की। इस चुनाव में निर्वाचित उच्च जाति के विधायकों की संख्या -56, पिछड़ी एवं अन्य पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या -128, मुस्लिम -19 और अनुसूचित जाति के विधायकों की संख्या -40 थी।

पुनः वर्ष 2005 में विधानसभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव में लोग श्री लालू प्रसाद यादव एवं श्रीमति राबड़ी देवी के कार्यकलापों से लोग काफी क्षुब्ध थे तथा यादवों के दहशत से भी भयभीत थे। बिहार की जनता सत्ता की बागडोर दूसरे नेता के हाथों में सौपने के लिए व्याकुल थी। इस चुनाव में बिहार की जनता पिछड़ी जाति के नेता श्री नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री के रूप में देखना चाहती थी। उच्च जाति के लोग भी यादवों का दंश झेल चुके थे। जिसके कारण उच्च जाति के लोग भी जद (यू०) एवं उसके सहयोगी दलों के पक्ष में अपने मताधिकार का प्रयोग किया। परन्तु फरवरी 2005 के चुनाव में कोई भी दल पूर्ण बहुमत पाने में नाकाम रही। फलस्वरूप बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा। पुनः नवम्बर 2005 के चुनाव में जद (यू०) और भाजपा गठबंधन आपार बहुमत के साथ सत्ता में आयी और श्री नीतीश कुमार बिहार के मुख्यमंत्री बने। पुनः वर्ष 2010 एवं वर्ष 2015 में विधानसभा का चुनाव हुआ और पुनः बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार बने। श्री कुमार विगत 15 वर्षो से मुख्यमंत्री के पद पर आसीन हैं।

आजादी के उपरांत बिहार में दलितोत्थान के प्रयास में बाबा साहेब अम्बेडकर का भी अभीष्ट प्रभाव पड़ा। अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ के अध्यक्ष के रूप में अम्बेडकर ने पहली बार 1957 ई0 में बिहार का दौरा किया था। 6 नवम्बर को वे

पटना पहुँचे। उनके साथ उनकी पत्नी सविता अम्बेदकर एवं परिगणित जाति संघ के महामंत्री पी. एन. राजभोज भी थे। पटना गाँधी मैदान में उनका भव्य स्वागत हुआ। विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "मुझे इस बात से खुशी है कि महात्मा बुद्ध की पवित्रा भूमि पर सामाजिक क्रांति का बीज पिफर से अंकुरित हो गया है। यह वही स्थान है जहाँ से ज्ञान का प्रकाश सारे विश्व में पफैला है। देश के शोषित संगठित हो और आगे बढ़े। वर्ण-व्यवस्था और जाति प्रथा के कारण शूद्र, अति शूद्र, पिछड़े वर्ग तथा अल्पसंख्यकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा है। हिन्दुओं की वर्तमान सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था का मूलोच्छेद कर जब तक नये समाज का निमाण नहीं हो जाता तब तक समाज के पिछड़े वर्गों के लोगो, पीड़ितों, दलितों एवं आदिवासियों का कल्याण नहीं हो सकता। आप हम पर मुखापेक्षी न होकर अपनी शक्ति को पहचाने तथा समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाकर देश की राजनीति एवं शासन संबंधी कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग ले। मुट्ठी भर लोगो द्वारा परिगणित जाति के लोगों को उनके पैरो के तले दबे रहने का जमाना लद चुका। अम्बेदकर ने कहा-" भारतीय संविधन में समस्त भारतीयों को सामाजिक समानता का अधिकार दिया गया है। दो हजार वर्षो तक हमारी आत्मा को इस तरह कुचला गया है कि अब हम इस अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर सकते। देश में हम दलितों, पिछड़ों, शोषितों और शूद्रों की संख्या 90 प्रतिशत है। देश की शासन सत्ता हम अपने हाथ में ले लेंगे। जिस प्रकार विदेशों में सामाजिक अत्याचार का विरोध किया गया उसी तरह हमे भी अपनी वर्तमान समाजिक व्यवस्था का मूलोच्छेद कर देश का नवनिर्माण करना है। इसके लिए शिक्षित हो, संगठित हो और संघर्ष के लिए आगे बढ़ो। कायर बारबार मरता है किन्तु वीर पुरुष कभी नहीं मरता है। उन्होंने दलितों से आहवान किया कि तुम्हें खुद से मजबूत बनना होगा। नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना पड़ेगा।

बिहार सरकार ने शुरू से ही दलितों की स्थिति में प्रयास किया। 13 नवम्बर 1953 को निश्चय किया गया कि जिन सेवाओं और पदो पर राज्य स्तर पर सीधी भर्ती द्वारा नियुक्तियाँ की जाएँगी उनमें अनुसूचित जातियों के लिए 12 प्रतिशत रिक्तियाँ आरक्षित रहेगी। 1956 ई0 में बिहार सरकार ने अपनी एक अधिसूचना के द्वारा पूरे प्रान्त में 21 जातियों को अनुसूचित जातियों का दर्जा प्रदान किया। ये जातियाँ थी-बांतर, बाउरी, भोगता, चमार या मोची, चौपाल, दबंगा, धेबी, डोम या थांगर, दुसाध, घोसी, हलालखोर, हारी मेहतर या भंगीद्ध कंजर, कुर्रियियार, लालबेगी, मुसहर, नट पान या स्वासी पासी, रजवार और तूरी। भूमिज को पटना और तिरहुत प्रमंडल में तथा मुंगेर, भागलपुर, पलामू और पूर्णिया जिले में अनुसूचित जाति माना गया। भुईया को पटना, शाहाबाद, गया और पलामू जिलों में अनुसूचित जाति माना गया। 1967 के बिहार विधनसभा चुनाव के बाद बिहार के परिदृश्य बदल गये। उसके बाद जितने भी चुनाव हुए दलितों, पिछड़ों की संख्या बिहार विधनसभा में बढ़ता गया। और दलितों को मंत्रिमंडल में उचित स्थान मिलता गया। 1977 के भारत के लोकसभा और बिहार विधनसभा के चुनाव यादगार साबित हुए। जगजीवन राम कांग्रेस पार्टी छोड़कर जनता पार्टी में शामिल हो गए। और 1977 की जनता पार्टी की सरकार में उपप्रधनमंत्री बनाये गए। बिहार के हाजीपुर लोकसभा सीट से रामविलास पासवान ने रिकार्ड मत से जीत हासिल किया। 1979 ई० में रामसुन्दर दास बिहार के मुख्यमंत्री बने इसके पहले भी भोला पासवान शास्त्री कई बार बिहार के मुख्यमंत्री बन चुके थे। बिहार मे कर्पूरी ठाकुर मुख्यमंत्री बने उनके कार्यकाल मे अनुसूचित जातियों के उपर जूलम को देखते हुए हरिजन थाना की स्थापना हुई। दलितों के विकास के लिए कई कार्यक्रम चलाया गया है यथा हरिजन छात्रावास, छात्रावृति बगैरह।

बिहार में दलित से महादलित बनने की प्रक्रिया चली इसमें राजनीति हावी हो गई वरना महादलितों का चुनाव कर उनके विकास के लिए कदम उठाने की अभी भी जरूरी है। बिहार सरकार ने महादलित के रूप में जिन वर्गों का चुनाव किया वे हैं-(1) चमार, (2) मुशहर (3) पासी, (4) धेबी, (5) भूईया, (6) रजवार, (7) डोम, (8) बंतर (9) चौपाल, (10) कंजर (11) कुदैरिया, (12) भोक्ता (13) दबगार (14) बौरी (15) लालबेगी, (16) घासी, (17) पान, (18) नट, (19) तुरी, (20) हलखोर, (21) भउरी।

यह सूची महादलितों की है जिसको समाज के मुख्यधरा में लाने के प्रयास किए जा रहे है। यह वर्ग अपनी पहचान खाने पर था जहाँ से नीतीश कुमार ने इनको मुख्यधरा में लाने का कार्य किया है।

इससे 1990 के दशक के उपरांत से 2005 तक आते-आते अन्य दलित जातियों में प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। लेकिन वे चाहकर भी कुछ विशेष नहीं कर पा रहे थे। आगे चलकर 2005 में सत्ता संभालने के बाद मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने इस 'दबे-कुचले दलितों को महादलित की संज्ञा दी। श्री नीतीश कुमार ने बिहार की राजनीति में सबसे पहले 'महादलित के लिए आवाज उठायी और उन्हें उनके वोट की कीमत का बोध कराया। अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल में श्री नीतीश कुमार ने महादलितों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विकास के लिए अनेक कार्यक्रम बनाया था इसे सुचारू रूप से क्रियान्वित किया गया। दूसरे राजनेताओं से अलग नीतीश कुमार ने महादलितों की स्थिति में सुधार के लिए एक महादलित आयोग का गठन किया। इस आयोग में अपनी रिपोर्ट में 18 महादलितों-बन्तर, वौरी, भोक्ता, चौपाल, दबगर, डोम, घासी, हलखोर, हरी, कन्जर, कुरैरीया, लागवेगी, मुशहर, नट, पन, राजवार और तुरी-को चिन्हित किया है। इसके अतिरिक्त तीन और जाति को महादलित में शामिल किया गया है। ये हैं-धेबी पासी और चमार इस आयोग ने महादलित की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'अभी तक

इन जातियों का न तो कोई भी शिक्षक उच्च विद्यालय में कार्यरत है और न ही अच्छे पदों पर आसीन है। अतः इनके विकास के लिए सरकार को सख्ती से कदम उठाने चाहिए ताकि इनका विकास हो सके और उनकी स्थिति सुधर सके। पिछले पाँच साल के कार्यकाल के दौरान नीतीश सरकार ने महादलितों के उत्थान के लिए व्यापक योजनाएँ तैयार की और उन पर ईमानदारीपूर्वक अमल किया। इनके लिए आरक्षण की विशेष सुविध देकर आगे लाने का प्रयास किया जा रहा है।

महादलितों तक सभी योजनाओं को पहुँचाने के लिए विकास मित्रों का नियोजन किया गया है। महादलितों के विकास के लिए 3 अरब का विशेष पैकेज भी दिया गया है। अतः यह विचारणीय है कि वे कौन सी परिस्थितियाँ रहीं हैं जिनके चलते बिहार की राजनीति में स्वतंत्राता प्राप्ति के 58 वर्ष बाद तक यानी 2005 तक न तो महादलित शक्ति का उभार हो पाया और ना ही वह अपनी पहचान बना पायी। किन्तु आज किन कारणों से कौन-कौन सी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी है जिनके चलते महादलित बिहार की रजानीति में एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इन प्रश्नों की बरीकी से छानबीन की जाएगी।

हाल के वर्षों में बिहार की राजनीति में दलित उत्कर्ष या दलितों की भूमिका को लेकर कुछ महत्वपूर्ण काम हुए है। उदाहरण के लिए आर. एल. चन्द्रापुरी की पुस्तक भारत में ब्राह्मणराज एवं पिछड़ा वर्ग आन्दोलन, पटना, 1996, राजकिशोर की पुस्तक 'हरिजन से दलित', वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2004 अभय कुमार दुबे की पुस्तक 'आधुनिकता के आइने में दलित, दिल्ली, 2002 संजय कुमार की पुस्तक 'दलितः उद्‌भव एवं विकास, पटना 2009 को देख जा सकता है। लेकिन बिहार की राजनीति में महादलित का उद्‌भव तथा दशा एवं दिशा पर कोई शोध या लेख प्रकाशित नहीं हुआ है। बहरहाल कोई भी अध्ययन अंतिम नहीं होता और न अन्य अध्ययनों का निषेध करता है। अतीत में किये गये अध्ययन भावी पीढ़ियों को दृष्टि देते हैं और उन्हें अनेक अनछुये प्रसंगों पर काम करने को प्रेरित करते हैं। एक गंभीर अध्ययन अन्य अनेक अध्ययनों की पृष्ठभूमि तैयार कर ही अपनी सार्थकता पाता है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध इसी आभाव को पूरा करने का एक प्रयास है।

श्री नीतीश कुमार ने बिहार की राजनीति में सबसे पहले महादलित के लिए आवाज उठायी, इनके सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण के लिए ठोस कार्यक्रम तय किए और इनको विकास के लिए जागरूक करने का प्रयास किया। परिणाम यह हुआ कि दलितों में अत्यधिक पिछड़े (महादलित) जो सुसुप्तावस्था में थे बिहार की राजनीति में एक सशक्त कारक बनकर उभरे हैं। श्री नीतीश कुमार के पिछले 8 वर्ष के शासनकाल में सरकार ने महादलितों के विकास के लिए जो नीति निर्धारित की है उससे वे मुख्यधरा में आ गये हैं और उनके दशा और दिशा पर व्यापक चर्चा होने लगी है। इस दृष्टिकोण से यह प्रबन्ध पूरी तरह औचित्यपूर्ण है।

अंततः कहना न होगा कि अम्बेदकर हो या गांधी, देश के पहले प्रधनमंत्री जवाहरलाल नेहरू हो या पिफर नीतीश कुमार, उन सभी ने व्यक्ति को महत्व दिया। उनके सम्मान के लिए योजनाओं का निर्धरण किया है। वह पानी की समस्या हो या रोजगार की, सभी क्षेत्रों में व्यक्ति की भलाई के लिए सत्ता परिवर्तन ही नहीं हुआ बल्कि व्यवस्था परिवर्तन भी हुआ। महादलितों को जीवन के सभी क्षेत्रों में भागीदारी मिली। इन महादलितों ने बिहार की राजनीति के दशा और दिशा को प्रभावित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. प्रसन्न कुमार चौधरी, स्वर्ग पर धावाः बिहार में दलित आन्दोलन, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण -2005, नई दिल्ली.
2- Caste Dynamics in Political Process in Bihar, vol. 20 No- 1-2-
3- Caste Dynamicsand Political Process in Bihar, jan-june 2008-
4- Prabhash Pd- Singh- Pankaj kr- Singh, Bihar councils of Ministers (1937-2007), Jnanada Prakashan, Edition-2008, New Delhi.
5. मंगलनाथ सिंह, भारत में जातिप्रथा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली -7, प्रथम संस्करण, 1983.
6. विवेकानन्द, कास्ट, कल्चर एण्ड सोशलिज्म, अदवेट आश्रम, 1947, अल्मोड़ा।
7. श्रीकान्त, बिहार में चुनावः जाति, हिंसा और बूथ लूट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. उर्मिलेश, बिहार का सच, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,

डार से बिछुड़ी: पाशो की कारूणिक गाथा

डॉ० प्रभात रंजन

सहायक प्राध्यापक, संत गुरूघासीदास शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, कुरूद, जिला धमतरी (छ.ग.)

डॉ० नम्रता

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

कृष्णा सोबती साहित्य जगत में ऐसी लेखिका है जिनका पठन-पाठन सीधे जिंदगी से बात करना, खुली आँखों से जीवन का दर्शन करना है। उनके साहित्य लेखन का एक-एक शब्द किसी घटना की तरह घटते है, और हम उन घटनाओं के हिस्से बनते चले जाते है। कृष्णा सोबती ने जो भी लिखा वह अनुभवों की दास्तां है। वह सिर्फ कथा ही नहीं कहती बल्कि जिंदगी को कागज के पन्नों में उतार देती है, जो जीवन के अटूट सिलसिले की तरह अनवरत् चलती रहती है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' की नायिका 'पाशो' है। यह उपन्यास आरंभ से अंत तक पाशो की कारूणिक गाथा है। पाशों का जीवन ही इस उपन्यास का धरातल है। पाशों ऐसी स्त्री है जो परिस्थितियों द्वारा सतायी गयी है, निर्दोष होते हुए भी उसे स्त्री होने की सजा भुगतनी पड़ती है। समाज, परिवार, मान-मर्यादा, रीति-रिवाज, संस्कारों के खोखले आदर्शो के पाटों में पाशो का जीवन पीस जाता है। शोषण, अन्याय, अत्याचार जैसी यातनाओं से डरकर डार से बिछुड़ी की पाशो समाज की ठोकरे खाकर पुनः डार पर जब लौटती है जब उसका सर्वस्व लूट चूका होता है। यहीं स्त्री जीवन की विडंबना है- ''कृष्णा जी को पढ़ते हुए बार-बार भारत की वह महाकाव्य परंपरा याद आने लगती है, जिसमें सीता और द्रौपदी जैसी स्त्रियों की ही नहीं कुंती, गांधारी और सत्यवती की भी पीड़ाएं दर्ज है। अपने आदर्शो की दृष्टि से अत्यंत उच्च समाज समझने वाला यह भारतीय समाज स्त्री को लेकर कैसे इतना निर्दय और क्रुर रहा आया है, यह सवाल बार-बार मन में उठता है। डार से बिछुड़ी उपन्यास पढ़ते हुए तो यह सवाल केवल उठता ही नहीं, बेचौन करता हुआ मथ भी डालता है।''(1)

समाज की इस पुरातन विचारधाराओं की शिकार सिर्फ पाशो ही नहीं है, सदियों से प्रताड़ना ही चक्की में अनेकों स्त्रियों ने अपना जीवन लुटाया है। पाशो एक निर्मल स्वच्छ हृदय की लड़की है जिसका बचपन ननिहाल में गुजरा। पाशों के जन्म के बाद ही उसकी माँ शेखों की हवेली जा बैठी जहाँ पाशो अपनी ही नहीं अपनी माँ के कर्मो की सजा नियति मानकर भोगती है। परिवार की ईर्ष्या, दुत्कार और घृणा का कोप-भाजन पाशो को बनना पड़ता है। नानी, मामा-मामी द्वारा हर समय उसे जली-कटी सुनाया जाता, अगर कभी माँ का जिक्र पाशो कर दिया करती तो उससे कहा जाता कि ''अरी कुएं में डूब मरी थी तेरा बीज डालने वाली! अब तू संभलकर सांस भर।''(2)

यही एक भारतीय स्त्री की दास्तान है जो हर दुःख अन्याय को चूपचाप सह जाती, ताने, उसका हृदय छलनी कर जाती है लेकिन वह कुछ नहीं कर सकती है। पाशो पर तो अनेकानेक प्रतिबंध लगता था जहां वह अपनी मर्जी से कहीं बाहर नहीं जा सकती थी उसके हंसने-बोलने, उठने-बैठने पर भी ननिहाल वालों की कड़ी नजर रहती। कभी ऊंच-नीच हो भी जाती तो पाशो को टोक दिया जाता- ''रब्ब तुझे संभाले अरी कपड़ा नीचे रखा कर ..... पसार छूने लगी न शर्म न हया। अरी, ओढ़नी अब तेरे गले तक से उठने लगी।''(3)

समाज का कड़वा सच है यह जहाँ माता-पिता के कर्मो की सजा संतान को विरासत मिलती है। पाशो का मासूम बचपन दर्द से भर गया था, इतना अत्याचार कम नहीं था जो उसे मारने की साजिश भी की गई। यही एक स्त्री का दुर्भाग्य है। घर से भाग जाने पर पाशो के जीवन में खुशियों ने दस्तक दी यह मिथ्या है। समाज द्वारा सतायी नारी को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। यहां से पाशो के जीवन की एक नयी यात्रा आरंभ होती है, जहाँ पर क्षणिक उन्माद हर्ष और खुशियों के बाद दुःखों की काली छाया उसे अपने आगोश में समेट लेती है। यहां पाशों का जीवन दर्द का सैलाब बनकर रह गया। मामाओं और समाज के अत्याचार ने पाशो को ऐसी अंधेरी गुफा में धकेल दिया जहाँ एक बालपन अपना कौमार्य त्यागकर अधेड़ उम्र दीवान की स्त्री बन जाती है। समाज ने हमेशा ही स्त्रियों से बलिदान मांगा। कभी पुरूषों से इसकी इच्छा क्यों नहीं की जाती। स्त्री स्तंत्रता की बात करने वाले पुरूष समाज ने ही अपनी दोहरी मानसिकता का परिचय दिया, जहां वह स्त्रियों पर अपना सर्वस्व स्वीकारता है। पिता के उम्र के पति को देखकर पाशो के हृदय में दर्द भर जाता है। '' क्षण भर को लगा दीवान जी नहीं शेख जी मुझसे यह पूछते है। आंखे छलछला आयी। टप से एक बड़ी बूंद नथ की बाग में आ टपकी।''(4)

गौरतलब है कि पाशो एक ऐसे मध्यवर्गीय समाज की साख थी जहां पर मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा इस पुरूष समाज का आवरण है, जहां स्त्री की इच्छा अनिच्छा के कोई मायने नहीं। समाज के इन परंपराओं में दबकर पाशो भी घुट-घुट कर जीवन जीने की विवश

है। भारतीय समाज में पत्नी को परिवार की धूरी माना जाता है। अधेड़ उम्र के व्यक्ति को जीवन साथी के रूप में स्वीकार पाशो अपनी विवश्ता थी लेकिन एक आदर्श पत्नी बनकर पति और ससुराल का मान बढ़ाती है। जीवन के अन्यत्र दु:खों को भूलकर पति को ही सबकुछ मानती है- ''यही मेरे सिर की सरदारी है। यही मेरा भाग सुहाग है।''(5)

पतिव्रता नारी पाशो अपनी हर जिम्मेदारी का निर्वहन बखूली करती है, लेकिन जिस स्त्री के भाग में सुख की लकीर ही न हो उसे खुशियाँ कहीं से नसीब होती। पाशो के जीवन में एक आंध ी आयी और उसकी सारी खुशियाँ हवा में लीन हो गयी। अभी जो पति के लाड प्यार में इठला रही थी वह सुखे पत्ते की भांति जमीन पर आ गिरी। कच्ची उम्र में ही विधवा हो गई। पति के निधन से पाशो का जीवन सूना हो गया। पाशो अब ऐसे कंटीले पथ पर चलने को विवश हो गई जहां नंगे पैर चलने पर लहू के अलावा और कुछ प्राप्त नहीं होता।

कृष्णा सोबती ने पाशो के माध्यम से विधवा स्त्रियों की करूण गाथा को चित्रित किया है। समाज पति की मृत्यु के बाद स्त्रियों को कभी भी सुख-चौन से जीने नहीं देता है। वैधव्य होना उसका दोष नहीं है लेकिन फिर भी उसे यह दंश झेलना पड़ता है। समाज पत्नी की मृत्यु के बाद पति को कोई लांछन, प्रवंचा, दुत्कार, यातना नहीं देता, बल्कि ये सारे नियम, कानून तो स्त्रियों के लिए बनाये गये है। विधवा स्त्री को समाज खुले दावत की तरह समझता है जिस पर हर किसी की गिद्ध सी नजर रहती है जो समय आने पर उसे नोच डाले। पाशो के साथ भी यही हुआ। पाशो के सौंदर्य को देखकर हर पुरूष उसके सौंदर्य का रस पान करने आतुर था पाशो समाज ही नहीं अपने घर में भी सुरक्षित नहीं थी। नए बरकत दीवान ही पाशो की पतिव्रता को भंग कर देता है, पाशो अपने ही घर में अपनी इज्जत लुटा बैठती है। पाशो की पीड़ा समझने के बजाए उसे और ताना मारा जाता है पाशो जिस यातनाओं को ठोकर मारकर ससुराल आयी थी वह यातना पाशो को अपने आगोश में ले लेता है। बरकत दीवान पाशो पर अपना अधिकार समझने लगता है उसे बांदियों की तरह काम करवाने लगता है '' अरी समझा इस कुलच्छनी को। घर के खसम की चिलम भर देगी तो पटरानी क्या गोली बन जायेगी।''(6)

पाशो अब सिर्फ एक हाड़ मांस बनकर रह जाती है। पाशो का जीवन अब एक अंधेरी रात बनकर रह गया है, जहां चारों तरफ सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा है, रोशनी की एक किरण भी नहीं है।

"एक स्त्री जिसके पति न रहने पर उसके जबरन हजार पति खड़े हो जाते है, वह दु:ख से भरा अपना वैधव्य भी नहीं काट पाती। विधवा होकर रहने का अधिकार उसका नहीं। अपने पैदा किए अपनी गोद के बेटे को पालने-पोसने और उसी बल पर जी लेने का अधिकार उसका नहीं। वरण करने की उसकी स्वतंत्रता नहीं।''(7)

पाशो हर अन्याय, अत्याचार, शोषण को विधाता की इच्छा मानकर जीवन निर्वाह कर रही थी लेकिन परिस्थितियां अब पाशो के विपरीत हो गई थी। उसकी जिंदगी बद्तर होती जा रही थी। एक स्त्री के लिए उसका आत्म-सम्मान और स्वाभिमान महत्वपूर्ण होता है लेकिन यहां उसका आत्मसम्मान ही लूट चूका है समाज में पाशो को इस शोषण को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया है। हार मानकर पाशो सबकुछ स्वीकार कर लेती है, यही एक स्त्री का दुर्भाग्य है। बरकत दीवान अपनी हवस मिटाकर पाशो को लाला के हाथो बेच देता है। पाशो जो बेटी, पत्नी माँ का सुख कभी भोग ही नहीं पायी और नियति ने उसे दीवान की विधवा से तीन भाईयों की दासी बना दिया। पाशो के जीवन के सारे स्वप्न कांच की तरह टूट जाते है वह जीवन की संकीर्णताओं में फंसकर अपना अस्तित्व खो देती है। समाज की हर मर्यादा, परंपराओं के बंधनों से मुक्त होने के बावजूद पाशो कभी स्वतंत्र नहीं होती है। पाशो एक भोग्या बनकर रह गयी, कभी भी कोई पुरूष उसका भोग करता है कभी दूसरा तो कभी तीसरा/पाशो अपनी नानी के कही बातों को याद करके हमेशा सोचती ''संभलकर री, एक बार का थिरका पांव जिंदगानी धूल में मिला देगा।''(8)

वह सोचती अगर वह नानी के घर से न निकलती तो आज उसका जीवन धूल नहीं बनता। पाशो की इज्जत, शर्म, लाज, आबरू सब लूट जाती है। पति ने सहारा दिया लेकिन उनकी मृत्यु के बाद पाशो का जीवन गिली मिट्टी बन गया जिसका उपयोग हर कोई अपनी सुविधा अनुसार करने लगा। विधवा स्त्री के रूप में पाशो जीवन की अवर्णित यातनाओं को भोगती है।

एक स्त्री के जीवन में पति की मृत्यु के बाद बच्चा ही जीने का सहारा होता है लेकिन पाशो से यह समाज वह भी छीन लेता है। बच्चे का बिछुड़ना पाशो के हृदय को तार-तार कर देता है। रोती बिलखती पाशो की रूदन से किसी को फर्क नहीं पड़ता है। सब अपनी स्वार्थ की रोटियां सेकते है। मंझला कहता है '' सच-सच कह नवेली, अब भी बूढ़े दीवान को याद करती हो? पाशो अपने मुन्ने को याद करती हूँ... उसका नाम न लेना। तुम्हारी झोली में हमारा लाल खेलेगा।''(9)

ननिहाल की ठोकर, माँ से बिछुड़ना पति की मृत्यु बच्चे से वंचित और पाशो के जीवन में दुर्भाग्य की एक ठोकर ने उसके अस्तित्व को कटघरे में लाकर खड़ा कर देती है। पाशो एक ऐसी स्त्री चरित्र की अभिव्यक्ति है, जिसका जीवन क्षोभ उलाहना, अपमान से भरा है। कभी वह किसी की बीवी बनी कभी किसी की बांदी, कभी बहन, कभी माँ बनकर ममता लूटाती, कभी रखैल बनकर पुरूषों के आधिपत्य को स्वीकार करती और हर जगह बेची और खरीदी जाती है। पाशो जानती है कि औरत चूप रहकर ही अपने प्राण बचा सकती है। मामा के घर से न भागती तो उस दिन उसके प्राण ले लिए जाते। शेखजी माँ के घर से चूपचाप बूढ़े दीवान से विवाह न करती तो भी उसके प्राण छीन लिए जाते। बरकत दीवान की हवस पूरी न होती तो वह जिंदा न रहती यहां

सबने पाशो को छला है। हर किसी ने उसके अस्तित्व को रौंदा है। फिरंगी कचहरी में तो हर दर्जे की बेइज्जती पाशो को सहनी पड़ती है ''आवाज वो नाजो तेरी मीठी, पर मूंह खोलों तो पता पाएं, साहब बहादूर तुम्हें रात के किस पहर बुलाएंगे।''(10)

पाशो जीवन की कंटीली राहों में चलते-चलते अंतत: अपनी माँ के पास वापस लौटती तब तक पाशो अपना अस्तित्व और अस्मिता को खो चुकी होती है उसके मन में न प्रसन्नता है और न दु:ख की छाया। उसे किसी से शिकायत होती है न उसके हृदय में कोई रूदन है और न ही कोई उमंग है। वह ननिहाल रूपी डाल से क्या बिद्युड़ी उसे कही भी किनारा नहीं मिला।

निष्कर्षत: कृष्णा सोबती में पाशो के माध्यम से ऐसी स्त्री का वर्णन किया है जिसके जीवन में खुशियों ने कभी दस्तक दी ही नहीं हर जगह अपमान, तिरस्कार, घूटन, शोषण, अन्याय ही सहा जिसकी वजह से पाशो ने परिस्थितियों को ही अपनी नियति मान लिया है। पाशो का तो पूरा जीवन ही दर्द से भरा है राजेन्द्र यादव के शब्दों में ''विधवा होने के पश्चात् पाशो सिर्फ एक चीज रह जाती है जिसे जो मन उठाकर ले आये जहाँ है वहाँ उसका घर संभाले, बिस्तर गर्म करें और वंश चलाने के लिए संतान दे।''(11)

संदर्भ ग्रंथ

01. मेहरे, छबिल कुमार. कृष्णा सोबती: एक मुल्यांकन. सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2016. पृष्ठ - 110
02. सोबती, कृष्णा. डार से बिछुड़ी. राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2018 पृ.- 17
03. वही पृ. 16-17
04. वही पृ. 44
05. वही पृ. 47
06. वही पृ. 74
07. मेहरे, छबिल कुमार. कृष्णा सोबती: एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली 2016. पृ. 111
08. सोबती, कृष्णा डार से बिद्युड़ी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2018. पृ. 91
09. वही पृ. 96-97
10. वही पृ. 122
11. यादव, राजेन्द्र. औरो के बहाने. राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 40

कृषि विकास और पर्यावरणीय प्रभाव

मनोज पटेल

शोधार्थी भूगोल विभाग, सर्वोदय पी.जी कालेज घोसी, मऊ (उ.प्र.)

डॉ० करूणानिधान उपाध्याय

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग सर्वोदय पी.जी कालेज घोसी, मऊ (उ.प्र.)

कृषि प्रगति के पर्यावरणीय प्रभाव, उसके उत्पादन के कारण मृदा, भूमि, जल, वायु तथा पारिस्थितिक तंत्र के अन्य पदार्थों (प्राकृतिक संसाधनों आदि) की क्षति और निम्नीकरण से संबंधित है। उच्चतर कृषि उत्पादन प्राप्त करने की पद्धतियां बृहळार पारितंत्र पद्धति को कितना प्रभावित कर सकती हैं? प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, जो पर्यावरणीय प्रभाव के रूप में कार्य करते हैं, क्षेत्र विशेष में कृषि आर्थिक पद्धति द्वारा भी प्रभावित होते हैं। आधुनिक कृषि तात्कालिक लाभ व उत्पादकता वृद्धि की दृष्टि से अधिक सार्थक है परन्तु इसके आर्थिक, सामाजिक व पारिस्थितिक कुप्रभावों के कारण इसे दीर्घकाल तक नहीं अपनाया जा सकता है। अपनी भौगोलिक विशेषताओं द्वारा वर्गीकृत की जाती है, जैसे-शुष्क या सूखा क्षेत्र, तटीय क्षेत्र, पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्र, वर्षा प्रधान क्षेत्र, सिंचित क्षेत्र, आदि पर पर्यावरणी प्रभाव या तो प्रौद्योगिकी विकास के कारण कृषि संवर्धक सुविधाओं की स्थापना के या उस क्षेत्र के लिए प्राकृतिक रूप से अनुपयुक्त कृषि पद्धति के अंगीकरण के परिणाम है। इस प्रकार के उदाहरणों में शामिल हैं। क्षेत्र के शुष्क लक्षण समाप्त करने के लिए (शुष्क भूमि कृषि प्रोत्साहित करने के बदले) सिंचाई के लिए बांधों का निर्माण, अत्यधिक चराई और सस्यन प्रयोजनों के लिए सामान्य भूमि का परिवर्तन, इससे भूमि शुष्क हो जाती है और पशुओं के लिए घास दुर्लभ हो जाता है। जल अभाव क्षेत्र में सघन फसल उगाने से भौम जल स्तर नीचे चला जाता है, आदि। परंतु हम नोट कर सकते हैं कि दुष्प्राप्य संसाधनों का पुनर्वितरण, जैसे अधिशेष क्षेत्रों से जल की कमी वाले क्षेत्रों में नहर बनाकर उसका मार्ग बनाना, किसानों को अधिक आय देने के लिए फसल की वाणिज्यिक व्यावहार्यता को ध्यान देना ताकि पानी बर्बाद न जा सके। ये ऐसे महत्तवपूर्ण मुद्दे हैं जो अपने आप में तर्कसम्मत हैं। पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कृषि कारक निम्न हैं।

एकल सस्यन

एकल सस्यन का संबंध खेत में एक ही फसल प्रजाति की खेती से है। यह बहु सस्यन के समान नहीं है जिसमें पालतू पशुओं की देखभाल या वृक्षरोपण जैसे अन्य कार्यों के साथ मिश्रित किया जाता है। परंतु इस पद्धति का प्रभाव जैव विविधता पर नकारात्मक रूप से पड़ता है क्योंकि यह बहु सस्यन खेतों की अपेक्षा फसलों के लिए वास की कम श्रेणी प्रदान करता है।

निरंतर खेती

हाल ही में, खाद्य पदार्थो की बढती हुई मांग और आर्थिक विकास के कारण लोगों की बढ़ती हुई आय से संबद्ध खाद्यन वरीयताओं में परिवर्तन के कारण निरंतर ऐसी खेती पद्धति को वरीयता देते हुए पलिहर (खाली) अवधियां रखने की पुरानी पद्धति त्याग दी गई है। परंतु इससे मृदा की दशा पर हानिकारक प्रभाव हुआ है। लगातार एक ही फसल चक्र से मृदा में पोषक तत्वों की आपूर्ति घटती है और इससे जैव विविधता में परिवर्तन हो सकता है।

पर्वतीय पार्श्व क्षेत्रों में सघन खेती

पर्वतीय क्षेत्रों की तीव्र ढालों में खेती मैदानी क्षेत्रों में खेती की अपेक्षा भिन्न प्रकार का पर्यावरणी प्रभाव उत्पन्न करता है। कृषि पर निर्भर रहने वाले जनसमुदाय द्वारा भूमि की दुष्प्राप्यता के कारण समुचित मृदा संरक्षण तकनीकों के अभाव में सघन कृषि तरीके अपनाने की प्रवृळि लगातार बढ़ रही है। इससे मृदा गुणवत्ता घटती हैं।

रासायनिक उर्वरकों उपयोग

कृत्रिम संश्लिष्ट रसायनों के प्रयोग ने प्रति वर्ष कृषि उपज में उल्लेखनीय वृद्धि की हैं। परंतु उनका अकुशल, असंतुलित अनुप्रयोग और फसल उद्ग्रहण ने मृदा उर्वरता, जल और वायु गुणवळा प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, मृदा में रसायन रिसाव की प्रक्रिया ने मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव दिया है, जिसे अम्लीकरण और नाइट्रेट विक्षालन कहा जाता है (सिंह, आर0एल0 एवं सिंह, राणा पी0जी0, 1977)। जलीय पारिस्थितिक तंत्र में इसी प्रकार नाइट्रोजन के अंश का संचयन और अन्य पोषक तत्वों का रिसाव

होता है इससे अत्यधिक पोषक तत्वों के संकेंद्रण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके फलस्वरूप आक्सीजन की क्षीणता होती है और जलीय जीवन खासकर मछलियों की संख्या तथा उनकी प्रजाति विविधता को कम किया है। वायु गुणवळाा पर प्रभाव नाइट्रिक एसिड गैस के उत्सर्जन में होता है। यह धूम्र, कोहरा और अम्ल वर्षा में सहायक होता है।

तालिका-5.1: जनपद-संत कबीर नगर रासायनिक उर्वरक वितरण प्रतिरुप (मी0टन में)

क्र0स0	विकासखण्ड	नाईटोजन		फासफोरस		पोटास		योग	
		वर्ष 2005	वर्ष 2021	वर्ष 2005	वर्ष 2021	वर्ष 2005	वर्ष 2021	वर्ष 2005	वर्ष 2021
1.	सेमरियावा	2150	1925	310	804	120	72	2580 (12.35)	2801 (11.20)
2.	मेहदावल	1950	2049	240	823	89	71	2279 (10.91)	2943 (11.77)
3.	बघौली	2050	2137	285	809	101	61	2436 (11.66)	3007 (12.00)
4.	खलीलाबाद	2075	2080	285	776	120	68	2480 (11.87)	2924 (11.70)
5.	नाथ नगर	1865	2080	245	736	90	69	2200 (10.53)	2885 (11.54)
6.	हैसर बाजार	2085	2050	285	796	120	68	2490 (11.92)	2914 (11.65)
7.	सांथा	2068	1891	289	785	108	78	2465 (11.80)	2754 (11.02)
8.	बेलहर कला	1677	1724	250	592	89	77	2016 (9.66)	2393 (9.57)
9.	पौली	1660	1737	219	567	71	77	1950 (9.33)	2381 (9.25)
	योग ग्रामीण	17580	17673	2408	6688	908	641	20896 (100)	25002 (100)
	योग जनपद	17580	17673	2408	6688	908	641	20896 (100)	25002 (100)

स्रोत: जिला सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष- 2006, 2022।

उपरोक्त तालिका संख्या 5.1 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग वर्ष 2005 की तुलना में वर्ष 2021 में बढ़ा है। क्षेत्रीय वितरण के अन्तर्गत वर्ष 2021 के अनुसार रासायनिक उर्वरकों का विकासखण्ड स्तर पर सर्वाधिक उपयोग प्रतिशतता के आधार पर सर्वाधिक बघौली विकासखण्ड में और सबसे कम पौली विकासखण्ड में मिलता है। जबकि वर्ष 2005 के अनुसार रासायनिक उर्वरकों का विकासखण्डस्तर पर सर्वाधिक उपयोग प्रतिशतता के आधार पर हैंसर बाजार विकासखण्ड में और सबसे कम पौली विकासखण्ड में मिलता है।

परजीवनाशी-

सन् 1900 के मध्य से परजीवी और पादप रोगों से फसल क्षति को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक परजीवनाशियों के बढ़े हुए प्रयोग ने पशु और मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाया है। परजीवीनाशी प्रयोग की अनुमानित दक्षता दरें कुछ अनुमानों में उर्वरकों की तुलना में काफी अधिक कम हैं। फसलों पर प्रयोग किए गए परजीवीनाशी का 0.1 प्रतिशत से भी कम अभिप्रेत वास्तविक परजीवी तक पहुंचता है। इसलिए शेष मात्रा मृदा में संचित हो जाती है जो नीचे भौमजल स्रोतों में पहुचती है और भौमजल स्रोतों का प्रयोग करने वाले सूक्ष्मजीवों, जलीय पशुओं और मनुष्यों के लिए विषैली सिद्ध होती है

सिंचाई प्रणालियां-

कृषि के लिए सिंचाई आधार रेखा के समान होती है, परन्तु पारिस्थितिकी की दृष्टि से वह तभी अभीष्ट हो सकती है जब वह कम लागत, सभी वर्गों के कृषकों को सुलभ तथा क्षेत्र की पारिस्थितिकी दशाओं के अनुरूप हो, अन्यथा इससे न सिर्फ अन्तर्वर्गीय असमानता बढ़ती है वरन् अनेक पारिस्थितिकीय विसंगतियाँ पनपती हैं (चौबे, संजीव कुमार, एवं गणेश कुमार, 2011)। अति सिंचाई और घटिया जल निकास से जल भराव तथा मृदा लवणीकरण उत्पन्न होता है जो मृदा की उर्वरता घटाता है। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2021 के अनुसार सिंचाई साधनों के अन्तर्गत नहरों की लम्बाई 410 किमी0, राजकीय नलकूप 465 एवं 50727 अन्य नलकूप, पक्के कूएं 320 है। अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई साधनों की स्थिति का विवरण तालिका 5.3 से यह स्पष्ट है -

तालिका-5.3: जनपद-संत कबीर नगर: सिंचाई के साधनों का स्थिति

क्र0स0	सिचाई के साधन	प्रतिवर्ग हेक्टेयर क्षेत्र में	
		वर्ष 2001	वर्ष 2021
1.	नहर की लम्बाई (किमी में)	0.04	0.25
2.	नलकूप (संख्या इकाई में)	0.40	31.03
3.	पक्के कूएं (संख्या इकाई में)	36.88	0.19

स्रोत: जिला सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष- 2002, 2021।

निष्कर्ष

पिछली कुछ दशाब्दियों के दौरान कृषि प्रगति की उपलब्धि के देश की प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हुए। इनमें से बहुत से तो कृषि वृद्धि बढ़ाने के लिए अपनाई गई नीति के प्रत्यक्ष परिणाम हैं। कृषि क्रियाओं से पर्यावरणीय क्षति न्यूनतम करने के लिए बहुत सी निश्चित नीतियां पहले भी क्रियान्वित की गई हैं। उत्सर्जन और असंतुलित क्षेत्रीय विकास के अनुसार पर्यावरणीय विकृतियों और असंतुलित क्षेत्रीय विकास भारत में कृषि प्रगति की उपलब्धि में स्पष्ट देखी गई है। यह विश्वव्यापी परिदृश्य है जिसमें जलवायु परिवर्तन में प्रतिकूल प्रभाव डालने के कारण आधुनिक कृषि क्रियाओं का योगदान अंतर्राष्ट्रीय चिंता का मामला बन गया है। विशेषकर भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्थाओं के संबंध में धारणीय कृषि क्रियाओं के अपनाने पर सामूहिक सहभागिता स्थापित करने के लिए रणनीतियों का पुनर्भिविन्यास करना आवश्यक है। आज एक ऐसी वैकल्पिक कृषि विधा की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ी जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति, रोजगार सृजन के माध्यम से जन-सामान्य के दरिद्रता निवारण तथा मिट्टी की उर्वरता एवं पारिस्थितिकी सभी स्थिति को संधृत रख सके।

संदर्भ सूची -

भगवान देव एवं महेन्द्र राम, 2002, ''पर्यावरण विकास एवं जीवन की गुणवत्ता'', पूर्वांचल भूगोल पत्रिका, जौनपुर, अंक-8, पृष्ठ 41-48.

चौरसिया, वी0पी0 एवं लालता प्रसाद, 2013, ''फार्मिड एण्ड इंवायरमेंट मैनेजमेंट, वही, पृ0 171-174.

गोसाल जी0, एस0, 1996, ''ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट'', ट्रान्जेक्शन, पूने, अंक-18, सं0-4, पृष्ठ 1-15.

शुक्ला, संतोष कुमार एवं सिंह, शिवकान्त, 1992, ''एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम, क्रियान्वयन एवं सम्बद्ध समस्याएँ'', उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक-28, संख्या 1-2, पृ0 21-32.

सिंह, एल0, 1979, ''इंटीग्रेटेड रूरल डेवलपमेंट ए केश स्टडी ऑफ पटना डिस्ट्रिक्ट, बिहार'', नेशनल ज्योग्राफर वा0 14, नं0-2, पेज 193-2003.

हिन्द महासागर की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत

राकेश कुमार

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, पी0जी0 कॉलेज, गाजीपुर (उ0 प्र0)।

आज भारत हिन्द महासागर का सबसे बड़ा प्रगतिशील देश है। प्रतिरक्षा और व्यापार दोनों ही दृष्टियों से यह आवश्यक है कि भारत का नौसैनिक बेड़ा काफी सुदृढ़ हो, किंतु भारत की नौसैनिक सामर्थ्य इतनी नहीं है। नौसैनिक क्षमता में अभी भारत का स्थान अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी, जापान और स्वीडन के बाद आता है। हिन्द महासागरीय देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ आर्थिक स्थिति और सामरिक आवश्यकताएँ इतनी भिन्न हैं कि भारत के लिए सभी देशों से मधुर संबंध रखना आसान नहीं है, क्योंकि कई देशों में सैनिक अधिनायक शासन चल रहा है और श्रीलंका तटस्थ देश भी है और अफ्रीका के पिछड़े राष्ट्र और ऑस्ट्रेलिया जैसे उन्नत राष्ट्र भी हैं। हिन्द महासागर के इन तटीय राज्यों में भारत को विशिष्ट स्थान प्राप्त है क्योंकि हिन्द महासागर की स्थानीय सीमा का सबसे बड़ा भाग भारत के पास है, अतः भारत की अवहेलना नहीं की जा सकती है।

हिन्द महासागर के देशों में भारत की नौसैनिक शक्ति और सैनिक शक्ति सर्वाधिक है। बिना चुनौती के किसी भी राज्य का युद्धपोत भारतीय जल-सीमा में प्रविष्ट नहीं हो सकता है। हिन्द महासागर में भारत की भौगोलिक स्थिति और महत्व को पाश्चात्य शक्तियाँ भली-भाँति समझ गयी हैं। फरवरी, 1972 में ब्रिटेन के विदेश मंत्री डगलस ह्यूम ने कहा था कि हिन्द महासागर की सुरक्षा योजना में भारत को नींव के पत्थर की भूमिका निभानी है। भारत के पास ऐसी सुविधाएँ हैं जिनके माध्यम से वह हिन्द महासागर में होने वाले गतिविधियों पर दृष्टि रख सकता है। इस महत्वपूर्ण अवस्थिति के पश्चात् भी भारत के पास नौसैनिक बेड़ा अभी पाश्चात्य देशों और रूस के समान नहीं है। फिर भी एक तथ्य है कि हिन्द महासागर भारत की सुरक्षा और विदेशी नीति की एक प्रमुख कड़ी बन गया है।[1]

विदेशी सामरिक भागीदारी

भारत के पास आज रणनीतिक साझेदारी का एक बढ़ता हुआ सेट है जो रक्षा सहयोग के अधिक अनुरूप रूपों के लिए एक नींव के रूप में काम कर सकता है जो सीधे हिमालयी और समुद्री परिचालन अवधारणाओं का समर्थन करेगा।[2]

ऽ फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया और जापान के साथ समुद्री डोमेन जागरूकता पर सहयोग का विस्तार करें । हिंद महासागर में चीन की शांतिपूर्ण गतिविधियों की निगरानी करने की क्षमता बढ़ाने के लिए दिल्ली को पेरिस, कैनबरा और टोक्यो के साथ साझेदारी करनी चाहिए। भारत को नए एमडीए उपग्रह नेटवर्क के निर्माण के लिए फ्रांस के साथ काम करना जारी रखना चाहिए। फ्रांस के साथ अपने पारस्परिक पहुंच समझौते के आधार पर, भारत को रीयूनियन द्वीप के माध्यम से समुद्री गश्ती विमान को घुमाने की अनुमति लेनी चाहिए। इसके अलावा, दिल्ली को समुद्री गश्ती उड़ानों के लिए रीयूनियन द्वीप, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और कोकोस कीलिंग के त्रिपक्षीय पारस्परिक उपयोग की संभावना का पता लगाने के लिए फ्रांस और ऑस्ट्रेलिया के साथ चर्चा शुरू करनी चाहिए। अंत में, भारत को अपने स्वदेशी रक्षा प्रयासों में सहायता के लिए समुद्री निगरानी में जापानी तकनीकी सहायता और जानकारी का लाभ उठाना चाहिए।

- संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ उत्तोलन रक्षा संबंध। संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भारत के संबंधों में हिमालयी और समुद्री परिचालन अवधारणा दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रवर्तक के रूप में कार्य करने की क्षमता है। प्रमुख अवसरों में रक्षा व्यापार, क्षमता विकास और क्षमता निर्माण, नीति नियोजन और समन्वय, सूचना साझा करना और सैन्य अभ्यास शामिल हैं। अगले अध्याय में इनमें से प्रत्येक क्षेत्र का अधिक विस्तार से अन्वेषण किया जाएगा।

हिन्द महासागर ही भारत की प्राथमिकता हो बदलते वैश्विक परिदृश्य में अमेरिका भारत के नजदीक आ रहा है, जबकि चीन से उसकी दूरियां बढ़ गई हैं। अमेरिका की नेशनल सिक्योरिटी स्ट्रेटजी ने भी ऐसे ही संकेत दिए हैं। अमेरिका ने आस्ट्रेलिया, जापान और भारत के साथ बने क्वाडिलेटरल सहयोग को बढ़ाने पर जोर भी दिया है। इन सबके बीच भारत को कोई भी कदम उठाने से पहले दो पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

- चीन के बढ़ते दबदबे को रोकने के प्रयास में अमेरिका कहीं भारत का इस्तेमाल न करे, और
- भारत को प्रशांत महासागर के देशों के साथ संबंध बनाने से अधिक आवश्यक हिन्द महासागरीय क्षेत्र की रक्षा करना है।

विश्व-पटल पर भारत की भूमिका एक संतुलन-शक्ति की रही है। वैश्विक राजनीति में उसकी भूमिका के बढ़ने के साथ ही भारत और विश्व का हित इसी में है कि वह संतुलन बनाए रखे। हाल ही में भारत ने येरूशलम के मामले में अमेरिका के विरूद्ध जाकर ऐसा कर भी दिखाया है। हिन्द महासागर क्षेत्र में चीन धीरे-धीरे अपना विस्तार करता जा रहा है। हाल ही में उनकी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने भी इस बात के संकेत दिए हैं कि वह

अफ्रीका, पश्चिम एशिया एवं अन्य क्षेत्रों में अपनी सैन्य चौकियां स्थापित करने की संभावना तलाश कर रहा है। भारत के लिए यह एक प्रकार की चेतावनी है। उसे एडेन की खाड़ी से लेकर मल्लका जलडमरू मध्य तक के हिन्द महासागर क्षेत्र को संरक्षित करने पर विचार करना चाहिए। सबसे अच्छा तो यही है कि इसके लिए भारत अपनी क्षमता और सुरक्षा साधनों का मूल्यांकन करे।[3]

हिन्द महासागर या दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत के हितों की रक्षा के लिए अनेक देश शुभचिंतक बने हुए हैं। उन सबका ऐसा प्रयास मनभावन हो सकता है, परन्तु असलियत में तो भारत को चाहिए कि वह स्वयं ही अपने को इतना मजबूत बना ले कि उसे अपने क्षेत्र में किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता ही न पड़े। इसके लिए भारत को अपने पड़ोसी देशों को सर्वोच्च प्राथमिकता में निरंतर रखना चाहिए।

वैश्विक परिदृश्य में तीव्र गति से हो रहे रूपांतरण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि हिन्द महासागर वाकई में वैश्विक ताकतों की प्रतिस्पर्धा का अखाड़ा हो चुका है। विश्व की महाशक्ति जैसे अमेरिका, रूस, यूरोप और चीन इस क्षेत्र पर ऊर्जा एवम् हाईड्रोकॉर्बन से समृद्ध इस सागरीय क्षेत्र पर निगाहें लगाएं बैठी हैं और जमकर आर्थिक शोषण करने में लगी है। परिणामत: इस तथाकथित विकास की अंधी दौड़ में भारत के लिए अपने लिए उचित स्थान और प्रस्थिति की तलाश में लगा है। इसके पीछे भारत की यही मंशा रही कि एक ऐसी सामुद्रिक ताकत विकसित किए जाय ताकि भारतीय प्रशांत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली किसी भी शत्रुतापूर्ण परिस्थिति में या किसी भी आसन्न चुनौती की स्थिति में डटकर मुकाबला किया जा सके। इसलिए सामुद्रिक क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने और बनाए रखने के लिए निम्न अनुशंसाएं सही एवम् सक्षम साबित होगी।[4]

हिंद महासागर तेजी से क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में रणनीतिक और आर्थिक ध्यान का केंद्र बन रहा है और इसे गुरुत्वाकर्षण के उभरते केंद्र के रूप में माना जाता है, विशेष रूप से हिंद-प्रशांत के संदर्भ में। इस क्षेत्र की भू-राजनीति को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण कारकों में से एक चीन का असममित उदय और हिंद महासागर क्षेत्र में इसकी बढ़ती पैठ है। महासागर विश्व ऊर्जा उत्पादन और वैश्विक समुद्री व्यापार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत के लिए हिन्द महासागर का महत्व

इस महासागर का नामकरण इस बात को प्रमाणित कर देता है कि इसमें सबसे महत्वपूर्ण संबंध भारत का ही है। भारत की तटीय रेखा हिन्द महासागर ही निर्धारित करता है, क्योंकि इसको तीन ओर से महासागर विस्तृत रूप से घेरे हुए है। इसी से भारत को एक प्रायद्वीप माना जाता है। भारत के लिए हिन्द महासागर के महत्व को निम्न बिंदुओं के आधार पर आँका जा सकता है।

1. हिन्द महासागर पर किसी विदेशी शक्ति के प्रभुत्व का सीधा प्रभाव भारत की आर्थिक व्यवस्था पर पड़ सकता है। अत: उसे अपने राष्ट्रीय हितों व अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इस महासागर पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहिए।
2. भारत अपने लगभग 5,656 किलोमीटर लंबे तटीय क्षेत्र की समुचित रक्षा व्यवस्था की दृष्टि से इस महासागर की अनदेखी नहीं कर सकता। भारत पर तीन दिशाओं में समुद्री आक्रमणों की संभावना बनती है।
3. वह सत्य है कि अब तक भारत पर अधिकांश आक्रमण स्थल से ही होते रहे हैं फिर भी आज इस समुद्र से सशस्त्र आक्रमण की संभावनाएँ सर्वाधिक हैं, क्योंकि यह बड़े देशों की सैनिक शक्ति का अखाड़ा बन सकता है। ये शक्तियाँ भारत के मर्मस्थल को भेदने की क्षमता रखती है।
4. हिन्द महासागर में स्थित द्वीपों का भी अपना एक सामरिक महत्व है। अत: भारत को अपने 1,200 से भी अधिक द्वीपों की कारगार उपायों से रक्षा करने के साथ-साथ अपने 320 किलोमीटर समुद्री तट के आर्थिक क्षेत्र की भी रक्षा करनी है।
5. भारत का 80 प्रतिशत से भी अधिक व्यापार इसी समुद्री मार्ग से ही होता है एवं इसी के माध्यम से उनका लगभग 130 देशों के साथ व्यापारिक संबंध है, अत: उसे अपने इस व्यापार की समुचित सुरक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।
6. भारत के लिए तो इस महासागर का महत्व सर्वाधिक है ही, परंतु 40 से अधिक तटवर्ती देशों के साथ इस महासागर के माध्यम से राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध स्थापित हैं। अत: वह तटवर्ती देश सहज ही भारत से इस क्षेत्र में अधिक संबंध बनाए रखने की अपेक्षा करते हैं। अत: हिन्द महासागर का प्रभाव तथा नियंत्रण न केवल भारत के राष्ट्रीय हितों के संदर्भ में ही अपरिहार्य है वरन् ऐसा अन्य तटवर्ती देशों की रक्षा के लिए भी आवश्यक है।

भारत अपने सामुद्रिक मार्गों के विकास के लिए हिन्द महासागर पर आश्रित है। क्योंकि तीन ओर से भारतीय तटों का स्पर्श हिन्द महासागर ही करता है। हिन्द महासागर के अतिरिक्त किसी अन्य सागर पर भारत अपने बंदरगाहों के लिए अवलंबित नहीं हो सकता। भारत का 80 प्रतिशत से भी अधिक व्यापार समुद्र द्वारा संपन्न होता है। तटवर्ती देशों में भारत की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि चीन के बाद वही सबसे अधिक क्षेत्रफल और सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। भारत के सामने यह गंभीर समस्या है कि वह हिन्द महासागर में महाशक्तियों की घुसपैठ को यथाशक्ति रोके। भारत अपने बलबूते पर तो ऐसा करने की अभी क्षमता नहीं रखता परंतु यह घुसपैठ के स्वर में अनय देशों के सहयोग से थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य ला सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत की हिन्द महासागर नीति की प्रमुख विशेषता यह रही है कि वह इस क्षेत्र को महाशक्तियों की सैनिक प्रतिद्वंद्विता से मुक्त रखना चाहता है

जिससे कि इस क्षेत्र के देश निर्भय होकर अपना विकास कर सकें। हिन्द महासागर के देशों के साथ भारत की नीति अच्छे संबंध/बनाए रखने की है। अपनी भौगोलिक उपस्थिति और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भारत को हिन्द महासागर में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। हिन्द महासागर में भारतीय प्रभाव का विस्तार और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का प्रश्न भारतीय कूटनीति और विदेश नीति से भी अधिक भारत द्वारा किए जाने वाले शक्ति के अर्जन से जुड़ा है। भारत में 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम 'देसी अधिविन्यासित, विकसित एवम् उत्पादित' (IDDM) (इंडिजेनसली डिजाइन्ड, डेवलप्ड एण्ड मैन्यूफैक्चर्ड) उपागमों के द्वारा शुरू की गई। इससे सेना के आधुनिककरण में मदद मिली।[5] दूरदर्शी दस्तावेज के रूप में 'इंडियन नेवल इंडिजेनाईजेशन प्लान' के नाम से जानी जाती है जिसकी शुरूआत सन् 2015 से शुरू की गई और इसके पूरा होने का लक्ष्य सन् 2030 तक रखा गया। इस कार्यक्रम ने इस आवश्यकता को महसूस कराया कि भारतीयों के लिए कई प्रयुक्त प्रणालियों को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि देसी प्रयासों के द्वारा भारतीय सामुद्रिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

संदर्भ

1. वसीन, वी0 के0, सुपर पावर रायविलरी इन द इण्डियन ओशन, नई दिल्ली, पृ0 10
2. शर्मा डॉ0 प्रभुदत्त, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, जयपुर, पृ0 985
3. शर्मा डॉ0 प्रभुदत्त, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, जयपुर, पृ0 335
4. सुब्रह्मण्यम, के0, इण्डियन ओसन ऐज ए जोन ऑफ पीस, इण्डियन जर्नल ऑफ डिफेन्स स्टडीज, स्पेशल इश्यू, इलाहाबाद, 1982, पृ0 10
5. https://www.hindustantimes.com

बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के मध्य सह-सम्बन्ध का अध्ययन

जय सिंह

शोधार्थी, शिक्षक शिक्षा विभाग, रणवीर रणन्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अमेठी, उ0प्र0

डॉ० प्रमिला

(शोध निर्देशिका) प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, रणवीर रणन्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अमेठी, उ0प्र0

प्रस्तावना

आध्यात्मिक-बुद्धि मानवीय गुणों के विकास के लिए आवश्यक है। आध्यत्मिक-बुद्धि का सम्बन्ध मानव के स्वरूप या सहज स्वभाव से होता है। गीता में कहा गया है कि, ''हमारा स्वभाव ही अध्यात्म'' है। हमारा मूल स्वभाव बालवत् अर्थात् सहज, सरल एवं वात्सल्ययुक्त है। इन गुणों के कारण ही हम मानव कहलाने के अधिकारी हैं। यही कारण है कि, यदि बालक में मानवीय गुणों का विकास करना है, तो उसके आध्यात्मिक-बुद्धि का विकास आवश्यक है। आध्यात्मिक-बुद्धि लोक-संग्रह के लिए सक्रिय होता है और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय के सूत्र को प्रतिस्थापित करने के लिए यत्न करता है। आध्यात्मिक-बुद्धि के विकास के बिना जन-कल्याण एवं सामाजिक प्रगति में मानव-भूमिका की कल्पना भी नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि, शिक्षा के सामाजिक सरोकार की पूर्ति के लिए शिक्षाशास्त्रियों ने आध्यात्मिक-बुद्धि के विकास पर विशेष बल देते रहे हैं। प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा- प्रणाली में इसे सर्वोच्च स्तर पर रखा जाता था।

आध्यात्मिक-बुद्धि मनुष्य को स्वयं में स्थिर रहना, बाह्य इन्द्रिय विषय-भोगों में अनासक्त रहना, कामनाओं का सम्पूर्ण परित्याग करने, अपने आप में संतुष्ट रहने, संतोषी वृत्ति, समत्व-बुद्धि, निश्चयात्मक बुद्धि की ओर अग्रसरता को मानव जीवन का लक्ष्य सुनिश्चित किया है। गीता में इसे स्थितप्रज्ञ कहा गया है। आध्यात्मिक बुद्धि आत्मिक बुद्धि होती है, जो हमारे आन्तरिक स्वरूप- आत्मा; से साक्षात्कार कराती है। आध्यात्मिक बुद्धि ही व्यक्ति को आत्मानुभूति व स्वानुभूति करा सकती है। आध्यात्मिक बुद्धि व्यक्ति में पवित्रता, निर्मलता, सूचिता, परिष्कारिता, उज्ज्वलता, सात्विकता आदि सद्गुणों का विकास कराती है। इसमें अनासक्त भाव, अपरिग्रह की भावना तथा ममत्व, सेवा भावना, परोपकार आदि गुण समाहित होते हैं। ज्ञान स्वयं में पवित्रता का प्रतीक है, जिसे निरंतरता प्रदान करने में आध्यात्मिक बुद्धि सहायक होती है। अतः ज्ञान और आध्यात्म में अभिन्न सम्बन्ध है। हमारे मनिषियों ने उद्घाटित किया है कि, 'विज्ञान के ज्ञान का अन्त आध्यात्म ज्ञान का आरम्भ है'। स्पष्टतः, ज्ञात ज्ञान के स्रोत एवं मूलाधार का अन्वेषण आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा किया जाता है और इसीलिए शिक्षाशास्त्री आध्यात्मिक बुद्धि के अध्ययन को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं[1]।

आध्यात्मिक बुद्धियुक्त मानव निष्काम कर्म, निष्कामभाव से आत्मलीन होकर कार्य करता है। आत्मबुद्धि वाले मनुष्य की प्रज्ञा संकल्प-विकल्पों से मुक्त होती है। वह व्यक्ति स्थिरप्रज्ञा या आत्मिक बुद्धि वाला हो जाता है। स्थिरप्रज्ञता अथवा वीतरागता की साधना वाला व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है, क्योंकि वह सदा आत्मा में रमा होता है। ऐसे व्यक्ति के आचरणों में दिव्यता की ऊँचाई होती है और उसके समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जो मनुष्य मुझे प्राप्त हो कर लेता है, वह इन्द्रिय विषयों का त्याग करके समबुद्धि वाला हो जाता है। वह सुख-दुःख, जय-पराजय, मान-अपमान इत्यादि परिस्थितियों को एक समान स्वीकारता है, इन स्थितियों में सम रहता है।

आध्यात्मिक बुद्धि वाला व्यक्ति विनम्रता, करूणा, व्यापक दृष्टिकोण और नेतृत्व के गुणों से परिपूर्ण होता है और सदा लोकहित या लोकसंग्रह के लिए यत्न करता है। उसके लिए कोई शत्रु या मित्र नहीं होता और नहीं वह किसी से अतिरेक घृणा या प्रेम करता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने शत्रु के प्रति भी करूणा का भाव रखता है। आधुनिक शिक्षा में बौद्धिक विकास पर अधिक जोर दिया जाता है, तो आध्यात्मिक शिक्षा मानवोचित नैतिक विकास पर जोर देता है।[2]

आध्यात्मिक बुद्धि का मात्र धार्मिकता से ओत-प्रोत नहीं होती; बल्कि यह मानव मस्तिष्क, मन तथा आत्मा की आन्तरिक तथा अन्तरंग क्षमता के विकास से सम्बद्ध है। यह व्यक्ति की संज्ञानात्मक और संवेगात्मक बुद्धि का मागदर्शन कर सही दशा और दिशा प्रदान करती है। अध्यात्म अहंकार व स्व के विकारों से परे है। आध्यात्मिक नेतृत्वकर्त्ता प्रेमपूर्ण, दयालु, क्षमाशील, शांतिपूर्ण, साहसी, ईमानदार, उदार, श्रद्धायुक्त, बुद्धिमान और प्रेरणादायक गुणों को धारण किये होता है। इसी तरह वह तटस्थ, आस्थावान तथा कर्मशील होता है। आध्यात्मिक बुद्धि दूसरों को समझ की योग्यता का प्रतिनिधित्व करती है, तो भावनात्मक बुद्धि स्वयं अपनी श्रेष्ठ भावनाओं और दूसरों को प्रभावित करने की दक्षता का प्रतिनिधित्व करती है। आध्यात्मिक बुद्धि विवेक और करूणा के साथ व्यवहार करते समय विविध अनुकूल- प्रतिकूल परिस्थितियों में अन्त: एवं बाह्य शान्ति बनाये रखने में सक्षम होता है। इस तरह का सामर्थ्य श्रमण में देखा जाता है।

धींग दिलीप के विचार में, "श्रमण का अर्थ होता है श्रमपूर्वक जीवन जीने वाला अर्थात् आत्मनिर्भर व्यक्ति। जैन धर्म में श्रमण और श्रमणियों के जीवन में आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बन और साधना के दर्शन होते हैं। उनके प्रत्येक कार्य में पवित्रता, शुचिता और सात्विकता की ऊँचाई होती है और आध्यात्मिक बुद्धि का प्रखर स्वरूप उसमें पाया जाता है।"[3]

जैन धर्मचन्द कहते हैं कि, "मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है। उसके द्वारा बुद्धि का सदुपयोग व दुरूपयोग दोनों संभव है। जब बुद्धि का ज्ञान इन्द्रियों के ज्ञान की सीमा को जान लेता है तथा मन एवं इन्द्रियों को विकृत होने से बचाता है, तो वह बुद्धि का सदुपयोग है। जब हम अपने अधिकार व दूसरों के कर्त्तव्यों पर दृष्टि रखते हैं, तो बुद्धि का दुरूपयोग है। सदुपयोग करने वाली बुद्धि विवेक सम्पन्न एवं प्रज्ञाशील होती है। विवेक सम्पन्न बुद्धि वस्तु में होने वाले सतत् परिवर्तन का दर्शन कराती है। उसके प्रति अनासक्ति का भाव उत्पन्न करती है।"[4]

उपर्युक्त विश्लेषण के तारतम्य में वर्तमान शोध पत्र में बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक संम्प्राप्ति एवं उनकी आध्यात्मिक बुद्धि कि मध्य सह-सम्बंध का अध्ययन किया गया है।

अवधारणात्मक स्पष्टीकरण

1. बी0एड0 प्रशिक्षणार्थी: बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों से तात्पर्य जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालयों में अध्यानरत् बी0एड0 के द्वितीय वर्ष के प्रशिक्षणार्थियों से है।
2. लिंग भेद: यहाँ लिंग भेद से तात्पर्य बी0एड0 के छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं से है।
3. विषय: प्रस्तुत शोध कार्य में विषय से तात्पर्य बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों का कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं से है।
4. शैक्षिक सम्प्राप्ति: शैक्षिक सम्प्राप्ति किसी दिये गये कार्य क्षेत्र में छात्रों की सापेक्षिक सम्प्राप्ति को एक मात्र प्राप्तांक से व्यक्त करने के लिए बनाये गये परीक्षण के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के बी0एड0 के प्रथम वर्ष में प्राप्त अंकों से है।
5. आध्यात्मिक बुद्धि: आध्यात्मिक बुद्धि से तात्पर्य एक ऐसी बुद्धि से है जिसमें व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर ले जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रो0 रूकैया जैनुद्दीन और अन्जुम अहमद द्वारा निर्मित आध्यात्मिक बुद्धि परीक्षण का प्राप्त अंक ही प्रशिक्षणार्थियों के आध्यात्मिक बुद्धि को निर्धारित करेंगे।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध में निम्नांकित दो उद्देश्यों का निर्धारण किया गया था।

1. बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों का लिंग भेद के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एंव अध्यात्मिक बुद्धि के बीच सह-सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों का विषय के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एंव अध्यात्मिक बुद्धि के बीच सह-सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

प्रस्तुत शोध में निम्नांकित दो परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया गया है-

परिकल्पना-1: बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई सार्थक सह-सम्बन्ध नहीं है।

परिकल्पना-2: बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का विषय के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई सार्थक सह-सम्बन्ध नहीं है।

प्रयुक्त उपकरण

बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के लिग भेद एव।विषय के परिप्रेक्ष्य में उनकी शैक्षिक सम्प्राप्ति का आध्यात्मिक बुद्धि से सम्बन्ध के संज्ञानार्थ प्रोफेसर रोकैया जैनुद्दीन तथा मि. अंजुम अहमद द्वारा निर्मित ^Roqan Spritual Intelligence Test- RSIT* मापनी को प्रयोग में लाया गया है।

परिणाम एवं विवेचन

प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाओं- 1 एवं 2 के परीक्षणार्थ सांख्यिकीय विश्लेषण निम्नलिखित तालिकाओं में प्रस्तुत है।

तालिका संख्या- 1: बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के बीच सह-सम्बन्ध सम्बन्धी सारणी

प्रशिक्षणार्थी	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात (Critial Ratio)	सार्थकता स्तर*	स्वीकृत/ अस्वीकृत
कक्षाध्यापिका	300	137.73	34.18	5.52	.05 स्तर – 1.67	अस्वीकृत
कक्षाध्यापक	300	111.43	18.90		.01 स्तर – 2.39	अस्वीकृत

* सार्थक अन्तर है। df =k N_1+N2-2; 300+300-2 =k 598

तालिका संख्या- 1 के अवलोकन से विदित है कि, बी.एड. प्रशिक्षार्थियों के कक्षाध्यापिका और कक्षाध्यापकों के लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि एवं शैक्षिक सम्प्राप्ति सम्बन्धी सांख्यिकीय मध्यमानों की गणना में मध्यमान क्रमशः 137.73 तथा 111.43 और मध्यमानों के आधार पर मानक विचलन क्रमशः 34. 18 तथा 18.90 प्राप्त हुआ है। दोनों समूहों के बी.एड. प्रशिक्षार्थियों के मध्यमानों एवं मानक विचलनों के आधार पर क्रांतिक अनुपात मान 5.52 प्राप्त हुआ है। डीएफ 598 स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता मान 1.67 एवं .01 स्तर पर सार्थकता मान 2. 39 है। अतः बी.एड. के कक्षाध्यापिकाओं एवं कक्षाध्यापकों में लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि का स्तर समान नहीं है। इसके कारणों में कक्षाध्यापिकाओं का संवेगात्मक रूप में संवेदनशील होना है, जिससे वे व्रत, उपवास, ईश्वर में विश्वास, आध्यात्मिक-धार्मिक कथाओं का श्रवण-मनन, माता-पिता, सास-ससुर के प्रति सम्मान की भावना इत्यादि की ओर प्रवृत्त होती हैं; जबकि कक्षाध्यापकों का इनके प्रति अपेक्षाकृत कम झुकाव होता है और ये अधिक यथार्थवादी व तार्किक प्रवृत्ति के होते हैं। कुल मिलाकर बी.एड. के कक्षाध्यापिकाओं एवं कक्षाध्यापकों की आध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया है। अतः निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

तालिका संख्या- 2: बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों का विषय के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं आध्यात्मिक बुद्धि के बीच सह-सम्बन्ध सम्बन्धी तालिका

प्रशिक्षणार्थी	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात (Critial Ratio)	सार्थकता स्तर*	स्वीकृत/ अस्वीकृत
कक्षाध्यापिका	300	141.23	35.18	5.22	.05 स्तर – 1.67	अस्वीकृत
कक्षाध्यापक	300	135.63	21.45		.01 स्तर – 2.39	अस्वीकृत

*सार्थक अन्तर है। df =k N_1+N2-2; 300+300-2 =k 598

तालिका संख्या- 2 के अवलोकन से विदित है कि, बी.एड. प्रशिक्षार्थियों के कक्षाध्यापिका और कक्षाध्यापकों के विषय के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि एवं शैक्षिक सम्प्राप्ति सम्बन्धी सांख्यिकीय मध्यमानों की गणना में मध्यमान क्रमशः 141.23 तथा 135.63 और मध्यमानों के आधार पर मानक विचलन क्रमशः 35. 18 तथा 21.45 प्राप्त हुआ है। दोनों समूहों के बी.एड. प्रशिक्षार्थियों के मध्यमानों एवं मानक विचलनों के आधार पर क्रांतिक अनुपात मान 5.22 प्राप्त हुआ है। डीएफ 598 स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता मान 1.67 एवं .01 स्तर पर सार्थकता मान 2. 39 है। अतः बी.एड. के कक्षाध्यापिकाओं एवं कक्षाध्यापकों में विषय के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि का स्तर समान नहीं है। इसके मूल में जाने पर विदित है कि, कक्षाध्यापिकाओं का नैसर्गिक रूप में झुकाव धर्म-अध्यात्मक की ओर होता है, जिसके चलते उनमें विचलन के तत्त्व पुरुषों की अपेक्षा कम मात्रा में पाया जाता है। परिणामस्वरूप वे स्थिर होकर अध्ययन- अध्यापन में सतत् लगी रहती हैं और इसी कारण इनका क्रांतिक कक्षाध्यापकों में बेहतर पाया गया। निष्कर्षतः बी0एड्0 के कक्षाध्यपिकाओं एवं कक्षाध्यापकों की अराध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया है। अतः निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जे०सी०, उदीयम्यन भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा 2010 पृ01

2. भटनागर, सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुकडिपो, मेरठ, 1977 पृ0 34. 24

3. घींग, दिलीप, जिनवाणी, हिंदी मानिक पत्रिका, सम्यज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, मार्च 2018.90 60.

4. जैन धर्मचन्द, उपर्युक्त, फरवरी 2018 पृ0 5-6. 23.

समकालीन दलित आलोचना में हिंदी दलित आलोचकों की भूमिका

डॉ० मुकेश कुमार कन्नौजिया

असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वी०वी०पी०जी० कॉलेज, शामली, उ०प्र०

साहित्य की एक निश्चित पैमाने पर समीक्षा करने को आलोचना कहा जाता है। जहाँ आलोचना का प्रमुख कार्य साहित्यिक कृतियों के गुण-दोष का उदाहरण सहित विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है, वहीं आलोचना अपने समय और परिवेश के सन्दर्भ में किसी कृति के अन्तस्थल तक पहुँचने का माध्यम भी है।

हिन्दी दलित साहित्य की आलोचना सामान्य आलोचना से कुछ भिन्न है। यहाँ दलित साहित्य का आलोचक एक तटस्थता के साथ कृति के अन्त:स्थल तक जाकर उसके मर्म को उजागर करता है जिसमें दलित लेखकों के द्वारा रचित कृतियों की, विशेषकर दलित आलोचकों के द्वारा की गई आलोचना के सन्दर्भ में बात की गई है। पिछले कुछ समय से हिन्दी में भी दलिते आलोचनाएं उभरकर सामने आयी हैं जिनमें विशेषकर दलित लेखक-लेखिकाएँ परस्पर रक्ताओं की समीक्षा लिखते रहे हैं। इनमें एक ओर प्रमुख रूप से प्रगतिशील समझे जाने वाले बड़े लेखकों की रचनाओं के बारे में कुछ स्थापनाओं को चुनौती देने की बात सामने आती है वहीं दूसरी ओर बड़े दलित कवियों को द्विज आलोचकों के कब्जे से बाहर निकालने का कार्य भी दलित आलोचना में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

हिन्दी दलित आलोचकों की भूमिका: दलित आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचकों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित आलोचक कर्मकाण्डी अन्धविश्वासी, पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर भाग्य भगवान् जैसी बातों को मानने के पक्षधर नहीं है क्योंकि दलित साहित्य में जाति आधारित शोषण, दमन, उत्पीड़न के खिलाफ विरोध का भाव अभिव्यक्त हुआ है। अत: इस साहित्य की भाषा कड़वाहट, आक्रोश और संघर्ष से भरी हुई है जो गैर दलित विचारकों की रचना पद्धति से परे है। दलितों की मान्यता है कि दलित साहित्य का सही 'आलोचक दलित ही हो सकता है।

सौन्दर्यशास्त्र पर लगातार काम करते रहने की जरूरत है। जो एक किताब या एक व्यक्ति के द्वारा नहीं बनाया जा सकता है। यह एक सामूहिक विचार है, जो एक प्रक्रिया के तहत ही रचनात्मक रूप ग्रहण करेगा। मैंने जब यह पुस्तक लिखी थी तो दलित विमर्श के नाम पर अनेक भ्रम फैलाए जा रहे थे। यह पुस्तक उन भ्रमों को दूर करने की कोशिश भर थी। उन पाठकों, लेखकों, आलोचकों के सामने एक खाका रखने का प्रयास किया था, जो दलित साहित्य के आन्दोलन में रुचि रखते हैं। दलित साहित्य सौन्दर्यशास्त्र की बुनावट पारम्परिक, पाश्चात्य और रामचन्द्र शुक्ल की अवधारणाओं से नि:सन्देह अलग होगी और किसी भी रचना को सामाजिक सन्दर्भों से जोड़गी। साहित्य का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन जरूरी है। दलित साहित्य, साहित्य और समाज के सम्बन्धों को ज्यादा गम्भीरता से लेता है। सौन्दर्यशास्त्र का जो स्वरूप बनेगा वही दलित साहित्य की ठीक-ठाक व्याख्या भी कर पायेगा।"[1]

वाल्मीकि जी की यह पुस्तक उन्हें एक अच्छे आलोचक के रूप में परिलक्षित करती है तथा दलित साहित्य के आलोचनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास भी इस पुस्तक में दलित चेतना के प्रत्येक पहलू पर विस्तार से विश्लेषण किया है। यह बात भी सही है कि वाल्मीकि जी का यह प्रथम प्रयास था। इसी प्रयास के साथ वाल्मीकि जी ने एक तरह से भिन्न प्रकार की दलित साहित्य आलोचना पद्धति की माँग को पूरा किया तथा एक आलोचक के रूप में उनका यह प्रयास दलित साहित्य के सारे सरोकारों को उसी स्थिति में पहुँचाना और उसी रूप में व्याख्यायित करना है, जिस स्थिति में भारतीय समाज के अन्दर दलित समाज के साथ होता रहा है।

डॉ. एन. सिंह: डॉ. एन. सिंह ने कविता, गजल, नाटक, शोध, विश्लेषण तथा आलोचना आदि सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई तथा आलोचक, विचारक और दार्शनिक होने पर भी उन्होंने कवि की भूमिका निभाई। उनकी आलोचना का पैनापन भी कविता को चमक प्रदान करता है। उनका सही नाम नगीना सिंह है। रमणिका गुप्ता ने अपनी पुस्तक में डॉ. एन. सिंह के बारे में लिखा है कि "हिन्दी दलित साहित्य अपने खोल से बाहर आकर अपने पंख फड़फड़ा कर दबी आवाज में जब चहचहाने का प्रयास कर रहा था तब डॉ.एन. सिंह ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने इन नवजात शिशु को सहलाया, पोषा और उड़ने की केवल विधाएँ ही नहीं बताई बल्कि की उड़ान के लिए एक अपने आकाश के निर्माण की योजना भी बनाई जहाँ वह मुक्त, निर्बाध स्वतन्त्र होकर उड़े और ऊँची उड़ान भरने का सपना पाल सके।"[2]

डॉ. एन. सिंह स्वयं दलित साहित्य के महान हस्ताक्षर तो हैं ही साथ ही उन्होंने अन्य दलित साहित्यकारों की रचनाओं से परिचित करवाने का बीड़ा भी उठाया है। इनके आलोचनात्मक ग्रन्थों में 'दलित साहित्य: चिन्तन के विविध आयाम', 'सन्त कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेश' है।

'सन्त कवि रैदास: एक मूल्यांकन और प्रदेय' नामक ग्रन्थ में दलित साहित्य एवं दलित चेतना का साहित्य दोनों को अलग किया है और एक नवीन अवधारणा भी स्पष्ट की है कि "दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, शेष साहित्य दलित सहानुभूति या दलित-चेतना का साहित्य है।"[3]

हिन्दी के महान विचारक और चिन्तक पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है कि, "वैचारिक कर्म की इस मशाल को नया तेल देकर नयी जोत देने का यह प्रयास एक ओर जहाँ एक वर्ग विशेष को अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराएगा वहीं दूसरी ओर आलोचना के नये कीर्तिमान भी स्थापित करेगा।"[4]

दलित साहित्य के बारे में डॉ. एन. सिंह स्वयं कहते हैं कि, "मेरी मान्यता है कि दलित चिन्तन एक दर्शन भी है जो हमें वह दृष्टि देता है कि हम समकालीन घटनाक्रम को दलित हित की दृष्टि में देखें और जानने का प्रयास करे कि भविष्य में अमुक घटना का दलित जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। और अगर यह प्रभाव प्रतिकूल है तो उससे बचने का क्या रास्ता है। हमारी दृष्टि जितनी पारदर्शी और दूरदर्शी होगी हमारा लेखन उतना ही सार्थक व प्रभावी होगा।"[5]

इसलिए कहा जा सकता है कि डॉ. एन. सिंह के रूप में दलित साहित्यकारों के बीच ऐसा समीक्षक नहीं होता तो दलित साहित्य का इतना प्रचार-प्रसार नहीं होता। यह बात शतप्रतिशत खरी भी उतरती हैं।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम: हिन्दी दलित साहित्य को सामने लाने व उसको स्थापित करने में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का जाना पहचाना नाम है। उन्होंने दलित साहित्य के चुनियादी सारोकारों को उजागर किया तथा दलित साहित्य को एक दिशा प्रदान की। उन्होंने दलित साहित्य को लेकर अनेक प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित की। दलित साहित्य के बारे में लिखते हैं कि, "दलित साहित्य दलित आन्दोलन का एक हिस्सा है। यह शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध एक हथियार है। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य दलित समाज में जातीय स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना पैदा करना, उसको उसकी क्षमता और सम्भावनाओं से परिचित कराना तथा आगे बढ़ने और प्रगति करने के लिए प्रेरित करना और उसका मार्गदर्शनकरना है।"[6]

डॉ. जयप्रकाश कर्दम की आलोचना कृति 'इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन साहित्य एवं समाज चिन्तन' में दलितों की वर्ण जाति की समस्या, समाज में उनके मान- सम्मान एवं स्वीकृति की समस्या तथा सवर्णों द्वारा घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार के पात्र होने के कारण दलित हमेशा हीनता का भाव महसूस करते हैं, जिससे वे जीवन भर उभर नहीं पाते हैं। ऐसी दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण कर दलितों से जुड़ी ज्वलन्त समस्याओं को तार्किकता के साथ उठाया है। जयप्रकाश कर्दम का आलोचनात्मक ग्रन्थ- 'धर्मान्तरण और दलित' में दलित विचारकों, सामाजिक चिन्तकों, पत्रकारों तथा अनेक लेखकों के लेख संकलित है जिसमें धर्म तथा धर्मान्तरण जैसे ज्वलन्त मुद्दों पर खुल कर चर्चा की है। जयप्रकाश कर्दम जी का नवीन आलोचनात्मक ग्रन्थ श्री लाल शुक्ल कृत राग दरबारी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि आज राजनीतिक वर्चस्व, जो सामान्यत: गाँवों से लेकर महानगरों तक समान रूप से अपने विकृत रूप में फैल गया है तथा इसमें सामाजिक बदलाव जितना तेजी से हो रहा है उतना हो समाज में भ्रष्टाचार फैल रहा है। चरित्रता और नैतिकता का धीरे-धीरे पतन होता जा रहा है। इन सारी समस्याओं पर इस कृति में विश्लेषण किया गया है जो वर्तमान समय में भारतीय परिवेश को समझने की एक नई दृष्टि प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि, "आज सबसे बड़ी सच्चाई झूठ है, सबसे बड़ा पुरुषार्थ भ्रष्टाचार है, सबसे बड़ी नीति अनीति है। समाज में सब चोर है, सब रिश्वत लेते हैं, सब छल फरेब या धन और लाठी की ताकत से अपने अभिमान में विजयी होते हैं।"[7]

रमणिका गुप्ता: रमणिका गुप्ता दलित साहित्य की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। साहित्य के प्रति इनका योगदान प्रशंसनीय है। ये स्वयं दलित जन्मना न होते हुए भी एक सशक्त दलित साहित्यकार बन जाना अपने आप में अनूठी मिशाल हैं। इन्होंने दलित समाज की उस स्थिति को जाना जहाँ दलित समाज पीड़ा और संत्रास में व्यथित हो रहा था। उसी के अनुरूप उनकी भाषा विकसित हो रही हैं। इसके बारे में इन्होंने कहा है कि, "दलित साहित्य को दलित लिखता है। वह वंचनाओं, निषेधों, प्रतिबन्धों और अवरोधों के बीच जिन्दा रहने का आदी होता हैकृ इस साहित्य को वह लिखता है जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा है, कल्पना के आकाश पर नहीं। इसलिए उनकी भाषा कुलीन नहीं हो सकती।"[8]

रमणिका गुप्ता का आलोचनात्मक ग्रन्थ- 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार?' है जिसमें उन्होंने मार्क्सवाद और दलित साहित्य के मध्य अन्तर्विरोधों की पड़ताल की है और दलित साहित्य एवं दलित अस्मिता पर आर्थिक उदारीकरण व खगोलीकरण के प्रभावों पर भी विचार किया है तथा नारीवादी साहित्य और दलित साहित्य के बीच समानता के प्रश्न को उठाकर एक नये विमर्श को स्थान दिया है। इनकी आलोचक दृष्टि में आक्रोश और विद्रोह जैसे स्वर भी दलित लेखक की तरह ही मुखरित हुए हैं। इस प्रकार डॉ. रमणिका गुप्ता ने चेतना, रचना, समाज और बहस के साथ अनेक लेखों को संकलित कर इस आलोचना की रचना की है।

डॉ. धर्मवीर: समकालीन दलित आलोचक एवं प्रशासनिक अधिकारियों में डॉ. धर्मवीर का नाम अग्रणी है। ये दलित प्रशासक अधिकारी होने के साथ-साथ एक सफल और नवीन रूप में आलोचना लिखकर पाठकों का ध्यान एकीकृत करने वाले प्रथम दलित आलोचक हैं।

डॉ. धर्मवीर का आलोचनात्मक ग्रन्थ, 'कबीर के आलोचक' है। इनकी अधिकतर रचना कबीर पर ही है तथा कबीर के मामले में इनकी कलम कैमरे का काम करती हैं। डॉ. धर्मवीर से पूर्व

कबीर को आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, श्याम सुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने ब्राह्मणवादी बताया है जिसका डॉ. धर्मवीर ने तर्क और सन्दर्भ के साथ कबीर को दलित घोषित कर दीन, दु:खी और पीड़ितोंका उद्धारक बताया है। कबीर को तुलसी के मुकाबले खड़ा कर यह भी साबित कर दिया है कि कबीर परिवर्तन के प्रतीक थे और तुलसी यथास्थितिवाद के पोषक थे।

डॉ. धर्मवीर ने कबीर को दलित बताकर दीन, दु:खी व पीड़ितों की सहायता करके लोगों के जीवन को सुधारने की कोशिश की। अत: कहा जा सकता है कि डॉ. धर्मवीर के साहित्य को पढ़ने के बाद दलितों की पीड़ा और दु:ख-दर्द से लेखक दूर रहकर भी साहित्य का सृजन करने में सफल रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।

कँवल भारती: कंवल भारती दलित साहित्य के जाने-माने साहित्यकार, पत्रकार एवं एक दलित चिन्तक है। उनकी रचनाओं में दलित का संघर्ष खुलकर सामने आया है। वे अम्बेडकरवादी विचारक, आलोचक और पत्रकारिता में दलित विमर्श के पुरोहित हैं। वे लिखते हैं कि, "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया है, जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है।"[9]

कंवल भारती ने अपनी आलोचना में दलित विमर्श पर ज्यादा जोर दिया है। वे दलितों की सामाजिक आर्थिक समस्याओं के बारे में लिखते हैं कि, "दलित विमर्श जिस सिद्धान्त को विकसित करता है, यह भारत के लोगों के बारे में सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने के सम्बन्ध में है। दलित समस्या को हल किए बिना आम दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बेहतर नहीं कर सकते। सबसे बड़ी दिक्कत इस हिन्दू समाज के साथ यह है, यहाँ धर्म, संस्कृति, राष्ट्रवाद में आए बिगाड़ को तो राष्ट्रीय समस्या माना जाता है परन्तु दलितों की समस्याओं को कर्म या वर्णवाद के आधार पर रखा जाता है।"[10]

उनकी पुस्तक 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज', जो शोधात्मक कृति है। इस पुस्तक को ठीक से पढ़ने के बाद दिमाग की उस प्रकार की गन्दगी साफ हो जाती है जो धर्म के जरिए भरी गई थी।।

पत्रकारिता के अन्तर्गत भी उन्होंने राजनीति और दलित विमर्श की बात की है। तथा अपने तर्क, चिन्तन और विचारों के माध्यम से दलित आलोचना के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'सन्त रैदास एक विश्लेषण' नामक आलोचना के निवेदन में कंवल भारती लिखते हैं कि, "दलित साहित्य ने अभी घुटनों के बल फिर से चलना शुरू किया है। वह अब प्रौढ़ होकर हिन्दी साहित्य के समकक्ष खड़ा होगा, तो मुझे विश्वास है कि विद्वान् उसकी प्रतिबद्धता के मूल्य को एक दिन पहचानेंगे।"[11]

मोहनदास नैमिशराय: मोहनदास नैमिशराय जी दलित रचना और विचार की दुनिया के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इन्होंने दलित साहित्य को मात्र साहित्य नहीं माना, बल्कि सोते हुए लोगों को जगाने का सशक्त प्रयास माना। वे लिखते हैं कि, "दूर बैठकर कल्पना के आधार पर दलितों की पीड़ा के वर्णन को दलित साहित्य कहना न्यायसंगत नहीं है। यह बिल्कुल ऐसे ही होगा जैसे दलित शोषितों को दूर से फेंककर रोटी दान करना, जबकि दलित वर्ग के दूर लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अधार पीड़ा रही। आक्रोश का ज्वार बार-बार उफनता रहा, इसलिए कि वे सामाजिक विषमता के भुक्तभोगी थे।"[12]

मोहनदास नैमिशराव जी की रचना 'हिन्दी दलित साहित्य' ने दलित साहित्य को समग्रता से सामने लाने का सराहनीय प्रयास किया है। इस रचना में राजनीतिक परिवर्तनों के आधार पर दलित साहित्य के विभिन्न चरणों का सुव्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत किया है। इनकी रचना के सन्दर्भ में जयप्रकाश कर्दम जी कहते हैं कि "कोई भी इतिहास लेखन अतीत पर बहुत ज्यादा निर्भर होता है, लेकिन नैमिशराव इस पुस्तक में इस तिलिस्म को तोड़ते हैं और वर्तमान को बहुत गहराई से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने पुस्तक में कई तथ्यात्मक त्रुटियों की तरफ लेखक का ध्यान खींचते हुए कहा कि कोई भी इतिहास अन्तिम नहीं होता और उसमें सुधार की गुंजाईश लगातार बनी रहती है।"

इस तरह उन्होंने आलोचनात्मक ग्रन्थ के साथ दलित साहित्य को लेकर अनेक लेखों की रचना की है। नैमिशराय जी ने अपने आलेख 'हिन्दी में दलित साहित्य की उपस्थिति एक पड़ताल' में व्यक्त किया है कि, "उत्तर में कबीर आये, नानक आये, रैदास आये पर ज्योतिबा फूले और बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्तित्व न आये। यह हमारे लिए अफसोस की बात क्यों नहीं होनी चाहिए। हमने तो ज्योतिबा फूले और बाबा साहेब का जन्म होते ही उन्हें अपना मान लिया था। उनके विचारों को आत्मसात किया था। हमें लगा था कि उन्होंने हमारे ही घर में जन्म लिया था। मेरा घर, मेरी बस्ती, मेरा नगर ही क्यों, सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में हमने क्रान्तिकारी आह्वान किया था।[13]

इस प्रकार मोहनदास नैमिशराय एक महान दलित साहित्य चिन्तक एवं सुप्रसिद्धदलित आलोचक की भूमिका में थे।

श्यौराज सिंह बेचौन: श्योराज सिंह बेचौन दलित साहित्य के उभरते साहित्यकार है। साथ ही एक प्रसिद्ध दलित आलोचक और समीक्षक भी। उन्होंने किसान आन्दोलन की यूनियन और दलित आन्दोलन में काम किया। श्यौराज सिंह बेचौन जी का मानना है कि दलित विमर्श समान्तर विमर्श के रूप में आया है। उन्होंने कहा है कि, "भारतीय समाज विविधताओं का समाज है जहाँ आहार-विहार, रोटी-बेटी के रिश्ते, धर्म जातियों के भेद, जन्म और मौत तक की यात्राएं अपने ही जाति समूहों में सीमित है। वहाँ समाज के सबसे ऊपरी स्तर का व्यक्ति - सबसे निचली सीढ़ी के समाज के साथ अंतरंगता स्थापित कर लेता है, यह सामान्य बात नहीं है। गाँधी जी

की अपीलों और सुधारकों की कोशिशों के बावजूद स्वतन्त्रता मिलने के 60 सालों में इस दिशा में प्रगति कम और दुर्गति अधिक हुई है।"[14]

इनके द्वारा रचित आलोचनात्मक कृति' हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव' स्वतन्त्रता के बाद दलित पत्रकारिता का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। साथ ही आजादी से पूर्व की 'हरिजन' और 'मूकनायक' जैसी पत्रिकाओं पर विमर्श के बहाने दलित समाज की सोच और भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनकी माँगों को तीखे स्वर के साथ उठाती है।

इस आलोचनात्मक ग्रन्थ में अम्बेडकर के बहाने दलित समाज की सोच और उसकी माँग को हमारे सामने रखा है। जहाँ वे लिखते हैं कि, "दलित समाज के लिए हिन्दू धर्म अग्राह्य वस्तु बन गया और वह विचार सामाजिक आन्दोलन के रूप में सामने आने लगा। इस सन्दर्भ में गाँधीवादी पत्रकारिता की भूमिका की चर्चा करते हुए लेखक ने सटीक बात कही है कि ऐसे में गाँधीवादी पत्रकारिता ने अस्पृश्यता का विरोधी और आर्य समाजी साहित्यिक पत्रकारिता ने शुद्धिकरण का आन्दोलन छेड़ा है।[15]

डॉ. तेज सिंह: दलित साहित्यकार की बुनियाद की पहचान कराते हुए प्रसिद्ध दलित साहित्यकार और अपेक्षा (पत्रिका) के सम्पादक रहे डॉ. तेज सिंह जी कहते हैं कि, "दलित पिछड़े वर्ग की अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान है, जो उन्हें सवर्ण संस्कृति से जोड़ती है। शुरू से ही श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मणवादी संस्कृति के वर्चस्व को चुनौती दी है। आज का यह संकट मूलत: सवर्ण संस्कृति और ब्राह्मणवादी संस्कृति की टकराहट की संस्कृति है।[16]

डॉ. तेजसिंहजी का आलोचना ग्रन्थ 'आज का दलित साहित्य' समय-समय पर की गई पुस्तकों की समीक्षाओं के माध्यम से रचना के सामाजिक सरोकार, उसमें वर्गीय दृष्टिकोण का आकलन दलित समाज के प्रसंग में करने की माँग करता है।

डॉ. रजतरानी मीनू: डॉ. रजतरानी मीनू एक श्रेष्ठ दलित साहित्यकार है। उन्होंने दलित साहित्य के बारे में लिखा है कि, "दलित चेतना मेरे लिए सिर्फ साहित्विक मनोरंजन नहीं है। मुझे लगता है कि वह एक ऐसा ऐतिहासिक उभार है जिसे अनदेखा करना स्वयं अप्रासंगिक हो जाता है।[17]

दलित साहित्य कई वर्षों से पीड़ित, शोषित और उपेक्षित वर्ग के दर्द की संवेदना को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने वाला साहित्य रहा है। आज के समय में यह अपनी मानवीय अस्मिता को बखूबी अभिव्यंजित कर रहा है। इस दलित साहित्य को लेकर अनेक आलोचकों ने अपनी आलोचना की। इन सबकी आलोचना का निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी दलित साहित्य की आलोचना अभी अपनी प्राथमिक अवस्था में है लेकिन भविष्य में इसके फलने-फूलने की अपार संभावना मौजूद है।

सन्दर्भ सूची-

1. साक्षात्कार, नवम्बर, 2001 सम्पादक- आग्नेय, पृ. 98
2. डॉ. एन. सिंह -हिन्दी साहित्य में दलित संघ के उन्नायक में रमणिका गुप्ता भूमिका से।
3. डॉ.. एन. सिंह -हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक, सं. रमणिका गुप्ता, (डॉ. शिववचन प्रसाद - लहरों से संघर्षों की वीरगाथा, पृ. 55)
4. डॉ. एन. सिंह -हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक स. रमणिका गुप्ता (प्रो. मुहम्मद सुलेमान-दलित साहित्य के सजग प्रहरी पृ. 70)
5. सुनीता रावत -हिन्दी दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. 254
6. दलित दखल (साहित्यिक साक्षात्कार) -डॉ. श्यौराज सिंह बेचौन, डॉ. रजतरानी मीनू, दलित साहित्य आन्दोलन का हिस्सा है -डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 142
7. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद (डॉ. जयप्रकाश कर्दम), रूपचन्द गौतम, यथार्थ की आलोचना, डॉ. अंजनी कुमार दुबे 'भावुक', पृ. 171
8. डॉ. ललित कौशल - हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 29
9. वही, पृ. 31
10. डॉ. जीतूभाई मकवाणा -समकालीन हिन्दी दलित साहित्य: एक अध्ययन, पृ. 250
11. डॉ. जयप्रकाश कर्दम-दलित विमर्श साहित्य के आईने में, पृ. 27
12. डॉ. ललित कौशल- हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 20
14. डॉ. शरणकुमार लिम्बाले--दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, अनुवादक रमणिका गुप्ता, पृ. 15
15. डॉ. रजतरानी मीनू - हिन्दी दलित कथा साहित्य अवधारणाएँ और विधाएँ, पृ. 31
16. देवेन्द्र चौबे-- आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, पृ. 208
17. डॉ. ललिता कौशल-- हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 31
18. डॉ. रजतरानी मीनू - हिन्दी दलित कविता, भूमिका से।

राम मनोहर लोहिया के सामाजिक-राजनीतिक विचारधारा: एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० श्याम शंकर प्रसाद

प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, राजा सिंह महाविद्यालय, सिवान

KEYWORDS- मार्क्स, समाजवाद, गांधीवाद, जातिवाद, छुआछुत, लोकतंत्र।

सारांश: राम मनोहर लोहिया एक स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर समाजवादी और सम्मानित राजनीतिज्ञ थे। वे प्रखर देशभक्ति और तेजस्वी समाजवादी विचारों के लिए जाने जाते है। अपने समर्थकों के साथ-साथ वे अपने विरोधियों में भी काफी लोकप्रिय थे। उन्होनें जीवन भर पिछड़े और वंचित समाज के लिए आवाज बुलदं किया। संसद में उनके द्वारा तथ्यों के साथ आँकड़ों को प्रस्तुत किया जाता था। लोहिया मार्क्स और गाँधी दोनों को एकांगी मानते थे तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य मे दोनो के समन्वय पर जोर दिया। उनके अनुसार मार्क्स ने भौतिक साधनो पर जरूरत से ज्यादा बल दिया है तथा चेतना के तत्व की अनदेखी कर दी है। उनके अनुसार गाँधी के विचार और कार्य पद्धति भारतीय समाजवाद के लिए ज्यादा उपयुक्त हो सकता है। समानता, लोकतंत्र, अहिंसा और विकेंद्रीकरण को उन्होंने नवीन समाजवाद का आधार बताया। इतना ही नहीं डा. लोहिया ने अपने समाजवाद की पुष्टि के लिए सात क्रान्तियों का भी आह्वान किया। गाँधी के सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की पद्धति से वे प्रभावित थे। सामाजिक स्तर पर वे जाति प्रथा के घोर विरोधी थे। जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए उन्होनें सहभोज तथा अन्तर्जातीय विवाह पर जोर दिया तथा इसे सरकारी नौकरी के लिए प्रमुख योग्यता निर्धारित किए जाने की वकालत की। इसके साथ हीं उन्होनें रंगभेद, अस्पृश्यता, नारी शोषण तथा सांप्रदायिकता की समस्याओं पर भी सशक्त विचार प्रस्तुत किया है। डा. लोहिया के राजनीतिक- सामाजिक विचार भारत के संदर्भ मे आज भी प्रासंगिक हैं तथा उनके विचारों की समीक्षा भारतीय राजनीति को दिशा प्रदान करेगा।

जीवन परिचय: राम मनोहर लोहिया का नाम भारतीय समाजवादी विचारकों में पहले स्थान पर आता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका प्रारंभिक जीवन कठिनाइयों से गुजरा। दो वर्ष की अवस्था में ही माँ के दुलार से वंचित हो गए। बम्बई से मैट्रिक, बनारस से इंटर तथा कलकत्ता से स्नातक डिग्री हासिल की और उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड पहुँचे। लेकिन इंग्लैंड से वे बर्लिन चले गए और वही से राजनीतिक दर्शन मे पीएच. डी की उपाधि प्राप्त की। 1933 मे गाँधी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ों आचार्य नरेन्द्र देव के साथ समाजवादी आंदोलन मे भाग लिया तथा काँग्रेस सोशलिस्ट पत्र का संपादक बने। 1936 मे वे नहेरू के साथ काँग्रेस के परराष्ट्र विभाग मे काम किये। भारत छोड़ो आंदोलन मे सक्रिय रुप से ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया। 1955 मे वे भारतीय समाजवादी दल के अध्यक्ष बने। 1963 मे फर्रुखाबाद से उपचुनाव जीत कर लोकसभा मे पहुँचे। संसद सदस्य के रूप मे वे सरकार की कड़ी आलोचना करते थे। उनकी आलोचना ठोस तथ्यों और आँकड़ो पर आधारित होती थी। 12 नवम्बर 1967 को मात्र 57 वर्षो की अवस्था मे उनके संघर्षशील व्यक्तित्व का जीवन दीप बुझ गया।

समाजवाद के पक्षधर–राम मनोहर लोहिया एक प्रखर समाजवादी विचारक एव नेता थे। विद्यार्थी जीवन से ही वे कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित थे। वे मार्क्स द्वारा की गई इतिहास की आर्थिक व्याख्या, वर्ग संघर्ष तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांतो से प्रभावित हुए जिसमे मानव जीवन में धन के महत्व को स्पष्टता प्रदान की गई थी। लेकिन वे मार्क्स द्वारा प्रतिपादित बल प्रयोग की पद्धति और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की व्यवस्था से सहमत नहीं थे। वे मार्क्स के चिंतन को भारतीय समाज व्यवस्था के अनुकुल नहीं मानते थे। जहाँ मार्क्स ने अपने चिंतन मे भौतिक तत्वों को अधिक महत्वपूर्ण बताया वहीं लोहिया जी ने चेतना के तत्वों को भौतिक तत्वों से ज्यादा महत्वपूर्ण माना।

लोहिया गाँधीजी के विचारों से भी बहुत अधिक प्रभावित थे। तथा गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित असहयोग आंदोलन को भारतीय समाज में समाजवाद लाने का बेहतर तरीका मानते थे।

डॉ. लोहिया ने भारतीय समाजवाद को मजबूत बनाने के लिए भारतीय समाज व्यवस्था का गहन अध्ययन किया। वे भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, पुरुष प्रधान समाज तथा सांप्रदायिकता को भारत के विकास की राह में सबसे बड़ी बाधा समझते थे।

वर्ण व्यवस्था और जातीवाद का विरोध–लोहिया के अनुसार जाति -प्रथा सबसे अधिक विनाशकारी हैं। वर्ण व्यवस्था ने एक तरफ शूद्रों के जीवन को नरक बना दिया तथा दूसरी तरफ समाज में छुआछूत एवं ऊँच-नीच के विचारों को बढ़ावा दिया। मानव जीवन के सभी महत्वपूर्ण तथ्य जैसे जन्म, मृत्यु, शादी-ब्याह, भोज एवं अन्य रीति रिवाजों को जातिय सीमाओं के भीतर ही मनाया जाता है। इन सभी कार्यक्रमों मे उसी खास जाति के लोग सहयोग करते हैं या शामिल होते हैं जिस जाति का यह कार्यक्रम

होता है। भारत मे सामाजिक असमानता का मूल कारण वर्ण व्यवस्था है। इसने भारतीय सामाजिक जीवन को प्राणहीन बना दिया है। ऐसा देखा जाता है कि जो लोग सिद्धांत मे जातिवाद की आलोचना करते हैं या उसे गलत ठहराते हैं, वे भी जातिय आधार पर हीं व्यवहार करते हैं। इसीलिए नेहरू की तरह लोहिया ने भी जाति को जड़वर्ग बताया।

लोहिया के अनुसार वर्ण व्यवस्था और जाति-प्रथा ने निम्न जाति वालो अर्थात समाज के कमजोर वर्गों को न केवल आर्थिक असमानता का शिकार बनाया है बल्कि उन्हे सामाजिक एवं राजनीतिक समानता के अधिकार से भी वंचित रखा है। उनकी दृष्टि मे जातिवाद और नारी भेद हिन्दू समाज की सामाजिक दरिद्रता की मुख्य कारण है। भारत में जाति एक अपरिवर्तनीय संरचना है जो विचार और कर्म मे दोगलापन प्रदर्शित करता है। उन्होनें अपनी पुस्तक "मार्क्स, गाँधी और समाजवाद" मे लिखा है कि "जाति अवसर को सीमित करती है, सीमित अवसर योग्यता को संकुचित कर देती है, संकुचित योग्यता अवसर को और आगे रोकती है, जहाँ जाति का प्रभुत्व है, वहाँ अवसर और योग्यता लोगों के संकुचित दायरों मे और अधिक सीमित होती चली जाती है।"

डॉ. लोहिया के अनुसार भारत का व्यक्ति हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई के नाम पर तो विभाजित हैं। पुनः हिंदू समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मे विभाजित है। इतना ही नहीं इन वर्णों मे भी अनके उपजातियाँ पाई जाती है जो एक दूसरे के साथ शादी-विवाह, खान-पान आदि रिवाजों मे भाग लेने मे अपना अपमान समझती हैं। वर्ण व्यवस्था मे जन्मानुसार कार्य विभाजन की गलतियों के कारण हीं भारत कमजोर हुआ है। तथा लोहिया द्वारा भारतीय समाज पर किए गए सूक्ष्म अध्ययन के अनुसार भारत के 1000 वर्षो की दासता का मूल कारण जाति है।डा.लोहिया ने न केवल जाति-प्रथा की कमियों की ओर इशारा किया बल्कि इसके उन्मूलन के लिए भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये। जातिय व्यवस्था के उन्मूलन के लिए उन्होनें सहभोज तथा अन्तर्जातीय विवाह को अपनाने की सलाह दी। उनका विश्वास था कि सहभोज मे ऊँची जाति और नीची जाति के लोग सम्मिलित होकर जाति व्यवस्था की कट्टरता को कम करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उन्होनें ऐसा सहभोज हैदराबाद में किया भी था जिसमे छोटी, बड़ी जातियों के लोग एक साथ बैठकर भोजन किये। उनका दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव था- अन्तरजातिय विवाह उनका कहना था कि- "जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिए शूद्र और द्विज के बीच विवाह को योग्यता और सहभोज के लिए इनकार करने पर अयोग्यता मानी जायेगी, उस दिन जाति पर सही मायने मे हमला शुरू होगा। वह दिन अभी आना बाकी है।

डा.लोहिया के अनुसार जाति प्रथा के कारण जनता का अधिकांश भाग राजनीतिक कार्यों मे सक्रिय भाग नहीं ले पाते। कई जगह तो वे अपने मताधिकार का भी उपयोग नहीं कर पाते। जिससे न तो उनका समुचित रुप से राजनीतिक प्रतिनिधित्व हो पाता है, न हीं उनमें राजनीतिक परिपक्वता का विकास हो पाता है। फलतः जनता के अधिकांश भाग के सहयोग से देश वंचित रह जाता है। राष्ट्र को मजबूती प्रदान करने के लिए राम मनोहर लोहिया ने प्रत्यक्ष चुनाव, वयस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धांत पर बल दिया।

महिला समानता के पक्षधर–राम मनोहर लोहिया स्त्री पुरूष समानता के प्रबल समर्थक थे। महिलाओं के सक्रिय सहयोग के वगैर समाजवादी आंदोलन को उन्होनें वधुहीन विवाह की संज्ञा दी। वे दहेज प्रथा और बहुपत्नी प्रथा के घोर विरोधी थे। वे महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के पक्ष मे थे। उन्होनें न केवल समान कार्य के बदले समान वेतन की वकालत की बल्कि वे महिलाओं की प्राकृतिक कमजोरी की क्षतिपूर्ति के लिए उसे विशेष अवसर देने के लिए आवाज उठाई। सदियों से आ रही स्त्री-पुरुष असमानता को समाजवाद के लिए बाधक बताया।

छुआछुत का विरोध–अस्पृश्यता यानि छुआछूत को उन्होनें हिन्दू समाज का बहुत बड़ा कलंक बताया। जब अस्पृश्यता अपराध कानून के रहते हुए भी विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों को प्रवेश नहीं दिया गया। तब इन्होनें हरिजन मंदिर-प्रवेश आंदोलन चलाया। आंदोलनकारियों के साथ निदर्यतापूर्वक व्यवहार किया गया। इसके बाद उतर प्रदेश की सरकार ने "मंदिर-प्रवेश अधिकार घोषणा" विधेयक पारित किया। लोहिया के अनुसार छुआछूत के उन्मूलन के लिए हरिजनों को स्वाभिमान, निर्भयता, स्वास्थ्य, सफाई तथा शिक्षा की आवश्यकता पर बल देना होगा। लोहिया जी अनुसार राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए हरिजनों का उत्थान जरूरी है। अस्पृश्यता के कारण हरिजनों को बहिष्कृत, असहाय, उदासीन और पतित बना दिया गया है। इसके चलते भारत अविकसित है तथा वैश्विक स्तर पर इससे भारत को शर्मिन्दित होना पड़ता है। उन्होनें इस बात पर बल दिया कि यदि हम अपने देश में चमार, भंगी और शूद्र लोगों को बनाए रखेगें तो दुनिया की पंचायत में हमें भी शूद्र ही बने रहना पड़ेगा। इस प्रकार छुआछूत की समस्या को उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के साथ जोड़ा।

सांप्रदायिक समस्या–सांप्रदायिकता की समस्या पर भी राम मनोहर लोहिया ने चिंतन किया तथा उसका निदान भी बताया। लोहिया जी के अनुसार धर्म के दो पहलू है। पहला आंतरिक पहलू जो समन्वयवादी और मानवतावादी है, जबकि दूसरा बाह्य पहलू जीवन के बाहरी आचरण से संबंधित है। यह रीति रिवाज, प्रार्थना के तरीकों आदि से जूड़ा होता है तथा यह आडम्बरयुक्त, पृथकतावादी और संकुचित होता है। धर्म के इसी बाह्य पहलू से सांप्रदायिकता की समस्या उत्पन्न होती है। इसी के चलते भारत का विभाजन हुआ। लेकिन विभाजन के बाद भी सांप्रदायिकता की समस्या खतम नहीं हो पाई है और यह आज भी विद्यमान है। इसके लिए लिए उन्होनें हिन्दुओं तथा मुसलमानों के मन मे बसे कूड़े कचरे को जिम्मेदार ठहराया है। उन्होंने दोनों समुदायों के मनोभावों की विवेचना करते हुए कहा कि "आमतौर से जो भ्रम हिन्दू और

मुसलमान दोनों के मन मे है, वह यह कि हिन्दू सोचता है कि पिछले छः- सात सौ वर्षों तक मुसलमानों का राज था। मुसलमानों ने जूल्म किया और अत्याचार किया और मुसलमान सोचता है, चाहे वह गरीब से गरीब क्यों न हो 600-700 सालों तक हमारा राज था, अब हमको बूरे दिन देखने पड़ रहे हैं। "उन्होनें इसके लिए अंग्रेजों के फूट डालो और शासन करो की नीति को भी जिम्मेदार बताया। स्वतत्रंता के बाद हमारे राजनेता वोट की लालच मे उनके बीच सच बोलने से कतराते हैं। जिससे हिन्दू और मुसलमानों के मन मे जो घृणा और द्वेष का भाव है, उन्हें संतुष्ट करने के चलते ज्यों का त्यों छोड़ देते हैं। लोहिया जी के अनुसार सांप्रदायिकता की समस्या के समाधान के लिए पाँच प्रकार के सुधार की जरूरत है- 1. ह्रदय परिवर्तन 2. इतिहास की सही व्याख्या 3. राजनीति में सुधार 4. भाषा संबंधी उदार नीति 5. धार्मिक प्रयास।

विभाजन के समय महात्मा गांधी और लोहिया जी ने मिलकर सांप्रदायिकता के विष को दबाने के लिए कार्यक्रम बनाया और गाँड फौज नाम से स्वंयसेवी संस्था बना कर कार्य किया। लोहिया ने अपने तर्कों से यह साबित करने की कोशिश की कि ऐतिहासिक युद्ध हिन्दू-मुसलमानों के बीच नहीं बल्कि देशी-विदेशी के आधार पर हुए हैं। उनके विचार मे जो मुसलमान गजनी, गौरी और बाबर को विदेशी आक्रमणकारी नहीं मानता तथा अशोक, तुलसी और कबीर को अपना पूर्वज नहीं मानता है, वह देशभक्त मुसलमान कहलाने लायक नहीं है तथा वह देश की एकता, स्वतंत्रता की रक्षा नहींकर सकता है। लोहिया जी मतानुसार धार्मिक कट्टरता और धर्मान्धता को समाप्त करके हीं सांप्रदायिकता को खतम किया जा सकता है।

रंगभेद का विरोध–राम मनोहर लोहिया जी रंगभेद को एक मानसिक विकृति मानते थे। जूलाई 1951 मे अमेरिका के हार्वर्ड यूनिवर्सिटी मे भाषण देते हए लोहिया ने रंगभेद नीति की आलोचना की तथा निग्रो लोगों को सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने की सलाह दी। गोरे लोगों को श्रेष्ठ मानने को उन्होनें एक रोग बताया। उनके विचार मे गोरा रंग सौंदर्य का प्रतीक इसलिए माना जाता है कि गोरे लोगों ने 350 वर्षों तक संसार पर राज किया। अमेरिका के एक होटल मे उन्हें काले रंग के होने के कारण प्रवेश से मना कर दिया गया तो उन्होनें झुकने की वजाय उसका विरोध किया, उन्हें जेल भी जाना पड़ा। उनके विचार मे जिस रंग का राज्य स्थापित हो जाता है, वही रंग दुसरे रंगो की अपेक्षा अच्छा समझा जाने लगता है। इन रंगो से सुन्दरता का कोई संबंध नहीं है, बुद्धि या दिमाग का संबंधनहीं है। दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों ने काले लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया, जैसा पशुओं के साथ भी नही किया जाता। इसके लिए वे काले लोगों को भी कम जिम्मेदार नहीं मानते थे। काले व्यक्ति का सबसे बड़ा दोष खुद को हीन भावना से ग्रसित होना था।

निष्कर्षः-इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. राम मनोहर लोहिया ने समाज में व्याप्त भेदभाव पर पुरजोर तरीके से विरोध किया। उन्होनें महिलाओं, हरिजनों, मुसलमानों और आदिवासियों के कल्याण के लिए निरंतर संघर्ष किया। जातियता और सांप्रदायिकता आज भी भारतीय राजनीति की ज्वलंत समस्या है और यह भारतीय समाज के समक्ष एक चुनौति बनी हुई है। इस समस्या के समाधान के लिए डा. राम मनोहर लोहिया के सहभोज संबधी विचार बहुत हद तक कारगर साबित हुई है और इसने जातिय कट्टरपन को कम किया है। अंतर्जातिय विवाह का प्रचलन भी बढा है। महिला समानता की दिशा मे भी सुधार हुआ है। लेकिन सांप्रदायिकता की समस्या और अधिक गहराती जा रही है। इस समस्या के समाधान के लिए भी लोहिया जी द्वारा व्यक्त विचार आज भी प्रासंगिक है।

References:

1. भारतीय राजनीतिक विचारक, ओम प्रकाश गाबा, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली (पेज 221-227)
2. राजनीति विज्ञान, डा. पुखराज जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा (पेज 226-238)
3. भारतीय राजनीति विज्ञान शोधपत्रिका, जनवरी-जून 2020 (पेज 41-50)
4. मार्क्स, गांधी और समाजवाद, राम मनोहर लोहिया, नवहिंद, हैदराबाद, 1963 (पेज 550)
5. द कास्ट सिस्टम, राम मनोहर लोहिया, नवहिंद, हैदराबाद, 1964
6. विकीपीडिया

भारत में ई-कॉमर्स के मुद्दे और चुनौतियाँ- एक अध्ययन

डॉ० मो० कमाल अकबर

पीएचडी., जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

सार

भारत का खुदरा बाजार 600 अरब डॉलर का होने का अनुमान है। आज, ई-कॉमर्स कुल का केवल 5% है। इसकी तुलना अमेरिकी बाजार में ईकॉमर्स की 15% हिस्सेदारी से करें, और यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी भी विकास की काफी गुंजाइश है। 'डिजिटल इंडिया', स्मार्टफोन की सामर्थ्य और डेटा पैकेज जैसे प्रयासों के बावजूद, भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा अभी भी ऑनलाइन नहीं आया है। भारत का कुल इंटरनेट उपयोगकर्ता आधार 2015 में 665 मिलियन से बढ़कर 2021 तक 829 मिलियन हो जाएगा। इसलिए, बाजार की अंतर्निहित क्षमता निर्विवाद है। और, फिर भी, केवल 50 मिलियन ऑनलाइन खरीदारों के साथ ईकॉमर्स की पहुंच बहुत कम है, जिनमें से केवल 20 मिलियन सक्रिय मासिक खरीदार हैं। यदि भारत को वैश्विक ईकॉमर्स लिंचपिन के रूप में अपनी भूमिका बनाए रखनी है तो यह अंतर एक चिंता से निपटने की आवश्यकता का संकेत है। इसके लिए, कॉर्पोरेट क्षेत्र को भारत सरकार के साथ हाथ मिलाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि परिवर्तन निर्बाध रूप से और न्यूनतम व्यवधान के साथ हो। उस उद्देश्य के लिए, एक समग्र ईकॉमर्स ढांचा स्थापित करने की आवश्यकता है, जो इस विशाल नए उपभोक्ता आधार की अनूठी जरूरतों को पूरा करते हुए सर्वोत्तम शासन प्रथाओं को शामिल करता है। मजबूत भौतिक और डिजिटल बुनियादी ढांचे को लागू किया जाना चाहिए, जो रोजाना अपने ऊपर पड़ने वाले भारी भार को संभालने में सक्षम हो। इंटरनेट और परिष्कृत इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की उच्च पहुंच के कारण भारत में ईकॉमर्स उद्योग उल्लेखनीय गति से बढ़ रहा है। हालाँकि, भारत में ईकॉमर्स की हालिया वृद्धि दर अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत पीछे है। ई-कॉमर्स उद्योग के सामने कई बड़ी समस्याएं और चुनौतियाँ हैं। अन्य कारकों के साथ-साथ ऑनलाइन धन लेनदेन की सुरक्षा और सुरक्षा जैसे कारकों ने देश में ऑनलाइन उद्योग के सुचारू विस्तार पर अंकुश लगाया है। हालाँकि, ई-व्यापार क्षेत्रों का बड़ा हिस्सा नीचे उल्लिखित चुनौतियों से प्रभावित हुआ है, लेकिन फिर भी Makemytrip-com, Flipkart-com, Snapdeal-com जैसे कुछ ऑनलाइन दिग्गज हैं जिन्होंने चुनौतियों पर काबू पा लिया है और भारत में ईकॉमर्स के सही विकास रुझानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। डिजिटल अर्थव्यवस्था में बदलाव को बढ़ावा देने के प्रयास भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। जबकि गो आई ने यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (यूपीआई) प्रणाली के कार्यान्वयन के माध्यम से एक मूल्यवान पहला कदम उठाया है, नागरिकों के लिए औपचारिक बैंकिंग और आसान ऋण सुविधाओं के विस्तार के माध्यम से और प्रयासों की आवश्यकता है। आज, 70% ई-कॉमर्स ग्राहक 25 वर्ष की औसत आयु वाले पुरुष हैं। वर्तमान पेपर का उद्देश्य भारत में ई-कॉमर्स की चुनौतियों का अध्ययन करना है और उन संभावित मुद्दों को भी दिखाना है जो भारत में ई-कॉमर्स पारिस्थितिकी तंत्र को जीवंत बनाते हैं।

परिचय

इसे यूरोपीय संघ के जनरल डेटा प्रोटेक्शन रेगुलेशन (जीडीपीआर) की तर्ज पर मजबूत डेटा सुरक्षा ढांचे को बढ़ावा देने, अप्रत्यक्ष कराधान के मामले में ऑफलाइन और ऑनलाइन खिलाड़ियों के बीच खेल के मैदान को समतल करने और सीमा पार ईकॉमर्स लेनदेन पर प्रतिबंधों को आसान बनाने से बढ़ाया जा सकता है। इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के एक बिल्कुल अलग समूह की मांगों को पूरा करने के लिए अलग दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। ये भावी उपभोक्ता भारत के टियर-2 और टियर-3 शहरों से उभरने के लिए तैयार हैं। इन प्रयासों को 'मेक इन इंडिया' के लिए सरकारी समर्थन बढ़ाकर पूरक बनाया जा सकता है। विशेष रूप से औद्योगिक गलियारों, लॉजिस्टिक्स पार्कों और विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) की स्थापना के माध्यम से पहल। यहां जिन प्रमुख चुनौतियों पर काबू पाना है उनमें भाषाओं की विविधता, डिजिटल प्रणालियों से अपरिचितता और सूक्ष्म बाजारों में उत्पादों की विविध श्रृंखला के लिए प्राथमिकताएं शामिल हैं। ये सभी कारक एक उपयुक्त ओमनी-चौनल रणनीति के कार्यान्वयन की मांग करते हैं। इसे एक मजबूत ऑफलाइन-टू-ऑनलाइन मॉडल, सहायक बिक्री और उत्पाद क्यूरेशन के साथ जोड़कर, ईकॉमर्स बाजार में ये नए प्रवेशकर्ता व्यापक ईकॉमर्स पारिस्थितिकी तंत्र में एक सहज एकीकरण की आशा कर सकते हैं। लेकिन इन आंकड़ों में भारी बदलाव होना तय है। महिलाएं बाजार में बराबर हिस्सेदारी का दावा करने के लिए तैयार हैं, जबकि औसत आयु बढ़कर 28 वर्ष होने की उम्मीद है। इसके अलावा, जैसे-जैसे लोग ऑनलाइन खरीदारी के आदी हो जाते हैं, बुनियादी जरूरतों का ऑर्डर विवेकाधीन खरीदारी से आगे निकल जाएगा, जिससे कुल मिलाकर टिकट का आकार छोटा हो जाएगा। इन बदलती मांगों को पूरा करने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि लॉजिस्टिक्स क्षेत्र, जो

वर्तमान में अव्यवस्थित और खंडित है, कुशल हो। भारत के खराब प्रदर्शन का प्राथमिक कारण बाजार की अक्षमताएं और अविकसितता है। यह भारत भर में रिटर्न टू ओरिजिन (आरटीओ) दरों में सबसे प्रमुख रूप से प्रकट होता है, खासकर जब कैश ऑन डिलीवरी (सीओडी) ऑर्डर शामिल होते हैं। वर्तमान में, टियर-3 और टियर-4 शहरों में सीओडी दरें लगभग 90% हैं, जबकि महानगरों में यह 50% है। भारत में क्रेडिट कार्ड की कम पहुंच के कारण कैश ऑन डिलीवरी (सीओडी) का विकास हुआ है। अधिकांश भारतीय ई-कॉमर्स कंपनियां खरीदारों के लिए भुगतान के एक तरीके के रूप में सीओडी की पेशकश कर रही हैं। 30%-50% खरीदार इंटरनेट पर किसी उत्पाद और सेवा की खरीदारी करते समय भुगतान के इस तरीके का लाभ उठा रहे हैं। सीओडी को ऑनलाइन लेनदेन के भुगतान सुरक्षा मुद्दों का मुकाबला करने के लिए पेश किया गया है, लेकिन यह तरीका कंपनियों के लिए घाटे वाला और महंगा साबित हो रहा है। ऐसा देखा गया है कि अधिकांश ग्राहकों ने उत्पाद की डिलीवरी के समय भुगतान करने से इनकार कर दिया। इसलिए, कंपनियां उत्पाद पारगमन शुल्क के साथ-साथ बिक्री भी खो देती हैं। सीओडी की समस्या पर अंकुश लगाने के लिए ऑनलाइन कंपनियों को कुछ न्यायिक कदम उठाने चाहिए; अन्यथा ई-कॉमर्स व्यवसाय के पीछे का बुनियादी तर्क खघ्तरे में पड़ जाएगा।

उद्देश्य:

इस पेपर में लेखक ने भारतीय ई-कॉमर्स उद्योग के सामने आने वाले मुद्दों और चुनौतियों को देखने की योजना बनाई है और खुदरा विक्रेताओं को प्रभावित करने वाली ई-कॉमर्स नीति में बदलाव के प्रभाव को भी दिखाया है।

ई-कॉमर्स और नए युग की प्रौद्योगिकी मुद्दे

नए युग के लॉजिस्टिक्स साझेदारों का उनका परिचय, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और मशीन लर्निंग (एमएल) जैसी प्रौद्योगिकियों का आगमन, इन मुद्दों का समाधान प्रदान करता है, जिससे ईकॉमर्स कंपनियों को आरटीओ दरों को कम करने और देश भर में ग्राहकों को आत्मविश्वास से सेवा देने की अनुमति मिलती है। इस चुनौती का अधिकांश भाग स्टार्टअप्स के एक चुनिंदा समूह द्वारा भी उठाया गया है, जो सभी सिस्टम के कुशल कामकाज को अनुकूलित करने के लिए असंख्य तकनीकों को लागू कर रहे हैं। हाल के वर्षों में, इन प्रयासों ने फल देना शुरू कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप उद्यम पूंजी कंपनियां इन अग्रदूतों को अपना पैसा और विश्वास सौंप रही हैं। 2015 के पिछले पांच महीनों में, लॉजिस्टिक्स क्षेत्र में पहले ही 6.25 बिलियन डॉलर का पूंजी निवेश देखा जा चुका है। यह पिछले वर्ष जुटाई गई राशि से छह गुना से भी अधिक वृद्धि है। हालाँकि, इस क्षेत्र के सामने आने वाले कई मुद्दों से निपटने के लिए, इसमें शामिल सभी हितधारकों के बीच एक सहयोगात्मक साझेदारी की आवश्यकता है: सरकारी, कॉर्पोरेट, व्यक्तिगत। केवल तभी ईकॉमर्स गंतव्य के रूप में भारत की पूरी क्षमता हासिल की जा सकेगी। अवसरों, शोर-शराबे और प्रचार-प्रसार के बावजूद ई-कॉमर्स एक ही समय में चुनौतियों का भी सामना करता है। इसलिए, हम छोटे उद्यमों में ई-कॉमर्स के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों की गणना करते हैं और इन चुनौतियों से निपटने के लिए उपचारात्मक उपाय भी प्रस्तुत करते हैं।

1. ढांचागत समस्याएँ: इंटरनेट ई-कॉमर्स की रीढ़ है। दुर्भाग्यवश, भारत में इंटरनेट की पहुंच सिंगापुर की 50 प्रतिशत आबादी के मुकाबले अब तक निराशाजनक रूप से कम 0.5 प्रतिशत है। इसी प्रकार, भारत में पर्सनल कंप्यूटर (पीसी) की पहुंच प्रति हजार जनसंख्या पर 3.5 है, जबकि चीन में यह 6 प्रति हजार और अमेरिका में 500 प्रति हजार है। इंटरनेट अभी भी टेलीफोन लाइनों की मदद से पीसी के माध्यम से पहुँचा जा सकता है। मात्र 2.1 प्रतिशत आबादी तक टेलीफोन की पहुंच को देखते हुए ई-कॉमर्स आम आदमी से काफी दूर है। ई-कॉमर्स के लिए 6,04,374 गांवों और 5,000 कस्बों और शहरों में 37 मिलियन घरों में फैली 1,000 मिलियन आबादी तक पहुंचना मुश्किल है। इसके अलावा, भारत में पीसी और इंटरनेट एक्सेस दोनों की लागत काफी अधिक है।
2. साइबर कानूनों का अभाव: ई-कॉमर्स बाजार से जुड़ी दूसरी बड़ी चुनौती नेट पर लेनदेन को विनियमित करने के लिए साइबर कानूनों का लगभग अभाव है। उम्मीद है कि डब्ल्यूटीओ जल्द ही साइबर कानून बनाएगा। 17 मई, 2000 को भारतीय संसद द्वारा पारित भारत के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) विधेयक का उद्देश्य ई-कॉमर्स में बढ़ते क्षेत्रों से विधायी रूप से निपटना है। विधेयक का इरादा नई तकनीक द्वारा उत्पन्न कानूनी अनिश्चितताओं को दूर करके ई-कॉमर्स को सुविधाजनक बनाना भी है। आज की स्थिति के अनुसार, विधेयक केवल कानून के वाणिज्यिक और आपराधिक क्षेत्रों से संबंधित है। हालाँकि, यह व्यक्तिगत संपत्ति अधिकार, सामग्री विनियमन से लेकर गोपनीयता और डेटा सुरक्षा विशिष्ट कानून जैसे मुद्दों का ध्यान नहीं रखता है।
3. गोपनीयता और सुरक्षा संबंधी चिंता: आज की तारीख में, ई-कॉमर्स से संबंधित काफी संवेदनशील मुद्दे गोपनीयता और सुरक्षा हैं। अब तक, किसी की गोपनीयता के शोषण से उत्पन्न खतरे के खिलाफ वेबसाइट या बाहरी निगरानीकर्ताओं द्वारा कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई है।
4. भुगतान और कर संबंधी मुद्दे: भुगतान और कर से संबंधित मुद्दे एक और समस्या है जो लगातार ई-व्यापारियों की ओर इशारा कर रही है। इलेक्ट्रॉनिक भुगतान क्रेडिट कार्ड या

प्लास्टिक मनी के माध्यम से किया जाता है, जो हालांकि, मुख्य रूप से दो कारणों से भारत में अब तक लोकप्रिय नहीं हो सका है। सबसे पहले, भारत में क्रेडिट कार्ड की पहुंच बहुत कम है (जनसंख्या का 2 प्रतिशत)। दूसरे, हैकर्स द्वारा धोखाधड़ी के बढ़ते खतरे के कारण भारतीय ग्राहक क्रेडिट कार्ड से भुगतान करने में काफी संशय में हैं। अन्य जगहों की तरह, क्रेडिट कार्ड से भुगतान नहीं किया जा सकता है। भारत में विकास मुख्य रूप से इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षरों की प्रमाणीकरण और मान्यता समस्याओं के कारण हुआ (दहिया और सिंह 2000: 70)। इसी तरह, ई-कॉमर्स के मामले में कर की घटनाओं को स्थापित करने के लिए कर प्रशासन इस निर्बाध विश्वव्यापी ई-कॉमर्स में एक और जटिल समस्या है। वाणिज्य लेनदेन मुश्किल हो जाता है, इस प्रकार, कर चोरी के लिए पर्याप्त गुंजाइश मिलती है। इससे कैसे छुटकारा पाया जाए? कुछ लोग देश में ई-कॉमर्स के लिए 2010 तक कुल कर अवकाश का सुझाव देते हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं जो ई-कॉमर्स पर शून्य शुल्क का समर्थन करते हैं इसे देश में बढ़ाएं। अमेरिका में यह पहले ही तय हो चुका है कि इंटरनेट पर डिजिटल रूप में बेची जाने वाली किसी भी चीज पर कोई टैक्स नहीं लगेगा। क्या भारत को कम से कम फिलहाल इस पर विचार करना होगा।

5. डिजिटल निरक्षरता और उपभोक्ता मानस: वर्तमान में, डिजिटल निरक्षरता भारत में ई-कॉमर्स के सामने आने वाली विकट समस्याओं में से एक है। दूसरी ओर, कुशल कंप्यूटर इंजीनियरों के दूसरे देशों में लगातार पलायन ने भारत को सॉफ्टवेयर इंजीनियरों से वंचित कर दिया है। इसने भारतीय आईटी उद्योग के लिए एक वास्तविक खतरा पैदा कर दिया है। जाहिर है, इस समस्या का समाधान देश में कंप्यूटर ब्रेन-ड्रेन और उसके उपयोग को रोकने में निहित है। भारतीय उपभोक्ता की विशेषता उसकी अनूठी मानसिकता भी है। आमतौर पर, भारतीय उपभोक्ता अपनी पसंद का कोई भी सामान लेने के लिए लंबी दूरी तक नहीं जाता है, जब पड़ोस की दुकान उसे वह सब प्रदान करती है जो वह चाहता है। यही कारण है कि उपभोक्ता कनेक्टिविटी और अन्य समस्याओं के कारण होने वाली परेशानियों को जानते हुए भी इंटरनेट ब्राउज नहीं करता है। इसमें यह भी जोड़ा गया है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर विश्वास बनाने में भी अधिक समय लगता है, खासकर तब जब विक्रेता बहुत दूर स्थित स्थान पर स्थित हो।
6. वायरस की समस्या: ई-लेन-देन के निष्पादन में कंप्यूटर वायरस भी एक विकराल समस्या है, इसकी पुष्टि मनीला में उत्पन्न कंप्यूटर वायरस से होती है। एक कंप्यूटर वायरस लैग्ड श्आई लव यूश की उत्पत्ति 5 मई 2000 को फिलीपींस के मनीला में हुई थी, जिसने दुनिया भर में हलचल मचा दी, जिससे लाखों कंप्यूटर फाइलें प्रभावित हुईं, जिससे सरकारों और व्यवसायों को 7 बिलियन अमेरिकी डॉलर का भारी नुकसान हुआ। श्वायरसश पैदा करने वाले अपराधियों को कड़ी सजा दी जानी चाहिए, अन्यथा भविष्य में इसी तरह के हमले भारत में काफी युवा ई-कॉमर्स को भी स्थायी झटका दे सकते हैं।
7. अंग्रेजी विशिष्ट: अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि देश में अब तक का सॉफ्टवेयर अंग्रेजी विशिष्ट है। लेकिन, ई-कॉमर्स को छोटे उद्यमों तक पहुंचाने के लिए, इसे छोटे उद्यमों के मालिकों की भाषाओं (क्षेत्रीय) में उपलब्ध होने की आवश्यकता है ताकि वे अपने संचालन में ई-कॉमर्स प्रक्रियाओं को अनुकूलित करने में सक्षम हो सकें। जितनी जल्दी यह किया जाएगा, छोटे उद्यमों के लिए ई-कॉमर्स को अपनाना बेहतर होगा। एक सफल ई-कॉमर्स व्यवसाय की स्थापना केवल एक वेबसाइट पर एक विचार डालने तक सीमित नहीं है। ऐसे कई और मुद्दे हैं जिनका समाधान एक ई-कॉमर्स उद्यमी को अपने ई-कॉमर्स उद्यम के सफल होने से पहले करना चाहिए। इनमें कानूनी मुद्दे भी शामिल हैं जो ई-कॉमर्स अनुपालन से लेकर ब्रांड प्रचार और सुरक्षा तक शामिल हैं। यहां तक कि डोमेन नाम सुरक्षा रणनीति भी सफल ई-कॉमर्स उद्यम का एक अनिवार्य हिस्सा है। ई-कॉमर्स इन दिनों भारत में सबसे अधिक लाभदायक व्यावसायिक उद्यमों में से एक है। न केवल इसकी वर्तमान वृद्धि अच्छी है बल्कि भविष्य और अनुमानित वृद्धि भी जबरदस्त है। हालाँकि, भारत में ई-कॉमर्स को कानूनी रूप से स्वीकार्य तरीके से संचालित किया जाना भी आवश्यक है। ई-कॉमर्स उद्यमों का एक बड़ा हिस्सा अपनी स्थापना के दूसरे वर्ष तक कभी टिक नहीं पाता। इसके अलावा, कई ई-कॉमर्स वेबसाइटें कानूनी उल्लंघनों के कारण बंद हो गई हैं। उदाहरण के लिए, भारत में कई बिटकॉइन एक्सचेंजों ने इस क्षेत्र में कानूनी अनिश्चितता के कारण अपनी सेवाओं को अस्थायी रूप से निलंबित कर दिया है। उनमें से कुछ को भारतीय कानूनों के संभावित उल्लंघन के लिए भारत की कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा भी निशाना बनाया गया है। भारत में संचालित होने वाली ई-कॉमर्स वेबसाइटों को सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (आईटी अधिनियम 2000) सहित भारत के कई कानूनों का पालन करना आवश्यक है। आईटी अधिनियम, 2000 के अनुसार भारत में संचालित होने वाली ये ई-कॉमर्स वेबसाइटें इंटरनेट मध्यस्थ हैं और उन्हें साइबर कानून की उचित परिश्रम आवश्यकताओं (पीडीएफ) का भी पालन करना आवश्यक

है। भारत में ई-कॉमर्स शुरू करने के लिए कानूनी आवश्यकताओं में अनुबंध कानून, भारतीय दंड संहिता आदि जैसे अन्य कानूनों का अनुपालन भी शामिल है। इसके अलावा, भारत में ऑनलाइन शॉपिंग में भारत में लागू बैंकिंग और वित्तीय मानदंडों का अनुपालन भी शामिल है। उदाहरण के लिए, इस संबंध में च्लेच्स का उदाहरण लें। यदि पेपाल को अपनी मौजूदा या प्रस्तावित ई-कॉमर्स गतिविधियों के लिए ऑनलाइन भुगतान रसीद और संवितरण की अनुमति देनी है, तो उसे इस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) से लाइसेंस लेना होगा। इसके अलावा, भारत में पेपैल और अन्य ऑनलाइन भुगतान हस्तांतरणकर्ताओं के लिए साइबर उचित परिश्रम भी देखा जाना आवश्यक है। भारत में एम-स्वास्थ्य कानूनों और विनियमों का पालन उन लोगों को करना चाहिए जो इस आगामी और लाभकारी क्षेत्र में खोज करना चाहते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स की चुनौतियाँ, विकास की संभावनाएँ

भारत में इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स के सक्रिय उपयोग के साथ-साथ भारत में इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स विवाद समाधान को भी मजबूत करने की आवश्यकता है। भारत की वर्तमान मुकदमेबाजी प्रणाली भारत में ई-कॉमर्स के विकास के लिए अनुकूल नहीं है और भारत में ऑनलाइन विवाद समाधान ऐसे उद्देश्यों के लिए अधिक उपयुक्त है। अंत में, जो लोग भारत में क्लाउड कंप्यूटिंग, वर्चुअलाइजेशन और अन्य इंटरनेट आधारित सेवाओं में संलग्न होना चाहते हैं, वे भारत के तकनीकी कानूनी नियमों का अनुपालन करते हैं। भारत में व्यवसायों और उद्यमियों के लिए क्लाउड कंप्यूटिंग कानूनी और नियामक आवश्यकताएं अभी भी विकसित हो रही हैं। फिर भी भारत के क्लाउड कंप्यूटिंग व्यवसाय समुदाय को उनका अनुसरण करना चाहिए। भारत में वर्चुअलाइजेशन और क्लाउड कंप्यूटिंग सेवा प्रदाताओं को न केवल भारत के एन्क्रिप्शन कानूनों का पालन करना चाहिए, बल्कि उन्हें भारत में साइबर कानून का उचित परिश्रम भी सुनिश्चित करना चाहिए। यह तब और भी अधिक है जब भारत में कंपनियों के लिए साइबर कानून उचित परिश्रम बहुत सख्त हो गया है और विदेशी कंपनियों और वेबसाइटों पर साइबर उचित परिश्रम का पालन न करने के लिए अक्सर भारत में मुकदमा चलाया जाता है। संक्षेप में, भारत के अत्यधिक लाभदायक ई-कॉमर्स खंड को संबंधित ई-कॉमर्स खंड को नियंत्रित करने वाले कानूनों का अनुपालन करने के बाद ही खोजा जाना चाहिए। ऐसे कानूनों और विनियमों का कोई एक सेट नहीं है जो सभी ई-कॉमर्स क्षेत्रों को नियंत्रित करता है और प्रत्येक ई-कॉमर्स खंड अलग-अलग कानूनों द्वारा शासित होता है। कई अंतरराष्ट्रीय ब्रांड और खुदरा विक्रेता भारत को नजरअंदाज नहीं कर सकते, जो 1. 37 अरब लोगों के साथ दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है, जो चीन के बाद दूसरे स्थान पर है और तेजी से आगे बढ़ रहा है। यह देखते हुए कि उस विशाल आबादी का 41 प्रतिशत इंटरनेट का उपयोग कर रहा है, यानी 562 मिलियन लोग या संभावित ग्राहक।ई-कॉमर्स बाजार विशाल है फिर भी पेचीदा है और गलत दृष्टिकोण से बचने के लिए इसे सावधानीपूर्वक संचालित किया जाना चाहिए। ईकॉमर्स फाउंडेशन द्वारा हाल ही में जारी की गई "ईकॉमर्स रिपोर्ट: इंडिया 2019" कनेक्टिविटी, डिजिटल तैयारी और डिवाइस के उपयोग सहित बी2सी ई-कॉमर्स भारतीय बाजार पर प्रकाश डालती है। सबसे पहले, अच्छी खबर: भारतीय सकल घरेलू उत्पाद 2015 में 6.63 प्रतिशत की दर से बढ़ते हुए 2.59 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है, और बी2सी ई-कॉमर्स कारोबार 32 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक तक पहुंचने की उम्मीद है। लेकिन, बुनियादी ढांचे और लॉजिस्टिक्स के मामले में भारत को अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है: "ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सभी ई-कॉमर्ससूचकांको। मे। पिछड़ रहा है। यह लॉजिस्टिक पर फॉर्मेसइंडेक्स में 44वें, ईज ऑफ डूइंग बिजनेस इंडेक्स में 77वें और ई-गवर्नमेंट डेवलपमेंट इंडेक्स में 96वें स्थान पर है। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि इंटरनेट समावेशिता भारत के लिए एक कमजोर बिंदु है, जो रैंकिंग में 47वें स्थान पर है,' रिपोर्ट में पाया गया है। भारत के पास लॉजिस्टिक्स, बुनियादी ढांचे, व्यापार करने में आसानी के मामले में कुछ रास्ते हैं। इंटरनेट समावेशिता सूचकांक इंटरनेट तक पहुंच की क्षमता के साथ-साथ ऐसा करने की सामर्थ्य, उपलब्ध इंटरनेट बुनियादी ढांचे और स्थानीय भाषा सामग्री के अस्तित्व और सीमा को भी ध्यान में रखता है। 86 देशों में भारत 47वें स्थान पर है। व्यवसाय करने में आसानी की उच्च रैंकिंग का मतलब है कि नियामक वातावरण स्थानीय फर्म की शुरुआत और संचालन के लिए अधिक अनुकूल है, जबकि संयुक्त राष्ट्र के ई-सरकारी विकास सूचकांक पर उच्च स्कोर में "दूरसंचार, मानव पूंजी और समवर्ती अतीत और वर्तमान निवेश शामिल हैं।" ऑनलाइन सेवाओं का प्रावधान" भारतलगभग200 देशों में 96वें स्थान पर है, जो 2014 में 118वें स्थान से ऊपर चढ़ गया है। विश्व बैंक का लॉजिस्टिक प्रदर्शन सूचकांक 160 देशों में व्यापार लॉजिस्टिक्स की तुलना करता है। अंतर्राष्ट्रीय ब्रांडों और खुदरा विक्रेताओं को यह भी पता होना चाहिए कि भारत में इंटरनेट का उपयोग मोबाइल फोन से काफी हद तक जुड़ा हुआ है: वेब के अनुसार, भारतीय 80 प्रतिशत समय अपने मोबाइल फोन के माध्यम से इंटरनेट का उपयोग करते हैं, जबकि वे ऐसा केवल 20 प्रतिशत डेस्कटॉप कंप्यूटर के माध्यम से करते हैं। एनालिटिक्स फर्म स्टेट काउंटर। इसका कारण सामर्थ्य है, सेल फोन की पहुंच की तुलना में कंप्यूटर की पहुंच बहुत कम है, और पहुंच में आसानी है: जबकि एक मोबाइल फोन को कहीं भी, कहीं भी, जहां भी नेटवर्क है, ले जाया जा सकता है और एक्सेस किया जा सकता है, पीसी उस लचीलेपन की पेशकश नहीं करते हैं। इस प्रकार, भारत में ई-कॉमर्स का मतलब मोबाइल फ्रेंडली पेशकश करना है।

मोबाइल पहुंच भारत में इंटरनेट के उपयोग की कुंजी है

"शहरी भारत ने बहुत तेज जीवनशैली विकसित की है और अब जब सड़क यातायात और शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक यात्रा के समय की बात आती है तो उसे बुनियादी ढांचागत चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। फिर भी उपभोक्ता आज अपनी उंगलियों पर अधिक विकल्प चाहते हैं और सब कुछ तेजी से अपने दरवाजे पर चाहते हैं। डिजिटल वाणिज्य विशेषज्ञ कश्यप मेहता, एसएपी ग्राहक अनुभव के लिए एपीजे रिटेल लीड कहते हैं, 'मेरे नजदीक' अवधारणा उपभोक्ताओं को आकर्षित कर रही है, अधिक से अधिक बड़े और छोटे खिलाड़ी 'हाइपरलोकल' क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। भारत में ऑनलाइन व्यापार करने वाले किसी भी व्यक्ति को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इंटरनेट का उपयोग करने वाले लोग हमेशा अंग्रेजी के जानकार नहीं होते हैं; वास्तव में, जैसा कि रिपोर्ट में पाया गया है, 2021 में 396 मिलियन गैर-अंग्रेजी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं द्वारा चौट एप्लिकेशन का उपयोग करने की उम्मीद है, जो कि सभी भारतीय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का 70 प्रतिशत से अधिक है। इसलिए ब्रांडों और खुदरा विक्रेताओं को संभावित ग्राहकों को उस भाषा में संबोधित करने के लिए तैयार रहना चाहिए जिसमें वे सहज हों, चाहे वह हिंदी, तमिल, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, बंगाली या मराठी हो।

ई-वॉलेट सबसे लोकप्रिय भुगतान विधियों के रूप में विकसित होते रहेंगे

भुगतान के संदर्भ में, रिपोर्ट में पाया गया कि ई-वॉलेट अभी भी 2023 में सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली भुगतान विधि होगी। पिछले साल, ई-वॉलेट के माध्यम से भुगतान ने पहली बार लोकप्रिय कैश ऑन डिलीवरी विकल्प को पीछे छोड़ दिया, और इस वर्ष, यह भुगतान विधि, लगभग 43 प्रतिशत के साथ अब तक की सबसे लोकप्रिय भुगतान पद्धति होने की उम्मीद है, इसके बाद कैश ऑन डिलीवरी (28 प्रतिशत), क्रेडिट और डेबिट कार्ड (20 प्रतिशत) और बैंक हस्तांतरण (5 प्रतिशत के करीब) हैं। ईकॉमर्स फाउंडेशन को उम्मीद है कि 2023 तक अधिकांश भुगतान विधियों में ई-वॉलेट का हिस्सा 70 प्रतिशत से अधिक हो जाएगा। "भारत के भुगतान स्वीकृति बुनियादी ढांचे को काफी उन्नत किया गया है, कई नए व्यापारी ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों चौनलों में डिजिटल भुगतान स्वीकार कर रहे हैं। उपभोक्ताओं को अपने पसंदीदा भुगतान तरीकों में से एक के रूप में डिजिटल भुगतान का उपयोग शुरू करने के लिए प्रेरित करने के लिए सरकार की ओर से एक बड़ा अभियान चल रहा है," मेहता ने पुष्टि की।

भारत में पुरुषों की तुलना में बहुत कम महिलाएं ऑनलाइन खरीदारी करती हैं

जब पुरुषों और महिलाओं की बात आती है, तो इंटरनेट के उपयोग के मामले में भारत में स्पष्ट लैंगिक असमानता है। "2018 में, ऑनलाइन शॉपर्स का वितरण पुरुषों (71%) के लिए अधिक था, जबकि महिलाओं के लिए 29 प्रतिशत था। इसके अलावा, 50 प्रतिशत ई-शॉपर्स हमेशा उत्पाद समीक्षाओं की जाँच करते हैं, 35 प्रतिशत कभी-कभी उनकी जाँच करते हैं और 10 प्रतिशत केवल महंगे या गैर-ब्रांडेड उत्पादों की समीक्षाएँ देखते हैं," रिपोर्ट में दावा किया गया है। आयु समूहों के संदर्भ में, 2018 में अधिकांश ऑनलाइन खरीदार 25 से 34 वर्ष (37 प्रतिशत) के बीच थे, इसके बाद 18-24 वर्ष (31 प्रतिशत), 35 से 44 वर्ष (24 प्रतिशत), 45 से भी कम उम्र के ऑनलाइन खरीदार थे। 54 वर्ष तक (8 प्रतिशत) और 55 प्रतिशत से ऊपर के खरीदार, जो सभी ऑनलाइन खरीदारों का 1 प्रतिशत से भी कम है।

निष्कर्ष

भारत में लॉजिस्टिक्स और कूरियर सेवाओं में बहुत सुधार की आवश्यकता है। हालाँकि, किसी भी ऑनलाइन कंपनी की सफलता के पीछे उत्तम और मजबूत लॉजिस्टिक्स सेवा प्रमुख कारणों में से एक है, भारत इस क्षेत्र में बहुत पीछे है क्योंकि अधिकांश शहर और छोटे गाँव अभी भी कई कूरियर के सेवा योग्य क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते हैं। लॉजिस्टिक कंपनियाँ। कूरियर सेवा कंपनियों द्वारा दी जाने वाली सीमित सेवाओं के कारण ईकॉमर्स बड़े पैमाने पर बाधित है। संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन जैसे अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में ई-कॉमर्स की कम वृद्धि दर का एक अन्य कारण भारतीय बाजार की कर दर प्रणाली है। उन देशों में, कर की दर सभी क्षेत्रों के लिए एक समान है जबकि भारत की कर संरचना अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। यह कारक भारतीय ऑनलाइन व्यापार कंपनियों के लिए लेखांकन समस्याएँ पैदा करता है। आज भारत में ई-कॉमर्स क्षेत्र में हो रहे सबसे रोमांचक विकास के बारे में पूछे जाने पर, मेहता ने 'फिजिटल' कॉमर्स के उदय का उल्लेख किया: "आज का ग्राहक चौनल-रहित है और कभी भी, कहीं भी, कनेक्टेड अनुभव और कनेक्टेड यात्रा चाहता है। इसे संबोधित करने के लिए, कई भारतीय खुदरा विक्रेता तेजी से 'फिजिटल' (डिजिटल और क्लासिक खुदरा का एक संयोजन) की ओर बढ़ रहे हैं। यह अब मुख्य रूप से फैशन और लाइफस्टाइल श्रेणी में काम करने वाले ब्रांडों द्वारा संचालित किया जा रहा है... ऑनलाइन और ऑफलाइन के बीच की रेखा धुंधली होती जा रही है क्योंकि खिलाड़ियों को यह एहसास हो रहा है कि दोनों दुनियाओं का सर्वश्रेष्ठ लाकर पूर्ण 360 डिग्री खरीदारी का अनुभव प्रदान किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान करने का डर भारतीय ग्राहकों का एक सार्वभौमिक मनोवैज्ञानिक कारक है। ऑनलाइन लेनदेन और इसकी विश्वसनीयता पर ज्ञान के प्रसार के साथ, कुछ प्रतिशत ग्राहकों ने इस डर को नजरअंदाज कर दिया है और वे निडर होकर ऑनलाइन शॉपिंग में लगे हुए हैं। लेकिन अभी भी ज्यादातर ग्राहकों को ऑनलाइन ट्रांजैक्शन और उसकी सुरक्षा के बारे में जानकारी नहीं है. वे अक्सर अपने क्रेडिट कार्ड और बैंक विवरण का खुलासा करने में अनिच्छुक होते हैं और

खरीदारी की ऑनलाइन दुनिया से दूर रहना पसंद करते हैं। भारतीय ग्राहक भौतिक रूप से उत्पाद खरीदने में अधिक सहज हैं। वे सीधे उत्पाद को छूकर उत्पाद का चयन करते हैं। जिससे, भारतीय खरीदार यात्रा क्षेत्रों, किताबों और इलेक्ट्रॉनिक्स में ऑनलाइन टिकटिंग और बुकिंग करने के लिए अधिक इच्छुक हैं। परिधान, हस्तशिल्प, आभूषण जैसे उत्पादों से जुड़ी कंपनियों को अपने उत्पाद बेचने के लिए चुनौतियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि खरीदार इन सामानों को खरीदने से पहले देखना और छूना चाहते हैं।

संदर्भ

1. "चयनित देशों में खुदरा ई-कॉमर्स बिक्री सीएजीआर पूर्वानुमान,
2. "संवादात्मक वाणिज्य के लिए अपने उत्पादों और ब्रांड को कैसे तैयार करें"।
3. पावर, माइकल 'माइक' (19 अप्रैल 2013)। "ऑनलाइन शिखर नेट जितना पुराना है: पहला ई-कॉमर्स एक दवा सौदा था"। अभिभावक। लंडन। 17 जून 2013 को लिया गया.
4. "एनआईएसटी के डेटा एन्क्रिप्शन मानक (डीईएस) कार्यक्रम के आर्थिक प्रभाव"। मानक और प्रौद्योगिकी का राष्ट्रीय संस्थान। यूनाइटेड स्टेट्स वाणिज्य विभाग। अक्टूबर 2001.
5. "ऑन-लाइन लेनदेन के लिए चार उत्पादों का अनावरण"। कंप्यूटर की दुनिया। आईडीजी एंटरप्राइज। 10 (4): 3. 26 जनवरी 1976.
6. टकाज, इवारिस्ट; कपजिंस्की, एड्रियन (2009)। इंटरनेट - तकनीकी विकास और अनुप्रयोग। स्प्रिंगर. पी। 255. आईएसबीएन 978-3-642-05018-3. 28 मार्च 2011 को लिया गया। पहला पायलट सिस्टम यूके में टेस्को में स्थापित किया जा रहा था (पहली बार 1979 में माइकल एल्ड्रिच द्वारा प्रदर्शित किया गया था)।
7. 1988 पामर.सी. थॉमसन हॉलीडेज में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ के लिए आईटी का उपयोग, लंबी दूरी की योजना वॉल्यूम 21 नंबर 6 पी 26-29, इंस्टीट्यूट ऑफ स्ट्रैटजिक स्टडीज जर्नल, लंदन- पेर्गमॉन प्रेस [अब एल्सेवियर.बी.वी.] दिसंबर 1988।
8. "ई कॉमर्स- निबंध- हपांडुरंग92"। अध्ययन मोड। 17 जून 2013 को लिया गया.
9. "ऑनलाइन शॉपिंग: वह पेंशनभोगी जिसने होम शॉपिंग क्रांति का नेतृत्व किया"। बीबीसी समाचार। 16 सितंबर 2013.
10. एल्ड्रिच, माइकल। "श्रीमती स्नोबॉल ढूँढना"। 8 मार्च 2012 को पुन:प्राप्त.
11. "द इलेक्ट्रॉनिक मॉल"। जीएस ब्राउन. 30 अप्रैल 2010. 15 मई 2013 को मूल से संग्रहीत। 17 जून 2013 को लिया गया।
12. "टिम बर्नर्स-ली: वर्ल्डवाइडवेब, पहला वेब क्लाइंट"। W3. 21 दिसंबर 2012 को लिया गया। 13. गीगर, कॉनराड। "नेक्स्ट नगेट न्यूज"। Next-68k-org- कॉनराड गीगर. 8 सितंबर 2015 को मूल से संग्रहीत।
13. टेलर, जेसी (11 अप्रैल 2013)। "जेसी टेलर ऐपस्टोरी के साथ ऐप स्टोर और नेक्स्टस्टेप पर बातचीत करते हैं"।
14. "ऐपवॉपर वॉल्यूम 1 अंक 3 शिप" (प्रेस विज्ञप्ति)।
15. "खरीदार ध्यान दें: इंटरनेट खुला है"। दी न्यू यौर्क टाइम्स। 12 अगस्त 1994.
16. केविन, केली (अगस्त 2005), "वी आर द वेब", वायर्ड, 13 (8)
17. बनेल, डेविड (2001)। "ईबे बिजनेस मॉडल"। ईबे घटना: दुनिया की सबसे हॉट इंटरनेट कंपनी के पीछे का व्यावसायिक रहस्य। जॉन विली एंड संस। पीपी. 71-81. आईएसबीएन 9780471436799।
18. "पहले इलेक्ट्रॉनिक टिकटों का परीक्षण किया जा रहा है"। रविवार का कारोबार. 6 अप्रैल 1998. 16 जुलाई 2013 को लिया गया.

बाढ़ की विभीषिका पूर्नवास एवं विस्थापनः एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण (कोषी क्षेत्र के संबंध में)

डॉ० मो० रफत परवेज

अतिथि सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, के.पी.कॉलेज, मुरलीगंज, बी.एन.मंडल, विष्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपरा

कोशी बाढ़ के संम्बंध में प्राचीन एवं मध्य कालीन साहित्य में भी विवरण मिलते हैं लेकिन आधुनिक कालीन विवरण इस क्षेत्र में ब्रिटिश अधिपत्य की स्थापना से मिलने लगतें हैं Renell's के एटलस, हेमिल्टन बुकानन प्रथम सांस्कृतिक भूगोलवेत्ता के विवरण, W.W Hunter के अकाउन्टस सर्वे सेटलमेंट आपरेशन रिपोर्ट आदि से आधुनिक संदर्भ में बाढ़ की जानकारी इस क्षेत्र की मिलती हैं। 1807–1811 के डॉ0 बुकानन हेमिल्टन के मानचित्र से भी कोशी क्षेत्र के नदियों के प्रवाहमार्ग और बाढ़ की चर्चा मिलती है। 1840–1847 के भू-राजस्व सर्वे मैप से भी कोशी क्षेत्र में बाढ़ की चर्चा मिलती हैं कोशी बाढ़ के सम्बंध में कैपटन जैफरीज (Jffereys) के गंढ़क कैनाल रिपार्ट से भी बाढ़ के सम्बंध में जानकारी मिलती है। कैप्टन F.C Hirst के 1908 के Reports से भी बाढ़ की जानकारी मिलती है। 1894 में J.Hughes अधिक्षण अभियंता के प्रतिवेदन में भी कोशी के बाढ़ की विभिषिका का चित्र खींचा गया है कोशी के बाढ़ के सम्बंध मे आधुनिक काल में पहली प्रमाणिक जानकारी 1731 से मिलनी शुरू हो जाती है। कोशी के संम्बध में अंग्रेजों के आगमण के बाद समय समय पर अनेकों अध्ययन होते रहे। Captain F.C.K Hirst ने 1908 में एक शोध आलेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था - The Koshi River – some lessons to be leant from it Hirst का यह आलेख सितम्बर 1908 के एसियाटिक सोसायटी के जर्नल ऑफ बंगाल में प्रकाशित हुआ - और इस शोध आलेख में कोशी के बाढ़ की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया था Mr. Inglish ने Hirst के बाद एक शोध आलेख The Rivers of Bengal के नाम से लिखा जो Asiatic Society of Bengal के नबम्वर 1909 के जर्नल में प्रकाशित हुआ। इसमें भी बंगाल के मुख्य नदियों मे बाढ़ के स्वरूप की चर्चा की गई थी। कोशी की बाढ़ की भी इसमे प्रमुखता से चर्चा हुई थी और केप्टन हर्स्ट के विचारों से सहमति जतायी गयी थी। कोशी की बाढ़ के सम्बंध में इस शोध आलेखों का निष्कर्ष था कि कोशी में और इसकी सहायक नदियो में बाढ़ आने का मुख्य कारण इसकी धारा मे होने वाला परिवर्तन था। कर्नल हेग जो सिंचाई विभाग का अभियंता था ने 1876 में उत्तर बिहार के नदियों का एक सर्वेक्षण किया था जिसमें उसने इस तथ्य को रेखांकित किया था कि कोशी की नयी और पुरानी छोटी-छोटी शाखा ही गंगा और ब्रहम्पूत्र के नीचले सतह पर प्रवाहित होती थी और इसकी जो बड़ी शाखा थी वह उपरी सतह पर प्रवाहित होती थी। इस तथ्य की चर्चा Inglish ने अपने आलेख में की थी। हैग के सर्वेक्षण में यह भी बताया गया था कि कोशी और कमला नदी के बीच के क्षेत्र की चौड़ाई 65 मील. है और इसके आधे क्षेत्र में उत्तर से दक्षिण की ओर जो ढ़लान है वह प्रतिमील लगभग 2 फीट है। पश्चिम से पूरब की ओर कमला के बाद मैदान बलान की ओर उँचा होता जाता हैं और उसके बाद बलान से कोशी तक मैदान ढ़लूआँ होता जाता है। Haig के सर्वेक्षण को उद्धृत करते हुए Mr. K Inglish ने अपने आलेख मे कहा कि 1844 में जब मैप बना था, 32 वर्ष के बाद कोशी उससे 4 से 6 मील पश्चिम में प्रवाहित हो रही थी। 1876 के बाद से कोशी का धाराओं में अनेकों परिवर्तन हुए और धाराओं के परिवर्तन के साथ क्षेत्र में बाढ़ का तांडव चलता रहा। 1894 मे कोशी की भयंकर बाढ़ का समय यह आशंका प्रबल हो गई थी कि पूर्णियॉ का Civil Station कोशी की बाढ़ में ध्वस्त हो जाएगा।

कोशी का बाढ़ का प्रमुख कारण इसकी प्रमुख और सहायक धाराओं में परिवर्तन होता रहना है। 1736 से 1950 तक कोशी की धाराओं के बदलने का दिलचस्प आँकड़ा उपलब्ध है। 1736 से पूर्व कोशी की धाराओं के परिवर्तन का कोई वैज्ञानिक आँकड़ा उपलब्ध नहीं हैं। 1736 से 1770 के बीच कोशी 34 वर्षो में 6. 7 मील पश्चिम की तरफ बढ़ी 1770 से 1823 के बीच 53 वर्षो में 5.8 मील, 1823 से 1856 के बीच 33 वर्षो में 3.8 मील, 1856 से 1883 के बीच 27 वर्षो में 8.1 मील, 1853 से 1907 के बीच 24 वर्षो में 11.5 मील, 1907 से 1922 के बीच 15 वर्षो में 6.8 मील, 1922 से 1933 के बीच 11 वर्षो में 18 मील. तथा 1933 से 1950 के बीच 17 वर्षो में कोशी 11 मील पश्चिम की ओर बढ़ी और इस क्रम में उसने बार बार अपनी धाराओ को परिवर्तित कर विनाशकारी बाढ़ का सृजन किया। कोशी में बाढ़ आने और बार-बार अपनी धारा बदलने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि अपनी धारा के साथ कोशी बड़ी मात्रा में बालु और कंकड़ बहाकर लाती थी। कोशी में प्रतिवर्ष बालू और कंकड़ की

बहकर आनेवाली मात्रा का 1943 के पहले का कोई रिकार्ड उपलब्ध नही है। 1943 से कोशी नदी में प्रतिवर्ष जमा होने वाले बालू, कंकड़ का आँकड़ा उपलब्ध है जो काफी दिलचस्प है। 1948 में प्रति एक हजार एकड़ में 84 फीट, 1949 में 123.2 फीट, 1954 में 229.8 फीट, 1961 में 47.9 फीट बालू कंकड़ का छाजन कोशी की धाराओं में हुआ। 1948 से 1961 के बीच प्रतिवर्ष प्रतिहजार एकड़ बालू, कंकड, का छाजन 83.2 फीट हुआ। बालू और कंकड़ की उपरोक्त भारी मात्रा कोशी की बाढ़ का एक महत्वपूर्ण कारण था। यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि कोशी नदी में बालू और कंकड़ की इतनी अधिक मात्रा क्यों आती थी। बहुत स्वाभाविक है कि कोशी के जल ग्रहण क्षेत्र में काफी वर्षा होती है, और इसके उदगम स्थल के आस-पास के पहाड़ नंगे है जिसपर वृक्ष वगैरह नहीं है। इसलिए घनघोर वर्षा में यह चट्टान बड़ी मात्रा में टूटकर और घर्षण से घिस कर कंकड़-बालू के रूप में नदियों में प्रवाहित होती है। चूंकि उदगम स्थान काफी उँचाई पर है और प्रवाह मार्ग के संमतल तक आने में प्रवाह की गति काफी तीव्र होती है और इस स्थिति में प्रवाह मार्ग में आने वाले बड़े-बड़े चट्टान तक टूटकर ढ़ेले की तरह प्रवाह मार्ग में गिरने लगते है। 1948 से 1955 के बीच प्रवाह क्षेत्र में बालू कंकड़ के जमाव का प्रतिमाह का आंकड़ा भी उपलब्ध है। 1948 में जहाँ पूरे एक वर्ष बालू कंकड़ का जमाव 4.02 फीट प्रति एक हजार एकड़ था; वही उसी वर्ष केवल जून से अक्टूबर के बीच (वर्षाऋतु) यह 84. 5 फीट था। 1949 के 12 महीने में यह जमाव 123.11 फीट था तो उस वर्ष केवल जून से अक्टूबर के बीच यह 117.63 फीट था। इसी तरह 1954 के 12 महीने में यह 229.85 फीट था जबकि उस वर्ष जून से अक्टूबर के बीच (वर्षाऋतु) यह 225.3 फीट था । इसी तरह 1961 के 12 महीने में 47.96 फीट बालू कंकड़ का जमाव हुआ जबकि उस वर्ष जून से अक्टूबर के बीच 45.58 फीट था। इस तरह यह स्पष्ट हे कि मानसून के महीने में अधिक वर्षा होने पर कोशी के प्रवाह क्षेत्र में बालू,-कंकड़ का जमाव अधिक होता था ।

कोशी क्षेत्र का पूर्णियॉ प्रभाग आलोच्य अवधि के प्रारंभ में और उसके पहले कोशी की बाढ़ से त्रस्त था। हालांकि पूर्णिया प्रभाग में कोशी के अतिरिक्त गंगा और महानंदा में भी बाढ़ आती थी लेकिन गंगा और महानंदा के बाढ़ की प्रकृति कोशी के बाढ़ की प्रकृति से सर्वथा भिन्न थी। हालांकि महानंदा नदी भी धारा बदलने के लिए बदनाम रही है लेकिन जितनी तीव्र गति से कोशी नदी धारा बदलती है उतनी तीव्रता महानंदा में नहीं है। लेकिन गंगा, महानंदा की बाढ़ से कोशी की बाढ़ की प्रकृति इस दृष्टि से भिन्न है कि गंगा और महानंदा अपनी बाढ़ के साथ जलौढ़ मिट्टी (पाँक) भी लाती थी और कोशी अपनी बाढ़ के साथ बालू का टीला लाती थी। गंगा और महानंदा की बाढ़ जहाँ आती थी वहाँ भरपूर फसल होती थी जबकि कोशी की बाढ़ जहाँ आती थी वहाँ की भूमि बालू का टीला बन जाती थी और इन टीलों को रमणा कहा जाता था। कोशी साहित्य में ललितेश्वर मल्लिक द्वारा लिखी हुई 1953 में प्रकाशित पुस्तक ''कोशी'' एक बहुचर्चित और रोचक पुस्तक हैं जिसके अनेक संदर्भ समकालीन तथ्यों पर आधारित है। 1927 के बाढ़ का आँखों देखा रोचक विवरण इस पुस्तक में उन्होंनें दिया है। और बालू के टीलों जिसे रमणा कहा जाता था के अनेक रोचक विवरण उन्होने दिये हैं। इस तरह कोशी की बाढ़ के बाद का गाँव, खेत और खलिहान, उजली, चाँदी की तरह रेत के समुन्द्र में परिणत हो जाता था, जहाँ आनें वाले कई वर्षो तक कृषि कार्य की कल्पना नही की जा सकती थी। रेत के इस समंदर में कास, पटेर और झोवे के जंगल उगते थे जिनमें जंगली सूअर, नील गाय, हिरण, बारहसिंगे, बाघ और चीते रहा करते थे। इन जंगलों में जंगली सूअर का बसेरा होता था जिनका आसपास के गाँवो के उपर आक्रमण होता रहता था। सौरा नदी जो कोशी की ही सहायक नदी थी जो 20 वीं सदी के प्रारंभ तक पूर्णियॉ शहर में प्रवाहित होती थी। 20 वी सदी के आरंभ में पूर्णियॉ शहर दलदल और जंगलो से भरा हुआ था और इसकी जलवायु भी बहुत अहितकर थी। अरण्य का अर्थ होता है जंगल और पूर्णियॉ पूर्ण रूप से जंगल था इसलिए इसका नाम पूर्ण+अरण्य से कालांतर में पूर्णियॉ हुआ हो तो इसमें आश्चर्य नहीं।

अबुल फजल के द्वारा लिखित आईन-ए-अकबरी में भी कोशी क्षेत्र में नदियों और उसमें आने वाली बाढ़ की चर्चा मिलती है। जिसकी चर्चा फ्रांसिसी हेमिल्टन बुकानन ने भागलपुर रिपोर्ट में की है। अबूल फजल के आईन-ए-अकबरी में वर्तमान कोशी प्रमण्डल को नदियों का संगम कहा गया है। फ्रांसिस हेमिल्टन बुकानन ने भागलपूर रिपोर्ट में कोशी प्रमण्डल के विभिन्न परगनाओं में जिसमें निशंकरपुरकुरहा, कबखण्ड आदि परगनाओं मे आने वाले बाढ़ की चर्चा की है। 1810-11 में जब उसने इस क्षेत्र की यात्रा की थी तो इस क्रम में उसने अनेक धाराओं को पार किया था जिसका उल्लेख उसने अपने विवरण में किया है। सुपौल जिले के अनेक क्षेत्रों की चर्चा भी बुकानन ने की है। इस क्षेत्र की नदियाँ आपस में जुड़ी हुई थी। नदियों को आपस में जोड़ने वाली इन धाराओं को धार कहा जाता था। यह धार गहरे और चौड़े होते थे।

1911 में P.W. MURPHY के द्वारा सर्वे एण्ड सेटलमेंट आपरेशन इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ बिहार तैयार किया गया इसमें कोशी प्रमण्डल, सहरसा और पूर्णियॉ प्रमण्डल में आने वाले बाढ़ों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें पूर्णियॉ प्रमण्डल के कुछ क्षेत्र और उळारी भागलपुर के सुपौल और मधेपुरा अनुमंडल में बाढ़ की व्यापक चर्चा गयी की है। लेकिन इसमें उत्तरी भागलपुर

अर्थात मधेपुरा और सुपौल अनुमंडल तथा पूर्णियॉ के दियारा क्षेत्र का समावेश नहीं किया जा सका था। दियारा क्षेत्र को शामिल किए बिना बाढ़ की सही तस्वीर मिलनी संभव नहीं थी। 1927-28 के बिहार, उड़ीसा सरकार के Administrative Report में वर्तमान पूर्णियॉ प्रमण्डल और सहरसा प्रमण्डल में बाढ़ के संम्बंध में विस्तृत विवरण आया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि तत्कालीन पूर्णियॉ और उत्तरी भागलपुर में जुलाई और अगस्त के महीने में कोशी में भयंकर बाढ़ आती थी। गंगा भी उफान पर थी। कोशी पश्चिम की दिशा में थोड़ी खिसकी। रिपोर्ट के अनुसार, बहुत विनाश कारी या भयावह बाढ़ नहीं था। हालांकि इसमें धन-जन, पशुधन का कुछ विनाश हुआ और धान की खड़ी फसल को क्षति पहुँची। लेकिन ललितेश्वर मल्लिक ने अपनी पुस्तक कोशी में 1927-28 की बाढ़ की जो चर्चा की है वह बहुत भयावह था। कोशी बाढ़ अंचल में घर पड़ने के कारण उन्होंने आँखों देखी तथ्यों का विवरण दिया है। 1933-34 के बिहार उड़ीसा Administrative Report में भी कोशी प्रमण्डल और पूर्णियॉ प्रमण्डल में बाढ़ का उल्लेख किया गया है। 1934 के प्रलयंकारी भूकम्प के बाद कोशी ने वेस्ट वार्ड मुवमेंट में एक लम्बी छलांग लगाई और यह मधेपुरा की पश्चिमी सीमा से सीधे सुपौल अनुमंडल को आक्रांत करती हुई पश्चिम की तरफ बढ़ी। इस Report में बाढ़ से होने वाली बिमारियों जैसे, मलेरिया, कालाजार, पिलिया बगैरह की चर्चा है। 1934-35 के रिपोर्ट में इस में बाढ़ की वजह से उत्पन्न होने वाली बिमारियों से हजारो लोगों के काल कवलित होने का विवरण मिलता है। 1935-36 के बिहार/उड़ीसा Administrative Report में भी बाढ़ का रौचक विवरण आया है और बाढ़ जनित बीमारियों से लोगों के मरने का विवरण आया है।

इस क्षेत्र में बाढ़ की जहां तक बात है यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी,। बाढ़ मानसून शुरू होने पर उत्तर बिहार में लगभग प्रत्येक वर्ष आने वाली घटना थी। 1935-36 के बिहार/उड़ीसा रिपोर्ट में उत्तर बिहार के ऐसे क्षेत्र जहाँ प्रति वर्ष बाढ़ आती थी, का विवरण इसमें दिया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार उत्तर बिहार के ऐसे क्षेत्र जहां प्रति वर्ष बाढ़ आती थी, में साधारणतय सारण, चंपारण, मुजफरपूर, दरभंगा, मुंगेर का उत्तरी भाग, पूर्णियॉ, उत्तरी भागलपुर का मधेपुरा और सुपौल अनुमंडल का नाम प्रमुख था। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि इन क्षेत्रों में बाढ़ का कारण भौगोलिक होने के साथ-साथ इस क्षेत्र का River system भी बाढ़ लिए उत्तरदायी था। 1935-36 की बाढ़ में सुपौल और मधेपुरा अनुमंडल पूरी तरह बाढ़ में डूब गया था। पूर्णियॉ के पश्चिमी हिस्से में भी बाढ़ आयी थी लेकिन बाढ़ की भयावहता मधेपुरा और सुपौल अनुमंडल की तरह नहीं थी। उत्तरीं भागलपुर (सुपौल, मधेपुरा, अनुमंडल) और उत्तरी दरभंगा में भी इस वर्ष प्रतिवेदन के अनुसार जान माल की व्यापक क्षति हुई थी।

मुंगेर के उत्तरी क्षेत्र का एक भाग भी कोशी की इस बाढ़ में डूबा था। यूं तो उत्तर बिहार के सभी जिलों में मानसून के समय बाढ़ आती थी लेकिन बीच-बीच में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ एक त्रासदी में परिणत हो जाता था। इसी तरह की बाढ़ को प्रलयंकारी बाढ़ कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। 1948-49 में कोशी क्षेत्र में आए इस बाढ़ की भयंकरता के सम्बंध में तत्कालीन बिहार सरकार के राजस्व मंत्री कृष्ण बल्लभ सहाय कहते है:- The state of Bihar was visited by one of the worst floods of living memory in the year 1948-49 resulting पद सर्वे 1900 से 1987 तक कोषी क्षेत्र में जल-प्रबंधन of life, considerable damage to crops and distruction of houses पद as many as twelve districts of the states अप्रैल 1948 में ही कोशी नदी में उफान आया लेकिन यह उफान जल्द ही शान्त हो गया। पुन: अचानक मई 1948 में कोशी में बाढ़ के लक्ष्ण प्रकट होने लगे । 7 मई, 1948 को कोशी के जल स्तर में तेजी से वृद्धि होने लगी लेकिन धीरे-धीरे जल स्तर घटने लगा लेकिन पुन: हिमालय में वर्फ पिघलने के साथ 15 मई 1948 से कोशी की सभी धाराओं में जल स्तर बढ़ने लगा। जून 1948 में सहरसा उप जिला कोशी की भयंकर बाढ़ की चपेट में आ गया। मधेपुरा अनुमंडल का तिलावे धार, साहुगढ धार तथा सूपौल अनुमंडल के खेरदाहा धार के जल स्तर में रिकार्ड वृद्धि हुई। 15 जून, 1948 के बाद जल स्तर में कमी आने लगी। सहरसा उपजिले में लगभग 500 वर्ग मील क्षेत्र बाढ़ की पानी में डुब गया। बाढ़ के वजह से धान, मूंग और मक्के की फसल सत्तर से अस्सी प्रतिशत तक नष्ट हो गई। सहरसा उप जिले का लगभग 400 गॉव पूरी तरह प्रभावित हुआ। ग्यारह लाख से अधिक लोग बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित हुए। समाचार पत्र में छपी खबर के अनुसार चालीस लाश बाढ़ के पानी से बरामद हुआ। लेकिन सरकार ने इतनी संख्या में सहरसा उप जिले में बाढ़ से मौत होना स्वीकार नहीं किया। लेकिन इसमें दो मत नहीं कि कई लोग बाढ़ और अनवरत वर्षा से पानी में डूबकर मरे। बड़ी संख्या में सरकारी और गैर सरकारी सहायता कार्य चलाये गए। बाढ़ के बाद होने वाली महामारी ने कोढ़ में खाज का काम किया। महामारियों सें काफी संख्या में लोग मारे गए। 1948-49 के भयंकर कोशी के बाढ़ से मुंगेर जिले खासकर उळारी मुंगेर का एक बड़ा भाग कोशी की बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित हुआ। इस क्षेत्र में कोशी गंगा और गंडक तीनों नदियों में बाढ़ आती थी। कोशी के बाढ़ का असर मुंगेर जिले के खगड़िया सबडिविजन के बख्तियारपुर तथा चौथम थाना क्षेत्र पर पड़ा। चौथम, चूकती, तथा बख्तियारपुर और खुटया

जैसे इस क्षेत्र के कई गॉव बाढ़ की पानी में डूब गए। बख्तियारपुर थाना क्षेत्र का तीन चौथाई भाग और चौथम थाना क्षेत्र का एक चौथाई भाग बाढ़ की पानी में डूब गया। कोशी की बाढ़ से मानसी के निकट करैया बाँध, कहार टोली बाँध और चुकती बाँध ध्वस्त हो गया। करीब अस्सी हजार मन मक्का और चालीस हजार मन धान की फसल नष्ट हो गया। लगभग 600 घर पूरी तरह और 400 घर आंशिक रूप से ध्वस्त हुए। एक हजार लोगों और दो सौ पशुओं को डुब क्षेत्र से बाहर सुरक्षित निकाला गया। इसी वर्ष (1948-49) गंगा और गंडक से भी बाढ़ आने से तबाही मची। परबत्ता पुलिस थाना क्षेत्र में अगुआनी परबत्ता बाँध अनेक जगहों पर ध्वस्त हो गया। बेगूसराय सब डिविजन, तिरहुत डिस्ट्रीक बोर्ड रोड अनेक जगहों पर पानी में डूब गया। दियारा क्षेत्र की स्थिति तो भयानक थी। खगड़िया बाजार में भी बाढ़ का पानी घुस गया। इस बाढ़ में कितने पशु और कितने लोग मरे इसका सही-सही आँकड़ा उपलब्ध नहीं है।

1948-49 की बाढ़ में वर्तमान पूर्णियॉ प्रमण्डल भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। बाढ़ के आशंका को ध्यान में रखकर तत्कालीन बिहार सरकार ने एक सत्ताईस सदस्यीय Flood Relief Advisory Committee का गठन किया गया। इसमें सरकारी और गैर सरकारी दोनो सदस्य थे। पूर्णियॉ के जिलाधिकारी इस कमिटी के पदेन Chairman था। 15 सितम्बर, 1948 को गंगा के जल स्तर में वृद्धि प्रारंभ हुई। जल स्तर में वृद्धि असाधारण थी। Flood Advisory Committee ने बाढ़ में लोगों की सहायता के लिए काम करना शुरू कर दिया। 25 सितम्बर 1948 तक पूर्णियॉ जिले का मनिहारी और बरौनी थाना क्षेत्र बाढ़ के पानी से लबालब भर चुका था। मनिहारी थाना क्षेत्र का 167 वर्गमील भाग और बराही थाना क्षेत्र का 1250 वर्ग मील क्षेत्र पानी में पूरी तरह डुब चूका था। काढ़ा गोला थाना क्षेत्र के 300 वर्गमील में बाढ़ का पानी फैल चुका था। रूपौली थाना क्षेत्र भी बाढ़ से आंशिक रूप से प्रभावित हुआ। मक्के की खड़ी फसल जो कटने के लिए तैयार थी, पानी में पूरी तरह डूब गयी। किसानों को भूख और विनाश से बचाने के लिए अनेक गाँव में सरकार की ओर से नाव दी गई ताकि पानी मे डूबे मक्के की फसल की कटाई कर सके और अपने अस्तित्व की रक्षा कर सके मनिहारी थाना क्षेत्र के सभी 186 गाँव बरारी थाना क्षेत्र के 100 गॉव, और कोढ़ा थाना क्षेत्र के छः गाँव बाढ़ से बुरी तरह प्रभवित हुए। बरारी थाना क्षेत्र में 1378 घर और कोढ़ा थाना क्षेत्र में 1200 घर बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गए। बिहार बिधान सभा में सरकारी सहायता पर्याप्त नही होने पर सदस्यों ने क्षोभ और विरोध प्रकट किया।

कोशी क्षेत्र में बाढ़ की विभिषिका ने जन जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित किया। बाढ़ के कारण जनसंख्या का विस्थापन बड़े पैमाने पर हुआ। जनसंख्या का यह विस्थापन और पुर्नवास का क्रम प्रतिवर्ष बाढ़ के साथ-साथ चलता रहा। बाढ़ के कारण बड़े पैमाने पर होने वाले विस्थापन और पुनर्वास का शोध अध्ययन अलग से स्वतंत्र रूप से करने की आवश्यकता है। यहाँ केवल कुछ दिलचस्प आंकड़े दिए जा रहे हैं जिससे यह पता चल सके कि विस्थापन और पुनर्वास कितने बड़े पैमाने पर प्रतिवर्ष इस क्षेत्र में होता था और उसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलू पर इसके प्रभाव का अध्ययन अलग से करने की आवश्यकता होगी। सांस्कृतिक जीवन पर भी इसका गंभीर प्रभाव पड़ा। 1941 से 1950 के बीच सहरसा उपजिला की जनसंख्या में 15.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह वृद्धि वस्तुतः उत्तरी बिहार के किसी भी जिले में होने वाली सबसे अधिक वृद्धि थी। उत्तर बिहार के किसी जिले में अब तक एक दशक में इतनी वृद्धि दर्ज नहीं की जा सकी थी। एक दशक में पूर्णियॉ जिले की जनसंख्या में 5.6 प्रतिशत और पड़ोसी दरभंगा जिले की जनंसख्या में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सहरसा उप जिला में हुई वृद्धि का सबसे बड़ा कारण मधेपुरा अनुमंडल की जनसंख्या में इस दशक में रिकार्ड वृद्धि होना था। हालांकि इस दशक में सुपौल अनुमंडल की जनसंख्या में कमी आई, क्योंकि कोशी की मुख्य धारा सुपौल अनुमंडल में प्रवाहित हो रही थी। वस्तुतः मधेपुरा अनुमंडल में यह वृद्धि सुपौल और दरभंगा क्षेत्र से कोशी पीड़ितों के मधेपुरा में आवर्जन के कारण हुआ। सहरसा उप जिला के सुपौल से प्रवजन होने का सबसे बड़ा कारण कोशी की बाढ़ थी। प्राकृतिक आपदा के सबसे बड़े शिकार गरीब और मजदूर लोग होते हैं। इस बाढ़ के कारण विस्थापन और पुनर्वास के शिकार भी यही निर्धन और मजदूर लोग बड़ी संख्या में हुए। रोजी रोटी की खोज में इन्हें अपना आशियाना बदलना पड़ता था। कृषि कार्य बन्द रहने की स्थिति में बिना बाढ़ के भी उनका प्रवजन सक्रिय कृषि क्षेत्र में होता था। 1951 की जनगणना में सहरसा से बाहर जाने वाले लोगो का आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। लेकिन 1954 में सहरसा के जिला बन जाने के बाद बाहर के लोगो का यहाँ प्रवजन बड़ी संख्या में हुआ। जिला बनने के कारण पूरे जिले में कई कार्यालय खुले जिनमें नए-नए लोगों की नियुक्ति हुई। अनेक भवनों, सड़कों, अस्पतालों, कार्यालयों के निर्माण के लिए बड़ी संख्या में ठेकेदार, मजदूर आदि लोग का सहरसा आना हुआ। कोशी से संबंधित मामलों की देखरेख के लिए कोशी प्रोजेक्ट नामक एक अलग 1900 से 1987 तक कोषी क्षेत्र में जल-प्रबंधन विभाग सहरसा में खुला। इसकी शाखा अनुमंडल और ब्लॉक स्तर पर खुली। इनंतमाम कार्यालयों में बड़ी संख्या में लोग काम करने के लिए नियुक्त हुए। कोशी प्रोजेक्ट की देखरेख में कोशी तटबंध का निर्माण हुआ। कोशी तटबंध के निर्माण से इस क्षेत्र में एक प्रकार से सुरक्षा की भावना आई और जो लोग कोशी

की बाढ़ से तंग-तबाह होकर बाहर चले गए थे पुनः अपने पूराने गॉव आकर बसने लगे। बंजर भूमि कर्षण की बड़ी योजना सरकार के द्वारा क्षेत्र में कार्यान्वित की गयी जिससे कास, पटेर और झौआ के जंगलों को साफ कर उन्हें खेती लायक बनाया गया अब ये जमीन अच्छी फसल देने लगी। विकास के नये द्वार खुले। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहरसा जिले के लिए भी थाना स्तर पर विभिन्न विकास की योजनाएँ चलायी गयी और कार्यान्वित की गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन के समय वर्तमान सहरसा प्रमण्डल में दो अनुमंडल थे। सुपौल और मधेपुरा। सुपौल अनुमंडल में सात थाने थ। सुपौल, निर्मली, त्रिवेणीगंज, किशनपुर, प्रतापगंज, भीम नगर और छातापुर। इसी तरह मधेपुरा प्रमण्डल में नौ थाने थे- बनगॉव, धरहरा, मधेपुरा, मुरलीगंज, सिंहेश्वर, सौरबाजार किशुनगंज, सोनवर्षा, और आलमनगर। इन सभी उपरोक्त 16 थाना क्षेत्रों में पंचवर्षीय योजना के नहत विभिन्न क्षेत्र में विकास के कार्य प्रारंभ हुए। इसी तरह द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी सहरसा जिले के लिए विकास कार्यक्रम की योजना कार्यान्वित की गई। इसी तरह पूर्णियॉ जिले में भी प्रथम पंचवर्षीय योजना और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत थाना स्तर पर कार्य प्रारंभ किए गए।

संदर्भग्रंथ सूची

01. बिहार की नदियाँ - हवलदार त्रिपाठी
02. इनसाईट बिहार - पी0 सी0 राय चौधरी
03. बिहारवासियों का जीवन और उनकी चिंताधारा-के0 के0 दत्ता
04. आधुनिक भारत का इतिहास - सव्यसाची भटटाचार्य
05. अपनी कुछ बातें: - लहटन चौधरी
06. भारतीय अर्थव्यवस्था - रूद्रदत्त
07. श्रोतियाज ऑफ मिथिला - अभय नाथ मिश्रा
08. बिहार में राष्ट्रीयता का विकास - यूनाईटेड प्रेस लि0 भागलपुर - एन0 एम0 पी0 श्रीवास्तव
09. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष - विपिन चन्द्र
10. भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदभ्व और विकास - विपिन चन्द्र
11. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास: जयशंकर मिश्र
12. मिथिलातत्व विमर्श: परमेश्वर झा
13. स्वतंत्रता आंदोलन का सहरसा: भवेश मिश्र
14. मध्यकालीन भारत - मजुमदार राय चौधरी तथा दत्ता
15. मिथिलाक इतिहास - डा0 उपेन्द्र ठाकुर
16. सं0 - वर्णरत्नाकर - आनन्द मिश्र, गोविन्द झा

बालश्रम समाज के लिए एक चुनौती

डॉ० अरूण प्रसाद अमन

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), अर्थशास्त्र विभाग, पार्वती विज्ञान महाविद्यालय, मधेपुरा, बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा

सारांश- आज भारत में कुल जनसंख्या के 5.2 प्रतिशत बाल श्रमिक हैं। 5 से 14 वर्ष के श्रमिकों का उच्चतम प्रतिशत मिजोरम में और न्यूनतम प्रतिशत लक्षद्वीप में है जो कुल जनसंख्या का क्रमशः 12.34 प्रतिशत और 0.19 प्रतिशत हैं अधिक चौकाने बाला एक तथ्य यह है कि भारत के कुल कार्यबल का लगभग 11 प्रतिशत बच्चे हैं तथा प्रत्येक दस श्रमिकों पर एक बच्चा है। भारत में जहाँ जनसंख्या के 40 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति और दरिद्रता की स्थितियों में रह रहे है वहाँ बाल श्रम एक बहुत पेचीदा विषय है। यदि भारत में बाल श्रम की समस्या को देखें तो बहुत सी बाते इसके लिए उत्तरदायी मानी जा सकती जिसमें आवास की समस्या ऋणग्रस्तता की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, नेतृत्व की समस्या सामाजीकरण की समस्था की समस्या वैवाहिक समस्या तथा मनोरंजन की समस्या प्रमुख है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी सामने आया कि श्रम करने के कारण बच्चे अशिक्षित रह जाते है और वे अपने मिल अधिकारों एव शासन द्वारा चलाई गई योजनाओं का लाभ प्राप्त नहीं कर पारी हैं संयुक्त परिवार बढ़ती जनसंख्या बेरोजगारी बढ़ती हुई महँगाई भीतिक यस्तुओं के प्रति बढ़ता आकर्षण आदि के कारण भी इस समस्या को बढ़वा मिला है।

कुँजी- श्रमिक, नेतृत्व, वैवाहिक, अशिक्षित, बेरोजगारी।

प्रस्तावनाः- बाल श्रम की समस्या का एक प्रमुख कारण गरीबी है प्रायः यह देखा जा सकता है कि बच्चे गरीबी के कारण काम करने को मजबूर हो जाते है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय श्रम बाजार में लगभग 50 लाख आर्थिक दृष्टि से क्रिया क्रियाओं में रोजगार है, जो देश में 5.14 आयु वर्ग की कुल जनसंख्या का लगभग 2 प्रतिशत से अधिक है। भारत में बाल श्रम की समस्या अंग्रेजो के समय से ही प्रचलित हैं। उस समय भी बच्चे खेतो में काम किया करते थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार द्वारा राजकीय श्रम आयोग का गठन किया गया। वर्ष 1901 में बनाए गये खदान अधिनियम में सरकार द्वारा 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों का काम पर लगाना अपराध माना जाने लगा। 1922 में कारखाना एक्ट बना जिसमें 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को बालक माना गया और उनके काम करने की अवधि 8 घन्टे निश्चित की गई। सन् 1931 में शाही श्रमिक कमीशन की सिफारिशों के आधार पर जो कानून बनाने में 12 वर्ष से कम आयु के बच्चे को फैक्ट्री में काम करे पर रोक लग गयी और यह भी व्यवस्था की गई कि 12 वर्ष से अधिक उसका बालक डॉक्टरी प्रमाणपत्र के आधार पर ही काम कर सकता है। बालक मजदूर से 5 घंटे से अधिक एक दिन में काम नहीं कराया जा सकता। बालक बनक कानून सन् 1933 में लागू किया गया इसके अन्तर्गत माता - पिता अपने बच्चों को श्रम मालिकों के पास बनाक नहीं रख सकते। इसी तरह बाल श्रम को रोकने हेतु 1838 का कानून जिसके अनुसार 15 वर्ष से कम उम्र के बालकों को नौकर बना कर नहीं रख सकते है। स्वतंत्रता के बाद सरकार इस संबंध में जागरुक है और संविधान में अनेक संशोधनों के माध्यम से बच्चों को संरक्षण देने का प्रयास किया गया।

वर्तमान में बाल श्रम संबंधी समस्या एक वैश्विक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है। इस समस्या से निजात पाने के लिए सर्वसाधारण को खुले मन से प्रयत्न करना होगा और पूंजीपतियों पर अंकुश लगाना होगा और सरकार को अपने द्वारा बनाये गये कानूनों का सख्ती से पालन करना होगा बाल मजदूरी के कारणों में गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और कम मजदूरी दर आदि प्रमुख हैं। इसलिए विभिन्न विभागों के सहयोग से कार्यक्रमों का सीधा लाभ पीढ़ित बच्चों को दिलाने का प्रयास करना चाहिए जिससे उन परिवारों को वैकल्पिक आय का स्रोत मिल सके जो इन बाल मजदूरों की कमाई पर निर्भर होते है। ऐसे गरीब परिवारों को स्वास्थ्य, पोषाहार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सस्ते कपड़े मिट्टी का तेल आदि अन्य आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराई जाए जिससे उन परिवारों में मृत्युदर और जन्मदर कम हो, उनकी औसत आयु बढ़े।

बाल श्रमिकों को इस समस्या से मुक्त कराने के लिए अनेक पुनर्वास की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए पारंपरिक व्यवसायों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। व्यवयास में लगे छोटे सदस्यों को प्रशिक्षण एवं स्थानीय ग्रामीण बैंकों से ऋण दिलवा कर उनकी स्थिति मजबूत करना चाहिए। बाल श्रमिकों को शिक्षा भी दी जानी चाहिए। हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बाल मजदूरों को बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है। देश में स्कूलों का अभाव है और जहाँ है भी वह पहुँच से बाहर है अगर गरीब बच्चे किसी तरह पढ़-लिख भी गये तो उन्हें नौकरी नहीं मिलती है। रोजगार शिक्षा ही बालश्रम पर अंकुश लगा सकती है।

बाल श्रम उन्मूलन के लिए 10वीं योजना में राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत कवर किये गये जिलों को सख्या 100 से बढ़कर 250 हो गयी है दोपहर का भोजन कार्यक्रम से मिलने वाली खाद्य सुरक्षा का बाल श्रमिकों की सख्या कम करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। सबको शिक्षा मुहैया कराने के उद्देश्य से शुरू किये गये सर्व शिक्षा अभियान से भी बच्चों के बीच साक्षरता बढ़ी है।

भारत सरकार और अमरीकी श्रम विभाग ने देश के 21 जिलों में बाल श्रमिकों के पुनर्वास के लिए इंडस (इडी-पूएस) नाम की एक संयुक्त परियोजना आरंभ की है। इसका लक्ष्य एकीकृत रूप परियोजना क्षेत्र में जोखिमकारी उद्योगों में बाल श्रम की पूरी तरह उन्मूलन करना है। इस योजना से 80,000 बच्चे लाभावित हो रहे हैं। बाल श्रम (संरक्षण एवं नियमन) अधिनियम 1986 के अन्तर्गत खतरनाक समझे जाने वाले 64 देशों में 14 से कम उम्र के बच्चों को लगाने पर रोक है। अब यह दायरा घर और होटल तक बढ़ा दिया गया है।

वर्तमान समय में भारत ही नहीं अपितु पूरा विश्व बाल मजदूरी की समस्या से ग्रस्त है। बाल श्रम भारत के साथ-साथ पूरे विश्व के लिए एक ज्वलंत समस्या बनती जा रही है। जैसे-जैसे सरकारें नये-नये कानून बनाकर बाल मजदूरी पर रोक लगाने का प्रयास कर रही हैं तो दूसरी तरफ यह समस्या नये-नये रूपों में और अधिक सामने आती जा रही है। सस्ते श्रमिक की चाहत में छोटे से लेकर बड़े से बड़े उद्योगपति भी बाल श्रम से अपना मोह छोड़ नहीं पा रहे हैं। बाल श्रम की कुरीति से छुटकारा पाने के लिए सरकार भी पीछे नहीं है लेकिन नये-नये कानून बनाकर भी सरकार इसे रोक पाने में असफल रही है। भारत में बाल श्रम में कमी न होने का एक प्रमुख कारण सरकार की उदासहीनता है। सरकार कानून तो बना रही है लेकिन उन कानूनों को लागू करवाने में सरकारी कठोरता का अभाव देखा जा सकता है। आज दुनिया में 215 मिलियन ऐसे बच्चे हैं जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम है और इन बच्चों का समय स्कूल में कॉपी-किताबों और दोस्तों के बीच नहीं बल्कि होटलों, उद्योगों में बर्तन एवं झाड़ू-पोंछे और औजारों के साथ बितता है। भारत में तो यह स्थिति बहुत ही भयावह हो चली है। दुनिया में सबसे ज्यादा बाल मजदूर भारत में ही हैं। 1991 में यह आंकड़ा 11.3 मिलियन तक था जो 2001 की जनगणना में 12.7 मिलियन तक पहुँच चुका है।

भारत में बाल मजदूरी के अनेक कारण हैं। बेरोजगारी, अशिक्षा, निम्न स्तर का रहन-सहन, गरीबी, परिवार का बड़ा होना, माता-पिता की निम्न आय आदि। भारत में बाल मजदूरी का सबसे मुख्य कारण है गरीबी। गरीबी के कारण बच्चों के माता पिता उन्हें ठीक प्रकार से पढ़ा लिखा नहीं पाते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण बच्चे बाल मजदूरी के दलदल में फसता चला जाता है। बाल श्रम का दूसरा प्रमुख कारण मुस्लिमों, अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्ग में परिवार का बड़ा होना। परिवार के बड़े होने के कारण तथा माता-पिता की कम आय होने के कारण मजबूर होकर बच्चों को बाल श्रमिक बनना पड़ता है। माता-पिता भी इसके लिए तैयार रहते हैं और ये सोचकर बच्चों को बाल श्रमिक बना देते हैं कि चलो परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी, और यही बात बच्चे के भविष्य को बर्बाद कर देती है। यही बच्चे पूरी उम्र पढ़ाई के अभाव में बाल श्रमिक से केवल एक व्यस्क श्रमिक ही बन पाते हैं। इस प्रकार के श्रमिक के बच्चे भी भविष्य में बाल श्रमिक बनने की संभावना ज्यादा रहती है। विभिन्न स्थानीय दुकानदारों, होटलवालों एवं मिल मालिकों का कम पैसों में मजदूर मिलने का लालच के कारण वह छोटे बच्चों से मजदूरी करवाते हैं और मजदूरी में कम पैसे देते हैं।

भारत में बाल श्रम या बाल मजदूरी से बच्चों पर शारीरिक और मानसिक रूप से व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। बाल श्रम वाले बच्चे शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर हो जात हैं। स्कूल एवं पढ़ाई के अभाव में इनका उचित मानसिक एवं शारीरिक विकास अपनी आयु के अनुसार नहीं हो पाता है जो कि अपने देश के उज्जवल भविष्य के लिए ठीक नहीं है। शिक्षित एवं शक्तिशाली नागरिक के अभाव में कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है जबकि हमारा देश के पहले से ही शिक्षा, विकास, विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ रहा है। बाल श्रम से देश में बेरोजगारी, अशिक्षा और गरीबी बढ़ती जाती है किसी भी देश के लिए अच्छा नहीं है। जिस प्रकार बाल श्रमिक उचित खान-पान एवं देखभाल के अभाव में कमजोर होते जाते हैं उसी प्रकार देश भी उतना ही कमजोर होता चला जाता है। अब भारत सरकार ने आठवीं तक की शिक्षा को अनिवार्य और निशुल्क के साथ-साथ वजीफा, ड्रेस तथा मिड-डे मिल की भी व्यवस्था कर दी है लेकिन लोगों की गरीबी और बेबसी के आगे यह योजना भी निष्फल साबित होती दिखाई दे रही है। बच्चों के माता - पिता सिर्फ इस वजह से उन्हें स्कूल नहीं भेजते क्योंकि उनके स्कूल जाने से परिवार की आमदनी कम हो जाएगी।

निष्कर्ष: बाल श्रम एक प्रमुख सामाजिक, आर्थिक समस्या है जो बच्चों के शारीरिक-मानसिक क्षमता को प्रभावित करती है। बच्चों के हितों और संरक्षण का मामला भारत के संविधान में निहित है इसके बावजूद बच्चों के अधिकारों का घोर उल्लंघन हो रहा है। भारत का प्रत्येक चौथा बच्चा बालश्रम के चलते स्कूल नहीं जा पाता है। सरकार ने आठवीं तक की शिक्षा को अनिवार्य और नि:शुल्क कर दिया है लेकिन लोगों की गरीबी और बेबसी के आगे यह योजना भी निष्फल साबित होती दिखाई देती है। बच्चों के माता पिता सिर्फ इस वजह से उन्हे स्कूल नहीं भेजते क्योंकि उन्हे स्कूल जाने से परिवार की आमदनी कम हो जायेगी। बच्चे आज भी राजनैतिक, सामाजिक प्राथमिकता में नहीं है। सस्ते श्रमिक के तौर पर उनका इस्तेमाल हो रहा हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 80 लाख बच्चे काम कर रहे हैं, जबकि शहरों में 20 लाख के करीब है, 62.8% बाल मजदूर खतरनाक कार्यों में लगे हुए हैं। 59% बच्चे कृषि क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

बच्चे सस्ता श्रम होते हैं तभी इन्हें ठेकेदार व दुकानदार अपने व्यवसाय में रख लेते हैं। सरकार द्वारा बनाये गये बाल श्रमिक कानूनों के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कार्य पर लगाना वर्जित है, और इसकी अवहेलना करने पर कार्यवाही की जाती है। बाल श्रमिक कानून का किसी भी व्यवसाय मालिकों द्वारा

पालन नहीं किया जाता है। बालश्रम के कारणों में अशिक्षा, निध ंनता, संयुक्त परिवार, वैश्वीकरण, निजीकरण व उपभोक्तावादी संस्कृति आदि हैं। ठोस स्तर की राज्य व राष्ट्रीय नियमों/कानूनों के अभाव के चलते बालश्रम की समस्या बनी हुई है। बाल श्रमिको की संख्या इतनी ज्यादा है कि सरकार द्वारा बनाये गये कानून व प्रयास भी ऊँट के मुंह में जीरा प्रतीत हो रहे हैं।

सुझाव: बाल श्रम समाज पर कलंक है। बाल श्रम के दलदल से बच्चों के बचपन को निकालना बड़ी चुनौती है। बाल श्रम को मिटाने के लिए सरकार के साथ-साथ वैयक्तिक पहल भी जरूरी है। बाल श्रम के संरक्षण के लिए जागरूकता जरूरी है। मेरा मानना है कि जनता के सहयोग के बिना कोई भी कानून बाल श्रम के कलंक से इस देश को मुक्ति नहीं दिला सकता। जब तक बच्चों का बचपन नहीं संवरेगा तब तक देश के उज्जवल भविष्य की कल्पना निरर्थक है। बाल श्रम के उन्मूलन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है सोच में बदलाव। जब तक सोच में परिवर्तन नहीं होगा तब तक इस समस्या का स्थाई समाधान निकल पाना संभव नहीं है। बाल श्रम की समाप्ति के लिए सरकारी प्रयासों के साथ-साथ सामाजिक संगठनों के समन्वित साथ की सख्त जरूरत है। भारतीय दंड विधान द्वारा जो कार्यवाही है उसे सुनिश्चित किया जाना चाहिए। हमें किसी भी वर्ग के बच्चों के साथ कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए। बच्चों के उत्थान और उनके अधिकारों के लिए अनेक योजनाओं को प्रारम्भ किया जाना चाहिए जिससे बच्चों के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सके। गरीबी को दूर करने वाले सभी व्यवहारिक सभी उपायों को उपयोग में लाया जाना चाहिए। बिना बाल शिक्षा के देश के उज्जवल भविष्य की कल्पना करना निरर्थक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. बाल श्रम (प्रतिशेध और विनियम) अधिनियम 1986.
2. किशोर न्याय (देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2000.
3. मानवाधिकार नई दिशाएं (2008), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, वार्षिक अंक दृ0, 2008.
4. सारस्वत माधवानन्द, "मानवाधिकार एक अवलोकन, संजना प्रकाशन राजस्थान, 2011.
5. आहूजा राम, "सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2012.
6. आर्या रश्मि व बिष्ट एस०, जनपद नैनीताल में बाल श्रमिक समस्या एवं निदान, क्वैस्ट शोध पत्रिका, 2014, 8, (1). सिंह के0 पंकज, "समर्थ भारत", डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015.
7. लक्ष्मीकान्त एम0, "भारत की राजव्यवस्था", Mc- Graw Hill Education, (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण.
8. सत्यार्थी कैलाश, "आजाद बचपन की ओर", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016.
9. बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण अधिनियम 2015, महिला और बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट जनवरी 2016.

ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक रूप से सशक्तिकरण - एक अध्ययन

डॉ० किरण कुमारी

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), अर्थशास्त्र विभाग, आर० एम० कॉलेज, सहरसा, बी०एन०एम०यू०, मधेपुरा

सारांश:- ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण एमपीटीएफ एक वैश्विक पहल है जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए सामाजिक-आर्थिक अवसरों में सुधार के लिए भागीदारों के तुलनात्मक लाभों का निर्माण करके ग्रामीण महिलाओं की आजीविका, अधिकारों और लचीलेपन को सुरक्षित करने की दिशा में प्रगति को गति देना है। पहल ग्रामीण महिलाओं को खाद्य सुरक्षा की स्थिति, नेतृत्व के अवसर, सामुदायिक भागीदारी, सामाजिक सुरक्षा, कानूनी और आर्थिक सेवाओं तक पहुँच बढ़ाने और उनकी उत्पादक क्षमता को बढ़ाने में मदद करती है।

कुँजी:- सशक्तिकरण, वैश्विक, आर्थिक, सुरक्षा, ग्रामीण।

प्रस्तावना:- खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ), कृषि विकास के लिए अंतरराष्ट्रीय कोष (आईएफएडी), लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र की इकाई (यूएन महिला) और विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यूएफपी) द्वारा कार्यान्वित, ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में प्रगति को गति देने वाला संयुक्त कार्यक्रम (जेपी आरडब्ल्यूईई) ग्रामीण महिलाओं के सामने आने वाली बाधाओं से निपटने के लिए एक अद्वितीय संयुक्त राष्ट्र साझेदारी से बना है। ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक सक्षम वातावरण बनाने के लिए सशक्तिकरण के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों को शामिल करते हुए एक समग्र दृष्टिकोण लागू किया जाता है।

जेपी आरडब्ल्यूईई चार एजेंसियों के पूरक ज्ञान और लैंगिक विशेषज्ञता पर निर्भर करता है: खाद्य सुरक्षा, पोषण और जलवायु-स्मार्ट कृषि में एफएओ का तकनीकी ज्ञान और नीति सहायता; ग्रामीण निवेश कार्यक्रमों के सह-वित्तपोषण और परिवार, संगठन और समुदाय के स्तर पर लैंगिक असमानताओं को दूर करने में आईएफएडी का अनुभव; मानवीय-विकास-शांति संबंध के साथ खाद्य सुरक्षा और पोषण कार्यक्रम प्रदान करने में डब्ल्यूएफपी का तकनीकी ज्ञान, अनुभव और नवाचार, और लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के लिए वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय तंत्रों के साथ संयुक्त राष्ट्र महिला का तकनीकी ज्ञान, विशेषज्ञता और साझेदारी।

कार्यक्रम का व्यापक लक्ष्य सतत विकास, एजेंडा 2030 और सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में ग्रामीण महिलाओं की आजीविका, अधिकार और लचीलापन सुरक्षित करना है। कार्यक्रम के चार परस्पर संबंधित परिणाम क्षेत्र हैं:-

- बेहतर खाद्य सुरक्षा और पोषण
- बढ़ी हुई आय, अच्छा काम और आर्थिक स्वायत्तता
- ग्रामीण जीवन और संस्थाओं में बढ़ी हुई भागीदारी और नेतृत्व
- अधिक लिंग-संवेदनशील नीतिगत वातावरण।

कार्यक्रम का पहला चरण 2014 से 2021 तक इथियोपिया, ग्वाटेमाला, किर्गिस्तान, लाइबेरिया, नेपाल, नाइजर और रवांडा में लागू किया गया था, जिसमें में 79,626 ग्रामीण महिलाओं और पुरुषों (64,447 महिलाएं और 15,382 पुरुष) और 407,667 घरेलू सदस्यों तक पहुँच बनाई गई थी। कार्यक्रम का दूसरा चरण अब 2022 से 2027 तक नेपाल, नाइजर, तंजानिया, ट्यूनीशिया और प्रशांत द्वीप समूह (फिजी, किरिबाती, सोलोमन द्वीप, टोंगा) में लागू किया जा रहा है, ताकि अन्य देशों में भी इसका विस्तार किया जा सके।

ग्रामीण महिला श्रम बल भागीदारी दर (एफएलएफपीआर) में वर्ष 2018-19 में 19.7 प्रतिशत से वित्त वर्ष 2020-21 में 27. 7 प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि एक सकारात्मक विकास है। विशेष रूप से, भारत की महिला एलएफपीआर को कम करके आंका गया है, कामकाजी महिलाओं की वास्तविकता को अधिक सटीक रूप से आंकने के लिए सर्वेक्षण डिजाइन और सामग्री में सुधार की आवश्यकता है। स्वयं-सहायता समूह, जिन्होंने कोविड के दौरान अपने लचीलेपन और लोच का प्रदर्शन किया है, जो काम करने के लिए महिलाओं की बढ़ती इच्छा का दोहन करने के लिए एक प्रभावी माध्यम हो सकते हैं। 1.2 करोड़ एसएचजी में 88 प्रतिशत महिलाएं शामिल हैं, जो 14.2 करोड़ परिवारों को सेवा देती हैं।

मानव पूंजी निर्माण के मोर्चे पर शिक्षा और स्वास्थ्य के जुड़वां स्तंभों को मूल रूप से सशक्त किया जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) के प्रगतिशील ढांचे में, स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं में सुधार और शिक्षकों की बढ़ती उपलब्धता से लाभांश मिलने की उम्मीद है जो आने वाले दशकों में देश की वृद्धि और विकास की संभावनाओं को समृद्ध करेगा। सरकार ने स्वास्थ्य अवसंरचना को भी मजबूत किया है और वर्तमान और भविष्य की

जरूरतों को पूरा करने के लिए खुद को तैयार किया है। नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था को सुनिश्चित करते हुए, कुल स्वास्थ्य व्यय में सरकारी स्वास्थ्य व्यय का हिस्सा वित्तीय वर्ष 14 में 28.6 प्रतिशत से बढ़कर वित्त वर्ष 19 में 40. 6 प्रतिशत हो गया है, इसके साथ-साथ वित्त वर्ष 2014 में कुल स्वास्थ्य व्यय के 64.2 प्रतिशत से वित्त वर्ष 2019 में 48.2 प्रतिशत के प्रतिशत के रूप में आउट-ऑफ-पॉकेट व्यय में सहवर्ती गिरावट आयी है। पिछले आठ वर्षों में डॉक्टरों, नर्सों और अन्य चिकित्सा कर्मियों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ ग्रामीण सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली को बढ़ाने से उप-केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (पीएचसी) और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों (सीएचसी) की संख्या में काफी सुधार हुआ है। नतीजतन, स्वास्थ्य संबंधी संकेतक जैसे कि संस्थागत जन्म, टीकाकरण और स्वास्थ्य बीमा के कवरेज में वृद्धि देखी गई है, जैसा कि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) के आंकड़ों से पता चला है। लगभग 22 करोड़ से अधिक लाभार्थियों वाले पथ-प्रदर्शक आयुष्मान भारत कार्यक्रम की प्रगति को डिजिटल हेल्थ आईडी एबीएचए और ई-संजीवनी के माध्यम से टेलीमेडिसिन के माध्यम से और अधिक तकनीक - सक्षम बनाया जा रहा है।

अमृत काल में, ग्रामीण भारत में रहने वाली दो-तिहाई भारतीय आबादी का जीवन कुछ साल पहले की तुलना में उल्लेखनीय रूप से बेहतर है, जो बुनियादी सुविधाओं और कुशल कार्यक्रम कार्यान्वयन पर दिए गए नीतिगत फोकस से प्राप्त हुआ है। ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता से संबंधित परिणाम - उन्मुख आंकड़े बिजली तक पहुंच, बेहतर पेयजल स्रोतों की उपस्थिति, स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के तहत कवरेज, महिला सशक्तिकरण आदि में ठोस प्रगति की पुष्टि करते हैं। स्वामित्व के माध्यम से डिजिटल भूमि रिकॉर्ड पर जोर एक संरचनात्मक सुधार है।

ग्रामीण भूमि प्रबंधन और व्यक्तिगत आर्थिक सशक्तिकरण भारत के आगे बढ़ने के साथ ही उसने महामारी के कारण सामाजिक क्षेत्र के सुधार संबंधी लाभ को बड़े पैमाने पर पुन: प्राप्त कर लिया है। जो त्वरित नीति निर्धारण और कुशल कार्यान्वयन द्वारा संचालित है, और जो प्रौद्योगिकी के साथ जुड़ा हुआ है। आगामी आर्थिक विकास के लिए 'न्यूनतम सरकार; अधिकतम शासन', अधिक न्यायसंगत सिद्ध होंगे।

महिलाओं की स्थिति उनकी आर्थिक स्थिति से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है, जो आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी के अवसर पर निर्भर करती है। जनगणना 2011 के आंकड़ों से ग्रामीण और शहरी महिलाओं के काम में भागीदारी के बीच भारी असमानता दिखाई देती है, क्योंकि आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी शहरी महिलाओं की संख्या ग्रामीण महिलाओं की लगभग आधी है। उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि महिलाओं की रोजगार स्थिति उन्हें कैसे सशक्त बनाती है, लेकिन विभिन्न आयामों में ग्रामीण-शहरी क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण की तुलना पर सीमित शोध किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में, यह मानते हुए कि महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण काम में भागीदारी पर निर्भर है, वर्तमान अध्ययन में काम में भागीदारी के विभिन्न आयामों पर ध्यान केंद्रित करते हुए शहरी भारत में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की तुलना उसके ग्रामीण समकक्ष से करने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन पूरी तरह से भारत की जनगणना 2011 और आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (पीएलएफएस) 2019-20 से एकत्र किए गए द्वितीयक डेटाबेस पर आधारित है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण सूचकांक (ईईआई) को व्यापक रूप से अपनाई गई सामान्यीकरण तकनीक का उपयोग करके महिलाओं की कार्य भागीदारी, साक्षर महिलाओं के कार्य में हिस्सेदारी, शैक्षिक स्तर के अनुसार महिलाओं की कार्य भागीदारी, विवाहित महिलाओं द्वारा कार्य में हिस्सेदारी और नौकरी प्रोफाइल के अनुसार महिलाओं के कार्य में हिस्सेदारी की मदद से मापा गया है। अध्ययन के नतीजे यह दिखा रहे हैं कि ग्रामीण महिलाएं सभी चयनित आयामों में कार्यबल में अधिक संलग्न हैं। समग्र विश्लेषण ईईआई में परिलक्षित होता है, जो साबित करता है कि ग्रामीण महिलाएं अपने शहरी समकक्षों की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक सशक्त हैं।

रोजगार आय का वह स्रोत है जो व्यक्तियों के आर्थिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित करता है। लिंग के बावजूद, भुगतान वाले काम में लगे रहना सशक्त होने का प्राथमिक कदम है। इसका मतलब है कि आर्थिक सशक्तिकरण भुगतान वाले काम में भागीदारी का फल है। खासकर महिलाओं के लिए, जब वे भुगतान वाले काम से जुड़ी होती हैं, तो उनके पास अपने फैसले खुद लेने की शक्ति होती है और वे अपने परिवार में योगदान देती है, जिससे वे अधिक सशक्त बनती हैं। एक महिला के लिए, कामकाजी स्थिति उसकी सशक्तिकरण स्थिति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है और आर्थिक स्वतंत्रता समग्र कल्याण के लिए आवश्यक कारकों में से एक है। अपने परिवार में योगदान देने वाली आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं अपने अधिकारों का आनंद लेती हैं और उच्च स्तर के आत्मविश्वास के साथ अधिक शक्ति रखती हैं और वे उन महिलाओं की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक स्थिर होती हैं जो कार्यबल में शामिल नहीं हैं वैन डेन ब्रोएक एंड मैर्टेंस द्वारा 2017 में किए गए एक अन्य अध्ययन में पता चला कि कृषि से इतर आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागी- दारी से उनके आय स्तर में वृद्धि होती है, जिससे उनकी खुशी का स्तर बेहतर होता है।

हालाँकि, ऐतिहासिक रूप से यह साबित हो चुका है कि पितृसत्तात्मक समाज में, महिलाओं की कार्य भागीदारी उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में काफी कम है, जो उन्हें या तो शादी से पहले अपने पिता, भाई पर या शादी के बाद अपने पति पर निर्भर रहने के लिए मजबूर करती है। दुर्भाग्य से, भारत भी इस दोषपूर्ण व्यवस्था का अपवाद नहीं है। असमानता के संदर्भ में, 1977 में स्मिथ द्वारा सुझाए गए भूगोल में कल्याण दृष्टिकोण का ध्यान

'किसको क्या, कहाँ और कैसे मिलता है? पर केंद्रित था। सामाजिक कल्याण का विश्लेषण विभिन्न जनसंख्या श्रेणियों में असमान वितरण की समस्याओं से संबंधित है। इस ढांचे के भीतर, लिंग असमानताओं का विश्लेषण स्थित है। उन्होंने इस देश में अंतर-लिंग असमानता की ओर ध्यान दिलाया, केवल 25.51% महिलाएं कार्यबल में लगी हुई हैं, जबकि पुरुषों के लिए यह प्रतिशत दोगुने से भी अधिक यानी 53.26% है। अंतर-लिंग असमानता की तरह, अंतर-लिंग असमानता भी भारत में समान स्थिति की ओर इशारा कर रही है। राष्ट्रीय स्तर पर, 30.03% ग्रामीण महिलाएँ आर्थिक गतिविधियों में लगी हुई हैं। आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी शहरी महिलाओं में यह आँकड़ा घटकर 15.44% हो गया, जो ग्रामीण महिलाओं का लगभग आधा है।

साहित्य के अंशों से पता चलता है कि महिलाओं की रोजगार स्थिति उन्हें कैसे सशक्त बनाती है, लेकिन विभिन्न आयामों में ग्रामीण-शहरी क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण की तुलना पर सीमित शोध किया गया है। हालांकि, पिछले कुछ पीएलएफएस सर्वेक्षणों से पता चला है कि शहरी महिलाओं की बेरोजगारी दर ग्रामीण समकक्ष की तुलना में अधिक है। दूसरे शब्दों में, ग्रामीण महिलाओं के बीच रोजगार अधिक है और ग्रामीण-शहरी महिलाओं के बीच रोजगार दर का अंतर अधिक है। इस दृष्टिकोण से, अध्ययन में, साक्षरता की स्थिति, शिक्षा के स्तर और वैवाहिक स्थिति के आध ार पर शहरी भारत में महिलाओं की कार्य भागीदारी की तुलना ग्रामीण समकक्ष से करने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा, उनके द्वारा किए जा रहे काम की गुणवत्ता को बेहतर ढंग से समझने के लिए विभिन्न नौकरी प्रोफाइल में महिलाओं की कार्य भागीदारी पर एक खंड जोड़ा गया है। इसके अलावा, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का विश्लेषण करने के लिए पांच प्रमुख घटकों को ध्यान में रखा गया है, अर्थात महिलाओं की कार्य भागीदारी, साक्षरता की स्थिति के आधार पर महिलाओं की कार्य भागीदारी, शैक्षिक स्तर के अ सार महिलाओं की कार्य हिस्सेदारी, विवाहित महि शीर्ष लाओं की कार्य भागीदारी और कामकाजी महिला पर और उनकी नौकरी की प्रोफाइल।

कोलियर और लैंग्लोइस द्वारा 38 देशों में शहरी महिलाओं की कार्य भागीदारी दर की की गई अंतर्राष्ट्रीय तुलना में, भारत नीचे से चौथे स्थान पर था; अमेरिका, पश्चिमी यूरोप के देशों, जापान और अन्य विकसित देशों में दरें बहुत अधिक थीं। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई) के अनुसार, शहरी भारत में महिलाओं की डब्ल्यूपीआर काफी कम है और इसमें सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान अध्ययन से भारत में ग्रामीण और शहरी महिलाओं की कार्य भागीदारी दरों में भारी अंतर का भी पता चलता है। कार्यबल में शामिल महिलाओं का अनुपात ग्रामीण भारत में शहरी की तुलना में दोगुना है। रेड्डी ने 1979 में भी इसी तरह के परिणाम निकाले कि पंजाब को छोड़कर भारत के सभी हिस्सों में ग्रामीण महिला गतिविधि दर काफी अधिक है और शहरी महिला गतिविधि दरों की तुलना में ग्रामीण महिला गतिविधि के मामले में अंतरराज्य भिन्नता की सीमा अधिक है। उनके द्वारा पहचाने गए महिला गतिविधि दरों में शहरी-ग्रामीण अंतरों के पीछे के कारण व्यावसायिक पैटर्न में अंतर, नौकरियों में प्रवेश के लिए शैक्षिक आवश्यकताओं में भिन्नता और आय के स्तर में असमानताएं हैं। आर्थिक गतिविधि में संलग्न होना सशक्त बनने के प्रमुख मानदंडों में से एक है। 1971 में पिता ने ग्रामीण महिलाओं की कार्य में अधिकतम हिस्सेदारी नागालैंड (52.26%) में दर्ज की गई है, उसके बाद हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश और सिक्किम का स्थान है; सबसे कम दिल्ली (9.72%) में है, उसके बाद लक्षद्वीप, चंडीगढ़ और पंजाब का स्थान है। दूसरी ओर, शहरी महिलाओं की कार्य में सर्वाधिक भागीदारी मणिपुर (33.17%) में देखी गई है, उसके बाद मिजोरम, नागालैंड और सिक्किम का स्थान है; और सबसे कम झारखंड (10.07%) में है, उसके बाद बिहार, लक्षद्वीप और दिल्ली का स्थान है। यह एक चौंकाने वाला तथ्य है कि देश की राज- धानी दिल्ली में केवल 10.6% शहरी महिलाएं ही कार्य में लगी हुई हैं; हालाँकि, इस राज्य में शहरी आबादी का हिस्सा 97.50% है और इसमें से 46.48% महिलाएं हैं। एनएसएसओ के आंकड़ों के अनुसार, दिल्ली में शहरी महिलाओं की कार्य में भागीदारी लगातार घट रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. बरुआ ए, इंद्रवीर एस. ग्रामीण पंजाब में महिलाओं का रोजगार: कृषि विकास नीति का विघटन। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक।
2. सिंह जे, गोयल के. ग्रामीण पंजाब में महिलाओं की रोजगार स्थिति: घटती प्रवृत्तियाँ। आर्थिक मामले।
3. चटर्जी ई, देसाई एस, वन्नेमन आर. "भारतीय विरोधाभास: बढ़ती शिक्षा, महिलाओं के रोजगार में गिरावट"। जनसांख्यिकी अनुसंधान।
4. रेड्डी एन.डी. भारत में महिला कार्य भागीदारी: तथ्य, समस्याएँ और नीतियाँ। इंडियन जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशंस।

स्वयं सहायता समूह से महिला सशक्तिकरण

डॉ० नीतू कुमारी

गृह विज्ञान (पी० जी० डिपार्टमेंट)

समूह में कार्य करना मानव के स्वाभाव का हिस्सा है। यह अनुभव किया गया है कि समाज में रहकर मनुष्य एक दुसरे के सहयोग के बिना जीवन यापन नहीं कर सकता है। छोटे ख़ छोटे कार्यो को करने के लिए मनुष्य कई बार अनौपचारिक समूह बनाकर कार्य करता है। इसी अनुभवों से निकल कर "स्वयं सहायता समूह" (SHG) की अवधारणा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आई एवं एक सामान सोच वाले लोगों ने मिल कर विभिन्नप्रकार के कार्यो को करने के लिए स्वयं सहायता समूहों का गठन किया यह समूह मुख्यत: बचत की अवधारणा पर कार्य करते हैं। इसका मूल उद्देश्य साथ में रहकर अपनी छोटी - छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इसे ग्रामीण विकास हेतु एक अच्छी रन्निनीति माना जाने लगा इसे आधार मानकर विभिन्न परियोजनाओं को भी लागू किया गया। जिसके मिश्रित परिणाम रहें। वर्त्तमान में देखा जाये तो अच्छे स्वयं सहायता समूह का गठन करने के लिए कार्यकत्ताओं के स्तर पर स्पष्टता नहीं होने के कारण सही समूहों का गठन नहीं हुआ एवं उद्देश्य को प्राप्त करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन अनुभवों के आधार पर ही इस सरल मार्गदर्शिका को विकसित किया गया है।

"स्वयं सहायता समूह किसी गाँव के एक ही टोले / मोहल्ले में सामान्यत: एक समान सोच वाले लोगों द्वारा बनाया गया एक अनोपचारिक महत्वपूर्ण संगठन है।"

- स्वयं सहायता समूह किसी गाँव के एक ही टोले / मोहल्ले में सामान्यत: एक सामान सोच वाले होते हैं एवं अपनी इच्छा से आगे बढ़ने के लिए एकजुट होते हैं।
- किसी भी स्वयं सहायता समूह के गठन के दौरान यह आवश्यक ध्यान रखें कि उसके सदस्य एक सामान आर्थिक वर्ग से हो एवं गरीब , भूमिहीन , विधवा , परित्यक्ता , विकलांग एवं पिछड़ी महिलाओं को प्राथमिकता दें।
- एक स्वयं सहायता समूह में 10-20 के मध्य सदस्य हो सकते हैं।
- स्वयं सहायता समूह महिला एवं पुरुष के लिए अलग ख़ अलग हो सकते हैं।
- किसी भी समूह के सशक्त होने में उसके सदस्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वह समूह ही प्रभावी तरीके से कार्यशील रहें जिसके सदस्यों ने समूह को चलने के लिए सामूहिक रूप से विचार - विमर्श कर उसके नियम एवं रीती - निति तय किए हैं और उसका पालन भी सुनिश्चित करते हैं।

कोई भी कार्य संगठन के माध्यम से किया जाता है। स्वयं सहायता समूह बनाने के उद्देश्य अत्यंत सरल एवं महत्वपूर्ण है।

- ग्रामीण गरीबों के समूह बनाने के उद्देश्य अत्यंत सरल एवं महत्वपूर्ण है।
- समूह के सदस्यों में बचत की आदत डालना।
- सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया से जोड़ना।
- अपनी क्षमता अनुसार रुपये बचत करना और छोटी ख़ छोटी बचतों के माध्यम से सामूहिक पूंजी का निर्माण करना।
- अपने छोटे - छोटे ऋण की आवश्यकता की पूर्ति समूह से करना एवं लिए गये ऋण को नियत समय पर वापस करना।
- एक - दुसरे की मदद से सदस्यों तथा समुदाय की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाना।

स्वयं सहायता समूह के लाभ :-

- किसी समूह से जुड़ने से संबंधों में मजबूती आती है एवं अपनत्व की भावना बढती है। इसके अलावा इसके अनेक लाभ हैं।

जिन्हें विस्तार से निचे बताया गया है।

- सामाजिक सुरक्षा मिलती है , जो कि सबसे महत्वपूर्ण होती है
- बचत करने की आदत में बढ़ोतरी होती है एवं छोटी बचत के फायदो का महत्त्व समझ में आता है।
- समूह में आने से विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक मुद्दों पर चर्चा के माध्यम से जानकारी में बढ़ोतरी होती है।
- सदस्यों में आत्मविश्वास तथा स्वयं के प्रति सम्मान का विकास होती है।
- रुपये की जरुरत पड़ने पर दुसरे पर आश्रित नहीं होना पड़ता है।
- आवश्यकतानुसार ऋण अपने समूह अथवा बैंक के माध्यम से कम व्याज दर पर आसानी से प्राप्त होता है।

- सानुहिक रूप से अपने उत्पादों को बिक्री बाजार में करने का मौका मिलता है। जिससे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
- सदस्यों की आर्थिक ख्र सामाजिक उन्नति होती है।
- इसके अलावा समूह अधिक मजबूत हो तो बड़े मुद्दों पर भी कार्य कर सकता है।

व्यसियक क्षेत्र :-

1 कृषि आधारित क्षेत्र -

- सब्जियों का निर्जलीकरण व परिरक्षण
- फल व सब्जी उगाना / औषधीय पौधे लगाना
- मशुरुम की खेती
- पौधे (नर्सरी) करना
- दुग्ध डेयरी उत्पादन
- केंचुए की खाद तैयार करना
- मसाले पिसना , दाले बिनना
- बकरी एवं मुर्गा पालन

2 उत्पादित विभिन्न खाद्य पदार्थों :-

- आचार
- पापड़
- बड़ी
- दलीया
- आटा
- अगरबत्ती
- मुरब्बा इत्यादि की सुगम उपलब्धता से महिलाओं व बच्चों के पोषण तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।
- स्वयं सहायता समूह सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को आवश्यक ज्ञान, वित्त, शक्ति और अवसर प्रदान करते हैं। इसे इला भट्ट के द्वारा 1972 में स्थापित सेवा संसथान भारत सभी ग्रामीण क्षेत्रों में है। महिलाओं की स्थिति देश के विकाश को प्रदर्शित करती है विश्व का कोई भी देश महिलाओं को हासिए पर रख कर अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकता है। महिलाओं को मुख्य धरा से जोड़ना ही होगा इन्हें सशक्त बनाने के लिए उन्हें निर्णय सक्षम बनाना होगा। सामाजिक, आर्थिक, राजनीति और स्वयं के जीवन में निर्णय ही लेने की क्षमता ही सशक्तिकरण है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस की शुरुआत की गई तब से विश्व में महिला सशक्तिकरण राष्ट्रिय, स्थानीय स्तर पर विभिन्न प्रयास भी किए गए। महिलाओं को सामाजिक - आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने में स्वयं सहायता समूह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है देश में लगभग 60 लाख महिलाये जुडी हुई है। महिलाये पहले समूह में बचत की भावना से जुडती थी लेकिन अब महिलाये समूह की समस्याओं एवं उनके विकास के संबंध में भी चर्चा करने लगी है। स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। क्योकि इस समूहों में कार्य करने से उनके स्वाभिमान, गौरब व आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप महिलाओं की क्षमताओं में बढ़ोतरी होती है। आज दुनिया स्वयं सहायता समुहों के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान रखता है किन्तु हमारे देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियाँ महिला समूहों की गतिशीलता, व्यवहारिकता व बाध्यता में अनेक चुनोतियाँ खड़ी होती है।

स्वयं सहायता समूहों का महिलाओं के जीवन पर प्रभाव :-

स्वयं सहायता समूहों में कार्य करने के कारण महिलाओं के आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्म गौरव इत्यादि में वृद्धि होती है। क्योंकि घरेलु परिधि के बाहर एक समुह के रूप में छोटी ख्र छोटी बचत इकठ्ठा करके, ऋण लेकर, बैंक कर्मचारियों से संपर्क लघु उद्यम स्थापित करके , समूह की बैठकों की कार्रवाई संचालित करके महिलाओं में निम्नलिखित क्षमताओं का विकास होता है।

- स्वनिर्णय की शक्ति:- स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में काम करने के कारण महिलाओं की स्वयं निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है। महिलाओं द्वारा बांकी के साथ लेन - देन, कागजी कारवाई इत्यादि करने से उनमे आत्म ख्र विश्वास पनपता है। समूह की गतिविधियों के संचालन बैठकों में भाग लेने से महिलाओ की स्वनिर्णय की क्षमताओं का विकास होता जो धीरे - धीरे परिवार और समुदाय में उनकी सोच को आवाज मिलती है।
- जानकारी तथा संसाधनों की उपलब्धता:- समूह के सदस्य के रूप में महिलाओं की गतिशिलता बढ़ जाति है। घर की चारदीवारी में कैद रहने वाली महिलाये इन समूहों के माध्यम से पंचायत संस्थानों इत्यादि से संपर्क में आती है। जिससे उनके पास अधिक सूचना एवं संसाधन होते हैं। सूचना एवं संस्थानों की उपलब्धता महिलाओं को सशक्त करती है।
- सामूहिक निर्णय के मामलों में अपनी बात बल पूर्वक रखने की समर्थता:- अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है की स्वयं सहायता समुहों में कार्य करने वाली महिलाओं की सामुदायिक कार्यो में सहभागिता, पंचायत की बैठकों में उपस्थिति अधिक सक्रीय होती है। अन्य महिलाओं की अपेक्षा ये महिलाएं अपनी बात समुदाय के सामने अधिक बलपुर्बक रख पाती है।

- आर्थिक आत्मनिर्भरता:- स्वयं सहायता समूह की सदस्य के रूप में महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती है। जिससे परिवार में उनकी स्थिति में सुधार होता है। तथा इस प्रकार उपलब्ध धन का इस्तेमाल वे अपने निजी इस्तेमाल अथवा बच्चों की शिक्षा व स्वास्थ्य इत्यादि में करती है। अध्ययनों से स्पष्ट है की आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के साथ घरेलु हिंसा के मामले कम होते हैं।
- मनोवैज्ञानिक विकास:- स्वयं सहायता समूह की सदस्य के रूप में महिलाओं द्वारा स्वयं की पहल पर सामाजिक बदलावों के लिए भागीदारी सुनिश्चित होती है उनमें बदलाव लाने और उसकी अपनी क्षमता में विश्वास सुदृढ़ होता है।
- कौशल विकास:- हमारे देश में प्राय: महिलायें सिलाई, कढ़ाई, पापड़ बनाने, अचार बनाने जैसे कई कार्य करती है। किन्तु इन्ही कार्यो को स्वयं सहायता समूहो के माध्यम से बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक आधार पर किया जाता है। इन समूहों को सरकारी तथा गैर - सरकारी संगठनों द्वारा कौशल सिखाने की क्षमता का विकास होता है।

मार्टिन लूथर किंग और आंबेडकर का मुक्ति आन्दोलन

डॉ० योगेन्द्र प्रसाद शर्मा

राजनीति विज्ञान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

डॉ. मार्टिन लूथर किंग और डॉ. भीमराव आंबेडकर ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने-अपने ही देश में वंचित-पीड़ित समुदाय में पैदा हुए, भेदभाव का शिकार हुए और उस भेदभाव को समाप्त करने के लिए आजीवन संघर्ष किया। इन दोनों का विश्वास लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व में था। इन दोनों महान व्यक्तियों के आंदोलन पूर्णतः अहिंसा पर आधारित थे। इनका मानना था कि शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन से ऐसे आमानवीय भेदभाव को दूर किया जा सकता है।

इस लेख का उद्देश्य ये समझने की कोशिश करना है कि इन दोनों महानायकों ने अपने-अपने देश में असमानता और अन्याय के खिलाफ किस तरह से संघर्ष किया और उनके योगदान को किस तरह से देखा जाना चाहिए।

मूल शब्दः एफ्रो-अमेरिकन, आंबेडकर, अश्वेत, जाति, दलित, मार्टिन लूथर किंग

प्रस्तावना

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि हालांकि बीसवीं सदी ने दो प्रमुख तानाशाहों- हिटलर और मुसोलिनी का उदय देखा, जिन्होंने अपने लक्षित लोगों को बेरहमी से दबाया, इसने कई प्रतिबद्ध नेताओं को भी जन्म दिया, जिन्होंने विभिन्न उत्पीड़ित समुदायों की मुक्ति के लिए निस्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी। एमके गांधी, डॉ बीआर अंबेडकर और मार्टिन लूथर किंग जूनियर इन मुक्तिदाताओं के अच्छे उदाहरण हैं। अंबेडकर ने भारत के अछूतों के उत्थान के लिए संघर्ष किया और मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी।

डॉ० मार्टिन लूथर किंग, जूनियर (15 जनवरी 1929 ख़ 4 अप्रैल 1968) अमेरिका के एक पादरी, आन्दोलनकारी (ऐक्टिविस्ट), एवं अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिक अधिकारों के संघर्ष के प्रमुख नेता थे। उन्हें अमेरिका का गांधी भी कहा जाता है। उनके प्रयत्नों से अमेरिका में नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में प्रगति हुई; इसलिये उन्हें आज मानव अधिकारों के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। दो चर्चों ने उनको सन्त के रूप में भी मान्यता प्रदान की है।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर के बेटे और अमेरिकी नागरिक अधिकार कार्यकर्ता मार्टिन लूथर किंग प्प्प ने कहा था कि, "अमेरिकी नागरिक अधिकार कार्यकर्ता मार्टिन लूथर किंग जूनियर और भारतीय संविधान के वास्तुकार डॉ. बीआर अंबेडकर एक ही कपड़े से तैयार किए गए 'क्रांतिकारी भाई' थे"।

हाशिए पर मौजूद लोगों को सशक्त बनाने के लिए अंबेडकर द्वारा किया गया षशिक्षित करने, आंदोलन करने, संगठित होनेष का आह्वान, भेदभाव के खिलाफ लोगों को संगठित करने के लिए किंग द्वारा किए गए आह्वान के समान है। "यह आग्रह करना नैतिक रूप से सही है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास एक शांतिपूर्ण घर, शिक्षा और अपने परिवार के लिए बुनियादी जरूरतें प्रदान करने के लिए पर्याप्त पैसा हो। इन लक्ष्यों की प्राप्ति कठिन होगी और इसके लिए महान अनुशासन, समझ, संगठन और बलिदान की आवश्यकता होगी।

अमेरिका में नस्लवाद के खिलाफ संघर्ष

अमेरिका में अफ्रीकन-अमेरिकन (काले) लोगों को गुलाम बनाने की प्रथा तो 19वीं सदी में समाप्त हो गई थी, लेकिन भेदभाव बनाए रखने वाले कई नियम और कानून (जिम क्रो लॉ) 1960 के दशक तक लागू थे। काले लोगों को सार्वजनिक स्थल से दूर रखा जाता था। गोरों का मानना था कि ये निचले दर्जे के मनुष्य हैं। इसलिए लम्बे समय तक उनको दास बनाकर रखा गया। तत्कालीन राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अमेरिकी गृह युद्ध के बाद 1865 में ही दास प्रथा का कानूनी रूप से अंत कर दिया था, लेकिन भेदभाव वाले कानूनों के कारण काले लोग अलगाव का शिकार बनते रहे।

मार्टिन लूथर किंग काले लोगों को समानता का अधिकार दिलाने के आंदोलन से 1950 के दशक में जुड़ गए। उन्होंने बताया कि सभी मनुष्य बराबर हैं, त्वचा के रंग के आधार पर भेदभाव अमानवीय है। उस समय कानून गोरों के पक्ष में थे। इसके खिलाफ एक बड़ा प्रतीकात्मक विद्रोह 1955 में रोजा पार्क ने किया। रोजा पार्क अफ्रीकन-अमरीकन महिला थी, अलाबामा राज्य के मोंटगोमरी में बस में गोरों के लिए आरक्षित सीट पर बैठ गई थीं। उनको उस सीट से उठने को कहा गया। रोजा पार्क ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इस आंदोलन में काले लोगों ने बसों का सामूहिक रूप से बहिष्कार शुरू कर दिया।

अमेरिका के उस समय गोरों के लिए बने रेस्तरां में काले लोगों को खाना नहीं परोसा जाता था। इसके खिलाफ काले लोगों ने रेस्तरां में बैठने के लिए आंदोलन चलाया। इसके लिए वे रेस्तरां में जाते थे और कुछ खाते नहीं थे, बल्कि खाली बैठते थे और रेस्तरां के मालिक को बैठने का भुगतान करते थे। इसके द्वारा उन्होंने समाज को यह बताया कि हमें भी बाकी लोगों की तरह रेस्तरां में जाने और बैठने का पूरा अधिकार है। ऐसे ही कई आंदोलनों से समाज में जागरूकता आई। इसकी परिणिति प्रसिद्ध वाशिंगटन मार्च में हुई, जिसमें लाखों लोगों ने हिस्सा लिया।

28 अगस्त 1963 में हुए वाशिंगटन मार्च में ही मार्टिन लूथर किंग ने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था ख्र ्रींअम ं कतमंउ. इस भाषण को दुनिया के सबसे लोकप्रिय और ज्यादा सुने गए भाषणों में एक माना जाता है। इस भाषण में उन्होंने कहा था कि एक दिन आएगा जब किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके रंग के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कार्य के आधार पर किया जायेगा और सभी अमेरिकी बच्चे रंग और नस्ल की परवाह किए बगैर हाथों में हाथ डालकर चलेंगे।

भारत में छुआछूत के खिलाफ आंदोलन

बाबा साहेब अंबेडकर ने अपने विचार और काम, दोनों ही स्तर पर दलित समाज को जो दिया है, वैसा योगदान किसी और का नहीं है।

अमेरिका में जैसा व्यवहार काले लोगों के साथ हुआ, वैसा ही अमानवीय व्यवहार भारत में दलितों के साथ होता चला आया है। उनको अछूत घोषित कर समाज से बाहर कर दिया गया। डॉ. आंबेडकर इसकी वजह ये बताते हैं कि वे बौद्ध धर्म को मानते थे और गाय का मांस खाते थे। भारतीय समाज में मनुस्मृति के नियम थे, जिनके तहत निचली जातियों और महिलों के साथ अमानवीय व्यहार किया जाता था। इन नियमों को कानून की मान्यता नहीं थी, लेकिन धार्मिक और सामाजिक मान्यता थी।

इसके खिलाफ डॉ. आंबेडकर ने लंबी लड़ाई लड़ी। उनका लोकतंत्र और लोकतान्त्रिक व्यवस्था में पूरा विश्वास था। उनका कहना था कि जातिगत असमानता और आर्थिक भेदभाव दोनों ही लोकतंत्र को कमजोर करेंगे। इसलिए वे एक साथ सामाजिक और आर्थिक असमानता के खिलाफ संघर्ष करते रहे। डॉ. आंबेडकर ने साउथबोरो कमेटी से लेकर साइमन कमीशन, गोलमेज सम्मेलन और फिर संविधान सभा में दलितों के प्रतिनिधित्व का मामला रखा था। संविधान सभा के समापन भाषण में उन्होंने कहा था, "यदि राजनीतिक लोकतंत्र का आधार सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र नहीं हुआ, तो ऐसा राजनीतिक लोकतंत्र ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकता। यदि लोकतंत्र को सफल बनाना है, तो सामाजिक-आर्थिक समानता लानी होगी. स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इनमें से किसी को अलग नहीं किया जा सकता।"

अश्वेत लोगों के आंदोलन और मार्टिन लूथर किंग के प्रयासों के बाद अब अमेरिका में कई क्षेत्रों में अफ्रीकन-अमेरिकन समुदाय को जनसंख्या के मुताबिक प्रतिनिधित्व मिल गया है। बराक ओबामा अमेरिका के दो बार राष्ट्रपति बन चुके है। लेकिन भारत में अब तक कोई दलित प्रधानमंत्री नहीं बना है। न ही सत्ता रचना के शिखर पदों पर दलित नजर आते हैं। मौजूदा दौर में ऐसा होता हुआ दिखता भी नहीं है।

ओबामा का राष्ट्रपति बन पाना इसलिए मुमकिन हुआ है क्योंकि अमेरिका के गोरे लोगों ने उन्हें राष्ट्रपति चुना, क्योंकि वहां की 15 फीसदी से भी कम ब्लैक आबादी के चाहने भर से ओबामा राष्ट्रपति नहीं बन सकते थे। मार्टिन लूथर किंग के आंदोलन में गोरे लोगों ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया और कई श्वेत लोग रंगभेद विरोधी आंदोलन में शहीद भी हुए। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। अभी भी रिजर्वेशन के पक्ष में आंदोलन हो, या जातिगत भेदभाव के विरुद्ध कोई आंदोलन, उनमें सवर्ण हिन्दुओं की बेहद कम या न के बराबर भागीदारी होती है।

बहरहाल ये भारतीय समाज व्यवस्था की कमजोरी और खामी है, जिसका नतीजा सारा देश भुगत रहा है। कामना करनी चाहिए कि अमेरिका के श्वेतों की तरह भारत में भी सवर्णों में मानवीय चेतना का विस्तार होगा और वे बड़ी संख्या में जाति मुक्ति के आंदोलन से जुड़ेंगे। अगर ऐसा हुआ तो डॉ. आंबेडकर के योगदान का वे नए सिरे से मूल्यांकन कर पाएंगे।

निष्कर्ष

किंग की तरह, अम्बेडकर ने अपने समुदाय को अस्पृश्यता और जातिगत रंगभेद की संरचनाओं के खिलाफ संगठित किया। इस तरह के आयोजनों का सह-संयोजन- अमेरिका में किंग की विरासत को देखते हुए और घर पर उग्र दलित विरोध प्रदर्शन को देखते हुए-भूगोल द्वारा अलग किए गए दो समुदायों की साझा दुर्दशा को ध्यान में नहीं ला सकता है।

नागरिक अधिकार आंदोलन के पांच दशक बाद और भारत द्वारा अंबेडकर द्वारा बनाए गए संविधान को अपनाने के छह दशक से अधिक समय बाद, नस्लीय और जातिगत भेदभाव के साथ-साथ असमानता दोनों देशों के ताने-बाने में गहराई तक व्याप्त है। जाति और नस्ल के आधार पर भेदभाव सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा अभी भी संरचित है। किंग की तरह, छुआछूत के खिलाफ अंबेडकर के नेतृत्व वाले आंदोलनों ने संसद में दलित प्रतिनिधित्व के लिए लड़ाई लड़ी, एक संविधान बनाया, जिससे उन्हें उम्मीद थी कि जाति या धर्म की परवाह किए बिना सभी भारतीयों के लिए समान अधिकार सुनिश्चित होंगे। फिर भी, दोनों ही मामलों में, बहुत काम किया जाना बाकी है।

साथ ही, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि एक से अधिक तरीकों से विभाजित होकर, काले और दलित आंदोलन सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति को मजबूती

से पेश करने आए हैं। वे अपनी ऊर्जा विभिन्न संगठनों के माध्यम से लगा रहे हैं। कोई यह तर्क दे सकता है कि ब्लैक लाइव्स मैटर आंदोलन का भारतीय समकक्ष भीम आर्मी, ऐसे अन्य समूहों में है। दलित समुदाय, अफ्रीकी अमेरिकी समुदाय की तरह, नए प्रकार के प्रतिरोध के साथ नवाचार कर रहा है। और जैसे-जैसे प्रतिरोध अधिक विविध और कम केंद्रीकृत होता जा रहा है, शक्तियां अधिक दबाव डाल रही हैं।

सन्दर्भ

1. McMahon] Thomas F- (2004)- Ethical Leadership Through Transforming Justice- University Press of America- पृ० 25. आई०ऍस०बी०ऍन० 0-7618-2908-3.
2. Freire, Paulo. (1970). Pedagogy of the Oppressed. New York: Bloomsbury.
3. An Introduction by Kancha Ilaiah to Dr. B.R. Ambedkar (2016). Riddles in Hinduism – The Annotated Critical Selection, New Delhi: Navayana.
4. Excerpt from the speech delivered to Indian Christians of Sholapur and published in 'Janata' on 05.02.1938, reproduced from 'Dnyanodaya'
5. Kumar, Vivek (2015). Situating Dalits in Indian Society. Sociological Bulletin,
6. 54(3), Sep.-Dec. p. 514.
5. Martin Delany, The condition, Elevation, Emigration and Destiny of the colored people of the United States (1852)).
6. W.E.B. Du Bois, 'Three centuries of Discrimination', Crisis 54 (December 1947): 362-63.
7. B.R. Ambedkar, 'Slaves and Untouchables', Dr. Babasaheb Ambedkar: Speeches and Writings, Vol. 5, p. 15.

हिन्दी कथा साहित्य में महिला सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा

डॉ० कुसुम टेपण

सहायक-आचार्य, हिन्दी विभाग (विद्या संबल योजना के अंतर्गत) राजकीय कन्या महाविद्यालय, बस्सी, चित्तौडगढ़ (राजस्थान)

सारांश

साहित्य के इतिहास में हिन्दी साहित्य का विशेष स्थान रहा है। जिसके प्रमुख स्तम्भों में महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, शशिप्रभा शास्त्री, चित्रा मुद्गल, प्रभा खैतान, मृदुला गर्ग, वीणा सिन्हा, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आदि का नाम महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में प्रमुखतया लिया जाता है। इनमें अधिकतर महिला साहित्यकार अपने साहित्य व कलाकर्म के माध्यम से तत्कालीन भारतीय साँस्कृतिक परिदृश्य में शोभनीय हुई जबकि उस समय भारत में महिलाओं को शिक्षा प्राप्ति कुलीन वर्ग में भी यथार्थ से अधिक कल्पना की वस्तु थी। भारत की आधुनिक सरस्वती सावित्रीबाई फुले द्वारा प्रज्ज्वलित शैक्षिक ज्योति के प्रकाशमय परिवेश से लाभान्वित महिला कथाकारों का महाकाव्य ही नहीं वरन सम्पूर्ण साहित्य भी भारत की साँस्कृतिक धरोहर हैं। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में उनकी अनेक कृतियों ने महिलाओं को सशक्त बनाने पर बल दिया हैं। आज महिला सशक्तिकरण एक चर्चा का विषय बना हुआ है, खासतौर से पिछड़े और प्रगतिशील देशों में। महिलाओं की तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की सम्भव नहीं है। महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से महिलाओं में जागरूकता, कार्यशीलता और निर्णय लेने की क्षमता में बढ़ोतरी होती है।

शब्द कुँजी- हिन्दी, साहित्य, महिला, कवयित्री, रचना, सशक्तिकरण, दशा, दिशा।

शोध पत्र-

हिन्दी साहित्य लेखन में कुछ प्रमुख मुद्दे ऐसे हैं, जिनमें दु:ख, पीड़ा, वेदना, प्रताड़ना, महत्त्वकांक्षा, परिवार व समाज में संघर्ष तथा महिलावादी रचनाएँ इत्यादि। इन सभी मुद्दों को यदि महिला लेखन से जोड़कर देखा जाए तो अनेक तथ्य बाहर निकलकर आयेंगे। वर्तमान में महिलावादी लेखन की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई, क्योंकि सामान्य लेखन अर्थात परम्परावादी लेखन ने महिलावादी लेखन की पूर्णत: उपेक्षा की है। इसलिए महिला लेखन की उत्पत्ति होनी आवश्यक थी। क्योंकि सामान्य लेखन में महिला का हित विलोपित था। सामान्यत: देखा जाता है कि महिला लेखन संघर्ष करता है। परन्तु सामान्यत: महिला विमर्श ने विमर्श को लेकर या तो चुप्पी साध ली या फिर विमर्श मानने से ही मना कर दिया। इस कारण यह विमर्श और उग्र होता गया। हिन्दी साहित्य में अनेक लेखिकाएँ महिला विमर्श हेतु अपनी लेखनी से समाज को अवगत करा रही हैं। लेखनी की उग्रता ने प्राकृतिक नियमों तक को चुनौती दी है। इस संदर्भ में आज महिला सशक्तिकरण एक चर्चा का विषय बना हुआ है। खासतौर से पिछड़े और प्रगतिशील देशों में क्योंकि उन्हें इस बात का काफी बाद में ज्ञान हुआ कि बिना महिलाओं की तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की सम्भव नहीं है।

भारतीय महिला के साथ विरोधाभासी स्थितियाँ प्राचीनकाल से ही रही है। हमारे प्रचानी ग्रंथों में कहा जाता है- "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" सूत्र वाक्य द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जहाँ नारी पूजनीय होती है, वहाँ देवता निवास करते है। देश में जहाँ एक ओर लक्ष्मी, दुर्गा, सीता, पार्वती के रूप में नारी को देवतुल्य माना जाता है, वहीं उसे अबला बताकर परम्परा एवं रूढ़ियों की बेड़ियों में जकड़ा जाता है। आजादी के बाद कुछ कार्यक्रमों व योजनाओं को छोड़ दिया जाए तो आज भी विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में लैंगिक विषमताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहीं कारण है कि महिलाओं के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाने वाला 'महिला आरक्षण विधेयक' लागू नहीं हो पाया है। इसके तहत लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए चक्रानुक्रम पद्धति का प्रावधान किया गया है। जब-तक राजनीति में महिलाओं की भागादारी नहीं बढ़ेगी तब-तक सही अर्थों में उसका सशक्तिकरण नहीं हो सकेगा।

महिला सशक्तिकरण

सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से जागरूकता, कार्यशीलता, बेहतर नियंत्रण के लिए प्रयास के द्वारा व्यक्ति अपने विषय में निर्णय लेने के लिए समर्थ एवं स्वतंत्र होता हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो महिला का सशक्तिकरण एक सर्वांगीण व बहुआयामी दृष्टिकोण है। यह राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में महिलाओं की पर्याप्त व सक्रिय भागीदारी में विश्वास रखता है।

एक राष्ट्र का सर्वांगीण व समरसता पूर्ण विकास तभी संभव है, जब महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान व पद प्राप्त होगा। उन्हें पुरुषों के साथ-साथ विकास की सहभागी माना जाएगा। सशक्तिकरण के अंतर्गत महिलाएँ अपने आर्थिक स्वावलम्बन, राजनैतिक भागीदारी व सामाजिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों पर पहुँच व नियंत्रण प्राप्त करती हैं। अपनी शक्तियों, सम्भावनाओं, क्षमताओं, योग्यताओं, अधिकारों तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होती हैं।

महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता

महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि प्राचीन समय से भारत में लैंगिक असमानता थी और पुरूष प्रधान समाज था। महिलाओं को उनके अपने परिवार द्वारा कई कारणों से उन्हें दबाया जाता था, उनके साथ अनेक प्रकार से अत्याचार एवं प्रताड़ित किया जाता था। परिवार और समाज द्वारा भेदभाव भी किया जाता था। ऐसा सिर्फ भारत में ही नही बल्कि दूसरे देशों में भी दिखाई पड़ता है। महिलाओं के लिए प्राचीन काल से समाज में चले आ रहे गलत और पुराने चलन को नये रीति-रिवाजों और परम्पराओं में ढ़ाल दिया गया था। भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान देने के लिए माँ, बहन, बेटी, बहु, पत्नी के रूप में महिला देवियों को पूजने की परम्परा है। लेकिन इसका कतई मतलब है कि केवल महिलाओं को पूजने भर से देश के विकास की जरूरत पूरी हो जाएगी। आज जरूरत है कि देश की आधी आबादी अर्थात महिलाओं के प्रत्येक हर क्षेत्र में सशक्तिकरण किया जाए। जो देश के विकास का आधार बनेगी।

महिला सशक्तिकरण के आयाम

महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों को समझना आवश्यकता है। इस धारणा के मूल में स्त्री-पुरूष को एक-दूसरे का पूरक समझते हुए समतामूलक व्यवस्था विकसित करने की भावना निहित है। किसी भी संतुलित समाजिक व्यवस्था के लिए विकास के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष दोनों की समान भागीदारी आवश्यक है। इस मॉड्यूल में महिला सशक्तिकरण के पीछे पुरुष या महिला की श्रेष्ठता साबित करना लक्ष्य नहीं है, अपितु उन उपायों को सुनिश्चित करने की पहल करना है, जिससे विकास मानकों की प्राप्ति में महिलाएँ और पुरुष बराबर योगदान कर सकें। वातावरण लिंग भेद से रहित परस्पर पूरकता का हो। इस दृष्टि से महिला सशक्तिकरण के अनेक ऐसे आयाम हैं, जिन पर प्रेरित और प्रोत्साहित करने से महिला सशक्तिकरण की दिशा में वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। जैसे- शैक्षिक, स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक, विधिक, राजनैतिक, भावनात्मक आदि।

महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत महिला को सशक्त कैसे बनाया जाये यह एक बहुआयामी अवधारणा है, केवल एक दिशा में प्रयत्न करने से वांछित सफलता मिलना कठिन है। यथार्थ में महिला को सशक्त बनाने के कई आयाम, कई दिशाऐं तथा कई प्रकार हो सकते हैं। भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित प्रयास स्वतंत्रता के पश्चात ही किए गए। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु का कहना था कि "लैंगिक असमानता चाहे वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में हो, मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए उसे दूर करना आवश्यक है।'' पंडित जवाहरलाल नेहरू का मानना था कि- "लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।'' निशांत मीनाक्षी ने अपने लेख 'विकास बनाम सशक्तिकरण' में बताया है कि- "महिला सशक्तिकरण अर्थात महिलाओं को शक्तिशाली बनाना, महिलाओं को वे सारे उपकरण उपलब्ध करवाना जिनकी सहायता से आधी दुनिया उन्नति कर सकती है, आगे बढ़ सकती है।"

आज महिला सशक्तिकरण की दिशा में सबसे बड़ी अड़चन है, महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता की कमी। यदि महिलाओं को शिक्षित कर दिया जाए तो वे अपने सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाएगी और फिर ऐसी जागरूक महिलाओं को दबाना, किसी के लिए भी सम्भव नहीं होगा। 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में सशक्त होने की स्थिति को सशक्त बनाने की कार्यवाही के रूप में परिभाषित किया गया है। सशक्त का अर्थ- सक्षम करने के लिए, शक्ति देने के लिए तथा शक्ति का विचार सशक्तिकरण की जड़ में नीहित है।

हिन्दी साहित्य और महिला सशक्तिकरण

सशक्तिकरण के कारण आज हिन्दी साहित्य में महिलाओं की भागीदारी जिस तेजी से बढ़ रही हैं, उसे देखते हुए महिलाओं की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य पर हैरान होने वाली कोई बात नहीं है। भक्तिकाल में अनेक कवयित्रियों का उल्लेख देखने-सुनने को मिलता हैं। जैसे- गंगा, गौरी, सीता, सुमति, शोभा, प्रभुता, उमा, कुँवरि, उबीठा, गोपाली, गणेश देवरानी, कला, लखा, कृतगाली आदि। इन कवयित्रियों ने अनेक कविताओं की रचनाएँ की। आज इनकी कविताएँ कहाँ लुप्त हो गयी ये कोई नहीं जानता है। भक्तिकाल की समस्त कवयित्रियाँ महिला काया जनित वेदना और विद्रोह को अभिव्यक्त करती है, चाहे वो मीरा हो या लल्लेश्वरी। भक्ति में भिगोई इनकी दमनकारी व्यवस्था के प्रति आक्रोश को सहज ही पहचाना जा सकता हैं। दु:ख की बात ये है कि इनमें से कुछ कवयित्रियों की जानकारी है और कुछ कवयित्रियाँ मठवाद हो गयी। अब उनके बारे में या उनकी लिखी कविताएँ कहीं भी देखन-सुनने को नहीं मिलती हैं। कबीर काल में लोई भी कविताएँ लिखा करती थी, परन्तु आज लोई की रचनाओं के बारे में किसी को भी पता नहीं है। तुलसीदास के साथ-साथ रत्नावली भी कवयित्री थी, परन्तु हिन्दी साहित्य के आज तक के इतिहास में उनके अस्तित्व को दर्ज नहीं किया गया हैं।

हिन्दी साहित्य में महिला सशक्तिकरण को लेकर महिला मुक्ति का स्वर उभरा है। वह महिला जिसे पुरूषों ने सती सावित्री का झोला पहना रखा था। महिला स्वप्नलोक में बसी एक खूबसूरत

देह मात्र थी। वह भी एक ऐसी देह जिसके अंदर कोई भावना नहीं होती, एक बेजान देह जो कभी किसी चीज की आशा नहीं करती। अपने अंदर भावनाओं को छुपा कर रखती हैं। जिसे पुरूष प्रधान बनकर स्त्री को अपने इशारों में नचा सकता है। नारी भावनाओं की यह अभिव्यक्ति जो कई सदियों से भीतर ही भीतर छटपटा रही थी, जो आज महिला लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। महिला ने ही महिला की पीड़ा को समझा और जाना है। महिला ने ही उन्हें समझकर उनकी पीड़ा को शब्द दिए जो कि एक पुरूष नहीं समझ सकता। महिला ने ही उनके जीवन की समस्त व्यथाओं को अपनी साहित्यिक रचनाओं में लिखा है। हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, शशिप्रभा शास्त्री, चित्रा मुद्गल, प्रभा खैतान, मृदुला गर्ग, वीणा सिन्हा, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आदि का लेखन महिला सशक्तिकरण को विशेष बल प्रदान करता है।

महिला सशक्तिकरणः दशा एवं दिशा

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण बहुचर्चित विषय रहा है। प्राचीन महिला के मुकाबले आज की महिला अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना जानती है, अपने अस्तित्व की रक्षा, अपने मान-सम्मान की रक्षा करना जानती है और उसके लिए से प्रयत्नशील भी है। सरकार द्वारा महिला-सशक्तिकरण के लिए अनेक योजनाओं का अनुष्ठान किया गया है। जिसके फलस्वरूप महिला को शोषण, हिंसा, लिंगभेद एवं अनेक प्रकार के भेदभावों से मुक्ति प्राप्त हुई है। महिला-सशक्तिकरण के कारण उनको प्रत्येक क्षेत्र में अवसर मिला है, जिससे उसकी प्रगति हुई है। हिन्दी साहित्य में महिलाओं के पदार्पण से महिला-सशक्तिकरण की ध्वनि गूँजने लगी है। प्रारंभिक रचनाओं में महिला की स्वतत्रंता के स्वर प्रबल हो रहे हैं। परिवार में शोषण से घुटती रही स्त्री ने आज परिवार से लोहा लेते हुए सम्मानजनक स्थान प्राप्त किया है। सरकार भी इसके लिए विपुल अवसर प्रदान कर रहीं है। इस दिशा में हिन्दी महिला कथाकार अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के माध्यम से प्रचुर मात्रा में योगदान दे रही हैं। महिला-सशक्तिकरण के इस विशिष्ट स्वरूप की विचारधारा को कथाकारों ने कितनी गंभीरता से लिया है। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि अभिव्यक्ति का परिणाम साहित्य ही उसके निजी जीवन का दस्तावेज है। अतः महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में उसके विचारों का जायजा उसकी तूलिका से हिन्दी साहित्य के माध्यम से लेना अधिक औचित्यपूर्ण होगा।

हिन्दी साहित्य की अनेक महिला रचनाकारों ने अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को बेबाक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जैसे- लेखिका मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', वीणा सिन्हा का 'पथ प्रज्ञा', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' और 'इदन्नमम' तथा चित्रा मुद्गल का 'आवाँ' एवं 'एक जमीन अपनी', नासिरा शर्मा का 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी' एवं 'परिजात' आदि। हिन्दी साहित्य के इन आलोच्य उपन्यासों की लगभग सभी महिला पात्र देह-दोहन को निरस्त करती हुई अपनी अस्मिता की रक्षा का प्रयत्न करती हैं और कुछ मात्र जीवन का अतिंम लक्ष्य न मानकर समाजसेवा के लिए भी आत्मोत्सर्ग करती हैं।

महिला सशक्तिकरण की चर्चा आजकल बहुत ही चर्चित विषय रहा है। क्योंकि आज के संदर्भ में मात्र इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी है, बल्कि इसकी आवश्यकता आ पड़ी थी। परंतु पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता इसके विरुद्ध रहने के कारण यह संभव नहीं हो सका था। लेकिन आज की परिस्थितियाँ इसके अनुकूल विपुल मात्रा में अवसर प्रदान करती हैं, जो परिस्थितियाँ महिला के साथ प्रारंभ से उसके विपरीत चली आयी थीं, वे अब प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। उस समय की महिला में और अब की महिला में बड़ा अंतर पाया जाता है। आज की स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना जानती है, अपने अस्तित्व की रक्षा, अपने मान-सम्मान की रक्षा करना जानती है और उसके लिए जी-जान से प्रयत्नशील है। जिसके कारण पुरुष प्रधान मानसिकता को अपने अनुकूल बनाने की दिशा में अग्रसर होती जा रही है। हिन्दी साहित्य महिलाओं के पदार्पण से महिला सशक्तिकरण की ध्वनि गूँजने लगी है। प्रारंभिक रचनाओं में स्त्री की स्वतंत्रता के स्वर प्रबल रहे हैं परिवार में शोषण से घुटती रही महिला आज परिवार से लोहा लेते हुए सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर रही है। सरकारें भी इसके लिए विपुल अवसर प्रदान कर रही हैं। इस दिशा में हिन्दी महिला कथाकारों ने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के माध्यम से प्रचुर योगदान दिया है।

इसी दिशा के तहत जब पूर्वी वर्लिन में 'अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस' सन् 1975 में मनाया गया, तब उसके एवज में भारत सरकार ने सन् 2000-2001 ई. को 'स्त्री सशक्तिकरण वर्ष' कहकर घोषित किया। इस दिशा में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने अनेक कार्यक्रमों की योजनाएँ तैयार कीं। इनमें विशेष रूप में लिंग समानता एवं स्त्री के प्रति न्यायपूर्ण नीति को अधिक महत्त्व दिया गया। उसका विकास, प्रगति तथा सशक्तिकरण कालमिति क्रिया योजनाओं को रूपायित किया गया। कार्यक्रमों के अनुष्ठान की निगरानी के लिए राष्ट्र तथा राज्य स्तरीय गुटों की रचना की गयी है। राष्ट्रस्तर के गुट के लिए प्रधानमंत्री तथा राज्य स्तरों के गुट के लिए मुख्यमंत्री अध्यक्ष होते हैं। सन 1997 में महिला सशक्तिकरण समिति की रचना हुई।

महिला सशक्तिकरण के इस विशिष्ट स्वरूप की विचाराधारा को रचनाकारों ने कितनी गंभीरता से लिया है, यही इस आलेख का मुख्य उद्देश्य रहा है। देश स्वतंत्र हुये एक लम्बा अरसा बीत गया। स्वतंत्र देश में स्त्रियाँ कितनी स्वतंत्र रही हैं? अपने स्वातंत्रय का कितना उपयोग कर रही हैं? कैसे कर रही हैं? आदि सवालों के जवाब में उसकी अभिव्यक्ति स्वातंत्रय का भी उल्लेख करना विशेष महत्त्व रखता है। यह कहना असंगत न होगा कि अभिव्यक्ति

का परिणाम साहित्य ही उसके निजी जीवन का दस्तावेज है। अत: महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में उसके विचारों का जायजा उसकी तूलिका से नि:सृत हिन्दी साहित्य के माध्यम से लेना अधिक औचित्यपूर्ण होगा।

आज का 'गे' कल्चर, समलिंगी समस्या, स्पर्म बैंक, सरोगेटेड मदर (किराये की माँ), ह्यूमन क्लोनिंग जैसी संभावनाएँ, अत्याधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार आदि ने महिला सशक्तिकरण को एक नया आयाम दिया है। जिसके कारण भयभीत कराने वाले अनेक प्रश्न जैसे- ह्यूमून क्लोनिंग तथा स्पर्म बैंक कहीं पारंपरिक वैवाहिक व्यवस्था को तो खंडित नहीं कर देंगे?, सुरक्षित पारिवारिक व्यवस्था का क्या होगा? सुरक्षित सामाजिक परंपरा का सर्वनाश तो नहीं हो जायेगा? आदि मानव-मन को सता रहे हैं।

चित्रा मुद्गल श्रमजीवी तथा नारी शोषण की महागाथा है, उनका 'आवाँ' उपन्यास। अर्थ मानव जीवन को नियंत्रित करने वाला प्रमुख तत्त्व है। अर्थ प्राप्ति के प्रयत्नों में स्त्री को कभी देह दोहन को विवश होकर सहना पड़ता है। पर मजदूर संगठन, राजनीतिक दांव पेच, नेताओं की आपसी होड आदि में फंसकर पिसते श्रमिकों और स्त्रियों की कहानी है। कथा नायिका नमिता पांडे का अन्नासाहेब की हत्या की खबर सुनकर गर्भपात होता है तो धनबल पर पापड बेलकर आजीविका कमाने वाली नमिता की कोख खरीदने का, नि:संतान संजय कनोई का षड्यंत्र विफल होता है, तब वह निर्लज्जता से अपनी ही संतान पाने की इच्छा को यह कहते हुए अभिव्यक्त करता है कि- ''.... मैं रंडियों से बाप बनना नहीं चाहता था ... मुझे नहीं गंवारा था ऐसी किराये की कोख''। नमिता को संजय के इस अपमानजनक षड्यंत्र का पता चलने पर उससे प्राप्त ऐशो-आराम को धिक्कार कर अभावभरी जिन्दगी जीने लगती है। भविष्य में अपने शरीर का शोषण होने नहीं देती। नमिता तथा मजदूर नेता पंवार शादी करना चाहते हैं। पंवार भी नमिता के इस्तेमाल से नेतृत्वरूपी अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करना चाहता है, तो वह उसे भी ठुकरा देती है। बार-बार के मोहभंग से सबक सीखी नमिता अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए श्रमिक परिवेश में शरण लेती है। इस प्रकार ''मध्यवर्गीय परिवार की देहरी से निकलकर निम्नवर्गीय झोपड़ियों से संपर्क साधती है और अपने परिश्रम तथा प्रतिभा से उचचतम वर्ग की विश्वस्त और अंतरंग पात्र बन जाती है। लेकिन जब वह पहचान लेती है कि हर जगह पाखंड और धम्म का वर्चस्व है तो सभी को चुनौती देती हुई अपना गंतव्य मार्ग स्वयं चुनती है।''

प्रभा खेतान शोषण मुक्त नारी जीवन की पक्षधर है। उनका उपन्यास 'छिन्नमस्ता' महिला की दुर्भाग्यपूर्ण नियति को घोषित करता है। वह मस्तक रहित अर्थात् बुद्धि रहित जीव, देह मात्र है। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था में बुद्धिहीन नारी ही वांछनीय है। प्रभुता उसकी बुद्धिशक्ति को छिन्न-भिन्न कराती आयी है। आधुनिक नारी प्रिया प्रतिभा संपन्न होने के कारण परिवार से दंडित होकर निर्वासित होती है। वह पत्नी से लेकर माँ तक की सारी भूमिकाएँ अदा करती है और पढ़ी-लिखी होने के कारण पति नरेन्द्र के व्यवसाय में हाथ भी बंटाती है। नौकरी करते हुए परिवार को खुश भी रखती है। लेकिन पति की प्रभुता उसकी विदेश यात्रा को स्थगित करने की कोशिश करती है। प्रिया इस लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करती है तो माँ और पति के घर और मारवाडी समाज से निष्कासित होती है। प्रिया अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए पारिवारिक संबंधों को तोड़ते हुए परंपरागत मूल्यों का विरोध कर दमन नीति का विद्रोह करती है, साथ ही दूसरों को भी इस दिशा में प्रेरित करती है। छिन्नमस्ता परंपरागत स्त्री के मिथ को तोडता है। यह उत्तर आधुनिक काल की महिला का अन्याय के विरोध में उठाया गया साहसिक कदम है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' और 'इदन्नमम' उपन्यास महिला सशक्तिकरण के नये पहलुओं से साक्षात्कार कराता हैं। 'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग नैनी ब्रज के अंचल के अतरपुर गाँव के कृषक परिवार की साधारण पढ़ी-लिखी युवती है। सारंग के जीवन में भी कई उतार-चढ़ाव आते है। वह पति को चुनौती देती है। प्रेमी को अपनाती है। अंत में अतरपुर की सारी स्त्रियाँ मतभेद भुलाकर इकट्ठी होती हैं समन्वित स्त्री शक्ति के सहारे गांव के प्रधान पद के चुनाव में प्रत्याशी बनती है। इस प्रकार महिला संगठन की शक्ति के परिणाम को दर्शाने वाली यह रचना लेखिका के लक्ष्य पूर्ति के 'चाक' में रूपायित होती जाती है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'इदन्नमम' कई पुरस्कारों से सम्मानित है। जैसे- हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश द्वारा 'प्रेमचंद सम्मान' पुरस्कार एवं साहित्य परिषद मध्यप्रदेश द्वारा अखिल भारतीय महाराज 'वीरसिहं देव' पुरस्कार आदि प्राप्त हैं।

मृदुला गर्ग ने अपनी रचना 'कठगुलाब' द्वारा इन विषयों के प्रति निश्चित अभिप्राय देने की दिशा में पहल की है। 'कठगुलाब' सृजन का प्रतीक है। लेखिका ने इसी अर्थ में सम्पूर्ण उपन्यास को प्रतीकात्मक बना दिया है। कथावाचकों के रूप में चार प्रमुख स्त्री पात्रों (स्मिता, मारियन, नर्मदा, असीमा) और एक मात्र पुरुष पात्र विपिन के द्वारा कथा का ताना-बाना बुना गया हैं। कथा नायिका स्मिता पालनहार माता-पिता के देहांत के पश्चात दीदी नमिता के घर पर आश्रय लेती है। उसकों आश्रयदाता देने वाला उसका जीजा आश्रय का मूल्य बलात्कार के द्वारा ले लेता है। तब पढ़ाई के बहाने दीदी उसे बडौदा भेज देती है। परिश्रमी स्मिता आत्मनिर्भर बन अमेरिका चली जाती है। अमेरिका में एक मनोचिकित्सक जिस जारविस से शादी करके भी पीड़ित प्रताड़ित होती है।

जब स्मिता के सहिष्णुता का बांध टूट जाता है तब वह अदालत की शरण लेती है। लेकिन अदालत में भी उसे अर्द्धविक्षिप्त करार दिया जाता है और चोट से गर्भस्थ शिशु खो देती है। अंत में वह तलाक लेकर दिल्ली लौट जाती है। दिल्ली में सहेली 'असीमा', बहन की पुत्री 'नीरजा' और दीदी नमिता की नौकरानी 'नर्मदा' से मुलाकात होती है और साहित्य, दर्शन, इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान के ज्ञाता बहुविज्ञ विपिन से निकट सम्पर्क

स्थापित होता है। इन सभी पात्रों के वैचारिक आदान-प्रदान, इनसे जुड़ना-टूटना होते-होते उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। साथ ही अपने निकट रहने वालों के विकास में वह सहायक भी होती है। इसी क्रम में स्त्री-पुरुष संबंधों के अन्यान्य पहलू शामिल होकर दुर्बलों की सेविका 'बा' (माँ) बन जाती है। समूचे उपन्यास में सभी प्रमुख पात्र अपने-अपने तरीके से सृजन (मातृत्व) रूपी कठगुलाब उगाने की कोशिश तो करते हैं, परन्तु कठफोडवा (कीडा जो कठगुलाब नष्ट करता है- प्रतीक कामीपुरुष) उसे खा जाता है। स्मिता, मारियल (अमेरिकन मेधावी स्त्री) के जीवन को जारविस और इरविन जैसे कठफोडवा भोगते हैं, वे गर्भस्थ शिशु के मृत्यु का कारण बनते हैं। यहां महिला सशक्तिकरण के विश्लेषण से दो प्रमुख अंश उभरकर सामने आते हैं, एक है सेक्स अथवा देह मुक्ति और दूसरा स्त्री मुक्ति। आज मीडिया और वैश्वीकरण के दौर में स्त्री के सौन्दर्य, देह और श्रम को वस्तु की भांति उपयोग किया जा रहा है।

नासिरा शर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य की लेखिकाओं में एक बहुचर्चित नाम है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में अपने साहित्य का सृजन किया है। उन्होंने अपने जीवन की अर्जित अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उन्होंने अपनी रचनाओं में मुस्लिम समाज के जीवन का यथार्थ और संजीव चित्रण किया है। उनकी रचनाएं महिला सशक्तिकरण की पक्षधर है। नासिरा शर्मा का नाम उन विरले रचनाकारों में शुमार है, जिनकी प्रत्येक कृति का कैनवास बहुत विराट है। नासिरा शर्मा को आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान के लिए कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया जा चुका हैं, जिनमें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'व्यास सम्मान', 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' व 'अन्तरराष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान' शामिल हैं।

नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी' एवं 'परिजात' उपन्यास में महिला के दृढ़ और संघर्षशील रूप का वर्णन किया है। 'शाल्मली' उपन्यास में शाल्मली एक पात्र के रूप में ही नहीं, बल्कि अपने पति के विचारों से सामंजस्य बिठाने की कोशिश करती हुई कुण्ठित मानसिकता और हीनता के कारण अपमानित होकर अपने भाग्य को कोसने की बजाए अपने दृढ़ विचारों और आत्मविश्वास के बल पर विपरित परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपने स्वाभिमान को जिन्दा रखती है। शाल्मली एक महिला की मन:स्थिति को उजागर करती है, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप और महिला मुक्ति की संभावनाओं पर बात करने से पहले स्वयं महिला को समझने की बात करती हैं कि एक महिला को किससे, क्यों और कैसी आजादी चाहिए।

शाल्मली के पिता उसे पढ़ा-लिखाकर एक आत्मनिर्भर महिला बनाना चाहते है और उसके लिए वह काफी प्रयास भी करते हैं। नरेश के साथ उसका विवाह यह सोचकर करवा देते हैं कि नरेश उसका जीवनभर साथ देगा। लेकिन नरेश की मानसिक कुण्ठा और महिला को वश में रखने की रूढ़िवादी सोच ने शाल्मली को अपने वैवाहिक जीवन के कटु अनुभवों और परेशानियों से वह अंदर ही घुटते हुए एक दिन अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाती है। उसके अंदर की स्वाभिमानी महिला जाग उठती है और शाल्मली अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगती है। 'शाल्मली' के चरित्र के आधार पर नासिरा शर्मा ने महिला के उत्थान एवं स्वतंत्रता की बात कही है। इस प्रकार साहित्य जगत को एक से बढ़कर एक कृतियां देने वाली नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'शाल्मली' में महिला सशक्तिकरण पर विशेष रूप से बल देने का प्रयास किया है।

वीणा सिन्हा नारी उत्पीडन का एक खास चेहरा है, जो उनके उपन्यास 'पथ प्रज्ञा' से उजागर होता है। यह स्मृति सम्मान प्राप्त रचना है। इसमें आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूते रहे प्रागैतिहासिक काल की विडंबना को आईना दिखाया गया हैं। मेधावी, अनुपम सौन्दयर्वती, कलाकुशल चार चक्रवर्ती पुत्रों को जन्म देने की क्षमता संपन्न राजकुमारी माधवी का पुरुष सत्ता द्वारा मनमाना दोहन होता है। विश्वामित्र का आत्मीय शिष्य गालव मित्र सुपर्ण की सलाह से स्वयं एक आश्रम निर्मित करना चाहता है। अत: गुरु विश्वामित्र का आश्रम छोड़कर जाने से पूर्व गुरु-दक्षिणा देदा चाहता है। गुरु की मनाही के बावजूद अति आग्रह करने पर विश्वामित्र असंभव गुरु-दक्षिणा के रूप में आठ सौ श्वेतवर्ण श्यामकर्ण अश्वों की मांग करते हैं, ताकि गालव आश्रम छोडकर न जाये लेकिन गालव और सुपर्ण दोनों मिलकर राजा ययाती से आठ सौ अश्व पाना चाहते हैं। लेकिन ययाती उनके बदले चार चक्रवर्ती पुत्रों को जन्म देने की क्षमता सम्पन्न, फिर भी कन्यत्व की पवित्रता बनी रहने का वर प्राप्त पुत्री माधवी को उन्हें देता है। गालव भोजनगर के राजा उशीनर, अयोध्या के राजा हयश्रव, काशी के राजा दिवोदास को क्रमश: सौंपकर उनको चक्रवर्ती संतान दिलवाकर उनसे दो-दो सौ अश्व पाता है। अंत में बचे दो सौ अश्वों के लिए ऋषि विश्वामित्र के पास ही लिवा लाता है।

विश्वामित्र उस समय कहते हैं- ''... यह अनपुम रत्न लेकर तुम व्यर्थ भटकते रहे। इन अश्वों का इस सौंदर्य के आगे कोई मूल्य नहीं। यदि तुम पहले ही इसे यहाँ ले आते तो निश्चित जानों इसके चारों पुत्रों का पिता मैं ही होता।'' जो ऋषिश्रेष्ठ की भी भोगलोलुपता का प्रमाण है। विश्वामित्र से एक पुत्र को जन्म देने पर उसे पुन: पिता के पास छोड दिया जाता है। तब पिता माधवी का स्वयंवर रचते हैं। स्वयंवर में माधवी अपने जीवन के इतिहास को उपस्थित राजाओं के सम्मुख उद्घाटित करती है। उसकी जीवन कहानी सुनकर भी कई राजा लार टपकाते हैं। तो अंत में स्वार्थी संबंधों की परवाह किये बिना स्वयंवर के द्वन्द्व को भेदती हुई अंतरंग प्रेरणा से आलोकित प्रज्ञा पथ पर वह चल पड़ती है। अपनी समूची ऊर्जा और ज्ञान को सर्वजन हित हेतु समर्पित करने का संकल्प कर शोषण, पीडाघ, दहे दोहन से मुक्ति मार्ग खोल लेती है। माधवी का यह निर्णय आज के संदर्भ में भी अधिक

प्रासंगिक है। महिला जागृति की रचनाकार की अभिलाषा में सफलता निहित है।

डॉ. निर्मला जैन का कथन है- "वस्तुतः यह उपन्यास औरत होने की लडाई का उपन्यास है, वहीं उसकी सफलता और पठनीयता का कारण भी है।'' प्रस्तुत उपन्यास औरत होने की लडाई का उपन्यास है, वही उसकी सफलता और पठनीयता का कारण भी है। प्रस्तुत उपन्यास में तीन पीढ़ी की नारी की संघर्ष गाथा है। मंदा की दादी-बहू, दादी की बहू-प्रेम बहु और प्रेम बहू की पुत्री मंदा। तीनों अपने-अपने हक के लिए अपनी लडाई खुद ही लड़कर मुक्त हो जाती हैं।

'पथ प्रज्ञा' उपन्यास की नायिका के रूप में संघर्ष मंदाकिनी की कहानी 'या देवी सर्वभूतेषु, शक्तिरूपेण संस्थिता' के रूप में संघर्ष की प्रेरणा देती है। कथा नायिका मंदा अपनी दादी के लिए 'बावरी सिर्रिन' है तो अभिलाख जैसे शोषकों के लिए 'काल भैरवी' है। सरकारी तंत्र के लोग मंदा को 'महाकाली' का संबोधन देते हैं। 'महाराज' उसे 'रानी लक्ष्मीबाई' की तरह हौसले वाली मानते हैं और मोदिन जैसी ग्रामीण महिलाओं के लिए 'उसका मन दर्पण या साफ' है। इस तरह औरत होने की लड़ाई केवल वैयक्तित्व न रहकर समष्टि हित में परिणत होना वस्तुतः स्त्री शक्ति की क्षमता से पाठक को रूबरू कराता है।

उपसंहार

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महिला आदिकाल से ही पीडित एवं शोषित रही हैं, पुरूष प्रधान समाज ने मान-मर्यादा की आड़ में महिलाओं को सदा गुलाम बनाकर रखना चाहा है, उसे कभी घर की इज्जत बताकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारी में कैदकर रखा है। इन परम्परागत पितृसतात्मक बेडियों को लाँघने की लडाई ही महिला सशक्तिकरण है। वर्तमान दौर में भारतीय संस्कृति में महिला को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है, वह शिव भी है और शक्ति भी, वह सभी कार्य कर सकती है, जो एक पुरूष करता है। वह पुरूष की तरह ही उससे भी अधिक कार्य कर सकती है। आज महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की दशा और दिशा को उजागर कर महिलाओं को जागृत करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं की लगभग सभी महिला पात्र देह-दोहन को निरस्त करती हुई अपनी अस्मिता की रक्षा का प्रयत्न करती नजर आती है और कुछ मात्र जीवन को अंतिम लक्ष्य न मानकर समाज सेवा के लिए भी अपना आत्मोत्सर्ग करती हैं अथवा दूसरे स्वस्थ विकल्प को भी ढूँढ लेती है। हिन्दी साहित्य की महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा पुरुष वर्चस्व, पुरुष सत्ता के छद्म आदि से स्त्री समाज को सतर्क करते हुये उसे अबला से सबला बनाने तथा उसमें स्वावलम्बन का आलोक प्रज्ज्वलित करने का अथक प्रयास किया है। यह नयी चेतना, नया वैचारिक आयाम महिला सशक्तिकरण के लिए सफल एवं सुखद संकेत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
2. चित्रा मुद्गल, आवाँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. मृदुला गर्ग, कठगुलाब, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013
4. वीणा सिन्हा, पथ प्रज्ञा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
5. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
6. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
7. डॉ. उर्मि शर्मा, नारी बहुरूपा, अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
8. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
9. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
10. डॉ. प्रमिला कपूर, विवाह, सेक्स और प्रेम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
11. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियां (संग्रह) लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
12. सरला माहेश्वरी, नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, 2007
13. आशारानी व्होरा, भारतीय नारीः दशा, दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2003
14. अखिलेश शुक्ला (सं.), महिला सशक्तिकरणः दशा एवं दिशा, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा, 2011
15. सुभाष शर्मा, नारी विमर्श की गहरी जडें (आलेख), आजकल, मासिक पत्रिका, नई दिल्ली, 2021
16. आशारानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, जखाड़ा, नई दिल्ली, 2006
17. डॉ. ऋषभ मंडन शर्मा (सं.), स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम, गीता प्रकाशन, हैदराबाद, 2004
18. मृणाल पाण्डे, स्त्रीः देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008

अनुसूचित जनजातियों में आधुनिक कृषि भूमि से परिवर्तन (मध्यप्रदेश के धार जिले के संदर्भ में)

मडिया डावर

शोधार्थी, भूगोल-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)

डॉ० देवेन्द्र मुझाल्दा

सह-आचार्य भूगोल-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)

शोध सारांश:

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो मध्यप्रदेश के धार जिले की अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन आधुनिक कृषि भूमि के उपयोग से ही संभव हो पाया है। यह परिवर्तन किस प्रकार संभव हो पाया है और इससे अनुसूचित जनजातियों में क्या बदलाव हुये है, इसका अध्ययन इस शोधपत्र में किया गया है। वर्तमान समय में इन लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार हो रहा है, जिसका मुख्य कारण आधुनिक कृषि कार्य ही है। क्योंकि धार जिले के आस-पास क्षेत्रों में निवास करने वाले अधिकतर अनुसूचित जनजाति के लोगों का मुख्य कार्य कृषि एवं कृषि-मजदुरी ही रहा है। इस समुदाय के जीवनयापन का मुख्य स्त्रोत कृषि ही है। भारत की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य एवं उससे संबंधित उद्योगों पर निर्भर है। देश के कुल कृषि क्षेत्र के कुल स्त्रोतों का मात्र 66.61 लाख प्रतिशत सिंचित है तथा शेष 75 प्रतिशत क्षेत्र में कुछ ही प्रतिशत में कृषि उत्पादन होता है, जो पानी की कमी एवं उचित प्रबंधन नहीं होने के कारण, कृषि पद्धति से आधुनिक कृषि यंत्रों, रासायनिक खादों, उन्नत बीजों जैसे उपायों की कमी के कारण कृषि उत्पादन सीमित मात्रा में ही हो पोता है। वर्तमान में धार जिले के जिन क्षेत्रों में सिंचाई योजनाओं से सम्बन्धित कृषि फसलों व उनसे सम्बन्धित फसलों का उत्पादन किया जा रहा हैं, उन सभी क्षेत्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति संतोषजनक दिखाई देती है। इस प्रकार आधुनिक कृषि भूमि से मध्यप्रदेश के धार जिले की अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है।

शब्द कुँजी: कृषि, भूमि, फसल, प्रबंधन, संसाधन, आधुनिक, सामाजिक, आर्थिक, परिवर्तन।

मध्यप्रदेश का परिचय:

मध्यप्रदेश भारत का एक राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल 308252 वर्ग किलोमीटर है। जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 9.38 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह देश का राजस्थान के बाद दूसरा बड़ा राज्य है। मध्यप्रदेश का विस्तार पूर्व से पश्चिम तक 870 कि.मी. क्षेत्र में तथा उत्तर से दक्षिण तक 605 कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। इसकी भौगोलिक स्थिति 21°04' से 26°49' उत्तरी अक्षांश एवं 74°1' से 82°48' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। मध्यप्रदेश की सीमा 5 राज्यों- छत्तीसगढ़, गुजरात, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र की सीमाओं को स्पर्श करती हैं। जिनमें पूर्व में छत्तीसगढ़, पश्चिम में गुजरात, तथा उत्तर में उत्तरप्रदेश, उत्तर-पश्चिम में राजस्थान तथा दक्षिण में महाराष्ट्र है। मध्यप्रदेश की विधानसभा में अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों की संख्या 47 है तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित लोकसभा क्षेत्र 6 है। मध्यप्रदेश पूर्णत: चारों ओर से अनेक स्थलों से घिरा हुआ है। इस प्रदेश की सीमा न तो किसी सागरीय सीमा को स्पर्श करती है और न ही किसी अन्तरराष्ट्रीय सीमा को स्पर्श करती है। यह भारत देश के मध्य में स्थित है, इसलिए इसे 'हृदय प्रदेश' भी कहा जाता है। मध्यप्रदेश कृषि प्रधान राज्य है। इसकी राजकीय फसल सोयाबीन होने के कारण इसे 'सोया प्रदेश' के नाम से भी जाना पहचाना जाता है। मध्यप्रदेश राज्य में वर्तमान में कुल 52 जिले है। जिसमें धार, मध्यप्रदेश का सबसे बडा जिला है।

भारत देश कृषि प्रधान:

किसी भी देश, प्रदेश या क्षेत्र का कृषि प्रतिरूप वहाँ के सिंचाई प्रतिरूप, भौतिक, संरचना सामाजिक एवं मानवीय कारकों पर आधारित होता है। इसमें सिंचाई एवं जनसंख्या का योगदान अति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वर्तमान में जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आधुनिक कृषि भूमि से कृषि कार्यों में विभिन्न बदलाव लाए गये है। मध्यप्रदेश के धार जिले की अनुसूचित जनजातियों में जीविकोपार्जन का प्रमुख स्त्रोत कृषि भूमि ही है। अत: कृषि भूमि उपयोग का विश्लेषण करने से पूर्व भूमि संसाधन आधार का मूल्याँकन करना अति-आवश्यक है। क्योंकि इन क्षेत्रों का अन्यत्र मानव जीवन के उच्च स्तर पर आधारित नि:सन्देह सम्पन्न कृषि भूमि संसाधन ही है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कुल जनसंख्या का 70 प्रतिशत लोग कृषि कार्यों में संलग्न है। सम्पूर्ण विश्व के किसी भी

देश में इतनी बड़ी जनसंख्या कृषि पर आश्रित नहीं है। इस दृष्टि से भारत संसार के प्रमुख खेतीहर देशों में से एक है। यहाँ वन तथा कृषि संसाधन को मिलाकर केवल कृषि से लगभग 45 प्रतिशत राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि पर आधारित है।

भारत में जनजातीय समुदाय के जीवनयापन का भी मुख्य स्त्रोत कृषि ही हैं। देश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य एवं उससे संबंधित उद्योगों पर निर्भर है। देश के कुल कृषि क्षेत्रों के कुल स्त्रोतों का मात्र 35 प्रतिशत सिंचित है तथा शेष 75 प्रतिशत क्षेत्रों के कुछ ही प्रतिशत में कृषि उत्पादन होता है जो पानी की कमी एवं उचित प्रबंधन नहीं होने के कारण तथा कृषि पद्धति से आधुनिक कृषि यंत्रों, रासायनिक खाद, उन्नत बीजों जैसे उपायों की कमी के कारण कृषि उत्पादन सीमित मात्रा में ही होता है। जिसमें वृद्धि की जानी चाहिए।

आधुनिक युग की समस्या अनुसंधानीय एवं वैज्ञानिक अध्ययनों में भूमि एवं उसके आनुकूल उपयोग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस क्षेत्र की संपूर्ण अर्थव्यवस्था ही कृषि संसाधनों पर आधारित हो, उस क्षेत्र के भौतिक अध्ययन में भूमि उपयोग के बदले अधिक महत्त्वपूर्ण संभवत: अन्य कोई विषय नहीं है। यह बात सत्य हैं कि आज द्रुतगति से बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि पर भार बढ़ता जा रहा है।

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों की भूमि का विभिन्न कार्यों के लिए सबसे लाभ तथा अधिकतम उपयोग को ध्यान में रखते हुए भूमि का उपयोग आदर्श रूप में किया जाना चाहिए। भूमि के सदुपयोग व दुरूपयोग के मूल्याँकन एवं उसके आधार पर आदर्श उपयोग के निर्माण हेतु यह महत्त्वपूर्ण है कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में जिस तरिके से विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भूमि का उपयोग किया जा रहा है, उसकी व्यवस्था एवं समीक्षा की जानी चाहिए तभी वर्तमान एवं भूत के आधार पर भविष्य की योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

आधुनिक कृषि भूमि:

भारतीय कृषि के समरूप ही मध्यप्रदेश के धार जिले में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात योजनाबद्ध कार्य से कृषि का विकास हुआ है। जिससे देश में आयी हरित क्रांति के फलस्वरूप मध्यप्रदेश के धार जिले में भी तीव्र गति से आधुनिक कृषि का विकास हुआ है।

वर्तमान में सिंचाई के साधनों के विकास से ही कृषि प्रतिरूप में अत्याधिक विस्तार हुआ है। वहीं नये उन्नत किस्म के बीजों तथा उर्वरकों के प्रयोग एवं उनके सदुपयोग से खाद्यान्न फसलों में भी वृद्धि हुई है। नये अनुसंधानों से नयी किस्म के बीजों का अत्याधिक उपयोग हुआ है तथा कृषि में यंत्रीकरण एवं औद्योगीकरण को भी बढ़ावा मिला है।

कृषि भूमि एवं खाद्यान्न उत्पादन क्षेत्र विशेष की सिंचाई प्रतिरूप संभाव्यता पर आधारित होती है, क्योंकि कृषि भूमि उपयोग एवं सिंचाई के संसाधनों का अन्योन्याश्रय संबंध होता है। आज सतत रूप से बढ़ती जा रही जनसंख्या के फलस्वरूप जनसंख्या एवं भूमि संसाधनों व सिंचाई संसाधनों का अन्तर दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार वृद्धयोन्मुख जनसंख्या की खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति सीमित भूमि भूगोलवेत्ताओं ने कृषि प्रादेशीकरण योजना के माध्यम से कृषि विकास के साथ-साथ सिंचाई के संसाधनों के विकास की योजनाएँ प्रस्तुत की है।

किसी भी देश की कृषि प्रवृत्तियाँ, वहाँ के कृषि-विकास अवस्था का द्योतक होती है। इसलिए कृषिगत क्षेत्रीय समरूपता एवं सम्बद्वता को समझाने के लिए कृषि प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक होता है। कृषि विकास एवं सिंचाई संसाधनों की अवस्था पर उस क्षेत्र की भौगोलिक एवं साँस्कृतिक दशाओं का कालिक प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि अवस्था पर पड़ता है, क्योंकि परिवर्तनशीलता पृथ्वी के धरातल का प्रमुख लक्षण है। इसलिए कृषि एवं सिंचाई परिवर्तनशीलता का सामयिक विश्लेषण करने से उस क्षेत्र की कृषि विकास की प्रवृतियों का अध्ययन सुगम हो जाता है। इस प्रकार विश्लेषण एवं मूल्याँकन के पश्चात ही उस क्षेत्र में कृषि विकास की योजना प्रस्तुत करना अधिक लाभप्रद होता है।

कृषि भूमि उपयोग का वास्तविक रूप से अध्ययन में किसी प्रमुख उपयोग के अंतर्गत भूमि को अन्य सामान्य उपयोग में रूपान्तरण करना सम्मिलित है। इस मत की सारगर्भिता की पुष्टि कृषि प्रतिरूप एवं सिंचाई प्रतिरूपों में विभिन्न परिवर्तनों से होती है। इस शोध पत्र के अध्ययन में मध्यप्रदेश के धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड के कृषि प्रतिरूप एवं सिंचाई प्रतिरूप में परिवर्तन के अध्ययन हेतु भूमि उपयोग एवं सिंचाई प्रतिरूप को प्रस्तुत किया गया है।

भूमि प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य निधि है। भूमि संसाधन आर्थिक क्रियाओं का आधार है। किसी भी क्षेत्र में भूमि संसाधन की उपयोगिता से क्षेत्र का आर्थिक भू-दृश्य प्रभावित होता है। कृषि की दृष्टि से भूमि समतल होना, उपजाऊपन, पानी की उपलब्धता एवं अन्य अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर कृषि प्रारूप अत्यधिक प्रभावित होता है।

कृषि भूमि उपयोग:

"जब भू-भाग का प्राकृतिक स्वरूप लुप्त हो जाता है और मानवीय क्रियाओं के योगदान से एक नया भू-दृश्य जन्म लेता है, तो उसे भूमि उपयोग कहते है।'' भूमि उपयोग से तात्पर्य किसी भू-भाग का मानव द्वारा किसी कार्य के लिए प्रस्तुत किए जाने से हैं। यह प्रयुक्तिकरण कृषि, पशुपालन व उद्योग आदि से संबंधित हो सकता है, वहीं दूसरी और मानव की साँस्कृतिक क्रियाओं के लिए भी इसे प्रस्तुत किया जा सकता है। भूमि एक सीमित संसाधन है तथा इसके कुछ भाग में ही कृषि कार्य होते है, जो कृषि प्रारूप का आधार बनाता है।

आधुनिक कृषि तकनीक से परिवर्तन:

मध्यप्रदेश के धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में अधिकतर अनुसूचित जनजातीय समुदाय के लोग निवास करते है। इन लोगों के द्वारा कृषि कार्य भी अधिक मात्रा में किया जाता है। अनुसूचित जनजातीय कृषकों द्वारा कृषि कार्य में आधुनिक तकनीकी का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट दिखाई देता है, जो एक कृषक के लिए महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में कृषि कार्य में नवीन तकनीकी का उपयोग करने से मध्यप्रदेश के धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड की अनुसूचित जनजातियों के जीवन स्तर में कई प्रकार के परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। आज कृषि कार्य के द्वारा ही अनुसूचित जनजातियों के लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। साथ ही इन लोगों के द्वारा एक वर्ष में एक साथ अनेक प्रकार की फसलों को उगाया जाता है, जिससे आर्थिक लाभ अर्जित किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश के धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों द्वारा की जाने वाली आधुनिक कृषि से इनके जीवन में सामाजिक-आर्थिक स्तर पर प्रभाव पड़ा है, जिनके कारण आज उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति वर्ष 2015 की तुलना में वर्ष 2020 में बहुत ही अधिक परिवर्तन हुआ है।

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के युग में जो नवीन प्रकार के परिवर्तन व बदलाव दिखाई दे रहे है, इनका मुख्य कारण कृषि ही है। क्योंकि मध्यप्रदेश के धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में आधुनिक कृषि कार्य अत्यधिक मात्रा में किया जा रहा है, जिससे अनुसूचित जनजातियों के कृषकों में भी कई प्रकार के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन आज स्पष्ट नजर आ रहे है। जो कि उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार का संकेतक है।

धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातियों के द्वारा कृषि कार्य के अलावा इनके द्वारा अनेक प्रकार के विभिन्न कार्य अलग से भी किये जा रहे हैं, जिसके अंतर्गत व्यवसाय, उद्योग एवं नौकरी भी शामिल है। इसी तरह से इस समुदाय के अधिकतर लोग आज कई शासकीय संस्थाओं में भी नौकरी कर रहे है। जो कि कृषि कार्य के साथ अन्य कार्यों में संलग्न है। जिससे अनुसूचित जनजातीय समुदाय के लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के साथ ही निरन्तर वृद्धि भी हो रही है।

अनुसूचित जनजातीय समुदाय के लोगों द्वारा कृषि कार्य के साथ-साथ पशुपालन का कार्य भी किया जाता रहा है, जिससे उन्हें कृषि के साथ-साथ पशुओं से भी अतिरिक्त आमदानी प्राप्त हो रही है। जैसे- मुर्गी पालन, मछली पालन, बकरी पालन, भेड़ पालन, गाय पालन, बैल पालन, भैंस पालन आदि जानवरों के पालन से इन लोगों को कृषि के साथ-साथ इन पालतू पशुओं से भी आमदानी होती है, जो उनके लिए एक प्रकार से अतिरिक्त आमदनी का साधन बनता जा रहा है, जिससे उनको अधिक लाभ की प्राप्ति हो रही है। जो आधुनिक कृषि पद्धति से फसल उत्पादन में बढोतरी का संकेत है। इससे उनके आर्थिक लाभ में वृद्धि हो रही है।

वर्तमान में धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातियों के लोगों के पास संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता है। उन लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी काफी सुदृढ़ हुई है। जबकि अनुसूचित जनजातियों के जिन लोगों के पास संसाधनों की उपलबधता नहीं है, उन लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति काफी कमजोर है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति का यह आधार पूर्णत: संसाधनों की पर्याप्तता पर निर्भर करता है।

इस प्रकार आधुनिक कृषि कार्य में आधुनिक तकनीकियों के प्रयोग से धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातियों के लोगों में परिवर्तन प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है, जो उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के परिवर्तन को दर्शाता है।

आधुनिक कृषि तकनीक का उपायोग:

आधुनिक कृषि तकनीक धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में अधिकतर अनुसूचित जनजातीय समुदाय के कृषकों एवं सीमांत कृषकों के लिए रोजगार और जीविकोपार्जन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जो कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में अपना प्रभुत्व रखते हैं। गरीबी रेखा को कम करने और विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आधुनिक कृषि से संबंधित गतिविधियों को धारणीय विकास लक्ष्यों के साथ जोड़ना होगा। आधुनिक कृषि में जोत हेतु भूमि के आकार में कमी को देखते हुए धार जिले में विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने और साथ ही कृषि में धारणीयता प्राप्त करने के लिए कृषि में संसाधन कौशलों पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। संसाधन पद्धतियों, परिवर्तनशील रोपण विधि, पर्यावरण परिवर्तन के अनुरूप ढलने वाली कृषि और समन्वय का गहन रूप से उपयोग आदि धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में आधुनिक कृषि का मुख्य आधार होना चाहिए। सुरक्षित और खाद्य संरक्षित भविष्य के लिए आधुनिक कृषि भूमि व्यवस्था को अत्यधिक परिवर्तनों से होकर गुजरना होगा। अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में निवास करने वाले अधिकतर कृषकों द्वारा उपयोग में ली जाने वाली आधुनिक कृषि तकनीकों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी देनी होगी। जिससे अनुसूचित जनजातीय समुदाय के कृषक भी कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकों का उपयोग कर अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकें।

धार जिले की बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातीय समुदाय के कृषक फसल उत्पादन, पशुपालन, कृषि, सामाजिक वानिकी, मत्स्यपालन आदि सहित कृषि क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। आधुनिक कृषि जोतों का खाका कृषि क्षेत्र में छोटे और सीमांत

कृषकों द्वारा दर्शाया जाता है। आधुनिक कृषि के लिए उन्नत कार्य नीति के तहत संधारणीय जीविका को बढ़ावा देने के उद्देश्य से धार जिले के अनुसूचित जनजातीय समुदाय को गरीबी से उपर उठाने हेतु छोटी जोत वाली कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कृषि में उत्पादकता, उर्वरकों के उपयोग, सिंचाई की उपलब्धता और फसल उगाने हेतु चुने गए नवीन तरीकों एवं कारकों पर निर्भर करती है। यह आधुनिक कृषि का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिससे छोटी जोत वाली कृषि की उत्पादकता में भी सुधार लाया जा सकता है।

आधुनिक कृषि उत्पादन/फसल हेतु उचित प्रबंधनः

कृषि ग्रामीण भारत का केन्द्र मंच है। आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था को सुचारू रखने के लिए कृषि उत्पादन का अधिक महत्त्व है। अर्थव्यवस्था के मापन में कृषि उत्पादन का विशेष योगदान रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था में सच्ची समद्धि सिर्फ कृषि उप्तादन से ही संभव हो सकती है। फसलों में 'कपास' भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारिक एवं व्यावसायिक फसल है। एक अनुमान के अनुसार एक किलोग्राम अनाज उगाने के लिए लगभग एक घनमीटर पानी की आवश्यकता होती है। अतः बढ़ती आबादी के अनुसार फसलों के उत्पादन एवं सिंचाई के साधनों के स्वरूपों में भी बदलाव की आवश्यकता है। क्योंकि सिंचित क्षेत्रों में फसलों की पैदावार असिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा 50 से 280 गुना तक अधिक हो सकती है।

इस प्रकार मध्यप्रदेश के धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातीय लोगों द्वारा आधुनिक कृषि हेतु जुताई के लिए ट्रेक्टर, कम्बाईन, हारवेस्टर व सिंचाई के लिए ट्यूबवेल आदि का प्रयोग किया जा रहा है। अत्याधुनिक कृषि तकनीकों द्वारा अधिक कृषि उत्पादन व ज्यादा पैदावार हेतु कुछ इस प्रकार का उचित प्रबंधन भी किया जा रहा है। जैसे- उच्च उत्पादकता वाले वाले अर्थात उन्नत बीजों का प्रयोग करना, आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग करना, फसलों को पोषक तत्त्वों की आपूर्ति करना, बिमारियों व कीटाणुओं पर नियंत्रण करना, फसलों को बचाने हेतु कीटनाशकों का प्रयोग करना, उचित सिंचाई तथा रासायनिक खादों का प्रयोग करना आदि। इस प्रकार फसलों के रख-रखाव से भी उत्पादन में भारी वृद्धि की जा रही है। जिससे व्यापारिक फसलों के उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है। उत्पादन के साथ ही वायु, जल, भूमि व मानवीय स्वास्थ्य के संरक्षण को भी ध्यान में रखा जा रहा है। आधुनिक कृषि तकनीकों के प्रयोग से मध्यप्रदेश के धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में अनाज के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। जिससे व्यापारिक फसलों के उत्पादन में भी पर्याप्त बढ़ोतरी हुई है।

निष्कर्षः

वर्तमान में धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातीय समुदायों के द्वारा कृषि कार्यों में आधुनिक पद्धतियों का उपयोग अत्यधिक किया जा रहा है।

आजकल सोशल मीडिया जैसे- मोबाइल, यू-ट्यूब, फैसबुक, रेडियों, टेलीविजन, समाचार पत्रों में भी कृषि की नवीन तकनीकों के उपयोग हेतु कार्यक्रम एवं जानकारियाँ प्रसारित होती है, जिससे आधुनिक कृषि पद्धतियों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त होती है। इन आधुनिक पद्धतियों के माध्यम से आज कृषि कार्य करने में आसानी हो रही है तथा अनुसूचित जनजातीय समुदायों के प्रत्येक व्यक्ति को अधिक मात्रा में आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो रहा है। आधुनिक कृषि भूमि के अंतर्गत आजकल धार जिले के अनुसूचित जनजातीय समुदायों द्वारा कृषि क्षेत्र में प्रतिवर्ष दो से तीन बार अलग-अलग कृषि फसलों को बोया जाता है, जिससे अधिक आर्थिक लाभ लिया जा रहा है। अनुसूचित जनजातीय समुदायों के लोगों के लिए आधुनिक कृषि तकनीक एक नींव का पत्थर साबित हुआ है। जिससे धार जिले के बाग विकासखण्ड एवं गंधवानी विकासखण्ड में निवास करने वाले अनुसूचित जनजातियों के कृषकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अत्यधिक बदलाव आया है। जिससे उनका सामाजिक-आर्थिक जीवन स्तर उपर उठ रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. श्यामाचरण दुबे, आदिवासी भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020
2. ओम प्रकाश, सिंचाई एवं जल प्रबंधन, रामा पब्लिकेशन्स हाउस, मेरठ, 2006
3. सामाजिक-आर्थिक विकास, क्रोनीकल पब्लिकेशन, नोएडा, उत्तरप्रदेश, 2021
4. रविन्द्र नाथ मुखर्जी, वर्षा सिंचित कृषि अनुसंधान और विकास, नई दिल्ली, 2001
5. डॉ. श्रीनाथ शर्मा, जनजातीय समाज, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2016
6. प्रशासकीय प्रतिवेदन वर्ष 2020-21, मध्यप्रदेश शासन, वन्या प्रकाशन, कानपुर, 2020
7. डॉ. दीक्षित कुमार ध्रुव, समाजशास्त्रः अनुसूचित जनजाति, शिवलाल अग्रवाल व कंपनी, इंदौर, 2014
8. एम. एल. अग्रवाल, भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, 1977
9. मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ, आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल, 2020
10. सामाजिक आर्थिक विकास तथा अभावग्रस्त समूहों का सशक्तीकरण, क्रोनीकल पब्लिकेशन, नोएडा, उत्तरप्रदेश, 2020
11. रमेश कुमार पाण्डेय, ग्रामीण सहभागीता मूल्यांकन एवं नियोजन, योजना सुचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2000
12. अनुसूचित जाति एवं जनजाति कृषक प्रशिक्षण योजनाः प्रभाव ऑकलन, सुशासन एवं नीति विश्लेषण स्कूल (मध्यप्रदेश शासन की स्वशासी संस्था), भोपाल, 2011

महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन

प्रवीण कुमारी

सामाजिक अध्ययन, शिक्षिका, राजकीय कन्या आदर्श वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय 20 बी, चन्डीगढ़

पता नहीं 'राष्ट्रपिता', 'महात्मा' (बापू) के नाम से प्रसिद्ध भारतीय राष्ट्रीय आदोंलन के प्रमुख नेतृत्वकर्ता महात्मा गाँधी (मोहनदास करमचंद गाँधी- जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई., मृत्यु 1948 ई) में क्या जादू था, कि विरोधी विचारधारा के व्यक्ति भी उनके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण उनके साथ कदम-ताल करने को तैयार हो जाते थे। एक ओर सेठ बिड़ला और जमनालाल बजाज (उनके पांचवे पुत्र के रूप में प्रसिद्ध) उनके भक्त थे, तो दूसरी ओर आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण जैसे उनके अनुयायियों में सरदार बल्लभ भाई पटेल जैसे महान कर्मयोगी, पण्डित नेहरू जैसे क्रान्तिकारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे साधु पुरूष, राजाजी (चक्रवती राजगोपालाचारी) जैसे कूटनीतिज्ञ, मौलाना आजाद जैसे विद्वान, और विनोबा भावे जैसे धार्मिक धुरन्धर तथा मोतीलाल नेहरू जैसे नास्तिक आदि बिना तर्क-वितर्क के उनकी आज्ञा के सामने सिर झुका देते थे। आखिर ऐसा क्यों? यह इसलिए कि उन्होने अपने सम्पूर्ण जीवन को अपने आदर्शों के अनुसार ढ़ाला था। मरते दम तक वह राजनीति को नैतिकता व पवित्रता रूपी वस्त्र पहनाने का प्रयास करते रहे। उनके देहावसान के अवसर पर संसार के सिर्फ सोवियत रूस को छोड़कर सभी देशों ने अपने-अपने ध्वज झुकाकर उनको श्रद्धाजंली अर्पित की। क्योंकि गाँधी जी एक मात्र सत्य व अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंनें अपने जीवन का आधार इन्हीं दो पहलुओं के साथ व्यतीत किया।

गाँधी जी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई. को भारत के गुजरात राज्य के पोरबंदर नामक स्थान पर पिता करमचंद गाँधी जी व माता पुतली बाई के यहाँ हुआ था। इनके बचपन का नाम मोहनदास करमचंद गाँधी रखा गया। मात्र 13 वर्ष की आयु में इनका विवाह कस्तूरबा गाँधी के साथ सम्पन्न हुआ। इनके व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव इनकी माता के धार्मिक विचारों व संस्कारों का पड़ा। 1887 ई. में मैट्रिक की परीक्षा पास करके वकालत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड़ (विलायत) चले गये। 1891 ई. में गाँधी जी बेरिस्टर बनकर लंदन से वापस लौटे तथा यहीं उन्होंने अपनी वकालत आरम्भ कर दी स्वभाव से सरल और शमीर्ले होने के कारण उन्हें लगभग दो वर्ष तक इस व्यवसाय में कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी। उनके जीवन में एक नया मोड़ तब आया जब 1893 ई. में एक सम्पन्न गुजराती मुसलमान अब्दुल करीम के साथ होने वाले भेदभाव के कारण गाँधी जी उसके मुकदमें की पैरवी करने के लिए दक्षिण अफ्रीका गये। गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका कुछ समय के लिए ही गये थे लेकिन वहाँ की रंगभेद नीति तथा अपने देशवासियों पर होने वाले अत्याचार को देखकर वहाँ की गोरी सरकार की खिलाफत करने का निश्चय किया। वह शक्ति, आत्मा और सत्य की शक्ति थी। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ने उपवास, सत्याग्रह तथा अहिंसा के द्वारा जो सफलता प्राप्त की, जिसका व्यापक उपयोग करके गाँधी जी ने भारत की आजादी का सपना साकार कर दिया।

सन् 1914-15 में गाँधी जी एक सफल सत्याग्राही आंदोलनकारी और राजनीतिज्ञ के रूप में दक्षिण अफ्रीका से भारत पहुँचे, परन्तु तत्काल ही भारत की राजनीति में कदम रखने से पूर्व, उन्होनें तत्कालीन भारतीय सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक आदि परिस्थितियों का अध्ययन करना व समझना उचित समझा। अहमदाबाद के पास साबरमती नदी के किनारें साबरमती सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की।

इसके पश्चात् सत्य व अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह का 1917 ई. से मृत्युपर्यन्त 1948 ई. तक सफलतापूर्वक प्रयोग किया। चम्पारण सत्याग्रह 1917 ई., खेड़ा किसान आंदोलन 1918 ई., अहमदाबाद के मिल मजदूरों की हड़ताल 1918 ई. की सफलताओं ने गाँधी जी व उनके सत्याग्रह को भारतीय जनमानस में लोकप्रिय कर दिया। इसके पश्चात् के सत्याग्रह आंदोंलनों में भारतीय जनमानस (किशोरों, युवाओं, बुजुर्गो, किसानों, मजदूरों राजनेताओं, व्यापारियों, पूंजीपतियों, शिक्षकों, वकीलों, राजकीय सेवकों आदि वर्ग) ने सक्रियता के साथ उनके द्वारा बताये गये सत्य व अहिंसा के मार्ग का अनुसरण अंधभक्तों की तरह किया। उनके विचारों से मतभेद रखने वाले अनेक व्यक्तियों ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका उनके द्वारा किये गये आंदोलनों में निभाई।

खिलाफत आंदोलन (1920-1923ई.), असहयोग आंदोलन (1920-22ई.), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-34ई.), व्यक्तिगत सत्याग्रह (1940 ई), तथा भारत छोड़ों आंदोलन (1942ई.) आदि का प्रयोग गाँधी जी ने सत्य व अहिंसा के साथ किया सभी आंदोलनों में सत्याग्रह व्रत का प्रयोग किया गया। ''सत्याग्रह'' नाम और उसके मौलिक सिद्धांतों का विकास दक्षिण अफ्रीका में किया गया। दक्षिण अफ्रीका में गोरी सरकार द्वारा भारतीयों के प्रति अन्यायपूर्ण कानूनों को लेकर भारतीयों में तीव्र रोष और असंतोष था। भारतीयों ने गाँधी जी के नेतृत्व में इस अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिरोध करने का निश्चय किया। उस समय इस आंदोलन को 'निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया गया किन्तु गाँधी जी को यह नाम पसन्द नहीं था। आगे चलकर श्री मदनलाल गाँधी जी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया। इसका अर्थ है- अच्छे काम में निष्ठा। पूरे अर्थ को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से गांधीजी ने इसमें संशोधन

करके इसका नाम 'सत्याग्रह' रखा। शाब्दिक रूप से सत्याग्रह का अर्थ है- ''सत्य के लिए आग्रह करना।'' इसके विपरीत गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह एक ऐसा नैतिक उपाय है, जिसका कार्य प्रेम और त्याग के द्वारा सत्य को प्राप्त करना तथा अपने विरोधियों के ह्दय को बदलना है। इस अर्थ में सत्याग्रह जीवन की एक विशेष कार्य पद्धति है जिसके द्वारा अन्याय और कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। सत्याग्रह का आचरण वही व्यक्ति कर सकता है जो सत्य, अहिंसा और अनुशासन में विश्वास करता हो तथा किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दमन या छल का सहारा नहीं लेता हो।

गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने सत्याग्रह के सात प्रमुख स्वरूपों (साधनों) का उल्लेख किया है-

1. असहयोग का तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके अनुसार असत्य, अनैतिक और अहितकर कार्यो के साथ किसी भी तरह का सहयोग नहीं किया जाता।
2. सविनय अवज्ञा का अर्थ है- अहिंसक तरीकों से अनैतिक कानूनों को न मानना।
3. हिजरत का अर्थ स्वेच्छा से अपने निवास स्थान को त्यागकर किसी दूसरे स्थान पर चले जाना है।
4. उपवास का तात्पर्य केवल अन्न को ग्रहण करने से नहीं है, बल्कि इसका तात्पर्य सभी तरह के दूषित विचारों से अपने अन्त:करण को मुक्त रखना है।
5. हड़ताल वह साधन है जिसके द्वारा सरकार के जनहित विरोधी कार्यों के प्रति असहमति और विरोध व्यक्त किया जाता है।
6. सामाजिक बहिष्कार भी एक नैतिक कार्य है जिसके द्वारा जनमत की अवहेलना करने वाले लोगों क सार्वजनिक रूप से बहिष्कार किया जाता है। यह बहिष्कार व्यक्ति से लेकर सरकार तक किसी का भी हो सकता है।
7. धरना देकर बैठने का अर्थ है जब तक हमारी बात नहीं मानी जायेगी तब तक हम एक आसन पर स्थिर होकर बैठे रहेगें। वे शान्तिपूर्ण तरीके से धरना देने के पक्षपाती थे।

'हिन्द स्वराज' में गाँधी जी ने 1908 ई. में सत्याग्रही के आवश्यक गुण सत्यनिष्ठा या ईमानदारी, निर्भयता, ब्रह्मचर्य, निर्धनता और अहिंसा बताये है।

1. सत्यनिष्ठा का अर्थ हैं- सत्याग्रही कभी किसी छल कपट का सहारा नहीं लेता।
2. निर्भयता का अर्थ हैं- उसे सभी बातों से निर्भय होना चाहिए।
3. ब्रह्मचर्य का अर्थ हैं- विषय-वासना के बंधनों से मुफ्त होना।
4. निर्धनता का अर्थ हैं- सत्याग्रही को निर्धनता का व्रत लेकर रूपये-पैसे का लोभ नही रखना चाहिए।
5. अहिंसा सत्याग्रह का मूल है। इसका अर्थ है मन, वचन तथा कर्म से अहिंसा।

गांधी जी ने एक सच्चे सत्याग्रही के लिये 11 व्रतों का पालन आवश्यक बताया है यथा- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखना, स्वेदशी अस्पृश्यता निवारण।

सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता के साथ उस समय करना चाहिए, जब शांतिपूर्ण रीति से अन्याय का प्रतिकार करने के अन्य साधनों का प्रयोग विफल हो चुका हो। इसका उद्देश्य विरोधी को हराना या नीचा दिखाना नहीं, किन्तु उसका हदय-परिवर्तन करके उसे अपने अनुकूल बनाना है। यह कार्य सत्याग्रही अपने ऊपर कश्ट झेल कर करता है।

सत्याग्रही के वैयक्तिक जीवन में गाँधी जी ने प्रधान रूप से निम्नलिखित नियमों के पालन पर बल दिया था:-

1. सत्याग्रही अपने मन में गुस्से को कोई स्थान नही देगा।
2. वह विरोधियों के रोष को सहन करेगा।
3. ऐसा करते हुए वह बदले की भावना से विरोधियों पर हाथ नही उठायेगा। शत्रु द्वारा क्रोधावेश में दी गयी आज्ञा, दण्ड या अन्य किसी प्रकार के भय के सामने अपना सिर नही झुकायेगा।
4. जिस समय कोई अधिकारी सविनय अवज्ञा करने वाले को पकड़ने आयेगा तो वह स्वयं गिरफ्तार हो जायेगा। जब कोई अधिकारी उसकी सम्पत्ति जब्त करने अथवा उसे ले जाने के लिए आयेगें तो वह उनका प्रतिकार नहीं करेगा।
5. यदि सत्याग्रही किसी सम्पत्ति का ट्रस्टी है तो वह इसे सरकार के कब्जे में देने से इंकार करेगा, भले ही उसके प्राण खतरे में पड़ जाए।
6. सविनय कानून भंग करने वाला विरोधियों का भी अपमान नहीं करेगा, ऐसा कोई नारा नहीं लगायेगा जो अहिंसा के विरूद्ध हो।
7. इस संघर्ष में यदि कोई किसी अधिकारी का अपमान करता है अथवा उस पर हमला करता है तो सविनय अवज्ञाकारी अपने प्राणों को संकट में डालकर भी उस अधिकारी की रक्षा करेगा।

गाँधी जी के अनुसार, ''सत्याग्रह एक ऐसी शक्ति है जिसका जन्म सत्य, प्रेम और अहिंसा से होता है।''[1] गाँधी जी कहते है कि सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है, यह वहीं प्रभावकारी होता है जिस मनुष्य के भीतर सत्यनिष्ठा, प्रेम और अहिंसा का वास होता है। सत्याग्रही किसी भी दमनकारी और हिंसात्मक कार्यवाहियों में कभी भी सत्य और अहिंसा का त्याग नहीं करता है, बल्कि वह

अपने शत्रु के प्रति प्रेमपूर्वक व्यवहार को भी कभी नहीं त्यागता है।

गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के इस अनुपम अस्त्र का प्रयोग सन् 1906 से लेकर 1914 ई. तक अफ्रीकी सरकार के विरूद्ध निरन्तर करते रहे। गाँधी जी की सत्याग्रह की नीति से वहाँ के तत्कालीन जनरल स्मटस तथा उनके एक सचिव इतने प्रभावित हुए कि उन्होनें गाँधी जी से कहा, ''हम अक्सर यह चाहते रहे कि इंग्लैण्ड़ के मजदूरों द्वारा हड़ताल के समय की जाने वाली हिंसा की तरह आप भी हिंसा का सहारा ले और तब हम आपकों यह बता देते कि इस हिंसा को कैसे दबाया जाता है लेकिन आपने हमारे किसी आदमी पर आघात नहीं किया। आप हमेशा स्वयं कष्ट उठाते रहने के बाद शालीनता की सीमा के बाहर नही गये। यही वह दशा थी जिसने हमें असहाय बना दिया।''[2] गाँधी जी ने सत्य व अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका की दमनकारी सरकार के खिलाफ सफलता पूर्वक किया। गाँधी जी के सत्याग्रह की सफलता का मूल कारण उनके व उनके अनुयायियों द्वारा दक्षिण अफ्रीका सरकार के विरूद्ध किये गये आंदोलनों में सरकार की हिंसात्मक दमनकारी कार्यवाहियों के खिलाफ हिंसात्मक गतिविधियां नहीं करना था।

गाँधी जी के शब्दों में, ''अपने विरोधियों को दुखी बनाने की बजाय स्वयं अपने पर दु:ख डालकर सत्य की विजय प्राप्त करना ही सत्याग्रह है।''[3] गाँधी जी के अनुसार सच्चा सत्याग्रही कभी भी अपने विरोधी को किसी भी प्रकार की हानि पहुचाने का विचार मन, विचार और कर्म में नहीं लाता है और न ही हानि पहुँचाने की कोशिश करता है। सत्याग्रही स्वयं को संकट में डाल सकता है, उसका उद्देश्य एकमात्र अपने विरोधी से सत्य, प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलकर विरोधी के मन को परिवर्तित करना होता है। सत्याग्रही स्वयं दु:ख उठता है न कि विरोधी को दु:ख पहुँचाने की चेष्टा करता है।

प्रभुदत्त शर्मा अपनी कृति, 'आधुनिक विचारों का इतिहास' में लिखते है यथा-

''हिंसा अलौकतान्त्रिक है, सत्याग्रह पूर्ण लोकतान्त्रिक तथा हिंसा अनैतिक है, सत्याग्रह पूर्ण नैतिक।''[4] गाँधी जी के अनुसार हिंसा कभी भी लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित नहीं होती हिंसा का एक मात्र उद्देश्य अनैतिक पूर्ण, छल, कपट, दमन, उत्पीड़न आदि द्वारा विजय प्राप्त करना होता हैं। इस विजय के पश्चात पराजित या पीड़ित व्यक्ति या वर्ग में प्रतिशोध की भावना घर कर जाती है, और वह प्रतिरोध लेने का अवसर तलाशता रहता है। साथ ही पीडित के मन में घृणा, ईर्ष्या, वैमनस्य की आग जलती रहती है। जबकि सत्याग्रह पूरी तरह लोकतान्त्रिक नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक न्याय, सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, परोपकार आदि गुण विद्यमान रहते है। सत्याग्रही जब अपने विरोधी पर विजय प्राप्त करता है तो पराजित व्यक्ति या वर्ग प्रतिशोध नहीं चाहता, वह अपने मन को सत्याग्रही के सद्व्यवहार से परिवर्तित कर लेता है और उसके मन में भी एक सत्याग्रही के गुण प्रेम, सत्य, अहिंसा, समानता, स्वतंत्रता आदि का वास हो जाता है।

गाँधी जी के सत्याग्रह पर टिप्पणी करते हुए स्टेनले जोंस ने कहा- ''गाँधी जी सैनिकों के कवच को विदीर्ण कर रहे थे और उनके हृदय तथा अन्त:करण पर आघात कर रहे थे जबकि एक महान राष्ट्र उलटकर प्रहार कर रहा था, परन्तु उसकी अन्तरात्मा पर जो चोट पड़ रही थी उससे वह कराह रहा था।''[5] कहने का तात्पर्य है कि गाँधी जी के द्वारा सत्य, प्रेम व अहिंसा के मार्ग पर जो सत्याग्रह भारत में चलाया उससे महान देश जिसका सूरज कभी ढ़लता नहीं था (इंग्लैण्ड़) के सैनिकों के रक्षा कवच टूट-टूट कर गिर रहे थे। सैनिको के मन तथा अन्तरात्मा में गहरी प्रहार हो रहा था। उनका मन व्याकुल हो रहा था कि इन निहत्थे लोगों पर हम कैसे अपने शस्त्रों से वार करके हम इनको क्यूँ शारीरिक चोट पहुँचाये? ये अंतर्द्वन्द्व उनकों आहत कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार इस सत्याग्रह का दमन करने के लिए हिंसा, छल आदि के द्वारा आघात कर रही थी लेकिन सत्याग्राही सत्य और अहिंसा के मार्ग से विचलित ही नहीं हो रहे थे। यहीं एक सफल सत्याग्रही की भूमिका होती है।

गाँधी जी ने अपनी पत्रिका यंग इण्डिया में लिखा है कि - ''सत्याग्रह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।''[6] गाँधी जी लिखते है कि मनुष्य जन्म के साथ एक नैतिक प्राणी होता है। वही हिंसा नफरत, घृणा, लोभ, क्रोध, मोह आदि दुर्गुणों से अपरिचित रहता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो भूख लगने पर रोने लगता है या आवाज करने लगता है। अकेले रहने पर डर से रोने लगता है। अंधेरा होने पर डर कर रोने लगता है। जब कोई उसके पास आ जाता है तो वह चुप हो जाता है। यह एक बच्चे द्वारा सत्य, प्रेम व अहिंसा द्वारा किया गया सत्याग्रह ही है क्योंकि इससे उसके जीवित रहने व विकास के लिए आवश्यक आवश्यकता पूरी होती है। एक सत्यार्ग्रही के गुण उसकों जन्म के साथ ही मिल जाते है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, अपने अधिकारों को जानने लगता है। जब-जब उसके अधिकारों का हनन या दमन होता है, या तो वह सत्याग्रह के रास्ते को अपनाता है या फिर अन्य हिंसात्मक या अनैतिक रास्तों को अपनाता है। एक सच्चा सत्याग्रही (गाँधी जी जैसा) हमेशा ही सत्याग्रह को ही अपनाता है। जैसा कि उनके जीवन के प्रयोग कार्यो से स्पष्ट होता है। गाँधी जी ने कहा है कि, ''परिवार से लेकर राज्य तक जहाँ कही भी मनुष्य को अन्याय और असत्य का सामना करना पड़े, वही वह सत्याग्रह का प्रयोग कर सकता है। उन्हें स्वयं अपने पारिवारिक जीवन में सत्याग्रह करने के मधुर अनुभव हुए थे।''[7] गाँधी जी का कहना है कि सत्याग्रह अन्याय और असत्य के विरोध में किया जाने वाला प्रभावकारी अस्त्र है। इस अन्याय और असत्य का सामना मनुष्य को अपने परिवार, संस्थाओं, समाज व राज्य के नियमों, आदेशों, परंपराओं, कानूनो आदि के रूप में करना पडता है। एक सच्चा

सत्याग्रही सत्य व अहिंसा का मार्ग चुनकर परिवार से लेकर राज्य तक इसका प्रयोग अहिंसात्मक रूप में करता है। एक सत्याग्रही जब इस मार्ग पर चलता है तो अपने-पराये का भेद-भूल जाता है। वह हिंसा-अहिंसा, नैतिक-अनैतिक, सत्य-असत्य और न्याय-अन्याय में अंतर कर अहिंसात्मक नैतिक, सत्य, न्याय के मार्ग पर चल पड़ता है और अपने उद्देश्य अन्याय व असत्य पर जीत को प्राप्त कर लेता है।

निष्कर्षतः सत्याग्रह सत्य व अहिंसा पर आधारित वह पद्धति है जो विरोधी को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना विरोधी का ह्दय परिवर्तन कर देता है।

सत्याग्रह के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति हिंसा, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध आदि विकारों से मुफ्त होता है। गाँधी जी ने एक सच्चे सत्याग्राही के गुणों को आत्मसात करके एक सत्याग्राही के व्रत का पालन जीवनपर्यन्त किया। गाँधी जी के समय व बाद में सत्याग्रह का प्रयोग विश्व के अनेक राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पर्यावरणविदों, स्वतंत्रता संग्रामियों, आम जनता आदि ने अहिंसात्मक तरीकों को अपनाकर सफलतापूर्वक किया है। उदाहरण- दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला इसका जीता जगता उदाहरण प्रस्तुत करते है। अमेरिका के जूनियर मार्टिन लूथर किंग (अमेरिका का गाँधी) ने भी इसी सत्याग्रह से सफलता प्राप्त की। भारत में जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, विनोवा भावे, बाबा आमटे, अन्ना हजारे आदि ने भी अहिंसात्मक सत्याग्रही का उदारहण प्रस्तुत किया। उत्तराखण्ड का चिपको आंदोलन, केरल में साइलेंट वैली को बचाने के लिये स्थनीय जनता ने जो अहिंसात्मक मार्ग अपनाया वह भी इसका जीता-जागता उदाहरण है।

अतः सत्याग्रह गाँधी जी की विश्व को एक अमूल्य देन है, जिसे सत्य, प्रेम, अहिंसा और अनुशासन प्रियता से ही प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ-सूची-

1. भारतीय सामाजिक विचारक जी के. अग्रवाल, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा महात्मा गाँधी (1869-1948 ई.). पृष्ठ 56
2. C.F. Anadrews, Mahatma Gandhi : His Own Stories, P. 247. भारतीय सामाजिक विचारक जी के. अग्रवाल एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा महात्मा गाँधी (1869-1948 ई.) पृष्ठ. 56.
3. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, डॉ. पुखराज जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, गाँधीवाद पृ. 266.
4. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, डॉ. प्रभुदत्त शर्मा कॉलेज बुक डिपो जयपुर, गाँधीवादी राजनीतिक विचार पृ. 706.
5. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, डॉ. प्रभुदत्त शर्मा कॉलेज बुक डिपो जयपुर, गाँधीवादी राजनीतिक विचार पृ. 704.
6. यंग इण्डिया 5 जनवरी 1922, भारतीय सामाजिक विचारक, जी. के. अग्रवाल एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा महात्मा गाँधी(1869-1948ई.) पृ.57.
7. M.K. Gandhi, Autobiography, Part 4, Chap. 19. भारतीय सामाजिक विचारक, जी के. अग्रवाल, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा पृ. 58

नेपाली कविता में लोकलय का प्रयोग एवं महाकवि देवकोटा का अवदान

डॉ० दिलकुमार प्रधान

सहप्राध्यापक, नेपाली विभाग, वीरपाडा कलेज, हुलाक- वीरपाडा जिल्ला अलिपुरद्वार, पश्चिम बङ्गाल

1. प्रस्तावना

लोकलय 'लोक' और 'लय' दो भिन्न अर्थयुक्त शब्दों से मिलकर बना हुआ एक समस्त पद है। संस्कृत से हिन्दी, नेपाली एवं बांग्ला आदि आधुनिक भारतीय भाषा में तत्सम रूप में आयात 'लोक' शब्द मुख्यत: 'संसार' और 'मनुष्य' वा 'जन समूह' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्थानवाचक अर्थ में 'लोक' का अर्थ व्यापक दिखायी देता है। विश्वब्रह्माण्ड से लेकर पुराणों में स्थान के रूप में स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, पृथ्वी सह उपर सात और नीचे सात लोक की चर्चा पायी जाती है। देवताओं जैसे ब्रह्म के ब्रह्मलोक, शिव के शिवलोक, विष्णु के विष्णुलोक, इन्द्र के इन्द्रलोक को भी संकेत करता है। लोकसाहित्य में 'लोक' शब्द का अर्थ विशेषत: जन एवं उस जन के समूह को सम्बोधक रूप में प्रयुक्त होता है। "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है (डॉ. सत्येन्द्र, लोकसाहित्य, पृष्ठ-03)।"

बौद्ध ग्रन्थ और दर्शन में समस्त मानव समाज और सम्प्रदाय के अर्थ में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्राट अशोक ने भी अपने शिलालेख में अपने प्रजाजन के अर्थ में प्रयोग किया है। अंग्रेजी में 'लोक' के समानार्थी 'फोक' शब्द का प्रयोग होता है। अंग्रेजी 'फोक' शब्द सामान्यत: अशिक्षित, असंस्कृत और अविकसित जाति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। बदलते समय के साथ 'लोक' शब्द का अर्थ और अवधारणा विस्तारित होकर विशिष्ट गुण, परंपराओं का वाहक सामाजिक समूह के रूप में प्रयुक्त होने लगा। विशेषकर ईस्वी 1846 में विलियम थोमस ने 'फोक' और 'लोर' को समीकृत कर के 'फोकलोर' शब्द प्रयोग में लाने के बाद मौखिक रूप से विशेष जन समूह में प्रचलित साहित्य, कला, संगीत, विश्वास, पुरावशेषों, परम्परा और ज्ञान के संवाहक रूप में प्रयुक्त होने लगा। नेपाली, हिन्दी और बांग्ला भाषा में 'फोकलोर' के समानार्थी 'लोकवार्ता' प्रयुक्त होता है। लोकवार्ता का संकलन, शोध, अध्ययन एवं विश्लेषण की प्रक्रिया के चलते लोक शब्द गाँव हो वा मफसल वा शहर कहीं भी रहने वाले जन जिनके व्यावहारिक ज्ञान के स्रोत पुस्तकें नहीं हैं, जो शहर, मफसल के परिष्कृत, रुचिसंपन्न एवं सुसंस्कृत कही जाने वाले कृत्रिम जीवधारी मनुष्य से भिन्न सरल, अकृत्रिम, विलासिताहीन एवं पारंपरिक जीवनधारा व्यतीत करने वाले जनसमूह को संबोधित करता है। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार आधुनिक सभ्यता से दूर प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाले परंपरायुक्त आचार, विचार, नियम नियन्त्रित तथाकथित अशिक्षित, असंस्कृत जन समूह ही लोक है और इनके सुख, दु:ख एवं जीवनधारा की मौखिक अभिव्यक्ति लोक साहित्य है।

'लोकलय' शब्द लोकसाहित्य के विशेषकर लोककविता, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाटक आदि में पायी जाने वाली लयात्मकता, गेयात्मकता है। लोकलय को नेपाली में 'लोक भाका' भी कहते हैं। छन्द, यति, गति, स्वर के आरोह, अवरोह, तान आदि को लय कहते हैं। "गायन, वादन और नृत्य तीनों को परस्पर सूत्रबद्ध करना भी लय है। काव्य एवं गीत में पदों का उचित संरचना के माध्यम से लय उत्पन्न होता है। उस लय का वाहक छन्द ही है। छन्द एक प्रकार से लय ही है (नरेन्द्र चापागाईं, केही सिद्धान्त केही विवेचन, पृष्ठ 86)।" लोकलय भी लोक साहित्य की तरह कञ्चन एवं श्रवण के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक युग से दूसरे युग में हस्तान्तरित होते चला आया है। नेपाली लोकवार्ता और लोकलय में खस समुदाय के नेपाली के अलावा किरात मूल को नेवार, मगर, गुरुङ, तामाङ, राई, लिम्बू, भुजेल, थकाली आदि के नेपालियों का प्रचुर योगदान रहा है। 'नेपाली' शब्द से नेपाल के नागरिक एवं नेपाली संस्कृति धारक भारत, भोटाङ, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन के नागरिक अभिहित होते हैं। खस और किरात संस्कृति समीकृत नेपाली सम्प्रदाय (भारत, नेपाल कहीं का भी हो) के लोकगीत, लोकछन्द अथवा लोकलय निम्न प्रकार के माने जाते हैं-

1. इयाउरे,
2. सेलो,
3. सवाई,
4. असारे,
5. रसिया,
6. टुङना,
7. धमारी,
8. ढुस्को,
9. ख्याली,

10. पुरसेङ्गी,
11. सोरठी,
12. संगिनी,
13. बालून,
14. देउड़ा,
15. खैंजड़ी,
16. कर्खा,
17. मालसिरी,
18. खाँड़ो,
19. कवित्त,
20. लल्लोरी,
21. चौत,
22. चुड्का
23. हाकपारे
24. मुन्धुम
25. देउसी
26. जुहारी

1. 2 नेपाली कविता में लोकलय प्रयोग परंपराः संक्षिप्त अध्ययन

साहित्येतिहासकारों की खोज के अनुसार कवि सुवानन्द दास रचित 'पृथ्वीनारायण' कविता नेपाली कविता साहित्य की प्रथम रचना है। नेवार जाति के सुवानन्द दास नेपाल के राजा पृथ्वीनारायण शाह के समकालीन थे। पृथ्वीनारायण की वीरता के स्तुति गान में ईस्वी 1774 में रचित उक्त कविता कवित्त छन्द में रची गयी है। अर्थात् नेपाली कविता की प्राथमिक रचना से ही लोकलय का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है। सुवानन्द के बाद 'चामवलायर' उपनामधारी कवि ने 'गन्यापको भोलाउलो' एवं चन्दन भाट ने 'गन्यापको धुमारी' रचना की है। ई. 1798 के आसपास गोर्‌या सिरस और मानवीर खत्री ने 'हाइगोरी' नामक इयाउरे कविता लिखी है। नेपाली कविता का प्राथमिक चरण स्तवन काल रही है। स्तवन काल के द्वितीय चरण भक्तिकाल में विशेषकर लोकलय प्रधान कविता रचित हुई है। ई. 1818 में हीरा गाइनेनी ने दो गीत एवं 1819 में जन्मे 'राजल दिल' ने सिक्किम के हाङपाल सिंह मुक्तियार की सवाई रचना की है। कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि वसन्त शर्मा ने सवाई छन्द में 'समुद्रलहरी' (ई.1844) लिखी हैं। सिपाही लाल बहादुर आउँमासी ने 1855 में नेपाल और भोट की लड़ाई के इतिहास से सम्बन्धित 'भोटको लड़ाइँको सवाई' लिखे हैं। भक्तिकाल में लोकलय के कवि के रूप में ज्ञानदिल दास का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उन्होंने जोसमनि सन्त भक्ति के प्रसारण में नेपाल, दार्जिलिङ, सिक्किम का भ्रमण किया। निर्गुण भक्ति काव्य के रूप में उनका 'उदयलहरी', "टुङना भजन' सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है।

ईस्वी 1883 से नेपाली कविता के इतिहास में माध्यमिक काल में प्रवेश हुई। इस काल में सवाई, बाह्रमासा (घँसिया, इयाउरे), लहरी काव्य की भरमार रचना हुई है। ब्रिटिश भारत की सेना में भर्ती होकर अपने गाउँ, परिवार, प्रेमिका से बिछड़े हुए फौजी कवियों ने लोकलय में शृंगारिक भाव धारा की कविता के अलावा युद्ध से सम्बन्धित कविताओं की रचना की है। इस काल के कवि एवं उनकी रचना इस प्रकार है- नरबहादुर राणा (जंग बहादुरको सवाई), बबगुनी गुरुङ (ब्रह्मत्त्वको सवाई), तुलाचन आले (मणिपुरको लड़ाइँको सवाई, 1891), धनवीर भण्डारी (अब्बर पहाड़को सवाई, 1895-98), डाकमान राई (दार्जिलिङको पैह्राको सवाई, 1899), मनिराज शाही (चरीको सवाई, 1900), कृष्णध्वजसिंह (अमृत लहरी सवाई, 1901), सुरवीर गुरुङ (भक्तिको सवाई), रामप्रसाद सत्याल (सूर्य पुराणको सवाई, गोर्खा थरगोत्रको सवाई, 1901), प्रतिमान (राजा भरथरीको सवाई, 1902), अमृत सिंजापति (सासूबुहारीको सवाई), आत्माराम थापा (भूइँचालाको सवाई, 1905), कृष्ण बहादुर उदास (अछामको सवाई), शिखरनाथ सुवेदी (गंगा महात्म्यको सवाई), हाजिरमान राई (मिठा मिठा गीत), भक्तिकुमारी राणा (भक्तिलहरी, 1901), उमाकान्त त्रिपाठी (बैकुण्ठ लहरी), कृष्णप्रसाद रेग्मी (कामिनी विरह लहरी, विरह लहरी, संक्षिप्त विरह लहरी (1901-1908), धर्मसिंह राई चामलिङ (माया लहरी, 1911), रतन नारायण प्रधान (प्रेमलहरी), शुरवीर राई (कौतुक लहरी 1912)।

नेपाली साहित्य के माध्यमिक काल में फौज में भर्ती हुए गोरखा युवाओं की मनोदशा को ध्यान में रखकर व्यवसायप्रधान साहित्य रचना ने विशेष वृद्धि पायी थी। प्रेम, विछोड़, विरह, प्रणयप्रीति और यौन विषयप्रधान आनन्द लहरी, प्रेम लहरी, मदनलहरी आदि काव्य रचना की गई है, जिसमें लोकलय का प्रचुर प्रयोग किया गया है।

माध्यमिक काल के अंत एवं आधुनिक काल के प्रारंभ में समाज सुधार तथा जागरणप्रधान कविता रचना आरंभ हुई। इस युग में आते-आते नेपाली भाषा विकास की एक नई राह पर चल पड़ी थी। परिष्कृत भाषा, परिष्कृत विचार एवं भावों को प्राथमिकता देकर कविता रचना करने में लेखनाथ पौड्याल, धरणीधर शर्मा, महानन्दा सापकोटा, पारसमणि प्रधान आदि आगे दिखे। लोकलय को प्रमुखता दे कर महानन्दा सापकोटा ने 'मनलहरी' रचना की। गजवीर रानाले 'नागाहिलको सवाई', नवलसिंह घर्ती ने 'जर्मनको लड़ाइँको सवाई', तुलसी बहादुर श्रेष्ठ ने 'कपासको इयाउरे' लेखी लोकलयको आगे बढाने का काम किया।

1.3 नेपाली लोकलय में देवकोटा की अवदान

नेपाली कविता के प्राथमिक काल से लोकलय में कविता रचना करने की जो परंपरा चली आ रही थी, परवर्ती काल में शास्त्रीय छन्द के कवियों ने उपेक्षा की। लोक की इस अमूल्य, अजर एवं मूल्यवान् धारा के प्रति प्रेम रखने वाले महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा इस उपेक्षा भाव से मर्मामत हुए और इसको नई

गति और सम्मान प्रदान करने हेतु अग्रसर हुए। लोकलय में काव्य रचना करने वाले कविको 'इयाउरे कवि' अर्थात् हेय भाव से सम्बोधन करने की उस काल में "इयाउरे (छन्द) नेपाली खेत बञ्जर देखकर" उनके मन में दु:ख उत्पन्न हुआ और उन्होंने लगभग 11 कृतियाँ लोकलय में लिख डाली।

महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा को आशुकवि की उपाधि प्राप्त है। वह महज एक सिगरेट के लिए दोस्तों को तात्क्षणिक कविता लिखकर देते थे। आठ कक्षा के विद्यार्थी अवस्था से कविता रचना में उतरे देवकोटा ने अपने जीवन काल में पाँच महाकाव्य, बारह खण्डकाव्य, दस कविता संकलन, दो बाल कविता संकलन, एक उपन्यास, एक कहानी संकलन, दो निबंध संकलन, एक गीतिकाव्य, एक अनूदित नाटक और एक अनूदित निबंध संकलन दिया है। उन्होंने दस दिनों में 'सुलोचना' (महाकाव्य), तीन महीने में 'शाकुन्तल' (महाकाव्य), एक रात में 'कुञ्जिनी' (खण्डकाव्य), दिन में दो घण्टा कर के चार दिन में मोठ आठ घण्टा लगाकर 'मुनामदन' (खण्डकाव्य), एक घन्टा बीस मिनट में तिरानब्बे (93) श्लोक के काव्य 'आँसू' लिखे हैं।

वड्र्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, किट्स, वाइरन आदि कवियों के काव्य से विकसित स्वच्छन्दतावादी (रोमान्टिसिज्म) काव्य प्रवृत्ति देवकोटा की भी रही। इन के मुक्त तथा स्वच्छन्द अभिव्यक्ति प्रणाली, व्यापक तथा उदार मानवतावाद, गहन और आध्यात्मिक स्तर का प्रकृतिप्रेम, हिन्दू संस्कृति प्रेम, नेपाल और भारत के प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक गौरव गान प्रधान काव्यधारा को देख पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें हिन्दी छायावादी काव्य के शिखर 'पन्त-प्रसाद-निराला' कहा है (चुड़ामणि बन्धु, देवकोटा, पृष्ठ 36)।

कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने कहा है कि लोकलय में लिखने वाले कवियों को उपहासपूर्वक दी जाने वाली 'इयाउरे कवि' उपाधि में 'इयाउरे' का आन्तरिक अर्थ दीनहीन, गुस्सैल, बकवास किस्म का लगाया जाता था। ईस्वी 1939 के आसपास सूर्यविक्रम ज्ञवाली के 'नेपाली साहित्याकाशका दुई नयाँ तारा' समालोचना ने नेपाली साहित्यकारों को लोकलय के प्रति उम्मीद, मोह और मान में किंचित वृद्धि किया। जिस में देवकोटा के लोकलयमूलक फुटकर रचनाओं आदर के साथ देखकर देवकोटा को नेपाली साहित्य का लाल कहा गया है (चुड़ामणि बन्धु, देवकोटा, पृष्ठ-49)। यदि प्रतिभा से छहरा (झरना) बहने लगे, हृदय क्यों नहीं प्रदीप्त होगा मन्त्र लेकर कवि देवकोटा ने भिन्न भिन्न नेपाली लोकलय को प्रयोग करते हुए निम्न प्रकार कृतियां रचना की है-

1. मुनामदन (गीति खण्डकाव्य),
2. लूनी (गीति खण्डकाव्य),
3. म्हेन्दु (गीति खण्डकाव्य),
4. सृजामाता (गीति खण्डकाव्य),
5. वसन्ती -1 (गीति खण्डकाव्य),
6. वसन्ती -2 (गीति खण्डकाव्य),
7. पृथ्वीराज चौहान (महाकाव्य),
8. कृषिबाला (गीति नाटक),
9. मैना (गीति काव्य),
10. पहाड़ी पुकार (गीति काव्य),
11. कटक (कविता संग्रह)

कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने सर्वाधिक इयाउरे और सेलो छन्द को अपनी काव्य रचना में स्थान दिया है। इसके अलावा कर्खा, खाँड़ो, रसिया, सङ्गिनी, सवाई और द्योसे में भी उन्होंने काव्य रचना की है।

1.2.1 इयाउरे छन्द

इयाउरे जातीय छन्द वा लोक लय है। ह्रस्व, दीर्घ को ही अक्षर हो उस से कोई फर्क नहीं होता, गाते वक्त यति, गति और विश्राम का ध्यान रखकर सुर, लय, तान में गाया जाता है। स्वरूप के आधार में यह तीन प्रकार के हैं।

क) सानो अर्थात् छोटे इयाउरे ख्र प्राय: दस से चौदह मात्रा की एक पाउ (पंक्ति/पद) वाले (मात्रा 2+2+3+3 मोठ 10) द्विपदी छन्द। द्रष्टव्य:

"यिनै राम्रा चाँदीका चुचुरा।
सुन् सुन् हुने दिनका दुइबार।" (कृषिबाला)

ख) मझौले (मझले) इयाउरे ख्र सोलह मात्रा का एक पद, जिस में पाँच और दस अक्षर में विश्राम (मात्रा 3+2, 3+2, 3+3 मोठ 16) वाली द्विपदी छन्द।

मझले इयाउरे में लिखे गये 'मुनामदन' नेपाली साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय खण्डकाव्य है। इसके बीस से अधिक संस्करण प्रकाशित हुए। अंग्रेजी में दो बार अनुवाद हुआ है। गरीबी, ऋण से प्रताड़ित युवक अपने वृद्धा माता को दूध पिलाने के लिए, अपनी नव दुल्हन को आभूषण से सजाना, ऋण चुकता करने की मनसाय से दुल्हन की विदेश न जाने की पुकार ठुकरा कर भोट (तिब्बत) जाने और लौटकर आने पर माता और पत्नी को मृतावस्था में पाने पर खुद आत्मदाह करने के लिए तैयार युवक की कहानी है। संवादात्मक एवं नाटकीय शैली में लिखी हुई रचना है। प्रेमप्रीति, प्रकृति, मानवतावाद, लोकविश्वास, राष्ट्रप्रेम आदि भाव एवं विषय से परिपूर्ण इस काव्य में प्रतीक-बिम्ब के अलवा उपमा, रूपक, सादृश्य आदि अलंकार के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं।

मझले इयाउरे लय एवं छन्द की उदाहरण:-

"हातका मैला सुनका थैला, के गर्नु धनले।
साग र सिस्नु खाएको बेस आनन्दी मनले।।"(मुनामदन)

ग) ठुलो (बड़ा) इयाउरे- उन्निस से लेकर बाइस मात्रा के एक पाउ वाले द्विपदी छन्द। जिस में चार, नौ और तेह्र मात्रा में विश्राम होती है। उदाहरण:-

सूर्य बनी सुनका गोला अस्ताचलमा बसेर बोलाउँथे।
त्रिशुलीको दक्षिणी लहर सागरतिर जाउ भनी बोलाउँथे। (कुञ्जिनी)

1.2.2 सेलो छन्द

सेलो इयाउरे झैं लोकप्रिय छन्द वा लय है। बारह महीने विविध अवसरों में डम्फु बजाते बजाते गाते और नाचे जाते हैं। इसे डम्फु गीत, तामाङ सेलो, भोटे सेलो, भोटे लय, कर्म संगीत, नृत्य भी कहा गया है (काजीमान कन्दङवा, नेपाली जन साहित्य, पृष्ठ 112)। यह विशेषकर बौद्ध सम्प्रदाय के नेपाली तामाङ, सेर्पा एवं यल्मो जाति का लोकप्रिय लोकलय है। तामाङ के अलावा सभी नेपाली यह गीत गाना, नाचना पसंद करते हैं। बारह महीने विविध अवसर एवं पर्व में इस गीत, लय वा नाच कर सकते तो हैं मगर विशेषकर चण्डी पूर्णिमा के दिन बाइसधारा (पवित्र जलाशय) में नहाकर पवित्रता, सुख, शान्ति की कामना एवं तृप्ति बोध कर यह गीत गाया जाता (आर. डी, एल. एल., नेपालका विभिन्न जाति लोकगीत एक परिचय, पृष्ठ-39) है। तामाङ युवक-युवती दोहोरी (क्नमज), जुहारी (प्रश्नोत्तरी) शैली में गाना, नाचना और एक दूसरे की मनसाय जाँच करते हैँ। एक दूसरे को पसंद आया तो प्रेम एवं विवाह के बन्धन में बंध जाते हैं। एक प्रकार से राभा जाति का वायखु, असम के बिहु गीत संग इसकी निकटता पायी जाती है।

सेलो लय में कहीं मध्यानुप्रास और कहीं अन्त्यानुप्रास की योजना की गई होती है। कहीं दो पंक्ति के अन्त में, कही तीन-तीन पंक्ति और कहीं चार-चार पंक्ति के अन्त में तो कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न तरीके से अन्त्यानुप्रास मिलाकर लय को प्रवाहमय एवं श्रुतिमधुर बनाया जाता है। डा. कुमार बहादुर जोशी के अनुसार 6 (2+2+2), 6 (2+2+2) और 5 (2+2) के तीन वर्ण गुच्छ की संरचना गरिन्छ। कहीं 17 अक्षर की लय, कहीं 8 और 6 कर के चौध, कहीं 8 और 7 कर के 15 एवं कहीं 6, 6 और 6 कर के मोठ 18 अक्षर संयोजन से लय उत्पन्न किया जाता है।

सेलो का प्रयोग लूनी एवं म्हेन्दु खण्डकाव्य में की गई है। उदाहरण:-

"नीर थुम्का हाँसेर
हेर है हेरेको
पहिलो किरणले
मिठो म्वाइ गरेको
एक झुम्का बादल छ
उत्तर झेरको इन्द्रेणी रंग ज्यूँदै
भूवामा परेको। (म्हेन्दु)
ह्लासा सारा सुनघर छ
ह्यूँका पहाड़ भर भर
पन्ना हाँगा हाँगामा
हीरा हीरा झर्छन् रे
छर छर छङ छङ छाँगामा।" (लूनी)

1.2.3 कर्खा: कर्खा वीरों, ऐतिहासिक पुरुषों के गुणगान प्रसंग में गाया जाने वाला लोकलय है। लोककाव्य, लोकगाथा से विकसित कर्खा सवाई की तरह सारङ्गी वाद्य के साथ गाँव फेरी लगाकर गाया जाता है (आर. डी, एल. एल., नेपालका विभिन्न जाति लोकगीत एक परिचय, पृष्ठ -36)। कर्खा में सवाई की तरह चरण नहीं होते हैं। कथ्य वा वर्णन क्रम में अनुप्रास वा तुक, लय मिलाया जाता है। कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने 'कुञ्जिनी' खण्डकाव्य में इसका प्रयोग किया है। उदाहरण-

"नमाने चिन्ता नमाने सुर्ता मर्द लड्छ देशको लड़ाइँ।
जीतेमा हाम्रो वीरको नाउ मरेम हाम्रो देउताको भाउ।
मर्ने जति वरलाई हुन्छ अमृत प्याला स्वर्गको चढाइ।" (कुञ्जिनी)

1.2.4 खाँड़ो: खाँड़ो शब्द 'खड्ग' से उत्पन्न हुई है। यह संस्कार वा कर्म गीत है। दशहरा में दुर्गा भवानी की पूजा के वक्त प्रथमत: खड्ग की पूजा की जाती है, इस उपरान्त खड्ग हात में लेकर नचाते हुए कवित्त शैली वा लय में गीत गाया जाता है। इसे खाँड़ो जगाउनु अर्थात् खड्ग जगाना कहा जाता है (चुड़ामणि बन्धु, नेपाली लोकसाहित्य, पृष्ठ 186)। नेपाली ब्राह्मण जाति के विवाह में गाथा गाना, छेत्री जाति के विवाह में खाँड़ो जगाया जाता है। लोककथा के अनुसार अगर कोई छेत्री लड़का कहीं से किसी भी सम्प्रदाय की लड़की भगाकर ले आया और ससुराल से बलपूर्वक लड़की फिर्ता लेने आने पर तो लड़ना पड़ता था, इसलिए खाँड़ो तयार कर विवाह की रस्म की जाती थी। कभी कभी लड़ाई भी हो जाती थी। लड़ाई में ससुराल से जीत हासिल करने पर हर्षोल्लास मनाया जाता था। अब इसी कहानी के रुढ़ अर्थ के रूप में खाँड़ो जगाने की प्रथा निरन्तर चली आ रही है। खड्ग वा खाँड़ो जगाने की प्रथा चितौड़ से नेपाली में आयात हुई मानी जाती है। नेपाल के शाह वंश के समय से यह विशेष रूप से प्रचलित हुई है। इस लोकलय वा छन्द में निश्चित लयविधान नहीं है। नगारा बजाते हुए गाये जाने वाले इस लोकलय को देवकोटा ने 'कटक' कविता संग्रह में प्रयोग किया है। उदाहरण-

"अंग्रेजका अफिसर
थ र्थ र्गोरा काँपे
कायर खुकुरी झिक्ता
घरको बाटो नापे
हाम्रा बहादुर कप्तान
नृसिंह भै थापे
भन गोर्खाली।" (कटक)

1.2.5 रसिया: असार और सावन महीने में खेत में धान बोने का समय, जात्रा आदि में यह गीत गाया जाता है। इसे असारे गीत, घाँसे गीत भी कहा जाता है। स्त्रीपुरुष दोहोरी वा जुहारी (डुएट वा

प्रश्नोत्तर) शैली में रोमांस पूर्ण बनाकर गाते हैं। 'कुञ्जिनी' खण्डकाव्य में इसका प्रयोग किया गया है-

"पीर्तिका रङ्ग काँड़ाको सङ्ग
मलाई बेह्रे गुलाफले सारा
बिहानको चितामा जलाउन। (कुञ्जिनी)
"जहिलेदेखि पहिली फूलले चोली छिर्की मुस्कीथी।
मनकी चरी, आँखामा झरी, नानीमा जिस्काथी।
दुई मुटु गाँठो, फुट्टी साटो पाटो, इयाउरे गानी
निस्कीथी।" (कृषिबाला)

1.2.6 संगिनी: संगिनी का हिन्दी शाब्दिक अर्थ है सहेली। विशेषकर नेपाली बाहुन (ब्राह्मण) छेत्री समाज की स्त्रियों का पर्व गान है। यह ऋतुकालीन गीत भी कहा जाता है। भाद्र शुक्ल तृतीय और पञ्चमी के दिन पालन की जाने वाली हरितालिका वा तीज पर्व के गीत हैं। आषाढ़ और सावन में खेत में प्रचुर परिश्रम करने के बाद इस पर्व के अवसर पर मायके जाने का, विश्राम लेने का और मीठा, पौष्टिक खाने का अवसर स्त्रियों को मिल जाता है। जो मायके नहीं जा पाती वह ग्रामीण परिवेश में विभिन्न कामकाज करते वक्त अपने जीवन की विभिन्न पहलू, सुख, दु:ख अपने सहेलियों से इस गीत के माध्यम से बाँटा करते हैं। इस पर्व के दिन निराहार रहकर शिव आराधना कर, अपने पति और सन्तान की आरोग्यता और लम्बे आयु की कामना करते हैं। इस पर्व में गाया जाने वाला यह गीत ग्यारह, बारह अक्षर की एउ पाउ और पाँच-छ मात्रा में विश्राम होता है। प्रत्येक पाउ को दोहराने के बाद पुन: 6 अक्षर के आधा पाउ जोड़ा जाता है। अन्त्यानुप्रास से लयपूर्ण की जाती है। इस गीत में हास्य, शृंगार, करुण रस मिश्रित रूप में पाये जाते हैं। देवकोटा ने 'कृषिबाला' गीतिनाटक में प्रयोग किया है। द्रष्टव्य:-

"सब कोठा हेर्नोस् सब चोठा हेर्नोस्
कुना र काप्चा ढुकुटी भण्डार
जे हेर्नोस् हेर्नु छ,
गर्न भो शंका सज्जनको घर है
मानिस पो हेर्नु छ
गर्न भो शंका सज्जनको घर यो
मानिस पो हेर्नु छ।" (कृषिबाला)

1.3 निष्कर्ष

कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने अपने काव्यों में सवाई, द्योउसे जैसे लोकलय का भी प्रयोग किया है। उन्होंने नेपाली लोकलय के विकास में जितना योगदान दिया है, इससे उनकी कद और ख्याति और बढ़ गई। परवर्ती काल में उन के पथानुसरण कर धर्मराज थापा, नीरविक्रम प्यासी, किरण खरेल, भीम विराग, कृष्णप्रसाद पराजुली, लक्ष्मण लोहनी, पुष्पनाथ शर्मा, चन्द्रबहादुर सुवेदी, लक्ष्मीकान्त शर्मा 'कमलेश', राजव, शैलेन्दुप्रकाश यात्री, जस योञ्जन 'प्यासी', भैरवनाथ रिमाल, अम्बर गुरुङ, राममान 'तृषित', गोपाल योञ्जन, अगमसिंह गिरी, हरिभक्त कटुवाल प्रभृत्ति ने लोकलय आधारित कविता एवं गीत रचना कर नेपाली साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना-अपना योगदान दिया है। लोकलय प्रधान गीत, कविता रचना के अलावा लोकवार्ता संबंधी शोध, अध्ययन और विश्लेषण की दिशा में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। अतएव देवकोटा का अवदान अपरिमेय मान सकते हैं।

(सारांश)

संस्कृत से हिन्दी, नेपाली एवं बांग्ला आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में तत्सम रूप में आयात 'लोक' शब्द मुख्यत: 'संसार' और 'मनुष्य' वा 'जन समूह' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। लोकलय' शब्द लोकसाहित्य के विशेषकर लोककविता, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाटक आदि में पायी जाने वाली लयात्मकता, गेयात्मकता है। लोकलय को नेपाली में 'लोक भाका' भी कहते हैं। छन्द, यति, गति, स्वर के आरोह, अवरोह, तान आदि को लय कहते हैं। "गायन, वादन और नृत्य तीनों को परस्पर सूत्रबद्ध करना भी लय है। काव्य एवं गीत में पदों की उचित संरचना के माध्यम से लय उत्पन्न होता है। उस लय का वाहक छन्द है। छन्द एक प्रकार से लय ही है। नेपाली साहित्य में कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने विशेष अवदान दिया है। विशेषकर उन्होंने इयाउरे, सेलो, खाँडो, संगिनी जैसे लोकप्रिय लोकलय का प्रयोग कर इसके उत्थान में एक अपरिमेय कार्य किया है। इस लघु शोध में इसी संदर्भ में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

उपयोगी पुस्तकें (संदर्भ ग्रन्थ)

1. कन्दङ्वा, काजीमान, नेपाली जन साहित्य, नेपाल एकेडेमी, ईस्वी 1973, प्रथम संस्करण।
2. आर. डी. एल. एल., नेपालका विभिन्न जाति र लोकगीत एक परिचय, जगदम्बा प्रकाशन, नेपाल, ईस्वी 1966, प्रथम संस्करण।
3. बन्धु, चुड़ामणि, देवकोटा, साझा प्रकाशन, नेपाल, ईस्वी 1979, प्रथम संस्करण।
4. बन्धु, चुड़ामणि, नेपाली लोकसाहित्य, एकता बुक्स, नेपाल, ईस्वी 2009, प्रथम संस्करण।
5. चापागाईं, नरेन्द्र, केही सिद्धान्त केही विश्लेषण, साझा प्रकाशन, नेपाल, ईस्वी 1994, प्रथम संस्करण।
6. जोशी, डा. कुमार बहादुर, देवकोटाका कविताकृतिहरूको कालक्रमिक विवेचना, सिद्धार्थ वनस्थली प्राज्ञिक परिषद्, नेपाल, ईस्वी 1991, प्रथम संस्करण।
7. श्रेष्ठ र शर्मा, दयाराम, मोहनराज, नेपाली साहित्यको संक्षिप्त इतिहास, साझा प्रकाशन, नेपाल, ईस्वी 1938, दोस्रो संस्करण।

प्रकाशित पुस्तक:

१. आञ्चलिकता अनि केही नेपाली उपन्यास (ईस्वी २००१)
२. लोकविश्वास (ईस्वी २०२०)
३. नेपाली र बङ्गला आञ्चलिक उपन्यास (ईस्वी २०२१)

'मैला आंचल'- वैध-अवैध संबंधों का दस्तावेज

डॉ० शुभ्रा ज्योति

एसोसिएट प्रोफेसर, आर0एस0 एस0पी0जी0 कॉलेज, पिलखुवा, हापुड

सारांश

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु एक युग प्रवर्तक के रूप में उभर कर सामने आए। आंचलिक उपन्यासकार-कथाकार के रूप में उन्हें प्रसिद्धि मिली। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आंचल' का प्रकाशन 1954 में हुआ। सच कहा जाए तो हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिक उपन्यास की अवधारणा 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद ही फली फूली क्योंकि इससे पहले आंचलिक विशेषण उपन्यास के संदर्भ में अज्ञात ही था। इस उपन्यास के प्रकाशन से आंचलिक उपन्यास का विमर्श केंद्र में आया।

मुख्य बिंदु: फणीश्वर नाथ रेणु, मैला आंचल, ग्रामीण, स्त्री, प्रशांत, कमली, लक्ष्मी, महंत, प्रेम, शोषण, मठ

फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्धि हिन्दी के साथ - साथ सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक कालजयी रचनाकार के रूप में है। 1954 में प्रकाशित 'मैला आंचल' ने लोकप्रियता के कई कीर्तिमान स्थापित किए। यूँ तो रेणु जी ने छः उपन्यासों की रचना की मैला आंचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड़। लेकिन यदि रेणु जी की कालजयी कृति की बात की जाए तो 'मैला आंचल' का ही नाम सबसे पहले लिया जाएगा।

नेपाल की सीमा से सटे उत्तर-पूर्वी बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण अंचल की पृष्ठभूमि पर रचा गया यह उपन्यास वास्तव में उत्तर भारत के सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश को चित्रित करता है। मेरीगंज नाम का यह गाँव बिहार के पूर्णिया जिले में स्थित है। 'मैला आंचल' की कथा किसी एक गाँव की नही है अपितु उत्तर भारत के प्रत्येक गाँव की प्रतीत होती है। गाँवों में किस प्रकार जाति व लिंग आधारित भेदभाव व शोषण किया जाता है, रेणुजी इसका चित्रण बारीकी से करने में समर्थ रहे हैं। गाँवों में व्याप्त अंधविश्वास व अज्ञानता का सबसे बड़ा शिकार सदा से स्त्रियां ही होती आई हैं, यही बात 'मैला आंचल' में देखी जा सकती है। यहाँ का समाज टोलों में बंटा है। इन टोलों में आपसी विद्वेष की भावना का प्रभाव वहाँ की स्त्रियों पर ही पड़ता है। रेणु जी उन गिने चुने साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने अपने स्वयं के जीवन के अनुभवों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। मनुष्य की पीड़ा को उन्होंने अत्यन्त निकट से देखा और भोगा है।

अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में स्वयं रेणु जी लिखते है ''इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी। मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया। कथा की सारी अच्छाइयों ओर बुराईयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ।"[1] वास्तव में रेणु जी ने इस उपन्यास में स्त्री और पुरूष के बीच हर नैतिक - अनैतिक, वैध -अवैध सम्बन्धों का बहुत गहराई से चित्रण किया है। इन सम्बन्धों के हर 'फूल' और 'शूल', 'धूल' और 'गुलाल', 'कीचड़' और 'चन्दन' की जॉच-पड़ताल बहुत ही बारीकी से की है।

'मैला आंचल' में कई जोड़ों का वर्णन है किन्तु इनमें सर्वाधिक चर्चित युगल हैं - डॉ0 प्रशान्त और कमली। प्रशांत एक 'अज्ञात कुलशील' नायक है जिसका पालन पोषण एक दुखिया स्त्री स्नेहमयी द्वारा किया गया है। कमली तहसीलदार विश्वानाथ प्रसाद की इकलौती संतान है जिसका जन्म माँ कमला (कमला नदी) से मन्नत मांगने के बाद हुआ है। जब वह विवाह योग्य हुई तो योग्य वर खोजा गया किन्तु ''तीन जगह बात चली, मगर पहली जगह से तो पान देने की बात भी पक्की हो गई थी। ठीक तिलक-पान के दिन लडके की माँ मर गई। दूसरी जगह बातचीत ठीक हुई तो उसके घर में आग लग गई। तीसरे लड़के को 'मैया' हो गया, इंतकाल हो गया। अब कोई लड़का वाला तैयार ही नही होता है। एक हजार, दो हजार, पाँच हजार रूपया भी कबूलते है मगर..... ..... आखिर में एक 'पछवरिया कैथ' को घर जमैया रखने के लिए लाए, बस उसी दिन से कमली को मिरगी आने लगी। लोग तो कहते हैं कि कमला मैया नहीं चाहती है कि कमली की सादी हो। कमला मैया भी कुमारी ही थी न।"[2] डॉ0 प्रशांत मेरीगंज के मलेरिया सेन्टर में आता है। तभी कमली को एक बार फिर बेहाशी का दौरा पड़ जाता है। उसे डॉ0 प्रशांत के पास लाकर कमली के माता - पिता निश्चिन्त हो जाते हैं। कमली डॉक्टर के प्रति आकर्षित होती है। वह प्रयास करती है कि डॉ0 उसके मन की बात जान ले किन्तु प्रशांत अनजान ही बना रहता है। कमली अपनी माँ से कहती ''डॉक्टर की मुस्कुराहट बड़ी जानलेवा है। वह आवेगा तो मुस्कराते हुए आवेगा। डर लगता है.....गले में आला लटकाए फिरते है बाबू साहब। छाती और पीठ में लगाकर लोगों की बीमारी का पता लगाते हैं। झूठ! इतने दिन हो गए, मेरे दिल की बात मेरी बीमारी को कहाँ जान सके। या जानबूझकर अनजान बनते हो डाक्टर! तुम्हारी मुस्कराहट से तो यही मालूम होता है..... माँ, तुम्हारा डॉक्टर क्या है, जानती हो? माटी का महादेव।"[3]

धीरे - धीरे डॉ0 प्रशान्त भी गाँव के रीति रिवाज, रहन सहन से प्रभावित होता जाता है। वह कमली को राजकमल कहता है

और कमली उसे प्रशान्त महासागर। फिर शुरू होता है हंसी ठिठोली, थोड़ी ईर्ष्या, रूठना और छेड़-छाड का दौर। कमली नहीं चाहती कि प्रशांत किसी और स्त्री का भी उतना ही ध्यान रखे जितना वह उसका रखता है। जब सिपैहिया टोले की कुसुमी उसे बताती है कि प्रशांत उससे भी मीठी दवा के विषय में बात करता है तो वह स्त्रीसुलभ डाह से भर जाती है और कुसुमी की खूब निंदा करती है। कमली और प्रशांत में निकटता बढ़ती जाती है ''संथाली नाच के मांदर और डिग्गा की ताल पर दोनों की धुकधुकी चल रही हैं। उसी के बाद से कमली दिनोंदिन खूबसूरत होती जा रही है।"[4]

कमली की मॉ भी सब कुछ देख व महसूस कर रही है। वह कमली को इस मेलजोल को बढ़ाने से रोकना भी चाहती है किन्तु कमली के दूधिया वर्ण, सुडौल बांहें, लंबे - लंबे बाल और आंखों को देखकर कांप उठती है ''यह क्या गे अभागी! अभागिन! आंचल को मैला मत करना बेटी, दुहाई।"[5] किन्तु कमली का आंचल तो मैला हो चुका था। वह कुमार नीलोत्पल को जन्म देती है। डॉ0 प्रशांत कमली को उसके बच्चे सहित अपना लेता है। इस प्रकार एक अवैध सम्बंध की परिणति रेणु जी ने वैध रूप में होती हुई चित्रित की है। इस प्रेम ने प्रशांत को भी बदल डाला है। वह गाँव की माटी और मनुष्य से प्रेम करना सीख गया है। वह अपनी मित्र ममता से कहता है ''ममता मैं फिर काम शुरू करूँगा..... ..... यहीं इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। यह प्रेम कथा सुखद अंत को प्राप्त होती है।"[6]

'मैला आंचल' में अनौतिक सम्बन्धों की भरमार है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सम्बंधो के माध्यम से रेणु जी ग्रामीण जीवन में स्त्री की दीन दशा का ही वर्णन करना चाहते है। महंत सेवादास का लक्ष्मी से भी कुछ ऐसा ही सम्बंध है। वसुमतिया मठ का महंत कहता है कि लक्ष्मी का पिता उसका गुरू भाई है अतः बाप के मरने के बाद लक्ष्मी पर उसका ही अधिकार है किन्तु दूसरी ओर सेवादास लक्ष्मी पर अपना अधिकार जताता है। इसके लिए कानून की शरण ली जाती है और सेवादास की जीत होती है। यद्यपि फैसले के अनुसार सेवादास को अबोध बालिका लक्ष्मी को पढ़ा -लिखाकर उसका विवाह करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। वकील के सामने तो वह लक्ष्मी को अपनी बेटी के रूप में स्वीकार करता है किन्तु उसकी नीयत में खोट है। मठ में पहुंचते ही वह अपने असली रूप में आ जाता है और लक्ष्मी को अपनी दासिन बना लेता है। मठ की धन-सम्पत्ति के समान लक्ष्मी भी यहां की बहुमूल्य वस्तु ही है।

जो भी मठ में आता है वही लक्ष्मी का शारीरिक शोषण करता है, फिर चाहे वह सेवादास हो, रामदास, नरसिंहदास या नागा बाबा। 'लाल पताका के सम्पादक श्री चिनगारी जी भी लक्ष्मी की ओर आकर्षित हैं। यादव टोली का किसनु लक्ष्मी की पीड़ा और उसके शोषण के विषय में सब जानता है। वह कहता है ''बाबा जी होकर जो रखेलिन रखता है, वह बाबाजी नहीं। ऊपर बाबाजी भीतर दगाबाजी!..... पाँच बरस तक मठ में नौकरी किया है, हमसे बढ़कर और कौन जानेगा मठ की बात? महंथ जब लक्ष्मी दासिन को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान। कहां वह पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध और कहाँ वह बच्ची। रोज रात में लक्ष्मी रोती थी- ऐसा रोना जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए.....रोज लक्ष्मी दूध लेने बथान पर आती थी, उसकी आँखे कदम के फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर-टुकुर मुँह देखने लगती थी ठीक गाय की बाछी की तरह जिसकी माँ मर गई हो.....।"[7]

नरसिंहदास की भी लक्ष्मी पर बुरी दृष्टि है। वह मुजफ्फरपुर से आचारज जी का संदेशवाहक बनकर आया था किन्तु अब वह महंत बनना चाहता है। मठ की धन-सम्पत्ति को देखकर उसे लालच आ जाता है। ''नौ सौ बीघे की काश्तकारी, कलमी आम का बाग। दस बीघे में सिर्फ केला ही लगा हुआ है।..... दो कौडी गाय, चार गुजराती भैंस और सबसे कीमती संपत्ति-अमूल्य धन-लक्ष्मी दासिन।"[8] जब लक्ष्मी स्नान कर रही होती है तब वह बाँस की पट्टी में छेद कर उसे देखता रहता है। इसीलिए लक्ष्मी उसे राक्षस मानती है। नागा बाबा भी लक्ष्मी की कोठरी के चक्कर काटता रहता है।

इधर बालदेव भी लक्ष्मी के शरीर से निकलने वाली खुशबू के पीछे पागल है। लक्ष्मी के मन में भी बालदेव के लिए स्थान बनने लगा है। वह उससे एकांत में बात करना चाहती है। इसी बीच रामदसवा मठ का महंत रामपियरिया की दासी बनाकर उसी मठ में ले आता है। अब लक्ष्मी स्वयं को मठ से अलग कर लेना चाहती है। वह महंत द्वारा उसके नाम किए गए 30 बीघे के कलमी आम के बाग में बालदेव के साथ रहने लगती है। रामदास ने भी लक्ष्मी का शोषण किया, यह बात किसनू बताता है ''वैसा ही चांडाल है रामदसवा। यह साला भी अंधा होगा, देख लेना। महंथ एक बार चार दिन के लिए पुरैनिया गया था। हमने सोचा कि चार रात तो लक्ष्मी चौन से सो सकेगी। ले बलैया। बाघ के मुंह से छूटी तो बिलार के मुंह में गई। उसके बाद लक्ष्मी ऐसी बीमार पड़ी कि मरते-मरते बची।''[9] इस प्रकार लक्ष्मी एक भोग की वस्तु बन कर रह गई।

असहाय, विवश और निर्धन होने के कारण भी स्त्रियों को अनैतिकता का सामना करना पड़ता है। यह तथ्य रेणु जी ने फुलिया के माध्यम से व्यक्त किया है। मंहगूदास की पुत्री फुलिया विधवा है। उसके माता-पिता उसे अपनी आय का साधन मानते हैं। रमजूदास की स्त्री फुलिया की माँ को लज्जित करती हुई कहती है ''अरे फुलिया की माए तुम लोगों को न लाज है न धरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारेवाली साड़ी चमकाओगी। आखिर एक हद होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेटा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून भी सूख जाए।"[10] माता पिता सहदेव मिसिर से उसके अवैध सम्बन्ध को प्रोत्साहन देते हैं। पूर्णिया रेलवे स्टेशन के खलासी जी फुलिया से चुमौना कराने के लिए उतावले हैं। अंत में चुमौना हो

भी गया। होली पर उसे ससुराल जाना था किन्तु वह होली नैहर में ही मनाना चाहती है। उसे तो सहदेव मिसिर से मिलना था। बाद में फुलिया पैटमान जी से भी अवैध सम्बन्ध रखती है। खलासी को भी खोक्सीबाग की एक स्त्री से प्रेम हो जाता है। अंत में फुलिया बीमार पड़ जाती है। उसकी सारी देह में घाव हो जाता है, सारी देह गल जाती है। वास्तव में यह फुलिया की विवशता व निर्धनता ही है जो उसे कई व्यक्तियों से संबंध रखने पर मजबूर करती है। पैटमान खलासी से अधिक कमाता है। वह फुलिया के लिए श्रृंगार की वस्तुएं, उसकी माँ के लिए साड़ी और पिता के लिए कमीज लाता है। रेणु जी ने लिखा है "अरे खलासी के मुंह पर झाड़ू मारो। वह क्या खाकर इतना सौख मौज करावेगा। क्या पहनावेगा। फुलिया ने खलासी की छोड़ दिया।"[11] इस प्रकार फुलिया के शरीर को नोंचकर प्राप्त धन से ही उसके माता- पिता अपनी घर गृहस्थी चलाते हैं।

इसी प्रकार रेणु जी ने चरखा सेंटर की मास्टरनी मंगला देवी और कामरेड कालीचरन के प्रेम संबंधों का वर्णन किया है। मंगला के बीमार होने पर कालीचरन उसकी सेवा करता है। मंगला ने बड़े-बड़े लोगों के घर, विधवा आश्रम, अबला आश्रम में आया का कार्य किया है जहां उसने 'आदमी' को करीब से जाना-परखा है। वह जानती है कि हर आदमी' के अन्दर एक पशु छिपा हुआ है। वह मानती है कि अबला नारी हमेशा अबला ही रहती है। रेणु जी ने लिखा है ''रुप और जवानी? नहीं, यह भी गलत। औरत होना चाहिए, रूप और उम्र की कोई कैद नहीं। एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में भी सुख-चौन से नहीं सो सकती।"[12] किन्तु उसका कालीचरन पर विश्वास है। कालीचरन भी मंगला की सेवा करते हुए समय उसकी देह पोंछकर कपड़े व बिछावन बदलते हुए अपने पहलवान गुरु की बात याद करता है ''पट्ठे! जब तक अखाड़े की मिट्टी देह में पूरी तरह रचे नहीं, औरतों से पाँच हाथ दूर रहना।"[13] वह जानता है कि पाँच हाथ दूर रहकर मंगला की सेवा नहीं की जा सकती। यह प्रेम भी अधिक दिन नहीं चल सका। चरखा सेंटर खत्म होने पर मंगला अपने दूर के रिश्ते के बहनोई के पास कटिहार चली जाती है और कालीचरन डकैती और हत्या के आरोप में जेल चला जाता है।

एक प्रेम वामनदास और तारामती का है जहाँ दमित इच्छाएं सिर उठाती है। चन्नपट्टी आश्रम में वामनदास तारामती जी की सुरक्षा में लगा होता है। जब तारामती अपने कक्ष में विश्राम कर रही होती हैं तब वह पर्दे के बीच से झांकता है। तारामती को देखकर वह जड़वत् हो जाता है। उसके मन में दमित काम की इच्छाएं जागृत हो उठती हैं। इस घटनाक्रम में रेणु जी ने प्रेम की अभिव्यक्ति न कर केवल कामजनित कुंठा को ही व्यक्त किया है।

सम्पूर्ण उपन्यास में अनेक अनैतिक सम्बन्धों के बीच डब्ल्यू. जी. मार्टिन का अपनी नवविवाहिता पत्नी मेरी के प्रति आदर्श प्रेम भी है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मार्टिन इस गांव में नील की खेती करने आया था। यहाँ उसने एक कोठी बनवाई। गाँव का नाम बदलकर उसने अपनी पत्नी के नाम पर मेरीगंज रख दिया। अपनी पत्नी को कलकत्ता से यहाँ लाने से पहले उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से रौतहट स्टेशन से मेरीगंज तक सड़क का निर्माण कराया और गाँव में पोस्ट आफिस भी खुलवाया। फिर वह मेरी को लेने कलकत्ता चला गया। मेरी सुन्दरता की प्रतिमूर्ति थी। भैरों की बूढ़ी माँ उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है, परी की तरह थी साहब की मेम, इन्द्रासन की परी की तरह। मेरीगंज आकर मार्टिन बहुत प्रसन्न था किन्तु ठीक एक सप्ताह बाद मेरी को जडैया बुखार ने धर दबोचा। यह देखकर मार्टिन ने महसूस किया कि गांव में पहले डिस्पेंसरी खुलनी चाहिए थी न कि पोस्ट ऑफिस। कुनैन देने के बाद भी तीन दिनों तक मेरी का बुखार नहीं उतरा तब मार्टिन पूर्णिया जिले के सिविल सर्जन के पास गया। जब तक शहर से सिविल सर्जन की हवागाडी मेरीगंज आई तब तक मेरी काल के गाल में समा चुकी थी। इससे मार्टिन को गहरा सदमा लगा। बहुत प्रयास करके उसने डिस्पेंसरी के लिए जमीन की रजिस्ट्री तो करवा ली किन्तु उसका निर्माण कराने से पहले ही वह पागल होकर मर गया। इस प्रकार इन दोनों के माध्यम से रेणू जी ने निश्छल व अटूट प्रेम का वर्णन किया है, जहां न शोषण है और न अत्याचार। वास्तव में यह प्रेम 'फूल' और 'गुलाल' की तरह है जहां 'शूल' और 'धूल' के लिए कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार 'मैला आंचल' में रेणु जी के अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिनमें प्रेम की भावना का अभाव है और भोग-विलास की भावना बलवती है। मेरीगंज का कबीरमठ सामन्तवादी विचारधारा का पोषक है। पितृसत्तात्मक और सामन्तवादी समाज के विरूद्ध जाकर कमली और प्रशांत का मिलन दिखाना वास्तव में रेणु जी का एक साहसिक कदम है। जिस समाज में एक स्त्री का किसी पुरूष से बात करना ही चरित्रहीनता मानी जाती है, वहां कमली एक अविवाहित माँ बन जाती है। रेणु जी ने प्रशांत और कमली के बीच प्रेम के जो चित्र खींचे हैं वे अत्यन्त ही मनोहारी, वास्तविक किन्तु संयत हैं। दूसरी ओर लक्ष्मी है जो महंत के व्याभिचार के लिए स्वयं को ही दोषी मानती है "यह तो महंत साहेब का दोख नहीं। उसका भाग ही खराब है। यदि वह नहीं होती तो महंत साहेब सतगुरू के रास्ते से नहीं डिगते। दोख तो लक्ष्मी का है। एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है।"[14] मैला आंचल में प्रशांत और कमली, ममता और प्रशांत, बालदेव और लक्ष्मी, मंगला और कालीचरन, खलासी व फुलिया, फुलिया व सहदेव मिसिर, वामनदास और तारामती तथा अंग्रेज साहब मार्टिन और गोरी मेम के बीच नैतिक और अनैतिक सम्बन्धों का दस्तावेज तैयार किया है। इनमें प्रशांत और कमली का प्रेम ही अपनी मंजिल पाता है। मार्टिन और मेरी का प्रेम आदर्श है।

'मैला आंचल' का यथार्थ- उसका 'प्रेम' ही है। इस उपन्यास पर व्याभिचार और अश्लीलता फैलाने का आरोप भी खूब लगे। श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय का मत है "ऐसा प्रतीत होता है कि यहां हर कोई एक दूसरे से फँसा हुआ है.....हर टोला नियमित, व्यवस्थित और खुलेरूप से अनैतिकता का अड्डा ही है क्या।"[15]

रेणु जी ने गौरा एम0ए0 के नाम से लेख लिखकर 'मैला आंचल' पर लगाये गये सभी आरोपों का क्रमबद्ध उत्तर दिया। साहित्य में नैतिकता और अनैतिकता, श्लीलता और अश्लीलता के प्रश्न का उत्तर देते हुए वें लिखते है "मेरी राय से सब लोग सहमत न होंगे। नैतिकता का अर्थ मेरे लिए बहुत व्यापक है। उस व्यापकता में यौन-नैतिकता का बडा गौण स्थान है। नैतिक मूल्यों की चर्चा में मैं मानवीयता को सबसे अधिक महत्व देता हूँ, किसी सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक मतवाद पर अनावश्यक ध्यान नहीं देता। सारांश यह है कि नैतिकता के लिए अन्ध आग्रह मुझमें नहीं है। कला पर नैतिकता थोपना मैं अच्छी बात नहीं समझता। आस्कर वाइल्ड की तरह कला को नैतिकता-अनैतिकता से परे मानता हूं अर्थात् तटस्थ, यथार्थनुकारी, एवम् मर्यादित। स्पष्टतः यह मर्यादा कोई प्रिजुडिस्ट धर्मध्वजी या कुत्सित समाजशास्त्री नहीं नियत कर सकता।"[16]

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1 मैला आंचल, फणीश्वर नाथ रेणु भूमिका
2 मैला आंचल, राजकमल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 55
3 वही, पृष्ठ संख्या 68
4 वही, पृष्ठ संख्या 55
5 वही, पृष्ठ संख्या 240
6 वही, पृष्ठ संख्या 312
7 वही, पृष्ठ संख्या 25-26
8 वही, पृष्ठ संख्या 61
9 वही, पृष्ठ संख्या 26
10 वही, पृष्ठ संख्या 59
11 वही, पृष्ठ संख्या 167
12 वही, पृष्ठ संख्या 155
13 वही, पृष्ठ संख्या 156
14 वही, पृष्ठ संख्या 46
15 मैला आंचल वाद विवाद और संवाद, संपादक भरत यायावर पृष्ठ संख्या 68
16 वही, पृष्ठ संख्या 72

वैवाहिक कर्मकांडों में होने वाले परिवर्तन में आधुनिक संचार साधनों की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० अखिलेश कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

आधुनिक संचार साधन वर्तमान समाज में सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण अभिकरण है। ये जीवन से जुड़े तमाम आयामों को प्रभावित कर रहे हैं, इनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आयाम प्रमुखता से प्रभावित हो रहे हैं। सांस्कृतिक आयामों के अंतर्गत परंपरागत रीति-रिवाज, कर्मकांड आते हैं जो आधुनिक संचार साधनों द्वारा प्रभावित और परिवर्तित हुए हैं। इसमें सबसे अधिक परिवर्तन विवाह जैसी संस्था के कर्मकांडों में हो रहे हैं।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है और इस नियम से कोई अछूता नही रह सकता। परंपरा, धर्म, रीति-रिवाज आदि में परिवर्तन थोड़ा धीमी गति से होता है परंतु होता अवश्य है और इसे स्वीकार भी करना चाहिए। डॉ0 राधाकृष्णन ने लिखा है, ''इस भाग्य निर्णायक महत्वपूर्ण घड़ी में, जबकि हमारा समाज एक मार्गहीन गहन बन गया है, हमें अपने पूर्वजों के स्वरों के साथ-साथ नई, ध्वनियों को भी सुनना चाहिए। कोई भी प्रथा सब कालों में सब मनुष्यों के लिए लाभदायक नहीं हो सकती। यदि हम अतीत के नियमों से बहुत अधिक चिपके रहेंगे और मृतकों का जीवित धर्म, जीवितों का मृत धर्म बन जाएगा तो सभ्यता मर कर रहेगी। हमें बुद्धिसंगत परिवर्तन करने होंगे।''[1]

संचार का सामान्य अर्थ है किसी सूचना या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाना। राबर्ट एण्डरसन ने संचार को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''वाणी लेखन या संकेतों के द्वारा विचारों अथवा सूचना का विनिमय करना संचार कहलाता है और जिन माध्यमों द्वारा संचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचता है उसे संचार माध्यम या साधन कहते हैं।" अपने विचारों भावनाओं व सूचनाओं को सम्प्रेषित करने के लिए मनुष्य को संचार की आवश्यकता पड़ती है। संचार मौखिक और लिखित दोनों रूपों में संभव है। वैज्ञानिक प्रगति ने उसे संचार के अन्य साधन भी उपलब्ध करवाए अब मनुष्य दुनिया के एक छोर पर मौजूद व्यक्ति से दुनिया के दूसरे छोर से वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से बात करने में सक्षम है। आधुनिक संचार साधनों ने संचार में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया है। टेलीफोन, रेडियो, समाचार-पत्र, इंटरनेट इत्यादि संचार के ऐसे ही साधन हैं। विकासपरक संचार के विकास में सबसे महत्वपूर्ण योगदान डैनियल लर्नर के अध्ययन, 'द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसाइटी' ने दिया। इसका उपशीर्षक था-'मार्डनाड्रॉजेंग द मिडिल ईस्ट'। उन्होंने जनमाध्यम खासकर रेडियो के जरिए हाल में आजाद हुए देशों में विकास की लहर पहुँचाने की वकालत की। उनके मुताबिक ''जन माध्यमों के जरिए लोगों को परंपरा छोड़ आधुनिकीकरण अपनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।''[2]

विचारों के आदान-प्रदान से मानव समाज का गठन और उत्कर्ष हमेशा अत्यधिक प्रभावित हुआ है। दुनिया के वर्तमान समय में चाय की दुकानों पर सुबह-सुबह की चर्चा हो या राष्ट्रीय समाचार, जनसंचार और लोगों पर इसकी शक्ति के बारे में धारणाओं का देशव्यापी रोपड़ हमेशा सबसे अविश्वसनीय रूप से विचित्र परिणाम रहा है। मीडिया तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरा संबंध है। महात्मा गाँधी (यंग इंडिया) का यह वक्तव्य हमें आधुनिकता को स्वीकार करने परंतु अपनी जड़ों से जुड़े रहने की प्रेरणा देता है। स्वतंत्रता के बाद से आज तक भारतीय समाज औद्योगीकरण, भूमण्डलीकरण, पश्चिमीकरण और संचार क्रांति के प्रवाह में जी रहा है जिससे भारतीय समाज एवं संस्कृति प्रभावित होती रही है।

जीवन के विकास में संस्कारों का महान योगदान है। मनुष्य का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन संस्कारों की निष्पन्नता से प्रभावित होता रहा है। आधुनिक सभ्यता और पाश्चात्य विचारधारा के प्रवाह में आज संस्कारों का प्रचलन अत्यधिक मन्द और गतिहीन हो गया है। जन्म, विवाह, और मृत्यु को छोड़कर अन्य संस्कारों का लोप होता जा रहा है। इन संस्कारों में विवाह संस्कार का महत्व आज भी विद्यमान है। विवाह जितना किसी व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है उतना ही समाज के लिए भी महत्वपूर्ण है। एंडरसन एवं पार्कर विवाह के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं ''विवाह अपने साथ आमतौर पर जुड़े सार्वजनिक समारोह के जरिए विभिन्न समाजों व व्यक्तियों के लिए परिणय संबंध के महत्ता की पहचान है। यह समारोह समाज के नियंत्रण का संकेत

देता है। इसका धूमधाम से विवाहित जोड़े को उस प्रतिबद्धता के महत्व को स्वीकारने के लिए विवश करता है, जिसकी गम्भीरता उन्हें परस्पर एक दूसरे से जोड़ती है।''[3]

सामान्यतः परम्परानुमोदित अवसरों पर सम्पन्न किए जाने वाले संस्कृति सम्मत व्यवहारों के पुंज को अनुष्ठान या कर्मकांड कहते हैं। यह एक ऐसा सांस्कृतिक व्यवहार होता है, जिसे निश्चित अवसरों पर बार-बार दोहराया जाता है। कर्मकांड किसी समूह अथवा व्यक्ति के किन्हीं मूल्यों अथवा मान्यताओं की बाह्य अभिव्यक्ति होते है। धर्म, सामाजिक जीवन का एक प्रमुख क्षेत्र है जिसमें कई अवसरों पर धार्मिक कृत्य और कर्मकांड सम्पन्न किए जाते हैं। किंतु इनका क्षेत्र धर्म तक ही सीमित नहीं है। धर्म के अतिरिक्त कई सामाजिक क्रियाकलापों तथा अनेकानेक उत्सव एवं त्यौहार के अवसरों के साथ-साथ रोजमर्रा के जीवन में विभिन्न प्रकार के अनुसंधान सम्पन्न किये जाते हैं।

विवाह के अवसर पर पारम्परिक क्रियात्मक रूप वैवाहिक कर्मकांड कहलाता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह कोई शारीरिक या सामाजिक अनुबन्ध मात्र नहीं है, यहाँ दाम्पत्य को एक श्रेष्ठ आध्यामिक साधना का भी रूप दिया गया है। विवाह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का मार्ग है, जहाँ स्त्री पुरुष एक सूत्र में बंधकर पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हैं यही कारण है कि व्यक्ति के जीवन में विवाह संस्कार का विशेष महत्व है। विवाह के अवसर पर कुछ धार्मिक तथा आध्यात्मिक कर्मकाण्ड का आयोजन किया जाता है जिसके द्वारा पति-पत्नी दोनों को अपने-अपने पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का बोध रहे तथा दोनों के लौकिक एव आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हो सकें। ये कर्मकांड पहल ही निश्चित कर लिए जाते हैं। इसके आयोजन के लिए तिथि और समय आदि शुभ मुहुर्त के आधार पर होता है। विवाह के आयोजन के बीच कई सारी क्रियाएं और कर्मकांड होते हैं जैसे-हिंदू विवाह में कन्यादान, हल्दी, पाणिग्रहण, अग्नि-परायण, लाजहोम, सप्तपदी मंत्र, जयमाल, सात फेरे आदि मुस्लिम विवाह में निकाह, निकाहनामा मेहर, काजी आदि। हिंदू धर्म मे विवाह का बहुत ही महत्व है। समाज विवाह के माध्यम से व्यक्ति को यौन सम्बन्ध की अनुमति प्रदान करता है तथा उत्पन्न संतान को वैधता प्रदान करता है। इस तरह विवाह जितना व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है उतना ही समाज के लिए। एंडरसन एवं पार्कर विवाह के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-''विवाह अपने साथ आमतौर पर जुड़े सार्वजनिक समारोह के जरिए विभिन्न समाजों व व्यक्तियों के लिए परिणय सम्बन्ध की महत्ता की पहचान है। यह समारोह समाज के नियंत्रण का संकेत देता है। इसका धूमधाम वैवाहिक जोड़े को उस प्रतिबद्धता के महत्व को स्वीकारने के लिए विवश करता है जिसकी गम्भीरता उन्हें परस्पर एक दूसरे से जोड़ती है।''[4]

अतीत में विवाह करने से पूर्व कई निषेधों का पालन किया जाता था और साथ ही विवाह के दौरान भी कई कर्मकांडों को सम्पन्न किया जाता था। गोत्र, जाति, प्रवर आदि के अपने-अपने निषेध होते थे। वैवाहिक कर्मकांड दो से तीन दिन तक लगातार विधि-विधान के साथ चलते रहते थे तमाम तरह के रस्मों रिवाज का पालन किया किया जाता था। सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यक्रम प्रधान पुरोहित की देखरेख तथा उनके मार्गदर्शन में सम्पन्न होते थी। पुरोहित ही सब कुछ तय करता था कि किस मुहुर्त पर कौन सी रस्म का पालन करना है। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ-साथ सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यक्रम सम्पन्न होता था।

वर्तमान समय में विवाह के मूल स्वरूप में बहुत हद तक परिवर्तन आ चुका है। विवाह जैसी संस्था आज भी विद्यमान है, परन्तु इसके स्वरूप, रस्म, रीति-रिवाज आदि में परिवर्तन आ चुका है। वर्तमान गोत्र, जाति, प्रवर आदि से संबंधित निषेध अपेक्षाकृत शिथिल हुए हैं और वैवाहिक अनुष्ठानों में बहुत हद तक परिवर्तन हुए हैं, इसमें आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति का समावेश हो चुका है। अब वैवाहिक कार्यक्रम का तात्पर्य लोग मनोरंजन और मौज-मस्ती से लगाते हैं। विवाह पूर्व हल्दी कार्यक्रम बहुत ही भव्य और चकाचौंध भरा होता है। कार्यक्रम में सम्मिलित सभी लोग पीले वस्त्र धारण करते है और सभी लोग एक-दूसरे को हल्दी लगाते हैं।

विवाह कार्यक्रम में अब यह मायने नहीं रहता कि विवाह धार्मिक विधि-विधान से हो रहा कि नहीं, अनुष्ठान पारंपरिक तौर-तरीके से सम्पन्न रहा है या नहीं, बल्कि ये मायने रखता है कि विवाह मण्डप में सजावट अच्छी हो, लाइटिंग अच्छी हो, खाने-पीने की अत्याधुनिक किस्में तथा पाश्चात्य किस्म का भोजन हो। अब तो जयमाल स्टेज पर पूरा ध्यान दिया जाता है। इसके अलावा विडियो रिकार्डिंग भी वैवाहिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग बन चुका है। अब तो वैवाहिक कार्यक्रमों में ड्रोन कैमरों द्वारा रिकार्डिंग करते हुए देखा गया है। शादी के पहले बैचलर पार्टी, विवाह संगीत, पाप संगीत का चलन बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। वैवाहिक कार्यक्रम आज मैरेज हॉल में सम्पन्न होने लगा है।

परम्परागत विवाह जहाँ परिवार एवं नातेदारी संबंधों द्वारा तय किया जाता था वहीं आज इंटरनेट तथा मैरिज ब्यूरो इस कार्य को करने लगे हैं। वर्तमान में विवाह को एक आवश्यक धार्मिक संस्कार नहीं माना जाता। विवाह पहले धार्मिक विधि-विधान से पूर्ण किया जाता है। विवाह से सम्बधित संस्कारों में अब औपचारिकता रह गई है। पुरोहित औपचारिक में तरीके से कम समय में विवाह सम्पन्न करवा देते हैं।

वैवाहिक कर्मकाण्डों में हो रहे परिवर्तन के कारक के रूप में आधुनिक संचार साधनों की भूमिका का अध्ययन करने के लिए तथ्यों का संकलन किया गया। तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों से किया गया है। अध्ययन अवलोकन तथा मौखिक छानबीन में प्रश्न अनुसूचियों एवं साक्षात्कार प्रविधि को सम्मिलित किया गया। तथ्यों के संकलन के लिए अप्रत्यक्ष स्त्रोत के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत में अनेक प्रकाशित पूर्व-साहित्य, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाएं आदि से विश्लेषण सम्भव हुआ है।

वैवाहिक अनुष्ठानों में हो रहे तीव्र परिवर्तन तथा इसमें आधुनिक संचार साधनों की भूमिका का विश्लेषण करने के लिए 70 उत्तरदाताओं का चयन किया गया जिन्होंने अपना दृष्टिकोण रखा।

सारणी 1:1

क्र.सं.	विवाह के पारम्परिक रीति–रिवाज़ों में परिवर्तन	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	परिवर्तन हो रहा है	46	65.72
2	परिवर्तन नहीं हो रहा है	13	18.57
3	बता नहीं सकते	11	15.71
	सम्पूर्ण योग	70	100

सारणी 1:2

सारणी संख्या 1:1 विवाह संस्था के पारम्परिक कर्मकाण्डों में हो रहे परिवर्तन पर उत्तरदाता के दृष्टिकोण का वर्गीकरण प्रस्तुत करता है। सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि चयनित 70 उत्तरदाताओं में से 46 अर्थात (66.72 प्रतिशत) उत्तरदाता ने यह स्वीकार किया कि विवाह संस्था के परंपरागत रीति-रिवाजों में परिवर्तन हो रहा है, तथा मात्र 13 या 18.57 प्रतिशत उत्तरदाता ने यह माना है कि परिवर्तन नहीं हो रहा है जबकि 11 अर्थात (15. 73 प्रतिशत) उत्तरदाताओं में इस प्रश्न पर कोई उत्तर नहीं दिया।

सारणी से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का मत है कि विवाह के पारम्परिक कर्मकाण्डों में परिवर्तन हो रहा है।

सारणी संख्या 1:2

उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण से वैवाहिक कर्मकांडो में परिवर्तन लाने वाले कारक-

क्र.सं.	वैवाहिक कर्मकाण्डों में परिवर्तन वाले कारक	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	टी0वी0 एवं सिनेमा	24	34.286
2	इण्टरनेट/सोशल मीडिया	17	24.286
3	समाचार–पत्र	10	14.286
4	आधुनिक शिक्षा	12	17.142
5	कोई उत्तर नहीं	07	10.000
	सम्पूर्ण योग	100	100.000

सारणी संख्या 1:2 समाज में वैवाहिक कर्मकांडों में परिवर्तन लाने वाले कारकों पर उत्तरदाता के दृष्टिकोण का वर्गीकरण प्रस्तुत करता है। सारणी के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि चयनित 70 उत्तरदाताओं में से 24 अर्थात (34.286 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने परिवर्तन के लिए टी0वी0 और सिनेमा को जिम्मेदार माना है। 17 या (24.286 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने इसके लिए इंटरनेट/सोशल मीडिया को सबसे बड़ा कारण माना है। 10 अर्थात (14.286 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने समाचार पत्र को, जबकि 12 या 17.142 प्रतिशत उत्तरदाता इसके लिए आधुनिक शिक्षा को जिम्मेदार मानते हैं। 7 अर्थात् (10 प्रतिशत) उत्तरदाता ने इस पर कोई उत्तर नहीं दिया ।

सारणी संख्या 1:2 से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं से वैवाहिक कर्मकाण्डों में होने वाले परिवर्तन के लिए आधुनिक संचार साधनों (टी.वी., सिनेमा, इंटरनेट, समाचार-पत्र) को उत्तरदायी माना है।

प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक जनसंचार साधनों के बढ़ते प्रयोग और उसके द्वारा भारतीय समाज में प्रचलित वैवाहिक कर्मकाण्डों में होने वाले परिवर्तनों पर केंद्रित है। वर्तमान में जनसंचार के साधन हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करते हैं। समाजशास्त्री एन्थोनी गिडेंस ने इन्हें सामाजिक परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में पहचाना है।

विवाह संस्था के पारम्परिक कर्मकाण्डों में हो रहे परिवर्तन में आधुनिक संचार साधनों की भूमिका को अधिकांश उत्तरदाताओं ने माना है। आज विवाह के परम्परागत स्वरूप में बहुत परिवर्तन हो चुका है। हिंदू विवाह एक पवित्र धर्मानुष्ठान माना जाता है। अपने पारंपरिक स्वरूप में यह संस्था बहुत जटिल थी। विवाह में धर्मविधि का पूरा हस्तक्षेप होता था। समस्त वैवाहिक कार्यक्रम धार्मिक विधि-विधान से सम्पन्न होता था। जहाँ विवाह के परम्परागत स्वरूप में हल्दी, द्वारपूजा मण्डप, अग्नि के सात फेरों, सिंदूरदान आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता था, वहीं आधुनिक समाज में टी0वी0 तथा सिनेमा के प्रभाव में आकर यह नए कलेवर में आ गया है। टी0वी0 सीरियलों की नकल करते करते हुए आज इन सभी कर्मकांडों में चमक-दमक दिखावापन, साज-सज्जा का समावेश हो चुका है। साथ ही जयमाल, स्टेज, पार्टी, वीडियो रिकार्डिंग आदि पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। भौतिकतावादी एवं भागदौड़ के वर्तमान जीवन में यह एक दिन के रस्मों तक सीमित हो गया है।

वर्तमान में, बदलती परिस्थितियों में वैवाहिक कर्मकांडों में परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। पढेष्-लिखे व्यक्ति अब विवाह से जुड़ी मान्यताओं का तार्किक विवेचन कर रहे हैं, जिससे मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है और इन परिवर्तनों में आधुनिक संचार साधनों का महत्वपूर्ण योगदान है। जनसंचार के आधुनिक साधन हमारे विचारों, व्यवहारों, मनोवृत्तियों, कार्यप्रणालियों में परिवर्तन लाकर नये रीति-रिवाजों एवं कर्मकांडों को जन्म देते है। परिस्थतियों एवं सुविधाओं के अनुरूप लोग कर्मकाण्डों में आंशिक परिवर्तन आसानी से कर लेते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. राधाकृष्णन: 'धर्म और समाज', पृष्ठ 135-136
2. लर्नर डेनियल, द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसाइटी मार्डनाइजिंग द मिडिल ईस्ट न्यूयार्क, प्रीफेस, 1958
3. एण्डरसन एण्ड पार्कर, सोसाइटी: इट्स अर्गनाइजेशन एण्ड ऑपरेशन (1966) पृष्ठ 156
4. कुमार सत्येन्द्र, बदलता गाँव, बदलता देहात: एक नई सामाजिकता की ओर, अध्याय पाँच: बहुजन धार्मिकता आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2018
5. मैक्लुहान मार्सल: अण्डरस्टैंडिंग मीडिया: द एक्स्टेंसन्स ऑफ मैन, पेग्युइन 1969

भारत में दलित आन्दोलनः एक विवेचन

मनोज कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो० अनुराधा अग्रवाल

शोध पर्यवेक्षक, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

किसी भी आन्दोलन की उत्पत्ति के पीछे एक बहुत प्रभावित और विस्तारित कारण होता है। किसी भी आन्दोलन का विकास अचानक या एक दिन में नहीं होता अपितु यह समयकालिक परिस्थितियों की समस्याओं का चरम होता है। इसी का उदाहरण भारत में दलित आन्दोलन का जन्म है। भारत तो सोने की चिड़िया कहा जाने वाला देश है, परन्तु उस सोने को चुराने वाले अर्थात सामाजिक भेदभाव करने वाले लोगों ने अपने स्वार्थ और ईर्ष्या के फलस्वरूप दलितजनों में उपेक्षा की भावना को जन्म दिया। परन्तु धीरे-धीरे ईर्ष्या और वैमनस्य के शिकार इस वर्ग ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए एकजुट होना स्वीकार किया और उन्हें रास्ता दिखाने वाले डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जैसे महान हस्तियों ने अपने वैचारिक क्रियाकलापों से इनका मार्गदर्शन किया।

मूल शब्दः दलित, अस्पृश्यता, दलित पैंथर, डॉ0 अम्बेडकर।

प्रस्तावना-

देखा जाऐ तो प्रत्येक संगठित समाज स्तरीकरण में विभाजित है। संसार के सभी देशों में अपने प्रकार के स्तर हैं, जिन्हें वार्ड कहते हैं। यहाँ स्तरीकरण का तात्पर्य मनुष्य को विभिन्न आधार पर उनका विभाजन करने से है। इसी स्तरीकरण का एक भाग भारत में दलित वर्ग भी है। रोम में प्लेब्यिनस, स्पार्टन में हीलोट्स, अंग्रेजी में वीलेन्स, इजीपिशियन में गुलाम, अमेरिका में नीग्रो, जर्मन में ज्यूस भी स्तरीकरण का उदाहरण है। उपर्युक्त सभी देशों में यह वर्ग समाप्त हो चुके हैं, परन्तु भारत में अभी भी अस्पृश्यता की रूढ़ीवादिता कायम है।

वास्तव में अनुसूचित जातियों में अधिकांश पिछड़ी अथवा शोषित जातियों के लोग ही हैं। यह वह वर्ग है जो आर्थिक, सामाजिक स्तर पर समाज के आखिरी पायदान पर है। इनका जातियों में निम्नतम स्थान है। प्राचीन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में अनुसूचित जातियों या दलितों का हिन्दू व्यवस्था में एकदम पृथक स्थान था जैसे वे पांचवां वर्ण है। वैदिक युग में इन्हें चन्डाल कहकर सम्बोधित किया जाता था। चण्डाल को अस्पृश्य जाति के रूप में ही देखा जाता था। पंतजलि में चण्डाल के अनेक प्रकार का वर्णन मिलता है। मनु का कहना है कि चन्डाल जाति का जन्म प्रतिलोम विवाह के फलस्वरूप हुआ है। अंग्रेज इन्हें बाहरी जाति मानते थे तथा इन्हें अस्पृश्य जाति कहकर सम्बोधित किया। 1928 में साइमन कमीशन ने इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जाति कहा गया है। जबकि गाँधी जी इन्हें 'हरिजन' अर्थात ईश्वर के जन कहते थे।

अस्पृश्य जातियों से संबंधित शब्द इस बात का द्योतक है कि संसार में लगभग एक जैसा वर्ग था जो समाज के निम्नतम स्थान पर रखा गया था। ये आदमी तो थे परंतु इन्हें मनुष्य नहीं समझा जाता था। इनका जीवन गुलामों की तरह था। पशु से भी दयनीय दशा थी इनकी। सामाजिक प्रतिष्ठा तो दूर इनको अपने अस्तित्व से भी दूर रखा गया।

निश्चय ही अपनी सामाजिक पहचान बनाने तथा अपनी अस्मिता को प्राप्त करने के लिए ये लगातार संघर्ष कर रहे हैं। दलित आंदोलन को और शक्तिशाली और व्यापक बनाने हेतु 'दलित विमर्श' की अवधारणा का विकास निरन्तर चल रहा है। इस संबंध में कँवल भारती लिखते हैं-

''..... दलित विमर्श सिर्फ एक जाति विमर्श नहीं है, जैसी की आम धारणा है कि किसी दलित समस्या को लेकर किया गया विमर्श ही दलित विमर्श है। यह धारणा गलत है। दलित विमर्श को केन्द्र में दलित समस्या को नहीं नकारा जा सकता। पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केन्द्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के विरूद्ध अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खण्डित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था। इसलिए दलित विमर्श को केन्द्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से हो चाहे वे भेदभाव जाति के आधार पर हों, रंग के आधार पर हों, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हों या फिर धर्म के आधार पर क्यों न हों।

घटना उस रात की है जब डॉ० अम्बेडकर नेहरू मंत्रिमण्डल में विधि मंत्री थे। एक रात लगभग दो-ढाई बजे कुछ सामाजिक कार्यकर्ता उनसे मिलने आए, तो उन्होंने डॉ० अम्बेडकर को अपने पुस्तकालय में अध्ययन करते हुए पाया। कार्यकर्ता शालीनतावश बोले- 'हमें आपसे कुछ बातें करनी थी, लेकिन रात बहुत बीत

गयी है, इसलिए आप सुबह का कोई समय दे दीजिए।' डॉ० अम्बेडकर ने कहा, 'आप बात कीजिए, सुबह की क्या बात है, मेरे पास अभी भी समय है।' उन लोगों ने कहा, 'हम लोग इस समय कई नेताओं के यहां गये, सभी को सोते हुए पाया, केवल एक आप ही हैं जो इस समय जाग रहे हैं। इसका क्या कारण है?' इस प्रश्न के उत्तर में जो बात डॉ० अम्बेडकर ने कही वह आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने कहा, 'देखिए! जिन लोगों के पास आप गये थे, उनकी जातियाँ जाग रही हैं, इसलिए वे आराम की नींद सो रहे हैं ओर मेरी जाति सो रही है, इसलिए में जाग रहा हूं, पहरेदारी कर रहा हूँ कि कोई उसके अधिकारों पर डाका न डाल ले।' उनके इस कथन से यह स्पष्ट है कि उस समयकाल में भी दलित समाज अपनी गहरी नींद में था अर्थात् अभी भी उनमें चेतना नहीं थी।

एक कवि श्रीपाल सबनीस ने जाति पर लिखा-'आत्म सम्मान का सूर्य विस्फोटक लपटों से जल रह है। इसको जाति को जलने दो।'

श्रीपाल सबनीस की कविता भारत में दलितों के आक्रोश तथा आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। इस भावना के साथ कि वे सदियों से शोषित रहे हैं, दलित रहे हैं और अब समय आ गया है कि सदियों पुराने इस अन्धकार से बाहर निकला जाए।

स्वतंत्रता से पूर्व में समय के मजबूत जाति विरोधी आन्दोलन उभरे थे। इन आन्दोलनों में महाराष्ट्र और तमिलनाडु के गैर-ब्राह्मण आन्दोलन शामिल थे। इनके अतिरिक्त इन दलित आन्दोलनों में महाराष्ट्र, पंजाब (आदि धर्म आन्दोलन), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (आदि हिन्दू आन्दोलन), तटीय आन्ध्र (आदि-आन्ध्र) तथा हैदराबाद (आदि-हिन्दू) आन्दोलन शामिल थे। इसके अतिरिक्त गैर-ब्राह्मण विचारधारा की प्रवृत्ति कई अन्य स्थानों पर भी थीं। मैसूर और बिहार में कमजोर और असंगठित दलित भी अपने को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत में दो शताब्दियों तक दलित आन्दोलन निष्क्रिय रहे लेकिन 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में ये आन्दोलन फिर उठ खड़े हुए। 1972 में 'दलित पैंथर' स्थापित कर लिया गया। इस बार दलित और उनके संगठन स्पष्टत: अग्रिम पंक्ति में थे।

जैसा कि मार्क्सवादी ढाँचे के सिद्धान्तशास्त्री इमानुल वैलेन्सटील ने कहा- दलित और गैर-ब्राह्मण जाति विरोधी आन्दोलनों को व्यवस्था विरोधी आन्दोलनों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यदि प्रकार्यात्मक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की भाषा में कहें, तो बजाय इसके कि इन्हें मानक सम्बन्धी आन्दोलन कहें, इन्हें मूल्य सम्बन्धी आन्दोलन कहना उचित होगा। इसका अर्थ यह भी है कि इन आन्दोलनों का प्रयास भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मूल संरचना को रूपान्तरित करना है। इन आन्दोलनों का प्रयास था कि जाति और उसके साथ जुड़े हुए सामाजिक दमन, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक प्रभुत्व को समाप्त कर उसके स्थान पर एक समतावादी समाज स्थापित किया जाए। भारतीय समाज में अन्य सामाजिक आन्दोलनों की तरह सुधारवादी प्रवृत्तियां भी इनमें मौजूद थीं। दलित आन्दोलनों में ये प्रवृत्तियां कांग्रेस के जगजीवन राम, हिन्दू महासभा के दलित जैसे एम०सी० राजा और जी०ए० गवई द्वारा प्रस्तावित की गई थीं। गैर-ब्राह्मण आन्दोलनों में जस्टिस पार्टी और बम्बई प्रेसीडेन्ट की गैर ब्राह्मण पार्टी उन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी। ये प्रवृत्तियां रूढ़िवादी थी तथा इसकी तुलना में सत्यशोधक समाज और आत्म सम्मान आन्दोलन अधिक आमूल परिवर्तनवादी थे। सुधारवादी प्रवृत्तियां भी गाँधी के हरिजन आन्दोलन में देखी जा सकती थीं, जो ऊँची जातियों के समाज सुधार परम्पराओं की थी। ये प्रवृत्तियां हिन्दू धर्म की अशुद्धता को साफ करना चाहती थीं और यदि महादेव गोविन्द रनाडे के शब्दों को देखें तो यह किसी पेड़ की बीमार शाखाओं को काटने का प्रयास था जिससे वह पेड़ अच्छी तरह से पनप सके।

इसके विपरीत जाति विरोधी आन्दोलन इस पेड़ को ही गिरा देना चाहते थे। विशेष रूप से 1970 में बिहार में दलित आधारित, नक्सलवादी आन्दोलन में हुआ। एक सहानुभूति रखने वाले पत्रकार ने इसी क्रान्ति को पुनर्रचना के कार्य की संज्ञा दी-

लोग अपनी कब्र से उठ खड़े हुए हैं, वे जैसे पगला गए हैं और उन्माद में सामन्तवाद की शाखाएं काट रहे हैं। उनका इच्छा तत्काल ही 2500 वर्ष पुराने पेड़ों को गिरा देने की हैं अब तक उनका निरादर किया गया, उन पर कोड़े बरसाए गए, उनकी हत्या की गई और एक आदमी की जो परिस्थिती होनी चाहिए, उसे देने से मना किया गया। उनकी पत्नियों को वेश्या समझा गया और तब किसी ने उसे नक्सलवादी के बारे में समाचार दिया। तत्काल चीजें बदलना प्रारम्भ हो गई। हरिजन मर गया कुएरी जला दिया गया। नया आदमी जो अभी लपटों से उठा है जब यह महसूस करता है कि ना वह हरिजन है न ही कुएरी, अब वह एक मनुष्य है।

डॉ० अम्बेडकर ने दलित आन्दोलन को एक राजनीतिक स्वरूप भी प्रदान किया। डॉ० अम्बेडकर ने दलित जातियों को राजनीतिक सेना के रूप में भी परिणित करने का प्रयास किया। उनके राजनैतिक दावे डॉ० अम्बेडकर की वकालत के कारण मान भी लिए गए और इनके लिए 1935 के विधान में विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी गई थी। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने दलित वर्ग को एक मुकाम तक पहुंचाने का प्रयास किया।

भारत में शताब्दियों से अस्पृश्य जातियाँ रही हैं। उनके नरकीय जीवन से साधु-सन्त आदि सभी दु:खी और चिन्तित थे। धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा इस घृणित सामाजिक कुरीति के समाधान हेतु प्रयास किए गए। ए०आर०देसाई इस पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं- 'हिन्दू समाज में सदियों से अस्पृश्यता का प्रचलन रहा है। बुद्ध, रामानुज, रामानन्द, चौतन्य, कबीर, नानक, तुकाराम और अन्य लोगों द्वारा चलाए गए व्यापक और आधारभूत मानवीय एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों का भी युगों की पुरानी इस अमानुशिक प्रथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परम्परा सम्मत, धर्मपूत यह प्रथा अपनी सम्पूर्ण बर्बर शक्ति के साथ सदियों तक जीवित रही।'

इस प्रकार यदि समय-समय का अध्ययन किया जाए तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर चाहे वह वेदों का समय हो, मनु का समय हो, या स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ब्रिटिशों का समय हो या स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात के काल में या नव जागरण काल में बल्कि समय-समय पर तथा जगह-जगह पर इस जात-पात के भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया गया। जिसमें डॉ० अम्बेडकर से लेकर आधुनिक युग में भीम आर्मी के संस्थापक चंद्रशेखर रावण जैसे लोगों ने अपने-अपने स्तर पर संघर्ष जारी रखा है। इन सब के बीच समय-समय पर साहित्य के माध्यम से भी विरोध किया गया जिसमें सन्त रैदास, कबीर, पीपा, धन्ना, सहजोबाई आदि शामिल हैं। मध्यकाल में रैदास हिन्दी दलित साहित्य के प्रथम दलित चेतना सम्पन्न कवि हैं, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विशपान स्वयं किया था। उन्होंने सबसे पहले वर्ण के जन्मजात आधार को ही नकारा-

'रैदास जन्म के कारण होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि हैं ओछे करम की
कीच।।'

इसी प्रकार जब उत्तराखण्ड आन्दोलन चल रहा था, तब वहां पर हर व्यक्ति की जुबान पर बल्ली सिंह चीमा का जनगीत था-

'ले मसालें चल पड़े हैं लोग मेरे गाँव के।
अब अन्धेरे जीत लेगे, लोग मेरे गाँव के।।'

इस प्रकार की रचनाओं द्वारा भी साहित्य के माध्यम से अपना रोष प्रकट किया गया।

अत: देखा जाए तो समय-समय पर सामाजिक परिवर्तन होता रहा है और होता ही रहेगा। बस एक बात की चिन्ता है मुझे कि कब अपना ये भारतवर्ष, सोने की चिड़िया कहा जाने वाला प्यारा भारतवर्ष, इन सभी वैमनस्य की भावना पर अपनी जीत हासिल कर पाऐगा। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन हिन्दुस्तान में सूर्य की एक नई किरण का उदय होगा और जनमानस नई आशाओं के साथ अपनी आंखे खोलेंगे।

संदर्भ

1. डॉ० एन सिंह, दलित चिंतन अनुभव और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. बारबरा जोशी (सम्पादक), अनटचेबल वायसेस ऑफ द दलित लिबरेशन मूवमेंट (लन्दन, जेड बुक्स, 1986) पुस्तक में श्रीपाल सबनीस, स्वयं का अनुवाद।
3. गेल ओमवेट, दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति (उपनिवेशीय भारत में डॉ० अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन) सेन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009, नरेश भार्गव (अनुवादक)
4. इमानुल के शोध पत्र से लिया गया है। 'द राइज एंड फ्यूचर डिमाइज ऑफ द वर्ल्ड कैपिटिलिस्ट सिस्टम कान्सेप्ट्स फॉर कम्पेरेटिव एनेलिसिस'।
5. कुमारी जयावर्धना द्वारा, 'फेमीनिज्म एंड नेशनलिज्म' इन द थर्ड वर्ल्ड (लन्दन, जेड, बुक्स, 1986)
6. अरूण सिन्हा 'क्लास वार इन भोजपुर' इकॉनोमिक एंडपोलिटिकल वीकली, 7 जनवरी 1978
7. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि।
8. डॉ० एन० सिंह, दलित चिन्तन अनुभव और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. राव, सी0एन0शंकर: सोशियोलॉजी, एस0 चन्द, पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. भारती, कँवल: दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004

स्वतंत्र भारत के बिहार में सत्रहवीं विधानसभा चुनाव में पिछड़ी जातियों में राजनीतिक चेतना के विकास का समाजिक-राजनीतिक अनुशीलन

महेश कुमार पिन्टू

शोधार्थी, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एन.एम.यू., मधेपुरा

डॉ० शशांक मिश्र

शोध पर्यवेक्षक, सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एन.एम.यू., मधेपुरा

सार-संक्षेपः

भारतीय राजनीति में जातिवाद का दखल कोई नई बात नहीं है और प्रायः सभी दल पूरी प्रतिबद्धता के साथ अपने-अपने वोट बैंक को बढ़ाने के लिए इस सशक्त हथियार का इस्तेमाल करते रहे हैं। लेकिन प्रत्यक्ष तौर पर कोई भी दल ये स्वीकार करने की हिम्मत नहीं कर रहा है कि उसने ऐसा अपना वोट बैंक बढ़ाने की खातिर किया है, बल्कि सभी का ये कहना है कि उन्होंने केवल समाज के सभी समुदायों वर्गों के उचित प्रतिनिधित्व का ख्याल रखा है, ताकि समाज का कोई भी वर्ग उपेक्षित न रहे। भारतीय सामाजिक संगठन की सबसे बड़ी विशेषता शायद जाति व्यवस्था ही है। भारतीय जनसाधारण के लिए जाति कितना महत्त्व है यह इस बात से भी पता चलता है कि साधारण भारतीय किसी दूसरे भारतीय का परिचय प्राप्त करते समय उसकी जाति जानना सबसे अधिक आवश्यक समझता है। भारतीय राजनीति में जातीय राजनीति उतनी ही पुरानी है, जितनी कि हमारी आजादी। यह अलग बात है कि उस समय समाज के सभी वर्गों में समानता के लिए दलित और पिछड़ों को राजनीति में भागीदारी देने की बात हुई। बताते चलें कि आजादी मिलते ही जब 1952 में अंतरिम सरकार के लिए चुनाव की बात हुई तो कांग्रेस पार्टी ने सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व के नाम पर दलित, पिछड़ी और अत्यंत पिछड़ी जातियों को टिकट दिया। इसी क्रम में दरोगा राय, प्रभावती गुप्ता और जगदेव प्रसाद जैसे पिछड़े वर्ग के नेता भारतीय राजनीति का हिस्सा बने। उसके बाद साठ के दशक में जेपी के नेतृत्व में समाजवादियों ने अगड़ा-पिछड़ा के नाम पर ही चुनाव लड़ा और संपूर्ण क्रांति का नारा दिया। दूसरी तरफ उसी समय समाज का एक वर्ग हाशिए पर था, इसलिए सोशलिस्ट पार्टी ने नारा दिया- संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़े पावें सौ में साठ।

कुँजीः सामाजिक, प्रतिनिधित्व, संगठन, जाति, राजनीति।

परिचय

किसी भी लोकतंत्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग नागरिक होता है क्योंकि नागरिकों पर ही संसद और विधानसभा में अपने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजने की जिम्मेवारी होती है। प्रत्येक नागरिकों का दायित्व है कि वे चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग निष्पक्ष एवं निर्भीक होकर करें, लेकिन व्यवहार में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। चुनाव के समय सभी पार्टी के नेता, सर्वप्रथम अपने जाति के लोगों से सम्पर्क स्थापित करते हैं और अपनी जाति के लोगों को गोलबंद कर तथा अन्य जातियों के लोगों को भी एकजुट कर अपने दल के नेता अथवा अपने पक्ष में मतदान करने के लिए प्रेरित करते हैं। जिसके कारण राजनीति जाति से अधूरी नहीं रह जाती है और समय-समय पर राजनीति में जातिगत राजनीति की भूमिका अहम हो जाती है। राजनीति में जाति के आधार पर बढ़ते प्रतिनिधित्व का ही नतीजा था कि सन 1980 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने नारा दिया-जात पर न पात पर, मुहर लगेगी हाथ पर। इसके बाद तो राजनीति में जैसे जातिवाद को पंख ही लग गए। मंडल कमीशन के नाम से पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने का बवंडर भारतीय राजनीति का न भूलने वाला कालखंड है। इस मंडल कमीशन के चलते ही 7 नवंबर, 1990 को वीपी सिंह की सरकार चली गई। तब तक बिहार में लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान और नीतीश कुमार जैसे पिछड़ों के नेता अपना स्थान बना चुके थे। जाते-जाते वीपी सिंह बिहार में लालू प्रसाद यादव को मुख्यमंत्री बना गए। उसके बाद तो बिहार में जातिगत आधार पर ही चुनाव लड़ा जाने लगा। लालू यादव के समय एमवाई का समीकरण खूब चला।

जहाँ तक बिहार विधानसभा की बात है तो यह जातिगत समीकरण के लिए ही जानी जाती है। जब तक लालू यादव का शासन काल था, बिहार की राजनीति में यादवों का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक था। नीतीश कुमार के आने के बाद एक लंबे अंतराल के बाद थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है। यादव और कुर्मी

जाति की संख्या घटी है तो अन्य पिछड़ी जातियों के विधायकों की संख्या बढ़ी है। वहीं कोइरी जाति के विधायकों की संख्या भी बढ़ गई है। कायस्थ को छोड़कर अन्य सभी अगड़ी जातियों के विधायकों की संख्या बढ़ी है। वैसे परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है, लेकिन बिहार में जब भी चुनाव होते हैं विधानसभा की सामाजिक बनावट में कुछ-न-कुछ परिवर्तन हो ही जाता है।

बिहार में प्रथम विधानसभा चुनाव वर्ष 1952 में सम्पन्न हुआ। श्रीकृष्ण सिंह, बिहार के पहले मुख्यमंत्री बने। उस समय बिहार में उच्च जातियों का बोलबाला था। बिहार की राजनीति की रणनीति उच्च जातियों के नेताओं के द्वारा निर्धारित की जाती थी। मुख्यमंत्री पद के लिए डॉ० श्रीकृष्ण सिंह और डॉ० अनुग्रह नारायण सिन्हा दो दावेदार थे। उस समय कायस्थ लॉबी डॉ० श्रीकृष्ण सिंह को साथ दिया और वे मुख्यमंत्री बन गये। पुनः वर्ष 1957 में द्वितीय विधानसभा चुनाव के बाद मुख्यमंत्री पद के लिए डॉ० अनुग्रह नारायण सिन्हा ने अपनी दावेदारी पेश की। वोटिंग के द्वारा मुख्यमंत्री पद के लिए चुनाव हुआ और श्रीकृष्ण सिंह दोबारा मुख्यमंत्री चुने गये। उस समय बिहार कांग्रेस में उच्च जातियों का ही बोलबाला था। पिछड़ी जातियों का सत्ता चयन में कोई खास भूमिका नहीं थी। श्रीकृष्ण सिंह भूमिहार जाति से आते थे। उनका मुकाबला उच्च जातियों से ही था।

वर्ष 1952 एवं वर्ष 1957 के बाद बिहार में नियमित रूप से विधानसभा चुनाव हो रहे हैं। जिसमें क्रमशः श्री दीप नाराण सिंह (राजपूत), पंडित विनोदान्द झा (ब्राह्मण), श्री कृष्ण बल्लभ सहाय (कायस्थ), श्री महामाया प्रसाद सिन्हा (कायस्थ), श्री सतीश प्रसाद सिंह (कुशवाहा), श्री विन्देश्वरी प्रसाद मंडल (यादव), श्री भोला पासवान शास्त्री (अनुसूचित जाति), श्री सरदार हरिहर सिंह (राजपूत), श्री दरोगा प्रसाद राय (यादव), श्री कर्पूरी ठाकुर (हजाम), श्री केदार पाण्डेय (ब्राह्मण), मो० अब्दुल गफुर (मुस्लिम), श्री जग्गनाथ मिश्रा (ब्राह्मण), श्री राम सुन्दर दास (अनुसूचित जाति), श्री चन्द्रशेखर सिंह (राजपूत), श्री विन्देश्वरी दूबे (ब्राह्मण), श्री भागवत झा आजाद (ब्राह्मण), श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह (राजपूत) बिहार के मुख्यमंत्री बने। वर्ष 1952 से वर्ष 1989 तक 14 बार उच्च जाति के, 05 बार पिछड़ी जाति के, 04 बार अनुसूचित जाति के तथा 01 बार मुस्लिम बिहार के मुख्यमंत्री बने। जिनमें कई दो से तीन बार भी मुख्यमंत्री के पद पर आसीन रहे हैं।

उपरोक्त आँकड़ों को देखने से स्पष्ट होता है कि इस काल में बिहार की राजनीति में उच्च जाति के नेताओं का वर्चस्व कायम रहा एवं उच्च जाति के लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उच्च जाति के नेतागण ही बिहार की राजनीति की रणनीति एवं रूप-रेखा का निर्धारण करते थे। इस अवधि में पिछड़ी जातियों एवं दलित जातियों के नेता भी मुख्यमंत्री बने लेकिन न तो वे अपने जाति के लोगों को संगठित कर सके, न ही जातिगत वर्चस्व स्थापित कर सके और न ही बिहार स्तर पर अपना छवि को उभार सके। सिर्फ उच्च जातियों के नेताओं की कठपुतली बनकर ही रह गये। इसका मुख्य कारण था कि उस समय पिछड़ी एवं दलित जातियाँ सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक रूप से काफी पिछड़ी थी। पिछड़े वर्ग की प्रमुख जाति यादव, कोईरी एवं कुर्मी थी जो अपने जीवकोपार्जन के लिए मुख्यतः खेती पर आश्रित थी। जिसके कारण पिछड़ी जाति चाहकर भी उभर नहीं पायी। बिहार में पहली बार पिछड़ी जाति के श्री सतीश प्रसाद सिंह (कुशवाहा) बिहार के कार्यकारी मुख्यमंत्री बने। उसके बाद पिछड़ी जातियों में श्री विन्देश्वरी प्रसाद मंडल (यादव) वर्ष 1968 में, मुख्यमंत्री बने, जो लम्बे समय तक नहीं रह सके। उसके बाद श्री दरोगा प्रसाद राय (यादव) वर्ष 1970 में बिहार के मुख्यमंत्री बने। वे 16 फरवरी, 1970 से 22 दिसम्बर, 1970 तक मुख्यमंत्री रहे। उसके बाद श्री कर्पूरी ठाकुर (हजाम) बिहार के मुख्यमंत्री बने। वे 22 दिसम्बर, 1970 से 02 जून 1971 तथा 24 जून 1977 से 21 अप्रैल 1979 तक दो बार मुख्यमंत्री रहे। बिहार में अनुसूचित जाति से सर्वप्रथम श्री भोला पासवान शास्त्री मुख्यमंत्री बने। वे तीन बार क्रमशः 23 मार्च 1968 से 29 जून 1968 तक, 22 जून 1969 से 04 जुलाई 1969 तक तथा 02 जून 1971 से 09 जनवरी 1972 तक मुख्यमंत्री / कार्यकारी मुख्यमंत्री रहे। उसके बाद श्री राम सुन्दर दास (अनुसूचित जाति) मुख्यमंत्री बने। वे 21 अप्रैल 1979 से 17 फरवरी 1980 तक मुख्यमंत्री रहे।

बिहार की राजनीति उठल-पुथल की राजनीति रही। श्रीकृष्ण सिंह के बाद 1989 ई0 तक कोई भी मुख्यमंत्री अपने पाँच वर्षों का कार्यकाल पूरा नहीं कर सके। उपरोक्त 38 वर्षों की बिहार की राजनीति में अगर हम पिछड़ी एवं दलित जातियों के मुख्यमंत्री के कार्यकाल का अवलोकन करते हैं तो हमें यह देखने को मिलता है कि किसी भी पिछड़ी एवं दलित जाति के नेता अपने पूर्ण कार्यकाल तक मुख्यमंत्री के पद पर आसीन नहीं रह सके। वही उच्च जाति के श्री कृष्ण सिंह, श्री दीप नारायण सिंह, पंडित विनोदानन्द झा, श्री कृष्ण बल्लभ सहाय, श्री महामाया प्रसाद सिंह, श्री सरदार हरिहर सिंह, श्री केदार पाण्डेय, श्री जग्गनाथ मिश्र, श्री चन्द्रशेखर सिंह, श्री विन्देश्वरी दूबे, श्री भागवत झा आजाद, श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह में से कई ने अपने पूर्ण कार्यकाल/अर्धकाल तक अपने पद पर आसीन रहे। बिहार में वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी। जनता पार्टी के विधायक दल के नेता श्री कर्पूरी ठाकुर चुने गये और वे बिहार के मुख्यमंत्री बने। श्री कर्पूरी ठाकुर हजाम जाति से आते हैं। जिसकी संख्या बिहार में काफी कम है। वे खासकर पिछड़ी जातियों के दर्द को भली-भाँति समझते थे। वर्ष 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार थी और श्री मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमंत्री थे। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार होने के कारण इनका हौसला अन्दर ही अन्दर काफी मजबूत था। वर्ष 1978 में केन्द्र सरकार ने पिछड़ी जातियों के आरक्षण के लिए बिहार के ही श्री बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में मंडल कमीशन की नियुक्ति की, जो 1980 में अपना रिर्पोट दिया परन्तु वर्ष 1980 में केन्द्र में सत्ता, कांग्रेस पार्टी के हाथ में आ गई।

मंडल कमीशन के रिर्पोट को 1990 तक ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। पुनः 1989 में जनता दल की सरकार के प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के द्वारा मंडल कमीशन के रिर्पोट को लागू किया गया। श्री कर्पूरी ठाकुर ने पिछड़ी जातियों को आगे बढ़ाने के लिए अपने पार्टी के घोषणा पत्र के अनुसार पिछड़ी जातियों, अगड़ी जाति एवं स्त्रियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया। वे अत्यन्त पिछड़ी जातियों के लिए 12 प्रतिशत, पिछड़ी जातियों के लिए 8 प्रतिशत, अगड़ी जातियों के लिए 3 प्रतिशत तथा स्त्रियों के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। इस प्रकार 1990 से पूर्व श्री कर्पूरी ने पिछड़ी जातियों के विकास के लिए काफी काम किए। फिर भी पिछड़ी जाति मुख्य राजनीति में उभरकर सामने नहीं आ सकी। इस प्रकार कुल मिलाकर यह देखा जाय तो आजादी से लेकर वर्ष 1989 तक बिहार की राजनीति में उच्च जातियों का ही बोलबाला रहा।

वर्ष 1989 में केन्द्र में जनता दल की सरकार बनी और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने। जनता दल की सरकार बनते ही मंडल कमीशन की आवाज जोरों से उठने लगी। देश में आरक्षण की राजनीति और सामाजिक न्याय के नारों के साथ पिछड़े समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। मंडल कमीशन लागू करने वाले तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपनी पुस्तक "मंजिल से ज्यादा सफर" में मंडल कमीशन लागू होने के बाद देश में हुए सामाजिक परिवर्तन को रेखांकित किया है। मंडल कमीशन लागू होने के बाद देश की राजनीति में बदलाव आया। इससे पंचायत से लेकर संसद तक की संरचना बदल गई। जो आजादी के बाद की सबसे बड़ी क्रांति है। इस क्रांति के फलस्वरूप बिहार में पिछड़े वर्ग के विभिन्न जातियों के लोगों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना जागृत हुई और बिहार में पिछड़ों के नेता के रूप में श्री लालू प्रसाद यादव का उदय हुआ। बिहार में वर्ष 1990 में विधानसभा का चुनाव हुआ। श्री लालू प्रसाद यादव ने पिछड़ी जातियों को आपस में संगठित कर अपने पक्ष में मतदान करने के लिए लोगों को प्रेरित किया। बिहार की जनता भी कई वर्षो से कांग्रेस की सरकार के कार्यकलाप से नाराज थी और सत्ता परिवर्तन का विकल्प ढूढ़ रही थी। जिसके कारण पिछड़ी जातियों एवं अन्य जातियों के लोगों ने जनता दल के पक्ष में अपना मतदान किया और श्री लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री बने। 1990 के विधानसभा चुनाव में उच्च जाति के विधायकों की संख्या-105, पिछड़ी एवं अत्यन्त पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या-128, मुस्लिम-19, अनुसूचित जाति एवं जन जाति के विधायकों की संख्या-72 थी। जिसमें पिछड़ा वर्ग के यादवों की संख्या सबसे अधिक थी। बिहार में यादव जाति के लोग श्री लालू प्रसाद यादव को अपना जातिगत नेता मानते थे। श्री यादव ने 10 मार्च, 1990 से 28 मार्च, 1995 तक अपने पूर्ण कार्यकाल तक मुख्यमंत्री रहे। पुनः वर्ष 1995 में विधानसभा चुनाव हुआ और श्री लालू प्रसाद यादव दोबारा मुख्यमंत्री बने। उन्होंने पिछड़ी जातियों के आरक्षण के अन्तर्गत यादव को प्रमुखता दी और कोईरी तथा कुर्मी की उपेक्षा की। जिसके कारण जनता दल में अन्दर ही अन्दर मतभेद शुरू हो गया। उस समय श्री नीतीश कुमार कुर्मी जाति के कद्दावर नेता थे। उन्होंने कोईरी और कुर्मी जाति को संगठित कर लव-कुश समीकरण बनाया और समता पार्टी का गठन किया। बाद में जनता दल को तोड़कर वर्ष 1997 में लालू यादव ने राष्ट्रीय जनता दल का गठन किया। समता पार्टी कालान्तर में जद (यू०) के रूप में परिवर्तित हो गयी और श्री नीतीश कुमार भारतीय जनता पार्टी से गठबंधन कर लालू यादव की सत्ता को चुनौती देने लगे। वर्ष 1995 के चुनाव में उच्च जाति के विधायकों की संख्या 66, पिछड़ी एवं अत्यन्त पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या-165, मुस्लिम-19 और अनुसूचित जाति एवं जन जाति के विधायकों की संख्या-72 थी। इस चुनाव में भी पिछड़ी जाति के यादवों की संख्या सबसे अधिक थी। पुनः वर्ष 2000 में विधानसभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव में समता पार्टी और भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरी लेकिन पूर्ण बहुमत नहीं होने के कारण विश्वास मत हासिल करने में नाकाम रही। जिसके कारण श्री नीतीश कुमार मात्र 6 दिनों तक ही मुख्यमंत्री रह सके। उसके बाद दूसरी बड़ी पार्टी राजद, कांग्रेस और अन्य सहयोगी दलों का सहयोग लेकर सदन में विश्वास मत हासिल किया और सरकार बनाने में सफल रही। राजद ने विधायक दल के नेता के रूप में श्रीमति राबड़ी देवी को चुना गया और वह पुनः बिहार की मुख्यमंत्री बनी। श्रीमति राबड़ी देवी वर्ष 2000 से वर्ष 2005 तक अपना पूर्ण कार्यकाल पूरा की। इस चुनाव में निर्वाचित उच्च जाति के विधायकों की संख्या-56, पिछड़ी एवं अन्य पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या-128, मुस्लिम-19 और अनुसूचित जाति के विधायकों की संख्या-40 थी। पुनः वर्ष 2005 में विधानसभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव में लोग श्री लालू प्रसाद यादव एवं श्रीमति राबड़ी देवी के कार्यकलापों से लोग काफी क्षुब्ध थे तथा यादवों के दहशत से भी भयभीत थे। बिहार की जनता सत्ता की बागडोर दूसरे नेता के हाथों में सौपने के लिए व्याकुल थी। इस चुनाव में बिहार की जनता पिछड़ी जाति के नेता श्री नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री के रूप में देखना चाहती थी। उच्च जाति के लोग भी यादवों का दंश झेल चुके थे। जिसके कारण उच्च जाति के लोग भी जद (यू०) एवं उसके सहयोगी दलों के पक्ष में अपने मताधिकार का प्रयोग किया। परन्तु फरवरी 2005 के चुनाव में कोई भी दल पूर्ण बहुमत पाने में नाकाम रही। फलस्वरूप बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा। पुनः नवम्बर 2005 के चुनाव में जद (यू०) और भाजपा गठबंधन आपार बहुमत के साथ सत्ता में आयी और श्री नीतीश कुमार बिहार के मुख्यमंत्री बने। पुनः वर्ष 2010, 2015 एवं 2020 में विधानसभा का चुनाव हुआ और पुनः बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार बने। 2020 के विधानसभा चुनाव में निर्वाचित उच्च जाति के विधायकों की संख्या-64, पिछड़ी एवं अन्य पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या-121, मुस्लिम-20 और अनुसूचित जाति के विधायकों की संख्या-39 है। श्री कुमार विगत 19 वर्षो से मुख्यमंत्री के पद पर आसीन हैं। इस

प्रकार हमें देखने को मिल रहा है कि विगत 19 वर्षों से बिहार की राजनीति की बागडोर पिछड़ी जाति के नेताओं के हाथों में रही है अर्थात् पिछड़ी जाति का स्थायित्व कायम हो चुका है।

निष्कर्षः-

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आजादी के समय अथवा 1952 के विधानसभा चुनाव से लेकर वर्ष 1989 तक बिहार की सत्ता की बागडोर उच्च जाति, पिछड़ी जाति, मुस्लिम तथा अनुसूचित जाति के नेताओं के हाथों में रही। वर्ष 1990 से वर्त्तमान तक अर्थात् 34 वर्षों से एकछत्र बिहार की बागडोर पिछड़ी जातियों के नेताओं के हाथों में है। राजनीति में किस वक्त क्या होगा, कुछ भी कहना संभव नहीं है लेकिन वर्त्तमान स्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आगामी चुनाव में भी बिहार की बागडोर किसी पिछड़ी जाति के नेताओं के हाथों में ही होगी। कई वर्षों तक राजनीतिक सत्ता से दूर रहने वाले पिछड़ी जातियों के नेताओं के लिए यह गर्व की बात है।

संदर्भ स्रोतः-

1 महतो, महेन्द्र कुमार, जाति एवं सामाजिक असमानता, महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह सोसाइटी, दरभंगा, 1996

2 सिन्हा, सच्चिदानन्द, लोकतंत्र की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.

3 डॉ हरिनारायण ठाकुर, भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, कल्पज पब्लिकेशन्स, प्रकाशन वर्ष 2009, दिल्ली.

4 डॉ० विष्णुदेव रजक, कर्पूरी ठाकुर का राजनीतिक दर्शन दलितों और पिछड़ों के मसीहा के रूप में, जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2012, पटना एवं नई दिल्ली.

5 प्रसन्न कुमार चौधरी, स्वर्ग पर धावा बिहार में दलित आन्दोलन, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-2005, नई दिल्ली.

स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय व व्यक्तित्वः एक अध्ययन

डॉ० योगेश्वर नाथ पाण्डेय

इतिहास विभाग

प्रस्तावना

किसी विशाल वटवृक्ष के नीचे खडेष् होकर जब हम विस्मय विमुग्ध हो उसके विस्तृत आयतन की ओर देखते हैं, तब क्या हम सोच भी पाते है कि यह विराट वृक्ष कभी एक सरसों के दाने जैसे छोटे-से बीज के भीतर छिपा हुआ था? उसी प्रकार 12 जनवरी, 1863 ईसवी, पौष कृष्ण सप्तमी तिथि के दिन कलकळो के सिमला मुहल्ले में विश्वनाथ दळा और भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र के रूप मे नरेन्द्र नाथ का जन्म हुआ, जो बाद मे विवेकानन्द के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। उस समय कौन सोच पाया होगा कि यह शिशु मात्र उनतालीस वर्ष के जीवनकाल मे एक ऐसी आश्चर्यजनक प्रतिभा, ऐसी महान शक्ति के रूप में विकसित हुआ। जिसका प्रभाव देशकाल की मर्यादा के भीतर सीमाबद्ध नहीं रहेगा, जो सर्वदा भिन्न भिन्न परिस्थितियों मे पले, भिन्न-भिन्न नर नारियों के प्राणों मे मानवात्मा की शाश्वत महिमा, सतत न्याय मैत्री की सजीव प्रेरणा एवं निर्भय हो लोककल्याण करने की स्फूर्ति जगाती रहेगी। यह कमनीयकान्ति देवशिशु जब धीरे-धीरे एक प्रियदर्शन परन्तु तेजस्वी, प्रतिभाशाली, शौर्य-वीर्य पराक्रम से पूर्ण नवयुवक मे परिणत हुआ, तब भी कोई सोच नही सका था कि यह नरेन्द्रनाथ दळा विश्वरेण्य स्वामी विवेकानन्द बनेगा।[1]

नरेन्द्रनाथ के दक्षिणेश्वर आगमन के पहले ही श्री रामकृष्णदेव को एक अलौकिक दर्शन हुआ था। उसी से वे नरेन्द्रनाथ के स्वरूप के सम्बन्ध मे अवगत हो सके थे। इस विषय मे उन्होने कहा था- ''एक दिन देखा कि मन समाधिपथ से ज्योतिर्मय मार्ग पर ऊपर की ओर उठता जा रहा है। चन्द्र सूर्य तारकमण्डित स्थूल जगत का सहज अतिक्रमण करते हुए मन सर्वप्रथम सूक्ष्म भवजगत मे प्रविष्ट हुआ। मार्ग के दोनो ओर नाना प्रकार के देव देवियों की भावघन मूर्तियां अवस्थित दिखाई दी। यथाक्रम मन उस राज्य की चरम सीमा पर जा पहुचा। वहां देखा- एक ज्योतिर्मय प्राचीर ने खण्ड और अखण्ड के राज्यों को पृथक कर रखा हैं। दूसरे ही क्षण दिखाई दिया-दिव्य ज्योतिर्घन देहधारी सात प्राचीन ऋषि वहां समाधिमग्न हुए बैठे है। मै समझ गया कि ज्ञान एवं पुण्य, त्याग एवं प्रेम मे ये ऋषिगण मानव तो क्या देव देवियों तक का अतिक्रमण कर गये है। मै विस्मित होकर उनके महात्म्य के सम्बन्ध मे विचार कर ही रहा था कि देखा कि सम्मुख अवस्थित अखण्ड के राज्य के भेदरहित समरस ज्योतिर्मण्डल का एक अंश घनीभूत होता हुआ एक दिव्य शिशु के रूप में परिणत हुआ। उस देवशिशु ने उनमे से एक ऋषि के निकट आकर अपनी सुकुमार भुजाएं उनके गले मे डाल दी, और अपने वीणाविनिन्दत अमृतमय स्वर से प्रेमपूर्वक पुकारते हुए उन्हें समाधि से जगाने की अथक चेष्टा करने लगा। उसके कोमल प्रेमपूर्ण स्पर्श से ऋषि समाधि से व्युत्थित हुए एवं अर्धोन्मीलित निष्पलक नेत्रों से उस अपूर्व बालक की ओर देखने लगे। ऋषि के मुखमण्डल का प्रसन्नोज्जवल भाव देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वह बालक दीर्घकाल से उनका परिचित है उनका हृदय धन है। फिर उस उदभुत देवशिशु ने अत्यन्त आनन्दप्रकट करते हुए उनसे कहा, 'मै जा रहा हूं, तुम्हे भी मेरे साथ चलना होगा। उसके इस अनुरोध के उळार मे ऋषि के कुछ न कहने पर भी उनके नेत्रों के प्रेमपूर्ण भाव ने उनके अन्तर की सम्मति व्यक्त कर दी। कुछ देर तक इस प्रकार सप्रेम दृष्टि से बालक की ओर देखते हुए वे पुनः समाधिमग्न हो गये। फिर मैने विस्मित होकर देखा कि उनके शरीर मन का एक अंश उज्जवल ज्योति के रूप मे परिणत होकर विलोममार्ग से धराधाम में अवतरण करने लगा। नरेन्द्र को देखते ही मै समझ गया कि यह वही ऋषि है।"[2]

यहां पर यह कहना अप्रासांगिक न होगा कि सप्तर्षिमण्डल के उन ऋषि के गले मे अपनी भुजाएं डालकर उनसे अपने लीलासहचर के रूप मे नर देह धारण कर धराधाम मे अवतरण करने का अनुरोध करने वाला देवशिशु स्वयं श्रीराम कृष्ण ही थे।

नरेन्द्रनाथ के विषय मे श्रीरामकृष्ण देव ने और भी कहा था-''नरेन्द्र मानों सहस्त्रदल कमल है। इतने सारे लोग यहां आते हैं, किन्तु नरेन्द्र जैसा दूसरा कोई भी नहीं आया।"

कण्ठरोग से पीड़ित हो श्रीरामकृष्णदेव उस समय काशीपुर के उद्यानगृह मे निवास कर रहे थे। अपने जीवनकल्याणरूपी कार्य को समाप्त करने के बाद अब वे महाप्रस्तान के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। परन्तु इस कठिन व्याधि मे भी वे विशेषकर त्यागी शिष्यों को साधन भजन त्याग तपस्यादि के माध्यम से युगधर्मचक्र के परिचालन के लिए तैयार कर रहे थे। नरेन्द्रनाथ को उन्होने इस समय विशेष रूप से प्रशिक्षित किया था। एक दिन उन्होने नरेन्द्र को निर्विकल्प समाधि का अनुभव प्रदान किया और जगज्जननी का कार्य करने की प्रेरणा दी।

सम्भवतः इसीलिए नरेन्द्रनाथ ने स्वामी विवेकानन्द के रूप मे परिणत हो योगारूढ़ रहते हुए समस्त विश्व मे इतना महान कार्य सम्पन्न किया। भगीरथ जिस प्रकार सुरसरि गंगा को मर्त्यलोक ले

आये थे, उसी प्रकार श्री राम कृष्ण संसार के परित्राण के लिए सप्तर्षिमण्डल के इन ऋषि को समाधिभूमि से उतार लाये थे। समस्त संसार, और विशेषकर भारत, विवेकानन्द के लिए श्री राम कृष्ण के प्रति चिरऋणी रहेगा। स्वामी विवेकानन्द श्री रामकृष्ण की वाणी के मूर्तरूप थे। उन्ही के माध्यम से श्री रामकृष्ण ने समस्त मानवजाति के कल्याणर्थ अपने युगधर्म का सम्यक रूप से स्थापन एवं प्रचार किया।

माता-पिता की शिक्षाः-

नरेन्द्रनाथ के पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध एटार्नी थे। वे अंग्रेजी तथा फारसी भाषा के विद्वान, बुद्धिमान और संगीतप्रेमी थे। धीर-गम्भीर स्वभाव, विद्यानुराग, तेजस्विता, उदारता एवं स्वाधीन विचार यह उनके चरित्र का वैशिष्टय था। साथ ही वे गरीबों के प्रति सदा सहानुभूति शील, दान मे मुक्तहस्त एवं अनेक सगे सम्बन्धियों के प्रतिपालक थे।

माता भुवनेश्वरी देवी का चरित्र भी अनुपम था। वे रमणीकुल की रत्नस्वरूपा थी। तभी तो वे रत्नगर्भा बन सकी। नररत्न को जन्म दे सकी। हिन्दू समाज मे नारियां ही शक्ति की मूल उद्‌गम है। उन्हीं के व्यक्तित्व तथा चरित्र का प्रभाव उनकी सन्तानों पर विशेष रूप से पड़ता है। भुवनेश्वरी देवी विशेष बुद्धिमती, कार्यकुशल एवं भक्तिपरायण थी। अपने मधुर स्वभाव के कारण के कारण वे सबकी प्रिय थी। देवी देवताओं के प्रति वे श्रद्धापरायण थी तथा भक्तिपूर्वक पूजा अर्चना आदि किया करती थी। वे सभी दृष्टियों से एक आदर्श हिन्दू नारी थी। उनके समान तेजस्विनी एवं सर्वगुणसम्पन्न नारियां वस्तुतः विरल है। आगे चलकर किसी समय स्वामी विवेकानन्द ने कहा था-''मुझमें जो ज्ञान का विकास हुआ है, उसके लिए मै अपनी माता का चिरऋणी हूं।''[3]

शैशव से ही नरेन्द्रनाथ मे असामान्य प्रतिभा एवं अदम्य शक्ति के चिह्न दिखने लगे थे। रोज रात को सोने के पहले अपने पिता के मुख से 'मुग्धबोध' व्याकरण के सूत्र सुन सुनकर उन्हे वह प्रायः पूरा ही कण्ठस्थ हो गया था। माता के मुख से सुनकर रामायण तथा महाभारत के कई अंश बालक के रूप मे विवेकानन्द बड़े सुन्दर ढंग से दुहरा देते थे। बाल्य अवस्था से ही वे बडेघ मेघावी, बुद्धिमान, निर्भीक, साहसी और मित्रप्रिय थे। उनकी स्मृति तेज थी। एक बार जो पढ़ते या सुन लेते थे वह सदा के लिए उनके स्मृतिपटल पर अंकित हो जाता। अद्‌भूत क्षमतासम्पन्न रामभक्त नरेन्द्र के जीवनादर्श प्रतीक के रूप में थे। इसीलिए आगे चलकर उन्होने बल, वीर्य, साहस एवं पवित्रता के जीवन्त विग्रहस्वरूप हनुमानजी की पूजा जड़ निद्रित भारत के घर घर में प्रचलित करनी चाही थी।

शैशव से ही नरेन्द्र के नटखटपने की कोई सीमा नहीं थी। डराने धमकाने और डांट फटकार के बावजूद उसे रोकते नहीं बनता था। वे एक चंचल बालक थे। उळारकाल में स्वामी विवेकानन्द की पाश्चात्य शिष्याओ को नरेन्द्र के बचपन की शरारतों की कहानी सुनाते हुए वृद्ध जननी भुवनेश्वरी देवी ने सगर्व कहा था-''तुम्हे क्या बताऊं? उसे सम्हालने के लिए दो महरियॉ पहर उसके पीछे घूमा करती थी।''

बचपन से ही नरेन्द्र मे ध्यानपरायणता सहजात संस्कार था। एक दिन वह साथियों के साथ खेल-खेल मे मकान के तिमंजले पर शिवजी की मूर्ति के सामने ध्यान करने बैठा रहा। थोड़ी देर बाद एक बालक 'सांप कहकर चिल्ला उठा। साथ के सभी बालक दरवाजा खोलकर निकल भागे। किन्तु नरेन्द्र ध्यानमग्न बैठा रहा। कुछ समय बाद सांप अपना फन समेटकर चला गया। बहुत ढूँढ़ने पर भी उसका कोई सुराग नहीं मिला।

शिक्षा-दीक्षाः-

दक्षिणेश्वर मे श्रीरामकृष्णदेव ने एक दिन कहा था-''नरेन्द्र ध्यानसिद्ध महापुरूष हैं। जिस दिन जान जाएगा कि वह कौन है, उस दिन से वह इस संसार मे नहीं रह सकेगा। दृढ़ संकल्प के बल पर उसी क्षण योगमार्ग से शरीर त्याग देगा।''

छह वर्ष की आयु मे नरेन्द्र को पाठशाला भेजा गया। किन्तु थोड़ ही दिनों में उसे सहपाठियों से अपशब्द सीखते देख विश्वनाथदत्त ने उसका पाठशाला जाना बन्द करा दिया और घर पर ही शिक्षक नियुक्त कर उसकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। सात वर्ष की आयु मे जब नरेन्द्र को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपॉलिटन इन्स्टिट्यशन मे प्रवेश कराया गया, तब पहले तो वह अंग्रेजों पढ़ने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुआ। उसका कहना था- वह तो विदेशी भाषा है, उसे क्यो पढूं? उससे तो अपनी भाषा सीखना ही अच्छा है। बाद मे उस बालक के मन मे परिवर्तन हुआ। फिर वह बड़े उत्साह के साथ अंग्रेजी सीखने लगा। कहा जाता है कि नरेन्द्र ने अपनी माता के निकट ही सर्वप्रथम अंग्रेजी वर्णमाला पढ़ी थी।[4]

स्कूल का पाठ तैयार करने मे नरेन्द्र को अधिक समय नहीं लगता था। मास्टर साहब पढते जाते और नरेन्द्र आंखू मूंदे लेटे लेटे सुनते रहते- इसी से उन्हे सब याद हो जाता था। अब बचा हुआ समय कैसे बिताया जाय? अतः वह मुहल्ले के बालको के साथ व्यायाम, नाटक आदि कितनी ही चीजों मे भाग लेते रहते। खेलकूद, तैरना आदि सभी मे वह प्रथम स्थान प्राप्त कर लेते। जन्म से ही उनमें नेतृत्व क्षमता थी। परवर्ती काल मे स्वामी विवेकानन्द कहते थे-'ठोक-पीटकर किसी को नेता नहीं बनाया जा सकता। नेता होने वाला नेता बनकर ही जन्मता है।''

नरेन्द्र के बालसुलभ के नटखटपन तथा अद्‌भुत साहस की अनेक घटनाएं सुनने मे आती है। वह सब तो मानो रोज की बात थी। तभी तो विश्वविजयी बनकर अमेरिका से लौट आने के बाद अपने शिष्यों से विनोद करते हुए उन्होने कहा था-''मै बड़ा नटखट था। अन्यथा क्या यो ही सारी दुनिया घूमकर आ जाता?''

व्यक्तित्व गुणः-

बचपन से ही नरेन्द्र 'भय' का नाम तक नहीं जानते थे। हौआ का डर, भूत का डर या ब्रह्मदैत्य का डर दिखाने पर वह हंसकर उड़ा देते। किसी ने कहा है इसीलिए उस पर विश्वास कर

लेना–यह उनके स्वभाव के विरूद्ध था। किसी भी बात का जब तक उन्हे प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल जाता, वह उस पर विश्वास नहीं करते।

परीक्षा मे उत्तीर्ण होना नरेन्द्र के लिए एक साधारण सी बात थी। वह परीक्षा के केवल एक–दो महीने पहले पाठय पुस्तको को हाथ लगाते। किन्तु अपनी असामान्य मेधा के फलस्वरूप वह सदैव सम्मान के साथ उळीर्ण होता। पाठयपुस्तको की क्षुद्र सीमा के भीतर उनकी ज्ञानस्पृहा तृप्त नहीं होती थी। प्रवेशिका परीक्षा के पूर्व ही उसने भारत के इतिहास पर लिखे प्राय: सभी ग्रन्थों एवं प्रसिद्ध लेखको द्वारा रचित साहित्य आदि का अध्ययन कर विभिन्न विषयो से अपने ज्ञान भण्डार को समृद्ध बना लिया था।

नरेन्द्र के अन्तर मे जो विराट् पुरूष वास करता था, उसी की सक्रिय शक्ति के प्रभाव से उसमें बाल्यावस्था से ही महान तेज दिखायी देता था। यह शक्ति उसमें विविध रूपों मे नाना प्रकार से प्रकट होती थी। केवल सप्तर्षिमण्डल के ऋषि ही नहीं, व्यास वाल्मीकि आदि प्राचीन आर्य ऋषि, बुद्ध शंकराचार्य आदि लोकोळार आचार्यगण तथा भीष्म अर्जुन आदि शूरवीर पुरूष ये सभी महान आत्माएं मानों नरेन्द्रनाथ के भीतर एक साथ जन्मी थी। इसीलिए उसके भीतर विपुल आध्यात्मिक शक्ति, विलक्षण, इहलौकिक और पारलौकिक ज्ञान, दया करूणा, परदु:खकातरता, साम्य मैत्री, स्वाधीनता प्रेम, आत्मविश्वास, तेज, शौर्य, वीर्य, धीरे, स्थिरता आदि शरीरिक एवं मानसिक गुणों और सर्वोपरि अप्रतिद्वन्द्वी नेतृत्व के भाव का इतनी प्रखरता के साथ विकास हुआ था। उन्होने समस्त संसार को प्लावित करने वाली जो महान धर्मतरंग बहायी, उसकी शुभ सूचना उनके बाल्यजीवन मे ही पायी जाती है। बचपन की छोटी बड़ी अनेक घटनाओं और कार्यकलापों के परिणामस्वरूप ही नरेन्द्रनाथ परवर्ती काल मे स्वामी विवेकानन्द के रूप मे परिणत हो सके थे।

बचपन से ही दीन–दुखियों का कष्ट देखकर नरेन्द्र के प्राण रो उठते थे। पास देने योग्य कुछ न मिलने पर उन्हें अपने अंग के वस्त्र ही दे डालते। निर्धनों को कुछ देकर उसे परम सन्तोष का अनुभव होता। दुखियों के दु:ख कष्टों को वह अपने अन्त: करण से अनुभव करता और उनके दु:ख दूर करने का उपाय सोचने मे उसका चिळा व्यग्र हो उठता। दीन, दलित एवं उपेक्षितों का कल्याण करना यही मानों उसका जीवनव्रत था। आगे चलकर अमेरिका से स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र मे लिखा था–''जो लाख लाख उपेक्षित नर नारी दिन–प्रतिदिन दु:ख के अंधेरे गर्त मे अधिकाधिक डूबते जा रहे है, जिन्हे सहायता देने वाला या जिनके बारे मे सोचने वाला कोई नहीं, जो दीन–हीन एवं पीड़ित है, उनके द्वार तक सुख, स्वच्छन्दता, धर्म, नीति एवं शिक्षा ढोकर पहुंचा देना होगा। यही मेरी आकांक्षा और यही मेरा व्रत है। मैं उसे पूरा करूंगा या मृत्यु का वरण करूंगा।" भारत ही हृतसर्वस्व जनता के उद्धार का संकल्प लेकर उन्होने विश्वकल्याण की बलिवेदी पर अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया। वे दीनों के त्राता थे। यही उनके चरित्र का महत्तम पहलू था। इसी महान कार्य के लिए उन्होने देहधारण किया था।

पिता विश्वनाथ दत्त ने घर मे एक बड़े उस्ताद को नियुक्त कर नरेन्द्रनाथ को शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दिलायी थी। श्री रामकृष्णदेव को नरेन्द्र का संगीत अत्यन्त प्रिय था। उनका गाना सुनते सुनते श्रीरामकृष्णदेव का मन अतीन्द्रिय स्थिति मे पहुंच जाते वे समाधिमग्न हो जाते। वे कहा करते –''इनके अन्दर जो है, वह नरेन्द्र का गाना सुनते ही फुफकार उठता है।" अर्थात नरेन्द्र का गाना सुनते ही उनकी कुण्डलिनीशक्ति जाग उठती थी। नरेन्द्र न केवल गायन मे पारंगत थे, अपितु तबला, पखावज, मृदंग, सितार, दिलरूबा आदि वाद्य बजाने मे भी सिद्धहस्त थे। उन्होंने नृत्य भी सीखा था। पाश्चात्य देश में जाने के बाद वे वहां के संगीत मे भी विज्ञ हो गये थे।

नरेन्द्र का शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ था। उम्र के कुछ बढ़ते ही वह एक और अश्वारोहरण मे निपुण, तैरने मे निष्णात और व्यायामकुशल हो गये, तो दूसरी ओर दर्शनादि विभिन्न शास्त्रों मे विद्वान, नृत्य, गीत एवं विविध वाद्यो के वादन मे निपुण तथा हास्यविनोदप्रिय रसिक बन गये। गम्भीर चिन्तशील, पवित्रचित, ध्यानपरायण, अध्यनशील तो वह थे ही। इन बहुविधगुणों से विभूषित व्यक्तित्व के फलस्वरूप उनका सर्वजनप्रिय हो जाना स्वाभाविक ही था।

मेट्रोपॉलिटन इन्स्टिटयूट मे पढ़ते समय किसी कार्यक्रम के अवसर पर नरेन्द्र के भीतर निहित 'वाग्मी विवेकानन्द' ने स्वयं को प्रकट किया था। शाला मे परितोषिक वितरण के साथ ही किसी ज्येष्ठ शिक्षक की सेवानिवृत्ति के उपलक्ष्य मे सभा हुई थी। सभा के अध्यक्ष थे विख्यात वक्ता श्री सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय। उनके सामने खड़े होकर भाषण देने का साहस किसी को नहीं हुआ। तब सब से आग्रह से विवश हो नरेन्द्रनाथ कुछ कहने के लिए उठ खड़ा हुए और शुद्ध अंग्रेजी मे आधे घण्टे तक उन्होंनें बड़ा ही मनोरम और हृदयस्पर्शी भाषण दिया। भाषण समाप्त कर जब वह बैठे तो चारो ओर उनकी प्रशंसाध्वनि गूंजने लगी। अध्यक्ष ने व्याख्यान की प्रशंसा तो की ही, साथ ही वक्ता के उज्जवल भविष्य के सम्बन्ध मे भी उन्होने स्पष्ट संकेत दिया था।[5]

संदर्भ

1. स्वामी अपूर्णानन्द, स्वामी विवेकानन्द: संक्षिप्त जीवनी तथा उद्देश्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2004, पृ0–1–3।
2. वामी अपूर्णानन्द, स्वामी विवेकानन्द: संक्षिप्त जीवनी तथा उद्देश्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2004, पृ0–1–3।
3. वामी अपूर्णानन्द, स्वामी विवेकानन्द: संक्षिप्त जीवनी तथा उद्देश्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2004, पृ0–4–9
4. वामी अपूर्णानन्द, स्वामी विवेकानन्द: संक्षिप्त जीवनी तथा उद्देश्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2004, पृ0–4–9।
5. वामी अपूर्णानन्द, स्वामी विवेकानन्द: संक्षिप्त जीवनी तथा उद्देश्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2004, पृ0–4–9।

दलितो के उत्थान में डॉ० भीमराव अम्बेडकर का योगदान

डॉ० अर्चना सिन्हा

शोध निर्देशिका, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पी०जी० कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज

धनराज

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पी०जी० कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज

बहुत से लोगो का यह मत है कि डा0 अम्बेडकर एक राजनेता से अधिक एक समाज सुधारक थे। वास्तव में यदि उनके सम्पूर्ण जीवन का अवलोकन किया जाए तो यह सत्य भी प्रतीत होता है, क्योकि यह आजीवन दलित वर्ग के उत्थान के लिए संघर्षशील रहे। उनके चिन्तन का केन्द्र बिन्दु दलित वर्ग ही था। उनके मन में केवल अपने कल्याण की कल्पना नही थी, वरन् वह सम्पूर्ण दलित समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लाना चाहते थे। उनका लक्ष्य सम्पूर्ण भारतीय समाज लाना चाहते थे। उनका लक्ष्य सम्पूर्ण भारतीय समाज को समतामूलक बनाने का था। भारतीय समाज विशेषकर हिन्दु समाज, जाति विभेद, और विषमता पर आधारित था, जिसमे डा0 अम्बेडकर स्वयं पैदा हुए थे। उस भेदभाव आदि विषमतामूलक सामाजिक व्यवस्था को मिटाकर समतामूलक समाज के निर्माण के लिए बाबा साहेब ने राजनीति के क्षेत्र में प्रयास शुरू किये, और उनके प्रयत्न मौलिक एवं क्रान्तिकारी थे।

1919 ई0 में भारतीय राजनीतिक पटल पर उनका उभरना एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना मानी जाती है। 1917 तक भारतीय राजनीति में उनकी स्थिति एक आम आदमी की थी, लेकिन देश में आछुतो के सामाजिक तथा राजनीतिक इतिहास में 1917 ई0 एक महत्वपूर्ण वर्ष था क्योकि यही से दलित के अन्दर राजनीतिक चेतना आरम्भ हुई।[1] 1919 ई0 के प्रारम्भ में साउथबरो समिति ने जो लार्ड माण्टफोर्ड सुधारो के सन्दर्भ में मताधिकार पर विचार कर रही थी। समिति ने डा0 अम्बेडकर को अपना ब्यान देने के लिए कहॉ।[2] डा0 अम्बेडकर ने सदियो से मानवाधिकार से वंचित दलितो के जनतांत्रिक अधिकार के लिए आर्यो के समक्ष प्रथम बार लिखित बयान में यह कहा कि भारत में लोकप्रिय सरकार के लिए मताधिकार आदि निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था करते समय मताधिकार समिति को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह दोनो अर्थात विचारो के प्रतिनिधित्व आदि व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करे।[3]

डा0 अम्बेडकर के ही प्रयत्न से 1919 ई0 के अधिनियम में पहली बार दलित वर्ग के राजनीतिक संवैधानिक अस्तित्व को मान्यता प्रदान की और आने वाले वर्षो में गवर्नर जनरल ने जिस केन्द्रिय विधान सभा के लिए 14 गैर सरकारी सदस्यो को नामजद किया उनमें से एक प्रतिनिधि दलित वर्ग का भी था। इतना ही नही प्रान्तीय विधान-सभाओं में भी दलित वर्गो को प्रतिनिधित्व किया गया। केन्द्रीय प्रान्तो में चार सदस्य बंगाल तथा संयुक्त प्रान्तों से थे। दलित वर्गो का प्रतिनिधित्व करने के लिए मद्रास में दस सदस्यों को नामजद किया गया। डा0 अम्बेडकर के प्रयत्न से दलित वर्ग को यह बहुत बड़ी विजय थी। नि:संदेह गवर्मेन्ट आफ इंडिया एक्ट 1919 भारत में अहूतो के राजनीतिक इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी बाद में चलकर दलित समाज को सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्ररित किया। वह अपने इस कथन में सही थे कि 1920 ई0 के पश्चात दलित वर्गो की प्रगति सामाजिक न रहकर एक राजनीति आन्दोलन बन गयी।[4]

1920 ई0 में डा0 अम्बेडकर ने एक मराठी पाक्षिक पत्रिका 'मूक नायक' आरम्भ की थी। संपादक जी0 पाण्डूरंग नाटराम भास्कर थे, जो महार जाति के शिक्षित व्यक्ति थे। इस तरह डा0 अम्बेडकर स्वयं सामाजिक आन्दोलन से जुड़े।

अब वह अच्छी तरह से समझ गये थे कि राजनीति में पकड़ होने से सामाजिक विशमताओ का बहुत हद तक समाप्त किया जा सकता है। बाद में उन्होने कहा भी था कि सारी सामाजिक प्रगति राजनीतिक सत्ता पर निर्भर करती है राजनीतिक सत्ता सामाजिक प्रगति का द्वार है। अनुसूँचित जातियॉ अपने आप को एक तीसरी ताकत बन जाए, तो वे इस राजनीतिक सत्ता को प्राप्त कर अपनी मुक्ति का द्वार खोल सकती है।[5]

1917 से लेकर 1935 तक डा0 अम्बेडकर ने दलितो का राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए जोरदार संघर्ष किये। इसी दौरान 3 फरवरी 1928 को साईमन कमीशन भारत आया। कमीशन

के सामने दलित समाज की कुल 18 संस्थाओ ने अपनी गवाही दीं उनमें से 16 संस्थाओं ने दलित समाज के लिए स्वतन्त्र निर्वाचन क्षेत्र की मॉग की थी।[6] बहिस्कृत हितकारिणी सभा की ओर से डा0 अम्बेडकर ने जो निवेदन पत्र दिया था, उसमे उन्होने संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र और आरक्षित स्थानो की मांग की थी। उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि जिनके हाथो में राश्ट्र की बागडोर है उन्हे लाखो दलितो की चिन्ता नही है। हिन्दुस्तान की जनसंख्या की पाचवॉ भाग दलितो की चिन्ता नही है।7 हितकारिणी सभा ने मुंबई विधान मण्डल में 140 स्थान में से 22 स्थान दलितो के लिए मॉगे थे और सदस्यो की नामांकन पद्वति का विरोध किया था। चुनाव प्रणाली की उपयोग दलितो के लिए भी लागू होना चाहिए। दलितो को राजनीतिक शिक्षा और जागरूकता की आवश्यकता है तथा पद यह एक विषेश अधिकार पद होने से दलितो की मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए, यह भी निवेदन किया गया था।[8]

डा0 अम्बेडकर के साइमन कमीशन से कई मुद्दो पर मतभेद हुए। उन्होने कमीशन को अलग से एक निवेदन पत्र दिया। जब रिपोर्ट तैयार हुई तो डा0 अम्बेडकर ने न केवल इस पर अपना हस्ताक्षर किये, बल्कि उन्होने अलग से 60 पन्नों की अलग मत पत्रिका 17 मई 1929 को संलग्न की।[9] इस पत्रिका मे व्यक्त विचारो के हानिमन जैसे आलोचको ने डा0 अम्बेडकर की प्रषंसा की। विविध वक्ताओं ने डा0 अम्बेडकर को ''चकमक पत्थरो मे हीरा'' सम्बोधित कर गौरवान्वित किया।[10]

कमीशन की अनुशंसा पर भारत के विभिन्न दलो के नेताओ को ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए लंदन आमन्त्रित किया, और दलित प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मेलन में डा0 अम्बेडकर ने भाग लिया। नवम्बर 1930 को लंदन पहुचने के पश्चात उन्होने सबसे पहला काम अध्यक्ष को एक स्मरण पत्र देने का किया, जिसमे दलित वर्ग की सुरक्षाओ का विवरण था, जिसमें उन्होने निम्नलिखित मॉगे रखी थी।

1. अस्पृश्यता को समाप्त कर समान नागरिक संहिता लागू किया जाए।
2. सभी को समान अधिकारो के उपयोग के लिए स्वतन्त्रता दी जाए।
3. सवर्ण हिन्दुओ द्वारा दलित वर्गो के बहिष्कार को एक अपराध घोषित किया जाए।
4. दलित वर्गो के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओ में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए।
5. प्रथम दस सालो के लिए उन्हे वयस्क मताधिकार तथा पृथक निर्वाचन दिया जाए, और तत्पश्चात उन्हे संयुक्त निर्वाचन सहित आरक्षित सीटे दी जाये।
6. सरकारी सेवाओ में दलितो को पर्याप्त स्थान दिया जाये अर्थात सेवाओं का पुनर्गठन इस प्रकार किया जाए कि सभी समुदायो को पर्याप्त प्रधिनिधित्व दिया जाए।
7. दलित वर्ग की अन्य कठिनाइयों का निराकरण किया जाए और भेदभाव की नीति तथा उनके हितो की उपेक्षा से उनकी विषेश विकासात्मक योजना द्वारा रक्षा की जाये आदि।
8. मन्त्रिपरिषद के निर्माण तथा सरकार की निर्णय प्रक्रिया में दलित वर्गो को स्थान दिया जाये।[11]

अम्बेडकर लंदन में आयोजित तीनो सम्मेलनो में दलितो के राजनीति अधिकारो की मॉग जारेदार ढ़ग से करते रहे। इसके लिए उन्होने समय-समय पर वक्तव्य भी देते रहे। 1932 में डा0 अम्बेडकर और गॉधी जी के मध्य पूना पैक्ट हुआ जिसका दलित राजनीति में एक-एक ऐतिहासिक महत्व रहा है। 1932 तक अम्बेडकर की स्थिति दलित सुधारक के प्रवक्ता के रूप में बन चुकी थी। दलितो एवं शोषित जातियों में तो वह एक मसीहा के रूप में देखे जाने लगे थे।[12]

1935 के अधिनियम के अनुसार प्रादेशिक स्वाधीनता स्वीकृत हो चूकी थी, और सभी प्रान्तो में चुनाव के बाद राज्य सरकारे स्थापित होने वाली थी। हर दल चुनाव की तैयारी कर रहा था, परन्तु दलितो का कोई राजनीतिक दल नही था। इस स्थिति में डा0 अम्बेडकर ने दलितो, शोषितो और श्रमिको को एक झण्ड़े के नीचे लाकर उनका एक राजनीतिक दल बनाना चाह रहे थे। इसी उद्देष्य से उन्होने अगस्त 1936 ई0 में स्वतन्त्र मजदूर दल की स्थापना की।[13] मुम्बई प्रान्त की कुल 175 सीटो में से 15 सीटे सुरक्षित की। स्वतन्त्र मजदूर पार्टी के 15 में से 13 उम्मीद्वार विजयी हुये। सन् 1937 के चुनाव में आठ प्रान्तो में कांग्रेस की सरकारे बनी और स्वतन्त्र मजदूर पार्टी ने विपक्षी दल के रूप में कार्य किया। 1942 में पुरानी लेबर पार्टी को अ0 अम्बेडकर ने शैड्युल कास्ट्स फेडरेशन में बदल दिया। 1946 में आम चुनाव हुए लेकिन फेडरेशन को एक भी सीट नही मिल पायी। कांग्रेस आरक्षित और सामान्य सीटो पर विजय हुई। यह संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था का ही परिणाम था।[14]

3 अगस्त 1947 ई0 को स्वाधीन भारत के जिस मन्त्रिमण्डल की घोषणा की गयी, उसमें डा0 अम्बेडकर का नाम भी सम्मिलित था। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में वे प्रमुख अछूत मन्त्री थे। वह स्थियो के अधिकार से संबन्धित बिल संसद में हिन्दू-कोर्ड-बिल नाम से पास करना चाहते थे, लेकिन बिल न पास होने से क्षुब्ध होकर उन्होने कानून मन्त्री पद से त्याग पत्र दे दिया। इसके पश्चात 1952

ई0 के लोकसभा के चुनाव में भाग लिया परन्तु वह चुनाव हार गये। इसके पश्चात मार्च 1952 में वह राज्य सभा के लिए चुने गये। 1954 में उन्होने लोकसभा का उप चुनाव भी लड़ा था, परन्तु वह पुनः हार गये। 1956 में उनकी मृत्यु के पश्चात उनके अनुवायियों ने शेड्यूल कास्ट फेडरेशन के स्थान पर रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया का गठन किया, लेकिन दूसरे लोकसभा के चुनाव में भी इसे कोई विशेष सफलता नही मिली।

डा0 साहेब किसी भी प्रकार की सामाजिक भेद-भाव और असमानता को मानव समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप मानते थे। उनका मानना था कि अलगांव का अर्थ है- सामाजिक पृथकता, सामाजिक अपमान, सामाजिक भेद-भाव, सामाजिक अन्यायं। अलगाव का मतलब है- सुरक्षा का इंकार, न्याय का इंकार, अवसर का इंकार। अलगाव है- संवदेना का अभाव, साहचर्य का अभाव, विचार।[16] उनका मानना था कि भारत में गॉव अछूतो के लिए यातना गृह है, जैसा कि यहूदियो के लिए इटली में गेटो हुआ करते थे। उनके अनुसार ''अछूत भारत के गेटो के बच्चे है'' ''जिन्हे दूसरे लोगो जैसी स्वतन्त्रता प्रापत नही है।''[17]

वर्तमान युग में शारीरिक छूआछुत व खानपान की अश्यपृश्यता का रूप बदलकर अब व्यवहार में होता था, दुराव के रूप में मानसिक अश्पृयता का हो गया है। जो सभी जातियो एवं वर्गो में व्याप्त होकर अपनी जड़े जमाता जा रहा है। जिससे अपनी जाति व उपजाति के प्रति कठोर जुड़ाव तथा अन्य के प्रति कठोर दुराव वर्तमान समाज में तीव्र गति से प्रचालित होता जा रहा है।

कुछ लोग कहते है कि यह सवर्णो के राज्य में होता है लेकिन लमिलनाडू में पिछले पॉच दशक से द्रविण दलो का राज है और वहॉ आज भी चाय की दुकानो में दो गिलास की प्रणाली का प्रचलन है जिसका प्रयोग एक दलित वर्ग के लिए और दूसरा गैर दलित के लिए होता है। वहॉ गॉव का नाई दलितो का बाल नही काटना चाहता तथा गाव से निकलने वाली बस पर दलित सीट पर बैठना नही चाहता। अश्पृश्यता तथा अर्थिक और सामाजिक रूप से भेदभाव तथा कमजोर होने के कारण मुसलमानो के बल प्रयोग व समानता का व्यवहार का आष्वासन दिये जाने के कारण ईसाईयो द्वारा लोभ लालच में आकर यह जातिया धर्म परिवर्तन कर रही है। ईस्लाम में किताबिया सम्प्रदाय के व्यक्ति को आने से अच्छा मानने की भी सैद्वान्तिक अवधारणा है। इस प्रकार अछूत जातियो के कमजोर सामाजिक और आर्थिक आधारो के कारण हिन्दु धर्म से अन्य धर्म में पलायन हिन्दू समाज की एक बड़ी समस्या रही है। आज भी कुछ अस्पृश्य बौद्व धर्म में तथा अन्य धर्मो में भी परिवर्तित होते रहते है। स्वयं मुसलमान एवं इसाईयो में अनेक अछूत जातियॉ है फिर भी लोग लालच व अज्ञानता के कारण अनेक अछूत धर्म परिवर्तन कर बैठते है। यह भी हिन्दु समाज के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है।[18]

भारत में लगभग 4635 समुदाय है ये समुदाय दूसरे अर्थो में जातियॉ है। जातियों के स्थान पर समुदाय शब्द का प्रयोग शायद इसीलिए किया जाता है संविधान, जाति, धर्म, लिंग को कोई मान्यता नही देता है। हम जनगणना में भी जातियों का नामकरण नही करते। यह अवश्य है कि सन् 1931 में जनगणना सर्वेक्षण में भारत में 3000 से अधिक जातियॉ मिली थी। जातियों के बराबर भाग और उपभोग होते रहते है। यदि हम इन आकड़ो की तुलना में आज के तथाकथित समुदायो को देखे तो यह कहना उचित होगा कि यह जातियॉ 3000 से बढ़कर 4635 हो गयी है।[19] के0 एस0 सिंह ने अपने सर्वेक्षण में अन्य जातियों के अतिरिक्त अनुसूचित जातियों की संख्या 751 व अनुसूचित जनजातियो की संख्या 635 और अन्य पिछड़े वर्ग की संख्या 1046 बताया है।[20] इन समूहो को संविधान ने विशेष सुविधायें प्रदान की है। इन पिछड़े व कमजोर समूहो को संवैधानिक सुविधायें इसलिए दी गयी है क्योंकि इनका पहले अत्यधिक शोषण हुआ। एक लम्बी अवधि तक यह समूह अत्यधिक शोषण हुआ। एक लम्बी तक यह समूह निरक्षरता, गरीबी, एवं पिछड़पन का शिकार रहे है। संविधान में अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इस सम्बन्ध में अस्पृश्यता निवारण एवं जनकल्याण के संवैधानिक प्रावधानो में भारतीय दण्ड संहिता 1860, 'भारतीय संविधान 1950, लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951, अस्पृश्यता अधिनियम या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1969, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचारण निवारण अधिनियम 1959 के निहित प्रावधानों तथा भारत के केन्द्र तथा राज्यों के दलितो व पिछड़ो के सर्वागिण विकास संम्बन्धी सुधार प्रयासो के फलस्वरूप अस्पृश्यता की समस्या में काफी सुधार हुआ है। इनमें डा0 अम्बेडकर का भी बहुत योगदान था। विषेशकर भारतीय संविधान में जो प्रावधान किये गये थे।

वर्तमान युग में शारीरिक छुआछुत व खानपान की अस्पृश्यता का हो गया है। जो सभी जातियों एवं वर्गो में व्याप्त होकर अपनी जड़े जमाता जा रहा है। जो सभी जातियों एवं वर्गो में व्याप्त होकर अपनी जड़े जामता जा रहा है, जिससे अपने जाति एवं उपजाति के प्रति कठोर जुड़ाव तथा अन्य के प्रति कठोर दुराव वर्तमान समाज में तीव्र गति से प्रचलित होता जा रहा है।

अस्पृश्य वह है जो दूसरो की अपेक्षा अपने आप को बहुत ही अच्छा और बहुत ऊॅचा समझता है। वही अस्पृश्य है, जो झूठ

बोलता है और सारे दिन गन्दे से गन्दे शब्द मुँह से निकालता रहता है और अपवित्र और अस्पृश्य तो दुरात्मा है, जो दूसरो के ज्ञान का ग्राहक हो जाता है तब फिर उतनी दूर गॉव के बाहर की उस बस्ती में तू क्यो अस्पृश्य को देखने जाता है। क्या वह यहॉ कही पास में तुझे नही मिल रहा है।

अस्पृश्य वही मनुष्य है, जो ऋृण लेना चाहता है, पर उसे चुकाना नही है। अस्पृश्य तु उसे जान, जो कायरता से अपनी इन्द्रियो का खरीदा हुआ दास है। तब उतनी दूर बाहर की उस बस्ती में तू क्यो अस्पृश्य की खोजने जा रहा है, जबकि यही तो आस-पास ही तुझे मिल सकता है? वह अस्पृश्य नही है तो कौन है? जो वचन देकर झट से तोड़ देता है? मनुष्य परहेज होने के योग्य यही सच्ची अस्पृश्यता है जिसे मानवाधिकारो का रक्षा हेतु समाज से दूर करने के बाद ही सभा का सर्वांगिण विकास सम्भव है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि बाबा साहेब डा0 भीम राव अम्बेडकर ने दलित समाज को अस्पृश्यता और छुआछूत के दलदल से निकालने, उन्हे सामाजिक स्तर पर मान सम्मान दिलाने, उनके अन्दर मानव गरिमा बहाल करने और उन्हे संवैधानिक रूप से अधिकार सम्पन्न करने में जितना सार्थक पहल और संघर्ष किया है अवर्णनीय है। और जब-जब भारत में दलित समाज के उत्थान की बात आयेगी उनका नाम सम्मान के साथ लिया जाएगा।

सन्दर्भः-

1. विजयी आर0एस0 (संपादक) डा0 अम्बेडकर का करवा स्थिति और समीक्षा, दिल्ली 2001, पृ0-108
2. जाटव डी0आर, राष्ट्रीय आन्दोलनो में डा0 अम्बेडकर की भूमिका, जयपुर 1996-पृ020
3. शशी श्याम सिंह, (स0) बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड़मय खण्ड-2 नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ सं0 19-20
4. विनिर्दिश्ठ डा0 अम्बेडकर का कारवॉ - पृ0 109-110
5. वही- पृष्ठ, 110
6. रणसुभे, सूर्य नारायणः डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर, दिल्ली-2001 पृष्ठ-52
7. शतोर म0ला0 एवं अनिल नालिनीः डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर की संघर्ष यात्ना एवं संदेश, नई दिल्ली- 1993, पृष्ठ-83
8. व्ही पृष्ठ- 82
9. डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर- वही पृष्ठ- 52,
10. डा0 बाबा साहेब की संघर्षयात्ना एवं संदेश, वही-पृष्ठ-83,
11. राष्ट्रीय आन्दोलन में डा0 अम्बेडकर की भूमिका, वही पृष्ठ- 59-60,
12. डा0 अम्बेडकर का कारवा, वही-पृष्ठ-111,
13. डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर, वही- पृष्ठ-111,
14. डा0 अम्बेडकर का करवा, स्थिति और समीक्षा, वही- पृष्ठ-111
15. वही - पृष्ठ- 14-15,
16. दैनिक जागरण समाचार पत्र, दिनांक- 06 नवम्बर 2007,
17. दैनिक जागरण समाचार पत्र, दिनांक- 1 अप्रैल 2005,
18. यूनाइटेड भारत, दैनिक समाचर पत्र, नवम्बर- 2007
19. भारती कवेल, दालित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध, प्रकाशन, इलाहाबाद 2002 पृष्ठ-51,
20. भारती कवेल डा0 अम्बेडकर एक पूनर्मूल्यांकन, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, 1997, पृष्ठ-120-121

महिला सशक्तीकरणः हस्तकौशल के सन्दर्भ में

डॉ० मंजु कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, मिथिला महिला महाविद्यालय, दरभंगा

रीना गौतम

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर दरभंगा

प्रस्तावना -

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए महिलाओं का विकास होना अनिवार्य शर्त है। कुल जनसंख्या का आधा हिस्सा होने के कारण महिलाओं का विकास और कल्याण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया जाना अति आवश्यक है। क्योंकि किसी भी देश के विकास में महिलाओं की अहम भूमिका होती है। महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार लाये बिना देश को सही दिशा प्रदान करना संभव नहीं है। भारत सरकार के द्वारा महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त करने के उद्देश्य से कई महिला कार्यक्रम/योजना चलाई गई जिनमें से अधिकतर महिला केन्द्रित है जिसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं को हक दिलाने के साथ ही इनका सामाजिक व आर्थिक विकास करना है ताकि इनको विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। देश में अन्य राज्यों के साथ उत्तर प्रदेश में भी आर्थिक व सामाजिक योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है जिससे उत्तर प्रदेश के जिलों में इन योजनाओं के लाभ ग्रामीण महिलाओं को प्राप्त हो रहे हैं वैसे आर्थिक व सामाजिक कई योजनायें हैं जो महिलाओं के ऊपर प्रभाव डालती हैं।[1] प्रस्तुत शोध अध्ययन ''गोरखपुर जिले की महिलाओं में विकास योजनाओ के प्रति दृष्टिकोण को जानना'' में शोधार्थी द्वारा विकास योजनाओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से हस्तकौशल के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। यह योजना महिलाओं के आर्थिक व सामाजिक पहलुओं को आच्छादित की हुयी है। वैसे तो महिलाओं के विकास से सम्बन्धित अनेक योजनायें हैं किन्तु इस योजना नें महिलाओं के जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है जहाँ एक योजना ने इनको आत्मनिर्भरता व सामाजिक सम्मान प्रदान किया वहीं दूसरी ओर योजना इनकी तथा इनके बच्चों के जीवन को सुरक्षा प्रदान किया। महिलाओं के विकास से सम्बन्धित कई विकास योजनायें चलाई गई हैं किन्तु सभी विकास योजनाओं का अध्ययन समय अभाव व संसाधनों की कमी के कारण व्यापक स्तर पर कर पाना सम्भव नहीं था, किन्तु विकास तथा महिला विकास से सम्बन्धित सभी योजनाओं ने ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण पर सकारात्मक प्रभाव डाला है।

इस बात से इन्कार नही किया जा सकता की इन योजनाओं के द्वारा महिलाओं पर प्रभाव नहीं पड़े इन योजनाओं के द्वारा महिलाओं के ऊपर काफी सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। किन्तु लक्ष्य वर्ग का एक बड़ा भाग अभी भी इन योजनाओं के लाभों से वंचित है। क्योंकि यह वर्ग ग्रामीण क्षेत्र में रहता है जिनमें साक्षरता बहुत कम है साथ ही महिलाओं से सम्बन्धित विकास योजनाओं की जानकारी भी इनको नहीं है जिसके कारण इन योजनाओं का लाभ पूरी तरह से नहीं उठा पाती है। ऐसी स्थिति में इस बात की आवश्यकता है कि इन कार्यक्रमों का व्यापक प्रचार-प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से किया जाये ताकि इन योजनाओं का लाभ ग्रामीण महिलायें उठा सकें और अपने रहन-सहन के स्तर में सुधार करने के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बना सकें।[2]

ग्रामीण निर्धन महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में तीव्र विकास कैसे हो उनकी समस्याओं के समाधान की भविष्य में योजनाएं क्या हो, यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि उनकी वर्तमान स्थिति का अध्ययन किया जाय तथा उनके लिए किए जा रहे प्रयासों की समीक्षा की जाय। इसी को ध्यान में रख कर उत्तर प्रदेश के का गोरखपुर जिले के पाण्डेय हाता नौसढ़ के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं में हस्तकौशल के प्रति दृष्टिकोण को जानना" से सम्बन्धित योजनाओं का अध्ययन करने हेतु प्रस्तुत शोध विषय का चयन किया गया है। इस शोध प्रबन्ध का विषय है- ''विकास योजनाओं का गोरखपुर जिले की महिलाओं में हस्तकौशल के प्रति दृष्टिकोण को जानना" वर्तमान समय में महिलाओं की अस्मिता, भूमिका, व महत्ता ज्ञात करने से पूर्व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उनकी स्थिति का अवलोकन करना आवश्यक है।

महिला सशक्तिकरण-

महिला सशक्तीकरण का प्रश्न दुनिया भर में राजनेताओं, योजनाकारों, नीति निर्माताओं एवं विवेकशील व्यक्तियों के लिए कई दशकों से चिंता का विषय बना हुआ है। सितम्बर 1995 में हुए चौथे विश्व महिला सम्मेलन में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों को उपलब्ध कराये जाने वाले अवसरों और उनके सामाजिक व आर्थिक स्तर में समानता देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। साथ में ही इस बात को भी स्वीकार किया गया था कि भारत सहित अन्य सभी उपस्थित देशों की सरकारें, विश्वस्तर पर स्त्री-पुरूष समता और समान अधिकारों तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर में

वर्णित सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा, अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों दस्तावेजों तथा महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभावों की समाप्ति हेतु वचन बद्ध रहेगी।महिलाओं के सशक्तिकरण और उन्नति के लिए यह भी स्वीकारा गया था कि उनकी बुनियादी शिक्षा, जीवन पर्यन्त सतत् शिक्षा, साक्षरता व प्रशिक्षण तथा प्राथमिक स्वस्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कर उनके निरन्तर आर्थिक प्रगति के साथ-साथ ज्ञानकेन्द्रित विकास में भी वृद्धि की अपेक्षा है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि सदियों से महिलाओं को शिक्षा, उन्नति, विकास के आधारों और निर्णयाधिकारों से वंचित रखा गया है।3 भारत जैसे पारम्परिक समाजों के बारे में यह बात विशेष रूप से सही है। जहाँ देश की लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गाँवों में निवास करती है तथा महिला शिक्षा का स्तर पुरूष शिक्षा के स्तर से काफी अधिक कम है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया चाहे उद्योग क्षेत्र में हो या कृषि क्षेत्र में, दोनों ही क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति दयनीय एवं सोचनीय है तथा समतामूलक सिद्धांतों की उपेक्षा तथा कम वरीयता से ग्रसित है। साक्षरता दर, श्रम सहभागिता एवं आय के दृष्टिकोंण से पुरूषो की अपेक्षा लाभों से वंचित रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में 85 प्रतिशत महिला कामगर बुनियादी तौर पर कृषि तथा कृषि सम्बन्धी कार्यों जैसे पशुपालन, ईधन एकत्रीकरण आदि कार्यों में संलग्न है। शहरी क्षेत्रों में अधिकांश कामगर महिलाएं घरेलू उद्योगों, निम्न स्तर के स्वरोजगार कार्यों और सेवाओं, भवन निर्माण जैसे असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में लिंग भेद के कारण इसका प्रभाव महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण पर भी पड़ता है। उत्पादन व प्रजनन के अत्यधिक बोझ ने महिलाओं को शक्तिविहीन कर दिया है। किन्तु सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से उन्हें सशक्त वातावरण प्रदान करने के लिए प्रयासरत है, किन्तु पर्याप्त कानूनों के अभाव व योजनाओं के सही से क्रियान्वयन में कमियों के कारण अभी भी लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अन्य नीतियों के साथ-साथ महिलाओं हेतु मानवीय व भौतिक लागतों के पक्ष से भी शामिल करना आवश्यक है।

सरकार के द्वारा व विभिन्न संस्थाओं के द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों से यह स्पष्ट है कि आज भी महिलायें सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्त नहीं हो पायी हैं जिसके लिए सरकार के द्वारा महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक समावेशन के लिए विभिन्न योजनाएं चलाई जा रही हैं। इन योजनाओं में मनरेगा और जननी सुरक्षा योजना भी है। उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से प्रथम होने के बावजूद विकास के सूचकों में जैसे- शिक्षा का स्तर, रोजगार का स्तर, स्वास्थ्य सुविधायें, महिला सुरक्षा, महिला अधिकारिता आदि की दृष्टि से काफी पिछड़ा है। अध्ययन क्षेत्र गोरखपुर जनपद में ऐसी ही स्थिति विद्यमान है जहाँ महिलायें असंगठित क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य में पायी जाती हैं।

देश में बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी, और प्रच्छत्र बेरोजगारी से आम जनता को काफी कष्ट उठाना पड़ रहा है। ऐसी बेरोजगारी पुरुषों व महिलाओं दोनों में आसानी से देखी जा सकती है। यह स्थिति सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। जहाँ तक गोरखपुर जिले के पाण्डेय हाता, नौसढ तथा गोरखपुर क्षेत्र में महिलाओं में हस्तकौशल के प्रति दृष्टिकोण को जानने तथा हस्तकौशल विकास योजनाओं के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक आर्थिक विकास के मूल्यांकन का प्रश्न है तो इस बात पर निर्भर करता है कि इस क्षेत्र में रोजगार के कौन-कौन से साधन उपलब्ध हैं। जैसा कि स्पष्ट किया गया है कि इस विकास खण्ड का मुख्य व्यवसाय कृषि है और यहाँ के अधिकांश लोग कृषि पर ही अपनी आजीविका के लिए निर्भर रहते हैं। उद्योग-धन्धों की स्थिति ही ठीक नहीं है। अधिकांश महिलाएं या तो अपने घरों में बैठी रहती है या ऐसी महिलाएं जो कृषि कार्य में पुरुषों का योगदान करती हैं वे कृषि कार्य के दिनों को छोड़कर शेष समय बेरोजगार रहती हैं और उनके श्रम का उपयोग नहीं हो पाता है।

जहाँ तक हस्तकौशल विकास योजनाओं से महिलाओं के लाभ उठाने का प्रश्न है तो सरकार द्वारा चलायी गयी समाज योजनाओं की जानकारी अधिकांश महिलाओं को या तो होती ही नहीं है या फिर होती है तो वे उसमें अपनी सहभागिता नहीं देती हैं। आंगनबाड़ी कार्यक्रम, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा संचालित साक्षरता अभियान कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, खेतिहर मजदूर, रोजगार आश्वासन योजना, स्वर्ण जयन्ती रोजगार योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों के लिए स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, रोजगार आश्वासन योजना, स्वर्ण जयन्ती रोजगार योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना आदि योजनाओं का लाभ महिलाएँ अपेक्षाकृत कम संख्या में उठा पाती है। इसका कारण यह है कि अधिकांश महिलाएं यह मान लेती है कि ग्रामीण विकास योजनाएँ प्रायः पुरुषों के लिए ही होती हैं जबकि वास्तविकता यह है कि ये ग्रामीण विकास योजनाएँ रोजगार उपलब्ध कराने के लिए एक वर्ग विशेष के लिए होती हैं और उसमें महिला तथा पुरुष दोनों सहभागी हो सकते हैं।

भारत की आत्मा गांवों में बसती है। लेकिन यह देश का दुर्भाग्य ही रहा है कि ग्रामीण क्षेत्र में विकास के लिए अपनाये जाने वाले उपायों अथवा योजनाओं का नगरों की अपेक्षा देर से क्रियान्वयन होता रहा है। हमारे देश के राष्ट्रीय आय में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्राम और ग्रामीण महिलाओं के उत्थान हेतु ग्रामीण विकास योजनाओं का क्रियान्वयन इस उद्देश्य से किया गया है कि इन ग्रामीण योजनाओं व कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सके। महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए ग्रामीण योजनाओं का क्रियान्वयन इस उद्देश्य से किया गया है कि प्रत्येक परिवार को रोजगार प्राप्त हो सके, महिलाएं

आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो सके, उनमें उद्यमिता व कौशल का विकास हो सके, वे पुरुषों के महत्वपूर्ण आर्थिक सहयोगी की भूमिका निभा सकें और स्वरोजगार के क्षेत्र में आगे कदम बढ़ा सकें। महिलाओं की आर्थिक आत्म निर्भरता उनकी सामाजिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव डालती है जिसके कारण उन्हें अधिक सम्मान प्राप्त होने लगता है। ऐसी स्थिति में महिलाओं में हस्त कौशला के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट करने से पूर्व हस्तकौशल को स्पष्ट करना आवश्यक है।

महिला सशक्तिकरण में कौशल विकास की भूमिका –

हालाँकि महिलाएँ भारत के कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा हो सकती हैं, लेकिन कुल श्रम शक्ति में कामकाजी महिलाओं की प्रतिशत दर घट रही है। इसके अलावा, बड़ी संख्या में महिलाएँ अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। ये नौकरियाँ अक्सर मौसमी होती हैं, इनमें वेतन बहुत कम होता है और वेतन या कार्यकाल की कोई सुरक्षा नहीं होती। इस प्रकार महिलाओं में कौशल के विकास पर ध्यान केंद्रित करना उन्हें जीवन कौशल विकसित करने के लिए प्रेरित करने में महत्वपूर्ण होगा जिससे उन्हें उच्च वेतन और अच्छी गुणवत्ता वाली नौकरियाँ, बेहतर आजीविका, आर्थिक स्वतंत्रता और अपने परिवारों के लिए कमाने की क्षमता मिलेगी।

ग्रामीण महिलाओं की उत्पादक संसाधनों, शैक्षिक स्तरों और महिलाओं के लिए उचित श्रम से संबंधित पहले से मौजूद सामाजिक मानदंडों तक सीमित पहुँच उन्हें कौशल प्रशिक्षण और पदोन्नति के सीमित संभावनाओं के साथ कम वेतन वाली, निम्न-स्थिति वाली नौकरियों तक सीमित कर देती है, इस प्रकार उन्हें उनकी निम्न स्थिति से बंधे रखती है। कई ग्रामीण फर्मों में, असुरक्षित रोजगार और अस्थायी और अस्थिर संविदात्मक व्यवस्था के व्यापक पैटर्न नियोक्ताओं को महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान करने से रोकते हैं। ग्रामीण महिलाओं की व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण कभी-कभी कुछ महिला-प्रधान क्षेत्रों तक ही सीमित होते हैं, जिससे उनकी पारंपरिक भूमिकाएँ और दायित्व मजबूत होते हैं। जबकि इस तरह के प्रशिक्षण से उनके आर्थिक विकल्प बेहतर होते हैं, यह सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) जैसे नए, गैर-पारंपरिक व्यवसायों से लाभ उठाने के उनके अवसरों को सीमित करता है। इसलिए, महिलाओं के पास उपलब्ध विकल्पों और उनके पास वास्तव में क्या करने की क्षमता और इच्छा है, के बीच की खाई को पाटने के लिए प्रभावी जागरूकता सृजन अभियानों के साथ-साथ उचित कौशल प्रशिक्षण एक शर्त बन जाता है।[4]

निष्कर्ष –

किसी अन्य उद्योग की तरह, हस्तशिल्प और वस्त्र क्षेत्र की भी अपनी चुनौतियां और लाभ हैं। भारतीय वस्त्र और हस्तशिल्प उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि यह कृषि के बाद सबसे बड़ा रोजगार सृजक है। इस क्षेत्र में करीब 70 लाख लोगों को रोजगार मिला है। इन खण्डों में शामिल लोगों को विभिन्न क्षेत्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिये उचित तकनीकी का उपयोग करने की आवश्यकता है। दूसरी तरफ, वस्त्र और हस्तशिल्प कंपनियों को उद्योग में विभिन्न रोजगारों जैसे कि ऑटो करघा बुनकर, पावर लूम ऑपरेटर, शटललेस लूम ऑपरेटर, शटललेस लूम वीवर-प्रोजेक्टाइल, बीम कैरिअर और लोडर, फिटर-ऑटो करघा बुनाई मशीन आदि में अभिनव कौशल शामिल करते हुए पर्याप्त कुशल श्रमशक्ति बनाए रखनी चाहिए।

संदर्भ

1. कौशिक सुशीला (1993), वुमन्स एण्ड पंचायती राज, हर आनन्द पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 76।
2. मित्तल मुक्ता (1995), वुमन पॉवर इन इंडिया, अनमोल पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ0 89।
3. आप्टे प्रभा (1996), भारतीय समाज में, नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ0 23।
4. https://www.outlookindia.com/website/story/india-news-skilling-and-employment-of-women-a-priority-for-indias-progress/378279

भोज्य पदार्थों का क्रमिक विकास एवं पोषण संबंधी अवधारणाएँ

डॉ० रेनू कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, लोहिया चरण सिंह महाविद्यालय, अम्बेदकर नगर, दरभंगा

महिमा पाण्डेय

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर दरभंगा

आज जिस रूप में भोज्य पदार्थों को देखते हैं उसकी क्रमिक यात्रा काफी ज्ञानवर्धक तथा मनोहारिणि है। वेदों से प्राप्त होने वाले उल्लेखों के अनुसार वैदिक काल में फल, फूल तथा कन्द-मूल इत्यादि आहार के उपलब्ध साधन थे। आर्यों के आहार में चावल तथा गेहूँ दोनों अन्न, अनार्यों की संगति के प्रतिफलन हैं, क्योंकि ऋग्वेद में इन अन्नों का नालोल्लेख नहीं मिलता है। 'मछली' का प्रयोग भी खाद्यपदार्थ के रूप में ऋग्वेद के बाद से ही शामिल हुआ। इसका साक्ष्य हमें यजुर्वेद से प्राप्त होता है। 'तेल' का प्रयोग भी वैदिकोत्तर काल में होने लगा। इसके पूर्व 'घी' ही पाक माध्यम था। 'नमक' का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद में आया था।[1]

वैदिकोत्तर काल में 'चावल' का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान हो चला था जितना पहले "जौ" का था। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थों के उत्तरोत्तर विकास के परिणाम स्वरूप कुछ नये-नये पदार्थ भी, कई तत्वों को सम्मिलित कर, बनाये जाने लगे। दालों के लिये 'मूंग' के अतिरिक्त "अरहर" तथा "चना" काभी उपयोग किया जाने लगा। मीठे पदार्थों के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति आई। अब ईख रस से "गूड़" तथा "शक्कर" इत्यादि बनाने की कला का विकास हुआ। भोजन के स्वाद के साथ उसकी स्वच्छता पर भी ध्यान दिया जाने लगा। इस समय भोजन संबंधी नियम तथा शिष्टाचार पर पूर्ण विचार किया जाता तथा अतिथ्य-सत्कार को परम धर्म माना जाता था।

उपलब्ध धार्मिक ग्रनथ तथा पुराण भी भोजन के क्रमिक विकास के साक्षी है। अब सामान्य नमक के साथ 'काला नमक' भी भोजन में सम्मिलित हो गया। 'दूध' तथा इससे बनने वाले पदार्थों का प्रयोग बढ़ गया। 'फलों' तथा सब्जियाँ को विशेष पसन्द किया जाने लगा। फलों का शरबत जिसे "पावक" कहा जाता था, काफी लोकप्रिय पेय था। इस समय भी भारत के प्रत्येक क्षेत्र के खान-पान में काफी भिन्नता थी। पूर्वी क्षेत्र में मुख्य आहार मांस था जबकि दूसरे क्षेत्रों में "दूध" तथा महावीर को अहिंसावादी सिद्धांतों के कारण कुछ लोग इससे परहेज करने लगे। समाज में विशेष समारोह के अवसर पर मादक द्रव्य का सेवन उत्साह-द्योतक माना जाता था। मिश्रण मादक तथा उत्तेजक पदार्थों से दूर रहते थे।

इस समय मटर का समावेश बिल्कुल नया था। फलों में अंगूर के प्रति लोकरूचि का उत्पन्न होना इसी विकासक्रम की एक कड़ी है। मसालों में 'धनिया' 'इलायची' तथा 'लौंग' का प्रयोग स्वाद तभा भोजन को उत्तम बनाने के लिए करने लगे। 'प्याज' तथा 'लहसुन' अपनी गंध के कारण सभ्य समाज में वर्जित थे, परन्तु मांसाहारी लोग इसका उपयोग चाव से करते थे।

समय के बढ़ते चक्र के साथ सामाजिक तथा आर्थिक रूप से सम्पन्नता आती गई। महाकाव्यों के समय समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्ति हो चुका था-धनी, मध्यम तथा निर्धन। निर्धन लोगों द्वारा 'घी' के स्थान पर 'तेल' का प्रयोग होने लगा। इस समय पाक-कला काफी विकसित अवस्था में थी।

आयुर्वेद काल में तो भोज्य पदार्थों के विकास में क्रान्ति ही आ गई थी। आहार संबंधी आदतों में पूर्व की अपेक्षा काफी परिवर्तित आये। आहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाने लगा था। भोज्य पदार्थों की दृष्टि से यह काल पूर्ववर्ती सभी कालें से सबसे धनी तथ उन्नत था। इस समय ऋतु तथा क्षेत्र विशेष के अनुसार आहार लेने की राय दी जाती थी। चावल तथा गेहूँ की नई जातियाँ प्रकाश में आई। इनके संयोजन से नये-नये व्यंजन बनाये जाते थे। फलों, सब्जियाँ तथा दालों से विभिन्न युग तथा स्वाद वाले "सूप" बनाये जाते थे। "लहसुन" जौ पहले त्यज्य समझा जाता था अब चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

पहले से चले आ रहे भोजन सम्बन्धी नियम तथा शिष्टाचार का अब भी कठोरता पूर्वक पालन करना धार्मिक दृष्टि से उत्तम माना जाता था। खुशी मन से भोजन ग्रहण करना उत्तम स्वास्थ्य की पहली शर्त थी। अत: भोजन करते हुए मधुर वातावरण जैसे-संगीत का श्रवण रूचि-वर्धक एवं स्वास्थ्यकार समझा जता था। भोजनोपरान्त पान खाने से पाचन क्रिा तथा मुँह की माँसपेशियाँ की पुष्टता प्राप्त होती है- ऐसी मान्यता थी।

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से वह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत का यह समय उन्नति तथा विकास का था। गुप्तकाल के आते-जाते यह विकास यात्रा अपनी पूर्णता के शीर्ष बिन्दु पर पहुँच गई। पाक-क्रिया इतना विकसित तथा व्यवस्थित रूप में स्थिर हो

चुका था कि उपलब्ध सामग्रियाँ को सुनिश्चित मात्रा तथा अनुपा में स्थिर हो चुका था कि उपलब्ध सामग्रियों का सुनिष्चित मात्रा तथा अनुपात में मिश्रित कर अत्युत्तम पदार्थ बनाये जाते थे। दालों की विशेष विधी द्वारा दूसरे पदार्थ में भर कर पढ़ाया जाता था। समाज में बहुत से लोग शाकाहारी हो गये थे, परन्तु मांस-व्यंजन भी विविध विधियों द्वारा बनाया जाता था।

मध्यकाल तक आते-जाते आहार संबंधी आदतों में काफी परिवर्तन हो गया। पाक-कला पहले की तरफ सरल नहीं रह गयी थी। दालों, गेहूँ के आटे तथा चावल के आटे से उत्तम मिठाइयाँ तथा नमकीन पदार्थ बनाये जाते थे। शाकाहारी भोज्य पदार्थों में 'बेसन' का स्थान सर्वोपरि लक्षित होता हे। ये सब भोज्य पदार्थ स्पष्ट इंगित करते हैं कि पाक-कला चरमोत्कर्ष पर था।

मध्यकाल में भारत पर शासन करने वाले सुल्तानों तथा मुगल बादशाहों का आहार मांस-प्रधान होता था। उनके आहार को देश के विभिन्न स्थानों से मँगाये गये उत्तम पदार्थ तथा विदेशों से आयातित उत्तम सुविधाएँ भी सुशोभित करती थी।

आधुनिक काल में भी उन्हीं मूल अनाजों की कई जातियाँ तथा उपजातियाँ उत्पन्न की जाती है। दूसरी विशेषता यह है कि क्षेत्र विषेष के अनुसार भोज्य पदार्थों के तैयार करने की विधियाँ में भी अन्तर परिलक्षित होता है। आहार में आये इन परिवर्तनों के कई कारण है, जिनमें प्रमुख हैं - भौगोलिक स्थिति तथा अन्नों की उपलब्धता। पंजाब में गेहूँ की उपज अधिक है। बंगाल, बिहार तथा दक्षिण भारत चावल के लिए प्रसिद्ध है। पंजाब में दूध का भी पर्याप्त उपयोग किया जाता है। बंगाल अपने "रसगुल्ला" तथा "मछली" के लिए विश्व विख्यात है।

यद्यपि पहले से चले आ रहे कई भोज्य पदार्थ न्यूनाधिक रूप से परिवर्तित होकर आज भी उपस्थित है, तथापि काल-परिवर्तन के साथ उनके नाम परिवर्तित हो गये हैं। कुछ वस्तुएँ भौगोलिक परिवर्तनों के क्षरण लुप्त प्राय हो गये हैं। नये-नये व्यंजनों तथा उनकी पाक-कला में नये आयाम का विस्तार किया गया है।

भारतीय भोजन समय-समय पर अपने अच्छे और बुरे दौर की जीते हुये, आज वैश्वीकरण के साथ चला गया है। भारतीय भोजन अभी भी दुनिया में अपनी जगह पाने के लिए संघर्ष कर रहा है। इस कारण ही भरतीय भोजन को कभी भी एक सम्पूर्ण आहार के तौर पर विश्व में मान्यता नहीं दिया जाना है। भारतीय मसालों से बने व्यंजनों को हमेशा चावल और गेहूँ के साथ खाने वाले तौर पर पेश किया गया। भारतीय भोजन में अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ा है यहाँ हर क्षेत्र का खाना-दूसरे क्षेत्र से बहुत अलग होता है। यह भारतीय भोजन को अपनी एक निराला व अनोखा रूप देती है पूरन पूरी हो या दाल बाटी, तंदूरी रोटी हो या शाही पुलाव, पंजाबी खाना हो या मारवाड़ी खाना। भारतीय जीवन की अपनी एक विशिष्टता है और इसी कारण आज विश्व के सभी बड़े देशों में भारतीय भोजनालय है जो कि अत्यन्त लोकप्रिय है।

पोषण संबंधी अवधारणाएँ:

प्राचीन काल से आहार तथा स्वास्थ्य का जो सम्बन्ध है, उसके विषय में पूर्ण सिद्धि पाने के लिए प्रयोग होते आ रहे हैं।

1. प्राचीन अवधारणा:

प्राचीन भारत के साहित्यिक उल्लेखों से यह परिलक्षित होता है कि हमारे पूर्वज आध्यात्मिक विवरण को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी अवधारणा थी कि पारलौकिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए तथा लौकिक दायित्वों के निर्वाह के लिए स्वय शरीर एवं सुन्दर विचारों की नितान्त आवश्यकता है। जीवन के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण वे शुद्ध, सात्विक एवं पौष्टिक आहार के पक्षधर थे। वेदों में भी आहार के महत्व को दर्शाति हुए पिता की संज्ञा दी गई है, क्योंकि यह पिता के समान ही पोषण, संरक्षण तथा स्नेह प्रदान करने वाला होता है।

भागवत् गीता में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि मनुष्य की मानसिक स्थिति का आहार से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसके अनुसा आहार को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है- (1) आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाला - "सात्विक" (2) भौतिक सुख देने वाला - "राजसिक" तथा (3) निम्न गुणों को उत्पन्न करने वाला- 'तामसिक'। इसका तात्पर्य है कि उनका ध्यान शुद्ध तथा संतुलित आहार की ओर गया। शुद्ध तथा संतुलित आहार आयु, सत्व, आरोग्य तथा बल बढ़ाने वाला होता है। अत: सुस्वादु, स्निग्ध, स्थिर तथा रूचिकर भोजन सात्विक लोगों को प्रिय होते हैं। कटु, अम्ल, लवण, अति उष्ण, तीत आदि दु:ख शौक और रोग उत्पन्न करने वाला भोजन होता है। इन सब से स्पष्ट होता है कि आहार का शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान भी इस समय तक हो गया था क्योंकि गीता में इस बात की चर्चा है कि अत्यधिक खाने या उपवास रखने से व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सका है। उत्तम तथा पौष्टिक आहार से ही व्यक्ति स्वस्थ जीवन तथा पूर्ण आयु का उपयोग कर सकता है।[2]

चरक तथा सुश्रु जैसे आयु वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया था कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पौष्टिक आहार पर निर्भर होता है। इससे प्राप्त उत्तम स्वास्थ्य जीवन के चारों पहलुओं धर्म, अर्थ, क्षम और मोक्ष को प्राप्त करने वाला होता है। इस समय जन सामान्य को परमार्श दिया गया कि उचित मात्रा में उचित समय पर किया गया। उचित भोजन जीवन स्रोत को शक्ति प्रदान करता है। उससे मन प्रसन्न होता है और मनुष्य स्वस्थ, सुन्दर और बुद्धिमान बनता है।

क्रमश: जीवन जटिल होता गया। इसी के साथ आहार मे भी जटिलता आती गई। विविध विधियों द्वारा विभिन्न पदार्थों को संयोजित तथा मिश्रित करके पौष्टिक तथा रूचिकर व्यंजन बनाने की कला विकसित की गई। इस समय दूर देशों से भी उत्तम गुणों वाले भोज्य पदार्थों को संग्रह करने का उल्लेख मिलता है। विभिन्न प्रकृति के व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न गुण-धर्म वाले खाद्य-पदार्थों

को सेवन करने का निर्देशित दिया गया है। उपयोगी आहार को वृद्धि करने वाला तथा पौष्टिक गुणों से ही आहार को रोग उत्पन्न करने वाला माना गया।[3]

प्रायः सभी धर्म ग्रन्थों में भी भोजन के महत्व को स्वीकार किया गया है। स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों के उपयोग से व्यक्ति जीवन की अन्य सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हुए धार्मिक कृत्यों में भी लीन रह सकते है। स्वस्थ शरीर ही धर्मों के पालन में सहायक हो सकता है। स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले पदार्थों को वर्जित किया गया था।

उचित पोषण से प्राप्त उत्तम स्वास्थ्य के महत्व से प्राचीन मनीषीगण भली-भांति परिचित थे। तभी तो चरक ने वैसा ही आहार प्रतिदिन ग्रहण करने का परामर्श दिया था जो स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करे तथा विकारों को उत्पन्न न करे। आर्यों के भोजन में प्रतिदिन अन्न, फल, शाक-सब्जी, दूध, घी, दही, मट्ठा, मधु, ईख-रस इत्यादि उपस्थित रखता था, जो पोषक तत्वों से युक्त था। इन सबसे सुस्पष्ट आभास मिलता है कि उन्हें ज्ञात था कि श्रम द्वारा शक्ति के ह्रास होने से विकास गति धीमी हो जाती है। अतः इन पदार्थों की पौष्टिकता की प्रशंसा में अनेक मंत्र कहे गये हैं।

2. पोषण की अर्वाचीन अवधारणाः

"स्पैनसर'' ने कहा है "द प्रेजपोषण ऑफ हेल्थ इज ड्यूटी''।[4] प्राचीन काल की तरह ही आज भी प्रोषण के प्रति एक ही प्रकार का दृष्टिकोण रहा है। मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य स्वास्थ्य की रक्षा करना है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उत्तम पोषण की आवश्यकता होती है। आहार द्वारा शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए शक्ति प्राप्त होती हे। डब्लू0 एच0 ओ0 ने स्वास्थ्य को परिभाषित किया है: "ए स्टेज ऑफ कम्पलीट फिजीकल मेंटल ऐण्ड सोसल बैल विइंग ऐण्ड नौ मियरली द ओवर्जेजे ऑफ डिजिज और इनहाफरमीटी'' - 1956. हालांकि स्वास्थ्य तथा पोषण एक दूसरे के पर्याय तो नहीं है, परन्तु अच्छे पोषण के अभाव में उत्तम स्वास्थ्य की कामना नहीं की जा सकती है।[5]

आधुनिक वैज्ञानिकों ने पोषण की परिभाषित करते हुए कहा है कि "पोषण उन प्रक्रियाओं का समूह है, जिनके द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता के आयम रखने के लिए एवं अंगों के विकास-कार्य और उत्तकों की मरम्मत के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को भोजन द्वारा ग्रहण करता है तथा उनका उपभोग करता है। जीवित प्राणी के जीवन धारण करने, अंगों को सुचारू रूप से क्रियाशील रखने व तथा आहार के बीच जो वैज्ञानिक क्रिया अन्तर्निहित है जैसे ही पोषण की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार व्यक्ति को जीवित रखने के लिए तथा ऐच्छिक तथा अनैच्छिक क्रियाओं को स्वस्थ से सम्पादित करने के लिए पोषण की आवश्यकता होती है। पोषण से तात्पर्य उन सभी प्रक्रियाओं से है जो आहार-ग्रहण करने से लेकर पूर्ण पाचन तक की क्रिया से है।

सन्दर्भ

1. अथर्व0 7. 76-1।
2. गीता - 6. 16-17 - "युक्ताहार विहारस्य युक्त येस्टस्य कर्मतु''।
3. सुश्रुत स0 सू0 - 25-31,
4. ह्रू ऐण्ड न्यूट - पृ0 1-3.
5. नौरमल ऐण्ड थेरापयूटिक डाइट.

नक्सल समस्या के समाधान में आने वाली चुनौतियाँः एक अध्ययन

सत्यम चौधरी

शोध छात्र-राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रस्तावना

नक्सल समस्या भारत की आन्तरिक सुरक्षा की सबसे गम्भीर समस्या होती जा रही है। सामान्यतः यह समझा जाता है कि जम्मू-कश्मीर की समस्या सबसे बड़ी है परन्तु यदि भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से देखें या समस्या के कारणों पर जाय तो नक्सल समस्या सबसे ज्यादा जटिल है क्योंकि इसकी जड़े देश की सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों से जुड़ी हैं।[1] इस बात का आकलन केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को दी जा रही केन्द्रीय सहायता राशि को देखकर लगाया जा सकता है। जिसमें सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर को आतंकवाद से निकटने में केन्द्रीय मदद के तौर पर 132.68 करोड़ रूपये और पूर्वोत्तर राज्यों को उग्रवादी गतिविधियों से निपटने के लिए 150 करोड़ रूपये दिये गये, वहीं नक्सल प्रभावित राज्यों को इस समस्या के समाधान के लिए 1098.52 करोड़ रूपये मुहैया कराये गये हैं। जो नक्सलवादी अभी हम सभी को संत्रस्त कर रहे है उनके पीछे कम्युनिस्ट विचारधारा की प्रेरणा है। मार्क्स-लेनिन स्तालिन-माओत्सेतुंग की तस्वीर केवल प्रचंड ही नहीं माकपा भी निष्ठा से पूंजती है ये सभी इन्हें अपने कार्योलयों में लगाते है और दस्तावेजों पर छापते है। फिर भी इसे 'लाल परिवार' के अलग-अलग किन्तु भारत-विरोध घात के रूप में शाय ही कभी देखा जाता है। इसका कठोर प्रतिकार तो दूर उल्लेख तक नहीं होता। नक्सलवादी आंदोलन के तरह कंबोडिया, रोमानिया, वियेतनाम में भी आंदोलन हुए, परंतु वहाँ के लोगों को अंत: कंगाली ही हाथ लगी।[2] माओत्सेतुंग तथा पोलपाट ने लाखों लोगों की लाशे गिराकर खुशहाली लाने का दावा किया वह कालांतर में आत्मघाती साबित हुआ।[3] अभी तक नक्सलियों से निपटे के लिए सरकार द्वारा कोई ठोस योजना नहीं बनाई गयी और न ही सुरक्षा के कड़े इंतजाम किये गये तथा दसूरे आतंकवादी संगठनों की तरह सख्त कार्यवाही से बचते रहे। देश के सुरक्षा को चुनौती देने वाले दो संगठनों, इस्लामिक आतंकवादी संगठन और नक्सलियों के साथ एक ही अपराध पर तो तरह का व्यवहार नक्सलियों के मनोबल को बढ़ा रहा है। इस विषम स्थिति में नक्सलियों के अघोषित युद्ध का सामना दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा ही हो सकता है और इसके लिए राजनैतिक मतभेदों से ऊपर उठने की आवश्यकता है सर्वप्रथम सुरक्षा विशेषज्ञों को इस मामले में स्वतंत्र रणनीति बनाने की छूअ देनी चाहिए। भारतीय सत्ता अधिष्ठान को पूरे संसाधन उपलब्ध कराने चाहिए। जो क्षेत्र नक्सलवादियों से मुक्त हो जाए वहाँ युद्ध स्तर पर विकास कार्य करवाना चाहिए और आदिवासियों की विशिष्ट पहचान को अक्षुण्ण रख उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया जाना चाहिए।

सरकार ने इसके लिए द्विस्तरीय रणनीति बनाई है। इसके अन्तर्गत नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में सुरक्षा बलों द्वारा सघन अभियान चलाने के साथ-साथ विकास कार्यों में भी तेजी लाने पर जोर दिया गया है। गृह मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, केन्द्र सरकार नक्सली गतिविधियों से निपटने के लिए क्षेत्र में रक्षा, विकास, प्रशासन और लोक अवबोधन प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेष ध्यान देकर एक समग्र रणनीति अपना रही है। सरकार का दृष्टिकोण एवं नीति यह है कि नक्सल समस्या से प्रभावी रूप में निपटने के लिये एक पूर्णतया पुलिस एवं सुरक्षा उन्मुखी नीति पर्याप्त नहीं है।

सरकार द्वारा चाये कुछ नक्सलवाद विरोधी अभियान इस प्रकार है

1. आपरेशन ग्रीन हण्ट- नक्सल प्रभावित राज्यों में इस अभियान को चलाया जा रहा है। केन्द्रीय अर्द्ध सैनिक बलों एवं राज्य पुलिस के बीच अच्छा सम्बन्ध न होने से नक्सलियों के खिलाफ पिछले 6 माह से चल रहे इस आपरेशन के नतीजे सकारात्मक नहीं रहे और तीन महीने के अन्दर 100 से अधिक जवानों को अपनी जान गवानी पड़ी।
2. आपरेशन ग्रे हाउण्ड कमाण्डों ट्रेनिंग- यह आन्ध्र प्रदेश सरकार ने सन् 1989 में चलाया था। इस अभियान को काफी सफल माना जाता है। इसके अन्तर्गत नक्सलियों से निपटने के लिये कमाण्डों ट्रेनिंग दी जाती है।
3. आपरेशन हाँक- यह अभियान उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर प्रदेश के 70 से अधिक नक्सल प्रभावित जिलों में इस अभियान को चलाया जाने का प्रस्ताव है।
4. आपरेशन कोबरा- यह उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ सरकार ने सन् 2009 में नक्सलियों के खिलाफ अभियान चलाया थ जिसमें सी0 आर0 पी0 एफ0 एवं राज्य पुलिस के लगभग 2500 जवान शामिल थे। जिनकी संख्या भविष्य में बढ़कर 10 हजार तक किया जाना है।

5. आपरेशन सलवाजुडूम- यह छत्तीसगढ़ सरकार ने सन् 2005 में राज्य के दंतेबाड़ा एवं बस्तर जिले में नक्सलियों से निबटने के लिये शान्ति मार्च के रूप में यह अभियान चलाया था। इसके अन्तर्गत आम लोगों को हथियारों का प्रशिक्षण देकर नक्सलवाद से मुकाबला करने की रणनीति अपनाई गयी। यह अभियान असफल साबित हुआ।
6. एकीकृत कमान का गठन- लाल आतंक के विरुद्ध मिलकर लड़ने के लिये छत्तीसगढ़, झारखण्ड और पं0 बंगाल को "एकीकृत कमान'' बना कर अभियान चलाने को कहा गया है।

नक्सलवाद से निपटने के लिए बनाये गये कानून[4]

नक्सलवाद को रोकने के लिए सरकार द्वारा कुछ कानून बनाए गए हैं। ये हैं:

- राष्ट्रीय पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति, 2007- इस अधिनियम का मुख्य कार्य इन प्रभावित क्षेत्रों के लोगों के विस्थापन को कम करना तथा लोगों के विस्थापन के लिए अच्छे विकल्प उपलब्ध कराना था। सरकार ने यह नीति उन लोगों के लिए बनाई थी जिनकी भूमि औद्योगिक विकास के लिए सरकार द्वारा अधिग्रहित की जाती है। उक्त नीति के तहत भूमि के बदले में परिवार के कम से कम एक सदस्य को रोजगार का अवसर दिया जाएगा, साथ ही व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा आवास की सुविधा भी दी जाएगी।
- वन अधिकार अधिनियम, 2006- इस अधिनियम में वन क्षेत्रों में रहने वाले वनवासियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों को स्वीकार किया गया है, लेकिन उनके अधिकारों को मान्यता नहीं दी गई है।
- छत्तीसगढ़ विशेष लोक प्रतिभूति अधिनियम, 2006- इस अधिनियम में इन क्षेत्रों में प्रचलित गैरकानूनी गतिविधियों की परिभाषा दी गई है और कुछ संगठनों को भी गैरकानूनी घोषित किया गया है। यह अधिनियम सरकार को एक सलाहकार बोर्ड बनाने की शक्ति देता है, जहाँ भी राज्य सरकार को लगता है कि इसकी स्थापना की आवश्यकता है। इसमें इसकी प्रक्रियाएँ, ऐसे बोर्ड का गठन और दंड के साथ दंड का भी उल्लेख है। अपराध न करने पर भी, गैरकानूनी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल की जा रही जगह को अधिसूचित करने, उस जगह का ध्यान रखने और अदालतों के हस्तक्षेप के खिलाफ रोक/संशोधन करने की शक्ति सरकार के पास है।
- छत्तीसगढ़ विशेष लोक प्रतिभूति विधेयक, 2005- यह प्रावधान करता है कि किसी भी जिले के जिला मजिस्ट्रेट को बिना किसी पूर्व सूचना के उन स्थानों को अधिसूचित करने का बिना शर्त अधिकार है, जिनके बारे में वह समझता है कि उनका उपयोग गैरकानूनी गतिविधियों के लिए किया जा रहा है। ऐसे मामले में साक्ष्य प्रस्तुत करने जैसी कोई आवश्यकता नहीं है, जिससे यह साबित हो सके कि जिस स्थान को जिला मजिस्ट्रेट ने गैरकानूनी चिह्नित किया है, वास्तव में वहां ये गैरकानूनी गतिविधियां संचालित होती हैं। इस विधेयक में प्रावधान किया गया है कि सरकार और जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ कोई भी पुनरीक्षण याचिका केवल उच्च न्यायालय में ही दायर की जा सकेगी। साथ ही, यह याचिका 30 दिनों के भीतर दायर की जानी चाहिए और किसी भी न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आदेश के खिलाफ क्षेत्राधिकार नहीं है। किसी भी प्रकार की पुनरीक्षण याचिका या आवेदन या किसी भी प्रकार के निषेधाज्ञा के संबंध में उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को छोड़कर किसी भी न्यायालय या अधिकारी द्वारा की जाने वाली किसी भी कार्रवाई पर इस विधेयक में पूरी तरह से रोक लगा दी गई है।

इस विधेयक का दुखद पहलू यह है कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का घोर उल्लंघन है और यह तथ्य कि पीड़ित पक्षों को सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है, यह एक और उल्लंघन है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि यह विधेयक पूरी तरह से अनावश्यक है और इसे केवल गरीब लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए लाया गया है।

सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयास

- आमतौर पर कानून-व्यवस्था राज्य सूची का विषय होता है यानी राज्य में कानून और व्यवस्था बनाए रखने का काम संबंधित राज्य का होता है। लेकिन नक्सलवाद की विकटता को देखते हुए वर्ष 2006 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इसको राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा के लिये सबसे बड़ी चुनौती बताया। उसके बाद गृह मंत्रालय में नक्सलवाद की समस्या से निपटने के लिये एक अलग प्रभाग बनाया गया।
- सरकार वामपंथी चरमपंथ से प्रभावित क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे, कौशल विकास, शिक्षा, ऊर्जा और डिजिटल कनेक्टिविटी के विस्तार पर काम कर रही है।
- सरकार वामपंथी अतिवाद से प्रभावित क्षेत्रों में सड़कें बनाने की योजना पर तेजी से काम कर रही है और वर्ष 2022 तक 48,877 किमी. सड़कें बनाने का लक्ष्य रखा गया है।
- वर्ष 2013 में आजीविका योजना के तहत 'रोशनी' नामक विशेष पहल की शुरूआत की गई थी ताकि सर्वाधिक नक्सल प्रभावित जिलों में युवाओं को रोजगार के लिये प्रशिक्षित किया जा सके।

- वर्ष 2017 में नक्सल समस्या से निपटने के लिये केंद्र सरकर ने आठ सूत्रीय 'समाधान' नाम से एक कार्ययोजना की शुरुआत की है।

समाधान पहल

ऑपरेशन 'समाधान' भारत में नक्सली समस्या को हल करने के लिये गृह मंत्रालय द्वारा शुरू की गई एक पहल है। समाधान से तात्पर्य है-

- S-Smart leadership (कुशल नेतृत्व)
- A-Aggressive strategy (आक्रामक रणनीति)
- M-Motivation and training (अभिप्रेरणा एवं प्रशिक्षण)
- A-Actionable intelligence (अभियोज्य गुप्तचर व्यवस्था)
- D-Dashbord based key performance indicators and key result area (कार्ययोजना आधारित प्रदर्शन सूचकांक एवं परिणामोन्मुखी क्षेत्र)
- H-Harnessing technology (कारगर प्रौद्यौगिकी)
- A-Action plan for each threat (प्रत्येक रणनीति की कार्ययोजना)
- N-No access to financing (नक्सलियों के वित्त-पोषण को विफल करने की रणनीति)
- सर्वाधिक नक्सल प्रभावित 30 जिलों में जवाहर नवोदय विद्यालय और केंद्रीय विद्यालय संचालित किये जा रहे हैं।
- हिंसा का रास्ता छोड़कर समर्पण करने वाले नक्सलियों के लिये सरकार पुनर्वास की भी व्यवस्था करती है।

नक्सल समस्या के समाधान में आने वाली चुनौतियाँ

- दरअसल नक्सलवाद सामाजिक-आर्थिक कारणों से उपजा था। आदिवासी गरीबी और बेरोजगारी के कारण एक निचले स्तर की जीवनशैली जीने को मजबूर हैं। स्वास्थ्य-सुविधा के अभाव में गंभीर बीमारियों से जूझते इन क्षेत्रों में असामयिक मौत कोई आश्चर्य की बात नहीं।
- आदिवासियों का विकास करने के बजाय, उन्हें शिक्षा, चिकित्सा सेवा और रोजगार देने के बजाय उन्हें परेशान करने के नए-नए कानून बनाए जाते हैं।
- आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, खेती की दुर्दशा अभी भी जस की तस बनी हुई है। यकीनन इस तरह की समस्यायों में हमेशा असंतोष के बीज होते हैं, जिनमें विद्रोह करने की क्षमता होती है।
- इन्हीं असंतोषों की वजह से ही नक्सलवादी सोच को बढ़ावा मिल रहा है। इससे बड़ी विडंबना ये है कि हमारी सरकारें शायद इस समस्या के सभी संभावित पहलुओं पर विचार नहीं कर रही।
- इसके साथ ही बुनियादी ढाँचे का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव संसाधनों और संचार सुविधाओं की कमी है।
- नक्सलियों द्वारा अंतर्राज्यीय सीमा का लाभ उठाया जाना तथा केंद्र और राज्यों तथा अन्य राज्यों के बीच आपसी समन्वय का अभाव।

आगे की राह

- एक तरफ जहाँ इस समस्या की वजह आर्थिक और सामाजिक विषमता समझी जाती रही है, वहीं दूसरी ओर इसे अब एक राजनीतिक समस्या भी समझा जाने लगा है। यही कारण है कि जानकारों की नजरों में नक्सलवाद सियासी दलों का एक 'चुनावी तवा' है जिस पर मौका मिलते ही रोटी सेंकने की कोशिश की जाती है।
- ऐसा इसलिये भी कहा जाता है क्योंकि, हमारी सरकारें लगातार संविधान की पाँचवीं अनुसूची को तरजीह देने से कतराती रही हैं। गौरतलब है कि इस अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण से जुड़े मामले आते हैं।
- पाँचवीं अनुसूची के तहत अनुसूचित क्षेत्रों में TribesAdvisory Council की स्थापना की बात की गई। दरअसल, इन क्षेत्रों में A dvisory Council एक तरह की पंचायत है जो आदिवासियों को अपने क्षेत्रों में प्रशासन करने का अधिकार देती है। इस कौंसिल में अधिकतम 20 सदस्य होते हैं जिनके तीन-चौथाई सदस्य वे होते हैं जो संबंधित राज्य की विधान सभा में अनुसूचित क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि हिंसा से प्राप्त की हुई व्यवस्था ज्यादा दिन तक चल नहीं पाती और अंततः टूट जाती है। दूसरी ओर सरकार को भी कानून-व्यवस्था की समस्या से ऊपर उठकर इनकी मूलभूत समस्याओं को दूर करने के प्रयास करने चाहिये।

निष्कर्ष-

राज्य को कानूनी तौर पर मुद्दों से निपटना शुरू करना चाहिए और इससे होने वाले नुकसान को कम करने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें नेता और सुरक्षा के साथ-साथ शांति सेना को भी मजबूत करना चाहिए। सुरक्षा बलों का इस्तेमाल केवल माओवादियों को निशाना बनाने के बजाय स्थानीय लोगों की सुरक्षा के लिए किया जा सकता है। जब तक सरकारें इन राज्यों में कानून लागू नहीं करतीं, तब तक ऐसे मुद्दों से निपटना बहुत मुश्किल होगा।

संदर्भ

1. दैनिक जागरण, 23 मार्च, 2007।
2. Naxal Movement and State Power – Satya Prakash Dash & Sarups sons, oxford University Press, New Delhi – 2006A
3. स्वर्ग पर धावा बिहार में दलित आंदोलन-चौ0 प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2005।
4. 11 जुलाई 2020।

प्राकृतिक आपदा एक विश्लेषण

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

सुनील कुमार वर्मा

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना-

आपदा एक भयावह घटना है जो सामान्य जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है। आपदाएं मनुष्य के लिए नई नहीं हैं। पृथ्वी पर रहने वाला हर एक इंसान एक या किसी अन्य प्रकार की आपदा के साये में रह रहा है। जैसे भूकंप, चक्रवात, बाढ़, भूस्खलन और फिर मानव निर्मित आपदाएं जैसे परमाणु, रासायनिक और जैविक युद्ध, बम धमाके, आतंकवाद, दंगे, आग पृथ्वी के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग समय पर आती रहती है। वो अधिसंरचना, आर्थिक संपत्ति और लोगों के लिए खतरा हैं। वो कारोबार के विकास, राष्ट्रों और पूरी अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक होते हैं। आपदाओं का समाज और वित्तीय व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वो बहुत ही लंबी अवधि तक जारी रहता है। पिछले कुछ वर्षों में आपदाओं की घटनाओं में वृद्धि हो रही है और आर्थिक स्थिति पर उनका प्रभाव पड़ रहा है। आपदाओं के कारण वैश्विक वित्तीय घाटा बढ़ रहा है। साधी और सुरक्षित दोनों नुकसानों की दर में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है।[1]

प्राकृतिक सम्पदाओं और पर्यावरण की अवहेलना ने भी प्राकृतिक आपदा को उत्पन्न किया है मुम्बई की मिठी नदी या सूरत की ताप्ती नदी या प्रशांत महासागर में ईस्टर द्वीपसमूह पर निवास करने वाली छोटी जनजातियां हो जो इसलिये विस्मरण की पीड़ा झेलनी पड़ी क्योंकि उन्होंने अपनी इच्छाओं से प्राकृतिक संपदाओं और वातावरण का विनाश किया था।

प्राकृतिक आपदाए-

प्राकृतिक आपदाएं घर-गृहस्थी को तीन स्पष्ट तरीकों से प्रभावित करतीहैं: भौतिक समग्रता, संपदा और आय की हानि।चोट, दुर्घटनाजन्य मृत्यु और स्वास्थ्य संबंधीमहामारियों से जीवन स्तर प्रभावित होता है औरसंपदा की व्यापक हानि होती है। उदाहरणार्थ भूकंपों, तूफानों, ज्वालामुखियों, भूस्खलन औरबाढ़ों का विनाशकारी प्रभाव सबसे अधिकमकानों पर ही दिखाई देता है। बाढ़ग्रस्त जुताईलायक भूमि, नष्ट फसलों और कृषि उत्पादनमें कमी से आय में होने वाली हानि अस्थायी होसकती है या फिर दीर्घकालीन।

प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती लागत केबारे में, खासकर विकासशील देशों में, शायदही किसी को शंका हो। हिंद महासागर में दिसंबर 2004 में आए सुनामी में 2 लाख 50 हजार से अधिक लोग मारे गए। इसके कुछ दिन बाद ही उत्तरी पाकिस्तान में आए भूकंप में दसियों हजार लोग मारे गए और तीस लाख से अधिक लोग बेघर हो गए।इस बीच, खराब फसल और कीड़ों के हमल`से सहेल और दक्षिणी अफ्रीका में अकालका खतरा पैदा हो गया है। कुल मिलाकर आपदाओं के प्रभाव का जो दृश्य उभर कर आता है, वह है- बड़े पैमाने पर मानवीयवेदना, जिंदगियों का नुकसान और वित्तीयलागत में आकस्मिक वृद्धि।

भूकम्प-

भूकम्प एक ऐसी प्राकृतिक घटना है जिसका इतिहास पृथ्वी की उत्पत्ति से जुड़ा है। भूकम्प कब क्यों और कहाँ किस समय आयेगा। मानव अभी तक अपने तकनीकी ज्ञान से इसके बारे में कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाया है। अभी तक भूकम्प आने के कुछ लक्षणों की पहचान कुछ सीमा तक ही हो पाई है। उदाहरण के लिए भूकम्प आने से पूर्व रैडॉन गैस का रिसाव, पशु पक्षियों का असामान्य व्यवहार, भूमिगत जलस्तर व तापमान में परिवर्तन आदि। फिर भी आज तक वैज्ञानिक कोई विश्वसनीय जानकारी या सिद्धान्त प्राप्त नहीं कर सके जिससे की भूकम्प आने के कारणों का पता चल सके तथा इस प्राकृतिक आपदा से पृथ्वी पर मानव जीवन अन्य जीव जन्तु व वनस्पतियों की सुरक्षा हो सके। भूकम्प का सामान्य अर्थ पृथ्वी का हिलना या काँपने से लगाया जाता है। जब पृथ्वी की सतह से कुछ किलोमीटर तक गहराई में स्थित चट्टानो में उपस्थित दरारो, भ्रंशों, कमजोर सतहो में परस्पर आपसी टकराव, गति, हलचल, घषर्ण आदि से उत्पन्न एंव प्रसारित कम्पन जो उत्पत्ति केन्द्र से चारो ओर प्रसारित होकर सतह पर स्थित वस्तुओं आदि को हिला डुला कर असन्तुलित कर देती है। सामान्यत: ऐसी स्थिति को भूकम्प कहा जाता है। सभी व्यक्तियों के लिए भूकम्प शब्द का सामान्य अर्थ है पृथ्वी का हिलना, साधारण अर्थ में भूकम्प वह प्राकृतिक घटना है जिसके द्वारा भूपटल में हलचल पैदा हो जाती है तथा कम्पन होने लगता है। यह कम्पन तरगों के रूप में होता है। जैसे-जैसे यह तरगें केन्द्र से दूर होती जाती है उनकी शक्ति तथा तीव्रता में कमी होने लगती है। जिस प्रकार से शान्त जल में पत्थर का टुकड़ा फेकने से गोलाकार लहरें केन्द्र से चारो तरफ बाहर की ओर प्रसारित होती है। उसी

प्रकार जब कम्पन उत्पन होता है तो उत्पति केन्द्र से लहरें निकलकर बाहर चारों ओर फैलती है। जैसे-जैसे यह लहरें केन्द्र से दूर होती जाती है इनकी शक्ति तथा तीव्रता में कमी होने लगती है। भूकम्प का प्रभाव प्राय: दो रूपों में होता है। प्रथम प्रभाव उत्पति केन्द्र से चारों तरफ तरगों के द्वारा प्रसारित होता है। यह प्रभाव क्षैतिज होता है। द्वितीय प्रभाव कम्पन होने पर धरातलीय भागों में ऊपर तथा नीचे की तरफ लम्व्त रूप में धसाव होने लगता है। भूकम्प का यह रूप अत्यन्त विनाशकारी होता है।[2]

भूस्खलन-

भूस्खलन पहाड़ों में घटित होने वाली एक भू-वैज्ञानिक एवं स्वाभाविक घटना है इसके घटित होने में कुछ भी अनोखा नहीं है। जब पहाड़ी भागों में भारी वर्षा, बाढ़, भूकम्प, मानवीय क्रियाओं के कारण आधारहीन हुई चट्टानों, मिट्टी, मलवा, पत्थर व वनस्पतियां पहाड़ी ढलानों से गुरूत्वाकर्षण बल के कारण ये अपने मूल स्थान से खिसक करनीचे की ओर गिरते हैं तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को भूस्खलन कहते हैं। यह आपदा उत्तराखण्ड के पहाड़ी भागों में सबसे अधिक संख्या में मानसून अवधि में प्रत्येक वर्ष घटित होती है जिससे उत्तराखण्ड राज्य का 38,999 वर्ग किमी. क्षेत्र संवेदनशील है जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 75 प्रतिशत भाग माना जाता है।

भूस्खलन एक गुरूत्व प्रेरित घटना है, जो मुख्यत: पहाड़ी भागों में घटित होती है। पृथ्वी के धरातल पर स्थिर मिट्टी, मलवा, पत्थर व चट्टानों का गुरूत्वाकर्षण के कारण ढाल पर नीचे की ओर गिरने की प्रक्रिया को भूस्खलन के नाम से जाना जाता है। वर्षा ऋतु में वर्षा का पानी सोख लेने के कारण सतह पर स्थित मलवे का भार बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए भार के कारण मलवा ढाल पर रूक नहीं पाता है और भार अधिक होने के कारण यह नीचे की ओर को खिसकने लगता है। पानी के कारण जमीन तथा चट्टानों की सतहों के बीच का घर्षण कम हो जाता है जिसके तरलता के कारण खिसकने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। इसलिए अधिकांश भूस्खलन की घटनायें वर्षा ऋतु में घटित होती है।

पर्वतीय ढालों का एक बहुत बड़ा भाग जल तत्व की अधिकता एवं आधार के कारण अपनी गुरूत्वीय स्थिति से असन्तुलित होकर अचानक तेजी के साथ सम्पूर्ण अथवा कुछ मलवा व पदार्थ खण्ड़ों के रूप में नीचे की ओर को गिरने लगता है जिसे हम सामान्य भाषा में भूस्खलन की घटना के नाम से जानते हैं। भूस्खलन प्राय: तीव्र एवं आकस्मिक होते है। पर्वतीय भागों में भूकम्प से बडेघ पैमाने पर भूस्खलन होते हैं। जब कभी मानव की विकासात्मक गतिविधियां या नदी द्वारा अपरदन क्रिया से पर्वतीय ढाल बहुत तीव्र हो जाता है, तो उस समय भूस्खलन होता है।

सुनामी-

सुनामी वास्तव में जापानी भाषा का शब्द जिसमें सु का अर्थ 'बंदरगाह' और नामी का अर्थ 'लहर' होता है। दूसरे शब्दों में हम सुनामी को तटीय लहर कह सकते हैं। ये समुद्र के अंदर आए शक्तिशाली भूकंप, उल्कापात अथवा ज्वालामुखीय विस्फोट के कारण उत्पन्न होती हैं। प्रलय का तांडव करती हुई सुनामी तरंगें 600 किमी प्रति घंटे की तेज चाल से गमन करती हैं और इनकी लंबाई 300 किमी से भी अधिक हो सकती है। ये इतनी सशक्त होती हैं कि पूरे द्वीप को देखते-देखते नष्ट कर सकती है। रोचक बात यह है कि.बीच समुद्र में इनकी ऊंचाई मात्र 2 फुट होती है परंतु समुद्र तट तक पहुंचते-पहुंचते इनकी ऊंचाई 50-60 फुट तक हो सकती है। सुनामी का दायरा, भूकंप प्रभावित क्षेत्र के आकार पर निर्भर करता है। ये लहरें मूल रूप से मेहराब के आकार की होती हैं। सुनामी तरंगें, ज्वारीय अथवा चक्रवात तरंगों से भिन्न होती हैं। खुले समुद्र में सुनामी तरंगें विनाशकारी नहीं होती लेकिन तटीय क्षेत्रों में पहुंचकर रौद्र रूप धारण कर लेती हैं। सुनामी का प्रकोप जापान के तटीय किनारों पर अधिक देखा गया है।

हाल ही में 26 दिसंबर, 2004 को इंडोनेशिया के सुमात्रा के निकट गहरे हिंद महासागर में समुद्र तल से 40 किमी नीचे 8.9 रिक्टर तीव्रता के भूकंप के कारण विनाशकारी तरंगें उत्पन्न हुई जिनसे पूरे दक्षिण एशिया में जमकर तबाही हुई। अंडमान-निकोबार द्वीप सहित भारत के तटीय क्षेत्र- श्रीलंका, इंडोनेशिया, थाइलैंड, मलेशिया, म्यामां एवं मालद्वीप प्रभावित हुए। इस प्राकृतिक आपदा से लगभग एक लाख से भी अधिक लोगों तथा सैकड़ों मवेशियों की जानें गईं। कहर इतना जबरदस्त था कि तमाम बस्तियां ध्वस्त हो गई।

इस प्राकृतिक आपदा से स्पष्ट हो गया कि प्रभावित क्षेत्रों में आपदा प्रबंधन की कोई व्यवस्था नहीं थी। हमारे देश के तीन हिस्से समुद्रतट से घिरे हुए हैं फिर भी समुद्री आपदा प्रबंधन की संतोषजनक व्यवस्था नहीं है। यदि एशिया में सुनामी अभिज्ञान तंत्र स्थापित होते और सुनामी लहरों से बचाव संबंधी चेतावनी केंद्र होते तो हजारों लोगों की जाने और संपत्ति को बचाया जा सकता था।

सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदा ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकृति से खिलवाड़ कितनी विनाशकारी हो सकती है। यदि उड़ीसा के समुद्र तटीय क्षेत्रों में स्थित मैनग्रोव वनों को न काटा जाता तो समुद्री लहरों की तीव्रता को कम किया जा सकता था। भविष्य में समुद्री तूफानों से जान-माल की रक्षा करने के लिए समुद्र तटीय क्षेत्रों में मैनग्रोव वनों की हरित पट्टी का निर्माण अति आवश्यक है।[3]

चक्रवात-

भारत में मुख्यत: उष्ण कटिबंधीय चक्रवात आते हैं। अभी वरदा चक्रवात ने भारत के पूर्वी तट पर बहुत नुकसान पहुंचाया था। आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में चक्रवात वरदा की वजह से कई लोगों की मौत हो गई। कई जगहों पर भारी पेड़ सड़कों पर गिर गए और बिजली आपूर्ति बंद हो गई। दोनों ही प्रदेशों के तटीय इलाकों में भारी बारिश हुई औरकई जगह तूफान की रफ्तार 140 किलोमीटर प्रति घंटा दर्ज की गई। वारदा अरबी भाषा का शब्द है, जिसका मतलब होता है गुलाब। मई 2016 में रोआनू चक्रवात श्रीलंका और भारत से होते हुए बांग्लादेश में पहुंचा, जिसके कारण

बांग्लादेश के कई तटीय इलाकों में बाढ़ के हालात बन गए तथा कई इलाकों में जमीन धंस गयी। इसके पहले 2014 में हुदहुद चक्रवाात ने भारत के पूर्वी तट पर तबाही मचायी थी।[4]

बाढ़-

सामान्यतः बाढ़ का अर्थ होता है नदी या समुद्र के जल का अपने किनारों को पार कर आसपास की भूमि को जलमग्न कर देना। विश्वभर में सर्वाधिक बाढ़ के खतरों का सामना कर रहे देशों में भारत का भीनाम आता है। भारत की लगभग सभी नदी बेसिनों में बाढ़ आती है। देश के 36 राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में से 22 में बाढ़ आती है। इस कारण 40 मिलियन हेक्टेयर इलाके अर्थात देश के भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग आठवें भाग में बाढ़ का खतरा बना रहता है। सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र हैं गंगा ब्रह्मपुत्र का मैदान। बाढ़ का मुख्य प्रकोप उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम एवं उड़ीसा में देखा जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में वर्षा सालों भर नहीं होती बल्कि इसका 90 प्रतिशत भाग सीमित कुछ महीनों (जून से सितम्बर) तक ही सीमित रहता है। ऐसी स्थिति में नदियो में जल की मात्रा उनके वहन क्षमता से ज्यादा हो जाती है और वह जल आसपास फैल जाता है। भारत के बहुत बड़े हिस्से में बाढ़ के साथ लोगों ने तारतम्य बना लिया है। बाढ़ का जल अपने साथ उर्वर मृदा भी लाता है तथा यह धान की खेती के लिए भी आवश्यक है। लेकिन इसके बाद में बाढ़ की विभीषिका से प्रतिवर्ष लाखों लोग प्रभावित होते हैं और बहुत बड़ी संपत्ति विशेषकर कृषि का नुकसान होता है। भारत में मुख्यतः बाढ़ को पांच प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं:-

1. नदीय बाढ़: इसका कारण अतिवृष्टि, हिमनदों का पिघलना, इत्यादि हो सकता है
2. तटीय बाढ़: इसका प्रमुख कारण समुद्र के अन्दर होने वाली घटनाएं होती हैं।
3. सरोवरी बाढ़: यह सरोवरों के बांध के टूटने से आती है।
4. मानवजनित बाढ़ बाढ़ मुख्यतः भौतिक एवं वायुमंडलीय प्रक्रियाओं का संयुक्त परिणाम है लेकिन अब मानवीय क्रियाएं इसकी आवृत्ति तथा प्रबलता दोनों को बढ़ा रही हैं।

निष्कर्ष-

इस प्रकार हम कह सकते है कि आपदा एक घटना है जो ज्यादातर मामलों में अचानक और अप्रत्याशित तरीके से घटित होता है। यह मानव जाति, वस्तुओं और पर्यावरण के लिए गंभीर से गंभीर समस्याओं और संकट का कारण बनता है।[5] यह जीवन, संपत्ति और आजादी के स्वास्थ्य की हानि के तौर पर सामने आता हे। जब भी ऐसी स्थिति पैदा होती है यह जीवन के सामान्य पैटर्न में व्यवधान का कारण बनता है, दुर्भाग्य, लाचारी और दुख इसलिए स्पष्ट है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यह एक क्षेत्र या एक देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है। आगे यह भी कहा जाना चाहिए कि आपदा अचानक, आपदामूलक घटना जो जीवन और संपत्ति में काफी नुकसान, हानि, और विनाश और तबाही लाने का काम करती है। इसे आगे इस रूप में परिभाषित किया गया आपदा का मतलब तबाही, दुर्घटना, आपदा या प्राकृतिक और मानव निर्मित कारणों से किसी भी क्षेत्र में दुर्घटना या लापरवाही से जो जीवन या मानवीय पीड़ा, संपत्ति के नुकसान या फिर पर्यावरण के नुकसान के तौर पर सामने आता है।

संदर्भ

1. योजना, जनवरी 2017, पृ0 33
2. डॉ0 उर्मिलेश सिंह, आपदा प्रबंधन, प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 26
3. योजना, जून 2009, पृ0 32
4. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2014, पृ0 110
5. क्विक बुक, आंतरिक सुरक्षा एवं आपदा प्रबंधन, पृ0 157

भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से नेपाल का सामरिक महत्त्व

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

मोहम्मद जुनैद बक्श

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना-

एशिया के जिन देशों के साथ भारत के सहस्राब्दियों पूर्व से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे है। उनमें नेपाल का नाम मुख्य है। नेपाल से भारत के ऐतिहासिक ही नहीं प्रागैतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। इन ऐतिहासिक, पौराणिक और मौखिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि नेपाल हमारी सांस्कृतिक साहित्यिक और धार्मिक विधियों का महान केन्द्र रहा है। नेपाल की भौगोलिक स्थिति भारत को प्राकृतिक सुरक्षा दिए हुए है। भारत व चीन के बीच नेपाल के होने के कारण ही आकस्मिक मुठभेड़ और संघर्ष की सैंकड़ों सम्भावनायें टल जाती है। नेपाल एक अन्तस्थ राज्य है। इस कारण इसका सामरिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। भारत के उत्तर में हिमालय की आगोश में सिमटा यह छोटा सा राष्ट्र अपने सामरिक महत्त्व के कारण भारत के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नेपाल को भारत का उत्तरी प्रवेश द्वार कहा जाता है और यह प्रवेश द्वारा सदैव खुला रहता है क्योंकि नेपाल से भारत को कोई खतरा नहीं है, खतरा है तो नेपाल में पड़ोसियों के घुसपैठ से। इसीलिए भारत नेपाल से अपनी सीमाओं के लिए कोई खतरा नहीं समझता बल्कि नेपाल के अन्य पड़ोसियों के साथ जो सीमा है खतरा यही सीमा रेखा उत्पन्न करती है। भारत नेपाल की सीमा सदा खुली रही है। नेपाल की स्थिति भारत के लिए ऐसी है कि अपनी सुरक्षा के लिए भारत के लिए आवश्यक है कि वह नेपाल की सीमाओं को सुरक्षित रखे।

भारत के लिए नेपाल की एक महत्वपूर्ण स्थिति है जो अपने सामरिक महत्त्व के कारण भारत के लिए विशेष स्थान रखता है। दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण नेपाल की अपनी सुरक्षा में सुविधा रही है। नेपाल दक्षिण एशिया का मात्र अकेला ऐसा राष्ट्र है, जो अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने में सफल रहा है जिस समय सम्पूर्ण एशिया पर ब्रिटिश शासन या उस समय अंग्रेज नेपाल में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने में सफल नहीं हुए यद्यपि नेपाल की निष्ठा अंग्रेजों के प्रति बनी रही। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रही है। चीन द्वारा तिब्बत को हड़पने के बाद भारत चीन सम्बन्धों में नेपाल की सामरिक स्थिति का राजनैतिक महत्त्व और बढ़ गया। उत्तर में भारत की सुरक्षा नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर हो गई है।[1]

सामरिक महत्त्व-

नेपाल का अक्षांशीय विस्तार $26^0 20'$ से $30^0 10'$ उत्तर तथा देशांतरीय विस्तार $80^0 15'$ से $88^0 15'$ पूर्व है। इसका आकार चतुर्भुजाकार है। इसकी पूर्व से पश्चिम में लम्बाई 840 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण में चौड़ाई 145 किलोमीटर से लेकर 235 किलोमीटर तक है। नेपाल की उत्तरी सीमा, तिब्बत से दक्षिण सीमा पश्चिम बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश से मिलती है। पूर्वी सीमा, सिक्किम एवं पश्चिमी सीमा, कुमायूं से मिली हुई है। दक्षिण में, नेपाल की भारत के साथ 1700 किलोमीटर लम्बी स्थलीय सीमा है। जिस प्रकार के सीमा स्तम्भ, भारत और नेपाल की अधिकतर सीमा पर निश्चित दूरी पर लगे हुए हैं, जिसे कंचनजंघा और सिंघनिया की पर्वत श्रृंखलाएं पृथक करती है। इनके बीच से एक मार्ग निकलता है। भारत के लिए सामरिक दृष्टि से भी यह मार्ग अति महत्वपूर्ण है, जो उत्तर की ओर सिक्किम और भूटान के बीच से गुजरता है तथा नेपाल की दक्षिण पूर्वी सीमा के छोर की पट्टी को छूता है। नेपाल, दो विशालकाय देशों के बीच स्थिति है, उत्तर में तिब्बत तथा पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में भारत से घिरा है, तिब्बत पर चीनी अधिपत्य से, अब नेपाल भारत और चीन के बीच एक अन्त:स्थ राष्ट्र की भूमिका निभाता है। अन्त:स्थ राष्ट्र होने के कारण यह भारत के लिए सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारत के लिए नेपाल की एक महत्वपूर्ण स्थिति है, जो अपने सामरिक महत्त्व के कारण भारत के लिए विशेष स्थान रखता है। भारत के उत्तर में हिमालय के आगोश में सिमटा, यह छोटा सा राष्ट्र अपने सामरिक महत्त्व के कारण, भारत के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नेपाल को भारत का उत्तरी प्रवेश द्वार कहा जाता है और यह प्रवेश द्वारा सदैव खुला रहता है क्योंकि

नेपाल से भारत को कोई खतरा नहीं है, खतरा है तो नेपाल में पड़ोसियों के घुसपैठ से। इसीलिए भारत नेपाल से अपनी सीमाओं के लिए कोई खतरा नहीं समझता बल्कि नेपाल के अन्य पड़ोसियों के साथ जो सीमा है खतरा यही सीमा रेखा उत्पन्न करती है। भारत नेपाल की सीमा सदा खुली रही है। नेपाल की स्थिति भारत के लिए ऐसी है कि अपनी सुरक्षा के लिए भारत के लिए आवश्यक है कि वह नेपाल की सीमाओं को सुरक्षित रखे।

दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण नेपाल की अपनी सुरक्षा में सुविधा रही है। नेपाल दक्षिण एशिया का मात्र अकेला ऐसा राष्ट्र है, जो अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने में सफल रहा है, जिस समय सम्पूर्ण एशिया पर ब्रिटिश शासन या उस समय, अंग्रेज नेपाल में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने में सफल नहीं हुए, यद्यपि नेपाल की निष्ठा अंग्रेजों के प्रति बनी रही। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रही है। चीन द्वारा तिब्बत को हड़पने के बाद भारत चीन सम्बन्धों में नेपाल की सामरिक स्थिति का राजनैतिक महत्त्व और बढ़ गया। उत्तर में भारत की सुरक्षा, नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर हो गई है।[2]

उत्तर में भारत की सुरक्षा आज बड़ी सीमा तक नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर करती है। भारत और नेपाल के बीच किसी प्रकार का कोई सैन्य समझौता नहीं है लेकिन नेपाल पर किये जाने वाले किसी भी आक्रमण को भारत सहन नहीं कर सकता। नेपाल पर कोई भी सम्भावित आक्रमण, निश्चित रूप से भारतीय सुरक्षा के लिए खतरा होगा।[3] डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जी ने 1956 ई0 में कहा था कि नेपाल की शांति और सुरक्षा के लिए कोई भी खतरा, भारतीय शांति एवं सुरक्षा के लिए खतरा है, लेकिन आज कई मुद्दे नेपाल एवं भारत के संबंधों को तनावपूर्ण बना रहे हैं। नेपाल की भू-राजनीतिक स्थिति कुछ ऐसी है कि वह एशिया की दो बड़ी शक्तियों भारत और चीन के बीच संतुलन बनाए रखना, उसके लिए आवश्यक है।[4]

सन् 1950 के दशक में जैसे भारत-चीन संबंधों में तनाव बढ़े, महाराज त्रिभुवन के उत्तराधिकारी राजा महेन्द्र की महत्वकांक्षाएँ भी बढ़ने लगी। उन्हें महसूस होने लगा कि 1950 की संधि ने नेपाल को भारत पर जिस तरह निर्भर बना दिया था, उसे कम किया जा सकता है- चीन से सहायता समर्थन जुटाकर। राजा महेन्द्र को यह आशंका थी कि भारत की सरकार नेपाल की जनतांत्रिक दलों को समर्थन देकर, राजवंश को अपने प्रभुत्व में रखना चाह रही है। नेपाल में रहने वाले भारतीय व्यवसायियों और राजनयिकों का आचरण भी, औसत नेपाली को अपमानजनक ही लगता था। नेपाली राजनीति में भारत का सबसे अधिक विरोध नेपाल की कम्यूनिस्ट पार्टी करती है।[5] उसका उद्देश्य नेपाल को भारत से अधिकाधिक दूर एवं चीन के पास लाना है। इस कारण भी भारत का चिन्तित होना स्वाभाविक है। जब नेपाल ऐसे देशों को अपना हितैषी माने जो भारत के प्रतिद्वन्द्वी है, विशेषकर चीन। दूसरी तरफ पाकिस्तान भी इसी कोशिश में लगा रहता है कि भारत के अन्दर कभी नेपाल तो कभी बांग्लादेश के जरिये किसी न किसी रूप में उपद्रव मचाया जाये। इसी प्रकार भू-राजनैतिक और भू-स्त्रातेजिक दृष्टिकोण से, भारत की सुरक्षा में नेपाल का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तर में भारत की सुरक्षा बड़ी सीमा तक नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर करती है।

वर्तमान में भारत को नेपाल से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर पहले की तुलना में ज्यादा चिंता बढ़ गयी है। प्रो0 एस0 डी0 मुनि के अनुसार भू-सामरिक कारणों से, भारत की सुरक्षा जनित चिन्ताएँ पहले की तरह बरकरार है, लेकिन नई चुनौतियाँ सामने आ गई हैं। 1750 किलोमीटर भारत-नेपाल सीमा पर कई जगह ऐसे चिन्ह किए गये हैं, जहाँ आई0 एस0 आई0 के ठिकाने होने की सूचना है। इस समय भारत नेपाल सम्बन्धों को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला मुद्दा सुरक्षा से संबंधित है।[6] भारत नेपाल के मध्य उच्चतम स्तर पर जो सहयोग, सद्भावना और तालमेल विद्यमान था वह महाराजा त्रिभुवन के बाद कुछ अस्पष्ट होने लगा। महाराजा महेन्द्र 13 मार्च, 1955 को गद्दी पर बैठे और तभी से भारत व नेपाल के मध्य, जो गहन आपसी समझ बनी हुई थी, वह कम होती नजर आने लगी। उन्हें भारत के साथ, 1955 से पूर्व की शैली के संबंध में रखने में आपत्ति होने लगी। उन्हें अपने पिता महाराजा त्रिभुवन की भाँति भारत का ऋणी होने का कोई कारण नजर नहीं आता था।

इस प्रकार महाराजा महेन्द्र के भारत के प्रति दृष्टिकोण में, स्वयं का महत्वांकाक्षी व्यक्तित्व, संरक्षात्मक दृष्टिकोण, भारत द्वारा नेपाल में प्रजातान्त्रिक शक्तियों को समर्थन दिया जाना आदि ऐसे तत्व थे,[7] जिन्होंने नेपाल नरेश को भारत का अच्छा मित्र नहीं बनने दिया। फलस्वरूप भारत अपने सामरिक हित की प्राप्ति पूर्णरूपेण नहीं कर पाया। इतना ही नहीं, महाराजा ने अपने शासन काल में, कुछ ऐसे कदम उठाए, जिससे उनका भारत विरोध तथा शांति व मैत्री सन्धि की अवमानना का प्रत्यक्ष आभास होता है।

निष्कर्ष-

भू-राजनीतिक स्थिति का, किन्हीं दो देशों के सामरिक सम्बन्धों को, प्रभावित करने वाले कारकों में से, सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। भू-राजनीति, विदेश नीति के विश्लेषण की, वह विद्या है, जो भौगोलिक कारकों स्थिति, आकार, जलवायु, मानचित्रण, जन-सांख्यिकीय विवेचन, प्राकृतिक, स्त्रोतों, तकनीकी विकास और क्षमता के सन्दर्भ में, राजनीतिक व्यवहार को समझने विश्लेषण करने का प्रयास करती है। इस प्रकार राजनीतिक पहचान एवं क्रियाविधि, कम या अधिक भूगोल द्वारा निर्धारित होते हैं। किसी

राज्य के भू-भाग की प्रकृति, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या का वितरण, उसकी आर्थिक गतिविधियाँ और सांस्कृतिक विशेषताएँ, भू-राजनीति के अध्ययन के मुख्य विषय हैं।[8]

भू-राजनीतिक विश्लेषण में, भू-आकृति महत्वपूर्ण अवयव है। किसी भी राष्ट्र की भू-आकृति का, उस राष्ट्र तथा पड़ोसी राष्ट्र की राजनीति पर, व्यापक प्रभाव पड़ता है। यदि किसी राष्ट्र की भू-आकृति, ऐसे स्थान या भौगोलिक परिस्थितियों में है, जहाँ वह दो बड़े राष्ट्रों के मध्य स्वाभाविक रूप से 'मध्यस्थ राज्य' की भूमिका निर्वहन करता है। सामरिक महत्व का हो एवं आर्थिक वाणिज्यिक महत्व का हो, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इसका महत्व बढ़ जाता है। अपेक्षाकृत दो बड़े राष्ट्रों की सुरक्षा और शांति के दृष्टिकोण से यह भी महत्वपूर्ण है। नेपाल की भू-राजनीतिक स्थिति, इसी प्रकार की है। भौगोलिक अवस्थिति की दृष्टि से, नेपाल का भारत के लिए सामरिक महत्व है।

संदर्भ

1. पाणिक्कर, के0 एस0, जियोग्राफिकल फैक्टर्स इन इण्डियन हिस्ट्री, बाम्बे, 1957, पृ0 471
2. पाणिक्कर, के0 एस0 जियोग्राफिकल फैक्टर्स इन इण्डियन हिस्ट्री, बाम्बे, 1957, पृ0 471।
3. पुंज, बलबीर, भारत के लिए नया खतरा, दैनिक जागरण, 6 जनवरी, 2008, पृ0 10।
4. सिंह, डॉ0 लल्लन जी, राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा, पृ0 120।
5. फडिया, डॉ0 बी0 एल0, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ0 304।
6. सिंह, अशोक कुमार, राष्ट्रीय सुरक्षा, पृ0 564-65।
7. नेगी, अवतार सिंह, भारत-चीन संबंध, 2005, पृ0 88-89।
8. The Penguin Dictionary of International Relation, Graham Evans and Newnham, Published by the Penguin Group, Penguin Books Ltd. 27 Wrights Lam, Londan, W and StZ England – 1998, p. 197.

सोशल मिडिया की उत्पत्ति एवं प्रकार

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

किशन कुमार गुप्ता

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना-

'मीडिया' (Media) का अभिप्राय दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला है। मीडिया स्रोत एवं श्रोता को आपस में जोड़ता है। संचार प्रक्रिया में मीडिया के द्वारा ही सन्देश स्रोत से श्रोता तक सम्प्रेषित होता है। इस प्रकार कोई भी सन्देश प्राय: मीडिया के बिना श्रोता तक नहीं पहुँचता और न ही श्रोता से सम्प्रेषक तक प्रतिपुष्टि ही पहुँचता है। अत: मीडिया संचार प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अवयव है।

सोशल मीडिया की शुरुआत 1990 के दशक के मध्य में जियोसिटीज, क्लासमेट्स.कॉम और सिक्सडिग्रीज.कॉम जैसे प्लेटफार्मों के आविष्कार के साथ हुई।[1] जबकि उस समय इंस्टेंट मैसेजिंग और चौट क्लाइंट मौजूद थे, सिक्सडिग्री अद्वितीय थी क्योंकि यह वास्तविक लोगों के लिए उनके वास्तविक नामों का उपयोग करके जुड़ने के लिए डिजाइन की गई पहली ऑनलाइन सेवा थी। इसमें प्रोफाइल, मित्र सूची और स्कूल संबद्धता जैसी विशेषताएं शामिल थीं, जिससे सीबीएस न्यूज के अनुसार यह "पहली सोशल नेटवर्किंग साइट" बन गई।[2]

1991 में, जब टिम बर्नर्स-ली ने हाइपरटेक्स्ट सॉफ्टवेयर को इंटरनेट के साथ एकीकृत किया, तो उन्होंने वर्ल्ड वाइड वेब बनाया, जिससे नेटवर्क संचार के आधुनिक युग की शुरुआत हुई। इस सफलता ने ऑनलाइन समुदायों के गठन की सुविधा प्रदान की और वेबलॉग, सूची सर्वर और ईमेल सेवाओं के उपयोग के माध्यम से ऑफलाइन समूहों के लिए समर्थन सक्षम किया। वेब 2.0 के आगमन के साथ ऑनलाइन सेवाओं का विकास नेटवर्क संचार के लिए चौनल के रूप में सेवा देने से लेकर नेटवर्क सामाजिक संपर्क के लिए इंटरैक्टिव प्लेटफॉर्म बनने तक आगे बढ़ा।[3] वर्तमान में मीडिया समाज के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। प्रिण्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं सोशल मीडिया जन सामान्य में चेतना जगाकर सामाजिक जागरूकता बढ़ाने में एक नई दिशा प्रदान की है।

सोशल मीडिया का अर्थ एवं परिभाषा-

सोशल मीडिया नए युग और समाज का एक सशक्त माध्यम है। सोशल मीडिया को परिभाषित करने का सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि इसे अखबारों से और टीवी या रेडियो के ऑडियो-विजुअल माध्यम से अलग करना होगा। "सोशल मीडिया एक तरह से दुनिया के विभिन्न कोनों में बैठे उन लोगों से संवाद है जिनके पास इंटरनेट की सुविधा है। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो सारे संसार को जोड़े रखता है।

अत: "सोशल मीडिया को परस्पर संवाद का वेब आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील मंच कहा जा सकता है जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं, आपसी जानकारियों का आदान-प्रदान करते हैं और उपयोगकर्ता जनित सामग्री को सामग्री सृजन की सहयोगात्मक प्रक्रिया के एक अंश के रूप में संशोधित करते हैं।[4]

"कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मैन्युअल कैसट्ल के अनुसार- "सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों फेसबुक, ट्विटर आदि के जरिए जो संवाद करते हैं, वह मास कम्युनिकेशन न होकर मास सेल्फ कम्युनिकेशन है। मतलब हम जनसंचार तो करते हैं लेकिन जन स्व-संचार करते हैं और हमें पता नहीं होता कि हम किससे संचार कर रहे हैं। या फिर हम जो बातें लिख रहे हैं, उसे कोई पढ़ रहा या देख रहा भी होता है।[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे संसार को जोड़े रखता है। यह संचार का एक बहुत अच्छा माध्यम है। यह द्रुत गति से सूचनाओं के आदान-प्रदान करने, जिसमें हर क्षेत्र की खबरें होती है, को समाहित किए होता है।

सोशल मीडिया के प्रकार-

आजकल सामाजिक जागरूकता का मतलब सोशल मीडिया पर सक्रिय रहना बन गया है। सोशल मीडिया ने समाज के हर वर्ग में अपनी पैठ बना ली है। यह एक ऐसा समूह है जिससे जुड़कर हम आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान कर सकते हैं। यह नया मीडिया भारतवर्ष में देर से प्रचलित हुआ लेकिन धीरे-धीरे इसने समाज के हर वर्ग में अपनी जगह बना ली है। सोशल मीडिया के कुछ प्रकार निम्नलिखित हैं-

सोशल नेटवर्किंग-

सोशल नेटवर्किंग साइट एक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म है जो लोगों के बीच सामाजिक नेटवर्किंग अथवा सामाजिक संबंधों को बनाने पर केन्द्रित होता है। अधिकांश सोशल नेटवर्किंग सेवायें वेब

आधारित होती है और उपयोगकर्ताओं को इण्टरनेट का प्रयोग करते हुए एक-दूसरे से संपर्क करने का साधन प्रदान करती है। व्यापक अर्थ में, सोशल नेटवर्किंग सेवा व्यक्ति केंद्रित होती है।

सोशल मीडिया और सोशल नेटवर्किंग के लिए संचार शैली भिन्न होती है। सोशल मीडिया में, कोई भी बात कर सकता है और डाउनलोड कर सकता है कि वह क्या चाहता है। सोशल नेटवर्किंग में किसी को सुनने और बात करने या प्रतिक्रिया देने की जरूरत है। कोई मोनोलॉग नहीं है सोशल नेटवर्किंग की मुख्य विशेषताएं बात करना, सुनना और प्रतिक्रिया देना साथ ही व्यवसाय करने के लिए महत्वपूर्ण है।

लिंक्डइन-

सोशल नेटवर्किंग साइट लिंक्डइन बिजनेस यूजर्स के लिए उपयोगी साबित हुई। लोगों ने अपने क्लासमेट्स तो ढूंढे ही साथ ही दुनिया में अपनी रूचि के लोग भी खोजे। बिजनेस यूजर्स ने प्रोफेशनल नेटवर्क्स एवं बिजनेस कनेक्शन स्थापित किए।

"लिंक्डइन मई 2003 में रिलीज की गई इस वेबसाइट का उपयोग प्रोफेशनल नेटवर्क सर्विस के लिए किया जाता है। इस वेबसाइट के निर्माण का मुख्य उद्देश्य यूजर्स को संपर्क साधनों की एक लिस्ट प्रदान करना है, जिससे वे उन व्यक्तियों से संपर्क कर सकें, जिनके साथ वे व्यापारिक रूप से कोई संपर्क स्थापित करना चाहते हैं।[6]"

फेसबुक-

फेसबुक एक सोशल नेटवर्किंग साइट है, जिसका आरंभ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी की एक डोरमेट्री में 04 फरवरी 2004 को एक छात्र मार्क जुकरबर्ग ने किया था। तब इसका प्रारंभिक नाम 'द फेसबुक' था। अगस्त 2005 में इसका नाम फेसबुक कर दिया गया। मार्क जुकरबर्ग ने हारवर्ड के इनहाउस प्लेटफार्म के रूप में फेसबुक का निर्माण किया था किंतु यह 2006 में सार्वजनिक तौर पर उपयोग हुआ।

"फेसबुक में प्रयोगकर्ता अपनी तस्वीर के साथ प्रोफाइल बनाकर खाता खोलता है। अपनी इच्छानुसार, विचार, सूचनाएँ, वीडियो, फोटो आदि अपने Wall (दिवाल) पर डाल सकते हैं। जहां हमसे जुड़ा हर कोई उसे देख सकता है, पढ़ सकता है, लाइक कर सकता है या अपने विचार लिख सकता है। इसमें हम अपनी रूचि के अनुसार समुदाय भी अलग से बना सकते हैं। फेसबुक पर मित्रों और ग्रुप की संख्या जितनी अधिक होगी उतना ही ज्यादा विचार दूसरों तक पहुँचेंगे।[7]

फेसबुक अपने यूजर को अनेक सुविधाएं उपलब्ध कराता है। इन सुविधाओं में सबसे प्रमुख रूप से प्रोफाइल बनाना, यह एक प्रकार सोशल बायोडाटा होता है, जिसको देखकर काई भी उपभोक्ता किसी के भी बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकता है। फेसबुक में जब कोई यूजर लॉग-इन करता है तो सबसे पहले वह अपने होमपेज पर आता है और उसे न्यूज फीड दिखाई देता है। इस वेबपेज पर उपयोगकर्ता को अपने दोस्तों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त होती है। फेसबुक ने अपने यूजर को न्यूज फीड पेज पर अपडेट्स को डिलीट करने की सुविधा भी प्रदान की है।

गूगल हैंगआउट-

गूगल हैंगआउट अपने उपयोगकर्ताओं को विश्वभर में एक दूसरे से संपर्क करने, वीडियो चौट करने तथा अन्य सामग्री को आसानी से शेयर करने की सुविधा प्रदान करता है। गूगल हैंगआउट एप्लीकेशन में बहुत सारी विशेषताएँ समाहित है। गूगल प्लस ने कुछ समय पहले हैगआउट ऑनएयर नाम का नया फीचर ऐड किया था, इस नए फीचर की सहायता से गूगल प्लस में यूजर नौ लोगों से एक साथ वीडियो चौंटिंग कर सकता है। हैगआउट ऑनएयर को एंड्रॉयड स्मार्टफोन के साथ-साथ टैबलेट में भी उपयोग कर सकते हैं। गूगल के इस नए फीचर से वीडियो कालिंग के शौकीन अब एक साथ अपने ढेर सारे दोस्तों से चौट कर सकते हैं।

यूट्यूब-

समाजिक जागरूकता में यूट्यूब की अहम भूमिका है। "यूट्यूब एक वीडियो शेयरिंग वेबसाइट है जहां कोई व्यक्ति वीडियो क्लिप डाल सकता है या पहले से डाले गये वीडियो क्लिप देख सकता है, डाउनलोड कर सकता है तथा किसी अन्य को भेज सकता है। उपयोगकर्ता किसी वीडियो पर अपने विचार लिख सकता है। कुछ वेबसाइट पर वीडियो डालने या डाउनलोड करने के लिए पंजीकरण आवश्यक होता है। यूट्यूब का प्रारम्भ पे पाल (Pay Pal) कंपनी के तीन व्यक्तियों चॉड हर्ली (Chad Hurley), स्टीव चेन (Steve Chen) तथा जावेद करीम (Jawed Karim) ने मिलकर 2005 ई. में किया।[8],

वर्तमान में बहुत से लोग यूट्यूब पर चौनल बनाकर उसमें वीडियों डालते हैं। यूट्यूब पर कई ऐसे लोग हैं, जो इसके जरिए लाखों की कमाई कर रहे हैं। इन सबका बहुत बड़ा बाजार सोशल मीडिया में बना है। सामाजिक जागरूकता लाने के लिए छोटे-छोट आकर्षक वीडियों बनाकार यूट्यूब पर अपलोड किया जा सकता है।

लाइव स्ट्रीमिंग-

लाइव स्ट्रीमिंग ऑनलाइन स्ट्रीमिंग मीडिया के दर्शकों को वास्तविक समय में एक साथ रिकॉर्ड और प्रसारित करती है। यह अक्सर केवल स्ट्रीमिंग के रूप में संदर्भित होता है। सोशल मीडिया के क्षेत्र में, 'लाइव मीडिया' शब्द न्यू मीडिया को दर्शाता है जो लोगों के बीच लाइव मल्टीमीडिया के नेटवर्क बनाने के लिए स्ट्रीमिंग मीडिया तकनीकों का उपयोग करता है। लाइव मीडिया किसी भी इंटरनेट वेबसाइट या एप्लिकेशन के माध्यम से शेयर किया जा सकता है।

ट्विटर-

ट्विटर, माइक्रोब्लॉगिंग श्रेणी की वेबसाइट है। "ट्विटर, एक ऐसी वेबसाइट जो अपने यूजर्स को 140 अक्षरों तक के सूक्ष्म संदेश प्रेषित करने और प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करता है, जिन्हे 'ट्वीट्स' कहते हैं। जुलाई 2006 में लॉन्च होने के बाद से ही ट्विटर की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हुई है।[9]

"सोशल नेटवर्किंग साइट्स ट्विटर का मुख्यालय अमेरिका में है, वहीं ट्विटर इस दुनिया में 21 मार्च, 2006 को आया और तबसे लेकर आज तक यह नित्य नई बुलंदियों को छू रहा है। पहले ट्विटर को केवल कंप्यूटर में प्रयोग किया जा सकता था लेकिन अब यह टैबलेट, स्मार्टफोन आदि में भी डाउनलोड किया जा सकता है।[10]

"ट्विटर मूलत: एक मुफ्त लघु संदेश सेवा (SMS) व माइक्रो-ब्लॉगिंग तरह की सोशल मीडिया सेवा है जो अपने उपयोगकर्ताओं को अपनी अद्यतन जानकारियां, जिन्हें ट्वीट्स कहते है, एक दूसरे को भेजने और पढ़ने की सुविधा देता है। इस कारण यह टेक-सेवी यानी आधुनिक संचार माध्यमों का प्रयोग करने वाले उपभोक्ताओं, विशेषकर युवाओं में खासी लोकप्रिय हो चुकी है।[11]"

इन्स्टाग्राम-

इंस्टाग्राम आनलाइन फोटो शेयरिंग नेटवर्क है। यह एक लोकप्रिय सोशल नेटवर्क एप्लिकेशन है जो किसी भी व्यक्ति को अपने फोटो को अपलोड या एडिट करने की सुविधा प्रदान करता है। स्टफ को एनजी की रिपोर्ट के अनुसार- 60 मिलियन फोटोज प्रति दिन इंस्टाग्राम पर शेयर की जाती है और इस ऐप के 200 मिलियन यूजर्स हैं। अपने फीचर्स के कारण इंस्टाग्राम सबसे लोकप्रिय फोटो शेयरिंग ऐप बन गया है।[12]"

स्मार्टफोन पर फोटो शेयरिंग के लिए मशहूर एप्लीकेशन इंस्टाग्राम को फेसबुक ने एक अरब डालर में खरीदा है। इंस्टाग्राम का इस्तेमाल एप्पल के आइफोन, आइपैड और आइपाड टच डिवाइसेस में किया जाता है।

विकीज-

सर्वप्रथम अंग्रेजी विकिपीडिया जनवरी 2001 में आरम्भ किया गया था। हिन्दी विकिपीडिया, विकिपीडिया का हिन्दी भाषा का संस्करण है, जिसका स्वामित्व विकिमीडिया संस्थापन के पास है। हिन्दी संस्करण जुलाई 2003 में आरम्भ किया गया था और 01 दिसम्बर 2016 तक इस पर 1,22,653 लेख और लगभग 3,20,005 पंजीकृत सदस्य हो चुके थे। 30 अगस्त 2011 के दिन यह एक लाख लेखों का आँकड़ा पार करने वाला प्रथम भारतीय भाषा विकिपीडिया बना। यह लेखों की संख्या, सक्रिय सदस्यों, प्रयोक्ताओं की संख्या, सम्पादनों इत्यादि के आधार पर भारतीय भाषाओं में उपलब्ध विकिपीडिया का सबसे बड़ा संस्करण है।

निष्कर्ष-

इस प्रकार सोशल मीडिया के जरिए ऐसे कई विकासात्मक कार्य हुए हैं जिनसे कि लोकतंत्र को समृद्ध बनाने का काम हुआ है जिससे किसी भी देश की एकता, अखंडता, पंथनिरपेक्षता, समाजवादी गुणों में अभिवृद्धि हुई है। आज फेसबुक एवं अन्य सोशल नेटवर्किंग के जरिए हम अपने स्कूल और कॉलेज के उन पुराने दोस्तों को भी अचानक खोज सकते हैं।

प्रो. शरद नारायण खरे ने लिखा है कि "वर्तमान में फेसबुक व व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया के माध्यमों में परस्पर परिचय, मित्रता, आत्मीयता व जानकारियों के साथ ही भावनाओं के आदान-प्रदान में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। अपरिचितों के मध्य मैत्री सम्बंधों की स्थापना, बिछुड़ों की खोज, भावनात्मक संवेगों का आदान-प्रदान, आपसी घनिष्टता ये समस्त विषिष्टताएं हमें सोशल मीडिया में दृष्टिगोचर होती है। मैत्री व भाईचारे की दृष्टि से सोशल मीडिया की व्यापक रूप में सकारात्मक भूमिका है।[13] प्रेम, अपनत्व, सौहार्द, सहिष्णुता, सद्भाव प्रसारित करने में सोशल मीडिया की निश्चित रूप से सार्थक भूमिका है और इस दृष्टि से सोशल मीडिया व्यापक रूप में सफल भी रहा है।

संदर्भ

1. Ngak, Chenda (2011-07-06). "Then and now: a history of social networking sites". CBS news.
2. Kirkpatrick, David (2011). The Facebook effect: the real inside story of Mark Zuckerberg and the world's fastest-growing company. London: Virgin.
3. Dijck, Jose van (2013-01-02). The Culture of Connectivity: A Critical History of Social Media. Oxford University Press.
4. http%@@wwwnewswritersin@2015@05@31@social&media&is&a&interactive&web&based&dynamic&platform @.
5. http%@@wwwnewswritersin@2016@02@09@what&is&social&media@.
6. पटेल योगेश, सोशल मीडिया, संस्करण: 2012, प्रकाशक: पुस्तक महल जे .-3 / 16 दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ 147 148।
7. रत्नेश्वर के सिंह, मीडिया लाइव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, भारत, पहला संस्करण: 2014, पृष्ठ 209।
8. ओझा विनय कुमार, परीक्षा मंथन-कम्प्यूटर: एक परिचय, अतिरिक्तांक 8 संशोधित संस्करण: 2011-2012, प्रकाशक एवं सम्पादक अनिल अग्रवाल- मंथन प्रकाशन 7, R/5, ताशकंद मार्ग इलाहाबाद, पृष्ठ: 104।
9. पटेल योगेश, सोशल मीडिया संस्करण: 2012, प्रकाशक पुस्तक महल जे.-3 / 16 दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ 138।
10. http%@@wwwnewswritersin@2016@02@09@what&is&social&media@.
11. https%@@navinsamacharwordpresscom@history&of&journalism@new&media@.
12. http%@@gadgetsbhaskarcom@news@GAD&APP&instagram&is&affected&by&a&bug&4569016&NOR-html.
13. http%//jayvijay-co/2017/05/12/ सोशल मीडिया का महत्व/

राम भक्ति का प्रादुर्भाव

डॉ० दुर्गावति सल्लाम

रानी दुर्गावती शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय मण्डला (म.प्र.)

वैष्णवि भक्ति के अन्तर्गत राम तथा कृष्ण की भक्ति का स्रोत वेदों से माना जाता है। इसका क्रमिक विकास भारतवर्ष की धरती पर ही हुआ है यह सर्वथा मान्य तथ्य है। इतना ही नहीं राम भक्ति अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है इसके अतिरिक्त अनेक आधुनिक अनुसंधान भी सुपुष्टि करते हैं। ''हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्ति का उदय और विकास' इस शीर्षक के अन्तर्गत विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसके सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहास इस प्रकार व्यक्त हुआ है। यथा-निगुनिये दम्भी साधकों से बचने और संसार को सार युत मानकर भगवद्भक्ति के पथ पर जनमानस को लाने के लिए गुण-साकार अवतारी विष्णु की भक्ति का रामानुज, निम्बार्क, मध्यवाचार्य और बल्लभाचार्य आदि दक्षिणापत्य आचार्यों, द्वारा सगुण भक्ति का पुनः प्रवर्तन किया गया। यह कथन भारतीय साधन-पद्धति के इतिहास के प्रति सर्वथा अपनी अनभिज्ञता को दर्शाना है।''[1]

वेदों में विष्णु का उल्लेख है किन्तु वह श्रीमद् भागवत पुराण में प्रतिपादित विष्णु के रूपों-राम और कृष्ण से भिन्न है। भारतीय धर्म साधना का सर्वोत्तम ग्रंथ ''श्रीमद्भगवद् गीता' है। वैष्णव भक्ति अर्थात् राम भक्ति के स्वच्छ और स्पष्ट स्वरूप को उद्घाटित करने की दिशा में शांडिल्य मुनि तथा देवर्षि नारद के भक्ति-सूत्रों का विशेष योगदान है। भक्ति-सूत्रों ने भक्ति को दृढ़ शास्त्रीय धरातल प्रदान करके साधना के लिए सरल एवं सुलभ बना दिया। इसके उपरान्त पुराणों ने विष्णु के अवतार राम को मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप प्रदान किया।

वैदिक धर्म के कर्मकांड की प्रतिक्रिया स्वरूप एक ही साथ दो धर्मों का उदय हुआ, वैष्णव धर्म तथा बौद्धधर्म। बौद्ध धर्म तो आत्मशुद्धि में स्थापित हो गया और वैष्णव धर्म ने भगवान की भक्ति का आश्रय लिया। इसमें अवतारवाद की भावना व्याप्त होकर राम और कृष्ण का स्वरूप स्थापित हुआ। उत्तरी भारत की तुलना में दक्षिणी भारत यह वैष्णव भक्ति पूर्व ही पुष्पित हो चुकी थी। यह भावना वैष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध श्रीमद्भागवत पुराण या पांचरात्र धर्म से है। वैष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में उपलब्ध होता है। भगवान विष्णु का उल्लेख हमें ऋग्वेद में सौर-शक्ति के रूप में या इन्द्र के सहयोगी रूप में प्राप्त होता है। विष्णु का परम ब्रह्म रूप जो इतिहास, महाकाव्यों और श्रीमद्भागवत पुराण में प्रतिपादित है वह पश्चात् का है। विष्णु के राम और कृष्ण के रूप की चर्चा ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व हो चुकी थी।

कुछ विद्वत् जनों ने वैदिक संहिताओं में निहित राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, जनक, हनुमान, भरत, वशिष्ठ आदि नामों को देखकर राम भक्ति का संदर्भ वैदिक काल से जोड़ा है। परन्तु बाद में रामायण काल की रामकथा और वैदिक साहित्य की रामकथा में अन्तर है। अन्तर दृष्टिगोचर होने के बावजूद भी रामकथा एक ऐसे युग की प्रतीत होती है जो नैतिक सिद्धान्त जीवनादर्श पर आधारित है। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में राम का रूप अवतार का नहीं बल्कि महापुरुष का है यह मानववाद के सिद्धान्त पर वर्णित कथा है। इससे भी सिद्ध होता है कि रामकथा वैदिक युग से भी पूर्व की है। महाभारत का रामोपाख्यान अनेक स्थानों पर वाल्मीकि रामायण से शाब्दिक साम्य रखता है। रामकथा के कुछ स्रोत अन्य भी हैं, जो इस प्रकार हैं- बौद्ध जातक ग्रंथ तथा जैन साहित्य आदि। इन ग्रंथों में रामकथा परिवर्तित स्वरूप में प्राप्त होती है। जैन साहित्य में तो अधिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, किन्तु पुराणों में रामकथा का स्वरूप बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण का ही है।

इतिहासकार जयचन्द विद्यालंकार जी का कथन है कि ''कालिदास के समय तक 'राम' को विष्णु का अवतार नहीं माना जाता था, अन्यथा अमरकोश में विष्णु के जो नाम गिनाये गये हैं वे कृष्ण के न होते। इससे यही सिद्ध होता है कि कृष्ण भक्ति भावना प्राचीन है। पाँचवी सदी के भी बाद में राम को भगवान मानने की प्रक्रिया शुरू हुई है। डॉ. हरदेव बाहरी भी कहते हैं कि राम का पूर्ण रूप गुप्तकाल में समुद्रगुप्त के कार्यकाल में विकसित हुआ। आचार्य चतुरसेन शास्त्री इनसे भी एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। चतुरसेन जी का कथन है कि राम-कृष्ण भक्ति का विकास ग्यारहवीं सदी में हुआ है। उपरोक्त समस्त तथ्य भ्रामकपूर्ण हैं। भास के प्रतिमा नाटक और पंचरात्र नाटक इस बात के प्रमाण हैं। कि ईसा के 500 वर्ष पूर्व राम और कृष्ण को ईश्वरवाद के रूप में स्थापित कर दिया है डॉ. भंडारकर ने।''[2]

शंकराचार्य जी ने आठवीं सदी में अद्वैतवाद का निरूपण किया इसके कारण बौद्ध धर्म क्षतिग्रस्त हो गया। शंकराचार्य का मायावाद भक्ति के सन्निवेश के लिए अनुपयुक्त था। भक्ति को सम्यक् आधार दिया सन् 1073 ई. में स्वामी रामानुजाचार्य ने। उनके विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धांत के अनुसार चराचर जगत उसी ब्रम्ह का अंश है जो भक्ति के द्वारा सामीत्य लाभ ही परम ब्रह्म है। रामानुज की शिष्य परम्परा दिन-दूना रात-चौगुना विस्तृत होती गयी। रामानुजाचार्य जी का सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय के नाम से विश्व में

विख्यात हो गया। इस सम्प्रदाय में अनेक संत-महात्मा हुए हैं। उन समस्त संत महात्माओं ने भी रामानुजाचार्य जी का अनुशरण करते नारायण की उपासना पर बल दिया है।

संवत् 1400 में श्री सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानन्द जी के शिष्य रामानन्द जी ने देशव्यापी यात्राओं द्वारा श्री सम्प्रदाय धर्म का धुआँधार प्रचार-प्रसार किया। इनके दो ग्रंथ प्राप्त होते हैं प्रथम 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' तथा द्वितीय 'रामार्चनन पद्धति'। इनका उपासना पद्धति में अधिक विश्वास था। इन्होंने ब्रम्ह रूप को न ग्रहण करते हुए राम की लीला पर अधिक जोर दिया है। इनके आराध्य थे इष्टदेव राम तथा मूल तंत्र था राम। यथा-

''रां रामाय नमः। ह्रीं श्रीं सीतायै नमः।।''[3]

इस प्रसंग को हम यह नहीं कह सकते हैं, कि राम नाम का प्रादुर्भाव रामानुजाचार्य के कार्यकाल से हुआ है। इसके पूर्व के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि रामानुजाचार्य से भी पाँच पीढ़ी पूर्व 'शठकोपाचार्य' ने यह सिद्ध किया था कि-

'दशरथस्य सुतं विना अन्यशरणवान्नास्मि।'

रामानन्द जी ने भक्ति के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान की। उन्होंने समाज के सभी वर्णों को रामभक्ति के लिए सुलभ मार्ग प्रशस्त किया। जैसे- 'जाति-पाँति पूछें नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।' रामानन्द जी पूर्व भी ज्ञानदेव और नामदेव ने रामभक्ति धारा को अपनाया था। रामानन्द जी की उदारभक्ति ने कबीर, दादू, पीपा, नानक आदि निर्गुण भक्त कवियों को भी अपनी भक्ति में समावेशित कर लिया। परन्तु कबीर, दादू, पीपा तथा नानक आदि की शिष्य परम्परा में निराकार भक्ति का समावेश था। यथा- ''दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम को मरम है आना।।'

शेष सनातन तथा नरहरिदास जैसे संतों की जितनी प्रशंसा की जाये तो वह भी बहुत कम ही है क्योंकि इन संतों ने ही तुलसीदास जैसे रामभक्त को संत शिरोमणि की श्रेणी में लाकर सर्वश्रेष्ठ 'राम भक्त' बना दिया। तुलसीदास जी के पूर्व का हिन्दी का रामकथा साहित्य प्रायः अप्रकाशित ही है। रामानन्द जी केवल एकमात्र रचना 'रामरक्षा स्रोत्र' ही प्राप्त होती है। नाभादास की रचना 'भक्तमाल' के अनुसार उनके शिष्य थे- अनंतानंद, कबीर, सुखानन्द, सुरानन्द, पद्मावती, नरहरि, पीपा, भावानन्द, रैदास, धन्ना, सेना तथा सुरानन्द की पत्नी आदि। तुलसीदास जी से भी पूर्व विष्णुदास जी रामभक्त कवि थे ये वाल्मीकि रामायण के हिन्दी रूपान्तरकार हैं। ईश्वरदास जी की दो रचनाएँ हैं- 'भरत मिलाप' तथा 'अंगद पैज'। कुछ जैन कवियों ने भी रामकथा सम्बन्धी रचनाएँ प्रणीत की हैं यथा-मुनि लावराय कृत 'रावण मंदोदरी संवाद'। इसी रचना का लेखक जिनराम शूरि को भी बताया गया है। ब्रह्म जिनदास कृत 'रामचरित या रामरास' तथा हनुमंतरास, ब्रम्ह रायमल एवं सुन्दरदास कृत 'हनुमंतगामी कथा' हनुमंत चरित आदि ग्रंथ भी रामकथा का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

माता प्रसाद गुप्त जी ने यह स्पष्ट किया है कि रामकथा का सर्वाधिक हृदयस्पर्शी केन्द्र कहाँ है? चाहे वह केन्द्र प्राचीन हो या आधुनिक। यथा-

''हिन्दी राम भक्ति धारा में अनेक कवि हुए हैं, किन्तु राम-भक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। रामभक्ति धारा के अन्य कवियों और तुलसी में अन्तर तारागण और चन्द्रमा का नहीं है, तारागण और सूर्य का है। तुलसी की अपूर्व आभा के सामने वे साहित्यकारों में रहते हुए भी चमक न सके। इसलिए इस धारा का अध्ययन मुख्यतः तुलसीदास में ही केन्द्रित करना होगा।''[4] आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी रामभक्ति धारा का अनेक रचनाओं में प्रणयन हुआ है। आधुनिक काल में रामचरित पर लिखने वाले कवि तथा रामकाव्य-लेखक और प्राचीन कवियों के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर है। आज के बौद्धिक वैज्ञानिक युग में राम को मानव रूप में स्वीकार किया गया है। आधुनिक काल के प्रमुख रामभक्ति धारा के निम्नलिखित कवि इस प्रकार हैं- रामचरित उपाध्याय, अयोध्या सिंह हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि।

मध्यकालीन सगुण उपासना का अवतारवाद एक प्रमुख अंग है। इस धारा के अनुयायियों का मत है कि ईश्वर अपनी इच्छा से लीला करने के लिए अवतरित होता है। यदि देखा जाये तो वैसे तो सम्पूर्ण चराचर जगत ईश्वर का ही अवतार है। इस मत के समर्थकों में अवतार रूपी भावना की जड़ में गीता की विभूति एवं ऐश्वर्य योग क्रियाशील है। भगवान की विभूतियाँ हैं- ज्ञान, कर्म, वीर्य, ऐश्वर्य और प्रेम आदि। जो मनुष्य किसी भी क्षेत्र कला-कौशल प्रदर्शित करते हैं वे भगवान की विभूति को साकार मानते हैं। इसलिए सिद्ध होता है कि गुणातीत और सगुण तथा असीम और ससीम में किसी प्रकार का विभेद नहीं है।

राम-भक्ति विकास में राम का ऐतिहासिक रूप पाँच सदी ईसा पूर्व वाल्मीकि रामायण में अक्षुण्ण है। राम का साहित्यिक रूप एक सदी ईसा पूर्व भास से प्रारंभ होकर कालिदास एवं कुमारदास पर्यन्त अर्थात् आठवीं सदी तक का है। राम के साम्प्रदायिक रूप का विकास आलवार संतों तथा शठकोपाचार्य अर्थात् नवीं सदी में प्रस्फुटित हुआ है। इसके उपरान्त आचार्य युग प्रारम्भ होता है। इसमें आचार्य रामानुजाचार्य जी की शिष्य परम्परा का प्रादुर्भाव होता है। राम-भक्ति का साम्प्रदायिक विकास को क्रमशः निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा-1 आलवार युग-800-1000 ई. पर्यन्त। 2. आचार्य युग- 1100-1400 ई. पर्यन्त। 3. रामायत युग-1400-1700 ई. पर्यन्त। 4. रसिक सम्प्रदाय-

आधुनिक युग के आरम्भ से पूर्व तक। 5. आधुनिक युग। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा दशरथ जो अयोध्या साम्राज्य के सम्राट थे, उनके पुत्र राम-राजपुत्र से पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तम से विष्णु, विष्णु से परब्रम्ह स्वरूप राम तथा इसके उपरान्त आदर्श मानव का स्वरूप ग्रहण करते गये।

रामकाव्य तथा कृष्ण काव्य में युगों-युगों से पृथक-पृथक मतानुसार मतालम्बियों द्वारा लोक जीवन का सम्यक चित्रण हुआ है। अष्टछाप भक्तों द्वारा अष्टछाप में तत्कालीन भारतीय जीवन की एक सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी है। तुलसी ने रामकाव्य में राम को असत् से संघर्ष करते हुए सत् का उद्धार करवाया है। वे पितृ आज्ञा तथा आर्तजन का उद्धार करने हेतु व्रत धारण करते हैं, चौदह वर्ष का वनवास। इस व्रत के निर्वहन में वे नाना कष्टों को सहन करके भी अपने पथ से विचलित नहीं होते हैं। यहाँ तक कि प्रिय भार्या (पत्नी) का अपहरण और भ्राता लक्ष्मण पर प्राणघातिनी शक्ति का प्रहार भी सहजता से सहन कर लेते हैं, परन्तु मानवता और लोक-सत्ता को विदीर्ण नहीं होने देते हैं। राम भक्त कवियों का कथन है कि भगवान धर्मोद्धार, पापनाश, साधुरक्षण, दुष्टदलन तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए युग-युग में अवतार लेते हैं। यथा-

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।''[5]

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्ययुग और प्रवृत्तियाँ- डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 227
2. अमरकोश- कालिदास
3. नारद पुराण
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 230
5. श्री मद्भगवद्गीता- अध्याय 4 श्लोक 7-8

कबन्ध युद्ध की ऐतिहासिकता का विश्लेष्णात्मक अध्ययन

डॉ० भगवान सिंह शेखावत

सहायक प्रोफेसर

शोध-सारांशः-

शक्ति व भक्ति की भूमि राजस्थान की विशिष्ट लोक सांस्कृतिक परम्पराओं में ''जुंझार (झुंझार)'' की विलक्षण परम्परा अद्‌भुत है। नारी व गौ रक्षार्थ, जन्मभूमि, मर्यादा व धर्म ध्वजा को अक्षुण्ण रखने हेतु धरा के योद्धाओं ने ऐसे युद्ध किये जिसमें सिर कटने के बाद भी धड़ (कबंध) शत्रु दल से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है जिसका उल्लेख इतिहास के ग्रंथों, व लौकिक साहित्य में मिलता है। जयमल, कल्ला, अचलदास, वीरम सोनगरा आदि जूँझार योद्धा तो इतिहास के पन्नों में हैं परन्तु प्रदेश के गाँव-ढाणियों में कई अज्ञात जूँझार स्मारक है जिन्हें विस्तृत शोध से प्रकाश में लाने व संरक्षित करने की महती आवश्यकता है।

संकेताक्षर- कबंध, ख्यात, बात, वचनिका, रासो, प्रकाश, कमध, हकीकत, झूलणा

''जिस दिन भारत की संतान अपनी अतीत की कीर्तिगाथा को भुला देगी, उसी दिन उसकी उन्नति का मार्ग बंद हो जाएगा। पूर्वजों के अतीत व पुण्य कर्म आने वाली संतान को सुकर्म की शिक्षा देने के लिए अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। जो चला गया वही भविष्य में आवेगा।''

स्वामी विवेकानंद

सम्पूर्ण विश्व में संस्कृति के उत्कृष्ट एवं विलक्षण स्वरूप के दिग्दर्शन हमें भारतीय संस्कृति में होते हैं जहाँ संस्कृति के विविध आयाम दृष्टव्य है। भारतीय संस्कृति में कला, स्थापत्य, विज्ञान, अध्यात्म, साहित्य के साथ शौर्य व पराक्रम का भी उज्ज्वल इतिहास प्राप्त होता है। वीर प्रसविनी राजस्थान की धरा विशेषतः मध्यकाल में शक्ति व भक्ति के चरमोत्कर्ष के लिए सम्पूर्ण विश्व में जानी पहचानी जाती है। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों की भीषणता में इस धरा में लोमहर्षक युद्ध हुये है जिनमें से अभी तक अल्पज्ञात अथवा अज्ञात है। राजस्थान में जन्मभूमि, धर्म, स्वाभिमान, मर्यादा, नारी रक्षा, वचन पालन, शरणागत की रक्षा, गौ-रक्षा हेतु आतताइयों से युद्ध कर बलिदान देने के असंख्य ऐतिहासिक कथानक स्थानीय स्त्रोतों में प्राप्त होते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षार्थ लड़ने भिड़ने वाले अमर हुतात्माओं के लिए कवि ने कहा है-

''घोरा घाटयां ताल रो, आंटीलो इतिहास।
गाँव-गाँव थरमापली, 'घर-घर ल्यूनीडास।।''[1]

राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत में विशिष्ट लोक सांस्कृतिक परम्परायें यथा-जौहर, जुंझार, ओरण आदि है जिनका समानान्तर उदाहरण विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। जूंझार अथवा झूंझार से तात्पर्य ऐसे शूरवीरों से हैं जो मस्तक कटने के बावजूद भी युद्ध में लड़ते हैं। जुंझारों के ये कथानक मात्र जनश्रुति या काव्यों का पात्र न होकर ऐतिहासिकता में है। शाब्दिक अर्थ में जो परोपकार के निमित्त युद्ध में लड़कर प्राणोत्सर्ग करता है, झुंझार कहलाता है। राजस्थान में इस प्रकार योद्धा हेतु झुंझार, भोमियाजी, मांमोजी शब्द प्रचलित है जिनमें सर्वाधिक प्रचलित झुंझार है वहीं भोमियाजी पश्चिमी राजस्थान व मांमोजी शब्द गोड़वाड़ क्षेत्र में चलन में है।

जूंझार (झुंझार) शब्द का ''राजस्थानी शब्दकोश' में तात्पर्य निम्न प्रकार से है-

झूंझार- झुंझारि- देखो ''जूंझार''

जूंझार- देखो 'जूंझार

जूंझार- वि. (युद्धकार)

1. परोपकार के लिए युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाला
2. पीर
3. शक्तिशाली
4. वीर योद्धा।[2]

मध्यकाल की परम्परा में इस प्रकार के वीर को ''सहस्त्रभट सामन्त या सहस्त्रवीर'' कहते थे। वह अकेला ही हजार आदमियों से युद्ध करने की शक्ति रखता था।[3]

योद्धा आततताइयों से लड़ते हुये सिर कटने पर भी धड़ से दोनों हाथों में तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ता था। धड़ को 'कबंध'' कहा जाता था। इस प्रकार का आश्चर्यजनक युद्ध ''कबंध युद्ध'' कहलाता था। ऐसे जूंझार जिनका सिर व धड़ अलग-अलग जगह मिलता उनकी पूजा अलग-अलग जगह होती थी। आयुवान सिंह हुड़ील ने लिखा भी है-

दो दो मेला नित भरै, पूजै दो दो ठौड़।
सिर कटियो जिण ठौड़ पर, धड़ जूंझी जिण ठौड़।''

युद्ध करते समय ऐसे जूंझारों के अन्तः स्थल में आंतरिक चक्षु उद्‌घाटित हो जाते हैं, जो प्राणांत के पश्चात् भी काफी समय तक अपनी दृष्टि को यथावत रखने में, देखने में सक्षम होते हैं।[4] ऐसे

वीर योद्धाओं को प्राप्त अलौकिक दैवीय शक्ति उस समय तक अपना पराक्रम दिखाती रहती है जब तक की कबन्ध (धड़) को किसी दूषित पदार्थ अथवा नील (गुले) के छीटों से शान्त नहीं कर दिया जाता।[5]

उपर्युक्त जूंझार का वर्णन ना तो जनश्रुति से लिया गया है न ही मात्र लोक कथाओं की कहानियों से प्रेरित है। जूंझार (कबन्ध) का उल्लेख भारतीय ज्ञान परम्परा के ग्रंथों में है। अथर्ववेद में कबन्ध शब्द का प्रयोग तीन बार हुआ है[6]–

(अ) आत्मा की उन्नति के संदर्भ में– कबन्ध।

(ब) मनुष्य शरीर की महिमा के संदर्भ में– धड़।

(स) मनुष्य के कर्त्तव्य के उपदेश के संदर्भ में।

वाल्मीकी रामायण के अरण्यकांड़ में कबन्ध के संबंध में विस्तार से कथानक आया है।[7] महाभारत के वन पर्व[8] श्री मद्भागवत महापुराण[8] में भी कबन्ध का वर्णन है। सातवीं–आठवीं शताब्दी काल के संस्कृत के महाकवि माघ रचित ''शिशुपालवधम्'' में भी कबंध युद्ध का इस प्रकार उल्लेख है–

''शत्रु के ऊपर किये गये क्रोध से अधर को दाँतों से काटे हुए मुख के, शत्रु के अर्द्धचन्द्राकार बाण से कटने के बाद ऊपर थोढ़ी दूर उछलकर पुनः कटी हुई गर्दन पर स्थित हो जाने पर हाथ में घूमती हुई तलवार वाले धड़ से ही शत्रु–पक्षीय सैनिक ड़र गये।''[10]

सन् 1658 में सामूगढ़ के निकट दाराशिकोह का औरंगजेब की सेना से युद्ध हुआ। दाराशिकोह की सेना में किशनगढ़ के स्वामी रूपसिंह भारमलोत और अन्य मेड़तिया राठौड़ सम्मिलित थे। इस युद्ध में कई मेड़तिया राठौड़ वीरगति को प्राप्त हुये जिनमें मोहनसिंह मेड़तिया सिर कटने के बाद भी जूंझता रहा।[11] सन् 1730 में जोधपुर महाराजा अभयसिंह व सरबुलन्द अहमदाबाद की लड़ाई का जूंझार का उदाहरण मिलता है–

''जोधो हतीसिंघ जोगीदासोत खैरवा भायप रो माथो पड़ीयां पछै तलवार वाही।''[12]

वीर–जूंझारों के गीत एवं उनका स्तवन प्रायः डिंगल भाषा में अधिक देखा जाता है। गद्य साहित्य में ख्यात, वचनिका, दवावैत, हकीकत, विगत, वाकिया, रूक्के, परवाना, खरीता आदि में तत्संबन्धी वर्णन है वहीं पद्य साहित्य में रासो, विलास, प्रकाश, रूपक, झूलणा, झमाल, कवित, निसानी आदि में वर्णन है। एक उदाहरण निम्न है–

''सह देसां सूरा हुवा, लड़िया जोर हमेस
सिर कटियां लडणो सखी, इण घर रीत विसेस''

अर्थात् हे! सखी सभी देशों में शूरवीर हुये हैं जो सदैव बड़ी वीरता से लड़े हैं, किन्तु सिर कटने के उपरान्त भी युद्ध करना तो केवल इस देश की ही विशेष परम्परा है।

''धर कागज, खग लेखणी, रगतां स्याही खास।
कमधां लिखियो कोड़ सूं, अमिट धरा इतिहास।।''

अर्थात्– धरती रूपी कागज पर तलवार रूपी लेखन से रक्त की विशेष स्याही से कमधों (सिर कटने पर भी लड़ने वाले वीरों) ने बड़े चाव से भूमि का अमिट इतिहास लिखा है।

राजस्थान में 11–12वीं सदी से लेकर प्रारंभिक 19वीं सदी तक झूंझारों के अनगिनत उदाहरण मिलते हैं जिनमें अकबर कालीन, राठौड़ मेड़तियां जयमल, कल्ला जी राठौड़ (चितौड़ रनेला), कल्लाजी रायमलोत, अचलदास खींची, वीरमदे सोनगरा चौहान आदि इतिहास प्रसिद्ध जूंझार हुये हैं परन्तु मेवाड़, मारवाड़ व शेखावटी क्षेत्र में कई अज्ञात (न्छैन्छळ) जूंझार चरित्र है जिस पर विस्तृत शोध कार्य नहीं हुआ है जिसकी नितान्त आवश्यक है ताकि जन्मभूमि, गौ–रक्षा, धर्म ध्वजा, स्वाभिमान, नारी रक्षार्थ, मान–मर्यादा, शरणागति जैसे मूल्यों हेतु सर्वस्व बलिदान देने वाले हुतात्माओं को इतिहास में स्थान देकर कृतज्ञ पीढ़ियों द्वारा आदरांजलि दी जा सके व क्षेत्रीय इतिहास के नवीन तथ्यों के आलोक में इतिहास लेखन को नवीन दिशा दी जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हठीलो राजस्थान, कुं. आयुवान सिंह, 1989
2. राजस्थानी हिन्दी संक्षिप्त शब्दकोश, प्रथम खण्ड ग्रंथाक 156, 157 पृष्ठ 479 सम्पादक– पदमश्री सीताराम लालस
3. पद्मावत– मलिक मुहम्मद जायसी, सम्पादक–वासुदेवशरण अग्रवाल
4. राजस्थान के वीर जूंझार, डॉ. रघुनाथ प्रसाद तिवाड़घी, राजस्थानी ग्रंथागार, 2022, पृष्ठ 19
5. वहीं, पृष्ठ 19
6. अथर्ववेद, 1.4.3, 10.2.3,
7. वाल्मीकी रामायण, अरण्यकांड़, सर्ग 68–73
8. महाभारत वेदव्यास कृत, वन पर्व (279.30)
9. श्रीमदभागवत पुराण, स्कन्ध 9, अध्याय 10, श्लोक 12
10. शिशुपालवधम, 18/53, महाकवि माघ, व्याख्याकार– पं. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015, पृष्ठ 828
11. मेड़तियाँ राठौड़ो का राजनीतिक और सामाजिक इतिहास, डॉ. हुकुमसिंह भाटी, पृष्ठ 121–122
12. राठौड़ों री ख्यात, द्वितीय खण्ड, डॉ. हुकुमसिंह भाटी, पृष्ठ 449

एन.डी.ए. शासनकाल में भारत-बांग्लादेश संबंध

डॉ० पुष्कर पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर

भारत पहला देश था जिसने बांग्लादेश को एक अलग और स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता दी और दिसंबर 1971 में अपनी स्वतंत्रता के तुरंत बाद देश के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किए। भारत और बांग्लादेश के बीच सभ्यतागत, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक संबंध है। ये दोनों देश दक्षिण एशिया के पड़ोसी है और आमतौर पर उनके बीच संबंध मैत्रीपूर्ण रहे हैं। बांग्लादेश की सीमा तीन ओर से भारत से लगी हुई है। 1947 में भारत के विभाजन के बाद, रेडक्लिफ रेखा भारत और पूर्वी पाकिस्तान के बीच की सीमा बन गयी और 1971 में बांग्लादेश की आजादी के बाद यही रेखा भारत और बांग्लादेश के बीच की सीमा बन गयी। भारत एवं बांग्लादेश, दोनों देशों के बीच नियमित रूप से उच्च स्तरीय दौरे और साझा समझ का आदान-प्रदान होते रहे हैं। मंत्रिस्तरीय स्तर के साथ-साथ वरिष्ठ अधिकारियों के बीच नियमित रूप से लगातार दौरे भी होते रहे हैं। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने 07-10 अप्रैल 2017 को भारत की राजकीय यात्रा की। यात्रा के दौरान, असैन्य परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष, सूचना प्रौद्योगिकी, रक्षा, क्षमता निर्माण आदि के उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों सहित विभिन्न क्षेत्रों में 36 द्विपक्षीय दस्तावेजों का निष्कर्ष निकाला गया। 4.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य की तीसरी लाइन ऑफ क्रेडिट (एलओसी) भी बांग्लादेश को प्रदान की गई। दोनों प्रधानमंत्रियों ने बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के भारतीय शहीदों के सम्मान में एक स्मारक समारोह की अध्यक्षता की। इस यात्रा से पहले, प्रधानमंत्री हसीना ने ब्रिक्स-बिम्सटेक आउटरीच शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए 16-17 अक्टूबर 2016 को भारत का दौरा किया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 6-7 जून, 2015 को बांग्लादेश की राजकीय यात्रा की। यात्रा के दौरान, 22 द्विपक्षीय दस्तावेजों का निष्कर्ष निकाला गया, जिसमें भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौते के लिए अनुसमर्थन के साधन का आदान-प्रदान और दूसरी क्रेडिट लाइन शामिल है। एलओसी की कीमत 2 अरब अमेरिकी डॉलर थी। भारत की विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज और विदेश राज्य मंत्री लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) वी.के.सिंह ने पदभार ग्रहण करने के बाद क्रमशः 25-27 जून और 24 अगस्त 2014 को बांग्लादेश की अपनी पहली एकल विदेश यात्रा की थी। पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने मार्च 2013 में बांग्लादेश का दौरा किया, जो पद संभालने के बाद उनकी पहली विदेश यात्रा थी। बांग्लादेश के राष्ट्रपति, श्री मोहम्मद अब्दुल हमीद ने दिसंबर 2014 में भारत का दौरा किया, जो कि 42 वर्षों के अंतराल के बाद बांग्लादेश के 'औपचारिक राष्ट्राध्यक्ष' की पहली यात्रा थी।

सुरक्षा, व्यापार और वाणिज्य, बिजली और ऊर्जा, परिवहन और कनेक्टिविटी, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, रक्षा, नदियों और समुद्री मामलों आदि के क्षेत्रों में भारत और बांग्लादेश के बीच 50 से अधिक द्विपक्षीय संस्थागत तंत्र हैं। एक संयुक्त सलाहकार आयोग (जेसीसी) के नेतृत्व में विदेश मंत्रियों द्वारा दोनों देशों के बीच की गई पहलों के कार्यान्वयन का समन्वय और निरीक्षण करने के साथ-साथ सहयोग के लिए नए रास्ते तलाशे जाते हैं। तीसरा जेसीसी 20 सितंबर, 2014 को नई दिल्ली में आयोजित किया गया था। चौथा जेसीसी जल्द ही ढाका में आयोजित होने की उम्मीद है।

भारत और बांग्लादेश 4096.7 किमी भू-सीमा साझा करते हैं। भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौता (एलबीए) जून 2015 में अनुसमर्थन के उपकरणों के आदान-प्रदान के बाद लागू हुआ। 31 जुलाई, 2015 को दोनों देशों में भारत और बांग्लादेश के परिक्षेत्रों का आदान-प्रदान किया गया और स्ट्रिप मैप्स पर हस्ताक्षर किए गए। इन पूर्व एन्क्लेव के निवासियों, जिन्होंने अपनी भारतीय नागरिकता बनाए रखने का विकल्प चुना था, ने 30 नवंबर, 2015 तक भारत में अंतिम आवेदन किया। दोनों देशों के बीच सुरक्षा सहयोग से संबंधित कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं। समन्वित सीमा प्रबंधन योजना पर भी हस्ताक्षर किए गए हैं। भारत-बांग्लादेश सीमा पर अमन-चैन बनाए रखने के साथ-साथ सीमा-पार अवैध गतिविधियों और अपराधों की जाँच के लिए दोनों देशों की सीमा सुरक्षा बलों के प्रयासों में तालमेल बिठाने का लक्ष्य रखा गया है। 7 जुलाई 2014 के यूएनसीएलओएस पुरस्कार के अनुसार भारत और बांग्लादेश के बीच समुद्री सीमा मध्यस्थता के निपटारे ने बंगाल की खाड़ी के इस हिस्से के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है।

भारत और बांग्लादेश 54 नदियाँ साझा करते हैं। एक द्विपक्षीय संयुक्त नदी आयोग (जेआरसी) जून 1972 से काम कर रहा है ताकि दोनों देशों के बीच साझा नदी प्रणालियों से लाभ को अधिकतम करने के लिए संपर्क बनाए रखा जा सके। जेआरसी की बैठकों के अलावा (अब तक हुई 37 बैठकें), जेआरसी तकनीकी स्तर की बैठकें भी नियमित रूप से आयोजित की जाती हैं। गंगा नदी के पानी के बंटवारे के लिए 1996 में हस्ताक्षरित गंगा जल संधि (जनवरी 1-मई 31) संतोषजनक ढंग से काम कर रही है। संधि के प्रावधानों के कार्यान्वयन का जायजा लेने के लिए गंगा जल के बंटवारे पर संयुक्त समिति की नियमित बैठकें आयोजित की जाती हैं।

भारत और बांग्लादेश के बीच पहले व्यापार समझौते पर 1972 में हस्ताक्षर किए गए थे। भारत-बांग्लादेश व्यापार समझौते को आखिरी बार जून 2015 में पीएम की यात्रा में पुन: नवीनीकरण के प्रावधान के साथ 5 साल की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया था। दोनों देशों के बीच कई अन्य व्यापार संबंधी समझौतों पर भी हस्ताक्षर किए गए हैं। पिछले एक दशक में भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय व्यापार में लगातार वृद्धि हुई है। पांच वर्षों में, दोनों देशों के बीच कुल व्यापार में 17 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। जुलाई 2016 - मार्च 2017 की अवधि में बांग्लादेश को भारत का निर्यात 4489.30 मिलियन अमेरिकी डॉलर और वित्त वर्ष 2016-17 के दौरान बांग्लादेश से आयात 672.40 मिलियन यूएस डॉलर था। द्विपक्षीय व्यापार सांख्यिकी के बारे में अधिक जानकारी उच्चायोग की वेबसाइट पर है। भारत ने 2011 से दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (साफ्टा) के तहत तंबाकू और शराब को छोड़कर सभी टैरिफ लाइनों पर बांग्लादेश को शुल्क मुक्त कोटा मुक्त पहुंच प्रदान की है। सीमावर्ती समुदायों के लाभ के लिए चार सीमा हाट, त्रिपुरा और मेघालय में दो-दो स्थापित किए गए हैं। भारत-बांग्लादेश सीमा पर अतिरिक्त सीमा हाटों पर विचार किया जा रहा है। बांग्लादेश निवेश विकास प्राधिकरण (बीआईडीए) के साथ पंजीकृत बांग्लादेश में कुल भारतीय निवेश प्रस्ताव 3 अरब अमेरिकी डॉलर से अधिक है। बांग्लादेश में भारतीय प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 2015-16 में 88.0 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। अप्रैल 2017 में प्रधानमंत्री शेख हसीना की यात्रा के दौरान, बांग्लादेश में बिजली और ऊर्जा क्षेत्रों में मुख्य रूप से भारतीय निवेश के लगभग 10 बिलियन अमेरिकी डॉलर के 13 समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए थे।

भारत ने पिछले 7 वर्षों में बांग्लादेश को 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर की 3 लाइन ऑफ क्रेडिट्स प्रदान की हैं। यह बांग्लादेश को अब तक भारत से एलओसी फंड प्राप्त करने वाला सबसे बड़ा प्राप्तकर्ता बनाता है। बांग्लादेश के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान, भारत ने सार्वजनिक परिवहन, सड़कों, रेलवे, पुलों और अंतर्देशीय जलमार्ग आदि में परियोजनाओं को कवर करते हुए बांग्लादेश के लिए 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर की लाइन ऑफ क्रेडिट (एलओसी) की घोषणा की थी। इनमें से अधिकांश परियोजनाएं पूरी हो चुकी हैं। भारत ने जून 2015 में प्रधानमंत्री मोदी की बांग्लादेश यात्रा के दौरान 2 बिलियन अमेरिकी डॉलर का दूसरा एलओसी दिया था। इस एलओसी में सड़क, रेलवे, बिजली, शिपिंग, एसईजेड, स्वास्थ्य और चिकित्सा देखभाल और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्रों में 15 परियोजनाएं शामिल हैं। अप्रैल 2017 में बांग्लादेश के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान, भारत ने बांग्लादेश को 4.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर का तीसरा एलओसी दिया। नया एलओसी बंदरगाह निर्माण, रेलवे, सड़क, हवाई अड्डे, बिजली और ऊर्जा, दूरसंचार और नौवहन आदि के क्षेत्रों में परियोजनाओं को कवर करेगा।

एलओसी फंड के अलावा, भारत सरकार 'बांग्लादेश को सहायता' के तहत परियोजनाओं के लिए बांग्लादेश को अनुदान सहायता भी प्रदान करती है। इस कार्यक्रम के तहत भारत सरकार द्वारा स्कूल/कॉलेज भवनों, प्रयोगशालाओं, औषधालयों, गहरे नलकूपों, सामुदायिक केंद्रों, ऐतिहासिक स्मारकों/भवनों के जीर्णोद्धार आदि के निर्माण जैसी परियोजनाओं को वित्तपोषित किया गया है। वर्तमान में, तीन सतत् विकास परियोजनाएं राजशाही, खुलना और सिलहट शहरों में चलाई जा रही हैं। शिलैदाहा में रवींद्रनाथ टैगोर के पुश्तैनी घर का विस्तारित विकास कार्य के साथ-साथ बांग्लादेशियों के चयनित जिलों में 36 सामुदायिक क्लीनिक भी चलाए जा रहे हैं। भारतीय अनुदान सहायता के तहत सबसे बड़ी परियोजनाओं में से एक अगरतला-अखौरा रेल-लिंक का बांग्लादेश भाग है।

विद्युत क्षेत्र में सहयोग भारत-बांग्लादेश संबंधों की पहचान बन गया है। बांग्लादेश वर्तमान में भारत से लगभग 660 मेगावाट बिजली का आयात कर रहा है। मार्च 2016 में, दोनों प्रधानमंत्रियों ने त्रिपुरा से बांग्लादेश को बिजली के निर्यात के साथ-साथ बांग्लादेश से त्रिपुरा को इंटरनेट बैंडविड्थ के निर्यात का उद्घाटन किया। अन्य 500 मेगावाट की आपूर्ति 2018 में शुरू होने की उम्मीद है। 1320 मेगावाट कोयले से चलने वाले मैत्री थर्मल पावर प्लांट, भारत के राष्ट्रीय थर्मल पावर कॉरपोरेशन (एनटीपीसी) और बांग्लादेश पावर डेवलपमेंट बोर्ड (बीपीडीबी) के बीच 50:50 संयुक्त उद्यम विकसित किया जा रहा है। रामपाल में अप्रैल 2017 में बांग्लादेश के प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान, भारतीय सार्वजनिक/ निजी कंपनियों और बांग्लादेश पक्ष के बीच 3600 मेगावाट से अधिक बिजली के उत्पादन/ आपूर्ति/ वित्तपोषण के लिए समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए थे। भारत और बांग्लादेश के बीच ऊर्जा क्षेत्र के सहयोग में भी पिछले दो वर्षों में काफी प्रगति हुई है। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन, नुमालीगढ़ रिफाइनरी लिमिटेड, पेट्रोनेट एलएनजी लिमिटेड जैसी कई भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां बांग्लादेश के तेल और गैस क्षेत्र में अपने बांग्लादेशी समकक्षों के साथ काम कर रही हैं। भारत नुमालीगढ़ रिफाइनरी लिमिटेड से बांग्लादेश को डीजल की आपूर्ति के लिए सिलीगुड़ी से पार्बतीपुर तक भारत-बांग्लादेश मैत्री पाइपलाइन के निर्माण के लिए धन देने पर सहमत हो गया है। ओएनजीसी विदेश लिमिटेड ने ऑयल इंडिया लिमिटेड के साथ कंसोर्टियम में दो उथले पानी के ब्लॉक का अधिग्रहण किया है और वर्तमान में इन ब्लॉकों की खोज कर रहा है। दोनों देशों के पारस्परिक लाभ के लिए गैस ग्रिड इंटरकनेक्टिविटी की संभावना भी तलाशी जा रही है।

भारत-बांग्लादेश परिवहन सभी साधनों के माध्यम से कनेक्टिविटी का एक अच्छा उदाहरण है। सड़क मार्ग से माल की आवाजाही 36 कार्यात्मक भूमि सीमा शुल्क स्टेशनों और सीमा के साथ 2 एकीकृत चेक पोस्ट के माध्यम से संचालित होती है। इसमें पेट्रापोल-बेनापोलआईसीपी शामिल है जिसके माध्यम से 50 प्रतिशत

से अधिक द्विपक्षीय व्यापार होता है जिसके कारण इन लैंडपोर्ट्स को 01 अगस्त, 2017 से 24 ग 7 के आधार पर संचालित करने का निर्णय लिया गया है।

अंतर्देशीय जल व्यापार और पारगमन पर प्रोटोकॉल 1972 से चालू है। यह आठ विशिष्ट मार्गों पर बांग्लादेश की नदी प्रणालियों के माध्यम से भारत से जहाजों पर माल की आवाजाही की अनुमति देता है। पीआईडब्ल्यूटीटी के तहत जून 2016 में आशुगंज नदी बंदरगाह के माध्यम से और अखौरा अगरतला के माध्यम से भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में माल की ट्रांस-शिपमेंट जून 2016 में शुरू हुई। जून 2015 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की बांग्लादेश यात्रा के दौरान हस्ताक्षरित तटीय नौवहन समझौते ने दोनों देशों के बीच कंटेनरीकृत/थोक/सूखे कार्गो की सीधी समुद्री आवाजाही को भी सक्षम बनाया है। फरवरी 2017 में, इस ढांचे के तहत कोलकाता और पंगांव (जो ढाका से लगभग 20 किमी दूर है) के बीच कंटेनर जहाज सेवाएं शुरू हो गई हैं। पूर्व में मौजूद 6 रेल लिंक में से, दोनों देशों के बीच चार ब्रॉड गेज अंतर-देशीय रेल लिंक अब चालू हैं। अप्रैल 2017 में प्रधानमंत्री शेख हसीना की यात्रा के दौरान राधिकापुर-बिरोल रेल लिंक को फिर से चालू किया गया था। इनके अलावा, शेष दो नए रेल लिंक पर काम जारी है। अगरतला और अखौरा के बीच 7वें रेल-लिंक को भारत की अनुदान सहायता के तहत वित्तपोषित किया जा रहा है। कोलकाता और ढाका के बीच 'मैत्री एक्सप्रेस' अब सप्ताह में 4 दिन चलती है और इसे पूरी तरह से एसी ट्रेन सेवा में बदल दिया गया है। खुलना-कोलकाता के बीच दूसरी मैत्री एक्सप्रेस का ट्रायल रन अप्रैल 2017 में प्रधानमंत्री शेख हसीना की भारत यात्रा के दौरान आयोजित किया गया था। कोलकाता-ढाका, शिलांग-ढाका और ढाका के रास्ते अगरतला-कोलकाता के बीच नियमित बस सेवाएं हैं। अप्रैल 2017 में प्रधानमंत्री शेख हसीना की यात्रा के दौरान एक नई बस सेवा (ढाका-खुलना-कोलकाता) शुरू की गई थी। बांग्लादेश, भूटान, भारत और नेपाल - मोटर वाहन समझौते से सड़क मार्ग से कनेक्टिविटी को काफी बढ़ावा मिलने की उम्मीद है। कोलकाता से अगरतला होते हुए ढाका और ढाका से नई दिल्ली होते हुए कोलकाता और लखनऊ के बीच ट्रकों पर कार्गो मूवमेंट का ट्रायल रन अगस्त 2016 में आयोजित किया गया था। वर्तमान में भारत और बांग्लादेश के बीच साप्ताहिक रूप से लगभग 100 उड़ानें संचालित होती हैं जो विभिन्न भारतीय शहरों जैसे नई दिल्ली, कोलकाता को जोड़ती हैं।

प्रशासन, पुलिस, न्यायपालिका, अग्निशामकों, मादक अधिकारियों, परमाणु वैज्ञानिकों, शिक्षकों आदि के कर्मियों सहित इच्छुक बांग्लादेशी अधिकारियों/नागरिकों के लिए कई प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। बांग्लादेश भी एक महत्वपूर्ण आईटीईसी भागीदार देश है, और इसके लगभग 800 प्रतिभागी हैं। बांग्लादेश हर साल कार्यक्रम के तहत संचालित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का लाभ उठाता है। इसके अलावा, कला, विज्ञान, इंजीनियरिंग में सामान्य पाठ्यक्रम और संस्कृति, नाटक, संगीत, ललित कला और खेल आदि के लिए विशेष पाठ्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए हर साल बांग्लादेश के छात्रों को आईसीसीआर (भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद) द्वारा छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय उच्चायोग, बांग्लादेश में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का एक सांस्कृतिक केंद्र है। जिसका 2010 में उद्घाटन किया गया, जो कि नियमित रूप से सांस्कृतिक गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला को कवर करने वाले कार्यक्रमों का आयोजन करता है। IGCC योग, हिंदी, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत, मणिपुरी नृत्य, कथक और पेंटिंग में नियमित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी आयोजित करता है। पाठ्यक्रम बांग्लादेशी छात्रों के साथ बहुत लोकप्रिय हैं। IGCC हिंदी शिक्षक विश्वविद्यालय में आधुनिक भाषा संस्थान में हिंदी भी पढ़ाते हैं। ICCR ने 2011 से ढाका विश्वविद्यालय में एक टैगोर चेयर की शुरुआत की है। जनवरी 2017 में ढाका विश्वविद्यालय में एक 'हिंदी' चेयर के लिए एक समझौता ज्ञापन पर भी हस्ताक्षर किए गए थे। एक 100 सदस्यीय युवा प्रतिनिधिमंडल 2012 से प्रतिवर्ष भारत का दौरा कर रहा है। भारतीय उच्चायोग पिछले कुछ दशकों से बंगाली साहित्यिक मासिक पत्रिका 'भारत विचित्र' का प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक संस्करण प्रकाशित कर रहा है। पत्रिका की बांग्लादेश में व्यापक पाठक संख्या है।

ढाका में भारतीय उच्चायोग और चटगांव और राजशाही में दो सहायक उच्चायोग मिलकर किसी भी अन्य भारतीय मिशन की तुलना में सबसे ज्यादा भारतीय वीजा जारी करते हैं। 2016 में 9. 33 लाख को छूने के साथ संख्या कई गुना बढ़ रही है। भारतीय स्टेट बैंक द्वारा प्रबंधित बांग्लादेश में 12 भारतीय वीजा आवेदन केंद्र हैं: ढाका (गुलशन, धनमंडी, मोतीझील और उत्तरा), चटगांव में 4, सिलहट, राजशाही, खुलना, मयमनसिंह, रंगपुर, बारीसाल और जेसोर।

लगभग 10,000 सशक्त भारतीय समुदाय के बांग्लादेश में रहने का अनुमान है। बांग्लादेश में भारतीयों को उनकी कड़ी मेहनत और प्रबंधकीय कौशल के लिए सम्मानित किया जाता है और एक समुदाय के रूप में सामाजिक और आर्थिक रूप से बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। अधिकांश भारतीय गारमेंट क्षेत्र में या बहुराष्ट्रीय कंपनियों में शीर्ष पेशेवरों के रूप में लगे हुए हैं। लगभग 3000 भारतीय छात्र बांग्लादेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों/कॉलेजों में भी मेडिकल कोर्स कर रहे हैं।

भारत, बांग्लादेश का दूसरा सबसे बड़ा व्यापार साझेदार है, साल 2023 में, बांग्लादेश ने भारत को 1.97 बिलियन अमरीकी डॉलर का सामान निर्यात किया और कुछ द्विपक्षीय व्यापार 14.01 बिलियन अमरीकी डॉलर रहा। साल 2022 में, दोनों देशों में व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते (CEPA) पर एक संयुक्त व्यवहार्यता अध्ययन किया, बांग्लादेश साल 2026 के बाद अपना अल्प विकसित देश (LDC) का दर्जा खोने के लिए तैयार है,

जिससे भारत में उसकी शुल्क-मुक्त और कोटा मुक्त बाजार पहुँच आसान हो जायेगी।

निष्कर्ष- भारत और बांग्लादेश के मध्य संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भाषा और धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र के साझा मूल्यों पर आधारित है। दोनों देशों के बीच अनगिनत अन्य समानताएं हैं। यह संप्रभुता, समानता, विश्वास, समझ और जीत की साझेदारी पर आधारित है जो एक रणनीतिक साझेदारी से कहीं अधिक आगे जाती है। एन.डी.ए. शासनकाल में पिछले कुछ वर्षों में दोनों देशों ने नए और उच्च-प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में सहयोग सहित संबंधों को और मजबूत किया गया है। वर्तमान एन.डी.ए. सरकार के बीच द्विपक्षीय संबंधों को बेहतर बनाने की बहुत गुंजाइश है। सहयोग, सहभागिता और एकीकरण संबंधों की नींव होनी चाहिए। प्रगति के लिए शांति सबसे महत्वपूर्ण शर्त है। नतीजतन, शांतिपूर्ण, सुरक्षित और अपराध मुक्त सीमा प्रदान करने के लिए सक्षम सीमा प्रबंधन की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची:

1. चकमा, बी (2015), शेख हसीना सरकार की भारत नीति: तीन स्तरीय खेल? जर्नल ऑफ एशियन सिक्योरिटी एंड इंटरनेशनल अफेयर्स, 2(1), 27-51
2. गुप्ता, एस. (2015, 8 मई), संसद ने एलबीए पर मुहर लगाई हिन्दू,
3. करीम, आर., (2015, 7 मार्च), भारत बांग्लादेश के साथ बिजली व्यापार 2018 तक 2,000 मेगावाट अधिक करने का लक्ष्य है, द डेली स्टार
4. शर्मा, सी. (2016), भारत-बांग्लादेश संबंध: दोस्ती की ओर बढ़ रहा है, आईएसएएस इनसाइट्स, नंबर 315
5. काशेम, एम.ए. और इस्लाम, एम.एस. (2016)। नरेंद्र मोदी की बांग्लादेश नीति और भारत-बांग्लादेश संबंध: चुनौतियां और संभावित नीति प्रतिक्रियाएं, इंडिया क्वार्टरली,72(3), 250-267
6. मजूमदार, ए. जे. (2014), भारत-बांग्लादेश संबंधों की समझ बनाना, इंडिया क्वार्टरली, 70(4), 327- 340।
7. पंत, एच.वी. (2007), भारत और बांग्लादेश: क्या कभी मिलेंगे दोनों? एशियाई सर्वेक्षण, 47(2), 231-249।
8. पंत, एच.वी. (2011), बांग्लादेश के साथ भारत के संबंध, डी. स्कॉट (एड.) में, भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की पुस्तिका (पृ. 83-94)। लंदन: रूटलेज.
9. उपाध्याय, एस. (7 दिसंबर, 2017), द फयूचर ऑफ इंडियाज डू-नथिंग पॉलिसी टुवार्ड्स द रोहिंग्या, द डिप्लोमैट
10. http://www.mea.gov.in>pdf
11. http://www.thehindu.com>national

वर्तमान में जीवन कौशलों का महत्व

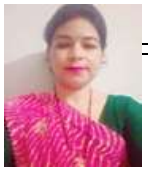

सरोज शर्मा

शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० मंजू शर्मा

निदेशक, फैकल्टी ऑफ एज्यूकेशन एण्ड मैथडोलॉजी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश–

आज का विश्व आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, जिस प्रकार हिंसा, संघर्ष, तनाव से विश्व प्रभावित है। वर्तमान में हमारा वास्तविक समाज लैंगिक और जातीय भेदभाव, महिलाओं और बच्चों के खिलाफ अपराध, स्वास्थ्य समस्याएं, यौन समस्याएं, एचआईवी, एड्स आदि से प्रभावित है। पूरा विश्व इन घातक वास्तविकताओं से जूझ रहा है। हालांकि, निराशा और हताशा आज के युवाओं को असामाजिक दबावों के कारण विशेष रूप से प्रभावित कर रही है। विशेष रूप से, किशोरावस्था बच्चों के सभी रूपों में शारीरिक रूप से तेजी से विकास का एक महत्वपूर्ण चरण है। किशोरावस्था अपने नकारात्मक मनोवैज्ञानिक दबावों के परिणामस्वरूप विभिन्न व्यवहारों और कामुकता के बारे में गलत निर्णय लेती है। वे आमतौर पर बाहरी दुनिया से बहुत प्रभावित होते हैं। मानसिक उत्तेजना और निर्णय लेने की परिपक्वता की कमी के कारण वे विभिन्न असामाजिक गतिविधियों में संलग्न होते हैं और खुद को विनाश की ओर ले जाते हैं। किशोरावस्था के इस जीवन को स्वस्थ, सुंदर और सशक्त बनाने का एकमात्र उद्देश्य शिक्षा है। यह शिक्षा जीवन कौशल शिक्षा होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि जीवन कौशल शिक्षा की बुनियादी गतिविधियाँ वर्तमान समाज की जरूरतों और मांगों को पूरा करें। यह आपको किशोरावस्था की सभी मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक समस्याओं का स्वस्थ तरीके से सामना करने में मदद करेगी। यह शोधपत्र जीवन कौशल शिक्षा के महत्व और लाभों पर जोर देता है। जीवन कौशल शिक्षा वर्तमान समाज के छात्रों को अपनी सामाजिक और भावनात्मक सोच विकसित करने और सक्षम नागरिक बनने में मदद करेगी।

बीज शब्द– जीवन कौशल शिक्षा, किशोर, वर्तमान दिन।

परिचय– जीवन शैली एक कौशल या दक्षता वृद्धि प्रणाली है जो किसी व्यक्ति को उसके जीवनकाल के दौरान किसी भी कार्य को करने में सक्षम बनाती है। यह व्यक्ति को एक सार्थक और सफल जीवन जीने का रोमांच देता है। जीवन रणनीति हमारे जीवनकाल के दौरान विभिन्न समस्याओं के समाधान को संदर्भित करती है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत मामलों को उचित जिम्मेदारी के साथ प्रबंधित करने में मदद करती है। ये व्यक्ति की मानवीय गतिविधियों में स्वस्थ समाधानों का समूह है जो सीखने के माध्यम से प्राप्त होते हैं। इन तकनीकों का उपयोग लोगों के दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं को हल करने के लिए किया जाता है।

जीवन कौशल को लक्ष्यीकरण जीवन कौशल भी कहा जाता है। इस मॉडल को 1996 में हेंड्रिक्स ने पेश किया था। उन्होंने कहा, जीवन कौशल शिक्षा व्यक्तियों के सामाजिक प्राणियों के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए पूर्ण और एकीकृत विकास की सुविधा प्रदान करती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जीवन कौशल को अनुकूली और सकारात्मक व्यवहार की क्षमताओं के रूप में परिभाषित किया है जो व्यक्तियों को रोजमर्रा की जिंदगी की माँगों और चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाता है।

जीवन कौशल शिक्षा युवाओं के लिए स्वयं को समझने और अपने कौशल, क्षमताओं और विकास के क्षेत्रों का आकलन करने में सक्षम होने के लिए एक मूल्य संवर्धन कार्यक्रम है। जीवन कौशल शिक्षा को कई मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था के दौरान सबसे जरूरी शैक्षिक प्रणाली के रूप में वर्णित किया है। किशोरावस्था के दौरान जीवन कौशल शिक्षा आवश्यक है। जीवन कौशल शिक्षा अगली पीढ़ी के कौशल, क्षमताओं आदि को उजागर करके मानव बच्चे के पूर्ण विकास के माध्यम से समाज को लाभान्वित कर सकती है।

जीवन कौशल शिक्षा की अवधारणा आधुनिक समय में प्रत्येक मानव जीवन के लिए जीवन के पूर्ण और सार्थक विकास को प्राप्त करने का एक वास्तविक प्रयास है। जीवन कौशल शिक्षा युवाओं को जिम्मेदारी से काम करने, पहल करने और नियंत्रण करने के लिए सशक्त बनाने का एक कुशल उपकरण है। जीवन कौशल मूल रूप से वे क्षमताएँ हैं जो युवाओं के समग्र कल्याण

और कौशल को बढ़ावा देती हैं। आज की शिक्षा प्रणाली कौशल, दृष्टिकोण और मूल्यों की तुलना में ज्ञान की अवधारणाओं पर अधिक एकतरफा है। जब हम आज के समाज के जटिल जीवन की समस्याओं और जरूरतों को देखते हैं, तो हमें सरल ज्ञान के बजाय व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस ज्ञान को हम व्यावहारिक सामाजिक जीवन में आसानी से लागू कर सकते हैं।

युवाओं के सामने गरीबी, आत्महत्या, अकाल, जनसंख्या विस्फोट, सामाजिक भावनात्मक, शारीरिक और मानसिक समस्याएं जैसी उभरती हुई समस्याएं। बेरोजगारी, नौकरी की सुरक्षा का अभाव युवाओं की एक बड़ी चिंता है। यह सोच उन्हें पागल दौड़ में रखती है। उनमें से अधिकांश उचित मार्गदर्शन और प्रेरणा की कमी के कारण वास्तविक स्थितियों में अपनी संभावित संपत्ति का उपयोग करने में असमर्थ हैं। नतीजतन, शराब, नशीली दवाओं के दुरुपयोग, यौन शोषण, धूम्रपान जैसी सामाजिक समस्याएं उन्हें प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। इसलिए, वर्तमान शिक्षा प्रणाली को कौशल आधारित बनाना और छात्रों के कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। केवल छात्रों के कौशल विकसित करके ही वे भविष्य की सभी चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य- वर्तमान समय में जीवन कौशल शिक्षा के महत्व का अध्ययन करना। अध्ययन का महत्व- यदि वर्तमान शिक्षा प्रणाली को जीवन कौशल शिक्षा में परिवर्तित किया जा सके, तो युवाओं के दैनिक जीवन में आने वाली सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। जीवन कौशल शिक्षा छात्रों को बदलते समाज के साथ स्वस्थ रूप से तालमेल बिठाने के लिए अपने कौशल को बढ़ाने में मदद करती है। वे उन युवाओं की मदद करते हैं जो दिन-प्रतिदिन असामाजिक गतिविधियों में शामिल होते हैं, उन्हें अपने कौशल से परिचित कराते हैं और स्वस्थ समायोजन करते हैं।

शोध पद्धति- इस अध्ययन के लिए विश्लेषणात्मक तरीकों का इस्तेमाल किया गया है। तथ्यों को पुस्तकों, पत्रिकाओं, जर्नल, इंटरनेट आदि जैसे माध्यमिक स्रोतों से एकत्र किया जाता है।

जीवन कौशल शिक्षा का महत्व- बच्चों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास और स्वास्थ्य में सुधार में जीवन कौशल शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 1986 के संयुक्त राष्ट्र ओटावा चार्टर ने जीवन कौशल को श्स्वस्थ स्वास्थ्य विकल्पोंश् की प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया। 1989 के बाल अधिकार सम्मेलन ने जीवन कौशल शिक्षा को बच्चों के पूर्ण गुणवत्ता विकास के लिए शिक्षा के रूप में परिभाषित किया। हमें अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में एक अच्छे दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अच्छे दृष्टिकोण के बिना व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। जीवन कौशल प्राप्त करने से व्यक्ति के कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है और व्यक्ति को उच्च मार्ग की ओर ले जाता है। किशोरावस्था मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण है। इस अवधि के दौरान व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित करने और समाज के विकास में योगदान देने के लिए जीवन कौशल शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

जीवन कौशल शिक्षा व्यक्ति के जीवन में आने वाली सभी समस्याओं को हल करने में मदद करती है। किशोरावस्था विभिन्न कौशल जैसे टीम नेतृत्व गुण, जिम्मेदारी, संचार कौशल, बौद्धिक कौशल, आत्म-नियंत्रण आदि के पूर्ण विकास में मदद करती है। एक व्यक्ति के लिए, दृढ़ संकल्प एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को असाधारण रूप से प्रतिभाशाली बनाने में मदद करती है। जीवन कौशल शिक्षा इस दृढ़ संकल्प को बनाने में मदद करती है। सफलता की यात्रा आसान नहीं है। इस यात्रा में व्यक्ति को विभिन्न बाधाओं को पार करना पड़ता है। जीवन कौशल शिक्षा हमें दृढ़ संकल्प के साथ इन बाधाओं को पार करने में सक्षम बनाती है। निर्णय लेने का सबसे अच्छा तरीका दृढ़ संकल्प है। जो व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य के जीवन पथ पर चलता है, वह कभी सफल नहीं हो सकता। एक व्यक्ति का दृढ़ संकल्प उसके इरादों पर निर्भर करता है। जीवन कौशल शिक्षा हमारे मन में काम के प्रति दृढ़ संकल्प पैदा करने में मदद करती है। इसके अलावा, मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं और समाज में मनुष्य के रूप में जीवित रहने के लिए हमें कुछ सामाजिक कौशल जैसे कि बुजुर्गों के प्रति सम्मान, छोटों के प्रति सम्मान, सहानुभूति, मानवता, धैर्य, विश्वास, चपलता, स्वतंत्रता प्राप्त करने की क्षमता, आत्म-सम्मान, पारस्परिक संबंध, शांति मूल्यों की आवश्यकता होती है। जीवन कौशल शिक्षा इन सामाजिक कौशलों को प्राप्त करने में मदद करती है। एक व्यक्ति का भविष्य उसके द्वारा अर्जित कौशल पर निर्भर करता है। इन कौशलों में व्यावहारिक कौशल जैसे कि व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करना, हस्तशिल्प, छोटी-छोटी वस्तुएँ बनाना, चित्रकारी, संगीत वाद्ययंत्र बनाना आदि शामिल हैं। जीवन कौशल शिक्षा कौशल प्राप्त करने में मदद करती है। इन कौशलों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए आवश्यक जीवन कौशल में अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा, निष्ठा, काम के प्रति सम्मान और काम के प्रति प्रतिबद्धता शामिल हैं। इसी तरह, हमें स्वस्थ और मजबूत दैनिक जीवन जीने के लिए कुछ जीवन कौशल सीखने की आवश्यकता है। वे हैं ड्रग्स न लेना, योग का अभ्यास करना, नियमित भोजन करना, स्वच्छता बनाए रखना, संगीत सुनना, किताबें पढ़ना, जीवन के सभी पहलुओं में सकारात्मक दृष्टिकोण रखना आदि। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह कहा जा सकता है कि आजकल जीवन कौशल शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। जीवन कौशल शिक्षा हमें अपने विभिन्न कौशल विकसित करने में मदद करती है। इन

कौशलों का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इनमें से कुछ सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण कौशलों की चर्चा नीचे की गई है-

आत्म-जागरूकता कौशल- किसी के अपने प्रदर्शन और आचरण को सही ढंग से पहचानने की क्षमता, उसे प्रभावित करने वाली भावनाओं के बारे में जागरूक होना और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार उचित तरीके से प्रतिक्रिया करना आत्म-जागरूकता के रूप में जाना जाता है। आत्म-जागरूक होने की क्षमता व्यक्ति को अपनी भावनाओं के बारे में जागरूक होने, दूसरों के कार्यों और भावनाओं को समझने और अपनी समझ को बुद्धिमानी और सफल निर्णय लेने में सक्षम बनाती है।

करुणा और सहानुभूति कौशल- खुद को दूसरे व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखने की क्षमता, उस व्यक्ति की भावनाओं, धारणाओं और परिस्थितियों को उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से समझना और स्थिति के अनुसार उचित तरीके से प्रतिक्रिया करना और उस व्यक्ति को उस ज्ञान को व्यक्त करना सहानुभूति के रूप में जाना जाता है। दूसरे व्यक्ति के लिए सहानुभूति व्यक्त करने और दूसरे लोगों के भावनात्मक विस्फोटों को प्रबंधित करने की क्षमता को सहानुभूति कौशल कहा जाता है।

निर्णय लेने में कौशल- निर्णय लेते समय व्यक्ति को परिस्थिति को पहचानने में सक्षम होना चाहिए, उन्हें उस पर एक विशिष्ट निर्णय पारित करना चाहिए और अपने विकल्पों को ध्यान से तौलने के बाद अपने मूल्यों, विश्वासों और प्राथमिकताओं के आधार पर विकल्प चुनना चाहिए। निर्णय लेने की हर प्रक्रिया का परिणाम अंतिम निर्णय होता है, जो कार्रवाई का सुझाव दे भी सकता है और नहीं भी। निम्नलिखित तरीकों से, निर्णय लेने की क्षमता समस्या-समाधान क्षमताओं के विकास में सहायता करती है।

- अपने विचारों, भावनाओं, कार्यों और आचरण को नियंत्रित करना क्योंकि व्यक्ति उचित कार्रवाई का रास्ता चुनने में सक्षम होता है।
- उचित विकल्प बनाना स्वयं के लिए सफलता है और निर्णयकर्ता की ओर से निरंतर निर्णय लेने का परिणाम है।
- भारी बाधाओं और महत्वपूर्ण बाहरी प्रभावों के बावजूद, बाहरी उत्तेजनाओं से प्रभावित हुए बिना निर्णय लेने की क्षमता।
- एक व्यक्ति को अपने निर्णय लेने में स्पष्ट होना चाहिए और उसे पता होना चाहिए कि अगर उसे सफल होना है तो उसे क्या चाहिए। उसकी आंतरिक भावना सकारात्मकता और इस विश्वास से भरी होनी चाहिए कि निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभी भी अवसर मौजूद हैं।

संचार कौशल- दूसरों के सामने स्पष्ट और प्रेरक ढंग से बोलने की क्षमता सबसे महत्वपूर्ण जीवन कौशलों में से एक है जिसे कोई भी व्यक्ति सीख सकता है।

एक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की जानकारी देते और प्राप्त करते समय अपने संचार कौशल का उपयोग करता है। प्रभावी ढंग से संवाद करने में सक्षम होने से व्यक्ति को कई लाभ होते हैं, जिसमें उसे अपने विचार व्यक्त करते समय अधिक सहज बनाना और उसका आत्मविश्वास बढ़ाना शामिल है।

विचारों और विचारधाराओं को संप्रेषित करने और उनके माध्यम से दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता रखने के अलावा, जो लोग दूसरों के साथ संवाद करने में कुशल होते हैं, वे विभिन्न प्रकार के उद्यमों में रचनात्मक हो सकते हैं, विशेष रूप से वे जो विभिन्न चीजों की बिक्री से जुड़े होते हैं। अन्य सभी जीवन कौशलों की तरह, संचार कौशल के लिए निरंतर प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है

तनाव कम करने का कौशल- चूँकि किसी व्यक्ति को प्रभारी बनाने और उसे नियंत्रण की भावना देने की क्षमता तनाव प्रबंधन क्षमताओं की परिभाषा का अर्थ है, इसलिए दूसरों के प्रति अपनी भावनाओं, भावनाओं और क्रोध को नियंत्रित करने की क्षमता भी इसमें शामिल है। मनोवैज्ञानिक दबाव बाहरी प्रभावों का एक समूह है जो किसी व्यक्ति पर पूर्ण या आंशिक प्रभाव डालता है या उसके व्यक्तित्व की अखंडता से समझौता करता है। जो लोग तनावग्रस्त या थके हुए होते हैं वे शारीरिक रूप से कमजोर हो जाते हैं, इसलिए किसी भी तनाव या थकावट का सामना करने के लिए आराम करने की क्षमता होना जरूरी है। तनाव को प्रबंधित करने की तकनीकें तनाव, उदासी और चिंता को कम करके आत्म-सम्मान को बढ़ाकर और तनाव को कम करके जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में योगदान करती हैं। स्वस्थ और शक्तिशाली होने के लिए तनाव को प्रबंधित करने की क्षमता की आवश्यकता होती है।

आलोचना स्वीकार करने का कौशल- व्यक्तिगत विकास के लिए रचनात्मक आलोचना को स्वीकार करने की क्षमता को आलोचना स्वीकार करने की क्षमता के रूप में जाना जाता है। आलोचना को स्वीकार करने की व्यक्ति की क्षमता एक महत्वपूर्ण जीवन कौशल है। भले ही कुछ लोगों के लिए दूसरों की आलोचना को स्वीकार करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, लेकिन अपनी भावनाओं और संवेदनशील भावनाओं को इससे दूर रखना महत्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति आलोचना को स्वीकार करता है और आलोचना के स्रोत पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह खुद को बेहतर बनाने और अपने दृष्टिकोण को बदलने के लिए आलोचना का उपयोग कर सकता है।

समय प्रबंधन कौशल- किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्षमताओं में से एक समय प्रबंधन है, खासकर उन लोगों के लिए जिनके पास बहुत सारी जिम्मेदारियाँ और काम पूरे करने हैं। इस क्षमता में महारत हासिल करने की कुंजी एक समय में एक गतिविधि को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध होना है, इसलिए

ध्यान रखा जाना चाहिए कि विचलित न हों और मल्टीटास्किंग द्वारा समय बर्बाद न करें।

पारस्परिक संबंधों में कौशल- जीवन कौशल जो एक व्यक्ति दैनिक आधार पर दूसरों के साथ जुड़ने और संवाद करने के लिए उपयोग करता है, व्यक्तिगत रूप से और समूहों में, पारस्परिक कौशल के रूप में जाना जाता है, जिसे कभी-कभी बातचीत कौशल, सामाजिक कौशल या सामाजिक क्षमता के रूप में जाना जाता है। कोई फर्क नहीं पड़ता कि किसी व्यक्ति के पास ज्ञान या मानसिकता की कितनी डिग्री है, वे सभी इस कौशल को सीख सकते हैं, जो इसे अद्वितीय बनाता है। आत्म-आश्वासन, सक्रिय सुनना, आलोचनात्मक सोच, संचार, क्षमताएं, नेतृत्व और प्रतिनिधिमंडल जैसी विशेषताएं पारस्परिक कौशल के उदाहरण हैं। आपकी पारस्परिक क्षमताओं को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण संकेत हैं

- आपका दिन आशावाद के साथ शुरू होना चाहिए। खुश या दुखी होना एक ऐसा विकल्प है जिसे आप खुद चुनते हैं।
- आत्मा को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि आज कल से बेहतर होगा। कल अभी भी आगे हैय कल अतीत में है और बीत चुका है। आपको पूरे दिन अपने दिमाग को सक्रिय रखना चाहिए और अपने आस-पास के सभी लोगों को इस विचार को सकारात्मक तरीके से बताना चाहिए।
- शब्दों को कैसे बोला जाता है, इससे परिचित हो जाएँ। किसी का मूड चाहे जो भी हो, यह प्यारा है और दयालुता और बेहतरीन रिश्तों को बढ़ावा देता है।
- दूसरे लोगों की आलोचना करने या उनके कामों के बारे में अंतहीन शिकायत करने के बजाय उनके गुणों और खूबियों को स्वीकार करें। अगर संभव हो तो आलोचना से दूर रहें।

सोचने का कौशल- जानकारी का विश्लेषण करने, घटनाओं को समझने, संबंध बनाने, मुद्दों को सुलझाने, निर्णय लेने, सवाल पूछने और नए विचार विकसित करने या जानकारी को व्यवस्थित करने के लिए एक व्यक्ति द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली मानसिक प्रक्रियाओं को सोच कौशल के रूप में जाना जाता है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि नवाचार किसी चीज के बारे में पहले से ज्ञात ज्ञान का उपयोग करके कुछ नया करने की क्षमता है। यह किसी एक चीज के वर्णन के रूप में सोचने से अलग है।

समस्या समाधान कौशल- किसी समस्या को परिभाषित करने, संभावित समाधान प्रस्तुत करने, सर्वोत्तम विकल्प का आकलन करने और उसे चुनने, सर्वोत्तम विकल्प को लागू करने और समस्या को कुशलतापूर्वक और बिना देरी के हल करने की क्षमता को समस्या समाधान कौशल कहा जाता है। हम वर्तमान में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में तेजी से बदलाव और एक बड़ी क्रांति का सामना कर रहे हैं। यह एक ऐसा समय है जब आज के किशोर एक विशेष रोमांचक दबाव में हैं।

परिणामस्वरूप, वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न समस्याओं का सामना कर रहे हैं। उनके काम करने का तरीका, उनका व्यवहार बदल रहा है। उन्हें हर चुनौती का सामना करने के लिए जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों, कर्मचारियों, अभिभावकों और समुदाय के प्रति जागरूक लोगों के लिए इस जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता आवश्यक है। अंत में, किशोरों के लिए तेजी से बढ़ते तकनीकी और आधुनिक समाज के साथ स्वस्थ रूप से एकीकृत होने के लिए जीवन कौशल शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष- कुल मिलाकर, जीवन कौशल शिक्षा एक प्रभावी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समायोजन रणनीति है। यह शिक्षा किशोरों को शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आत्मविश्वास, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, समस्या समाधान, सोचने की क्षमता, आलोचनात्मक सोच विकसित करने में मदद करती है। आजकल पाठ्यक्रम में जीवन कौशल शिक्षा को एकीकृत करना महत्वपूर्ण है। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जाना चाहिए, उन्हें जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए पूरी तरह से विकसित और क्रियाशील बनाया जाना चाहिए। जीवन कौशल शिक्षा छात्रों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यह युवाओं को 21वीं सदी में अपने लक्ष्य हासिल करने के लिए सशक्त बनाती है। जीवन कौशल शिक्षा मानसिक क्षमता को मजबूत बनाने में मदद करती है ताकि वे विचलित न हों और अपने अस्तित्व को न भूलें। यह शोध पत्र आधुनिक संदर्भ में सामना की जाने वाली विभिन्न समस्याओं से निपटकर बेहतर जीवन के निर्माण में जीवन कौशल के महत्व पर चर्चा करता है।

संदर्भ सूची

- जी. भुवनेश्वर लक्ष्मी; (1996) ''लाइफ स्किल्स एजूकेशन''; यूनिवर्सिटी न्यूज 47(08) फरवरी 23 मार्च, 01 डालर्स कमीशन रिपोर्ट।
- जॉन वटरवर्थ एण्ड ज्यौफ थ्वाइट्स, (2005) थिंकिंग स्किल्स; कैम्ब्रिजयूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।
- महेश ओम, (1995) ''आइडैंटीफिकेशन ऑफ लाइफ स्किल्स एसेंशियल फौर स्कूल स्टूडैंट्स'', एम.डी.एस. यूनि. अजमेर।
- एन.सी.ई.आर.टी, ''जीवन के लिए शिक्षा''; शिक्षकों, विद्यार्थियों, पारिवारिकस्वास्थ्य एवं जीवन कलाओं की शिक्षा की गाइड''; एन.सी. ई.आर.टी यूनेस्को।
- सेठ एम, (2000) ''प्लानिंग लाइफ स्किल्स एजूकेशन फोर एडोलैसैंट इन कारपोरेटिंग, रिलेशनशिप, हैल्थ एण्ड जेंडर; यू.एन.एफ.पी.ए. न्यू देहली
- वर्ल्ड हेल्थ आरगेनाइजेशन, (2001)''रीजनल फ्रेमवर्क फॉर इंट्रोडयूसिंग लाइफस्किल्स एजूकेशन टू प्रमोट दि हेल्थ ऑफ एडोलैंसैंट'', डब्ल्यू, एच.ओ. न्यू देहली (रीजनल ऑफिस फोर साउथ ईस्ट एशिया)।

भारत में ई कॉमर्स बिजनेस का विकास

डॉ० रश्मि पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय रेवती रमण मिश्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सूरजपुर (छ0ग0)

आज के समय में भारत में अधिकतर लोग सामान खरीदने के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफार्म का इस्तेमाल कर रहे हैं। मोबाइल फोन्स और इंटरनेट डाटा में हो रहे निरंतर विकास से भारत में ई-कॉमर्स इंडस्ट्री बढ़ती जा रही है, यही कारण है कि आज ई-कॉमर्स से जुड़े कई सारे नए नए ऐप्स मार्केट में आ गए हैं।

सदियों पहले सामान का लेन देन किया जाता था, जिसे वस्तु विनिमय कहा जाता है, फिर उसके बाद करेंसी के बदले सामान खरीदा बेचा जाने लगा। धीरे-धीरे सामान के लेन देन की प्रक्रिया में विकास होता गया और आज इंटरनेट के माध्यम से खरीदा बेचा जाने लगा, जिसे ई-कॉमर्स कहा जाता है।

ई-कॉमर्स का विकास

दुनिया धीरे-धीरे नई टेक्नोलॉजी की तरफ बढ़ रही थी, जिसमें कंप्यूटर बनना और उसमें धीरे-धीरे विकास हो रहा था। इसके विकास के साथ-साथ ई- कॉमर्स की संभावनाएं भी बढ़ रही थी। 1981 में यूके की थॉमसन हॉलिडेज ने बिजनेस टू बिजनेस (B2B) के लिए पहला ऑनलाइन शॉपिंग सिस्टम लॉन्च किया। 1983 में एक क्रांतिकारी काम हुआ, जब इंटरनेट लॉन्च हुआ। इसके पहले तक कई सारे नेटवर्क थे, लेकिन इंटरनेट के आने से कम्युनिकेशन के नए प्रोटोकॉल स्थापित हुए। 1989 में सिकोइया डाटा कारपोरेशन ने Compumarket नाम से पहला इंटरनेट बेस्ड ई-कॉमर्स सिस्टम शुरू किया था, जिसमें क्रेडिट कार्ड के इस्तेमाल से पेमेंट की सुविधा भी दी गयी थी। 1990, 12 मार्च को World Wide Web लॉन्च किया गया और टिम बर्नर्स ली को इसका पिता कहा गया। 1995 में ई-कॉमर्स से जुड़ी दो बड़ी कम्पनियों अमेजन और मठंल की स्थापना हुई। 4 अप्रैल 1999, हांग्जो, चीन में जैक मा ने 17 दोस्तों और छात्रों के साथ ।सपइइं.बवउ की स्थापना की। उसके बाद से विश्वस्तर पर ई-कॉमर्स में कई सारे विकास हो रहे हैं।

भारत में ई-कॉमर्स का विकास

भारत में आज बड़े स्तर पर ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसके पीछे का सबसे बड़ा कारण भारत में मोबाइल और उसके डाटा में हुआ विकास है। दिसंबर 2022 तक भारत में 70 करोड़ से ज्यादा इंटरनेट यूजर्स हैं, जो कि भारत की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं। आज भारत ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स का इस्तेमाल करने में दुनिया में छठे नंबर पर आता है।[1]

1995 में 15 अगस्त के दिन भारत में आम लोगों के लिए इंटरनेट लांच हुआ, जो उस समय एक लक्जरी का साधन हुआ करता था। 1999 में भारत में Fabmart-com के नाम पहला ई-कॉमर्स प्लेटफार्म लॉन्च हुआ था, जिसकी स्थापना के. वैथीश्वरन ने की थी, इसीलिए इन्हें भारत में ई-कॉमर्स का जनक कहा जाता है।

2002 में भारत सरकार ने लोगों की सुविधा के लिए ट्रेन की टिकट रिजर्वेशन के लिए IRCTC लांच की। उसके बाद भारत में 2007 में फ्लिपकार्ट, 2010 में Zomato और 2013 में जानी मानी ई-कॉमर्स वेबसाइट अमेजन लॉन्च हुई। उस समय तक ई-कॉमर्स में पेमेंट करने के लिए नेट बैंकिंग, डेबिट और क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल किया जाता था। तब भारत में पहला ऑनलाइन पेमेंट ऐप Phonepe लॉन्च हुआ और 2020 में भारत सरकार ने भी अपना ऐप BHIM launch किया।[2]

भारत में ई कॉमर्स बजार का आकार

भारत में ई कॉमर्स बजार अब तक तेजी से बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। भारत में ई कॉमर्स बाजार का आकार 2020 के माध्यम से लगभग 82 बिलियन डॉलर था जो 2021 तक बढ़कर 120 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया है। वर्तमान में भारत में ई कॉमर्स बाजार की वार्षिक ग्रोथ दर के अनुसार, भारत में ई कॉमर्स बाजार का आकार 2025 तक 350 बिलियन डॉलर तक पहुंचने की संभावना है।

भारत में ई कॉमर्स बाजार का आकार इसलिए बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है क्योंकि भारत में अधिक से अधिक लोग इंटरनेट के उपयोग करते हुए Future of e-commerce in India के साथ संबंध बना रहे हैं। इसके साथ ही भारत में डिजिटल सक्षमीकरण के साथ साथ, Online payment की सुविधा भी उपलब्ध हो रही है जो ई कॉमर्स कंपनियों को लोगों को आसानी से उनकी पसंदीदा सामान खरीदने की सुविधा प्रदान करने में मदद करता है।

दूसरी ओर, Digital Enablement by Government of India की पहल के तहत Digital Services in india के विकास की गति भी बढ़ा रही है। इससे ई कॉमर्स कंपनियों को भी फायदा हो रहा है क्योंकि वे अपनी सेवाएं विभिन्न शहरों तक पहुंचा सकती हैं जो कि उन्हें ज्यादा ग्राहकों के लिए अवसर प्रदान करता है।

E-commerce Market in india में विभिन्न कंपनियों ने अपनी जगह बनाई हुई है। यहां पर कुछ Main e-commrece company in india की सूची निम्नलिखित है:

- Amazon
- Flipkart
- Jabong

- Myntra
- Noodles
- Firstcry
- share news
- Growers
- Bigbasket

ये सभी कंपनियां भारत में E-commerce market में अपनी अधिकतम मजबूती लाने के लिए एक दूसरे के साथ मुकाबले में रहती हैं।

इसके अलावा, भारत में e-commerce का आकार बढ़ने के साथ-साथ, इसमें नए बिजनेस मॉडल के संभावनाओं का उदय हो रहा है। अब ई कॉमर्स कंपनियां न केवल वस्तुओं को बेचती हैं बल्कि वे Online ServiceS' प्रदान करती हैं। इसके अलावा, वे economic help, Health Sevice, Education services, और अन्य सेवाओं को भी ऑनलाइन प्रदान करती हैं।[3]

इसके अलावा, भारत में बहुत से Small e-commerce company का भी उदय हो रहा है जो अपनी स्थानीय बाजार में आधुनिकीकरण करने के लिए जुट रहे हैं। ये कंपनियां अपनी सेवाएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाती हैं और उनके ग्राहकों को विभिन्न विकल्पों के लिए अधिक संभावनाएं प्रदान करती हैं। इन कंपनियों में से कुछ निम्नलिखित हैं-

- बिग्बास्केट
- जामुन
- स्विग्गी
- ओला
- उबर इयत्रा
- फ्रीचार्ज
- पेर्फेक्ट होम्स
- मीडलाइन
- क्लिकॉक
- अलीबाबा

ये सभी कंपनियां भारत में अपनी अधिकतम दक्षता लाने के लिए एक दूसरे के साथ मुकाबले में रहती हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि भारत में ई कॉमर्स बजार का आकार का आकार बहुत बड़ा है और इसमें बढ़ोतरी की गति भी बहुत तेज है। भारत के युवा और उद्यमियों ने म commerce से बहुत समझ और उन्हें उनके व्यवसाय को बढ़ाने के लिए इस बाजार के लाभों को समझा है। भारत में नए दुकानदार इंटरनेट के माध्यम से अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए e commerce का उपयोग कर रहे हैं। इससे उन्हें बड़ी लागतों वाली अपनी दुकानों की जगह से छुटकारा मिलता है और उन्हें अपने उत्पादों को ऑनलाइन बेचने का मौका मिलता है।[4]

विस्तृत स्केल पर देखा जाए तो, भारत में ई कॉमर्स बजार का आकार का आकार अभी भी बहुत छोटा है जब उसे दुनिया के अन्य बड़े देशों जैसे। merica, China, Europe आदि से तुलना किया जाता है। लेकिन यह उम्मीद की जा सकती है कि Market future e commerce in india में बहुत बड़ा होगा। विभिन्न अध्ययनों ने इस बात का खुलासा किया है कि भारत में ई कॉमर्स बजार का आकार 2026 तक 200 अरब डॉलर से अधिक का हो सकता है।

अतः E-commerce कंपनियां नई तकनीकों का उपयोग करके अपने ग्राहकों की व्यावसायिक जरूरतों को समझती हैं और वित्तीय सेवाओं के लिए विस्तृत समाधान प्रदान करती हैं। वित्तीय संसाधनों के साथ ग्राहकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ई कॉमर्स कंपनियां वित्तीय दस्तावेजों के लिए बेहतर समाधान प्रदान कर सकती हैं, जिसमें बैंक उद्यम, अंतरराष्ट्रीय भुगतान उत्पादों, ई-वालेट और अन्य वित्तीय समाधान शामिल हो सकते हैं। ई कॉमर्स उद्योग में नई टेक्नोलॉजी का उपयोग करने से, भारत में ई कॉमर्स बाजार को विस्तारित करने के लिए बड़ी संभावनाएं हैं। नई तकनीकी उत्पादों, समाधानों और सेवाओं के विकास ने भारत में ई कॉमर्स उद्योग को एक नई दिशा दी है।

संदर्भ

1. Electronic commerce, A manager's Guide, Ravi Kalakota, Andrew B. Whinston, Low Price Edition, Addison-Wesley.
2. http://www.uat.edu/online-business-technology-degree.
3. E-commerce, Ritendra Goel, New Age International (P) Limited Publishers.
4. Albert H., Judd, Rivers, (2006) "Creating a winning E-Business", Wagner Course Technology Thomson Learning, pp. 37-255.

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो० बिहारी सिंह

शोध निर्देशक, शिक्षा संकायाध्यक्ष, के० एन० आई० पी० एस० एस०, सुल्तानपुर

सोनल चतुर्वेदी

शोद्यार्थिनी, डॉ० राम मनोहर, लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

सारांश

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा की तुलना की क्या स्थिति है यह जानने विषयक प्रस्तुत शोध कार्य को कक्षा 9 व 10 के 150 विद्यार्थियों पर संपन्न किया गया। तुलना करने के कई बिंदुओं पर गौर किया गया जैसे ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा, लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा व विज्ञान एवं कला वर्ग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन। निष्कर्ष रूप में पाया गया है कि ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा स्तर शहरी विद्यार्थियों की अपेक्षा कम प्रभावी यह संतोषजनक पाई गई है। छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पाई गई है तथा विज्ञान व कला वर्ग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में सामान्य अंतर पाया गया है।

कूटशब्द: माध्यमिक, अध्ययनरत, विद्यार्थियों, शैक्षिक, अभिप्रेरणा

प्रस्तावना:

शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। यह मानव की एक विशेष उपलब्धि है। अतीतकाल से मनुष्य ने जागरुक रहकर अपनी वॉक शक्ति का और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, समुदाय और समुदाय के बीच, तथा संतति और संतति के बीच अपने व्यावहारिक अनुभव भंडार का संचार करने के लिए उपयोग किया है। इनमें प्राकृतिक घटनाओं, नियमों, विधि निषेध की संकेत भाषा का उपयोग है ताकि व्यक्तिक स्मृति के माध्यम से पूरी जाति जीवित रहसके। शिक्षा एक सामाजिक विकास की आवश्यकता है। समुदाय की स्वभाविक विशेषता रही है। उसने सामाजिक विकास के हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप देने में सहायता की है। स्वयं शिक्षा का विकास काफी अवरुद्ध नहीं हुआ। मनुष्य के सर्वोच्च आदर्शों को इसने प्रवाहित किया है। मार्ग को भी शिक्षा ने काफी सच्चाई से अंकित किया है, जिसमें कुछ युग उत्थान के हैं, कुछ पतन के हैं, कुछ संघर्ष के हैं, और कुछ संतुलन और बिखराव के हैं। शिक्षा का प्रारंभ बेसिक विद्यालय से होता है इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे देश में शिक्षा की व्यवस्था करने वाली सरकारें बेसिक विद्यालय के उचित संगठन तथा संचार की ओर विशेष ध्यान दें। विद्यालय समाज का लघु रूप है। जिस प्रकार समाज में विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले लोग तथा अलग-अलग धर्म मानने वाले लोग रहते हैं। उसी प्रकार विद्यालय में अध्ययन हेतु आने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक आर्थिक स्तर तथा जाति धर्म आदि विभिन्न होते हैं विद्यालय में अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र दिखने में स्मार्ट लगते हैं लेकिन गुणों के आधार पर परस्पर भिन्न होते हैं गुणों में भिन्नता के कारण उनकी विद्यालय में शैक्षणिक उपलब्धि में भी भिन्नता पाई जाती है।

छात्र की शैक्षिक उपलब्धि का स्तर निम्न होता है। जिसके आधार पर शिक्षक उसका आकलन करते हैं शिक्षक आकलन के आधार पर ही योजनाएं बनाते हैं। नई योजनाओं के आधार पर शिक्षण कार्य करने पर छात्रों को उसकी सामग्री के अनुसार शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सफल होता है। छात्र की शैक्षिक उपलब्धि को उसकी सफलता रुधि अध्ययन की आदत, वातावरण आदि अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इसलिए एक शिक्षक के लिए यह परम आवश्यक है कि शिक्षण योजनाएं बनाते समय शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का ध्यान रखें। इस प्रकार से शिक्षा ही यह साधन है जिसके माध्यम से शैक्षिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रगति को सुनिश्चित किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का संतुलित एवं सर्वाधिक विकास होता है। आधारशिला शिक्षा ही है। किसी भी जाति समाज देश तथा देश की उन्नति उसकी शिक्षा पर ही निर्भर करती है। इस शिक्षा हर किसी के जीवन में सफल होने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है।

इससे जीवन की चुनौतियों को कम करने में बहुत ही मदद मिलती है। मुश्किल जीवन में शिक्षा अवधि के दौरान प्राप्त ज्ञान के किसी को उनके बारे में आश्वस्त करता है।

शिक्षा जीवन में बेहतर संभावनाओं को प्राप्त करने के अवसरों के' लिए विभिन्न दरवाजे खोलती है। सभी को जीवन में आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए बेहतर शिक्षा बहुत जरूरी है। यह आत्मविश्वास विकसित करती है और एक व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में मदद करती है औपचारिक शिक्षा हर किसी के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संपूर्ण शिक्षा को तीन विभागों में विभाजित किया गया है। बेसिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक। शिक्षा के इन तीन विभागों में बेसिक शिक्षा का महत्व सर्वाधिक है क्योंकि बेसिक शिक्षा ही वह आधार है जिस पर बालक का पूरा जीवन निर्भर करता है। जब बालक विद्यालय में औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्ति के लिए जाता है. तो विद्यालय में उसके व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षक का महत्व पूर्ण स्थान होता है जो विद्यार्थियों का मार्गदर्शन कर उनकी आंतरिक प्रतिभाओं का विकास करते हैं। विद्यालय के वातावरण और साथ ही समूह के संपर्क में रहकर बालक जो कुछ सीखता है या जिन विषयों का अध्ययन करता है उसकी जांच परीक्षा प्रणाली के आधार पर की जाती है। जिससे बालक का शैक्षिक स्तर पता चलता है। बालक की शिक्षा लक्ष्य आधारित होती है उसी के आधार पर वह अपने अध्ययन योजना बनाता है।

शैक्षिक उपलब्धि-

आज व्यक्ति के जीवन में व्यक्तिक भिन्नता का ज्ञान, हमने किसी कार्य को कितना सीखा इसका ज्ञान उपलब्धि के द्वारा होता है। मनोविज्ञान के परीक्षणों की श्रृंखला के प्रयोग में आन वाली उपलब्धि का शैक्षणिक जीवन में अत्यंत महत्व है विद्यार्थी के चयन, उन्नति एवं तुलनात्मक अध्ययन आदि में इस परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक उपलब्धि विद्यालयों के विषय संबंधी अर्जित ज्ञान का परीक्षण है। शैक्षिक उपलब्धि का अर्थ ज्ञान प्राप्त करना एवं कौशल का विकास करना है। शैक्षिक उपलब्धि कामहत्व प्रत्येक शिक्षण कार्य में अत्यंत आवश्यक है इससे विद्यार्थी के बौद्धिक स्तर के ओपिनियन का पता चलता है। शैक्षिक उपब्धि के अर्थ एवं भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाएं दी है जो इस प्रकार हैं-

गैरिसन- शैक्षिक उपलब्धि बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा का मापन करती है''

चार्लस स्किनर- ''कार्य का अंतिम परिणाम है शैक्षिक उपलब्धि है जो विद्यार्थियों के सीखने के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। उपरोक्त परिभाषा ओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि उपलब्धि में हैं जिनकी सहायता से स्कूल में पढ़ाई जाने वाले विषयों और सिखाए जाने वाले कौशलों में विद्यार्थियों की सफलता अथवा उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

अभिप्रेरणा- प्रेरणा मनुष्य की दैनिक अनुभव का विषय है। प्रेरणा हमें कहीं से भी मिल सकती है-कर्तव्य बोध से, अपनों के प्रति स्नेह के कारण, अपने मन की शांति व सुख के कारण, अथवा प्रभु के प्रति समर्पण की भावना से। अकेला मनुष्य उठ जाता है. वह संसार की झंझट ओ से तंग आ जाता है। वह चाहता है कि कोई उसे प्रेरणा दे तो कोई कंधे पर हाथ रखकर उसकी पीठ थप-थपाएं। कार्य सरल होना कठिन बिना प्रेरणा के नहीं हो सकता। सामर्थय होने के बाद जितनी प्रेरणा जबरदस्त होती है काम उतनी ही तेजी से होगा। केवल अनुभव में ही नहीं व्यवहार में भी प्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है। अभिप्रेरणा छात्र के व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अभिप्रेरणा चरित्र निर्माण में भी सहायक होती है। अभिप्रेरणा ध्यान केंद्रित करने में व्यक्ति की सहायता करती है और प्रेरणा हमारे व्यवहार में विविधता लॉकर लक्ष्य प्राप्ति में सहायता प्रदान करती है। प्रेरणा हमारे व्यवहार में निरंतरता बनाए रखती है और हम तब तक अपने प्रयासों में कमी नहीं लाते जब तक कि हमारा लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता। अत: अभिप्रेरणा के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमें इसकी अर्थ को समझना होगा जो इस प्रकार से है-

अभिप्रेरणा शब्द को अंग्रेजी के MotivationèInspiration के समान अर्थी के रूप में प्रयोग किया जाता है। मोटिवेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के मोटम' से हुई है। जिसका अर्थ है-T; move अर्थात गति प्रदान करना। इस प्रकार अभिप्रेरणा यह कारक है जो कार्य को गति प्रदान करता है। अत: प्रेरणा एक सक्रिया होती है। जो जी को क्रिया के प्रति उत्तेजित करती है। जब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो हमारे अंदर एक अच्छी इच्छा उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप उर्जा उत्पन्न हो जाती है जो प्रेरक शक्ति को गतिशील बनाती है। अत: अभिप्रेरणा के द्वारा व्यवहार को दृढ़ किया जा सकता है। अभिप्रेरणा को कुछ इस तरह से परिभाषित किया जा सकता है।

थॉमसन के अनुसार:- अभिप्रेरणा विद्यार्थी में रुचि उत्पन्न करने की कला है ऐसी रुचि जो या तो छात्र में है ही नहीं या इस रुचि का उसे आभास ही नहीं है।

गुडके अनुसार:- ''अभिप्रेरणा क्रिया को आरंभ करने, जारी रखने करने की प्रक्रिया है।''

स्किनर के अनुसार- प्रेरणा सीखने के लिए राजमार्ग है।''

अभिप्रेरणा के प्रकार:-

अभिप्रेरणा निम्नलिखित प्रकार की होती है-

1. प्राकृतिक अभिप्रेरणा:- प्राकृतिक अभिप्रेरणा में मनोदैहिक, सामाजिक, व्यक्तिगत आदि अभिप्रेरणाऐ आती है।
2. कृत्रिम अभिप्रेरणा:- कृतिम अभिप्रेरणा में दंड एवं पुरस्कार, सहयोग, लक्ष्य परिपक्वता फल का ज्ञान, व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रेरणा आदि आती है।

प्रेरणा के लिए आवश्यकता एक महत्वपूर्ण प्रेरक है। यदि आवश्यकता बड़ी तेज हुई तो पुरानी अनेक बाधाओं को पार करके उसे पूरा करने का प्रयत्न करता है। मानव की प्रत्येक क्रिया की तहत से अभिप्रेरणा किसी न किसी रूप में उपस्थित रहती है।

अभिप्रेरणा मनुष्य की जन्मजात रूचि पर निर्भर करती है। विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा के अंतर्गत पाठ्यवस्तु तथा किया उसे छात्रों को स्वयं प्रोत्साहन मिलता है। जैसे-जब विद्यार्थी को विज्ञान के विषयों के अध्ययन में आनंद आता है तो वह प्राकृतिक रूप से अभिप्रेरित होता है। विद्यार्थियों को उसकी उन्नति या प्रयत्नों के परिणाम का ज्ञान देना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार का ज्ञान विद्यार्थियों में जिज्ञासा का संचार करता है और वह कार्य करने के लिए प्रेरित रहता है।

अभिप्रेरणा के पद या स्रोत: मुख्य रूप से अभिप्रेरणा के निम्नांकित 4 स्त्रोत है-

1. आवश्यकता
2. चालक
3. प्रोत्साहन
4. प्रेरक।

अभिप्रेरणा अधिगम का आवश्यक अंग है इसके द्वारा किसी क्रिया को सीखने के लिए बालक में उत्साह उत्पन्न किया जा सकता है। अध्यापक का कार्य नवीन ज्ञान से छात्रों को परिचित करवाना है। अध्यापक के समक्ष सदैव यह प्रशन रहा है कि उस ज्ञान का परिचय विद्यार्थियों को कैसे कराएं इन सभी प्रश्नों का उत्तर अभिप्रेरणा से मिलता है।

शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा- अभिप्रेरणा से संबंधित नए विचारधारा 'का नाम है। जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को करता है तो वह उस कार्य में अधिकतम उपलब्धि प्राप्त करना चाहता है अर्थात कठिन कार्य करते हुए या चुनौतीपूर्ण कार्य करते हुए प्राप्त उपलब्धि ही' उपलब्धि अभिप्रेरणा' है। उपलब्धि अभिप्रेरणा की प्रकृति व्यक्तिगत होती है अर्थात यह एक व्यक्ति के व्यक्तिगत क्रियाकलापों पर आधारित होती है। किसी भी कार्य की उपलब्धि के लिए कार्य करने की अभिप्रेरणा ही उपलब्धि अभिप्रेरणा कहलाती है। उपलब्धि अभिप्रेरणा में व्यक्ति कठिन से कठिन कार्य कर सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हासिल करने हेतु प्रयासरत रहता है।

मैकली लैड उपलब्धि अभिप्रेरणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यक्ति जिसे चाहता है उसे प्राप्त करने के लिए अपनी सारी ताकत लगा देता है और परिणाम स्वरूप उसे जो उपलब्धि प्राप्त होती है वही उपलब्धि प्रेरणा है तथा व्यक्ति उसी से संतुष्टि प्राप्त उच्च माध्यमिक स्तर पर अध् करता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने अभूतपूर्व क्रिया को करके उपलब्धि हासिल करता है।

मैक डेविड के अनुसार: 'मनोवैज्ञानिक निर्देशन की उस प्रणाली को उपलब्धि अभिप्रेरणा कहते हैं, जिसे मानवीय क्रिया क्षमता, आक्रमण शीलता तथा प्रभुता के साथ संबंधित हो।' उपलब्धि अभिप्रेरणा एक ऐसी छिपी हुई विशेषता होती है जो प्रत्यक्ष प्रयासों से ही स्पष्ट होती है जब व्यक्ति अपने कार्य को व्यक्तिगत रूप से कुछ पाने का साधन समझाता है। उपलब्धि अभिप्रेरणा के द्वारा व्यक्ति अपने पास में होने वाली वस्तुओं की प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है।

शोधउद्देश्य:-

1. उच्च माध्यमिक स्तरपर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि' अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का लिंग के आधार पर शैक्षित उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्क अध्ययन।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का विज्ञान या कला वर्ग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन।
4. उच्च व माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना:

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों ने ग्रामीण व शहरी स्तर के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. लिंग के आधार पर उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियोंबकी शैक्षणिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विज्ञान व कला के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि- शोध अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा शोध विधि के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्शचयन विधि:-

न्यादर्श- प्रस्तुत शोध समस्या के न्यादर्श के चुनाव हेतु स्तरित यादृच्छिक न्यादर्श विधि का चयन किया है।

शोध उपकरण- शोध के उद्देश्य की दृष्टि से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणाा के अध्ययन हेतु डा0 टी0 आर0 शर्मा द्वारा निर्मित एकेडमिक अचीवमेंट मोटिवशन टेस्ट का प्रयोग किया है।

शोध सीमांकन-

1. यह शोध कार्य उत्तरप्रदेश राज्य तक ही सीमित किया गया है।
2. इस शोध कार्य में सहारनपुर संभाग को सम्मिलित किया गया है।
3. यह शोध 9वी, 10वीं कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों तक ही सीमित है।
4. विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन करने के लिए 150 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण व व्याख्या-

सारणी संख्या-1: ग्रामीण व शहरी स्तर के आधार पर शैक्षिक अध्ययनरत

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानकविचलन	टी–मान	सार्थकतास्तर
ग्रामीण	75	20.54	5.17	0.20	0.05
शहरी	75	23.16	6.37		

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के मध्यमानो के अंतर का टी अनुपात का मान 0.20 है जोकि सार्थक स्तर 05 तथा मुक्ताश 148 के सारणी 1.98 से कम है अर्थात मध्यमानों में सार्थक अंतर है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

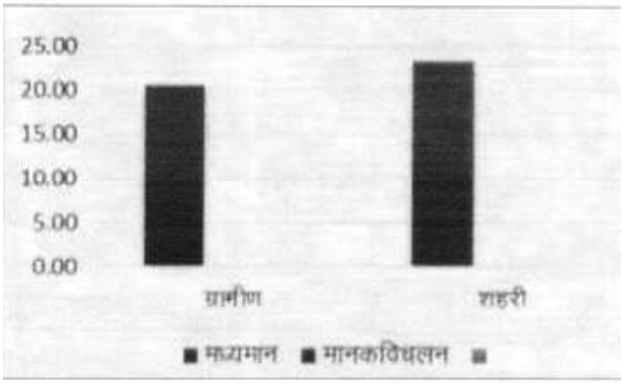

चित्र 1: ग्रामीण व शहरी

2. लिंग के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या-2: लिंग के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानकविचलन	टी–मान	सार्थकतास्तर
छात्र	80	23.49	4.59	3.16	0.05
छात्रा	70	26.77	4.43		

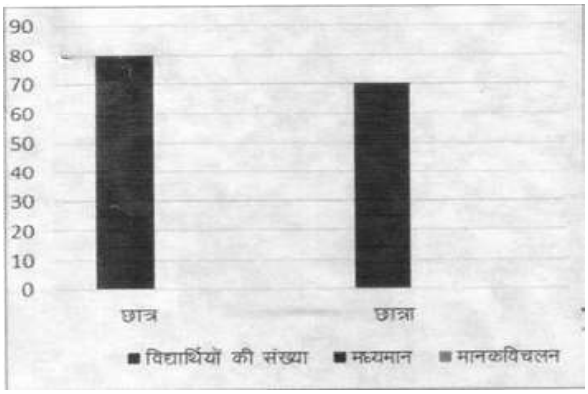

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर, अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा मध्यमानो में अंतर का टी-अनुपात का मान 3.16 है जो कि सार्थक स्तर.05 तथा मुक्ताश 148 के सारणी मान 1.98 से अधिक है अर्थात मध्यमान में सार्थक अंतर है अत: शून्य परिकल्पना निरस्त होती है अर्थात माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर है अर्थात छात्रों की उपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा उच्च है।

3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विज्ञान व कला के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या-3 विद्यार्थियों में विज्ञान व कला के आधार पर शैक्षिक अध्ययनरत

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानकविचलन	टी–मान	सार्थकतास्तर
छात्र	80	25.29	5.04	1.15	0.05
छात्रा	70	24.04	3.60		

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है की माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के मध्यमान के अंतर का टी-अनुपात का मान 1.15 है जो कि सार्थकता स्तर. 05 तथा मुक्तांश 148 के सारणीमान 1.98 से कम हैं अर्थात मध्यमान में असार्थक अंतर है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

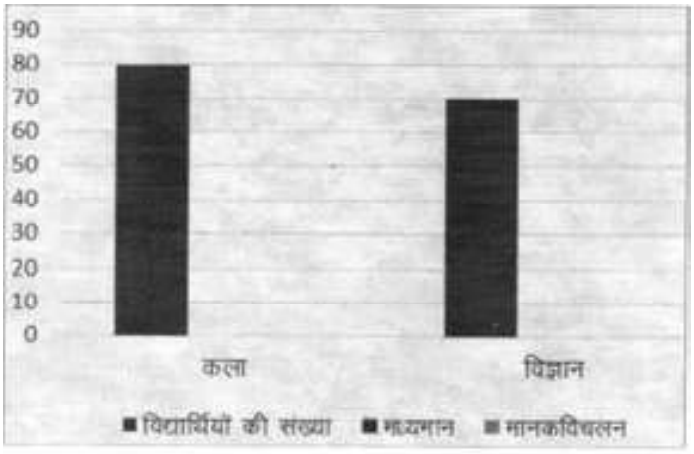

चित्र 3: विज्ञान व कला

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं-

विद्यार्थियों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने, उनकी आवश्कता की पूर्ति, कक्षा में स्पष्ट भाषा प्रयोग करने, कक्षा में अनुशासनात्मक व्यवहार एवं अधिगम वातावरण का निर्माण करने से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों का पढ़ाई का स्तर शहरी विद्यालय की अपेक्षा कम प्रभावी तथा संतोषजनक पाया गया है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में लिंग के आधार पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर पाया गया। छात्रों की उपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा उच्च है। विद्यालयों में आवश्यकता अनुसार शिक्षण नीति में परिवर्तन, शिक्षण सामग्री में भी वृद्धि हुई जिससे शिक्षण कार्य प्रभावशाली रहा।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के आधार पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ

1. शर्मा अनुराधा (2009) माध्यमिक स्तर पर अभिभावक प्रोत्साहन का विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन।
2. सोनी पवन कुमार (2010) उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च शैक्षिक उपलब्धि तथा नेम शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन।
3. प्रजापति सुनीता (2010) माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन एवं आदतों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।
4. दूबे भावेश चंद्र (2011) विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन।
5. कुमार दुर्गेश (2011) बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शिक्षण अभ्यास के दौरान अपनाए जाने वाले शिक्षण को श्लोका छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।
6. सिंह एवं बघेल (2017) किशोरावस्था के विद्यार्थियों में शैक्षिक उपलब्धि एवं अभिभावक अभिप्रेरणा का पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

1857 की क्रांति-विद्रोह का प्रभाव एवं प्रतिक्रिया

अर्चना यादव

परास्नातक (इतिहास)

प्रस्तावना

1857 की क्रांति एक देशव्यापी क्रांति थी। सन 1757 ई. के प्लासी के युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित हुआ एवं इसके 100 वर्ष बाद सन 1857 ई तक ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य उद्देश्य था - अपने साम्राज्य का विस्तार करना। अत: हम इसे आर्थिक शोषण यानि कि विजय, विलय और शोषण का इतिहास कह सकते हैं। 1857 ई तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना अधिकार धीरे-धीरे व्यापार के माध्यम से शुरू किया एवं उस समय डलहौजी की विभिन्न नीतियां थी जैसे राज्यों को हड़पने की नीति, सहायक संधियां, सैनिक वर्ग को समुद्र पार भेजना, चर्बी वाले कारतूस का उपयोग, अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों के धर्म पर आघात करना, भारत में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों जैसे सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, शिशु हत्या आदि पर प्रतिबंध लगाकर हस्तक्षेप करना, मुख्य आर्थिक व्यवस्था के मामले में दखल देना जो कि भारतीयों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप था। अंग्रेजों ने धार्मिक मामले में भी हस्तक्षेप करके ईसाई धर्म को ही सर्वोपरि माना एवं इसके प्रचार प्रसार हेतु अधिक से अधिक लोगों को ईसाई बनाने का कार्य शुरू किया। इन सभी कर्म से चारों ओर बहुत असंतोष व्याप्त हो रहा था जिसके कारण सन 1857 ई के आते ही विद्रोह का प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजों की संपूर्ण कार्य व्यवस्था जो कि व्यापार से शुरू हुई थी धीरे-धीरे पूरे भारतवर्ष को हड़पने की कोशिश में बदलने लगी थी। हालांकि प्रारंभ में अंग्रेजों का विचार इस देश में व्यापार बढ़ाने का था किंतु भारतीयों के मन मस्तिष्क को जानने के बाद उनकी विचारधारा बदलने लगी और वह धन लोलुपता के अधीन होकर भारतीयों पर अत्याचार करने लगे। अंग्रेजों ने भारतीयों की कमजोरी का भरपूर फायदा उठाकर आपस में एक दूसरे को लड़वाया और एक के बाद एक पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को अपने जाल में फंसा लिया। सन 1857 की क्रांति कोई अचानक या तात्कालिक कारण की वजह से होने वाली घटना नहीं है इसके पीछे उसे समय की स्थिति एवं बहुत से कारण जिम्मेदार है जो अंग्रेजों द्वारा बनाए गए थे। अंग्रेजों का भारतीयों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करना, उन्हें हेय दृष्टि से देखना, भारतीयों को धीरे-धीरे पतन की ओर ले जाना, देश की जनता को मिशनरी से जोड़कर उन्हें ईसाई बनाना आदि। धीरे-धीरे देश के अधिकांश लोगों में यह सोच बनने लगी कि यहां के निवासियों, उनके मालिक व शासकों को कोई अंग्रेजी अधिकार प्राप्त नहीं थे, उन्हें अपमान व घृणा मिल रही थी जिससे उनकी संस्कृति एवं पहचान दोनों पर आघात पहुंच रहा था, उनका धर्म असुरक्षित था, वह अपने ही देश में गुलाम बने हुए थे, कानून व न्यायपालिका में देश का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई भारतीय नेता नहीं मौजूद था जिससे कि नागरिक हित प्रभावित हो रहे थे। उसी समय सैनिकों को चर्बी युक्त कारतूस के उपयोग के लिए विवश किया जाने लगा एवं सैनिकों में असंतोष व्याप्त होना ही उस परिस्थिति में विद्रोह का तात्कालिक कारण बना। अत: यह एक ऐसी क्रांति थी जिसमें लोग अपने धर्म अपनी कौम पर हुए अत्याचारों का बदला लेने के लिए एवं अपनी दबी हुई भावनाओं को जागृत करने के लिए आवाज उठाए थे।

इस तरह विद्रोह में अनेक लोगों द्वारा अलग-अलग रूप से प्रयास चालू कर दिए गए जिससे कि देश में ही नहीं विदेशी शक्तियां जो अंग्रेजों के विरुद्ध थी उन्हें भी इस विद्रोह में सहयोगी बनने का अवसर प्राप्त हुआ। अंतत: बैरकपुर छावनी में इस क्रांति का श्री गणेश हुआ जब यहां के भारतीय सैनिकों को चर्बी युक्त कारतूस का जबर्दस्ती प्रयोग करने एवं उनके धर्म को नष्ट करने की कोशिश की गई तो मंगल पांडे नामक सैनिक ने इसका विरोध करते हुए विद्रोह कर दिया एवं 1857 की क्रांति का शंखनाद हुआ। अत: 1857 की क्रांति या सिपाही विद्रोह भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसे ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीयों की पहली संगठित लड़ाई का प्रतिनिधित्व किया।

1857 की क्रांति में किए गए विभिन्न विद्रोह

किसान आंदोलन एवं किसान विद्रोह -

अंग्रेजों के उपनिवेशवादी शोषण का कहर भारतीय किसानों पर ही सबसे ज्यादा बरपा। उनकी प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने किसानों की कमर तोड़ दी। बड़ी जमीं दारी वाले इलाकों में किसानों पर अत्याचार बढ़ने लगे। जमीदार उनसे मनमानी ढंग से अवैध लगान वसूलने लगे जिसका यह नतीजा हुआ कि किसान धीरे-धीरे महाजनों के चंगुल में फंसते गए और इस तरह उनकी जमीन, फसलें एवं पशु उनके हाथ से निकलकर जमीदारों, व्यापारियों, महाजनों एवं धनी किसानों के हाथ में पहुंचते गए।

देशी और विदेशी शोषण के इस चक्र को तोड़ने के लिए स्थानीय स्तर पर उनके सामूहिक संघर्ष जब असफल होने लगे तो उनके विरोध ने मजबूरन अपराध का रास्ता पकड़ा।

नील आंदोलन

नील विद्रोह के नायक नील की खेती करने वाले किसान थे। नील्हे साहबों के पासविक अत्याचार और शोषण ने 200 किसानों को बगावत करने पर मजबूर कर दिया था। उनका यह विद्रोह खास बंगाल में नील की खेती समाप्त करके ही शांत हुआ।

जयंतिया विद्रोह

जयंतिया पहाड़ियां एक पीढ़ी से ब्रिटिश भूमि थी लेकिन यह भूमि नाम मात्र को ब्रिटिश थी। टैक्सों का बोझ लाद कर भारतीयों को नोचना एवं अपने मुनाफे का पहाड़ बढ़ाने की अंग्रेजों की इसी नीति के कारण ही जयंतियां की पहाड़ियों में विद्रोह हुआ।

कूकी विद्रोह

कुकियों पर हो रहे अत्याचार एवं बेईमान साहूकार इन कुकियों की निरक्षरता और सरलता से नाजायज फायदा उठाकर उन्हें लूटते थे जिसके कारण यह विद्रोह उत्पन्न हुआ।

फूला गुड़ी का विद्रोह

असम के नौगांव जिले में स्थित फूला गुड़ी के आदिवासी किसान अफीम की खेती करते थे ।अंग्रेजों ने अफीम का व्यापार बड़े मुनाफे का देखकर अफीम की खेती अपने नियंत्रण में लाने की कोशिश की। उन्होंने सरकारी इजाजत के बिना अफीम की खेती पर रोक लगा दी। अत: इस रोक के खिलाफ फूला गुड़ी के किसानों में असंतोष फैला और वे आंदोलन की ओर अग्रसर हुए।

शंभू धन का विद्रोह

कछाण जिले में 1882 में शंभू धन के विद्रोह का शिकार अंग्रेज जिला अधिकारी और चंद पुलिस वाले को होना पड़ा। शंभू धन अपने में देवी शक्ति होने का दावा करता था वह तरह-तरह के रोगों का इलाज करता था। उसके कुछ अनुयाई भी जमा हो गए थे। उसे अंग्रेजी राज्य के लिए खतरनाक समझकर डिप्टी कमिश्नर सशस्त्र पुलिस ने उसके ऊपर अत्याचार किए। 1893 में असम के कामरूप जिले में भूमि का राजस्व बढ़ा दिया गया जिले के कुछ हिस्सों में किसानों ने एक साथ मिलकर लगान देने से इनकार कर दिया जिसके कारण यह विद्रोह उत्पन्न हुआ।

पाथरू घाट का विद्रोह

असम के दारांग जिले में पाथरू घाट तहसील में 1868 में जब भूमि राजस्व बढ़ाया गया तो यहां के किसानों ने इसका जबरदस्त विरोध किया। उन्होंने सरकारी अधिकारियों को अपनी शिकायतें सुनने को बाधित किया था। परंतु 1894 में जब भूमि राजस्व फिर बढ़ाया गया तो किसानों का असंतोष फूट पड़ा और किसानों ने लगान बंदी का रास्ता अपनाया। बड़े-बड़े प्रदर्शनों के जरिए उन्होंने अपनी मांग बुलंद की और बढ़ा हुआ राजस्व रद्द किया गया।

पावना का किसान विद्रोह

पावना जिले का 1872- 73 का किसान दंगा हंगामा एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि इसके फल स्वरुप खेती की जमीन पर प्रजा के अधिकार की स्थापना के बारे में पूर्ण विचार आरंभ हुआ और इसी विवेचना का फल हुआ कि प्रजा का सनद कहा जाने वाला 1885 ई का बंगाल प्रजा स्वत्व कानून बना।

महाराष्ट्र के किसानो का मोर्चा एवं राम्पा विद्रोह

महाराष्ट्र के पुणे और अहमदनगर के जिलों के किसानों ने 1875 से सूदखोर साहूकारों और जमीदारों तथा उनकी रक्षक अंग्रेजी सरकार के खिलाफ मोर्चा लगाया। अंग्रेजी सरकार द्वारा नया आबकारी कानून लागू करने एवं घरेलू व्यवहार के लिए भी ताड़ी निकलने पर रोक लगा दी गई जिससे रंपा विद्रोह का आरंभ हुआ। यह 1879 के रनपा विद्रोह का तात्कालिक कारण पुलिस अत्याचार उनके इस विद्रोह में सहायक हुए लोग इन सब टैक्सों को बंदोबस्त नहीं कर सकते थे।

विद्रोह का प्रभाव एवम प्रतिक्रिया

सन 1857 के विद्रोह ने भारतीय राजनीति में कुछ ऐसी शक्तियों का विकास अनिवार्य कर दिया जिसके परिणाम स्वरुप एक सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन का प्रादुर्भाव अवश्य संभावित हो गया और 1857 के बाद भारत में राष्ट्रीयता का प्रबल वेग बह चला। भारत में राजनीतिक जागृति के सभी लक्षण प्रकट होने लगे लेकिन राजनीतिक जागृति के पूर्व हमारे देश में एक सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण हुआ जिसने हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य पृष्ठ आधार तैयार किया। वस्तुत: जिन कारणों ने भारत में राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय जागृति की भावना को जन्म दिया उसमें सबसे महत्वपूर्ण एवं सबसे प्रभावी था- सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण। 19वीं शताब्दी में समाज और धर्म के क्षेत्र में सुधार के जो विभिन्न आंदोलन हुए उन्हें हिंदू धर्म में प्रचलित गंभीर बुराइयों और कुरीतियों ने एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रेरित किया था। मूर्ति पूजा, नारियों की दुर्दशा, जातीय बंधन, सांप्रदायिक दृष्टिकोण तथा अन्य कुरीतियों से वह निरंतर खोखला होता जा रहा था। ऐसे समय में सामाजिक दोषों एवं धर्म आडंबरों पर कुठाराघात करने के लिए विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आंदोलन का उदय हुआ। जिसमें से हिंदू धर्म में पहला सुधार आंदोलन ब्रह्म समाज था। राजा

राममोहन राय इसके प्रवर्तक थे। सामाजिक क्षेत्र में हिंदू समाज की कुरीतियों सती प्रथा, बहु पत्नी प्रथा, वेश्यागमन, जातिवाद इत्यादि का विरोध इसमें किया गया। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह का भी समर्थन किया। इस प्रकार इसमें पूर्व और पश्चिम में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया।

ब्रह्म विचारधारा महाराष्ट्र में भी फैली और यहां 1849 में एक परमहंस सभा आरंभ की गई। 1867 में केशव चंद्र की प्रेरणा से मुंबई में एक प्रार्थना समाज स्थापित किया गया परंतु इन लोगों ने अपने आप को किसी नवीन धर्म का अथवा हिंदू धर्म के बाहर अथवा साथ-साथ किसी नवीन मत के अनुयाई के रूप में नहीं माना अपितु केवल इस धर्म के अंदर ही एक आंदोलन के रूप में इसे स्वीकार किया।

आर्य समाज आंदोलन का प्रसार प्राय: पश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यह आंदोलन केवल रूप में ही पुनरुत्थान था ना कि तत्वों में। सन 1875 में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुन: स्थापना करना था। स्वामी दयानंद का उद्देश्य था कि भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि आर्य धर्म ही देश का समान धर्म हो। इतना ही नहीं आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन भी आरंभ किया जिसके अंतर्गत लोगों को अन्य धर्म से हिंदू धर्म में लाने का प्रयत्न किया गया। स्वामी दयानंद के आर्थिक विचारों में स्वदेशी का विशेष महत्व था।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने की। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण के इन विचारों को संसार में फैलाने का कार्य किया। जिसका उद्देश्य पश्चिम के स्वतंत्र और जनतंत्र के साथ पूर्व के आध्यात्मिक वाद का संयोग करना था यह सर्वधर्म एकता का संदेश लेकर आया लेकिन समाज कल्याण के क्षेत्र में भी इनका कम प्रमुख हिस्सा नहीं है रामकृष्ण मिशन समाज सेवा का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त स्थाई रूप से मिशन ने विभिन्न स्थानों पर अस्पताल, स्कूल ,कॉलेज, हॉस्टल आदि स्थापित किए।

थियोसोफिकल सोसायटी पश्चिमी विद्वानों द्वारा आरंभ की गई थी भारत में थियोसोफिकल सोसायटी हिंदू पुनर्जागरण का आंदोलन बन गई। उन्हें भारत के प्राचीन धर्म में अगाध विश्वास था जिसके फल स्वरुप लोगों में एक आत्मविश्वास और राष्ट्र निर्माण की भावना जागी।

19वीं शताब्दी के इन सुधार आंदोलन में से भारत का मुस्लिम समाज भी अछूता नहीं रह सका। 1857 के विद्रोह की असफलता के बाद भारतीय मुसलमान निराश होकर चुपचाप एकांतवास कर रहे थे। वह अंग्रेजों को अपना कट्टर दुश्मन मानते थे और अंग्रेज भी उनके साथ शत्रुता पूर्ण व्यवहार करते थे। अत: मुसलमान का एक वर्ग जिसके नेता सर सैयद अहमद खान थे उन्होंने इस्लाम में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए विभिन्न प्रयत्न किए।

साहित्यिक जागरण

नवीन शिक्षा के प्रसार और नवीन धार्मिक सामाजिक सुधार आंदोलन का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला की धार्मिक तथा सामाजिक जागृति के साथ-साथ साहित्यिक जागृति भी हुई। भारतीय नवजागरण के कारण संस्कृत की कई पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ। ब्रिटिश युग में हिंदी और विकसित लोक साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएं लिखी गई। बांग्ला भाषा में कई मौलिक उपन्यास लिखे गए। बांग्ला भाषा के समान हिंदी साहित्य का भी बहुत विकास हुआ। भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक तैयार की गई। भारत के नवजागरण के परिणाम स्वरुप साहित्य के उत्कर्ष की जो प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई वह अब तक पूर्ण रूप से जारी है।

अत: संक्षेप में हम इसके प्रभाव को निम्नलिखित तरीके से समझ सकते हैं -

1. ब्रिटिश शासन में परिवर्तन - विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने अपनी नीतियों में बदलाव किया और भारतीयों को अधिक अधिकार देना शुरू किया।
2. भारतीय राष्ट्रवाद का उदय - इस विद्रोह ने भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा दिया और स्वतंत्रता की लड़ाई को मजबूत किया।
3. सैन्य सुधार- विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने अपनी सैन्य नीतियों में बदलाव किया और भारतीय सेवा को आधुनिक बनाया।
4. शिक्षा और सामाजिक सुधार- विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा और सामाजिक सुधार पर अधिक ध्यान देना शुरू किया।

प्रतिक्रिया

इस विद्रोह की प्रमुख प्रतिक्रियाएं संक्षेप में निम्नलिखित रूप में समझी जा सकती हैं -

1. ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया- विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने कड़ी कार्यवाही की और कई भारतीयों को मौत की सजा दी या जेल में डाला।
2. भारतीयों की प्रतिक्रिया- विद्रोह के बाद भारतीयों में ब्रिटिश शासन के प्रति आक्रोश बढ़ गया और स्वतंत्रता की लड़ाई में तेजी आई।

3. अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया- विद्रोह के बाद अंतरराष्ट्रीय समुदाय में ब्रिटिश शासन की आलोचना हुई और भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई को समर्थन मिला।

इन प्रभावों और प्रतिक्रियाओं ने भारतीय इतिहास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और स्वतंत्रता की लड़ाई को मजबूत किया।

उपसंहार

यद्यपि 1857 के विद्रोह के अनेक दुष्परिणाम निकले लेकिन इससे भारतीयों को अनेक लाभ भी हुए। सर्वप्रथम विद्रोह के पश्चात ब्रिटिश सरकार का ध्यान देश की आंतरिक दशा को सुधारने की ओर उन्मुख हुआ। दूसरे भारत के इतिहास में यही से वैधानिक विकास का सूत्रपात हुआ और धीरे-धीरे भारतीयों को अपने देश के शासन में भाग लेने का अवसर दिया जाने लगा। इस प्रकार भारत में प्रजातांत्रिक शासन का बीजारोपण हुआ। विद्रोह का तीसरा लाभ यह हुआ कि अब भारतवासी अंधकार से प्रकाश में आ गए। उनका अंधविश्वास दूर हो गया और भारत में एक नए युग का आरंभ हो गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्रा, भरत:1857 की क्रांति और उसके प्रमुख क्रांतिकारी, पृष्ठ 55
2. चंद्र विपिन: भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 19
3. सिंह अयोध्या: भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 372
4. हिंदू पेट्रियट: 17 मार्च 1860
5. कोलकाता रिव्यू: पृष्ठ 355
6. सिंह कैलाश चंद्र: राज माला, पृष्ठ 367
7. सिंह अयोध्या: भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 394
8. इंपीरियल गजेटियर, पूर्व बंगाल और असम, पृष्ठ 285
9. तिलक एंड द स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1966,पृष्ठ 19
10. वर्मा दीनानाथ: आधुनिक भारत, पृष्ठ 210
11. ग्रोवर बी एल:आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 272

''सार्थकता की समस्याः लुडविग विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा-दर्शन''

डॉ० अखिलेश कुमार मौर्य

अतिथि सहायक प्राध्यापक, आर डी एण्ड डी एण्ड डी जे कॉलेज, मुंगेर, मुंगेर यूनिवर्सिटी मुंगेर

सारांश

यह शोध पत्र भाषा-दर्शन में सार्थकता की समस्या का विश्लेषण करेगाए विशेष रूप से लुडविग विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा-दर्शन के संदर्भ में। विट्गेन्स्टाइन के चित्रात्मक सिद्धांत और भाषा-खेल अवधारणा की तुलना भारतीय मीमांसा, न्याय और वेदांत परंपराओं से की गई है। शोध यह दर्शाता है कि अर्थ केवल तार्किक संरचना से नहीं, बल्कि प्रयोग और संदर्भ से निर्धारित होता है, जो भारतीय दृष्टिकोण से भी मेल खाता है।

कुंजी

- सार्थकता की समस्या (Problem of Meaningfulness)
- भाषा-दर्शन (Philosophy of Language)
- लुडविग विट्गेन्स्टाइन (Ludwig Wittgenstein)
- चित्रात्मक सिद्धांत (Picture Theory of Meaning)
- भाषा-खेल (Language Games)
- प्रयोग-सिद्धांत (Use Theory of Meaning)
- भारतीय भाषा-दर्शन (Indian Philosophy of Language)
- मीमांसाए न्यायए वेदांत (Mimamsa, Nyaya, Vedanta)
- शब्दार्थ (Meaning of Words)
- अभिधाए लक्षणाए व्यंजना (Abhidha, Lakshana, Vyanjana)
- स्फोट सिद्धांत (Sphota Theory)
- तात्पर्य सिद्धांत (Tatparya Theory)
- निजी भाषा (Private Language)

प्रस्तावना

भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि यथार्थ को समझने और संप्रेषित करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण भी है। भाषा-दर्शन में सार्थकता की समस्या (Problem of Meaningfulness) एक केंद्रीय प्रश्न रही हैः क्या सभी कथन अर्थपूर्ण होते हैं? यदि हां, तो उनका अर्थ कैसे निर्धारित किया जाता है? यह समस्या विशेष रूप से दार्शनिकों और भाषा-विज्ञानियों के लिए महत्त्वपूर्ण रही है, क्योंकि यह भाषा और यथार्थ के संबंध को स्पष्ट करने में सहायक होती है।

पश्चिमी दर्शन में लुडविग विट्गेन्स्टाइन (Ludwig Wittgenstein) ने भाषा के अर्थ को समझने के लिए दो प्रमुख सिद्धांत प्रस्तुत किए चित्रात्मक सिद्धांत (Picture Theory of Meaning) और भाषा-खेल सिद्धांत (Language Games Theory)। उनकी आरंभिक कृति Tractatus Logico-Philosophicus (1921) में उन्होंने यह तर्क दिया कि भाषा का कार्य वास्तविकता की तार्किक संरचना को प्रतिबिंबित करना है।[1] बाद में, Philosophical Investigations (1953) में उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि भाषा का अर्थ उसके प्रयोग (Use) पर निर्भर करता है।[2]

दूसरी ओरए भारतीय भाषा-दर्शन में मीमांसा, न्याय और वेदांत परंपराओं ने भाषा और अर्थ की गहरी व्याख्या प्रस्तुत की है। मीमांसा दर्शन में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि शब्दों का अर्थ उनके संदर्भ और प्रयोजन के आधार पर बदलता है।[3] इसी प्रकार, न्याय-वैशेषिक परंपरा में भाषा की सत्यता (Truth) और सार्थकता को प्रमाण (Pramana) के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।[4]

शोध का महत्त्व

विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा-दर्शन के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से आवश्यक है कि यह भाषा और अर्थ की व्यापक समझ को विकसित करता है। विट्गेन्स्टाइन का भाषा-खेल सिद्धांत भारतीय मीमांसा दर्शन के तात्पर्य सिद्धांत से मिलता-जुलता प्रतीत होता है, जहाँ भाषा का अर्थ उसके प्रयोग और संदर्भ पर निर्भर करता है[5]।

आधुनिक दर्शन और भाषा-विज्ञान में भी इस समस्या का विशेष महत्त्व है। डिजिटल युग मेंए जहाँ प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) और संवादात्मक एआई (Conversational AI) भाषा के अर्थ को समझने का प्रयास कर रहे हैं, वहाँ यह प्रश्न अत्यधिक प्रासंगिक हो जाता है कि क्या मशीनें भाषा के वास्तविक अर्थ को समझ सकती हैं, या वे केवल संकेतों की व्याख्या कर रही हैं?

शोध के उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा-दर्शन के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रश्नों का विश्लेषण किया जाएगाः

- विट्गेन्स्टाइन के चित्रात्मक सिद्धांत और भारतीय भाषा-दर्शन में सार्थकता की अवधारणा में क्या समानताएँ और भिन्नताएँ हैं?
- भाषा-खेल सिद्धांत और मीमांसा परंपरा में भाषा के प्रयोग-आधारित दृष्टिकोण के बीच क्या संबंध है?
- क्या विट्गेन्स्टाइन का भाषा-दर्शन भारतीय दर्शन के कुछ पहलुओं के समान है, या यह एक मौलिक रूप से भिन्न दृष्टिकोण है?

शोध पद्धति

यह शोध दार्शनिक-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण (Philosophical, Analytical Approach) पर आधारित होगा। शोध में प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जाएगा, जिसमें विट्गेन्स्टाइन की मूल कृतियाँ (Tractatus Logico&Philosophicus, Philosophical Investigations) और भारतीय भाषा-दर्शन से संबंधित प्राचीन ग्रंथ (जैसे मीमांसा सूत्र, न्याय दर्शन, वेदांत ग्रंथ) शामिल होंगे।

इसके अतिरिक्त, समकालीन विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षात्मक लेख और शोध-पत्रों का अध्ययन किया जाएगा।

सार्थकता की समस्या: एक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

भाषा और अर्थ की परिभाषा

भाषा केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि हमारे विचारों, अनुभूतियों और यथार्थ की संरचना को व्यक्त करने का उपकरण भी है। दर्शन और भाषा-विज्ञान में भाषा को एक संकेत प्रणाली (System of Signs) के रूप में देखा जाता है, जिसका कार्य अर्थ की अभिव्यक्ति करना है। फ्रेडरिक लॉगिक (Frege) के अनुसार, किसी शब्द का अर्थ (Meaning) और आशय (Sense) दो अलग-अलग तत्व होते हैं, जो संदर्भ के अनुसार बदलते हैं[6]। इसी प्रकार, भारतीय भाषा-दर्शन में भी शब्दार्थ को अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जहाँ अर्थ संदर्भ और प्रयोग से प्रभावित होता है[7]।

सार्थकता की समस्या

दार्शनिकों ने यह प्रश्न उठाया कि कोई कथन अर्थपूर्ण कब और कैसे होता है? क्या केवल तार्किक रूप से संगठित वाक्य ही सार्थक होते हैं, या संदर्भ और प्रयोग भी अर्थ निर्धारण में भूमिका निभाते हैं? सार्थकता की समस्या मुख्य रूप से तीन पहलुओं में देखी जा सकती है:

- संगठनात्मक दृष्टिकोण: यदि कोई कथन तार्किक रूप से संगठित है, तो क्या वह अर्थपूर्ण है?
- संदर्भवादी दृष्टिकोण: क्या अर्थ केवल संदर्भ पर निर्भर करता है?
- प्रयोग-आधारित दृष्टिकोण: भाषा का प्रयोग ही उसके अर्थ को निर्धारित करता है[8]।

निरर्थकता (Nonsense) की समस्या भी सार्थकता के अध्ययन में महत्वपूर्ण है। विट्गेन्स्टाइन की आरंभिक कृति Tractatus Logico-Philosophicus में उन्होंने यह तर्क दिया कि केवल वे कथन सार्थक हैं जो वास्तविकता की तार्किक संरचना को प्रतिबिंबित करते हैंए अन्यथा वे निरर्थक (Nonsense) हैं[9]।

पाश्चात्य परंपरा में सार्थकता

(i) फ्रेगेए रसेल और प्रारंभिक विश्लेषणात्मक दर्शन

गॉटलॉब फ्रेगे (Gottlob Frege) और रसेल (Bertrand Russell) ने भाषा और अर्थ के बीच संबंध को स्पष्ट करने के लिए तर्कसंगत विश्लेषण (Logical analysis) की पद्धति अपनाई। फ्रेगे ने संदर्भ (Reference) और आशय (Sense) की अवधारणा प्रस्तुत कीए जबकि रसेल ने वर्णन का सिद्धांत (Theory of Descriptions) विकसित कियाए जिसके अनुसार किसी कथन का अर्थ उसके घटकों और उनके संदर्भ से निर्धारित होता है[10]।

(ii) तार्किकभववाद (Logical Positivism) और वियना सर्कल

20वीं शताब्दी में वियना सर्कल (Vienna Circle) के दार्शनिकों ने लॉजिकवाद (Logical Positivism) की अवधारणा प्रस्तुत कीए जिसके अनुसार केवल वे कथन सार्थक होते हैं जो या तो अनुभवजन्य रूप से सत्यापित (Empirically Verifiable) हो सकते हैं या तार्किक रूप से सिद्ध हो सकते हैं[11]। ए. जे. आयर (A-J- Ayer) ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि केवल वे कथन जिनका संवेदी अनुभवों (Sense experience) के साथ संबंध हैए अर्थपूर्ण होते हैं[12]।

लुडविग विट्गेन्स्टाइन का भाषा-दर्शन

लुडविग विट्गेन्स्टाइन (1889-1951) 20वीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली दार्शनिकों में से एक थे, जिन्होंने भाषा और अर्थ की प्रकृति पर गहन चिंतन किया। उनका भाषा-दर्शन मुख्यत: दो चरणों में विभाजित किया जाता है: (1) प्रारंभिक दृष्टिकोण (Tractatus Logico-Philosophicus) और (2) उत्तरवर्ती दृष्टिकोण (Philosophical Investigations)। दोनों चरणों में भाषा और उसकी सार्थकता की अवधारणा को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा गया है।

1. प्रारंभिक दृष्टिकोण: Tractatus Logico-Philosophicus (1921)

i) भाषा और यथार्थ का चित्रात्मक सिद्धांत (Picture Theory of Meaning): विट्गेन्स्टाइन की प्रथम प्रमुख कृति Tractatus Logico-Philosophicus (1921) में उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भाषा का कार्य यथार्थ को प्रतिबिंबित करना है। उन्होंने इसे चित्रात्मक सिद्धांत (Picture Theory of Meaning) के रूप में प्रस्तुत किया जिसके अनुसार भाषा का अर्थ वास्तविकता में उसके अनुरूप होने पर निर्भर करता है[13]।

उनके अनुसारए भाषा में वाक्य वस्तु-तथ्यों (Atomic Facts) का प्रतिनिधित्व करते हैं और यह प्रतिनिधित्व उसी प्रकार होता है जैसे कि एक चित्र वास्तविकता का चित्रण करता है[14]। इसका अर्थ यह है कि भाषा और यथार्थ के बीच एक संरचनात्मक समानता होनी चाहिए। यदि कोई कथन इस संरचना का पालन करता है, तो वह सार्थक होगाए अन्यथा निरर्थक होगा।

(ii) तार्किक संरचना और सत्य-स्थितियाँ (Truth&Conditions): विट्गेन्स्टाइन ने यह विचार प्रस्तुत किया कि किसी कथन का अर्थ उसकी सत्य-स्थितियों (Truth-Conditions) पर निर्भर करता है। किसी कथन की सत्यता का निर्धारण इस बात से होता है कि वह यथार्थ के किस रूप को प्रतिबिंबित करता है[15]। इस दृष्टिकोण से केवल वे कथन सार्थक माने जाते हैं जिन्हें तार्किक रूप से सत्य या असत्य सिद्ध किया जा सकता है।

(iii) ''जिसके बारे में नहीं कहा जा सकता, उसके बारे में मौन रहना चाहिए।": Tractatus के अंतिम निष्कर्षों में विट्गेन्स्टाइन ने यह तर्क दिया कि भाषा की सीमाएँ ही हमारी विचार की सीमाएँ हैं। उन्होंने प्रसिद्ध रूप से लिखा:

''जिसके बारे में हम नहीं बोल सकते, उसके बारे में हमें मौन रहना चाहिए। (Whereof one cannot speak, thereof one must be silent-)[16]।

इसका अर्थ यह है कि जो बातें तार्किक रूप से व्यक्त नहीं की जा सकतीं, उन पर चर्चा करना निरर्थक है। इस तर्क का प्रभाव बाद में तार्किक प्रत्ययवाद (Logical Positivism) पर पड़ा, जहाँ यह विचार विकसित हुआ कि केवल अनुभवजन्य रूप से सत्यापित कथन ही सार्थक होते हैं।

2. उत्तरवर्ती दृष्टिकोण: Philosophical Investigations (1953)

Tractatus लिखने के कुछ वर्षों बाद विट्गेन्स्टाइन ने अपने विचारों की सीमाओं को पहचाना और अपने भाषा-दर्शन में मूलभूत परिवर्तन किए। ये नए विचार उनकी मरणोपरांत प्रकाशित कृति Philosophical Investigations (1953) में सामने आए, जिसमें उन्होंने भाषा को एक निश्चित तार्किक संरचना से मुक्त करके सामाजिक और व्यवहारिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया।

(i) भाषा-खेल (Language Games) का सिद्धांत: अपने उत्तरवर्ती कार्यों में विट्गेन्स्टाइन ने भाषा को भाषा-खेल (Language Games) की संज्ञा दी। उनके अनुसार, भाषा का अर्थ कोई निश्चित तार्किक संरचना नहीं, बल्कि उसके प्रयोग (Use) पर निर्भर करता है[17]।

उन्होंने तर्क दिया कि भाषा कोई स्थिर या निरपेक्ष व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवहार (Social Practice) से विकसित होती है। विभिन्न संदर्भों में भाषा विभिन्न तरीकों से प्रयुक्त होती हैए और प्रत्येक संदर्भ अपने अलग ''भाषा-खेल" के नियमों द्वारा संचालित होता है। उदाहरण के लिए:

- गणित में संख्याओं का उपयोग एक प्रकार का भाषा-खेल है।
- अदालत में दी गई गवाही एक अलग भाषा-खेल है।
- धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या एक भिन्न भाषा-खेल है।

इस दृष्टिकोण से भाषा का कोई एक निश्चित सार्थकता सिद्धांत नहीं हो सकता, बल्कि यह विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में बदलता रहता है।

(ii) अर्थ प्रयोग पर आधारित होता है (Meaning as Use): विट्गेन्स्टाइन के अनुसारए किसी शब्द या वाक्य का अर्थ केवल उसके प्रयोग (Use) से समझा जा सकता है[18]। उदाहरण के लिएए शब्द ''बैंक" का अर्थ अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग हो सकता है-

- यदि हम वित्तीय संदर्भ में हैं, तो ''बैंक" का अर्थ होगा वित्तीय संस्था।
- यदि हम नदी के संदर्भ में हैं, तो ''बैंक" का अर्थ होगा नदी का किनारा।

इस प्रकार, अर्थ कोई स्थिर वस्तु नहीं, बल्कि एक परिवर्तनशील तत्व है, जो सामाजिक प्रयोग पर आधारित होता है।

(iii) निजी भाषा (Private Language) की असंभावना: Philosophical Investigations में विट्गेन्स्टाइन ने निजी भाषा (Private Language) की धारणा की भी आलोचना की। उन्होंने कहा कि भाषा मूलत: एक सार्वजनिक गतिविधि है और यदि कोई भाषा पूरी तरह से निजी हो (अर्थात जिसे केवल एक व्यक्ति ही समझ सके), तो वह भाषा नहीं कहलाएगी[19]।

उनके अनुसार, भाषा को समझने के लिए सामाजिक मानकों (Social Criteria) की आवश्यकता होती है। यदि कोई व्यक्ति एक ऐसी भाषा विकसित करे, जिसका अर्थ केवल उसे ही ज्ञात हो, तो इस भाषा का परीक्षण या सत्यापन संभव नहीं होगा, क्योंकि कोई अन्य व्यक्ति इसे मान्य नहीं कर सकता।

सार्थकता की समस्या का संभावित समाधान

भाषा-दर्शन में सार्थकता (Meaningfulness) की समस्या को लेकर विभिन्न दार्शनिकों ने अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। आधुनिक दर्शन और भाषा-विज्ञान में इस समस्या का पुनर्मूल्यांकन किया गया है, जिसमें भाषाए संदर्भ और अर्थ की नई समझ विकसित हुई है। भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों के बीच एकीकरण की संभावना भी एक महत्वपूर्ण समाधान के रूप में देखी जा सकती है।

1. आधुनिक संदर्भ में सार्थकता का पुनर्मूल्यांकन

20वीं और 21वीं शताब्दी में भाषा और अर्थ की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। सार्थकता की समस्या को समझने के लिए अब केवल तार्किक संरचना (Logical Structure) पर ध्यान नहीं दिया जाता, बल्कि संदर्भ (Context), भाषाई प्रयोग (Linguistic Usage) और सामाजिक कारकों को भी शामिल किया जाता है[20]।

नोम चॉम्स्की (Noam Chomsky) ने भाषा की व्याकरणीय संरचना (Grammatical Structure) और सृजनात्मकता (Generativity) की अवधारणा को प्रस्तुत कियाए जिससे यह स्पष्ट हुआ कि भाषा केवल यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि एक गतिशील और रचनात्मक प्रक्रिया है[21]। इसी प्रकारए पॉल ग्राइस (Paul Grice) ने अपने सहकारी सिद्धांत (Cooperative Principle) में यह तर्क दिया कि संचार में अर्थ केवल वाक्य की संरचना से नहीं, बल्कि वक्ता और श्रोता के इरादों और संदर्भ से भी निर्मित होता है[22]।

2. भाषाए संदर्भ और अर्थ की नई समझ

लुडविग विट्गेन्स्टाइन के Philosophical Investigations (1953) में प्रस्तुत भाषा–खेल (Language Games) और अर्थ का प्रयोग आधारित सिद्धांत (Meaning as Use) इस समस्या का एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, किसी शब्द का अर्थ उसके प्रयोग (Use) पर निर्भर करता है, न कि उसकी तार्किक संरचना पर[23]।

इस दृष्टिकोण से सार्थकता का निर्धारण निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है:

- संदर्भ (Context) शब्द या वाक्य किस संदर्भ में प्रयुक्त हो रहे हैं?
- प्रयोग (Use) भाषा कैसे और किन उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा रही है?
- सामाजिक सहमति (Social Agreement) भाषा का अर्थ समाज में स्वीकृत मानकों पर निर्भर करता है।

इस दृष्टिकोण से, कोई भी कथन तब सार्थक होता है जब उसे एक भाषाई समुदाय समझ और प्रयोग कर सके।

3. भारतीय और पाश्चात्य चिंतन के एकीकरण की संभावना

भारतीय भाषा–दर्शन में शब्दार्थ (Meaning of Words) को समझने के लिए अभिधा (Denotation), लक्षणा (Connotation) और व्यंजना (Suggestion) जैसी अवधारणाओं को विकसित किया गया है[24]। आधुनिक पाश्चात्य चिंतन में भाषा–प्रयोग आधारित दृष्टिकोण (Use-Based Approach) और संदर्भ–सिद्धांत (Contextualism) इन भारतीय दृष्टिकोणों से मेल खाते हैं।

संभावित एकीकरण निम्नलिखित रूपों में हो सकता है:

1. भाषा का संदर्भ–आधारित अध्ययन: भारतीय भाषा–दर्शन में संदर्भ और संकेत की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो विट्गेन्स्टाइन के भाषा–खेल सिद्धांत से मेल खाती है।
2. अर्थ की बहु–स्तरीय व्याख्या: पश्चिमी दर्शन मुख्यत: द्विआयामी अर्थशास्त्र (Denotation&Connotation) पर केंद्रित रहा है, जबकि भारतीय दृष्टिकोण में व्यंजना (Implicature) का गहरा अध्ययन किया गया है, जिसे ग्राइस के सहकारी सिद्धांत के साथ जोड़ा जा सकता है।
3. अर्थ की बहु–सांस्कृतिक समझ: भाषा के प्रयोग और अर्थ का निर्धारण अलग–अलग भाषाई समुदायों में भिन्न हो सकता है, और भारतीय दार्शनिक परंपराएँ इस विविधता को अधिक गहराई से स्वीकार करती हैं।

निष्कर्ष

सार्थकता की समस्या का समाधान केवल तार्किक संरचना पर निर्भर नहीं करता, बल्कि भाषा, संदर्भ और सामाजिक प्रयोग के गहरे अध्ययन की माँग करता है। विट्गेन्स्टाइनए चॉम्स्की और ग्राइस जैसे आधुनिक पाश्चात्य चिंतकों के सिद्धांत भारतीय भाषा–दर्शन की अवधारणाओं से मेल खाते हैं। इस प्रकार, सार्थकता की समस्या का समाधान भाषा के प्रयोग और संदर्भ की बहु–आयामी समझ में निहित है।

निष्कर्ष सारणी

विषय	विषय
शोध के प्रमुख निष्कर्ष	भाषा–दर्शन में सार्थकता की समस्या एक केंद्रीय विषय है।
	विट्गेन्स्टाइन के प्रारंभिक और उत्तरवर्ती विचारों में भाषा की भिन्न व्याख्याएँ हैं।
	भारतीय भाषा–दर्शन अभिधा, लक्षणा, व्यंजना द्वारा अर्थ की बहु–स्तरीय समझ प्रस्तुत करता है।
	आधुनिक भाषा–विज्ञान संदर्भ–आधारित दृष्टिकोण को स्वीकार करता है।
विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा–दर्शन का अंतर्संबंध	दोनों परंपराएँ संदर्भ और प्रयोग को अर्थ–निर्धारण में महत्वपूर्ण मानती हैं।
	भारतीय व्यंजना सिद्धांत ग्राइस के संचार सिद्धांत से मेल खाता है।
	विट्गेन्स्टाइन का भाषा–खेल (Language Games) सिद्धांत भारतीय मीमांसा और व्याकरण परंपरा से जुड़ा हुआ है।
भविष्य के अध्ययन की संभावनाएँ	भाषा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के संदर्भ में सार्थकता की समस्या का पुनरावलोकन।
	भारतीय और पाश्चात्य भाषा–दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन का विस्तार।
	बहुभाषी समाजों में संदर्भ और अर्थ की भूमिका पर शोध।
समग्र निष्कर्ष	विट्गेन्स्टाइन और भारतीय भाषा–दर्शन भाषा को एक स्थिर संरचना न मानकर संदर्भ और प्रयोग के आधार पर व्याख्या करते हैं।
	इन अंतर्दृष्टियों का एकीकरण आधुनिक भाषा–विज्ञान और दर्शन के लिए नई दिशाएँ प्रस्तुत कर सकता है।

संदर्भ

1 Wittgenstein, L- (1921)- Tractatus Logico&Philosophicus- Routledge & Kegan Paul-
2 Wittgenstein, L- (1953)- Philosophical Investigations- Blackwell Publishing-
3 Kunjunni Raja, K- (1969)- Indian Theories of Meaning- Adyar Library-
4 Matilal, B- K- (1990)- The Word and the World, India's Contribution to the Study of Language- Oxford University Press-
5 Dasgupta, S- (2001)- The Philosophy of Linguistic Analysis- Oxford University Press-
6 Frege, G- (1892)- Über Sinn und Bedeutung- Zeitschrift für Philosophie und philosophische Kritik, p- 25-
7 Matilal, B- K- (1990)- The Word and the World India's Contribution to the Study of Language- Oxford University Press, p- 54-
8 Wittgenstein, L- (1953)- Philosophical Investigations- Blackwell Publishing, §43-
9 Wittgenstein, L- (1921)- Tractatus Logico&Philosophicus- Routledge & Kegan Paul, p- 6-54-

10 Russell, B- (1905)- On Denoting- Mind, 14(56), p- 479-
11 Carnap, R- (1935)- Philosophy and Logical Syntax- Kegan Paul, p- 67-
12 Ayer, A- J- (1936)- Language, Truth and Logic- Gollancz, p- 35-
13 Wittgenstein, L- (1921)- Tractatus Logico&Philosophicus- Routledge & Kegan Paul, §2-1-
14 Ibid, §2-12-
15 Ibid, §4-2-
16 Ibid, §7-
17 Wittgenstein, L- (1953)- Philosophical Investigations- Blackwell Publishing, §43-
18 Ibid-
19 Ibid, §256&271-
20 Davidson, D- (1984)- Inquiries into Truth and Interpretation- Clarendon Press, p- 112-
21 Chomsky, N- (1965)- Aspects of the Theory of Syntax- MIT Press, p- 24-
22 Grice, P- (1975)- Logic and Conversation- Harvard University Press, p- 45-
23 Wittgenstein, L- (1953)- Philosophical Investigations- Blackwell Publishing, §43-
24 Matilal, B- K- (1990)- The Word and the World, India's Contribution to the Study of Language- Oxford University Press, p- 67-

मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति एवं दशाओं का अध्ययनः एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ० माया रानी

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, बेतिया, प. चम्पारण

सारांश

मुगल काल में महिलाओं की स्थिति काफी विविध और जटिल थी, कारण यह था कि उनके सामाजिक वर्गीकरण, धार्मिक विषमता भौगोलिक आधार पर भिन्न-भिन्न होती थी। परंतु मुगल सम्राटों की पत्नियां, राजकुमारियां और अन्य शाही महिलाओ को विशेषाधिकार प्राप्त थीं। वे कई मामलों में राजनीतिक रूप से प्रभावशाली थीं और राजदरबार के महत्वपूर्ण निर्णयों में योगदान देती थीं। कई शाही महिलाएं शिक्षित थीं, जो साहित्य, कला और संगीत में रुचि रखती थीं। उन्होंने विद्वानों और कलाकारों को प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, गुलबदन बेगम ने बाबर और हुमायूं के शासनकाल के बारे में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा था। जबकि साधारण वर्ग की महिलाओं की स्थिति अधिक चुनौतीपूर्ण थी। समाज में इन महिलाओं की भूमिका ज्यादातर घरेलू कार्यों तक ही सीमित थी, और उनकी शिक्षा के अवसर सीमित थे। हालांकि, कुछ महिलाएं कारीगरों के रूप में भी काम करती थीं, जैसे कि कपड़ा उद्योग और खेती में। वस्तुतः मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति काफी हद तक उनके सामाजिक और पारिवारिक संदर्भ पर निर्भर करती थी। कुछ महिलाएं शक्तिशाली और प्रभावशाली थीं, जबकि अन्य को कठिनाइयों और प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था।

कुंजी शब्दः- राजनीतिक, विषमता, धार्मिक, कारीगर, साहित्य।

परिचयः-

किसी भी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मुल्यांकन करने का सर्वोपरी आधार उस काल की स्त्रियों के दशा का अध्ययन करना हैं। स्त्रियों की दशा किसी भी सभ्यता या संस्कृति का मापदंड माना जा सकता है। हॉलाकि भारत में स्त्रियों का इतिहास अत्यन्त गतिशील रहा है। इस लेख के माध्यम से मुगलकालीन शाही स्त्रियों की सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में निभाई गई भूमिका तत्थों की रीति-रिवाज में परखने की चेष्टा की गई है। मुगल बादशाहों द्वारा महिलाओं के प्रति उनका आचरण, व्यवहार, आदर, सम्मान एवं सहानुभूति की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

वस्त्र उद्योग, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य, वित्तीय प्रबंधन एवं संचालन में महिलाओं की भूमिका के योगदान का तत्थों के आधार पर आँका गया है। इस लेख द्वारा पर्दे के पीछे ही सही मायने पर महिलाओं द्वारा नारीवाद की 'लौ' को जलाने की प्रयास की निर्णायक रखा गया है।

मुगलिया साम्राज्य में नारियों के लिए स्वतंत्र रूप से जीवन का आनन्द लेना एक चुनौती थी। फिर भी इस साम्राज्य की स्थापना का श्रेय जहाँ जहीरूद्दीन बाबर को माना जाता है और इसे सुदृढ़ और विस्तार के साथ प्रशासनिक सबलता प्रदान करने का श्रेय अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजैब जैसे महान शासकों को हैं, पर इन शासकों के सफलता के पीछे एक गौण शक्ति का योगदान रहा जिसे इतिहास कभी भूल नहीं सकता।

मुगलकाल में महिलाएँ बन्द परिवेश में रहते हुए भी उनके द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में निभाई गई भूमिका ने समकालीन समाज को सकारात्मक, महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान दिशा और दशा का निर्माण किया। अपनी विवेक, व्यवहार, आचरण एवं सूझबूझ से धीरज, लगन, सचेतन एवं दूरदर्शिता का उपयोग कर अपनी नई पहचान के साथ-साथ पद प्रोन्नती प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त किया। पद प्रोन्नति उन दिनों आंशिक स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता का मानक हुआ करता था।

साक्षों पर आधारित यह लेख इस तत्थ को और भी प्रबल बनता है, कि महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक प्रशसंनीय भूमिका साम्राज्य निर्माण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनकी भागीदारी का द्योतक है।

मुगल साम्राज्य में सामान्यतः महिला बादशाह की माँ या मुगल रानी हुआ करती थी। सभी बादशाह अपनी माँ या मुगल रानी का आदर व सम्मान करते थे। बाबरनामा एवं हुमायूँनामा के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि बादशाह अपने शपथ ग्रहण, बच्चों का जन्मदिवस या उत्साह पूर्ण उत्सव से पहले अपने माँ का दर्शन एवं परामर्श लिया करते थे। बादशाह के माँ के मृत्योपरान्त ही उनकी मुख्य रानियों में कोई उसका जगह लेता। अकबर के प्रशासन में उनकी माँ के पारित आदेश में यह शब्द शामिल होता था। जैसे- 'हुक्म-ए-मरियन जमानी' और उसपर एक फूल के साथ आठ पंखुड़ियाँ की मुहर लगती थी। अकबर के राजदरबार में हमिदा बानो एक सक्रिय एवं प्रभावशाली की भूमिका में नजर आती है। उनका आदेश गुलबदन बानो से ऊँचा एवं गरिमामयी था। हमिदा

बानो बेगम ने कई बार पारिबारिक भोज समारोह का आयोजन किया एवं बादशाह पुत्र मतभेद में मध्यस्थता भी निभाई।

एक बार नदी पार कराने हेतु अकबर ने खुद उसकी पाल्की का एक छोर पर कंधा दिया। जहाँगीर ने तो अपनी माँ की प्रशंसा करते हुए लिखा कि उस दिन मेरी माँ 'मरियमउज जमानी, आगरा आकर मेरे रूहानी तन्दुरूस्ती के लिए दुआ की।'

राज दरबार में मुगल परिवार के बेटियों या शाहजादियों का उच्च रूतवा था और उनकी प्रतिष्ठा का आदर सम्मान हुआ करता था। उन दिनों बेटी के जन्म को उसी हर्ष उल्लास के साथ मनाया जाता। बेटियों की शिक्षा एवं उच्च प्रतिभा की निखार के लिए बेहतर प्रबंध किया जाता था।

मुगल हरम में आया को सम्मान एवं प्रतिष्ठित पदों पर रखा जाता था। अकबर की बचपन में परवरिश उनकी सौतेली माँ महम अन्गा ने किया जिसने अकबर के प्रारंभिक दिनों में महत्वपूर्ण राजनैतिक भूमिका निभाई। कुछ अन्य मुगल आया (दाईयाँ) जिसका महत्वपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में योगदान रहा जिनमें कुछ विरूपात रहा। उनमें भी जीजी अंगा, कोकी अंगा, पिजी जन अंगा इत्यादि। मुगल हरम की प्रतिष्ठित स्त्रियाँ इस्लामिक रीति-रिवाज को अपनाते हुए अपनी सभी प्रकार की भूमिका को निभाती थी। परदा का प्रचलन जोरों पर था। परदा का अर्थ मुख्य रूप से नकाव या ढकना हुआ करता था। किशोरियाँ अपनी परिपक्क पर इसे अपनाती थी। सार्वजनिक स्थलों पर गरीब या फिर निर्लज औरतें ही जाया करती थी। मुस्लिम मर्दों को यह नापसन्द था कि उनकी स्त्रियों का चेहरा कोई ओर मर्द देखे, भले ही उसमें उसका व्यस्क भाई क्यों न हो। बाहर जाते समय औरतें परदे का पालन करती थी। आदेश था कि अगर औरतें सड़कों और गलियों पर वेपरदा नजर आई तो उन्हें वैश्यालय भेज दिया जाएगा।

उच्च वर्ग की हिन्दू महिलाएँ भी परदा प्रथा को गंभीरता से अपनाती थी। लगभग सभी हिन्दू जाति और वर्ग की महिलाएँ परदा के समान ही चेहरे पर घुंघट का प्रयोग करती थी। हालांकि घुंघट का रिवाज मुस्लिम आने के पहले से ही प्रचलित था।

विवाह सम्बन्धित कोई उम्र की तय सीमा नहीं थी। सामान्य तौर पर हिन्दू-मुस्लिम समाज में विवाह कम उम्र में ही कर दी जाती थी। चूँकि गरीब घराने बच्चियों की पढ़ाई-लिखाई का कोई ठोस प्रबन्ध नहीं था जिसके कारण शादियाँ 7-8 वर्ष की उम्र में ही कर दी जाती थी। शहरों और उच्च वर्ग की लड़कियों की शादी 12-13 वर्ष की आयु में कर दी जाती थी।

निकाह काजी द्वारा किया जाता था और उसका एक अभिलेख (record) या दस्तावेज सुरक्षित रखा जाता था। मुस्लिम विवाह में मेहर जो दुल्हन को देय था की महत्वा थी जिसे शादी से पूर्व तय किया जाता था। विवाह सम्पन्न करने के लिए निकाह के समय दो गवाहों की जरूरत होती थी और मुख्य विवाह अवसर रूखसती के समय मनाया जाता था।

बाल-विवाह एक सामान्य प्रथा था। ज्यादातर राजकुमारियों की शादी 16 वर्ष की उम्र उपरान्त ही होती थी। बाबर के बेटी गुलरंग, 16 गुलबदन बानो का विवाह 17 आरजूबंद बानो की शादी 18 बाल विवाह का उदाहरण है। अकबर का मानना था कि बाल विवाह से स्त्रियों को शारिरिक, मानसिक विकास में बाधा आती और घर-द्वार फल-फूल नहीं सकता था। इसलिए उनके अनुसार लड़कियों की शादी 14 वर्ष और लड़कों के लिए 16 वर्ष का उम्र को सही माना है। बावजूद कठोर नियम कानून लागू करने पर भी अकबर का बाल विवाह पर रोकथाम का प्रयास नाकाबिल सिद्ध हुआ। दहेज की प्रथा भी मुगलकाल में प्रचलित था। कभी-कभी माँ-बाप अपनी बेटियों की विवाह सुखी-सम्पन्न परिवार या फिर काबिल वर का विवाह मेल बनाने के लिए काफी दहेज सुपुर्द करते थे। कभी दहेज प्रथा के कारण बेटियों का विवाह संकटमय बन जाता था। अकबर ने इस प्रथा का विरोध किया जबकि ब्राहमण दहेज के लेन-देन से दूर था।

तलाक (विवाह बिच्छेद) प्रायः यह देखा जाता है, कि जब पति-पत्नी एक दूसरे का साथ नहीं निभा पाते और रिश्तों में तकरार आ जाती है, तो हर सम्भव प्रयास किया जाता है, कि दोनो के बीच बड़ती दूरियाँ मिटाई जाए और मिलनसार जीवन व्यतीत करें और जब यह प्रयास भी असम्भव होता है, तो कानूनन वे अलग हो जाते है और फिर से जीवन साथी चुनकर जिन्दगी की शुरूआत करते है। विवाह विच्छेद का प्रचलन हिन्दुओं में न के बराबर था, लेकिन निम्न जातियों में शादी और विवाह विच्छेद का एक सामान्य नियम बन चूका था। इस्लाम में विवाह विच्छेद का अनुमति है, क्योंकि शादी एक सामाजिक समझोता है, न कि ईश्वरीय आदेश इसलिए विवाह बन्धन को समझौता कर सकता है। विवाह को आसानी से तीन तलाक क्रमवार कहने पर पति-पत्नी को विच्छेद कर सकता है। पत्नियाँ भी पति को छोड़ सकती है, पर उसे मेहर आपस देना पड़ता था। इसे 'खुला' कहा जाता था। तलाक को मुस्लिम में सामान्य माना जाता था पर इसे हीन भावना से देखते थे। मुगल काल में पति को तलाक देने का अधिकार जोरों पर था और पत्नी की रजामंदी के बगैर भी दिया जाता था।

अकबर के जमाने में सैफ खान ने कहा था कोकी कि माँ को उसके पति ने धमकी दी थी कि अगर वह बच्ची को जन्म देगी तो वह तलाक दे देगा। पर उसे बेटा हुआ और तलाक टल गया। जहाँगीर ने जारूल्लाह को उसकी बेगम मिस्री बेगम को तलाक देने को कहा क्योंकि उसे उसके साथ मानसिक प्रताड़ना हो रहा था। गुलबाग बेगम की शादी भी मीर शाह हुसैन से हुई पर रिस्ते में अन-बन के बजह से तलाक हुआ। इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि रिस्ते न चलने की गुंजाईश पर तलाक हो जाता था।

बहुविवाहः- यह प्रथा हिन्दू और मुस्लिम दोनों में प्रचलित था। सामान्यतः पति-पत्नी का जोड़ी ही संतोषजनक था पर जिसका आर्थिक स्थिति अच्छी थी वह अपनी आन-बान-शान को बनाए रखने के लिए कई पत्नियाँ रखा करता था। इस्लाम में चार

पत्नियाँ को रखने की अनुमति है पर सभी पत्नियों के साथ समानता का व्यवहार हो।

अबुल फजल हिन्दुओं के बारे में लिखता है, कि महाराजा (सम्राट) को छोड़कर सभी को एक ही पत्नी रखनी चाहिए और बहु-विवाह भी संभव है, जब पति या तो बिमारी से ग्रसित हो, बॉझ हो या फिर जन्मा नवजात शिशु मर जाता हो। बाबर के पास सात पत्नियाँ थी। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर सभी ने बहु विवाह किया और अनेकों बिबियाँ को अपने हरम में सम्मानित पदों या मनसब पर रखा। हालांकि अकबर एक पत्नीत्व का पक्षधर था। उसका मानना था कि वहुविवाह से स्वास्थ्य एवं शांति दोनों नाश होता है। बदायूनी लिखता है, कि एकल विवाह पर अकबर ने कानून भी बनाया बाबजूद सामाजिक सुधारों का प्रयास चलता रहा पर बहुविवाह का प्रचलन रोका न जा सका।

विधवा:- समाज के पति का मृत्यु नि:संदेह उसकी पत्नी के लिए सबसे बड़ा पीड़ादायक एवं शोक की घड़ी हुआ करता था। हिन्दू औरते या तो सन्यासी जीवन व्यतीत करती या फिर सती। मुस्लिम महिलाओं को धार्मिक आधार पर दूसरी शादी का अनुमति था और निम्न वर्ग के लोग जैसे ग्वाला, घोबी, माली, मछुआरे इस प्रथा को मानते थे। 33 लेकिन अल्तेकर का मानना है कि नहीं थी चाहे पति चरित्रहीन हो या क्रूर। तलाक की गुजाईश ही मुगलकाल में मुगलों ने विधवा विवाह में प्रोत्साहित किया हालांकि अकबर ने हिन्दू रीति रिवाज के विरूद्ध जाकर इस प्रथा पर बल देते हुए कानुन स्थापित किया। औरंगजेब ने दारा शिकोह के मरनोपरान्त उसकी बीबी राना-ए-दिल से शादी की इच्छा जताई पर सफल नहीं हुआ। उसके बाद राना-ए-दिल को पूरी जिन्दगी एक प्रतिष्ठा एवं सम्मान के साथ देखा जाने लगा जिसकी वह हकदार थी।

सती:- माना जाता है कि भारत में सती एक प्राचीन प्रथा और रिवाज रहा है। सती का अर्थ 'निश्चित रूप से पती का मृत्योपरान्त पति से पुन: मिलना' या पुन:मिलन। इस पुन:मिलन की प्रक्रिया में एक विधवा को अपने पति के साथ चिता में जिन्दा ही जल जाना पड़ता था। ऐसा न करने पर उसे पूरी जीवन पारिवारिक सदस्यों द्वारा उसे हीन लक्षण और घृणा की चुनौती से गुजरना पड़ता था। इसलिए पति के चिता में उन्हें जबरण ढकेला जाता ताकि जिन्दा जलते हुए अपने पति के साथ स्वर्गलोक सिधार लें। अकबर बादशाह ने एक आदेश पारित किया कि अगर कोई पत्नी अपने पति के चिता पर जलना चाहती है, तो उसे न रोका जाए लेकिन उसपर किसी प्रकार का बाहरी दबाब या बल का प्रयोग न हो।

जहाँगीर और औरंगजैब ने किसी भी औरत को अपने पति के चिता में जलने के पूरा विरोध करते हुए आदेश पारित किया था।

जौहार:- बहादूर और साहसी राजपूतों में जौहार की प्रथा का प्रचलन था। जब राजपूत के सेनापति को यह ज्ञात हो जाता कि हम सैन्य युद्ध में हार जाऐंगे तो अपने परिवार और बच्चों को किले के अन्दर या कियी गुफा में बंद कर आग लगा देते। इस परम्परा को जौहार कहा जाता था।

राजपुत युद्ध के मैदान में समर्पित करना नहीं जानते उनका विश्वास या तो जीत में था या फिर वीरगति प्राप्त करने में। जौहार प्रथा को अपनाने के पीछे मूल भावना था कि वह अपने महिलाओं और बच्चों को दुश्मनों के हाथों प्रताड़ित होते नहीं देखना चाहते थे। अबूल फजल ने चितौड़ में जौहार का वर्णन करते लिखा है कि ''जब युद्ध में कोई अटल मुसीबत या खतरा या हार सामने आता दिखे तो एक पिठी चन्दन के लकड़ी की बनाई जाती जो बहुत बड़ा होता, उस पर सूखी लकड़ी और तेल डाल दिया जाता।ष् जिससे महिलाएँ व बच्चे जलकर राख हो जाए।'' इस प्रकार अपनी शान और औरतों की प्रतिष्ठा और गरिमा को बचाने के लिए राजपूतों ने इस प्रथा को अपनाए रखा।

शैतानपूरा:- मुगल बादशाहों ने विशेष रूप से अकबर और औरंगजैब की वैश्याओं के विरूद्ध कड़ा कदम उठाया। शहर के बाहरी छोर पर अकबर ने वैश्याओं के लिए क्षेत्र अंकित किया जिसे 'शैतानपूरा' कहा जाता था ताकि बाकी शहरी वैश्यालयों और नग्नता से दूर रहे। इसका संचालन के लिए रक्षक एवं सचिव की नियुक्ति होती थी। वैश्याओं के हरकत पर कड़ा नजर रखता था। आदेश पालन न करने पर कडा सजा भी दी जाती थी।

मीना बाजार (Fancy Market):- मुगल बादशाहों ने हरम में रह रहे शाही महिलाओं के मनोरंजन और आनन्द के लिए अपनी रूची अनुसार मेले, बाजार एवं उत्सव का आयोजन किया करते थे। उनके मन बहलाव के लिए सप्ताह में किसी एक दिन को 'खुशरोज' मेला का आयोजन महल के प्रांगन में होता था। इस 'खुशरोज' मेला के संचालन का भार सिर्फ औरतों के जिम्मे होता था। बादशाह और ऊँचे मनसब के दरबारी ही इस मेले में आकर आनन्द ले सकते थे। यह सार्वजनिक बाजार नहीं होता।

मीना बाजार मूल रूप से शाही महिलाएँ, शाहजादियाँ और रईस दरवारियों के लिए आयोजित होता था। इसमें व्यापारियों की भी पत्नियाँ एवं बेटियों द्वारा अलग-अलग वस्तुओं के अलग-अलग दुकान लगाया जाता था। कपड़े, जेबरात, हस्तशिल्प, फल-फूल एवं खाने-पीने का सामान मुख्य रूप से होता। इसलिए सोनार, बनिया एवं वस्त्र व्यापारियों की पत्नियाँ इसका संचालन करती। यह फैन्सी मीना बाजार जोधाबाई महल से लेकर मीना मस्जिद फतेहपुर तक फैला होता। सभी शाही महिलाएँ एवं राजपूत घराने की महिलाएँ भी इस बाजार से लुफ्त उठाती और अपना मन बहलाती। बाजार का प्रारंभ सबसे पहले भारत में हुमायूँ ने किया। जहाँगीर ने तो इस बाजार में रौशनी का प्रबन्ध कराने का आदेश दिया। बादशाह यहाँ नृत्य एवं संगीत का भी आनन्द लेते थे। नृत्की को कंचनी कहा जाता था। शाहजहाँ ने इसे और भी शानदार बना दिया। अकबर काल में यह आये दिनों आयोजन होता था, जिसमें खान-पान, मनोरंजन, गीत-संगीत के साथ नृत्य की भी आनन्द लिया जाता था।

महिलाओं की आर्थिक सहभागितारू मुगलकालीन महिलाओं ने अपनी सहभागिता आर्थिक क्षेत्र में प्रदान कर विकसित होते मुगल

आर्थिक परिस्थिति को और भी शक्तिशाली बनाया। महिलाओं की भागीदारी कृषि, उद्योग एवं मुद्रा प्रणाली भी कसौटी में आँका जा सकता है।

शाही महिलाओं को जागीर आवंटित की जाती थी जिससे उनको कर प्राप्त होता था। निश्चित ही अपने जागीर के कृषक एवं प्रशासनिक उत्थान एव कर उत्सर्जन के लिए स्वंय उत्तरदायित्व होती थी।

नौपरिवहन व्यापार, अन्तर्देशीय एवं वैदेशिक वाणिज्य में भी महिलाओं की भागीदारी रही। जहाँगीर की माँ मरियमउजमानी प्रथम शाही महिला थी जिसने अन्तरदेशीय एवं वैदेशिक व्यापार वाणिज्य का संचालन किया। जहाँ आरा वाणिज्य व्यापार के लिए साहेबी एवं गुन्जावर जैसे दो बड़े जहाज की मालिक थी। नूरजहाँ, जहाँआरा ने इस व्यापार वाणिज्य को पूरा बढ़वा दिया। वाणिज्य व्यापार को उन्नति के लिए अच्छीबल, दिल्ली, लाहौर एवं चाँदनी चौक जैसे बाजार को विकसित किया। उस दौर की स्त्रियाँ उद्योग निर्मित वस्तुओं पर भी अपना प्रभूत्व रखती थी। सूती कारखानों में अपने पहनावे के लिए रंग-बिरंगे और मनपसन्द कपड़ों का निर्माण आयात और खपत पर भी ध्यान रखती थी।

उपहार, पुरस्कार एवं भेंट में मिले सोना, चाँदी, हीरे अनमोल आभूषणों का रख-रखाव, देखभाल एवं व्यापार के माध्यम से आयात-निर्यात का उत्तरदायी भी बखूबी निभाती थी। जहाँगीर की बेगम जगत गोसाईं ने 'सोहागपुरा' गाँव ही बसा डाला जिसमें सिर्फ सुन्दर और मनमोहक चुड़ियों का निर्माण होता था। नूरजहाँ ने कई सारे बाजार एवं सराई का निर्माण किया एवं अपने नाम के सिक्के का भी प्रचलन किया।

निष्कर्षः-

मध्ययुगीन भारत के मध्यकालीन अध्ययन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर यह माना जा सकता है, कि पितृसत्ता गहराई से जड़ जमा चुकि थी। महिलाओं के शरीर अधिकार और सोच पर कड़े प्रतिबंध लगाए गए थे। यह भी देखा गया है, कि महिलाओं की दशा में धर्म, जातियाँ और क्षेत्रों पर भिन्नता थी। मुस्लिम और निम्न जातियों के समुदायों के बीच महिलाओं की स्थिति बेहतर थी हालांकि पहले से भी पितृसत्ता के कानूनों के अनुसार संगठित था। यह और बात है कि, उन दिनों अनैतिहासिक छवियाँ हमारी चेतना पर शासन करती थी फिर भी महिलाओं ने इन दूर्भावनाओं को चुनौती समझदार परदे के पीछे रहकर ससमय अपने अधिकार एवं जीवन की बली चढ़ाकर अपने मान, मर्यादा, गरिमा और सूझबूझ का एक परिपक्य उदाहरण अपनी पीढ़ियों को सौपा है, जो आज भी इस संघर्ष को नारीवाद एवं महिला सशक्तिकरण की मशाल को जीवित रखा है।

संदर्भ-सूचीः-

1. मना गोड़, भारत का इतिहास, 1995, पृ. 165
2. सुमित सरकार, भारत का इतिहास, 1999 पृ0 111
3. डॉ. ए. एस अल्तेकर, एजुकेशन इन अन्सिएंट इंडिया, पृ. 220-32
4. गुलबदन बेगम, हुमांयुनामा, इंट्रोडक्शन बी मिसेज बेवरिज, पृ.9
5. 'वीमेन्स पूवमेन्ट इन इण्डिया: एन असेसमेंटट' इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली वोल्यूम नं0- 23 जून 8,1985-95
6. जैन प्रतिभा एवं शर्मा संगीता 'भारतीय स्त्री' रावत पब्लिकेशन जयपुर, नई दिल्ली, वर्ष-1998

मैथिलीशरण गुप्त कृत भारत-भारती में राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम

डॉ० अखिलेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सार

भारतेन्दु युग, हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रथम सोपान माना जाता है। इस काल के प्रमुख पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने भारत दुर्दशा एवं अँधेर नगरी जैसी कृतियों के माध्यम से तत्कालीन परतंत्र भारत की दीन-हीन दशा की ओर भारतीयों का ध्यान आकृष्ट करवाया था। भारतेन्दु युग के साहित्यकार अनेक स्थलों पर राष्ट्र के लिए चिन्तित दिखाई देते हैं किन्तु उनके स्वर में एक संकोच का भाव विद्यमान है। वे आत्मगौरव की बात करने के साथ-साथ कई स्थलों पर महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा भी करते नजर आते हैं। भारतेन्दु युग में इस संकोच का एक कारण ब्रिटिश सरकार का दबाव भी हो सकता है। कारण कुछ भी हों, भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वर दबा हुआ प्रतीत होता है। द्विवेदी युग हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का द्वितीय सोपान है। इस काल में राष्ट्रीयता के नये तेवर दिखाई देते हैं। इस युग की राष्ट्रीयता प्राचीन से अर्वाचीन, भावुकता से यथार्थ, हीनता से गौरव, अनास्था से आस्था, उपदेश मात्र से कर्म की ओर उन्मुख होती दिखाई देती है। इस काल में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान प्रभृति साहित्यकारों ने मातृभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपनी भारत-भारती (सन् 1912 ई0) के माध्यम से तत्कालीन परतंत्र जनता के मन में जिस आत्मगौरव का संचार किया, वह दीर्घ काल से भारतीयों के मन में स्थाई बना हुआ है। गुप्त जी ने भारत-भारती में अतीत का गौरवगान, वर्तमान भारत की दुर्दशा और उज्ज्वल भविष्य की सजीव झाँकी प्रस्तुत की है, जिसमें राष्ट्रीयता का एक नवीन तेवर विद्यमान है।

प्रमुख शब्द- अतीत का गौरवगान, भारत की दुर्दशा, उज्ज्वल भविष्य, भारत-भारती, राष्ट्रीयता का नया स्वर, प्राचीन से अर्वाचीन, हीनता से गौरव, भावुकता से यथार्थ।

'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' दोनों शब्द देशकाल सापेक्ष शब्द हैं, जिनकी स्पष्ट परिभाषा देना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। विद्वानों द्वारा समय-समय पर इन्हें परिभाषित करने का प्रयास किया जाता रहा है। 'राष्ट्र' शब्द अंग्रेजी के 'नेशन' का पर्याय है। 'नेशन' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'नेशियो'[1] शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है जन्म अथवा 'प्रजाति'। भारत के प्राचीन वांङमय में 'राष्ट्र' शब्द, भूमि, भाषा, राज्य, जनसमुदाय, तथा समाज आदि कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ये शब्द राष्ट्र के कई अर्थ न होकर राष्ट्र के कई तत्व हैं। डॉ. सुधीन्द्र लिखते हैं-''भूमि, भूमिवासी और जनसंस्कृति के सम्मिलन से राष्ट्र का सृजन सम्भव है।''[2] इससे थोड़ा आगे बढ़ते हुए डॉ. विनयमोहन शर्मा कहते हैं कि-''राष्ट्र भावना की एकता का नाम है क्योंकि राष्ट्र एक ऐसी भावना है, जिसकी जड़ें मानव हृदय की गहराईयों में है न कि देश, भाषा, जाति, संस्कृति और धर्म, इन पाँचों की एकता में।''[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भौगोलिक सीमा के अन्दर जनता, संस्कृति और भाषा के होते हुए भी निवासियों की भावात्मक एकता ही उन्हें एक राष्ट्र के रूप में आबद्ध करती है।

राष्ट्रीयता को सही अर्थों में समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रीय आन्दोलन अर्थात स्वाधीनता संघर्ष ही राष्ट्रीयता नहीं है, जैसा कि अक्सर समझ लिया जाता है। राष्ट्रीयता अत्यन्त व्यापक शब्द है। प्राचीन काल में राष्ट्रीयता मात्र जाति गौरव तक सीमित थी किन्तु आधुनिक काल में राष्ट्रीयता अपने देश के लिए उच्च कोटि के शौर्य और बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना है। माखनलाल चतुर्वेदी कहते हैं कि-''किसी राष्ट्र के झण्डे और विधान से बढ़कर और उसके पास क्या होता है, जिस पर गर्व किया जा सके और इस गर्व की निरन्तर सुरक्षा की भावना से बढ़कर और क्या हो सकता है। जिसे हम राष्ट्रीयता कहें।''[4] इस प्रकार राष्ट्रीयता उस एकता का नाम है, जिसके कारण कोई व्यक्ति या समुदाय पारस्परिक एकता की भावना का अनुभव करता है और अपने राष्ट्र के प्रति उदात्त भक्ति-भावना का अनुभव करता है। किसी राष्ट्र का साहित्य उस राष्ट्र के गौरव, राष्ट्रभक्ति तथा राष्ट्र की आशाओं एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने वाला होता है। राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित साहित्य में राष्ट्रभक्ति एवं उसका प्रशस्तिगान, राष्ट्र को दीन-हीन दशा से बाहर निकालने जीवटता, दासता से मुक्ति की झटपटाहट, शोषणकारी

व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह, जागृति का स्वप्न, राष्ट्रीय ऐश्वर्य के प्रयत्न एवं देश-द्रोहियों के प्रति आक्रोश का भाव दिखाई पड़ता है।

गुप्त जी द्वारा विरचित 'भारत-भारती' का प्रकाशन वर्ष सन् 1912 ई0 माना जाता है। भारतवर्ष में यह समय दासता का था। भारत की दासता न केवल राजनीतिक थी बल्कि सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक भी थी, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीयों के मन में एक निराशा का भाव था। दासता से उत्पन्न जटिल परिस्थितियों को समझाते हुए डॉ. केशरीनाराण शुक्ल लिखते हैं कि-''उस समय का भारतवर्ष ऐसे उलझन में पड़ गया था कि हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ परस्पर संवाहिनी होने के कारण, यदि किसी एक तार पर उँगली रखें तो दूसरी के तार झंकृत हो उठते हैं। इनमें किन्हीं दो समस्याओं से उदासीन होकर एक को सुलझा लेना असंभव है। राष्ट्रीय भावना हमारे विचारों को स्वयं अन्य दो समस्याओं की ओर आकृष्ट कर देती है। सामाजिक समस्या हल करते समय आर्थिक कठिनाइयाँ हमारा ध्यान बरबस खींचती हैं और फिर उसे राजनीतिक दासता की और उन्मुख कर देती हैं।''[5] दिनकर भी राष्ट्र की जटिल समस्याओं पर विचार करते हुए लिखते हैं कि-''राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार समाज को न परिवर्तित करने से हम पर जो बोझ पड़ेगा उसे हम बर्दाश्त नही कर पाएँगें। उसके नीचे हम टूट जायेंगे।''[6]

इन जटिल परिस्थितियों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विरचित, राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित अमूल्य कृति भारत-भारती का प्रकाशन होता है। भारत-भरती तीन खण्डों में विभक्त है-अतीत खण्ड, वर्तमान खण्ड एवं भविष्यत खण्ड। इन तीन खण्डों के माध्यम से गुप्त जी ने 'हम कौन थे', 'क्या हो गये हैं' और 'क्या होंगे अभी' का सूक्ष्म विवेचन किया है। वास्तव में पूरी रचना की मूल संवेदना केवल दो पंक्तियों में व्यक्त की जा सकती है-

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।''[7]

गुप्त जी भारत-भारती के माध्यम से स्पष्ट मत व्यक्त करते हैं कि आज की हमारी दीन-हीन दशा सदैव से नहीं थी बल्कि भारत का अतीत अत्यन्त विकसित था-

''सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि, जो ऋषि-भूमि है वह कौन भारतवर्ष है।''[8]

गुप्त जी मानते हैं कि हमारे देश में सुख-समृद्वि की कमी कभी नहीं रही। भारत भूमि इतनी पवित्र रही है कि इसका गुणगान स्वर्गलोक में भी होता था। भारतीय इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इतिहासकार ऐसा मानते है कि भारत में प्राचीनकाल की सभ्यता विकसित अवस्था में थी। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत ने उन्नति की थी। प्राचीन वांङमय में आयुर्वेद, धनुर्वेद, चिकित्सा, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन और गणित इत्यादि सभी में भारत एक विकसित अवस्था को प्राप्त कर चुका था। गुप्त जी भारत-भारती में लिखते हैं कि-

''संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,
आचार की, व्यवहार की, विज्ञान की।''[9]

इसके प्रमाण हेतु गुप्त जी ने भारत-भारती में डॉ0 हण्टर का एक कथन भी उद्धृत किया है। प्राचीनकाल में भारतीय चिकित्साशास्त्र बहुत समृद्ध था। इस क्षेत्र में भारतीयों ने युनानियों से नही, वरन् युनानियों को भारतीयों को बहुत कुछ सिखलाया। भारत-भारती के माध्यम से गुप्त जी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को भी उभारना चाहते थें, इसलिए उन्होंने मिथकीय एवं पौराणिक चरित्रों को लेकर तत्कालीन जनमानस के समक्ष उदात्त मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। गुप्त जी आर्यो के अध्यात्म, त्याग, तपस्या, साधना, सादगी व दान जैसे मूल्यों को तत्कालीन जनता के समक्ष आदर्श रूप में प्रस्तुत किया-

''दे दी जिन्होने अस्थियाँ परमार्थ हित जानी जहाँ,
शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि से होते रहे दानी यहाँ।।''[10]

भारतीय नारियों के विषय में गुप्त जी लिखते हैं कि-

''निज स्वामियों के कार्य में सम भाग जो लेती न वे,
अनुराग पूर्वक योग जो उसमें सदा देती न वे ।
तो फिर कहाती किस तरह अर्द्धांङ्गिनी सुकुमारियाँ ,
तात्पर्य यह अनुरूप ही थीं नरवरों की नारियाँ ।।''[11]

अतीत खण्ड के अन्तर्गत गुप्त जी ने भारत के स्वर्णि्म अतीत की झाँकी प्रस्तुत की है। यह झाँकी रोमानियत से भरी पड़ी है। यहाँ इतिहास बोध वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष न होकर एकतरफा एवं मिथकीय है। यद्यपि अतीत का गौरवपूर्ण एवं अतिवादी वर्णन तत्कालीन जनमानस को उद्धेलित करने की क्षमता रखता है किन्तु भारत-भारती में गुप्त जी की दृष्टि 'आर्य केन्द्रित', 'हिन्दू केन्द्रित' एवं 'पुरूष केन्द्रित' है। भारत-भारती से न तो दक्षिण भारतीय द्रविण जुड़ पाते हैं और ही बौद्ध, मुस्लिम एवं जैन मतानुयायी। स्त्रियों के प्रति गुप्त जी की धारणा पारम्पिरिक है। वह स्त्रियों को एक 'सहज व्यक्ति' के रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाती।

जिस प्रकार भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिचन्द्र ने अपने नाटक 'भारत-दुर्दशा' के माध्यम से समकालीन अव्यवस्था के चित्र खींचे थे उसी प्रकार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कृति 'भारत-भारती' के माध्यम से राष्ट्र की दीन-हीन अवस्था का सजीव वर्णन किया है। गुप्त जी ने भारत-भारती के 'वर्तमान खण्ड' के अन्तर्गत साधुओं की पाखण्ड़ता, पंडितो की अज्ञानता, क्षत्रियों की विषयोन्मुखता, वैश्यों का लालच, अनमेल विवाह एवं नशेबाजी इत्यादि कुप्रथाओं को भारत की दुर्गति का कारण माना है। गुप्त जी कहते हैं-

''देखों जिधर अब बस उधर ही है उदासी छा रही,
काली निराशा की निशा सब ओर से है आ रही।''[12]

भारतीय इतिहास में 20वीं शताब्दी के कुछ प्रारम्भिक दशक चरम दासता के थे। इस समय तक अंग्रेजो ने भारत में एक बड़ा राज्य कायम कर लिया था और इसकी विशाल जनता का कई स्तरों पर शोषण कर रहे थे। गुप्त जी शोषित जनता की निराश चित्तवृत्ति को पहचानते थे इसीलिए वे बड़ी उम्मीद के साथ कहते हैं-

''संसार में किसका समय है एक सा रहता सदा।''[13]

उन्हें पूर्ण विश्वास है। कि यह उदासी एक दिन अवश्य दूर होगी क्योंकि सबका समय बराबर नही होता।

गुप्त जी ने वर्तमान समय में फैली उदासी का एक कारण बौद्ध एवं जैन धर्मो के उदय तथा उनका अपनी ही मूल परम्परा पर चोट करना एवं इस्लामी आक्रमण को माना है। इसके बावजूद गुप्त जी इस्लाम की केवल निन्दा नहीं करते। वे मुगल बादशाह अकबर की प्रशंसा भी करते हैं। इस्लामी एवं हिन्दू संस्कृति के भविष्य के प्रति गुप्त जी की दृष्टि समन्वयवादी एवं आधुनिक है-

''सप्रेम हिल-मिल कर चलो यात्रा सुखद होगी तभी,
पीछे हुआ सो हो गया, अब सामने देखो सभी।''[14]

गुप्त जी अंग्रेजों द्धारा किये जा रहे आर्थिक शोषण से परिचित थे। इस समय तक दादाभाई नौरोजी 'द पावर्टी ऑफ अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' नामक पुस्तक लिखकर राष्ट्रवादी अर्थशास्त्र को जन्म दे चुके थे। 1907 में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने भी 'सम्पति शास्त्र' नामक ग्रन्थ लिखकर अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे 'धन की निकासी' की ओर इशारा कर चुके थे। अत: मैथिलीशरण गुप्त भी अंग्रेजों के इस शोषण से परिचित थे। वे लिखते हैं-

''आती विदेशों से यहाँ सब वस्तुएँ व्यवहार की,
धन-धान्य जाता है यहाँ से, यह दशा व्यापार की।''[15]

'भारत-भारती में न केवल अतीत का गौरवगान एवं वर्तमान अव्यवस्था का सजीव चित्रण है बल्कि भविष्य के स्वप्न भी अंकित हैं। गुप्त जी समस्त देशवासियों का आह्वाहन करते हुए नवीन राष्ट्र-निर्माण उद्घोष करते हैं-

''अब तो उठो हे बन्धुओं निज देश की जय बोल दो,
बननें लगें सब वस्तुएँ कल-कारखाने खोल दो।''[16]

गुप्त जी मानते हैं कि बिना विज्ञान एवं तकनीकी के राष्ट्र-निर्माण सम्भव नहीं है। वे कहते हैं-

''व्यवसाय अपने व्यर्थ हैं अब नव्य-यन्त्रों के बिना,
परतंत्र हैं हम सब कहीं अब भव्य यंत्रों के बिना।''[17]

राष्ट्र-निर्माण में साहित्य की भूमिका बताते हुए गुप्त जी कहते हैं कि सिर्फ मनोरंजन ही साहित्य का उद्देश्य नहीं है बल्कि उसमें समाज के लिए कोई सीख भी होनी चाहिए-

''केवल मनोंजन न कवि का कर्म होना चाहिए उसमें,
उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए''।।[18]

राष्ट्रीय एकता के लिए गुप्त जी एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक मानते हैं -

''है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश की कोई नहीं,
हम निज विचार जान सकें, जिसमें परस्पर सब कहीं''[19]

संक्षेप में, भारत-भारती में जहाँ एक ओर राष्ट्र के अतीत का गौरवगान है वहीं दूसरी ओर वर्तमान की हीनावस्था का चित्रण भी, विदेशी शासन के विरूद्ध विद्रोह भावना है तो नवीन राष्ट्र के निर्माण की दृष्टि भी, एक तरफ नवजागरण के दर्शन होते हैं तो यह राष्ट्रीय समृद्धि का महाभियान भी है। निशिचत रूप से भारत-भारती पूर्व में लिखे गये राष्ट्रीय साहित्य की अपेक्षा नया राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। भारत-भारती में सम्पूर्ण भारतीय जनता को प्रेरित करने की शक्ति विद्यमान है लेकिन फिर भी भारत-भारती में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता का स्वरूप कहीं-कहीं एकांगी एवं अतिवादी दिखाई पड़ता है। गुप्त जी ने बार-बार 'आर्य' एवं 'हिन्दू' शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे भारत-भूमि के अन्तर्गत अन्य धर्म के लोग अपने को राष्ट्रीयता से जोड़ नहीं पाते। स्त्रियों के विषय में गुप्त जी की धारणा पारम्परिक दिखाई पड़ती है, जिसमें वह 'सहज व्यक्ति' न होकर अबला एवं पतिव्रता के रूप में प्रस्तुत होती हैं। अन्त में गुप्त जी ने भारत-भारती में दलितों की स्थिति को सूक्ष्मता से विश्लेषित नहीं करते। वे स्वाधीनता आन्दोलन

के विषय में कोई सूक्ष्म दृष्टि प्रस्तुत कर पाये। यदि वे तत्कालीन स्वाधीनता संघर्ष के विषय में कोई ठोंस दृष्टि प्रस्तुत कर पाते तो उनकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी अवधारणा अधिक मुकम्मल हो सकती थी।

संदर्भ सूची-

1. कैम्पटन्स पिक्चर इनसाइक्लोपीडिया, पृ0 15
2. प्रो. सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, आत्माराम एण्ड सन्स, प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सन् 1957 ई., पृष्ठ 229।
3. शर्मा, डॉ0 विनयमोहन, साहित्य शोध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 29।
4. चतुर्वेदी, माखनलाल, राष्ट्रीयता की आवश्यकता, हिन्दुस्तान, 8 अक्टूबर 1961।
5. शुक्ल, डॉ0 केसरी नारायण, आधुनिक हिन्दी काव्यधारा, सरस्वती मंदिर प्रकाशन, बनारस, प्रथम संस्करण, यंवत् 2007 विक्रम, पृ0 15।
6. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय (पेपरबैक्स), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, एम. जी. मार्ग, इलाहाबाद-21001, तीसरा संस्करण, सन् 2010 ई., भूमिका, पृ0 09
7. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, अतीत खण्ड, प्रथम संस्करण, पृ0 04
8. वही, पृ0 04
9. वही, पृ0 16
10. वही, पृ0 07
11. वही, पृ0 11
12. वही, पृ0 87
13. वही, पृ0 01
14. वही, वर्तमान खण्ड, पृ0 124
15. वही, पृ0 104
16. वही, भविष्यत् खण्ड, पृ0 168
17. वही, पृ0 160
18. वही, पृ0 171
19. वही, पृ0 175

मुर्दहियाः दलित जीवन का दस्तावेज

रामजीत प्रसाद

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे. के. कॉलेज, पुरुलिया (पश्चिम बंगाल)

आत्मकथा हिंदी साहित्य के संस्मरण, जीवनी, कथा साहित्य से भिन्न एक स्वतंत्र और महत्वपूर्ण गद्य - विधा है। संस्मरण अपने जीवन से सम्बद्ध एक विशिष्ट स्थिति या प्रसंग तक सीमित होता है। कथा - कहानी में कल्पित पात्रों को आधार बनाया जाता है। लेकिन आत्मकथा स्वयं अपने बारे में लिखी जाती है, इसलिए इसमें जीवनी और कथा - साहित्य की भाँति अनुमान और कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं होता। अतः आत्मकथा स्वयं अपने बारे में ईमानदारी से लिखा गया एक प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है। स्वाधिनता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ काफी महत्वपूर्ण है। हिंदी में जो थोड़ी बहुत आत्मकथाएँ लिखी गई हैं, उनमें अपने व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने का प्रयास अधिक दिखाई देता है। हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा इसका प्रमाण है। लेकिन मराठी के दलित साहित्यकार दया पवार की आत्मकथा 'बलुतं' व्यक्तित्व प्रकाशन की कड़ी को तोड़ती है। इस दृष्टि से हिंदी के दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने - अपने पिंजरे' एक सार्थक प्रयास माना जा सकता है। इस श्रृंखला की नई कड़ी के रुप में ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई आत्मकथा 'जूठन', सूरजपाल चौहान की दलित जीवन से सम्बद्ध आत्मकथा 'तिरस्कृत' और तुलसी राम कृत 'मुर्दहिया' आत्मकथा विशेष रुप से उल्लेखनीय है। 1990 ई. के बाद हाशिए के जीवन का साहित्य की मुख्य धारा में प्रवेश हुआ और पहली बार हिंदी साहित्य में स्त्री, दलित, और आदिवासी अस्मिताओं की अभिव्यक्ति होने लगी। धीरे - धीरे अस्मितामूलक लेखन को केंद्रीय विमर्श की जगह मिल गई। दलित अस्मिता की सबसे ज्यादा अभिव्यक्ति साहित्य की आत्मकथा विधा में हुई है। दलित रचनाकारों ने अपने जीवन के भोगे हुए अनुभव को व्यक्त करने के लिए आत्मकथा विधा को उपयुक्त पाया और इसी विधा का प्रधानतः चुनाव किया। वे आत्मकथाओं में अपने जीवन संघर्षों को प्रस्तुत करने लगे। इसी कड़ी में मुर्दहिया आत्मकथा का दलित विमर्श को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय भूमिका है। प्रमुख दलित चिंतक डॉ. तुलसी राम का आत्मकथाकार के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. तुलसी राम दलित विमर्श के सशक्त हस्ताक्षर है। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में दलित समाज के जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया और अपनी लेखन के माध्यम से समाज का मानसिक परिवर्तन करने का प्रयास किया किया है। वे एक प्रतिभाशाली एवं सृजनशील साहित्यकार के साथ - साथ गम्भीर चिंतक व विचारक भी है। उन्होंने अपने लेखन से दलित विमर्श को न केवल बल दिया है, बल्कि एक नई चेतना, ऊर्जा और उत्कर्ष से भर दिया है। मुर्दहिया आत्मकथा अपने समय और समाज के विविध संदर्भो को समेटे हुए है। इसमें विशेषतः दलित जीवन के सुख - दुख, आशा - आकांक्षा, शोषण - संघर्ष, यथार्थ - सपने आदि की संवेदनशील अभिव्यक्ति हुई है। इसमें दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक जीवन की बहुमुखी तस्वीर उभरती है। इस आत्मकथा की भूमिका में लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि दलित जीवन की संघर्ष गाथा प्रस्तुत करना ही मुर्दहिया का मुख्य प्रयोजन है। आत्मकथाकार डॉ. तुलसी राम ने इस आत्मकथा की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा है ध्- " मुर्दहिया हमारे गाँव धरमपुर (आजमगढ़) की बहुद्देशीय कर्मस्थली थी। चरवाही से लेकर हरवाही तक सारे रास्ते वही से गुजरते थे। इतना ही नहीं, स्कूल हो या दुकान, बाजार हो या मंदिर, यहाँ तक कि मजदूरी के लिए कलकत्ता वाली रेलगाड़ी पकड़ना हो, तो भी मुर्दहिया से ही गुजरना पड़ता है। हमारे गाँव की "जिओ पोलिटिक्स" यानी 'भूध्ष्ठ- राजनीति' में दलितों के लिए मुर्दहिया एक सामरिक केंद्र जैसी थी। जीवन से लेकर मरण तक सारी गतिविधियां मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे रोचक तथ्य यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नहीं करती थी। वह दोनों की मुक्तिदाता थी। विशेष रुप से मरे हुए पशुओं के माँसपिंड से जुझते सैकड़ों गिद्धों के साथ कुत्ते और सियार मुर्दहिया को एक कला स्थली के रुप में बदल देते थे। रात के समय इन्हीं सियारों की हुआं - हुआं वाली आवाज उसकी निर्जनता को भंग कर देती है। हमारी दलित बस्ती के अनगिनत दलित हजारों दुख - दर्द अपने अंदर लिए मुर्दहिया में दफन हो गये थे। यदि उनमें से किसी की भी आत्मकथा लिखी जाती तो उसका शीर्षक 'मुर्दहिया' होता। मुर्दहिया सही मायनों में हमारी दलित बस्ती की जिंदगी थी।"[1] स्पष्ट है कि इस आत्मकथा में दलित जीवन ही केंद्र में है। भले ही यह किसी व्यक्ति विशेष के जीवन की घटनाओं को केंद्र बना कर लिखी गई है, बावजूद इसके वह समस्त दलित जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। यह केवल लेखक की आत्मकथा होते हुए भी समूचे दलित समाज की सामूहिकता को अपने में समेटें हुए है। डॉ तुलसी राम द्वारा रचित मुर्दहिया आत्मकथा कई अर्थों भिन्न और विशेष है। इस आत्मकथा में लेखक ने सिर्फ दलित पीड़ा को ही रेखांकित नही किया है बल्कि अपने गाँव के माध्यम से उस समय के पूरे भारतवर्ष के गाँवों के लोक जीवन को भी चित्रित

किया है। तुलसी राम जी कहते है - 'इसमें मेरा दर्द है, मेरे समाज का दर्द है। मेरा पूरा जीवन ही मुर्दहिया है। मुर्दहिया यानी गाँव का वह कोना जहाँ मुर्दे फेके जाते है, मुर्दहिया यानी गाँव का वह हिस्सा जहाँ मरे हुए जानवरों के चमड़े उतारे जाते है। 'इस आत्मकथा में स्त्री जीवन का लेखक ने मार्मिक चित्रण किया है। एक ओर जहाँ उत्पीड़ित स्त्री जीवन के चित्र मिलते है, वही दूसरी ओर विद्रोही स्त्री के दर्शन भी होते है। पहला संदर्भ यह है कि गाँव एक लड़की बारात में दूल्हा बनकर आये नचनिया के साथ भाग जाती है। दूसरी लड़की वह है जिसकी शादी उस नचनिया से होने वाली थी। पंचायत में यह फैसला होता है कि इस लड़की की शादी किसी और के साथ कर दी जाएगी। यह संदर्भ स्त्री के दो रुपों को प्रस्तुत करता है - पारंपरिक और आधुनिक। पारंपरिक रुप में स्त्री विभिन्न सामाजिक बंधनों में बंधी हुई है और परंपरा का निर्वहन कर रही है। आधुनिक रुप में वह सामाजिक बंधनों को तोड़ने का काम कर रही है। प्रथम अध्याय में अपनी 'भूतही पारिवारिक पृष्ठभूमी' की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार उनके दादा की मृत्यु के पीछे भूत के होने का अंधविश्वास फैल गया था और उसके बाद उनके घर में भूत की पूजा होने लगी थी। लेखक ने समाजशास्त्री की तरह लोक जीवन में व्याप्त अंधविश्वास को उजागर किया है। लेखक ने अपने घर को अजायबघर की संज्ञा देते हुए कहा है कि - "इस तरह हमारा परिवार संयुक्त रुप से वृहद होने के साथ -साथ वास्तव में एक अजायबघर था, जिसमें भूत - प्रेत, देवी - देवता, सम्पन्ता - विपन्नता, शकुन - अपशकुन, मान - अपमान, न्याय - अन्याय, सत्य- असत्य, ईष्या - द्वेष, सुख -दुख आदि सब कुछ था, किंतु शिक्षा कभी नहीं थी।"[2] शिक्षा के अभाव में समाज कैसे अंधविश्वास, मुर्खता, शकुन - अपशकुन के जाल में फसता जाता है लेखक ने उजागर कर समाज के खोखलेपन की ओर प्रहार किया है। यह कृति हिन्दू व्यवस्था की जड़ता एवं विद्रूपता के तह तक ले जाती है। भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में मुर्दहिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मुर्दहिया जैसी रचनाएँ विषमतापरक समाज को समता में बदलने की पृष्ठभूमि तैयार कर रही हैं। हिन्दू समाज में व्याप्त हिंसा, घृणा, शोषण एवं वर्चस्व को मुर्दहिया बेपर्दा करती है; साथ ही दलित वर्ग की जटिलताओं एवं विसंगतियों का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी उद्घाटित करती है। यह आत्मकथा दलित जीवन संघर्ष की सिर्फ वेदनामयी गाथा ही नहीं है, अपितु हिन्दू जाति-व्यवस्था की जड़ता, अन्धविश्ष्वास, कर्मकाण्ड, धर्मान्धता तथा तमाम विभेदकारी शोषणयुक्त विषम परिस्थितियों के घेरे को तोड़कर उगते सूरज के मानिन्द बालक तुलसीराम की संघर्ष-यात्रा है। अपमान, घृणा, उपेक्षा और विपन्न्ता की वेदना से गुजरते दलित वर्ग के बालक की मनोदशाओं की सच्च्ची कहानी है मुर्दहिया। अपने ही देश में विभिन्न्न जातियों में बँटे हुए समाज की खाइयाँ और मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरियों का चित्रण करती मुर्दहिया जन्म से लेकर मृत्यु तक के अपमानबोध की मार्मिक कथा है। मुर्दहिया हिन्दू धर्म और संस्कृति की विद्रूपता और क्रूरता का दस्तावेजीकरण है। जाति-पाँति, ऊँच-नीच, घृणा और द्वेष से गुँथा हुआ श्रेणीबद्ध समाज कौन-से तथा किस प्रकार का राष्ट्र निर्मित करेगा? यह प्रश्न्न आत्मकथा में आद्यन्त बना रहता है। आत्मकथा में लेखक की जाति की अवस्थिति का कारण सहित वर्णन है, "इन्हीं सीवानों से घिरे हमारे गाँव के सबसे उत्तर में अहीर बहुल बस्ती थी, जिसमें एक घर कुम्हार, एक घर नोनिया, एक घर गड़ेरिया तथा एक घर गोंड़ (भड़भूजा) का था। बीच में बभनौटी (ब्राह्मण टोला) तथा तमाम गाँव की परम्परा के अनुसार सबसे दक्षिण में हमारी दलित बस्ती। एक हिन्दू अन्धविश्ष्वास के अनुसार किसी गाँव में दक्षिण दिशा से ही कोई आपदा, बीमारी या महामारी आती है इसलिए हमेशा गाँवों के दक्षिण में दलितों को बसाया जाता है।"[3] जाति आधारित ऐसी व्यवस्था जहां मनुष्य की पहली पहचान जाति हो, इस विभेद को मुर्दहिया में अंकित करते हुए लेखक ने दलित जीवन की त्रासदी को विस्तार से लिखा है। खेत-मजदूरी पर आश्रित दलित जीवन की विभीषिका और शोषणकारी परम्परा को बड़े निर्विकार भाव से यथार्थवादी चित्रण किया गया है। डॉ.तुलसीराम लिखते हैं कि, "मेरे दादा-परदादा गाँव के ब्राह्मण जमीन्दारों के खेतों पर बँधुआ मजदूर थे। उन जमीन्दारों ने ही कुछ खेत उन्हें दे दिया था। गाँव के अन्य दलित भी उन्हीं जमीन्दारों के यहाँ हरवाही (हल चलाने का काम) करते थे। यह हरवाही पुश्त-दर-पुश्तचली आ रही थी।" जजमानी प्रथा के भयावह स्वरूप का विस्तृत चित्रण करते हुए डॉ.तुलसीराम ने अकाल के दिनों में भुखमरी के शिकार, वंचित समुदायों की बेबसी को दर्शाया है। हिन्दू समाज में व्याप्त अन्धविश्ष्वास कितना अवैज्ञानिक और मनुष्य विरोधी है - मुर्दहिया में विस्तार से वर्णित है। अपशकुन और अनादर को डॉ.तुलसीराम ने हिन्दू व्यवस्था की जड़ता के रूप में रेखांकित किया है, जिसके शिकार वे स्वयं रहे हैं। आत्मकथाकार ने अपने साथ उन चारो को अपनी आत्मीयता दी है, जिन्हें अपशकुन का पर्याय मान लिया गया था। उनके गाँव में स्वयं उनके अलावा निर्वंश जंगू पाण्डे, विधवा पण्डिताइन, पोखरे वाले उल्लू, खो-खो करने वाली मरखउकी चिड़िया को देख-सुनकर गाँव वालों की रूह काँप जाती थी। लेखक में मनुष्य और प्रकृति की अनुभूति का यह तादात्म्य विशिष्ट है, जिसे रेखांकित किया जाना चाहिए।

बरसात के समय कड़की के दिनों में मैदानी चूहों का माँस और बरसाती मछलियाँ खाकर तथा चूहों के बिलों से गेहूँ की बालियों से अनाज निकालना दलित जीवन की विभीषिका को प्रस्तुत करता है। बरसात के दिनों में झोपड़ियों और खपरैल के घरों से पानी टपकने के बीच कई-कई रातें ऐसे ही जागते गुजार देना दलितों की गरीबी का मुर्दहिया मार्मिक चित्रण करती है। डॉ.तुलसीराम ने अपने संयुक्त परिवार की विवशता का चित्रण करते हुए लिखा है कि, "हमारा संयुक्त परिवार बहुत बड़ा था, किन्तु घर में एक भी रजाई या कम्बल नहीं था। वैसे भी घर में कपड़ों की कमी हमेशा रहती थी। मेरे पिताजी पूरी धोती कभी नहीं पहनते। वे एक ही धोती के दो टुकड़े करके बारी-बारी से पहनते। ओढ़ने का कोई

इन्तजाम न होने से गाँव के लगभग सारे दलित रात भर ठिठुरते रहते।"[4] ठिठुरन भरे जीवन जीने को अभिशप्त दलितों की पीड़ा की सीमा का कोई अन्त नहीं दिखाई देता। गरीबी और भुखमरी के बीच ब्राह्मण साहूकारी पहली बार किसी आत्मकथा में पढ़ने को मिलता है। एक सेर अनाज के बदले सवा सेर अनाज का भुगतान ब्राह्मण साहूकारी का नमूना थी। धीरे-धीरे चक्रवृद्धि ब्याज में बदलते जाना और ब्राह्मण मुनाफाखोरी के खिलाफ बगावत तथा तनातनी के माहौल का 'कूर की लड़ाई' में तब्दील हो जाना, अंकुरित होती दलित चेतना की बानगी है, "जब भी लाठी डंडे की नौबत आती गाँव के सारे दलित पंचायत के लिए हमारे घर चौधरी चाचा के यहाँ आते। उसी कुएँ के चबूतरे पर पंचायत होती और चौधरी चाचा सबकी राय से 'कूर' बाँध देते थे। 'कूर' बाँधने का मतलब था किसी निर्धारित समय तथा स्थान पर जमीन पर खपरे से एक खूब लम्बी रेखा खींच देना। उस रेखा के दोनों तरफ काफी दूर पर दोनों परस्पर विरोधी पक्ष खड़े होते। रेखा के इस पार खड़े दलित, उस पार खड़े ब्राह्मणों को चुनौती देते कि यदि हिम्मत हो तो रेखा पार करके दिखावें। यदि ब्राह्मण रेखा पार कर लेते, तो तुरन्त दलितों से लड़ाई शुरू हो जाती। ब्राह्मण हमेशा भाले और बल्लम से लैस रहते थे,किन्तु दलित सिर्फ लाठियाँ रखते। ऐसी कूर बंधी लड़ाइयों में दलित महिलाओं की वीरता देखते ही बनती थी।" मुर्दहिया में शिक्षा और शिक्षण-तन्त्र की जिस विद्रूपता का वर्णन मिलता है वह प्रगति के सारे दावों को खोखला साबित करता है। अध्यापक मुंशीराम और विशेषकर सूरतलाल द्वारा दलित बच्च्चों को बात-बात पर स्कूल में 'चमरकिट' कहकर अपमानित करना बालमन पर स्थायी चोट करता है। यह स्थायी घाव बाल मनोग्रन्थि का शिकार बनाता है, जिससे बहुत से दलित बच्चे स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। बाल्यावस्था की इस मानसिक यातना से गुजरते हुए डॉ.तुलसीराम का सफर कितना पीड़ादायी रहा होगा, इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है। डॉ. तुलसीराम प्राइमरी पाठशाला में मौजूद भ्रष्टाचार को शब्दबद्ध करते हैं, "कक्षा दो में जाने के लिए मुंशी जी ने हर बच्चे से दो रुपया 'पसकराई' यानी पास कराने का घूस लिया। यह दो रुपया मुझे बड़ी मुश्किल से घर से प्राप्त हुआ। यह 'पसकराई' सभी अध्यापक लेते थे और जो बच्च्चा नहीं देता उसे फेल कर दिया जाता। आत्मकथाकार का स्कूली परिवेश छुआछूत, अपमान और घृणा से भरा हुआ था। उसका एक चित्र खींचते हुए डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआं छू लिया। मैं बहुत डर गया था। उस दिन मुंशी जी रुक-रुक कर गालियाँ देते रहे। इसके बाद मैं कभी पानी पिलाने के लिए कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।"[5] इस घटना से पहले डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी। कभी-कभी तो हम चुपके से पोखरे पर चले जाते; जिसका पानी गहन जलकुम्भियों से ढका रहता था। हम जलकुम्भियों को हटाकर उसका पानी पीते।" डॉ. तुलसीराम मुर्दहिया के माध्यम से एक भेदभाव-मुक्त समाज निर्माण के लिए सभी को प्रेरित करते हैं। इस आत्मकथा में राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, धर्म, संस्कृति, साहित्य और कला का प्रसंगवश विशद वर्णन और बुद्धमय भारत की आकांक्षा की अनुगूँज व्याप्त है। यह अनुगूँज सामाजिक परिवर्तन और समतापरक भारत के सपने की अनुगूँज है। जातिविहीन, अहिंसापरक, प्रेम और मैत्रीपूर्ण समाज की स्थापना ही डॉ. तुलसीराम जी का सपना रहा है। उन्होंने साहित्य की विधा में अपनी कलम चलाकर दलित विमर्श का सशक्तीकरण किया है। मनुष्य के विचारों में परिवर्तन लाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे उच्च शिक्षा विभूषित थे। उन्होंने स्वीकार किया कि शिक्षा से ही उनकी विचारधारा में बदलाव आया है। स्पष्ट है कि तुलसी राम में इस वैचारिक प्रौढ़ता का विकास शिक्षा की बदौलत हुआ है। शिक्षा से मनुष्य में विवेक जागृत होता है। प्रतिरोध के मूल में भी विवेक काम करता है, जो अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की समझ देता है। तमाम सामाजिक-आर्थिक विषमताओं एवं जटिलताओं की सच्च्चाइयों से गुँथी हुई यह आत्मकथा समता, मैत्री, प्रेम और करुणा का मानस रचती है। ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा पर आधारित दलित साहित्य के मुख्य सरोकारों से यह कृति इन्हीं सन्दर्भों से जुड़ जाती है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. राम तुलसी, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2010, पृष्ठ - 5
2. वही, पृष्ठ - 21
3. वही, पृष्ठ - 41
4. वही, पृष्ठ - 34
5. वही, पृष्ठ - 55
6. सिंह एन, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2000
7. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-, संस्करण-2010

आषाढ़ का एक दिन नाटक में मल्लिका का चरित्रगत विश्लेषण

डॉ० सविता

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सार: 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मल्लिका का चरित्रगत विश्लेषण चित्रण हिन्दी साहित्य में नाटककार मोहन राकेश का महत्त्वपूर्ण नाटक है। उन्होंने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की विषय वस्तु को बताया है। वस्तुत: नाटककार मोहन राकेश ने प्रध ान पात्र स्त्री मल्लिका के जीवन चरित्र की स्थिति को समझा है। 'आषाढ़ का एक दिन' की प्रधान पात्र मल्लिका है। इसी के तहत नाटक का आरम्भ होता है और अन्त भी वहीं होता है। वह अपनी चरित्रगत विशेषताओं के साथ ही, स्वयं नाटककार मोहन राकेश के अनुसार मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है, जो अपने व्यक्तित्व में झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती है। इसलिए मल्लिका प्रेयसी और प्रेरणा के अलावा ये आस्था की प्रतीक भी है।[1]

प्रस्तावना: वस्तुत: मल्लिका ग्राम-प्रान्तर की कन्या है जिससे उसमें चंचलता और अल्हड़ता स्वभावत: आ गयी है। वास्तव में प्रकृति की गोद में पली मल्लिका नियमित रुप से प्रकृति विहार करते रहने से प्रकृति की भाँति ही चंचल हो चुकी है। वह अपने प्रिय कालिदास के साथ आषाढ़ के प्रथम दिन जब प्रकृति-विहार करने गई तो वहाँ वर्षा में भीग जाने पर, घर वापिस आते ही वह अपनी चंचलता का परिचय देते हुए कहती है। आज की वर्षा से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा है। जिसका वर्णन वह बड़े उल्लास के साथ करती है- ''माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। मैं जीवन में पहली बार समझ पाई कि क्यों कोई पर्वत-शिखरों को सहलाती हुई मेघ-मालाओं में खो जाता, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह रहता है।"[2] यहाँ प्रकृति का यथार्थ सत्य प्रकट हो रहा है। जिसमें प्रत्येक मानव खो जाता है। मल्लिका का यह दुर्भाग्य उसके जीवन का अभिशाप बन गया कि वह पितृहीना थी। क्योंकि उसे माँ अम्बिका का आश्रय ही मिला था और उसके पिता की मृत्यु उसके बाल्यकाल में हो गयी थी। घर में माँ के अलावा कोई और नहीं था। इसलिए माँ-बेटी दोनों का भरण-पोषण दायित्व दोनों को स्वयं निभाती थी। इसलिए माँ की ममता ने उसे सम्पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। अम्बिका यद्यपि उस पर अंकुश रखने का प्रयास करती है। अम्बिका के बुढ़ापे का एक-मात्र सहारा होने के कारण उस पर पर्याप्त दबाव नहीं डाल पाती है। मल्लिका के घर में पिता अथवा भाई के नाम से कोई पुरुष होता तब मल्लिका को वह दुर्दिन नहीं देखने पड़ते जिनके उसे दु:ख देखने पड़े और उसे भोगना भी पड़ा है। समाज में ऐसी विषय परिस्थितियों के बीच स्त्री पर कोई न कोई कीचड़ उछालने वाले पैदा हो जाते हैं जबकि सम्भालने वाले बहुत कम होते हैं। जब समझाने वाले कोई नहीं मिलते तो वह निरंकुश हो जाते हैं। ऐसी स्थिति के सन्दर्भ में यह कथन देखिए- ''नारी सुलभ कोमलता एवं भावुकता को उभारता है। साथ ही पुरुष साहचर्य की कल्पना से रोमान्चित स्त्रियोचित भावोद्रेक को भी प्रक्षेपित करता है।"[3]

जब अम्बिका मल्लिका को समझाती है तब मल्लिका हठ करती है। जब अम्बिका कालिदास की भर्त्सना करती है तब मल्लिका को अच्छा नहीं लगता है। इसीलिए उसकी मुखमुद्रा आवेशपूर्ण बन जाती है। जब उसकी बातों का अम्बिका कोई उत्तर नहीं देती तब वह खीझ उठती है और पूछती है कि वह उसकी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती और चुपचाप क्यों है ? उसके हठीले स्वभाव को उसके इन शब्दों में देखिए-''कुछ भी कहो, मुझे डाँटों कि भीगकर क्यों आई हूँ ? या कहो कि तुम थक गई हो, इसीलिए शेष धान में फटक दूँ। या कहो कि घर में तुम अकेली थीं, इसीलिए तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा था। - - - - मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगी। मेरे घर में रहते भी तुम अकेली होती हो। - - - - ऐसे करोगी तो मैं तुमसे बात नहीं करुँगी।"[4] वह अपने हठ का प्रदर्शन वह उस समय भी करती है जब अम्बिका उसके विवाह की चर्चा छेड़ती है तब वह आजीवन विवाह न करने का हठ करती है। उसके इसी हठीले स्वभाव के कारण अम्बिका उसके लिए वर खोजने का प्रयास भी नहीं करती है। एक दिन उसे कुँआरी छोड़ कर आधिका माँ मर जाती है। इस तरह मल्लिका अरेसी रह जाती है।

वास्तव में देखा जाये तो मल्लिका का चरित्र नितान्त कोमल और भावुक है। कालिदास के साथ जब वह प्रकृति-विहार करने गयी थी तब आकाश में छाये बादलों को देखकर उसका रोम-रोम खिल उठा था। उसका वर्णन करते हुए मल्लिका अपनी कोमलता और भावुकता को अम्बिका के सामने स्पष्ट कहती है :-

''मुझे भीगने का तनिक दु:ख नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती। चारों ओर धुँआरे बादल घिर आये थे। मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडण्डी पर नीचे-नीचे उतरती गयी। एक बार मेरा दुपट्टा भी हवा ने उड़ा दिया। फिर बूँदे पड़ने लगीं।"[5] मल्लिका बड़ी भावुक एवं कोमल हृदय की है। ऐसी स्थिति फिर दिखाई देती है जब कालिदास आहत मृग-शावक को लेकर उसके घर आता है और उससे दूध लाने को कहता है। मल्लिका का सम्पूर्ण जीवन ही कोमल कल्पनाओं और भावुकता का भरा हुआ जीवन है। मल्लिका कालिदास के प्रति अपने प्रेम के लिए 'भावना में भावना का वरण' जैसे शब्दों को कहती हुई प्रतीत होती है-"मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।"

वह जिस आत्माकायी व्यक्ति से प्रेम करती है, जब वह उसकी उपेक्षा करने लगता है तब भी वह उस पर दोषारोपण न करके परिस्थितियों को ही दोष देती है।

जब हारे हुए खिलाड़ी की तरह कालिदास पुन: वापस लौटता है तब वह अपने कठोर सत्य को भुलाकर कालिदास के सामने पुन: समर्पित हो जाती है। मल्लिका अपनी इसी कोमलता, कल्पना, जीविता एवं भावुकता के कारण ही अन्तत: वह यथार्थ के थपेड़े-खाती टूट जाती है और उसके जीवन में दु:ख ही दु:ख नजर आता है। ऐसी दर्द भी स्थिति के दानध में देखिए- "माँ ! मेरी जननी ! तू भी नहीं थी।"[6]

मल्लिका स्वाभिमानिनी भी है। क्योंकि वह सभी का विश्वास कर लेती है और निष्पाप है। कालिदास से उसके प्रणय-सम्बन्धों को लेकर समाज में चर्चा फैल गयी है, अत: अम्बिका से जब उसे पता चलता है तो उसका स्वाभिमान जाग्रत हो जाता है। जब अम्बिका से उसे यह ज्ञात होता है जिस व्यक्ति को अम्बिका ने मल्लिका के सम्बन्ध हेतु भेजा था, उन लोगों ने कह दिया कि वे मल्लिका और कालिदास के सम्बन्धों के कारण रिश्ता स्वीकार नहीं करते, तब मल्लिका का आहत स्वाभिमान पुन: जाग्रत हो उठता है। वह अपनी माँ से कहती है-''क्या कहते हैं? क्या अधि कार है उन्हें कुछ भी कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है? इतना ही नहीं बल्कि मल्लिका के स्वाभिमानी व्यक्तित्त्व का पता पुन: उस समय मिलता है जब कालिदास की राजमहिषी प्रियंगुमंजरी उसके घर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था को देखकर उसे सहायता देने की बात कहती है और मल्लिका प्रियंगु की सहायता को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर देती है। अत: अपने आत्मसम्मान के लिए वह सावधान है। पुन: प्रियंगु जब उसके सामने यह प्रस्ताव रखती है कि वह किसी भी राजपुरुष को यदि चाहे तो प्रियंगु उससे मल्लिका का विवाह करा देगी, तब ऐसी स्थिति उसकी हो जाती है। वह केवल प्रियंगु से इतना ही कहती है कि- "देवि ! इस विषय की चर्चा छोड़ दीजिए।" इतना कहते ही उसका गला रुँध जाता है और वह आवेश में अपना होंठ काट लेती है। ऐसी स्थिति में उसकी आत्मा उसे झकझोर देती है।

मल्लिका अहिंसा और करुणा की प्रतिमूर्ति भी है। कालिदास जब दन्तुल द्वारा आहत हरिणशावक को उपचार के लिए मल्लिका के घर की ओर लाता है तो मार्ग में मल्लिका के सम्बन्ध में वह कहता है कि मल्लिका के हृदय में मातृ-करुणा और अहिंसा कितने उज्जवलयमान रूप में अवस्थित है। जब मल्लिका घायल शावक को कालिदास के अंक से लगा देखती है तब उसका हृदय करुणा से भर उठता है- ''यह आहत हरिणशावक ? ..... यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया? क्या दक्षिण की तरह यहाँ भी .....?" और इसके उपरान्त वह उस घायल हरिणशावक को दुग्धपान कराती है। उसी समय दन्तुल को वह फटकारती हुई कहती है-"ठहरो राजपुरुष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, कालिदास के लिए संवेदना का। कालिदास नि:शस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।"[7] यहाँ पर मल्लिका जीवहत्या को जघन्य अपराध पाप मानती है और इस अपराध को रोकने के लिए वह दन्तुल के सामने तन कर खड़ी हो जाती है। वह उसे एक अपराधी मानती है।

वह निश्छल, निष्पाप, नि:स्वार्थ, अनन्य और एकनिष्ठ प्रेमिका है। वह कालिदास से बहुत गूढ़ प्रेम करती है और उसके प्रेम में ऐसी डूबी हुई है कि उसे न तो लोकापवाद की चिन्ता है और न उसे अपनी माँ अम्बिका की नाराजगी की चिन्ता है। जब कोई उससे यह कहती है कि कालिदास को लेकर मल्लिका लोकापवाद बन चुकी है तब मल्लिका यह कहती है कि वह अपवाद के सम्बन्ध में जानती है। वह केवल अपनी भावना से प्रेम करती है जो पवित्र, अनश्वर और कोमल है। अत: उसे सामाजिक अपवाद की चिन्ता नहीं है और कालिदास के प्रति उसका प्रेम सात्विक और उदात्त है। इसलिए उसे समाज की भी कोई चिन्ता नहीं है। इसलिए मल्लिका का यहाँ उदात्त प्रेम उसे एक असाधारण आदर्श भारतीय ललना सिद्ध करता है। जब विलोम कालिदास के उज्जयिनी प्रस्थान से पहले कहता है कि कालिदास मल्लिका से विवाह क्यों नहीं कर लेता तब वह उसे प्रताड़ित करती है। ऐसा ही अपनी माँ अम्बिका के मुख से सुनकर वह उसे उत्तर देती है- ''अब तक के साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में कालिदास विवाह की कल्पना ही कैसे कर सकते थे। माँ आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता है, आगे भी बीत जायेगा। आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती।"[8] कैसी निश्छलता और त्याग भावना है। जब कालिदास उज्जयिनी जाकर वहीं का हो जाता है और उसने राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लिया तथा एक दिन ग्रामीण निक्षेप कालिदास की आलोचना करते हुए कहता है कि कालिदास उज्जयिनी जाकर वीरांगनाओं के साहचर्य में रहता

है। उसने राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से शादी कर ली है, तब मल्लिका उसका उत्तर देती है कि- "उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे आसाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था।" वह कालिदास के सम्बन्ध में कोई भी लांच्छना सुनने को तैयार नहीं है। उसका प्रेमी उसे छोड़ गया तो क्या हुआ? उसका प्रेम तो अनश्वर-अमर है। जब भी कोई व्यक्ति उसके प्रेमी पर आक्षेप करता है। वह उल्टे उसी पर आरोप लगाने लगती है। जब कालिदास ग्राम-प्रान्तर में आकर भी उससे मिलकर नहीं जाता तो वह रोने लगती है। ऐसी स्थिति में अम्बिका उसे समझाती हुई कहती है कि वह इतना सब कुछ होने पर भी रो क्यों रही है, तब मल्लिका गुस्से में कह उठती है- ''उनके सम्बन्ध में कुछ मत कहो, कुछ मत कहो ....।" ऐसी मानसिक अवस्था के बीच एक स्त्री इससे अधिक क्या कर सकती है? क्या स्त्री-पुरुष के बीच काम सम्बन्ध ही सब कुछ है? ''-क्या स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, काम सम्बन्धों तक ही जीवन रचना की परिणति है।"[9]

निष्कर्ष: मल्लिका वास्तव में कालिदास की एकान्त प्रेमिका ही नहीं बल्कि उसकी प्रेरणा भी है। क्योंकि उसकी प्रेरणा से ही कालिदास महान कवि बन जाता है। कालिदास उज्जयिनी जाकर अपनी प्रतिभा बल से एक दिन राजकवि बन जाता है और राजसम्मान पाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पृष्ठ संख्या - 17
2. डॉ. लव कुमार - हिन्दी नाटक के बदलते तेवर - पृष्ठ संख्या - 160
3. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश - पृष्ठ संख्या - 44
4. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश - पृष्ठ संख्या - 57
5. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश - पृष्ठ संख्या - 80
6. सम्पादक - डॉ. रमेश गौतम - हिन्दी नाटक : नई परख - पृष्ठ संख्या - 143
7. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पृष्ठ संख्या - 88
8. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पृष्ठ संख्या - 100
9. सम्पादक - डॉ. नरेन्द्र मोहन - समकालीन हिन्दी नाटक और रंग मंच - पृष्ठ संख्या - 87

साइबर सुरक्षा और राजनीति

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय जमुना प्रसाद वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

डिजिटल युग में साइबर सुरक्षा और राजनीति का आपसी संबंध अत्यंत गहरा और जटिल हो गया है। आधुनिक राजनीति अब केवल भौतिक सीमाओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह साइबर स्पेस में भी सक्रिय रूप से संचालित हो रही है। सरकारें, राजनीतिक दल, और गैर-राज्य अभिनेता सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग नीति निर्माण, जनमत निर्माण, चुनाव प्रबंधन और कूटनीतिक रणनीतियों के लिए कर रहे हैं। ऐसे में साइबर सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अनिवार्य घटक बन चुकी है। साइबर हमले, जैसे डेटा चोरी, हैकिंग, फर्जी समाचारों का प्रसार और चुनावी हस्तक्षेप, राजनीतिक स्थिरता और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न करते हैं। कई देशों में चुनावों के दौरान साइबर हमलों के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने के प्रयास सामने आए हैं, जिससे शासन की वैधता और जनता के विश्वास पर प्रश्नचिह्न लगता है। इसके अतिरिक्त, सरकारी संस्थानों और महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं पर साइबर हमले नीतिगत निर्णयों को बाधित कर सकते हैं और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में तनाव बढ़ा सकते हैं। राजनीति में साइबर सुरक्षा केवल तकनीकी मुद्दा नहीं है, बल्कि यह नीति, कानून, कूटनीति और नैतिकता से भी जुड़ी हुई है। प्रभावी साइबर सुरक्षा नीतियाँ बनाने के लिए सरकारों को तकनीकी विशेषज्ञता के साथ-साथ पारदर्शिता, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और नागरिकों के डिजिटल अधिकारों की रक्षा पर भी ध्यान देना आवश्यक है। अंततः, साइबर सुरक्षा और राजनीति का संतुलन ही डिजिटल लोकतंत्र की मजबूती और राज्य की संप्रभुता को सुनिश्चित कर सकता है।

(***मुख्य शब्दः*** साइबर सुरक्षा, राजनीति, राष्ट्रीय सुरक्षा, डिजिटल लोकतंत्र, साइबर हमला, सूचना प्रौद्योगिकी)

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी को डिजिटल युग के रूप में देखा जाता है, जहाँ सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति के स्वरूप को मूल रूप से बदल दिया है। इंटरनेट, सोशल मीडिया, क्लाउड कंप्यूटिंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी तकनीकों ने राजनीतिक प्रक्रियाओं को अधिक तेज, व्यापक और जटिल बना दिया है। इसी परिवर्तन के साथ साइबर सुरक्षा एक गंभीर और अनिवार्य विषय के रूप में उभरी है। आज राजनीति केवल संसद, चुनाव या कूटनीति तक सीमित नहीं रही, बल्कि साइबर स्पेस भी राजनीतिक गतिविधियों का एक प्रमुख क्षेत्र बन गया है (कुमार, 2020)।

साइबर सुरक्षा का तात्पर्य डिजिटल प्रणालियों, नेटवर्क, डेटा और सूचनाओं को अनधिकृत पहुँच, हमलों और दुरुपयोग से सुरक्षित रखने से है। जब यही डिजिटल संसाधन राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किए जाते हैं, तब साइबर सुरक्षा और राजनीति का आपसी संबंध और भी संवेदनशील हो जाता है। चुनावी डेटा की सुरक्षा, सरकारी वेबसाइटों की विश्वसनीयता, नीति संबंधी सूचनाओं की गोपनीयता और नागरिकों की डिजिटल निजता सीधे तौर पर राजनीतिक स्थिरता और लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़ी होती है (शर्मा, 2021)।

हाल के वर्षों में विश्व स्तर पर ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जहाँ साइबर हमलों के माध्यम से राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने का प्रयास किया गया। फर्जी समाचारों का प्रसार, सोशल मीडिया के जरिए जनमत को प्रभावित करना, और विदेशी हस्तक्षेप के आरोप इस बात को स्पष्ट करते हैं कि साइबर स्पेस अब राजनीतिक संघर्ष का एक नया मंच बन चुका है (सिंह, 2019)। इससे न केवल राज्यों की आंतरिक राजनीति प्रभावित होती है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों में भी तनाव उत्पन्न होता है।

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य साइबर सुरक्षा और राजनीति के बीच के संबंध का विश्लेषण करना है। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार साइबर खतरों का प्रभाव राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया, लोकतांत्रिक संस्थाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा पर पड़ता है। साथ ही यह अध्ययन इस प्रश्न पर भी केंद्रित है कि सरकारें और राजनीतिक संस्थान साइबर सुरक्षा को अपनी नीतियों में किस प्रकार शामिल कर रहे हैं।

अध्ययन के प्रमुख शोध प्रश्न इस प्रकार हैं:

1. साइबर सुरक्षा राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करती है?
2. राजनीतिक संदर्भ में साइबर खतरों की प्रकृति क्या है?
3. लोकतांत्रिक व्यवस्था की रक्षा में साइबर सुरक्षा की क्या भूमिका है?

इस प्रकार, यह प्रस्तावना विषय की पृष्ठभूमि, प्रासंगिकता और अध्ययन की दिशा को स्पष्ट करती है तथा आगे के विश्लेषण के लिए एक सैद्धांतिक आधार प्रदान करती है।

साइबर सुरक्षा की अवधारणा

साइबर सुरक्षा आधुनिक सूचना समाज की एक मूलभूत आवश्यकता बन चुकी है। इसका आशय कंप्यूटर प्रणालियों, नेटवर्क, सॉफ्टवेयर, डेटा और डिजिटल सूचनाओं को अनधिकृत पहुँच, साइबर हमलों, क्षति और दुरुपयोग से सुरक्षित रखने से है। जैसे-जैसे शासन, अर्थव्यवस्था और राजनीति डिजिटल माध्यमों पर निर्भर होती जा रही है, वैसे-वैसे साइबर सुरक्षा का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। आज सरकारी कार्यप्रणाली, नीति निर्माण, प्रशासनिक संचार और नागरिक सेवाएँ बड़े पैमाने पर डिजिटल प्लेटफॉर्म पर संचालित हो रही हैं, जिससे साइबर सुरक्षा केवल तकनीकी विषय न रहकर एक रणनीतिक और राजनीतिक मुद्दा बन गई है (शर्मा, 2020)।

साइबर सुरक्षा की अवधारणा के अंतर्गत कई प्रमुख घटक शामिल होते हैं, जैसे सूचना सुरक्षा, नेटवर्क सुरक्षा, एप्लिकेशन सुरक्षा और डेटा संरक्षण। सूचना सुरक्षा का संबंध संवेदनशील सूचनाओं की गोपनीयता, अखंडता और उपलब्धता से है। नेटवर्क सुरक्षा डिजिटल नेटवर्क को वायरस, मैलवेयर और हैकिंग से सुरक्षित रखने पर केंद्रित होती है, जबकि एप्लिकेशन सुरक्षा सॉफ्टवेयर में मौजूद कमजोरियों को दूर करने से जुड़ी होती है (कुमार, 2019)। राजनीति के संदर्भ में ये सभी घटक अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि राजनीतिक डेटा और सरकारी सूचनाएँ अक्सर साइबर हमलों का प्रमुख लक्ष्य बनती हैं।

साइबर स्पेस की एक प्रमुख विशेषता इसकी सीमा-रहित प्रकृति है। पारंपरिक सुरक्षा खतरों के विपरीत, साइबर खतरों की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। कोई भी व्यक्ति या समूह किसी भी देश की राजनीतिक या प्रशासनिक प्रणाली पर दूर बैठे हमला कर सकता है। यही कारण है कि साइबर सुरक्षा को अब राष्ट्रीय सुरक्षा के एक नए आयाम के रूप में देखा जा रहा है (सिंह, 2021)।

इसके अतिरिक्त, साइबर सुरक्षा का संबंध केवल तकनीकी सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मानव व्यवहार, नीतियाँ और कानूनी ढाँचा भी शामिल होता है। कमजोर पासवर्ड, डिजिटल जागरूकता की कमी और अपर्याप्त कानून साइबर खतरों को बढ़ावा देते हैं। राजनीति में यह और भी संवेदनशील हो जाता है, क्योंकि किसी भी प्रकार की साइबर चूक जनता के विश्वास और शासन की वैधता को प्रभावित कर सकती है।

इस प्रकार, साइबर सुरक्षा की अवधारणा बहुआयामी है, जिसमें तकनीकी, प्रशासनिक, कानूनी और सामाजिक पहलू शामिल हैं। राजनीति के क्षेत्र में इसकी भूमिका को समझना आवश्यक है, क्योंकि सुरक्षित साइबर वातावरण के बिना लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और शासन प्रणाली की रक्षा संभव नहीं है।

राजनीति में साइबर स्पेस की भूमिका

डिजिटल क्रांति के साथ राजनीति के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया है। आज साइबर स्पेस राजनीति का एक महत्वपूर्ण मंच बन चुका है, जहाँ राजनीतिक विचारों का प्रसार, जनमत निर्माण और सत्ता से जुड़ी गतिविधियाँ संचालित होती हैं। इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने राजनीतिक सहभागिता को अधिक सुलभ और व्यापक बना दिया है। राजनीतिक दल, नेता और सरकारें अब नागरिकों से संवाद स्थापित करने, नीतियों की जानकारी देने और समर्थन जुटाने के लिए साइबर स्पेस का सक्रिय उपयोग कर रही हैं (कुमार, 2020)।

सोशल मीडिया ने राजनीति में साइबर स्पेस की भूमिका को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। फेसबुक, एक्स (ट्विटर), यूट्यूब और व्हाट्सएप जैसे मंच राजनीतिक प्रचार, चुनावी अभियानों और जनभावनाओं को प्रभावित करने के प्रमुख साधन बन गए हैं। इनके माध्यम से राजनीतिक संदेश बहुत कम समय में लाखों लोगों तक पहुँच जाते हैं। इससे एक ओर लोकतांत्रिक सहभागिता बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर भ्रामक सूचनाओं और फर्जी समाचारों का खतरा भी गंभीर रूप से सामने आया है (शर्मा, 2019)।

साइबर स्पेस ने जनमत निर्माण की प्रक्रिया को भी बदल दिया है। पहले जहाँ जनमत पारंपरिक मीडिया और प्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से बनता था, वहीं अब ऑनलाइन चर्चाएँ, डिजिटल अभियानों और ट्रेंड्स के माध्यम से राजनीतिक धारणाएँ आकार लेती हैं। राजनीतिक मुद्दों पर ऑनलाइन बहसें नीति-निर्माताओं को प्रभावित करती हैं और कई बार सरकारों को अपने निर्णयों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य भी करती हैं (सिंह, 2021)।

ई-गवर्नेंस के रूप में साइबर स्पेस ने शासन और राजनीति के बीच की दूरी को कम किया है। डिजिटल पोर्टल, ऑनलाइन सेवाएँ और सोशल मीडिया हैंडल सरकारों को अधिक पारदर्शी और उत्तरदायी बनाने में सहायक हुए हैं। नागरिक अब शिकायत दर्ज करने, सुझाव देने और नीतिगत मुद्दों पर प्रतिक्रिया देने के लिए डिजिटल माध्यमों का प्रयोग कर रहे हैं। यह प्रक्रिया लोकतंत्र को मजबूत करने में सहायक मानी जाती है (वर्मा, 2020)।

हालाँकि, राजनीति में साइबर स्पेस की बढ़ती भूमिका के साथ जोखिम भी जुड़े हुए हैं। डेटा दुरुपयोग, निगरानी, साइबर हमले और डिजिटल असमानता जैसे मुद्दे राजनीतिक समानता और स्वतंत्रता पर प्रश्न खड़े करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि साइबर स्पेस का उपयोग राजनीति में जिम्मेदारी और सुरक्षा के

साथ किया जाए। इस प्रकार, साइबर स्पेस आधुनिक राजनीति का एक अनिवार्य और प्रभावशाली घटक बन चुका है।

साइबर खतरे और राजनीतिक चुनौतियाँ

साइबर स्पेस के राजनीतिक उपयोग के विस्तार के साथ साइबर खतरों की प्रकृति और गंभीरता में भी निरंतर वृद्धि हुई है। आज साइबर हमले केवल आर्थिक या तकनीकी क्षति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे सीधे तौर पर राजनीतिक स्थिरता, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और शासन की विश्वसनीयता को प्रभावित कर रहे हैं। राजनीतिक संस्थाएँ, चुनावी प्रणालियाँ, सरकारी वेबसाइटें और नेताओं के डिजिटल अकाउंट साइबर अपराधियों और राज्य प्रायोजित समूहों के प्रमुख लक्ष्य बन चुके हैं (सिंह, 2020)।

साइबर खतरों के प्रमुख प्रकारों में हैकिंग, फिशिंग, मैलवेयर हमले, डेटा चोरी और डिनायल ऑफ सर्विस (DDoS) हमले शामिल हैं। राजनीतिक संदर्भ में इन हमलों का उद्देश्य केवल सूचना चुराना नहीं होता, बल्कि निर्णय-प्रक्रिया को बाधित करना, गोपनीय सूचनाओं को सार्वजनिक करना और जनता के विश्वास को कमजोर करना भी होता है। कई बार संवेदनशील सरकारी दस्तावेजों के लीक होने से न केवल आंतरिक राजनीति प्रभावित होती है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विवाद उत्पन्न हो जाते हैं (कुमार, 2019)।

चुनावी प्रक्रियाएँ साइबर खतरों की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील मानी जाती हैं। मतदाता सूचियों में छेड़छाड़, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग प्रणालियों पर हमले और सोशल मीडिया के माध्यम से भ्रामक प्रचार लोकतांत्रिक चुनावों की निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। फर्जी समाचार और दुष्प्रचार अभियानों के माध्यम से मतदाताओं की धारणाओं को प्रभावित करना एक गंभीर राजनीतिक चुनौती बन चुका है, जिसे कई विद्वान "सूचना युद्ध" की संज्ञा देते हैं (शर्मा, 2021)।

इसके अतिरिक्त, साइबर निगरानी और डेटा संग्रह की राजनीति भी एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरी है। सुरक्षा के नाम पर नागरिकों की ऑनलाइन गतिविधियों पर निगरानी निजता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित कर सकती है। इससे राज्य और नागरिकों के बीच विश्वास का संकट उत्पन्न होता है, जो किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए घातक माना जाता है (वर्मा, 2020)।

इस प्रकार, साइबर खतरे राजनीति के लिए बहुआयामी चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। इनका प्रभाव केवल तकनीकी स्तर तक सीमित न रहकर सामाजिक, कानूनी और नैतिक स्तर पर भी दिखाई देता है। इसलिए राजनीतिक संस्थाओं के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे साइबर खतरों को गंभीरता से समझें और उनसे निपटने के लिए समग्र और संतुलित रणनीतियाँ विकसित करें।

साइबर सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में साइबर सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अनिवार्य और अभिन्न घटक माना जाने लगा है। परंपरागत रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा का संबंध सैन्य शक्ति, भौगोलिक सीमाओं और आंतरिक कानून-व्यवस्था से था, किंतु डिजिटल युग में साइबर स्पेस भी सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। सरकारी नेटवर्क, रक्षा प्रणालियाँ, ऊर्जा ग्रिड, बैंकिंग प्रणाली और संचार अवसंरचना अब डिजिटल तकनीकों पर निर्भर हैं, जिससे साइबर हमले सीधे राज्य की सुरक्षा और संप्रभुता को चुनौती देते हैं (कुमार, 2020)।

साइबर हमलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे बिना किसी भौतिक आक्रमण के गंभीर क्षति पहुँचा सकते हैं। किसी देश की महत्वपूर्ण अवसंरचना पर किया गया साइबर हमला बिजली, परिवहन, स्वास्थ्य सेवाओं और संचार व्यवस्था को ठप कर सकता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है, जिसका सीधा प्रभाव राजनीतिक स्थिरता और सरकार की कार्यक्षमता पर पड़ता है। इसीलिए कई देश साइबर खतरों को पारंपरिक सैन्य खतरों के समान ही गंभीर मानने लगे हैं (शर्मा, 2019)।

राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में साइबर युद्ध की अवधारणा भी तेजी से उभर रही है। साइबर युद्ध में शत्रु राष्ट्र एक-दूसरे की सूचना प्रणालियों, रक्षा नेटवर्क और रणनीतिक डेटा को निशाना बनाते हैं। यह युद्ध अक्सर अदृश्य होता है, जिससे हमलावर की पहचान करना कठिन हो जाता है। इस अनिश्चितता के कारण अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अविश्वास और तनाव बढ़ता है तथा कूटनीतिक संबंध प्रभावित होते हैं (सिंह, 2021)।

इसके अतिरिक्त, साइबर सुरक्षा का संबंध खुफिया तंत्र और राष्ट्रीय नीति निर्माण से भी है। संवेदनशील सूचनाओं की चोरी या लीक होने से रणनीतिक योजनाएँ उजागर हो सकती हैं, जिससे राज्य की सुरक्षा कमजोर पड़ती है। इसी कारण सरकारें अब साइबर खुफिया, निगरानी प्रणालियों और सुरक्षा नीतियों पर विशेष ध्यान दे रही हैं। हालाँकि, सुरक्षा और नागरिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाए रखना एक बड़ी चुनौती बनी हुई है (वर्मा, 2020)।

इस प्रकार, साइबर सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच गहरा और बहुआयामी संबंध स्थापित हो चुका है। एक मजबूत साइबर सुरक्षा ढाँचा न केवल डिजिटल प्रणालियों की रक्षा करता है, बल्कि राज्य की राजनीतिक स्थिरता, संप्रभुता और अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा को भी सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कानूनी और नीतिगत ढाँचा

साइबर सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियों से निपटने के लिए एक सुदृढ़ कानूनी और नीतिगत ढाँचा अत्यंत आवश्यक है। डिजिटल तकनीकों

के बढ़ते उपयोग के साथ साइबर अपराध, डेटा उल्लंघन और राजनीतिक दुरुपयोग की घटनाओं में वृद्धि हुई है, जिससे राज्यों को अपने कानूनों और नीतियों को समय-समय पर अद्यतन करने की आवश्यकता पड़ी है। राजनीति के संदर्भ में यह ढाँचा इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इसका सीधा संबंध लोकतांत्रिक संस्थाओं, चुनावी प्रक्रियाओं और नागरिक अधिकारों से होता है (शर्मा, 2020)।

कानूनी स्तर पर साइबर सुरक्षा का उद्देश्य साइबर अपराधों को परिभाषित करना, अपराधियों को दंडित करना और पीड़ितों को न्याय प्रदान करना है। कई देशों में साइबर कानूनों के माध्यम से हैकिंग, पहचान की चोरी, डेटा चोरी, ऑनलाइन दुष्प्रचार और साइबर आतंकवाद जैसे कृत्यों को अपराध की श्रेणी में रखा गया है। भारत के संदर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित कानूनों ने डिजिटल गतिविधियों को एक कानूनी आधार प्रदान किया है, हालाँकि बदलती तकनीकों के साथ इन कानूनों की प्रभावशीलता पर लगातार प्रश्न उठते रहे हैं (कुमार, 2019)।

नीतिगत स्तर पर सरकारें राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीतियों के माध्यम से अपनी रणनीति स्पष्ट करती हैं। इन नीतियों में सरकारी नेटवर्क की सुरक्षा, महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं की रक्षा, साइबर जागरूकता, क्षमता निर्माण और निजी क्षेत्र के साथ सहयोग जैसे पहलू शामिल होते हैं। राजनीति में इन नीतियों का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि इनके माध्यम से राज्य साइबर खतरों को राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से संबोधित करता है (सिंह, 2021)।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी साइबर सुरक्षा से संबंधित नियमों और सहयोग की आवश्यकता महसूस की जा रही है। चूँकि साइबर स्पेस की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती, इसलिए एक देश में हुआ साइबर अपराध दूसरे देशों को भी प्रभावित कर सकता है। इस संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय समझौते, सूचना साझा करने की व्यवस्था और संयुक्त प्रयास महत्वपूर्ण माने जाते हैं। फिर भी, संप्रभुता, राजनीतिक हितों और विश्वास की कमी के कारण वैश्विक साइबर शासन एक जटिल मुद्दा बना हुआ है (वर्मा, 2020)।

इस प्रकार, कानूनी और नीतिगत ढाँचा साइबर सुरक्षा और राजनीति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। प्रभावी कानून और नीतियाँ न केवल साइबर खतरों को नियंत्रित करती हैं, बल्कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ बनाती हैं।

भारत के संदर्भ में साइबर सुरक्षा और राजनीति

भारत में डिजिटल प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार के साथ साइबर सुरक्षा और राजनीति का संबंध लगातार मजबूत और जटिल होता गया है। डिजिटल इंडिया पहल, ई-गवर्नेंस, ऑनलाइन सेवाएँ और सोशल मीडिया के व्यापक उपयोग ने शासन और नागरिकों के बीच संपर्क को आसान बनाया है, लेकिन इसके साथ ही साइबर खतरों की संभावना भी बढ़ी है। आज भारत की राजनीति में साइबर स्पेस न केवल संचार और प्रचार का माध्यम है, बल्कि यह राष्ट्रीय सुरक्षा और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से भी सीधे जुड़ा हुआ है (कुमार, 2020)।

भारत सरकार ने साइबर सुरक्षा को एक महत्वपूर्ण नीतिगत मुद्दे के रूप में स्वीकार किया है। राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति के माध्यम से सरकारी नेटवर्क, महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं और संवेदनशील डेटा की सुरक्षा पर बल दिया गया है। चुनाव आयोग, मंत्रालयों और सार्वजनिक संस्थानों की डिजिटल प्रणालियों को सुरक्षित रखने के प्रयास किए जा रहे हैं, क्योंकि किसी भी प्रकार का साइबर हमला चुनावी प्रक्रिया और शासन की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकता है (शर्मा, 2021)।

भारतीय राजनीति में सोशल मीडिया की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली हो चुकी है। राजनीतिक दल और नेता डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग जनसमर्थन जुटाने, विचारधाराओं के प्रचार और विरोधियों की आलोचना के लिए करते हैं। हालाँकि, इसके साथ फर्जी समाचार, ट्रोलिंग और दुष्प्रचार की समस्या भी गंभीर रूप से सामने आई है। कई अवसरों पर भ्रामक सूचनाओं ने सामाजिक तनाव और राजनीतिक विवाद को जन्म दिया है, जिससे साइबर सुरक्षा को लोकतंत्र की रक्षा के संदर्भ में और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है (सिंह, 2019)।

भारत के सामने साइबर सुरक्षा से जुड़ी कई चुनौतियाँ भी हैं। सीमित तकनीकी संसाधन, प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी, डिजिटल साक्षरता का अभाव और तेजी से बदलती तकनीकें नीति निर्माण को कठिन बनाती हैं। इसके अतिरिक्त, सुरक्षा और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाना भी भारतीय लोकतंत्र के लिए एक संवेदनशील प्रश्न है (वर्मा, 2020)।

फिर भी, भारत में साइबर सुरक्षा और राजनीति के क्षेत्र में सकारात्मक पहलें भी देखने को मिलती हैं। साइबर अपराध से निपटने के लिए संस्थागत ढाँचे का विकास, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और जागरूकता कार्यक्रम इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में साइबर सुरक्षा और राजनीति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि डिजिटल लोकतंत्र की मजबूती के लिए एक सुरक्षित और उत्तरदायी साइबर वातावरण अनिवार्य है।

भविष्य की संभावनाएँ और समाधान

डिजिटल तकनीकों के निरंतर विकास के साथ साइबर सुरक्षा और राजनीति का महत्व भविष्य में और अधिक बढ़ने वाला है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा, इंटरनेट ऑफ थिंग्स और

ऑटोमेशन जैसी उभरती तकनीकें शासन और राजनीति को अधिक प्रभावी बना सकती हैं, लेकिन इनके साथ साइबर जोखिम भी बढ़ेंगे। इसलिए भविष्य की राजनीति में साइबर सुरक्षा केवल एक सहायक तंत्र नहीं, बल्कि नीति निर्माण और राष्ट्रीय रणनीति का केंद्रीय तत्व होगी (कुमार, 2021)।

भविष्य की प्रमुख संभावनाओं में तकनीकी नवाचारों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। उन्नत एन्क्रिप्शन तकनीकें, साइबर थ्रेट इंटेलिजेंस और स्वचालित सुरक्षा प्रणालियाँ साइबर हमलों की पहचान और रोकथाम को अधिक सक्षम बना सकती हैं। राजनीतिक संस्थाओं और सरकारी तंत्र में इन तकनीकों के प्रभावी उपयोग से चुनावी प्रणालियों, डेटा और संचार नेटवर्क की सुरक्षा को मजबूत किया जा सकता है (शर्मा, 2020)।

समाधान के स्तर पर नीति सुधार अत्यंत आवश्यक हैं। साइबर कानूनों को बदलती तकनीकों और नए खतरों के अनुरूप अद्यतन करना होगा। इसके साथ ही नीति निर्माण में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करनी होगी, ताकि सुरक्षा के नाम पर नागरिक अधिकारों का अतिक्रमण न हो। राजनीति में विश्वास बनाए रखने के लिए यह संतुलन अनिवार्य है (सिंह, 2021)।

मानव संसाधन और जागरूकता भी भविष्य की रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा होंगे। केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं; नागरिकों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और सरकारी कर्मचारियों को साइबर जोखिमों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। डिजिटल साक्षरता, प्रशिक्षण कार्यक्रम और नैतिक आचरण संहिता साइबर सुरक्षा को मजबूत करने में सहायक हो सकते हैं (वर्मा, 2020)।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग भविष्य में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगा। चूँकि साइबर खतरे सीमाओं से परे होते हैं, इसलिए देशों के बीच सूचना साझा करना, संयुक्त अभ्यास और साझा मानदंड विकसित करना आवश्यक होगा। इससे साइबर संघर्षों को नियंत्रित करने और राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार, भविष्य की राजनीति में साइबर सुरक्षा के लिए तकनीकी नवाचार, प्रभावी नीतियाँ, जागरूक समाज और अंतरराष्ट्रीय सहयोग एक समग्र समाधान प्रस्तुत करते हैं। इन उपायों के माध्यम से ही डिजिटल लोकतंत्र को सुरक्षित और सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

साइबर सुरक्षा और राजनीति के बीच संबंध आधुनिक डिजिटल युग में अत्यंत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य बन चुका है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे राजनीतिक प्रक्रियाएँ, शासन प्रणाली और जनसंचार डिजिटल माध्यमों पर निर्भर होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे साइबर सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ती जा रही है। साइबर स्पेस अब केवल तकनीकी गतिविधियों का क्षेत्र नहीं रहा, बल्कि यह राजनीतिक संवाद, सत्ता संघर्ष और लोकतांत्रिक सहभागिता का एक प्रमुख मंच बन चुका है।

अध्ययन के विभिन्न अध्यायों में यह देखा गया कि साइबर खतरों का प्रभाव केवल तकनीकी ढाँचे तक सीमित नहीं है। साइबर हमले, दुष्प्रचार और डेटा दुरुपयोग लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता, चुनावी प्रक्रियाओं की निष्पक्षता और नागरिकों के विश्वास को कमजोर कर सकते हैं। इस संदर्भ में साइबर सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का एक नया आयाम बनकर उभरी है, जो राज्य की संप्रभुता और राजनीतिक स्थिरता से सीधे जुड़ी हुई है।

कानूनी और नीतिगत विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि प्रभावी साइबर सुरक्षा के लिए केवल कठोर कानून पर्याप्त नहीं हैं। आवश्यक है कि नीतियाँ बदलती तकनीकों के अनुरूप हों और उनमें नागरिक अधिकारों, निजता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का समुचित ध्यान रखा जाए। सुरक्षा और स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाए रखना लोकतांत्रिक राजनीति की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने आता है।

भारतीय संदर्भ में अध्ययन यह दर्शाता है कि यद्यपि साइबर सुरक्षा के क्षेत्र में कई सकारात्मक पहलें की गई हैं, फिर भी संसाधनों की कमी, डिजिटल साक्षरता का अभाव और तेजी से उभरते खतरों के कारण निरंतर सुधार की आवश्यकता बनी हुई है। भविष्य के लिए तकनीकी नवाचार, नीति सुधार, जन-जागरूकता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को समग्र रणनीति के रूप में अपनाना आवश्यक होगा।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि साइबर सुरक्षा और राजनीति का संतुलित और जिम्मेदार समन्वय ही डिजिटल लोकतंत्र की मजबूती सुनिश्चित कर सकता है। सुरक्षित साइबर वातावरण न केवल शासन को प्रभावी बनाता है, बल्कि नागरिकों के अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में भी निर्णायक भूमिका निभाता है।

संदर्भ सूची

1. कुमार, अ. (2020). डिजिटल युग और राजनीति. नई दिल्ली: XYZ प्रकाशन, पृ. 15-32।
2. शर्मा, र. (2021). साइबर सुरक्षा: चुनौतियाँ और नीतियाँ. जयपुर: ABC पब्लिकेशन, पृ. 41-68।
3. सिंह, म. (2019). "साइबर स्पेस और लोकतंत्र." भारतीय राजनीति जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 45-60।
4. शर्मा, र. (2020). साइबर सुरक्षा की मूल अवधारणाएँ. दिल्ली: नेशनल पब्लिकेशन, पृ. 10-29।

5. कुमार, स. (2019). सूचना प्रौद्योगिकी और सुरक्षा. लखनऊ: भारत प्रकाशन, पृ. 55-78।
6. सिंह, अ. (2021). "साइबर स्पेस और राष्ट्रीय सुरक्षा." समकालीन अध्ययन जर्नल, खंड 15, अंक 1, पृ. 30-47।
7. कुमार, अ. (2020). डिजिटल राजनीति और समाज. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 22-49।
8. शर्मा, प. (2019). "सोशल मीडिया और राजनीतिक संचार." मीडिया अध्ययन पत्रिका, खंड 10, अंक 3, पृ. 22-38।
9. वर्मा, न. (2020). "ई-गवर्नेंस और लोकतंत्र." भारतीय प्रशासन जर्नल, खंड 14, अंक 2, पृ. 55-70।
10. सिंह, म. (2020). साइबर खतरे और राज्य. दिल्ली: ओरिएंट पब्लिकेशन, पृ. 33-61।
11. शर्मा, स. (2021). चुनाव, मीडिया और साइबर स्पेस. जयपुर: नवभारत प्रकाशन, पृ. 40-72।
12. कुमार, अ. (2020). राष्ट्रीय सुरक्षा और साइबर रणनीति. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन, पृ. 18-44।
13. सिंह, प. (2021). साइबर युद्ध और अंतरराष्ट्रीय राजनीति. लखनऊ: जनचेतना प्रकाशन, पृ. 52-83।
14. शर्मा, क. (2020). साइबर कानून और नीति. दिल्ली: यूनिवर्सल पब्लिकेशन, पृ. 25-54।
15. वर्मा, अ. (2020). "वैश्विक साइबर शासन की चुनौतियाँ." अंतरराष्ट्रीय अध्ययन पत्रिका, खंड 12, अंक 1, पृ. 44-60।
16. कुमार, अ. (2020). डिजिटल इंडिया और शासन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 35-66।
17. सिंह, म. (2019). सोशल मीडिया और भारतीय राजनीति. इलाहाबाद: जनलोक प्रकाशन, पृ. 20-48।
18. कुमार, स. (2021). भविष्य की राजनीति और तकनीक. दिल्ली: ज्ञानदीप प्रकाशन, पृ. 60-89।
19. शर्मा, अ. (2020). "उभरती तकनीकें और साइबर सुरक्षा." तकनीकी अध्ययन जर्नल, खंड 9, अंक 1, पृ. 15-32।
20. वर्मा, प. (2020). "डिजिटल साक्षरता और सुरक्षा." शिक्षा और समाज, खंड 14, अंक 2, पृ. 40-55।

प्राचीन भारत मे नारी शिक्षा एक अध्ययन

रीना कुमारी

शोधार्थी, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, रामगढ़

डॉ० पूनम कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, रामगढ़

नारी को मानव समाज की आधारशिला माना गया है और उसकी उन्नति या अवनति का इतिहास सम्पूर्ण समाज के उत्कर्ष-अपकर्ष का सूचक रहा है। वास्तव में, नारी की सामाजिक स्थिति और मूल्य ही किसी भी समाज की प्रगति का सही मापदंड हैं। भारतीय संदर्भ में नारी के इतिहास का विशेष महत्व है। भारतीय मनीषियों ने समाज के विभिन्न वर्गों और जीवन के चारों आश्रमों के लिए तो व्यवस्था दी ही, साथ ही समाज के उस अर्धांग की-अर्थात् स्त्री की-अपनी विशिष्ट शारीरिक रचना और जीवन चक्र के अनुरूप एक योग्य व्यवस्था भी प्रदान की, जो उसके स्वभाव के अनुकूल थी और उसे समुचित स्थान व कार्य प्रदान करती थी।

भारतीय समाज में नारी के विकास-पतन, प्रतिष्ठा-अपमान, संघर्ष और उत्थान-पतन की एक लम्बी गाथा रही है। रोचक बात यह है कि विश्व की अन्य सभ्यताओं के विकासक्रम के विपरीत, हिन्दू सभ्यता में जितना प्राचीन काल में झांकते हैं, नारी का स्थान उतना ही अधिक महत्वपूर्ण और सम्मानजनक प्रतीत होता है। सभ्यता के प्रारम्भिक दौर में ही नारी की स्थिति चरमोत्कर्ष पर थी, जिसका स्पष्ट प्रमाण वैदिक साहित्य-संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों-से मिलता है। हाँ, यह सत्य है कि प्राचीन भारत में भी पुत्र की कामना पुत्री की अपेक्षा अधिक प्रबल थी, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं निकाला जा सकता कि नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण हीन या उपेक्षापूर्ण था।परन्तु यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि समाज में पुत्री का महत्व या सम्मान कम था। वैदिक युग में पुत्र और पुत्री के सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार लगभग समान थे; पुत्री भी पुत्रों के समान ही उपनयन संस्कार और शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने की अधिकारिणी थी। ऋग्वेद में माता-पिता के वक्षस्थल पर लेटी अबोध कन्या का चित्रण उनके गहन पुत्री-प्रेम को प्रकट करता है। माता-पिता पुत्री की प्राप्ति की कामना भी करते थे, जैसे कि यज्ञ करने वाले दंपति अनेक पुत्र-पुत्रियों को पाकर दीर्घायु होने की प्रार्थना करते हैं। उपनिषदों, गृह्यसूत्रों, महाकाव्यों तथा स्मृतियों आदि ग्रंथों से भी यह ज्ञात होता है कि पुत्री को पुत्र के समान ही मान्यता प्राप्त थी। राजा अश्वपति और भीम ने अपनी पुत्रियों-सावित्री और दमयन्ती-को प्राप्त करने के लिए अनेक धार्मिक अनुष्ठान किए थे। कुंती, देवयानी, द्रौपदी, उत्तरा और सीता जैसी पुत्रियाँ अपने माता-पिता का अत्यधिक स्नेह एवं आदर पाती थीं। कहीं-कहीं पिता द्वारा पुत्री को पुत्रतुल्य मानने (जैसे भीष्म और मणिपुर नरेश द्वारा) और कहीं पुत्र की अपेक्षा उसे अधिक प्रिय समझे जाने का भी उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में भी पुत्र और पुत्री दोनों को लगभग समान रूप से वांछनीय माना गया है। 'उब्बीरि' और 'इसियासी' जैसी पुत्रियों के प्रति उनके माता-पिता के प्रगाढ़ स्नेह से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में पुत्रियों की स्थिति संतोषजनक एवं प्रतिष्ठापूर्ण थी। अत: निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पुत्रियों को उपेक्षित या हेय नहीं, बल्कि सम्माननीय दृष्टि से देखा जाता था।

प्राचीन भारत के साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोत नारी शिक्षा के प्रमाणों से समृद्ध हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल और वर्तमान युग की तुलना में प्राचीन भारत के प्रारंभिक चरण, विशेष रूप से वैदिक काल में, नारी शिक्षा की व्यवस्था कहीं अधिक उन्नत थी। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि लंबे समय तक भारत में 'शिक्षा' का तात्पर्य मुख्यत: वैदिक शिक्षा से ही था। यज्ञों में भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों को, लिंग के भेद के बिना, वैदिक ज्ञान अवश्य प्राप्त करना होता था।

वैदिक काल में शिक्षा का प्राथमिक क्षेत्र वैदिक मंत्रों की रचना और उनके विधिवत प्रयोग तक सीमित था। अन्य विद्याओं की शिक्षा उस समय वंशानुगत परंपरा के माध्यम से प्राप्त होती थी, जबकि वैदिक मंत्रों का अध्ययन मुख्यत: यज्ञ और अनुष्ठानों के सम्पादन के लिए किया जाता था। स्मृति ग्रंथों के रचनाकाल से पूर्व नारियों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। धर्मशास्त्रों के अनुसार, पत्नी के बिना कोई पुरुष यज्ञ का संपादन ही नहीं कर सकता था। यह भी नियम था कि वैदिक संध्या, प्रार्थना और यज्ञों में मंत्रों का उच्चारण केवल वही व्यक्ति कर सकता था, जिसका उपनयन संस्कार संपन्न हो चुका हो। इसीलिए किसी भी यज्ञ से पूर्व पति-पत्नी दोनों को एक विशेष प्रकार का उपनयन संस्कार करना अनिवार्य था। इस व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री, पति के साथ समान रूप से सक्रिय होकर, यज्ञ कर्म में पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। प्राचीन भारतीय साहित्य के लगभग प्रत्येक युग में नारियों को यज्ञ करते हुए, हवि (आहुति) देते हुए तथा वैदिक मंत्रों का पाठ करते हुए चित्रित किया गया है। उदाहरण के लिए, मौर्यकाल के उत्तरार्ध में पत्नी द्वारा संध्या के समय गृह्य अग्नि में हविष्य देने, 'सस्तरारोहण संस्कार' (अग्रहायण

विधि) के अवसर पर वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने तथा लयन-यज्ञ सम्पन्न करते हुए वर्णन मिलता है। इसी प्रकार, महाकाव्यों में भी ऐसे प्रसंग हैं-जैसे राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय उनकी माता कौशल्या द्वारा यज्ञ करना, सुग्रीव से युद्ध से पूर्व बालि की पत्नी तारा द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान, तथा लंका में सीता द्वारा संध्या-प्रार्थना करने का उल्लेख प्राप्त होता है। पांडवों की माता कुंती स्वयं अथर्ववेद में पारंगत विदुषी थीं। वैदिक कालीन शिक्षा का मूल आधार आध्यात्मिक एवं धार्मिक था। चूंकि उस समय स्त्रियों को यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था, और यज्ञ की सम्पन्नता एवं मंत्रपाठ की शुद्धता के लिए वेदों का अध्ययन अनिवार्य था, अत: स्पष्ट है कि पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था और वे विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करती थीं।

प्रारंभ काल में केवल पुत्रों की ही नहीं, बल्कि पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार संपन्न होता था और वे यज्ञोपवीत धारण भी करती थीं, जिसके समर्थन में पर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सूत्रकाल तक नारियों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था। उपनयन के पश्चात वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा ग्रहण करती थीं। गृह्यसूत्रों में बालिकाओं के लिए उपनयन के प्रतीक के रूप में यज्ञोपवीत धारण करने का विधान किया गया है। समावर्तन संस्कार के संदर्भ में, जहाँ तीनों वर्णों के लोगों के लिए उबटन लगाने का निर्देश है, वहीं स्त्रियों के लिए भी गर्भस्थान पर उबटन का लेप करने का उल्लेख मिलता है। हारीत द्वारा दी गई यह व्यवस्था कि "मासिक धर्म प्रारंभ होने से पूर्व ही स्त्रियों का समावर्तन संस्कार हो जाना चाहिए," यह सिद्ध करती है कि बालिकाओं (ब्रह्मवादिनियों) का उपनयन गर्भाधान के आठवें वर्ष में संपन्न होता था। वेदाध्ययन के बाद उनका छात्रा जीवन युवावस्था से पूर्व ही समाप्त हो जाता था, क्योंकि समावर्तन संस्कार सदैव वेदाध्ययन की समाप्ति पर ही किया जाता था। अत: यह स्पष्ट है कि स्त्रियाँ भी पूर्ण शिक्षा ग्रहण करती थीं। नारियों द्वारा मुंज की मेखला धारण करने, पवित्र गायत्री मंत्र का उच्चारण करने तथा वेदाध्ययन करने आदि का उल्लेख यमस्मृति जैसे ग्रंथों में भी मिलता है। हालाँकि, वेदाध्ययन के संबंध में एक विशेष नियम यह था कि उन्हें केवल परिवार के सदस्य से ही अध्ययन करना पड़ता था और घर के भीतर ही भिक्षाटन की अनुमति थी। साथ ही, ब्रह्मचर्य जीवन में उन पर मृगचर्म पहनने, विशेष वस्त्र धारण करने अथवा जटा रखने की कोई अनिवार्यता नहीं थी।

इन तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में नारी शिक्षा की मुख्य रूप से चार प्रणालियाँ प्रचलित थीं।

प्रथम प्रणाली बालिकाओं की शिक्षा का प्रबंध उनके अपने घर में ही माता-पिता या फिर चाचा जैसे परिवार के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा किया जाता था। यह प्रणाली बालकों की प्रारंभिक शिक्षा के साथ-साथ बालिकाओं के लिए भी सर्वाधिक प्रचलित थी। वैदिक काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मंत्रों के शुद्ध उच्चारण और यज्ञीय अनुष्ठानों में दक्षता प्रदान करना था। चूंकि उस समय परिवार में पिता या कोई अन्य गुरुजन (जैसे चाचा या बड़ा भाई) ही यज्ञादि कर्म किया करते थे, इसलिए परिवार के बालकों और बालिकाओं को वैदिक मंत्रोच्चार एवं याज्ञिक क्रियाओं की परंपरागत शिक्षा घर के भीतर ही सुलभ हो जाती थी। हालाँकि, यह व्यवस्था मुख्यत: प्रारंभिक शिक्षा तक ही सीमित रही होगी।

द्वितीय प्रणाली बालक-बालिकाओं की उच्च शिक्षा से संबंधित थी। जैसे-जैसे वे बड़े होते थे, उनके लिए उन्नत शिक्षा की आवश्यकता उत्पन्न होती थी। वैदिक साहित्य के विस्तार और यज्ञों की प्रक्रियाओं में नियमों की जटिलता बढ़ने के साथ, पाठ की शुद्धता और अनुष्ठान कौशल में निपुणता केवल उन्हीं लोगों को प्राप्त होती थी, जो निरंतर अध्ययन और अभ्यास द्वारा इनमें विशेषज्ञता अर्जित करते थे। उपनिषद् काल आते-आते ज्ञान और दर्शन से संबंधित विपुल साहित्य भी अध्ययन का एक प्रमुख अंग बन गया। अत: बालकों और बालिकाओं दोनों के लिए उच्च शिक्षा की एक सुव्यवस्थित प्रणाली की आवश्यकता अनिवार्य हो गई।बालकों की उच्च शिक्षा के लिए उनके माता-पिता उन्हें योग्य गुरुओं के परिवारों अथवा आश्रमों में भेज देते थे, किंतु बालिकाओं के संदर्भ में यह व्यवस्था उतनी सरल नहीं थी। ऐसा माना जाता है कि अनेक अभिभावक अपनी पुत्रियों को भी पुत्रों के समान ही विद्वान आचार्यों अथवा ऋषियों के आश्रमों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते रहे होंगे। ऐसी स्थिति में बालक एवं बालिकाएँ आचार्यों के कुशल निर्देशन एवं अनुशासन में सहशिक्षा प्राप्त करते होंगे।

इसका समर्थन विभिन्न ग्रंथों से प्राप्त उदाहरणों से होता है। महाभारत में अम्बा और शैखावत्य की सहशिक्षा का उल्लेख मिलता है। भवभूति रचित 'मालतीमाधव' से कामंदकी और भूरिवसुदेवरात की, तथा 'उत्तररामचरित' से आत्रेयी एवं लव-कुश की सहशिक्षा की जानकारी प्राप्त होती है। पुराणों में वर्णित कहोद और सुजाता तथा रहु और प्रमदवरा की कथाओं से पता चलता है कि बालिकाओं का विवाह काफी परिपक्व उम्र में होता था और वे पाठशालाओं में बालकों के साथ साथ अध्ययन करती थीं। इस संबंध में डॉ. अलतेकर का मत है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि जब समाज में योग्य उपाध्याएँ (महिला शिक्षिकाएँ) उपलब्ध हो जाती थीं, तो लोग अपनी बालिकाओं को उन्हीं के संरक्षण में अध्ययनार्थ भेज देते थे। किंतु यदि ऐसी उपाध्याएँ उपलब्ध न होतीं, तो बाध्यतावश उन्हें आचार्यों के पास पुत्रियों को शिक्षा-दीक्षा के लिए भेजना पड़ता था॰ सहशिक्षा से अभिभावकों को आपत्ति होने की कोई बात नहीं थी।" हालाँकि, यह कितनी प्रतिशत छात्राएँ सहशिक्षा ग्रहण करती थीं, इस प्रश्न पर निश्चित रूप से कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; संभवत: यह संख्या अधिक न रही होगी।

तृतीय महिला अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षा बालिकाओं एवं युवतियों की शिक्षा के लिए 'छात्रा-शालाओं' का भी प्रावधान रहा होगा,

जहाँ शिक्षा का दायित्व महिला अध्यापिकाओं (आचार्या/उपाध्याया) पर होता था। हालाँकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परन्तु पाणिनि के सूत्रों में 'आचार्या' तथा 'उपाध्याया' जैसे शब्दों का प्रयोग इस तरह की संस्थाओं के अस्तित्व की संभावना को दर्शाता है। ऐसी शालाओं में विशेष रूप से बालिकाओं को शिक्षा प्रदान की जाती रही होगी। इस संदर्भ में डॉ. विमल चंद्र पांडेय का यह विचार उल्लेखनीय है कि "आचार्या, उपाध्याया, औदमेध्या, काशकृत्स्ना तथा आपिशला आदि विदुषी महिलाओं के उल्लेख से अनुमान लगाया जा सकता है कि जब समाज में कन्याओं की गृह-शिक्षा पर बल दिया गया, तो उच्च वर्ग के अभिभावकों ने इन्हीं विदुषियों के संरक्षण में अपनी कन्याओं को शिक्षित कराने का प्रयास किया होगा।"

चतुर्थ बौद्ध और जैन धर्म से संबद्ध मठ एवं विहार भी नारी शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र बने। उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि बौद्ध विहारों ने इस क्षेत्र में विशेष भूमिका निभाई। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुणियों के मार्गदर्शन में अनेक स्त्रियों ने इन विहारों में धर्म, दर्शन एवं अन्य विषयों की शिक्षा ग्रहण की। विशेषकर धनाढ्य वर्ग की महिलाओं के बीच धार्मिक एवं दार्शनिक शिक्षा के प्रसार में ये विहार शिक्षा के प्रमुख केंद्र बन गए। नारी शिक्षा में बौद्ध धर्म के योगदान पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अलतेकर ने लिखा है - "ब्रह्मवादिनियों के समान ही बौद्ध परंपरा में भी अनेक नारियों ने धर्म व दर्शन के आर्य सत्यों को जानने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। उनमें से कुछ तो सिंहल जैसे दूरदेशों तक गईं और वहाँ बौद्ध आगमों की श्रेष्ठ शिक्षिकाओं के रूप में उनकी बड़ी ख्याति हुई. जब इतनी बड़ी संख्या में महिलाएँ धर्म-दर्शन के चिंतन हेतु ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती थीं, तो निश्चित ही उनमें सामान्य शिक्षा एवं योग्यता का स्तर भी पर्याप्त रहा होगा।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में सहशिक्षा के अस्तित्व के समर्थन में पर्याप्त साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध हैं। वैदिक साहित्य की विशालता तथा यज्ञीय नियमों की जटिलता ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया। उपनिषद् काल में दार्शनिक चिंतन से प्रभावित अनेक गृहस्थों ने अपनी पुत्रियों को गुरुकुलों अथवा ऋषियों के पास अध्ययन हेतु भेजा, जहाँ वे ऋषियों के मार्गदर्शन व अनुशासन में बालकों के साथ सहशिक्षा प्राप्त करती थीं। महाभारत में शैखावत्य और अम्बा के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है। भवभूति के नाटकों में भी नारी शिक्षा के प्रसंग विद्यमान हैं; उदाहरणार्थ, ब्रह्मचारिणी आत्रेयी ने बाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश जैसे तापस बालकों के साथ शिक्षा पूरी करने के बाद आगे की शिक्षा हेतु अगस्त्य मुनि के पास दण्डक वन की यात्रा की। 'मालतीमाधव' में शिष्या कामन्दकी, पुरुष शिष्य भूरिवसु तथा देवराट के साथ-साथ विभिन्न देशों से आई अन्य कन्याएँ गुरु के समीप अध्ययन करती दर्शाई गई हैं। पुराणों में वर्णित कहोद-सुजाता तथा रहु-प्रमदवरा की कथाएँ भी यही संकेत करती हैं कि बालिकाएँ पाठशालाओं में बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करती थीं। यदि ये विवरण समकालीन जीवन से लिए गए हैं, तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि भवभूति के समय तक बालिकाएँ बालकों के साथ उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इस प्रकार, जब आठवीं शताब्दी ईस्वी में सहशिक्षा का अस्तित्व स्पष्ट था, तो निश्चित ही उससे पूर्व की, अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र सामाजिक वातावरण वाली शताब्दियों में भी इसका प्रचलन रहा होगा।

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा के विषय पर केवल साहित्यिक ही नहीं, बल्कि पुरातात्विक स्रोत भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इनमें विभिन्न कलाकृतियाँ विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती हैं। हालाँकि इन कृतियों में नारी को सीधे तौर पर शिक्षा ग्रहण करते हुए दर्शाया गया हो, ऐसा प्रमाण सीमित है, फिर भी ये अनेक ऐसी सूचनाएँ अवश्य प्रदान करती हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि नारियाँ सुशिक्षित थीं। अजंता की गुफाओं के चित्र, जिन्हें भारतीय कला का अनमोल खजाना माना जाता है, में नारी को सार्वभौमिक सौंदर्य का प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। इन चित्रों में रानियाँ, राजकुमारियाँ, परिचारिकाएँ एवं नर्तकियों को विविध मुद्राओं और परिस्थितियों में दर्शाया गया है। केश-सज्जा, आभूषणों का परिष्कृत प्रयोग, सुसज्जित वस्त्र तथा नृत्य की जटिल भंगिमाओं का इतना सूक्ष्म अंकन केवल उनके सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि यह परोक्ष रूप से यह संकेत भी करता है कि उस युग की नारियाँ शास्त्रीय संगीत, नृत्य, सौंदर्य प्रसाधन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति जैसे विषयों में विधिवत शिक्षा प्राप्त करती थीं। इन कलात्मक निपुणताओं के लिए एक संगठित शिक्षण एवं अभ्यास की पृष्ठभूमि अनिवार्य रही होगी, जो उनके शिक्षित होने का प्रमाण देती है। चित्रकला में अंकित विस्तृत केश-सज्जा, भूषणों का स्थानानुसार प्रयोग तथा विभिन्न अवसरों के अनुरूप श्रृंगार के भेद नारी की परिष्कृत कलादृष्टि एवं सौंदर्यबोध की परिपूर्णता का द्योतक हैं। एलोरा की गुफाओं और कोणार्क के सूर्य मंदिर के नाट्यमंडप की दीवारों एवं स्तंभों पर उत्कीर्ण नृत्य की विविध मुद्राएँ तथा चौसठ कलाओं से संबंधित नारी प्रतिमाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि नारी को शास्त्रीय संगीत, नृत्य आदि कलाओं का विधिवत् ज्ञान दिया जाता था। खजुराहो की मूर्तिकला में पठन-लेखन में संलग्न नारियों के मानसिक भावों को शिल्पकारों ने अत्यंत सजीवता से उकेरा है। इन कलाकृतियों से नारी के प्रति समाज में विद्यमान उत्कृष्ट अवधारणा तथा उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व के प्रति दृष्टिकोण प्रकट होता है।

ब्राह्मण, बौद्ध, जैन एवं विदेशी विवरणों तथा कलात्मक साक्ष्यों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वैदिक से लेकर उत्तर-वैदिक युग तक नारियों का एक उन्नत शैक्षणिक स्वरूप विद्यमान रहा। महाभारत काल में भी स्त्री-शिक्षा की परंपरा निर्बाध चलती रही। किंतु परिवर्तित होती सामाजिक परिस्थितियों के कारण नारी शिक्षा का क्रमशः ह्रास होने लगा। गुप्त एवं पूर्व-मध्यकाल में फिर से नारी शिक्षा के स्तर में सुधार दिखाई देता है तथा इसका प्रसार भी हुआ, हालाँकि अब यह लाभ मुख्यतः समाज के उच्च, अभिजात एवं धर्मनिष्ठ वर्ग तक ही सीमित रह

गया। दिल्ली सल्तनत के मुस्लिम शासनकाल में राजनीतिक अस्थिरता के चलते नारी शिक्षा के स्तर में अचानक तीव्र गिरावट आई। प्राचीन समृद्ध एवं सुसंस्कृत परिवारों का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया और उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति ऐसी न रही कि वे अपनी कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबंध कर सकें, जिसके परिणामस्वरूप नारी शिक्षा का तेजी से पतन हुआ।

प्राप्त सन्दर्भों के अनुसार, नारी शिक्षा या तो घरों में, गुरुकुलों के पुरुष आचार्यों द्वारा, अथवा गुरुकुल में निवास करने वाली विदुषी महिलाओं के माध्यम से प्राप्त होती थी। अन्यथा, यह शिक्षा उसी अभिजात वर्ग तक सीमित थी, जो बौद्ध या जैन धर्म से सीधे जुड़ा हुआ था। इस व्यवस्था के साथ ही, उस विशाल 'लोकपक्ष' को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जो अपने तरीके से सामान्य जनमानस को शिक्षित करता रहा। इस लंबी अवधि में, यद्यपि गाथाओं में वर्णित विदुषी नारियों के चित्र धूमिल हो गए, एक ऐसा व्यापक जनसमुदाय अवश्य रहा होगा जिसने अपने घरों, खेतों और परिवेश में रहकर, पुस्तकीय ज्ञान भले ही न दिया हो, किंतु अपनी बालिकाओं को स्थानीय भाषा में ही सही, परंपरागत नैतिक मूल्य, कुलाचार एवं व्यावहारिक ज्ञान अवश्य सिखाया होगा। समाज में प्रचलित लोकोक्तियाँ और मुहावरे इस स्थिति के स्वतः साक्षी हैं।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति,निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1946,3.56. ।
2. अ0 स0 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,न0कि0 ब्र0 वाराणासी 1980 पृ0 155.।
3. ऋग्वेद, वैदिकसंशोधन मंडल पूना,1933 ,,31.1-2.1
4. पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्चश्नुतः । ऋग्वेद, 8.31.8.1
5. बृह0 उपनिषद्,गीता प्रेस संस्करण गोरखपुर, 6.4.27.1
6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र,आर0 विद्यारतन कलकत्ता, 15.13.1
7. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। मनुस्मृति, 9.130.1
8. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, 3.53.58.1
9. वही, 1.215.23 (पुत्रो ममायमिति), 13.45.11 (पुत्रेण दुहितासमा)।
10. वही, 1.157.37.1
11. थेरीगाथा टीका, 33.1
12. डॉ0 परमानन्द सिंह, बौद्धसाहित्य में भारतीय समाज, हलधर प्रकाशन, वाराणसी, 1996, पृ0 107.1
13. अ0 स0 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,न0कि0 ब्र0 वाराणासी 1980,पृ0 154.।
14. डॉ0 परमानन्द सिंह, बौद्धसाहित्य में भारतीय समाज,हलधर प्रकाशन वाराणासी पृ0 115.1
15. श0 ब्रा0,आननदाश्रम सं0 ग्रंथावली वाराणासी, 5.1.6.10.1
16. डॉ0 अनन्त सदाशिव अलतेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति; पृ0 160
17. डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डेय भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास,हि0ए0 इलाहाबाद 1960 पृ0 121
18. डॉ0 अनन्त सदाशिव अलतेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति; पृ0 158

मीडिया: सूचना, जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम

प्रोफ़ेसर इफ़्फत असगर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

मनुष्य मूलत: सामाजिक प्रवृत्ति का प्राणी है। समाज में रहकर ही उसके विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं का विकास होता है। इन्हीं आपसी विचार-विनिमय और भावनात्मक संवाद के माध्यम से उसके जीवन-मूल्य, आचार-विचार और सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है। मनुष्य अपने मन में उत्पन्न भावों, विचारों, सूचनाओं, संदेशों तथा ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने की स्वाभाविक इच्छा रखता है। इसी उद्देश्य से वह अपने अनुभवों और ज्ञान-विज्ञान को समाज के अन्य सदस्यों के साथ साझा करता है और आपसी सहभागिता की भावना को विकसित करता है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ समाज को जीवंत और गतिशील बनाए रखने के लिए मानवीय अभिव्यक्तियों का निरंतर आदान-प्रदान आवश्यक हो गया। इसी आवश्यकता ने संचार के विभिन्न साधनों को जन्म दिया। प्रारंभ में मौखिक संवाद, संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से संचार होता था, परंतु समय के साथ भाषा, लिपि और तकनीकी साधनों का विकास हुआ। परिणामस्वरूप संचार माध्यमों ने समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। धीरे-धीरे समाज का अस्तित्व और उसकी संरचना संचार व्यवस्था पर अधिक निर्भर होती चली गई।

सामाजिक जीवन में सहमति, सहयोग और एकता को मजबूत करने में संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। संचार से विचारों का प्रसार, जनचेतना का विकास और सामाजिक परिवर्तन संभव होता है। आधुनिक युग में मीडिया समाज को जोड़ने और दिशा देने वाला प्रभावशाली माध्यम बन गया है। मीडिया को लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक सशक्त, प्रभावी और विश्वसनीय स्तंभ माना जाता है। यह समाज और शासन के बीच सेतु का कार्य करता है तथा जनता की आवाज को सत्ता के केंद्र तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनसंचार के विभिन्न माध्यम-जैसे रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र, इंटरनेट, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म (फेसबुक, ट्विटर आदि) किसी भी समाज या राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों और गतिविधियों को प्रतिबिंबित करते हैं। ये माध्यम न केवल घटनाओं और तथ्यों की जानकारी देते हैं, बल्कि समाज की सोच, मान्यताओं और प्रवृत्तियों को भी उजागर करते हैं।

मीडिया का प्रमुख कार्य सूचना का प्रसार करना है, लेकिन इसके साथ-साथ वह जनमानस के विचारों और दृष्टिकोण को भी प्रभावित करता है। समाचार, विचार-लेख, बहस और विश्लेषण के माध्यम से मीडिया लोगों को जागरूक बनाता है तथा उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत करता है। इसी कारण मीडिया को 'लोकतंत्र का प्रहरी' कहा जाता है, क्योंकि वह सत्ता के कार्यों पर निगरानी रखता है और जनहित के मुद्दों को सामने लाता है। इतिहास में स्वतंत्रता संग्राम, नागरिक अधिकार आंदोलनों और सामाजिक सुधारों में मीडिया ने जनचेतना को जाग्रत करने और जनमत को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में डिजिटल और सोशल मीडिया ने सूचना के प्रवाह को और अधिक तेज एवं व्यापक बना दिया है। आज मीडिया केवल सूचना का स्रोत नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने वाला प्रभावशाली माध्यम बन चुका है, जो लोकतंत्र को मजबूत और उत्तरदायी बनाने में अहम भूमिका निभाता है।

मीडिया की प्रभावशाली और महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिक चिंतक एडमंड बर्क ने इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा। लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया जनता और शासन के बीच एक सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करता है। विचारों की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति के अधिकार को वास्तविक अर्थों में लागू करने का दायित्व मीडिया ही निभाता है। यह नागरिकों को अपने विचार प्रकट करने का मंच प्रदान करता है तथा समाज में संवाद और विमर्श की परंपरा को सुदृढ़ करता है। इस प्रकार मीडिया लोकतंत्र की आत्मा को जीवंत बनाए रखने में एक निर्णायक भूमिका निभाता है। संभवत: इसीलिए ''संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1948 में 'सूचना की स्वतंत्रता' विषय पर आयोजित एक संगोष्ठी में यह माना कि सूचना की स्वतंत्रता मौलिक स्वतंत्रताओं में से एक है। साथ ही मुक्त और समुचित सूचना के प्रसार हेतु उपयुक्त जनसंचार माध्यमों का विकास आवश्यक है।''[1]

प्रभावी जनसंचार माध्यम किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। उनका दायित्व केवल स्वतंत्र, निष्पक्ष और पर्याप्त सूचनाएँ उपलब्ध कराना मात्र नहीं है, बल्कि समाज में वांछित और सकारात्मक बदलाव उत्पन्न करना भी है। जनसंचार माध्यम जनसामान्य में जागरूकता फैलाते हैं, जनमत को दिशा देते हैं तथा लोगों को विकास और प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार समाज में अपेक्षित परिवर्तन को मूर्त रूप देना ही जनसंचार माध्यमों का प्रमुख और सार्थक उद्देश्य माना जाता है।

आज के समय में मीडिया समाज का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। यह देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों की जानकारी देने के साथ-साथ विदेशों में होने वाली घटनाओं और बदलते हुए सामाजिक मूल्यों से भी लोगों को अवगत कराता है। मीडिया के माध्यम से जनता न केवल अपने देश की परिस्थितियों को समझती है, बल्कि विश्व में हो रहे परिवर्तनों से भी जुड़ी रहती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया एक सजग और सशक्त प्रहरी के रूप में कार्य करता है। इसके द्वारा आम नागरिक अपनी बात खुलकर रख सकता है। जनता अपनी इच्छाएँ, समस्याएँ, असहमति, विरोध, आलोचना और समर्थन सब कुछ मीडिया के माध्यम से व्यक्त करती है। इसी कारण मीडिया को जन-आवाज का सबसे प्रभावी मंच माना जाता है। यह जनता और शासन के बीच सेतु बनकर संवाद स्थापित करता है।

मीडिया की शक्ति इतनी व्यापक है कि बड़े से बड़ा शासक या प्रशासक भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। मीडिया सरकार के कार्यों पर निगरानी रखता है और जनहित से जुड़े मुद्दों को सामने लाता है। जब सरकार से कोई गलती होती है या जनता को किसी प्रकार की शिकायत होती है, तो लोग मीडिया के माध्यम से ही अपनी बात उठाते हैं। मीडिया इन समस्याओं को उजागर कर शासन का ध्यान जन-समस्याओं की ओर आकर्षित करता है। वहीं दूसरी ओर, सरकार भी मीडिया के जरिए जनता की सोच, भावनाओं और रूझानों को समझने का प्रयास करती है। मीडिया से उसे यह पता चलता है कि जनता किन मुद्दों को लेकर चिंतित है और किस दिशा में बदलाव चाहती है। इस प्रकार मीडिया न केवल सूचना देने वाला साधन है, बल्कि जनता का प्रवक्ता और लोकतंत्र को सशक्त बनाने वाला एक प्रभावी माध्यम भी है।

आर्थिक और सांस्कृतिक वैश्वीकरण में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक रही है। निस्संदेह, आज जिस वैश्विक जुड़ाव का अनुभव हम कर रहे हैं, उसका श्रेय काफी हद तक मीडिया को ही जाता है। मीडिया ने हमारी प्राचीन वैदिक सोच 'वसुधैव कुटुंबकम्', अर्थात् पूरी दुनिया को एक परिवार मानने की भावना को व्यवहारिक रूप में साकार कर दिया है। समय के साथ संचार के साधनों में तीव्र और व्यापक परिवर्तन हुआ है। प्रारंभिक काल में संदेश पहुँचाने के लिए नगाड़ों, ढोल-नगाड़ों, ध्वनि संकेतों और कबूतरों जैसे माध्यमों का उपयोग किया जाता था। धीरे-धीरे पत्र, तार, टेलीफोन और रेडियो जैसे साधन विकसित हुए। आज विज्ञान और तकनीक की प्रगति ने संचार को एक नई ऊँचाई पर पहुँचा दिया है। कंप्यूटर, इंटरनेट और उपग्रहों के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान अत्यंत तेज और सरल हो गया है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति और समग्र विकास में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। मीडिया केवल सूचना देने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया को गति देने वाला सशक्त माध्यम है। यह जनता को विकास संबंधी नीतियों, योजनाओं और गतिविधियों की जानकारी देकर आवश्यक परिवर्तनों के प्रति जागरूक करता है। साथ ही नए अवसरों और संभावनाओं से परिचित कराकर लोगों में विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनने की प्रेरणा भी उत्पन्न करता है। मीडिया की दूसरी महत्वपूर्ण भूमिका लोगों को विकास की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करना है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकास तभी संभव है जब नागरिक न केवल योजनाओं से परिचित हों, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर निर्णयों को प्रभावित करने में भी सक्षम हों। इसके लिए शासक और शासित के बीच निरंतर, स्पष्ट और पारदर्शी संवाद आवश्यक होता है। मीडिया इस संवाद को स्थापित करता है। यह विकास से जुड़े मुद्दों, लक्ष्यों और नीतियों को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है तथा उपलब्ध विकल्पों की पूरी जानकारी जनता तक पहुँचाता है, जिससे वे सोच-समझकर अपनी राय बना सकें।

मीडिया का तीसरा और अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य लोगों को विकास से संबंधित आवश्यक तकनीकी ज्ञान प्रदान करना है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, विज्ञान और तकनीक की आधुनिक जानकारी देकर मीडिया समाज को सशक्त बनाता है। नई पद्धतियों, रोजगार अवसरों और विकास संबंधी सूचनाओं के प्रसार से मीडिया समाज और राष्ट्र की उन्नति में निर्णायक भूमिका निभाता है। डॉ0 अनिल के0 राय कहते हैं कि, ''सूचना प्रौद्योगिकी आज समाज की विभिन्न आवश्यकताओं का आधार बनती जा रही है। विकास की तीव्र प्रक्रिया में जिस गति से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है, उसके चलते अब वह दिन दूर नहीं जब भारत के गाँव-गाँव में लोग सूचना और संचार क्रांति के उन सभी पहलुओं से लाभ प्राप्त करेंगे, जो बड़े शहरों, विशेषकर महानगरों में लोगों को उपलब्ध है।''[2]

वर्तमान युग में मीडिया ने भौगोलिक दूरियों को लगभग समाप्त कर दिया है। विश्व के किसी भी कोने में घटने वाली घटना पल भर में दूसरे छोर तक पहुँच जाती है। इसी कारण आज पूरा संसार एक छोटे से 'ग्राम' में परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है। विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ, परंपराएँ, जीवन-शैली और आर्थिक गतिविधियाँ एक-दूसरे से जुड़ रही हैं। मीडिया ने न केवल सूचना और ज्ञान का प्रसार किया है, बल्कि वैश्विक स्तर पर आपसी समझ, सहयोग और सांस्कृतिक समन्वय को भी बढ़ावा दिया है। आर्थिक और सांस्कृतिक वैश्वीकरण को गति देकर मीडिया ने आधुनिक विश्व को एक साझा मंच पर ला खड़ा किया है। ''संचार माध्यमों के विशेषज्ञ मार्शल मेकलुहान ने साठ के दशक में ही भविष्यवाणी की थी कि संचार तकनीकी दुनिया को विश्व ग्राम में बदल देगी। बीस साल तक लोग मेकलुहान की बातों को कल्पना लोक की उड़ान मानते रहे। लेकिन अंतरराष्ट्रीय विकास समिति और भावी विश्व समिति ने 1992 में आयोजित अपनी बैठकों में संचार को विकास की सीढ़ी माना। विएना में यूनेस्कों ने एक सम्मेलन बुलाया और संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1983 को विश्व दूर संचार वर्ष

घोषित किया।''[3] इस प्रकार मीडिया राष्ट्रीय सीमाओं से आगे बढ़कर विश्व के विभिन्न देशों और उनके लोगों के बीच विचारों, भावनाओं तथा संस्कृतियों के स्तर पर आपसी संपर्क स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह भौगोलिक दूरियों को कम करते हुए लोगों को मानसिक और सांस्कृतिक रूप से एक-दूसरे के निकट लाता है, जिससे वैश्विक समझ, सहयोग और पारस्परिक सद्भाव को बढ़ावा मिलता है।

इक्कीसवीं सदी में ऐसा शायद ही कोई क्षेत्र हो जिस पर मीडिया का प्रभाव न हो। हमारा दिन मीडिया से जुड़कर ही शुरू होता है और रात को भी हम उसी के साथ दिन का अंत करते हैं। समाचार पत्र, टीवी, मोबाइल, इंटरनेट और सोशल मीडिया हमारे दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। मीडिया के माध्यम से देशख़्रविदेश में घटने वाली घटनाओं की जानकारी हमें बहुत ही कम समय में मिल जाती है।

मीडिया ने सूचना के आदान-प्रदान को अत्यंत सरल और तेज बना दिया है। अब किसी घटना के बारे में जानने के लिए लंबे समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। कुछ ही क्षणों में समाचार हमारे सामने होते हैं। विशेष रूप से छात्रों के लिए मीडिया किसी वरदान से कम नहीं है। इंटरनेट के माध्यम से उन्हें पढ़ाई से संबंधित सामग्री, शोध, प्रतियोगी परीक्षाओं की जानकारी और विश्व की नवीनतम घटनाओं का ज्ञान आसानी से उपलब्ध हो जाता है। मीडिया ऐसी जानकारियाँ भी जनता तक पहुँचाता है, जिन तक सामान्य व्यक्ति की सीधी पहुँच संभव नहीं होती। शासन-प्रशासन की गतिविधियाँ, दूर-दराज के क्षेत्रों की समस्याएँ, वैज्ञानिक खोजें और वैश्विक घटनाएँ सब कुछ मीडिया के जरिए लोगों के सामने आता है। इस प्रकार मीडिया न केवल ज्ञान का विस्तार करता है, बल्कि लोगों की सोच और दृष्टिकोण को भी व्यापक बनाता है। आधुनिक युग में मीडिया मानव जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुका है, जो हमें सूचना, शिक्षा और जागरूकता प्रदान कर समाज को निरंतर आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

मीडिया को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली माध्यम माना जाता है। इंटरनेट, मोबाइल फोन और टीवी चौनलों ने आधुनिक समाज को गहराई से प्रभावित किया है। इन माध्यमों ने लोगों की सोच, व्यवहार और दृष्टिकोण में व्यापक बदलाव लाया है। बीसवीं सदी में समाज को बदलने में ट्रांजिस्टर की अहम भूमिका रही थी, लेकिन इक्कीसवीं सदी में इंटरनेट, मोबाइल और टेलीविजन चौनलों का प्रभाव उससे कहीं अधिक व्यापक और गहन हो गया है।

आज समाज की दिशा और दशा को निर्धारित करने में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाचार चौनलों ने लोगों में सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया है और उनकी चेतना को अधिक परिपक्व तथा सक्रिय बनाया है। मीडिया के माध्यम से आम जनता को राजनीति से जुड़े मुद्दों, नीतियों और निर्णयों की गहरी समझ प्राप्त हुई है। अब लोग केवल सुनी-सुनाई बातों पर निर्भर नहीं रहते, बल्कि तथ्यों और विश्लेषण के आधार पर स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर रहे हैं। मीडिया ने जनता को यह समझने का अवसर दिया है कि लोकतंत्र में उनकी भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है। वर्ष 2015 में दिल्ली विधानसभा चुनाव का परिणाम इस बात का स्पष्ट उदाहरण है, जहाँ जागरूक और सूचित मतदाताओं ने सोच-समझकर अपने मत का प्रयोग किया। वास्तव में मीडिया का मूल दायित्व जनता को सही, सटीक और निष्पक्ष जानकारी प्रदान करना है। जब लोगों को तथ्यपरक और वस्तुनिष्ठ सूचना मिलती है, तो वे तार्किक रूप से सोचने में सक्षम होते हैं और अपनी स्वतंत्र राय बना पाते हैं। इस प्रकार मीडिया न केवल सूचना का स्रोत है, बल्कि समाज को जागरूक, विवेकशील और परिवर्तन के लिए तैयार करने वाला एक शक्तिशाली साधन भी है।

मीडिया के अनेक सकारात्मक पक्षों के साथ-साथ उसका नकारात्मक रूप भी सामने आता है। सामान्यतः मीडिया से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज में जागरूकता फैलाए, अंधविश्वास, पाखंड और सामाजिक कुरीतियों को दूर करे तथा शिक्षा और साक्षरता के प्रसार में सहयोग दे। किंतु वर्तमान समय में मीडिया का एक बड़ा हिस्सा अपनी इस जिम्मेदारी का समुचित निर्वहन नहीं कर पा रहा है। आज कई टीवी चौनलों पर ऐसे कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं, जिनमें डरावना और रहस्यमय रूप धारण किए हुए तथाकथित बाबाओं द्वारा लोगों को शनि, राहु-केतु, ग्रह-दोष, मंगल-दोष आदि का भय दिखाया जाता है। इन भयावह बातों से लोगों को डराकर उनके समाधान के नाम पर लॉकेट, ताबीज, धनलक्ष्मी वर्षा यंत्र, लक्ष्मी-कुबेर यंत्र, लाल किताब जैसे निरर्थक और अवैज्ञानिक वस्तुओं की बिक्री की जाती है। अंधविश्वास फैलाने के लिए मीडिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। कई अध्ययनों और रिपोर्टों ने भारत में फेक न्यूज की सीमा पर प्रकाश डाला है।[4]

कभी-कभी मीडिया पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि वह धार्मिक उन्माद और भावनात्मक उत्तेजना को हवा देता है, जिससे सामाजिक सौहार्द और आपसी सद्भाव को नुकसान पहुँचता है। जब झूठी जानकारी जंगल की आग की तरह फैलती तो इसमें विभिन्न धार्मिक, जातीय या राजनीतिक समूहों के बीच तनाव पैदा करने की क्षमता होती है। मौजूदा विभाजनों का फायदा उठाकर, फेक न्यूज दुश्मनी और हिंसा भड़का सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक सद्भाव और स्थिरता का क्षरण हो सकता है। सांप्रदायिक दंगों, भीड़, हिंसा और घृणा अपराधों की परेशान करने वाली घटनाओं को फेक न्यूज के प्रसार के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है, जो इस व्यापक मुद्दे से निपटने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करता है।[5] यदि मीडिया अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है, तो वह समाज को जागरूक बनाने के बजाय भ्रम और विभाजन की ओर ले जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि मीडिया अपने सामाजिक दायित्व को समझे और जिम्मेदारीपूर्ण भूमिका निभाए।

इसके अलावा, फेक न्यूज का खतरा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए भी एक बड़ा खतरा है। विशेष रूप से चुनावों के दौरान, जनता की राय को प्रभावित करने और मतदान व्यवहार को प्रभावित करने के लिए भ्रामक आख्यानों को रणनीतिक रूप से तैयार किया जा सकता है।[6] केवल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ही नहीं, बल्कि अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी आर्थिक लाभ के लालच में ऐसे भ्रामक विज्ञापनों को बिना किसी जांच-पड़ताल के प्रकाशित कर देती हैं। इससे समाज में वैज्ञानिक सोच के स्थान पर रूढ़िवादी और अंधविश्वासी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। फेक न्यूज की फैलने की गति तथ्य जाँचकर्ताओं और इसके प्रसार को रोकने का प्रयास करने वाले अधिकारियों के लिए चुनौतियाँ खड़ी करती है। चूंकि गलत सूचना उसे रोकने के उपायों की तुलना में तेजी से फैलती है, इसलिए जनता की राय पर इसका प्रभाव दूरगामी हो सकता है।[7]

कभी-कभी आर्थिक लाभ की लालसा में मीडिया अपनी सामाजिक जिम्मेदारी से भटक जाती है और जनविरोधी भूमिका निभाने लगती है। वर्ष 2009 में पेड न्यूज के अनेक मामले सामने आए, जिनमें धन लेकर किसी विशेष व्यक्ति या दल के पक्ष में खबरें प्रकाशित और प्रसारित की गईं। इस तरह की प्रवृत्ति ने मीडिया की निष्पक्षता और विश्वसनीयता पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगा दिया तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को भी नुकसान पहुँचाया। विनीत कुमार करते हैं कि, ''जिस पेड न्यूज को अभूतपूर्व घटना की तरह आश्चर्य से देखा जा रहा है, मीडिया का पाप या दुष्कर्म बताया जा रहा है, वह उसके कारोबार का सामान्य ढर्रा है।''[8]

भारत में फेक न्यूज का फैलाव लोकतंत्र, समाज और अर्थव्यवस्था तीनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। गलत जानकारी का प्रसार न केवल जनता को भ्रमित करता है, बल्कि इससे लोकतांत्रिक संस्थानों की विश्वसनीयता भी कमजोर होती है। राजनीतिक स्तर पर, यह जनता के चुनावी निर्णयों को प्रभावित कर सकता है, जिससे उम्मीदवार या नीतियाँ ऐसे आधार पर चुनी जा सकती हैं जो सच्चाई पर नहीं बल्कि झूठ और अफवाहों पर आधारित हों। आर्थिक दृष्टि से फेक न्यूज बाजार और निवेश माहौल को अस्थिर बना सकती है। घबराहट और अनिश्चितता पैदा होने के कारण निवेशक अपने निर्णय बदल सकते हैं, जिससे आर्थिक मंदी और व्यवसायिक हानि की संभावना बढ़ जाती है। इसके साथ ही, समाज में ध्रुवीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है, लोग झूठ पर आधारित धाराओं में बंटते हैं और सामाजिक सद्भाव प्रभावित होता है। फेक न्यूज सूचना के विश्वसनीय प्रवाह को बाधित करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया, सामाजिक सौहार्द और आर्थिक स्थिरता को कमजोर करता है। इसके प्रभाव को कम करने के लिए मीडिया, सरकार और नागरिक समाज को मिलकर जागरूकता, डिजिटल साक्षरता और सूचना के सत्यापन के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

मीडिया की इस तरह की प्रवृत्ति को एक गंभीर और खतरनाक संकेत माना जा सकता है। मीडिया की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए जस्टिस काटजू ने तीखी टिप्पणी की है। मीडिया की भूमिका पर सवाल उठाते हुए जस्टिस काटजू कहते हैं, कि ''भारतीय मीडिया बहुत बार जनविरोधी भूमिका अदा करता है।. .. पहला तो यह कि वह लोगों को वास्तविक मुद्दों से भटकाने का काम करता है और वह भी जो कि सीधे-सीधे उनकी रोजी-रोटी से जुड़ा मामला है। गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई और स्वास्थ्य की समस्या से जूझ रही, बदतर हालत में जीने वाली देश की अस्सी फीसदी आबादी आपके सामने है। आप इन मसलों से हटकर, नजरअंदाज करके फिल्मी सितारों, फैशन परेड और क्रिकेट को प्रोत्साहित करते हो जैसे कि इन लोगों के लिए यही सबसे बड़ी समस्या है।''[9] जस्टिस काटजू का मानना है कि इस तरह मीडिया जनता को भ्रमित करता है और उन्हें अपने असली अधिकारों और आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होने से रोकता है। जब मीडिया जनसमस्याओं को छोड़कर केवल चमक-दमक और मनोरंजन को प्राथमिकता देता है, तो लोकतंत्र कमजोर होता है और जनहित की उपेक्षा होती है। इसलिए आवश्यक है कि मीडिया अपनी जिम्मेदारी को समझे और समाज के वास्तविक मुद्दों को सामने लाकर जनता की आवाज बने, न कि उन्हें भटकाने का साधन।

विनीत कुमार का कहना है कि अधिकांश मीडिया चौनल दैनिक समाचारों में मनोरंजन, क्रिकेट और ग्लैमर से जुड़े हस्तियों को अत्यधिक प्राथमिकता देते हैं, जबकि समाज में सकारात्मक बदलाव लाने वाले लोग और उनके प्रयास लगभग नजरअंदाज कर दिए जाते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण जनता का ध्यान वास्तविक और महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों से हट जाता है, और समाज में बदलाव लाने वाले योगदानों को मान्यता नहीं मिल पाती। वे लिखते है कि, ''आमतौर पर चौनल मनोरंजन, क्रिकेट और ग्लैमर से जुड़ी हस्तियों को रोजमर्रा की खबरों में प्रमुखता से शामिल करते हैं और सामाजिक बदलाव के लिए काम करने वाले लोग लगभग नदारद रहते हैं।''[10] यह सत्य है कि पूँजीवाद और भ्रष्ट राजनीति का गठजोड़ मीडिया पर प्रभाव डालकर उसे अपने नियंत्रण में ले चुका है। इस गठजोड़ के कारण मीडिया कभी-कभी जनता को वास्तविक और महत्वपूर्ण मुद्दों से भटका देता है। इसके माध्यम से शासन, सत्ता और आर्थिक हितों से जुड़े मामलों को नजरअंदाज किया जाता है, जबकि समाज की ज्वलंत समस्याओं और जनहित के मसलों को पर्याप्त ध्यान नहीं मिलता। इससे मीडिया की निष्पक्षता और लोकतांत्रिक भूमिका प्रभावित होती है।

यदि हम मीडिया के नकारात्मक पक्ष को अलग रख दें, तो स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मीडिया ने देश की प्रगति और विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने जनता की सोच और चेतना को अधिक तीक्ष्ण, जागरूक और सक्रिय बनाया है। शोषित और दमित वर्ग को अपनी आवाज उठाने और अपने मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मीडिया ने मनुष्य को विश्व भर के ज्ञान, विज्ञान और तकनीक से परिचित करवाया

है, जिससे सोच और विकास के नए क्षितिज खुले हैं। यह समाज की चेतना को प्रभावित करता है, नई दिशाएँ देता है और बदलाव की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है। वहीं, समाज भी मीडिया की दिशा और प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। आज मीडिया पर 'सनसनीखेज रिपोर्टिंग' और केवल लोकप्रिय सामग्री दिखाने का आरोप लगाया जाता है। लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि मीडिया वही दिखाता है जो अधिकांश जनता पसंद करती है और जिस पर लोगों की अधिक प्रतिक्रिया होती है। इसका अर्थ यह है कि केवल मीडिया को दोष देना उचित नहीं है; हमारे दृष्टिकोण और प्राथमिकताओं में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। जनता की अपेक्षाएँ और रुचियाँ मीडिया की सामग्री को प्रभावित करती हैं।

मीडिया और समाज के बीच एक द्विपक्षीय संबंध है। मीडिया समाज को जागरूक बनाता है, लेकिन समाज की सोच और पसंद भी मीडिया के कामकाज को आकार देती है। यदि दोनों मिलकर उत्तरदायी और संतुलित दृष्टिकोण अपनाएँ, तो मीडिया समाज के विकास और सुधार में और भी अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है। मीडिया का समाज में अत्यंत व्यापक और निर्णायक प्रभाव है। यह न केवल सूचना और ज्ञान का स्रोत है, बल्कि लोकतंत्र की मजबूती, सामाजिक जागरूकता और विकास में केंद्रीय भूमिका निभाता है। मीडिया ने जनता को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत किया, शोषित और कमजोर वर्ग को आवाज दी, और वैश्विक स्तर पर लोगों को आपस में जोड़कर सहयोग और सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा दिया। इसके बावजूद, मीडिया का उपयोग हमेशा सकारात्मक नहीं होता। आर्थिक लाभ, राजनीतिक दबाव और सनसनीखेज रिपोर्टिंग ने इसे कभी-कभी जनहित के विपरीत कार्य करने वाला उपकरण बना दिया है। पेड न्यूज, अंधविश्वास फैलाने वाले कार्यक्रम, ग्लैमर और मनोरंजन को प्राथमिकता देना, सामाजिक बदलाव लाने वाले प्रयासों की उपेक्षा करना ये सभी प्रवृत्तियाँ मीडिया की निष्पक्षता और विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। इसलिए आवश्यक है कि मीडिया अपनी शक्तियों और संसाधनों का जिम्मेदारीपूर्ण उपयोग करे, समाज की वास्तविक समस्याओं को उजागर करे और संतुलित, निष्पक्ष एवं शिक्षाप्रद सूचना प्रदान करे। साथ ही, समाज को भी अपनी दृष्टि और प्राथमिकताओं में सुधार करके मीडिया से उच्च और जिम्मेदार संवाद की अपेक्षा करनी चाहिए। मीडिया का प्रभावशाली योगदान नकारा नहीं जा सकता, परंतु उसके दुरुपयोग और व्यावसायिक व राजनीतिक प्रभाव के कारण उसकी भूमिका हमेशा विवादास्पद रही है। मीडिया की शक्ति तभी लोकतंत्र और समाज के लिए वास्तविक लाभकारी होगी जब वह निष्पक्षता, जागरूकता और जिम्मेदारी के साथ कार्य करे, और समाज भी उसकी अपेक्षाओं और प्रतिक्रिया में सुधार लाए।

सन्दर्भ सूची-

1. बृजमोहन गुप्त, जनसंचार: विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1997, पृ0 7
2. डॉ0 अनिल के0 राय 'अकिंत', संचार प्रौद्योगिकी एवं जन माध्यम, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2006, आमुख से
3. बृजमोहन गुप्त, जनसंचार: विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1997, पृ0 12
4. Al-Zaman, M. S. (2021). Social media fake news in India. Asian Journal for Public Opinion Research, 9(1), 25-47.,
5. Mathur, P. (2021). FAKE NEWS AND REAL VIOLENCE. HOME TEAM, 109.
6. Tufekci, Z. (2018). How social media took us from Tahrir Square to Donald Trump. MIT Technology Review, 14, 18.,
7. Meyer, R. (2018). The grim conclusions of the largest-ever study of fake news. The Atlantic, 8, 2018.,
8. विनीत कुमार, मंडी में मीडिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011, पृ0 10
9. वही, पृ0 304
10. वही, पृ0 268